[वर्ष २] जनवरी सन् १९२४. [अंक १]

श्री भा. दि. जैन परवार सभा का मुख्य पत्र-

[वार्षिक मूल्य ३) रु.]

परवार बन्धु

[इस प्रतिका मूल्य ।-)]

अबला अबला अर्धांगी का, भार भयावह भारी है। पुत्र रत्नकी पावन प्रतिमा, प्राणोंसे भी प्यारी है॥

कन्या कन्या को गोदी में अंचल थामे लेती है। पेटी को पेटी लेते को, घर में आती रहती है॥
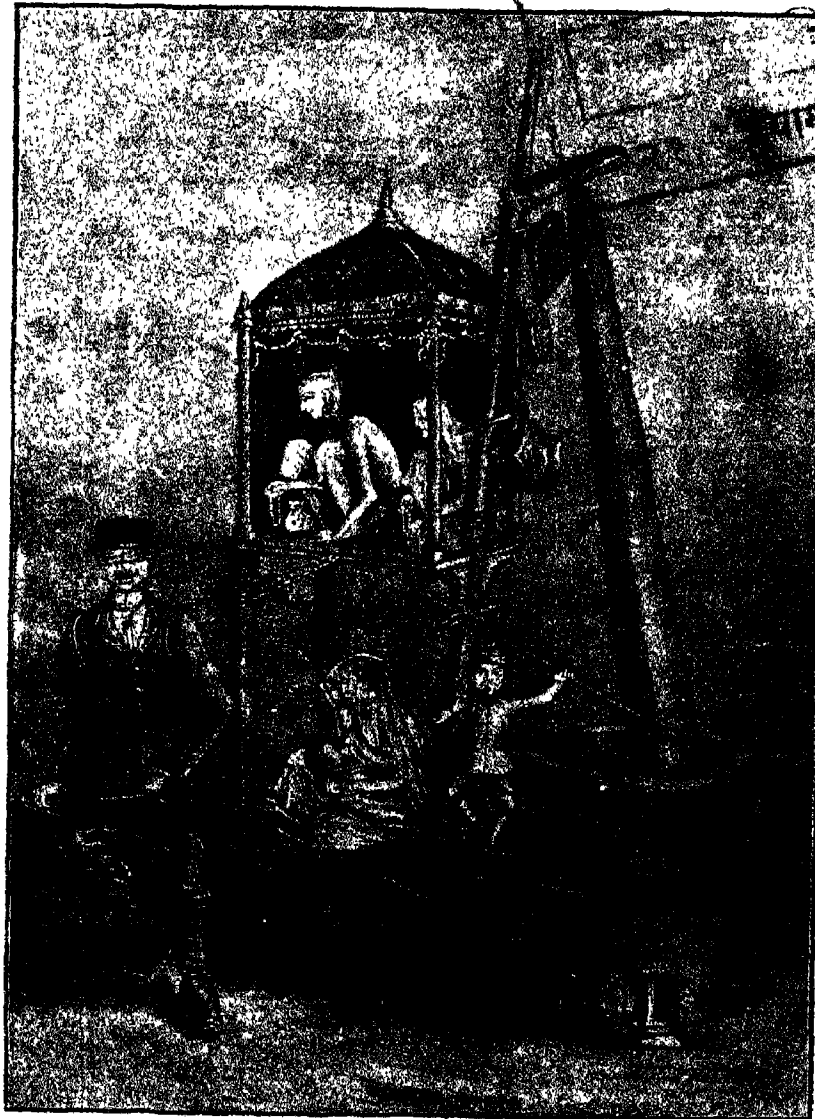
चिन्ता के चक्कर में झोंके, खाते औंधे सोंधे हैं। जीवन की घानी में भगवन! आंखें बांधे बैठे हैं॥

फैशनके फन्देमें फसकर, घर धन्धेमें धसे हुए। बाबू बबुआ बने, करें क्या! हैं कोल्हूमें कसेहुए॥

सम्पादक
पं० दरबारीलाल साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ।

प्रकाशक
मास्टर छोटेलाल जैन।

नम्र निवेदन ।

परवार पारावार का परिवार पय पूरन करो ।
जातीय जीवन ज्योति भगवन ! भव्य भारत में भरो ॥

परवार बन्धु का पहिला अंक उन पाठकों की सेवा में प्रेषित किया गया है। कि जिन की पहिले से इस पर कृपा है। ग्राहकों के अतिरिक्त उन महानुभावों की सेवा में भी भेजा है कि जिनको हम समाज के शुभचिन्तक, साहित्य सेवी तथा उदार हृदय के समझते हैं। यद्यपि बन्धु का मूल्य दूना कर दिया गया है-किन्तु मूल्य दूना करने पर भी—

परवार-बन्धु के कलेवर की वृद्धि तिगुनी कर दी गई है ।

उसके मुख पृष्ठ पर एक चित्र भी दिया गया है, यदि पाठकों को ऐसा रुचिकर हुआ तो हमारा विचार है कि इसके प्रत्येक अंक के—

मुखपृष्ठ पर नवीन चित्र दिया जावे ।

बन्धु को समय पर प्रकाशित करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। पहिले अंक के प्रकाशित करने में हमें अनेक कठिनाइयों का सामहना करना पड़ा है। अर्थात् जब कि प्लेग के प्रकोप से जबलपुर की सम्पूर्ण जनता अव्यवस्थित थी उसी समय परवार-बन्धु के प्रकाशित करने को केवल १ हफ्ता शेष था। अत: ऐसे संकीर्ण समय में जिस प्रकार हो सका पहिला अंक आप की सेवा में उपस्थित किया है ।

दूसरे अंक में श्रीयुत पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार की "उपालम्भ और आह्वान" शीर्षक कविता तथा अन्य जैन, अजैन प्रसिद्ध साहित्य मर्मज्ञों के लेख कविताएं भी रहेंगी ।

दूसरा अंक पाठकों की सेवा में वी० पी० से भेजा जावेगा हमें आशा है कि हमारे पाठकगण इसका प्रचार बढ़ाने को ग्राहक बनाने में पूर्ण प्रयत्न करेंगे। और जिनके पास यह अंक पहुंचे वे दूसरा अंक पहुंचने के पहिले ३) का मनिआर्डर भेजने की कृपा करेंगे। या ग्राहक होना स्वीकार न हो तो अंक वापिस लौटा देवें अन्यथा दूसरा अंक ३) की वी० पी० से छुड़ाकर अनुगृहीत करेंगे ।

नम्र निवेदक
छोटेलाल जैन
प्रकाशक-परवार बन्धु

विषय सूची ।

अवश्य आइये ! शुभ सूचना ॥ अवश्य आइये !

आपको ता: १६, १७, १८ फरवरी को नागपुर आने में क्या लाभ होगा ? देखिये:— शान्ति विधान ॥ परवार सभा का षष्टम अधिवेशन होगा ॥ वेदी प्रतिष्ठोत्सव, और श्री रामटेक जी के भी दर्शन होंगे श्रीमान पूज्यवर पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी तथा अन्य विद्वानों के

व्याख्यानों व धर्म चर्चा का लाभ होगा ।

सभापति का स्थान ।

बुं. ख. प्रान्त के सुप्रसिद्ध श्रीमान सेठ पन्नालाल जी टड़ैया सुशोभित करेंगे ।

कुंवरसेन मंत्री परवार सभा,

उद्देश्य और नियम।

१—समाज में विशेषतः परवार समाज में नवीन जागृति उत्पन्न कर समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करना "बन्धु" का प्रधान लक्ष्य है।

२—बन्धु में सर्वोपयोगी साहित्यक, ऐतिहासिक और धार्मिक लेख भी अवश्य रहा करेंगे।

३—धर्म विरोधी लेख बन्धु में स्थान न पासकेंगे।

४—लेख भेजने के लिये प्रत्येक लेखक को सादर निमन्त्रण है।

५—बन्धु का वार्षिक मूल्य ३) है।

६—बदले के समाचार पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें, लेख कविता आदि, "सम्पादक परवार बन्धु जँवरी बाग इन्दौर" के पते पर भेजना चाहिये।

७—प्रबंध विज्ञापन आदि के लिये नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करना चाहिये:—

मास्टर छोटेलाल जैन
दि. जैन शिक्षामन्दिर
जबलपुर, सी० पी०

विज्ञापन दाताओं के लिये।

विदित हो कि परवार-बन्धु भारतवर्षीय परवार सभा का मुखपत्र होकर एक ऐसे स्थान से निकलता है जहां पर जैनियों का मुख्य केन्द्र है और यहां से जैनियों के गांव के झोपड़े से लगाकर बड़े २ महलों तक पहुंचता है तथा ऐसे अजैन लोगों की दृष्टि में भी आता है कि जिनके यहां नित्यप्रति बाहर से सैकड़ों रुपयों का माल आया जाया ही करता है अतः व्यापारियों को विज्ञापन देकर लाभ उठाना चाहिये।

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई—१०)
१/२ ,, या १ ,, ,, —५॥)
१/४ ,, या १/२ ,, ,, —२॥)
आवरण के चौथे पृष्ठ ,, —१५)
,, ,, तीसरे ,, ,, —१२)

विज्ञापन छपाई का दाम पेशगी लिया जाता है।

वर्ष २ | जनवरी सन् १९३४ ई० । | संख्या १

" स्वागत ? "

(लेखक—श्रीयुत न्या. या. पं० हजारीलाल न्यायतीर्थ)

बन्धु तुम्हारा स्वागत आओ !
पतित हुई इस जैन जाति को,
उन्नति-पथ-आरूढ़ बनाओ ॥ बन्धु ॥
प्रचलित बाल बिबाह आदिका,
आर्षभूमि से नाम मिटाओ ।
बन्धु बन्धु के हृदय कमल से
भेद भाव भी दूर भगाओ ॥
बन्धु तुम्हारा स्वागत आओ !
मंत्र अहिंसा, प्रेम. सत्यका,
मनुजमात्र को पाठ पढ़ाओ ।
कलह, अनैक्य, छुटा कायरता,
शान्ति सुधारस पान कराओ ॥
बन्धु तुम्हारा स्वागत आओ !
मद मात्सर्य मोह आलस में,
पड़े हुओं को पुनः जगाओ ।
करें सदा निस्वार्थ भाव से,
सेवा पर उपकार सिखाओ ॥
बन्धु तुम्हारा स्वागत आओ !
रहो सदा कर्तव्य निष्ठ तुम,
जग को सच्चा पथ दिखलाओ ।
अनाचार से लिप्त जनों का,
शीघ्र पवित्राचार बनाओ ॥
बन्धु तुम्हारा स्वागत आओ !
अपनी हीन दशा को लख के,
नहीं बन्धु जग में शरमाओ ।
" हे जिनेन्द्र ! होंगे कब उन्नत,"
यही भावना मन में लाओ ॥
बन्धु तुम्हारा स्वागत आओ !
' दीन हीन दुख ग्रसित जाति पर,
होवें सब कुर्बान ' सिखाओ ।
" विश्वमात्र परवार हमारा, "
इसी गान की तान सुनाओ ॥
बन्धु तुम्हारा स्वागत आओ !

सम्पादक सन्देश ।

समाज और संगठन

अतीत के गर्भ में एक समय ऐसा भी छिपा पड़ा है जब कि सबलों के अत्याचारों से पीड़ित निबलों को जीवनयात्रा करना कठिन ही नहीं असम्भव हो गया था, अशान्ति का समुद्र लहरा रहा था उसकी गर्जना थी "त्राहि त्राहि" की आवाज। सभी मनुष्य दुखी होगये, प्रत्येक हृदय एक नवीन आविष्कार की बाट जोहने लगा उस आविष्कार के लिये अच्छा और बुरा, निबल और सबल, देव और राक्षस सभी ने प्रयत्न किया उस अशान्ति के समुद्र को मथ डाला। उसमें से एक ऐसा अमृत निकला जिसने मनुष्यों को अमर बना दिया, उस अमृत का नाम था "संगठन"।

इस संगठन से ही मनुष्यों का झुंड समाज कहलाने लगा, इस संगठन से ही मनुष्य मनुष्य की कीमत करने लगा। अभी तक जो समुद्र अपनी गर्जना से कान फाड़े डालता था वही अब अपनी छोटी छोटी लहरों से लोगों के हृदयों को आनन्दित करने लगा। पत्थर के पहाड़ों से नदी के समान, नीरस मनुष्य हृदय से सरसता का प्रवाह छूटा इसमें संसार तो रसीला हो ही गया मगर वह खुद इस रसमें डूब गया।

इतना होने पर भी Might is right (जिसकी लाठी उसकी भैंस) का सिद्धान्त बिलकुल नष्ट न होगया किन्तु समय समय पर ज्वार भाटे के समान समाज समुद्र में फिर भी उथल पुथल हुई। शक्तिधारियों ने अपने स्वार्थ के लिये समाज की अवहेलना की और वे अब भी करते हैं। हमें देखना है कि हमारी समाज (?) में यह विष कहां तक फैला है परवार सभा ने ही नहीं किन्तु प्रत्येक सभा ने बाल विवाह, वृद्ध विवाह कन्या विक्रय अनमेल विवाह आदि के निषेधक प्रस्ताव, पास कर डाले हैं फिर भी वे रुक न सके।

एक समाज सर्व सम्मति से किसी प्रस्ताव को पास करे और उसकी पूर्ति न हो क्या इस बात में कुछ रहस्य नहीं है? वास्तव में रहस्य कुछ भी नहीं है क्योंकि उसका कारण बिलकुल खुला हुआ है उसका नाम है "संगठन का अभाव"।

जो लोग सभाओं के मंच पर सालंकार लम्बे चौड़े भाषण सुनाते हैं उनकी पहुँच तो समाज में नहीं हैं और जो लोग समाज के मुखिया हैं वे सभाओं को न तो कार्यक्षेत्र समझते हैं और न उनके कार्यों से उन्हें कुछ सरोकार है।

सभा ने भी अभी तक उन्हें एक सूत्र में नहीं बांधा है और न बांधने की यथेष्ट चेष्टा की है, फल यह हुआ है कि जिस ग्राम या शहर में जो धनिक हैं, अथवा किसी कारण से जिस की जहां चलती है वही वहां का हाईकोर्ट जज है, सामाजिक मामलों में उसकी अवहेलना नहीं की जा सकी। यदि उसके फैसले पर किसी जातीय सभा का फैसला माना जाता तो समाज में इतनी अन्धाधुन्धी न चलपाती।

इसके अतिरिक्त समाज के व्यक्तियों की हार्दिक दुर्बलता संगठन नहीं होने देती। इसके लिये किसी गाँव की पंचायत का दृश्य देखिये। मुखिया ने पूछा "कहो जी तुम्हारी क्या राय

है ?" उत्तर मिला "जैसा आप कहते हैं वही ठीक है" लीजिये होगई पंचायत। कहीं कहीं तो पंचायत करने का मौका ही नहीं आता और मुखिया का मुख न्याय उगलता रहता है।

इससे भी कोई हानि नहीं होती यदि वे मुखिया अपने कर्तव्य पर दृढ़ होते, लेकिन रोना इसी बात का है कि वे अपनी शक्ति का उपयोग बुरी तरह करते हैं।

उन्हीं के पास धर्म खाते का रुपया है जिस का हिसाब बीस वर्ष से नहीं मिला है वे ही बुढ़ापे में अपना विवाह कराते हैं और क्या २ कराते हैं सो यातो उस गांव के पंच जानते हैं अथवा परमेश्वर। लेकिन चूंचकार कोई भी नहीं करता अब प्रश्न यह है कि बिल्ली के गले मे घंटी कौन बांधे उत्तर भी ठीक है "परवार सभा" या "जातीय सभा" लेकिन परवार सभा कोई असुर संमर्दिनी देवी नहीं है जो अपनी अलौकिक शक्तियों के चमत्कार से काम बना देगी और हम मक्खियां उड़ाते बैठे रहेंगे परवार सभा का मतलब है "हम सब"

सिर्फ चिट्ठी पत्रियों से काम निकलना मुश्किल है जातीय सभा के नीचे जिला तहसील नगर आदि की सभाएं स्थापित करने के लिये डेपूटेशन लेकर भ्रमण करने की जरूरत है जिस से उच्छृङ्खलों की उच्छृङ्खलता का विनाश हो सोते हुए जगें, जगे हुए काम कर सकें।

जब यह काम हो जायगा तब ऐसा न समझिये कि संगठन होजायगा वे छोटी छोटी सभाएं शायद ही अपनी जिम्मेदारी को समझें इसलिये सभा के उपदेशकों द्वारा चिट्ठी पत्री और परवार बन्धु के द्वारा उनकी खबर रखना पड़ेगी। उनके प्रमाद को हटाना होगा, और उनका कार्य विवरण संक्षेपतः अधिवेशन के समय सबको सुनाना होगा।

जब वे पंचायतें यह समझ जावेंगी कि हमारा प्रमाद बदनामी का कारण है और कर्तव्य तत्परता नेकनामी का, तब उन्हें अपनी जिम्मेदारी का ख्याल अवश्य होगा और यह सुसंगठित समाज अपना रास्ता आप साफ कर लेगी और हमारे रोजनामचा में बातों के जमा खर्च के सिवाय कार्यों का जमा खर्च भी होने लगेगा। क्या हम आशा करें कि इन पंक्तियों के ऊपर किसी माई के लाल का ध्यान जावेगा।

कल और आज।

(लेखक—साहित्यरत्न पं० दरबारी लाल जी न्याय तीर्थ)

दिन तो न मालूम कब का चला गया। हम तो तान दुपट्टा सोने वाले आदमी हैं सोते सोते रात निकल गई ऊषा का समय आया कुछ अन्य कपड़ ओढ़ने की जरूरत हुई। मगर प्रश्न तो यह है कि जब पहिले हम पतला कपड़ा ओढ़ के लेटे थे तो दूसरा मोटा कपड़ा कैसे ओढ़ सक्ते हैं? रात भर की पुरानी रीति को कैसे तोड़ सक्ते हैं? खैर

मगर यह क्या? हम तो राजमहल में सोते थे किन्तु यह खंडहर कहां से आया रत्न जटित शय्या छीन कर इस टूटी खटिया पर किसने डाल दिया?

अरे! सभी कुछ तो लुट गया, बस यह अस्थिपञ्जर ही बाकी है हाय! ये दीवालें तो जहां की तहां खड़ी हैं मगर उनकी वह रंगत कहां है? कल तो यही महावीर और गौतम थे मगर रात भर में यह शून्यता कैसी? आह कैसी दैव लीला है कैसी विडम्बना है! अरी खूंटी तू तो रात भर यहीं रही है तेरे ऊपर कैसे सुन्दर सुन्दर वस्त्र टांगे गये थे बता तो वे कहां हैं?

अलमारी! तुझ में क्या नहीं था? सब कुछ था मगर कहां गया तूने किस को दे दिया वह विद्या का भंडार कहां खोदिया क्या सब गया? कपूर की तरह उड़ गया? और हम को पागल बना गया!

अरे! तुम में से कोई बोलता क्यों नहीं? क्या तुम अपनी जड़ता न छोड़ोगे? ठीक है तुम मनुष्य तो हो नहीं जिससे अपने स्वभाव को छोड़ दो इस कमजोरी का कलंक तो मनुष्य ही के मत्थे है!

हाय! हमारा कल का दिन कैसा अच्छा था हम में मनुष्यता थी संसार के ऊपर हमारा आतंक था संसार कृतज्ञता से हमारे साम्हने झुक गया था मगर आज हम ऐसे झुके हुए हैं कि मिट्टी में मिले हुए हैं।

अहा! कल यहीं कैसा प्रकाश था सुपथ साफ दिखता था, मगर इस अँधेरे ने न मालूम क्या कर दिया मालूम पड़ता है यही अँधेरा राक्षस बन कर सब खागया।

कल हम में जोश था कर्त्तव्य करने की इच्छा थी भय भागा भागा फिरता था मगर अब तो हृदय धड़कता है कुछ करने की इच्छा नहीं है जोश मरगया है वज्र गिरने पर भी उठने को जी नहीं चाहता। हाय मालूम पड़ता है जो गया सो गया—

कल का प्यारा दिन बीत गया
सुख साज गया सब काज गया।
झड़ गये फूल रह गये शूल
सब हुआ धूल जग हुआ नया॥
मन भ्रष्ट हुआ तन नष्ट हुआ
धन कष्ट हुआ कुछ भी न रहा।
विद्या विहीन अति दीन हीन
दुःस्वार्थ लीन हो दुःख सहा॥१॥

पद्य के टुकड़े टुकड़े की इसी प्रकार व्याख्या की गई है।

कल का प्यारा दिन बीत गया?

जिस दिन महावीर और गौतम की लोक हितैषिता देखी। रामचन्द्र की प्रजा वत्सलता और लक्ष्मण का भ्रातृ प्रेम देखा, सूर्यास्त होते होते अकलंक का स्वार्थ त्याग देखा वह दिन बीत गया अतीत के पेट में समा गया।

आज साधुओं में लोक हितैषिता की जगह पेट हितैषिता है रामचन्द्र की सन्तति में प्रजा रक्षकता की जगह प्रजा भक्षकता है प्रजा की जरा सी अनिच्छा के डर से परम पवित्रा निर्दोषा प्यारी सीता को छोड़ने वाले शासक के स्थान में, अपने थोड़े से स्वार्थ के लिये प्रजा के खून से हाथ रंगने वाले शासकों का जम घट्ट है। आज दो भाई दो शत्रुओं से कम नहीं हैं बन्धु को विपद्ग्रस्त देखकर दाँत निकालने वाले, अन्याय को देख कर जोरू के लहँगे में घुस कर झूठी हाय करने वाले प्राणियों की कमी नहीं है सचमुच हमारा कल का दिन बीत गया प्यारा दिन बीत गया।

सुख साज गया।

गंगा यमुना की धार बराबर चलती है, समुद्र में लहरें उसी तरह अठखेलियां खेलती हैं निर्मल आकाश में चन्द्र उसी तरह हँसता है बसन्त में कोयल उसी तरह बोलती है कामिनियों के मुख की उपमा चन्द्र से अब भी दी जाती है सब कुछ वही है फिर भी सुख साज गया क्योंकि हम उससे सुखी होना भूल गये हैं, हमारी फूटी आंखें उस सौन्दर्य को नहीं देख सकीं जिस दिन से हमारी भीतरी आंखें फूटीं उसी दिन से हम अंधकार में विलीन होगये संसार हमें अन्धकार (पाप) मय दिखने लगा चीजें पड़ी रहीं मगर वे सुख साज न कहला सकीं।

सब काज गया।

कर्त्तव्य की तो इति श्री होगई बैठे बैठे मक्खियां हांकना लड़ना और लड़ाना व्यापार के नाम पर सट्टा और दलाली करना विदेशी लोगों के दलाल बनना कन्या बेंचकर धन कमाना बस यही कर्त्तव्य की पराकाष्ठा है इसी सफलता पर हम फूले नहीं समाते हैं।

झड़ गये फूल रह गये शूल।

वे फूल जिनकी सुगन्ध से यहां के वन उपवन नन्दन कानन को विनिन्दित करते थे जिनकी सुगन्ध से देशी विदेशी भौंरे मतवाले होजाते थे जिन गुलाब सरीखा सौगन्ध्य और सौन्दर्य हृदय को मस्ताना और निखिल चिन्ता मुक्त बनाता था, वे झड़ गये, मिट्टी में मिल गये, अब तो बस रह गये शूल कांटे ही कांटे हैं हाथ लगाते ही खून निकल आता है मानों अँगुलियों का क्रोध बाहर निकल पड़ा हो। अब न उन में सुगन्ध है न सौन्दर्य यहां के भौंरे विदेशीय उपवनों में भनभनाते हैं सिर मारते हैं धक्के और ठोकरें खाते हैं भगाये जाते हैं कल के दिन जिसके लिये देवराज तरसते थे वही आज वियावान जंगल बना हुआ है जिस में कि सब जगह शूल ही शूल हैं।

सब हुआ धूल।

बचा क्या? आर्यों के गगन चुम्बि विजय-स्तम्भ कहां गये? संसार को चकित करने वाली कीर्ति कौमुदी कहां गई? वह लेखनी जिसके द्वारा संसार को सत्पथ दिखाने वाले

संसार में फँसे हुए प्राणियों को बन्धन मुक्त करने वाले सच्ची आत्मिक शान्ति के राज्य में लेजाने वाले ग्रन्थलिखे जाते थे—कहां गई? वह तलवार जिससे अन्यायियों का दमन किया जाता था न्याय की रक्षा की जाती थी कहां गई? सब मिटगया धूलहो गया।

जग हुआ नया।

कल व्यभिचारियों की कमी थी आज ब्रह्मचारियों की है, कल चोट्टों की कमी थी आज साहुकारों की है, कल असत्यवादी नहीं मिलते थे आज सत्यवादी नहीं मिलते हैं वास्तव में संसार नया हो गया।

पहिले लोहे के समान हृष्ट पुष्ट अंगवाले मनुष्य थे अब अपनी कमजोरी को बड़प्पन में शामिल करने वाले, अपने को नाजुक बदन कहकर इतराने वाले, कोमलतामें कोमलाङ्गियों को मात करने वाले वीर हैं यह जग का नया पन नहीं तो क्या है?

मन भ्रष्ट हुआ।

हृदय में वह स्वाभिमान कहां है दीन और अबलाओं के लिये अपने सर्वस्व को स्वाहा करने की उमंग कहां है छल छद्म से शून्य हृदय कहां है? सब भ्रष्ट हो गया धर्म के लिये मरने को सम्मति देने वाला हृदय आज अधर्म के लिये मरने की सम्मति देता है इतना ही नहीं।

तन नष्ट हुआ।

शरीर की ऐसी हालत है जिससे मक्खियां भी नहीं हँकती कोसों रास्ता चल कर के भी न थकने वाले पैरधारी मनुष्यों की जगह दो कदम चलने के लिये सवारी की बाट देखने में घंटों व्यतीत कराने वाले पैरधारी, कोमलता में मृणाल को भी मात करने वाले हाथ धारी, सभ्यता की गुलामी की फांसी के समान नेकटाई सुशोभित गर्दनधारी,

साहिबों के साम्हने बड़ी सफाई के साथ झुकने वाली कमरधारी सभ्यों की शरीर यष्टि निर्बलता की राज धानी बनी हुई है।

धनकष्ट हुआ।

यद्यपि रेलगाड़ी की भक भक और मोटरों की पों पों के मारे कानों की झिल्लियां फटी जाती हैं बड़े बड़े गगनचुम्बि प्रासादों से आंखे चकित होजाती हैं दिगम्बर उपवनों के समान पार्कों की विशालता पैरों को थका देती है मुर्दे के श्रृंगार के समान निःशक्त और भूखे शरीरोंपर चटकती हुई पोशाक हृदय को विस्मयान्वित कर देती है फिर भी धन कष्ट है। अकाल पड़ते हैं लाखों करोड़ों आदमी हा अन्त! हा अन्त! का शोर मचाए हुए हैं अध पेट रहकर किसी प्रकार रात काटते हैं विधवाएँ पेट के लिये वेश्यायें बन रहीं हैं। बाहर दिवाली और भीतर सातवें नरक की अँधियारी, ऊपर चटक मटक और भीतर पेट में कुदके हुए चूहे, बाजार में छबीलापन और घरमें महा भुकड़पन हमारे धनकष्ट की दुंदुभी बजाते हैं।

कुछभी न रहा।

रहने को तो बहुत कुछ है चापलूसी है दुर्बलता है मूर्खता है फूट है आलस्य है इन महा गुणों की भरी, पूरी सेना है मगर वह कुछ नहीं है, जिससेहम मनुष्य, जीवित कहला सकें हैं।

विद्या विहीन।

यद्यपि उपाधि रूपी बूंदों के लिये यह वर्षा काल है मगर वह विद्या नहीं है जिससे हम में जीवन को सुखी बनाने की आत्मिक पराधीनता के जाल को तोड़ने की संसार में स्वाभिमान पूर्वकरहने की भूले भटकों को सत्पथ दिखलाने की शक्ति आजाती है। इस कुविद्या के द्वारा हमारी बुद्धि पैनी हो गई है अवश्य, मगर उस तीक्ष्णता के द्वारा हमने नाना तरह से चापलूसी करने के ही आविष्कार किये हैं भोले मनुष्यों को ठगने की रीतियां निकाली हैं बदमाशी विश्वासघातकता और वञ्चकता को नीति या पॉलिसी कहना सीखा है सचमुच हम सद्विद्या विहीन हो गये हैं।

अतिदीनहीन।

ज्ञान गया चरित्र गया बल गया धन गया सभ्यता गयी अब बचा क्या? दीनता और हीनता की पराकाष्ठा आगई कल की जगद्गुरुता जगद्दासता में बदल गई राष्ट्रीय और सामाजिक गुलामी से हमारी आत्मा जकड़ गई हर एक के चरणों में सिर पटकना हमारा कर्तव्य होगया रूढ़ियों के जाल में ऐसे फँसे कि निकलना मुश्किल होगया अब इससे बढ़कर हीनता और दीनता क्या होगी?

दुस्वार्थ लीन हो।

सिरपर किसी विपत्ति का आना पतन नहीं कहलाता विपत्तियां तो महात्माओं को भी आती हैं पतन नहीं है जिससे मनुष्य दुस्वार्थी होजाय और अपने उद्देश से विमुख होजाय न तो उच्चभावनाएं रहें और न उच्चकार्य करने की शक्ति।

जो पैसे के लिये अपनी कन्यायें तक बेंचते हों, मौत की गोद में सोकर के भी किसी अबला बाला को फँसाकर विधवा बनाते हों, किसी मनुष्य के ऊपर जरासी विपत्ति आती हुई देख कर उससे घृणा करते हों दूर भागते हों, जिन में अपने देश, जाति, धर्म के लिये थोड़े से भी स्वार्थ त्याग करने की इच्छा न हो, जो अपने भाई के ऊपर अत्याचार देख कर आंख मीचने

में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हों उनकी दुस्वार्थ लीनता उनके सर्वनाश के लिये पर्याप्त है फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है कि सब :—

दुःख सहा

बाजारों में पशुओं के समान बेंचे गये नागरिकता के अधिकारों से वञ्चित किये गये घर में भी बेघर के बनाये गये गरीबी के कारण भूखों मरे निर्बलता के कारण रोगी हो हो कर यम के पाहुने बने अब इनसे बढ़ कर और कौनसा दुःख बाकी बचा है। भगवन्! क्या इन दुःखों का ठिकाना भी नहीं है? ठिकाना न सही कभी क्या अन्त भी होगा। कल का प्यारा दिन फिर लौटेगा? हम कभी ऊंचा सिर करके खड़े भी हो सकेंगे।

हमारे पापों का प्रायश्चित कब तक होगा?

इस प्रश्नावली का क्या उत्तर है कल और आज में अन्तर मिटाने का क्या उपाय है?

कुछ नहीं। हमारे लिये कोई नया रास्ता नहीं है जब तक हम में निस्वार्थता विवेक शीलता आदि गुण न आजावेंगे तब तक हम पिसेंगे खूब पिसेंगे ऐसे पिसेंगे कि अनन्तकाल के लिये धूल में मिल जायेंगे यदि अब भी कुछ विवेक से काम लिया दुस्वार्थ से दूर रहे जी तोड़ परिश्रम करने में लग गये तो अब भी समय है हम फिर वैसे के वैसे होसकते हैं। संसार भर में फिर सच्ची शांति का राज्य फैला सकते हैं आज भी कल का दृश्य देख सक्ते हैं बस चाहिये दृढ़ इच्छा शक्ति और निस्वार्थता।

———

बन्धु की प्रार्थना।

(लेखक—साहित्यरत्न पं० दरबारीलाल जी न्याय तीर्थ)

[१]

हम बिगड़े या बने मगर हैं बन्धु तुम्हारे।
तुम चाहो या नहीं पर न होंगे हम न्यारे॥
तुमको बन्धु अनेक बन्धु को तुम्हीं एक हो।
है हम को विश्वास हमें तुम सदा एक हो॥

[२]

यद्यपि अपना काम ठीक कुछ कर न सके हम।
फिर भी जो श्रम हुआ उसी से भर आई दम॥
काम जरा सा किया परिश्रम हुआ चौगुना।
चिल्ला चिल्ला थके-पर न किसी ने कुछ सुना॥

[३]

बस इतना ही नहीं किन्तु हम भूले भारी।
ठीक समय पर कर न सके अपनी तैयारी॥
पूरे दो दो मास लगाये हैं आने में।
पड़ा एक यह विघ्न बन्धु को पद पाने में॥

[४]

लेकिन अब तो अक्ल ठिकाने पर है आई।
इसीलिये फिर आज तुम्हें सूरत दिखलाई॥
हो न अगर विश्वास हृदय को चीर लीजिये।
फिर चाहे निज प्रेम दीजिये या न दीजिये॥

[५]

अब हमने कुछ ढंग बदल डाला है अपना।
आलस का तो कभी नहीं आसका सपना॥
जब बोलोगे उसी समय हाजिर होवेंगे।
दिन हो अथवा रात न निद्रा में सोवेंगे॥

[६]

नये नये सन्देश सुनावेंगे ताकत भर।
होने देंगे कभी नहीं अपना कठोर स्वर॥
फिर भी जो कुछ भूल हमें यदि दिख जावेगी।
क्यों न उसे वह जीभ निडर हो बतलावेगी॥

[७]

या जब अवनति तुम्हें थपथपाना चाहेगी ।
क्यों न बन्धु की दृष्टि तेज तब हो जावेगी ॥
कर्कश हो या मधुर जोर से कहना होगा ।
देख परिस्थिति तुम्हें तनिक तो सहना होगा ॥

[८]

यदि तुम सच्चा बन्धु हमें मानते रहोगे ।
अप्रिय लेकिन सत्य बचन की चोट सहोगे ॥
तो हम भी बन्धुता तुम्हें कुछ दिखला देंगे ।
विपदाएँ जो हानि करेंगी सब सह लेंगे ॥

विविध प्रसंग ।

बन्धु का नया वर्ष ।

जिस किसी तरह से बन्धु ने दो साल के भीतर अपनी एक साल पूरी की यद्यपि जैसा चाहिये वैसा काम नहीं हो सका फिर भी श्रीमान् पं० तुलसीराम जी ने कोई कसर नहीं की इसलिये हम आप का आभार मानते हैं हमें पूर्ण आशा थी कि बन्धु का नया वर्ष पंडित जी के हाथ से ही निकलकर द्वितीय वर्ष में अच्छा काम करता लेकिन कौटुम्बिक परिस्थिति के कारण आप विवश थे इसलिये यह काम हमारे ऊपर डाला गया ।

हमें यह बात अच्छी तरह विदित है कि बहुत से महाशय बन्धु से असन्तुष्ट हैं और इस असन्तुष्टता का कारण बन्धु का समय पर न निकलना ही है । इसलिये हमने पक्का विचार किया है कि जो कुछ भी हो हम यथाशक्ति बन्धु को समय पर निकालते रहेंगे ।

इतना होने पर भी हमें सहायता की बड़ी आवश्यकता है प्रथमांक का प्रायः बहुत सा कलेवर हमें ही सजाना पड़ा है एक दो अंक तक तो हम ऐसा कर सकते हैं मगर इस तरह कब तक निभेगी इसलिये हम सभी विद्वानों से निवेदन करते हैं कि वे इस पत्र को उपयोगी लेख अवश्य भेजें इसके अतिरिक्त हमें ऐसे समाचारों की भी आवश्यकता है जिनके प्रकाशित करने से, अथवा जिनकी समालोचना करने से समाज को लाभ पहुँचे इसलिये प्रत्येक प्रान्त के सज्जनों को चाहिये कि वे ऐसे समाचार अवश्य भेजें ।

इसके अतिरिक्त बन्धु का प्रचार करने के लिये तथा उसे आर्थिक हानि से बचाने के लिये उसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है यदि इस वर्ष बन्धु के एक हजार ग्राहक होगये तो इसका काम मजे से चल निकलेगा और बन्धु का नया वर्ष सचमुच में नया वर्ष होगा।

वाचनालय ।

ज्यों ज्यों समय निकलता जाता है त्यों त्यों वाचनालयों की उपयोगिता सिद्ध होती जाती है । दूसरे देशों में तो जहाँ थोड़े से किसानों के घर होते हैं वहाँ एक न एक वाचनालय अवश्य होता है । शायद ही कोई घर ऐसा निकले जिसमें कोई पत्र न आता हो ।

इधर हमारे यहाँ की दशा ही विचित्र है । यहाँ तो किसी को पत्र पढ़ने की रुचि तक नहीं है फिर खरीदना तो दूर की बात है ।

यह भी नहीं कह सकते कि यहाँ आवश्यकता नहीं है आवश्यकता तो पूरी है हां, उस आवश्यकता का अनुभव नहीं है इसका फल यह हुआ है कि समाज और देश में क्या हो रहा है इस बात से लोग

बिलकुल अनभिज्ञ हैं। आपके अच्छे अच्छे लेख पड़े पड़े अन्त में दीमक के भोज्य बन जाते हैं इसलिये इस बात में आश्चर्य ही क्या है कि इतना लिखने और चिल्लाने पर भी समाज के कानों में जूँ भी नहीं रेंगती।

समाज के प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह पत्रों के प्रचार में दत्तचित्त होवे। आजकल इससे बढ़कर ज्ञान का साधन और समाज में सज्जनता उत्पन्न करने वाला और कुछ नहीं है जहाँ एक भी जैन का घर हो वहाँ एक न एक सामाजिक पत्र अवश्य जाना चाहिये समाज की उन्नति में इससे बड़ी भारी सहायता मिलेगी।

सम्पादक.

परवार सभा का अधिवेशन।

षष्टम अधिवेशन कराने का निमंत्रण माघ सुदी ११, १२, १३, ताः १६, १७, १८ फरवरी को नवीन वेदीप्रतिष्ठितोत्सव के समय नागपुर पंचायत की ओर से आया है। और आशा है कि परवार सभा की प्रबन्धकारिणी कमेटी भी इसे स्वीकार कर लेगी परोक्ष अधिवेशन के द्वारा मेम्बरों से सम्मति मांगी गई है।

अतः सम्पूर्ण परवार भाइयों से नम्र निवेदन है कि वे इस जातीय सभा में सम्मिलित होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

समाज में अभी कई विषय ऐसे प्रस्तुत हैं कि जिन पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। सकुटुम्ब आने वालों को श्री रामटेक अतिशय क्षेत्र के दर्शन का भी लाभ होगा।

कुंवरसेन मंत्री परवार सभा.

नागपुर विश्वविद्यालय।

शीघ्र ही नागपुर के विश्वविद्यालय की पठनक्रम निर्धारिणी कमेटियों का संगठन होने वाला है। नागपुर विश्वविद्यालय १६ (१) १४ कायदा के अनुसार तीन संस्थाओं की ओर से कोर्ट में एक मेम्बर हो सकता है। जिस प्रकार संस्कृत, अरेबिक और परसियन विभाग के बोर्ड स्थापित होंगे उसी प्रकार हम आशा ही नहीं करते किन्तु विश्वविद्यालय की विषय निर्धारिणी समिति से साग्रह निवेदन करते हैं कि वे उसमें प्राकृत और पाली जैसी भारत की ऐतिहासिक भाषाओं को भी स्थान देंगे।

क्योंकि यह बात किसी से छिपी नहीं है कि भारत के लुप्तप्राय इतिहास का पता जिस प्रकार इन भाषाओं द्वारा लग सका है या लगा है, उतना किसी अन्य से नहीं।

प्राकृत भाषा में जैनियों के ऐसे अपूर्व ग्रन्थ अब भी हैं कि जो अंग्रेजी की एम. ए. तक की परीक्षा के लिये मिल सके हैं। जैनियों को अनेक संस्थाएँ हैं जो शिक्षाप्रचार का कार्य अच्छी तरह से कर रही हैं जबलपुर का 'बुंदेलखण्ड मध्य प्रांतीय दिगम्बर जैन शिक्षा मंदिर' अभी गत वर्ष ही में स्थापित हुआ है, किन्तु अपने आदर्श कार्य के कारण अन्य संस्थाओं को अनुकरणीय हो रहा है। इसी प्रकार सागर कटनी, बीना, ललतपुर आदि स्थानों में भी उत्तमता पूर्वक कार्य चल रहा है। अतः इन संस्थाओं की ओर से विश्वविद्यालय के कोर्ट में एक जैन मेम्बर होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिये प्रत्येक जैन संस्थाओं को—और परवारसभा तथा अन्य संस्थाओं को भी इस ओर ध्यान देकर विश्वविद्यालय नागपुर के वाइसचांसलर से लिखा पढ़ी करना चाहिये।

कस्तूरचंद बीए. एल. एल. बी.

वेश्या या वेटी।

(लेखक—साहित्यरत्न पं० दरबारीलाल जी न्यायतीर्थ)।

संसार में बहुत से मनुष्य ऐसे होते हैं जिन्हें विरोधाभास की मूर्ति कह सकते हैं कुदउँ मोदी भी उन्हीं में से थे जहां पहिले दर्जे के मक्खीचूस थे वहां एक पैसा पैदा करना भी हराम समझते थे। बाप की कमाई बैठे बैठे खाना ही इनका काम था आखिर कब तक खाते जो कुछ था धीरे धीरे सब सफाचट्ट होगया फिर भी इन्हें सन्तोष था सन्तोष का कारण सम्भवतः इनकी दो बेटियां थीं। मोदी जी को यही तो एक सहारा रह गया था जिससे वे निश्चिन्त से रहते थे।

मोदी जी की लड़कियों के नाम थे चम्पा और पद्मा जिन्हें ये बड़े प्रेम से चम्पियो या पद्मियां कहा करते थे चम्पा की उमर पंद्रह वर्ष की थी और पद्मा की उमर ग्यारह। चम्पा विवाह योग्य थी जवानी के चिन्ह निकलने लगे थे स्त्री सुलभ लज्जा से उसका मुंह समय समय पर लाल होजाता था।

यह बात नहीं है कि मोदी जी इस बात को नहीं जानते थे चतुर मोदी जी ऐसे ही मौके की ताक में थे और चाहते थे कि इसे बेंच कर पद्मा के विवाह तक के दिन निश्चिन्तापूर्वक वितायें अन्त में मोदी जी ने वर खोजना शुरू किया।

जब कोई मनुष्य इनके यहां बैठने आता तो ये उसे पानी अवश्य पिलाते न मालूम कौनसा अगम्य संकेत पाकर मोदनजी चम्पा को सजाकर पानी का लोटा हाथ में देकर भेज देती थी कोई भूला भटका चम्पा के विवाह के विषय में बात चीत करता तो मोदी जी ऐसी रोनी सूरत बनाकर बात करते जिससे आगान्तुक समझ जाता कि मोदीजी प्रयत्न तो बहुत करते हैं मगर क्या करें योग्य वर ही नहीं मिलता बातों २ में मोदीजी इस बात को भी झलका देते थे कि योग्य वर का मतलब अधिक रुपये देने वाला है।

कभी २ कोई बोली भी बोल देता था मगर उतने से मोदी जी की प्यास नहीं बुझती थी इसी कारण अभी तक चम्पा क्वाँरी रही।

[२]

सन्ध्या का समय था मोदी जी मक्खियां उड़ाते हुए किसी सोच में बैठे थे इतने में दो आदमी आये मोदीजी ने इनका स्वागत किया और अच्छा किया पानी मगाने के लिये भीतर आवाज दी "अरी चम्पिया पानी तो ला"

आजकल चम्पा चौबीसों घंटे बनी ठनी रहती है इसलिये पानी लाने में अधिक देर न लगी चम्पा ने पानी लाकर रक्खा आगन्तुकों ने चम्पा को देखकर कहा

"क्या यह आपकी पुत्री है ?"

"जी हां यह मेरी ही पुत्री है बहुत स्यानी होगई है उमर पंद्रह वर्ष की है" मोदीजी एक स्वास में सब कह गये।

एक आग.—अभी तक इसकी शादी नहीं हुई ?

मोदी—क्या करें योग्य वर तो मिलता ही नहीं इसी समय चम्पा भीतर जाकर एक जगह छिप गई।

प. आ.—तो अब देरी क्या है आपको कैसा वर चाहिये।

मो.—आप मेरी हालत तो जानते ही हैं आज कल व्यापार की क्या दशा है कि अपना पेट ही मुश्किल से चलता है

इसलिये लड़कियों का पालना हम सरीखों के लिये महा कठिन है इन्हीं लड़कियों के पीछे खाने पीने की मुश्किल है नहीं तो इतनी क्या चिन्ता है जिस तरह चाहें उसी तरह भर सकते हैं लेकिन हम लड़का के ऊपर भी दबाव नहीं डालना चाहते बस हमें उतना ही मिल जाय जितना हमारा खर्च हुआ है

आ.—तो आपकी क्या मन्शा है ?

मो.—मन्शा क्या ? हमने कह तो दिया कि लड़की की उमर पंद्रह वर्ष की है इन पंद्रह वर्षों में और नहीं तो पंद्रह सौ रुपया हमारे खर्च हो गये होंगे और करीब एक हजार विवाह में भी खर्च होंगे इस तरह करीब ढाई हजार रुपया मिलना चाहिये मैं ज्यादा एक कौड़ी भी लेना नहीं चाहता

आ०—अगर कुछ कम करो तो हमारे ये बुड्ढू सिंगई देने को तैयार हैं यद्यपि इनकी उमर करीब साठ वर्ष की हो गई है और शरीर भी कुछ अस्वस्थ है फिर भी इनके पास पैसा पूरा है दूसरे इनके पीछे कोई दूसरा आदमी भी नहीं है, बस तुम्हीं तुम हो।

मोदी—मगर पच्चीस सौ कोई ज्यादः नहीं है आपने लड़की तो देखही ली है ऐसी लड़की पर तो पच्चीस सौ यों ही निछावर हो सकते हैं फिर आपको मैं ने बतला भी दिया है कि अधिक एक पैसा भी नहीं ले रहा हूं।

आ०—अच्छो बात है जैसी आप की मन्शा ! अच्छा कहिये बात तो पक्की हुई।

मो०—हां ! हां ! पक्की। सौबार पक्की। आदमी की एक ही जबान होती है।

आ०—अच्छा तो पंद्रह सौ ये सम्हालिये बाकी एक हजार भाँवर पड़ते समय मिलेंगे।

मो०—मुझे मंजूर है

[३]

चंपा की बुढ्ढू के साथ शादी होगई इस समाचार से नवयुवकों का खून खौला तो खूब, मगर बेवशी की ठंडी हवा से बुरी तरह जम गया।

चम्पा, प्रमदा चम्पा, एक बुड्ढे के हाँथ फँसी इसका फल वही हुआ जो एक बरसाती नदी को बालू के बांध से रोकने का होता है कल मरने वाला बुढ्ढू आज ही मरगया जब यह समाचार मोदी जी के पास पहुँचा तब मोदी जी खूब रोये मानों रो रो कर प्रलयकाल को नेवता दे रहे हैं लेकिन किसी के पास यदि ऐसा यंत्र हो जिससे किसी के मन की बात मालूम पड़ सके तो मोदी के हृदय के विचार इस प्रकार मिलेंगे।

"अच्छा हुआ बुड्ढा मर गया, लड़की राँड़ हो गई तो क्या ? वह अभागिनी ही थी हम क्या कर सके थे अपना तो उसके राड़ होने में ही भला था, उसके मरे बिना सारी जायदाद पर कब्जा कैसे हो सकता था।

मोदी मन में तो इन्हीं विचारों से हँसरहा था मगर ऊपर रो रो कर कान फाड़े डालता था।

खैर अब लड़की के दुखः में शामिल होने के लिये मोदी की तैयारियाँ होने लगीं और दोनों लड़की के दुख से हाथ बटाने के लिये उसके घर पहुँचे।

मोदी जी ने सोचा था कि जाते ही सारी जायदाद हाथ में आ जायगी और हमारी गरीबी का जन्म भर के लिये काला मुंह हो जायगा फिर क्या है चैन ही चैन है। मगर जाते ही मोदी जी को अपनी भूल मालूम हो गई।

भला मोदी को क्या मालूम था कि चम्पा अब वह चम्पा नहीं रही वह अब इश्क बाजी में एम. ए. पास हो गई है और यह सब वहां के गुंडों की करतूतों का फल है। यह देखकर मोदी जी बड़े चकित हुए मगर क्या कर सके थे यों तो इनने बहुत जोर मारा लेकिन उससे इनकी जिन्दगी ही खतर नाक बनगयी अगर ये दो चार दिन वहां और रहते तो इनकी जिन्दगी बचती या नहीं यह कौन कह सका है।

लेकिन खेद कि मोदी जी पूछ दबा कर जल्दी भागे।

[४]

इस घटना को बीते चार वर्ष हो गये मगर न मोदी ने चम्पा की खबर ली न चम्पा ने मोदी की।

पद्मा पंद्रह वर्ष की हो गई मोदी जी बाट देख रहे थे कि अब कहीं से कोई बुड्ढा फिर मिलता तो अच्छा रहता। आखिर एक दिन मोदी का भाग चल कर एक सत्तर वर्ष का बुड्ढा दामाद बनने को मिला बुड्ढे का नाम था बधिक लाल।

बधिक लाल चार पांच लाख का आसामी था इस लिये कुन्दन मोदी को इससे बहुत कुछ आशा थी रीति रिवाज के अनुसार बातचीत होकर चार हजार में सौदा पटा मगर शर्त यह थी कि विवाह में रंडी नचाने का निषेध न किया जाय। कुन्दन मोदी ने इसे मंजूर किया।

इस बात के फैलते ही समाचार पत्रों में बड़ा विरोध हुआ मानों कागज काला किया गया लेकिन दोनों वीरों ने " अर्थी दोषं न पश्यति " इस कहावत का बुरी तौर से पालन किया।

बीच २ में जब बधिकलाल ने मोदीजी का हृदय जानना चाहा तब मोदीजी ने बड़े अभिमान के साथ यही उत्तर दिया

चन्द्र टरै सूरज टरै टरै जगत व्यवहार।
पर मोदी के हृदय का टरै न एक विचार॥

इस बात के सुनते ही बधिकलाल फूला न समाया।

[५]

एक सजे हुए कमरे में दो कुर्सियां पड़ी हुई हैं एक पर एक खूबसूरत जवान दूसरी पर एक सुन्दरी बैठी है सुन्दरी ने युवक से कहा प्यारे? मुझे यह जूता तो बहुत पसंद आया मगर वह दूसरी चीज कहां है।

युवक ने अपराधी की भांति सिर खुजलाते हुए कहा भूलसे वह चीज रह गई है माफ करो कल अवश्य आजावेगी।

युवती बोली देखना कल भी ऐसी ही भूल न होजावे।

युवक ने सिर हिलाते हुए कहा अजी क्या मैं बच्चा हूं जो बार २ भूल जाऊँगा तुम्हारे लिये

तो आज भी कुर्बान है फिर भला यह तो चीज ही क्या है।

इसके बाद क्या हुआ इसके कहने की जरूरत नहीं हां थोड़ी देर बाद युवक चला गया युवती अकेली रहगई युवती बैठी २ उसी जूते को देख रही थी कि सहसा उसकी नजर उसी कागज पर पड़ी जिसमें लपिट कर वह आया था जब उसने पढ़ा तो मालूम हुआ कि "वह किसी दैनिक पत्र का नूतन प्राय अंक है"

लेकिन न मालूम सहसा उसका मुख क्यों मुरझा गया गुलाबी गालों पर स्याही क्यों पुत गई वह हाय सांस भर कर बोली हाय पद्मा का भी सर्वनाश।

[६]

मोदीजी के यहां बरात आई लड्डुओं पर हाथ मारने वाले पंच लोग सभाओं के मंच पर वृद्ध विवाह का जोर शोर से निषेध करने वाले वाग्वीर, और उसके विरोध में पत्रों को काले करने वाले सम्पादक, कवि कल्पक, गल्पक सल्पक, सभी इकट्ठे हुए और लगे कन्या बलिदान के खून से हाथ रँगने।

रात्रि के समय महफिल सजी, जहां पर बूढ़े और बालक, बाप और बेटा, गरीब और अमीर, मूर्ख और पंडित, सभी एकत्र हुए।

महफिल खचा खच भर गई वेश्याओं का नाच गान शुरू हुआ ही नहीं कि उनका पाउडर सुशोभित मुख देख कर वाह २ की आवाजें आने लगीं औरों के गाने होने के बाद दुल्हा ने कहा " अब चमेली जान को बुलाओ अन्त में चमेली जान पधारीं।

महफिल के लोग तो उसका रूप देख कर यों ही मस्त होरहे थे ऊपर से उसके गाने ने कमाल ही किया एक बाघ बूढ़े ने झूमते २ कहा वाह! चमेली वाह !!

चमेली—चमेली नहीं चम्पा,

वृद्ध—एँ चम्पा ?

चमेली—हां! हां! चम्पा, वही चम्पा जिसे तुमने एक दिन बेटी समझ गोद में बैठा कर खिलाया था चम्पा की दशा तो देख ली अब पद्मा की भी देख लेना।

बात सुनते ही कोई २ लोग तो लज्जा के मारे गड़ गये कोई २ भाग गये कुछ युवकों ने बुड्ढे बधिक पर जूतियां बरसाकर अपने मनकी की, बेचारा किसी तरह जान बचाकर भागा। रंग में भंग हो गया।

[७]

सबेरे पंचों को—उन्हीं पंचों को जो रात में शादी में शरीक होने गये थे बिचारे मोदी को दंड देने की सूझी मगर घर आकर देखा गया कि वे दोनों मरे पड़े हैं इसी समय खबर मिली कि चम्पा ने विष खा लिया है उसकी बगल में यह पत्र पड़ा हुआ पाया गया।

"मुझे अपने जीवन से घृणा होगई थी ऐसे समय में मेरा जीवन दुखप्रद था, इन सब कुकार्यों की जड़ मेरे माता पिता ही हैं लेकिन उनके हाथ भी खून से खाली नहीं है जो पंच बन कर लड्डू खाने के लिये ऐसे विवाहों में शामिल होते हैं या ऐसे विवाहों के रोकने में पूरी शक्ति नहीं लगाते। तीसरे मेरा भी अपराध कम नहीं है जिसने विवाह के समय सत्याग्रह न किया, मैं जानती थी; कि यह सब अच्छा नहीं होरहा है फिर भी मैं लज्जावश मौन रही

भले ही लज्जा स्त्रियों का भूषण है मगर ऐसे समय में दूषण हैं खैर जो होना था सो होगया अपने २ पापों का फ़ल सबको मिल रहा है और मिलेगा"

पत्र पढ़कर एक ने कहा अनर्थ होगया।
दूसरा बोला "अब भी चेतें तब तो"

'निहोरा'

जीवन की है साध शेष क्या,
संग जीव के ही जावेगी,
वर्धमान! क्या तेरे शुभ दर्शन की
घड़ी नहीं आवेगी !
अपनी मंजुल छबि दिखलाजा।
आजा प्रभु क्षण भर को आजा॥
तूने जब मुझ को बिसराया,
तब मैंने भी तुझे भुलाया,
तेरा क्या बिगड़ा, पर मेरी
व्यर्थ हुई यह मानव काया;
समता मानवता सिखलाजा।
आजा प्रभु क्षण भर को आजा।
पतित हुआ तो पावन करदे
पद रज मेरे शीष लगाजा,
काम क्रोध मद मत्सर हिंसा
द्वेष मोह के भूत भगाजा,
मुझ बिगड़े को आज बनाजा।
आजा प्रभु क्षण भर को आजा॥

"पतितात्मा"

जाति सुधार के लिये व्यक्तिगत कर्त्तव्य का महत्व और आवश्यकता

(लेखक—श्रीयुत गुलाबचन्द्रजी वैद्य अमरावती)

आज कल जैन समाज में जातीय उन्नति या सुधार की बाढ़ बहुत व्यापक और तेजी से फैल रही है। यह बड़े हर्ष की बात है। उसी का फल स्वरूप हमारी "परवार सभा" की स्थापना, संघटन और कार्यवाही है। सबसे पहले हमें जाति क्या है? हमारा और हमारे परिवार (कुटुम्ब) को जाति से क्या सम्बन्ध है? इस बात को जान लेने की प्रत्येक व्यक्ति को जरूरत है। बाद में जातीय सभा का कर्त्तव्य क्या है? उसका कर्त्तव्य कहां तक मर्यादित रहता है? उसके कर्त्तव्य के बाद परिवार और व्यक्ति का भी कुछ कर्त्तव्य शेष रहता है या नहीं? व्यक्तिगत कर्त्तव्य की जिम्मेवारी जाति में किसके लिये कितनी है इत्यादि बातों का इस लेख में तात्विक विवेचन किया जायगा। आशा है, परवार बन्धु इस पर अवश्य विचार करेंगे।

जाति क्या है?

यह बात मामूली लिखा पढ़ा बच्चा भी समझ सकता है, कि समुदाय को ही जाति कहते हैं। फिर चाहे वह समुदाय किसी बात का क्यों न हो। समानता सूचक शब्द को ही जाति कहते हैं। जैसे—अनेक पशुओं के समुदाय में घोड़ा, बैल, भैंस, बकरी आदि के समुदाय को अश्व जाति, वृषभ जाति, इत्यादि। अर्थात् अनेक पशुओं में अश्व जाति से एक विशेष प्रकार की पशु जाति का बोध होता है और अनेक घोड़ों

का भी सामान्य रूप से खयाल होजाता है। इसी प्रकार मनुष्य की भिन्न२ जातियों के निर्देश से किसी विशेष मनुष्य जाति का बोध होता है और उस जाति के अंतर्गत अनेक व्यक्तियों का भी सामान्य रूप से बोध हो जाता है। विशेष२ भेदों के अनुसार सामान्य भी संकुचित होता जाता है संकुचित सामान्य ही विस्तृत सामान्य का विशेष हो जाता है। मनुष्य जाति का विशेष वर्तमान में राष्ट्र है (पहले आर्य, मलेच्छ और आर्य का, वर्ण विशेष था) और राष्ट्र के विशेष धार्मिक संप्रदाय (समाज) तथा भिन्न२ जातियां हैं। अगर हम अपने को राष्ट्र की अपेक्षा भारतीय या हिन्दुस्थानी, धर्म या समाज की अपेक्षा जैनी और भिन्न जातियों की अपेक्षा परवार कहें तो कुछ भी अनुचित नहीं है। कहने का तात्पर्य यही कि एक व्यक्ति भी भिन्न २ सामान्य की दृष्टि से उत्तरोत्तर व्यापक समुदाय का अंश कहलाने का अधिकारी है। इसी प्रकार व्यक्ति अपने विशेष व्यक्तित्व के कारण भिन्न २ विशेषों के सामने अपने में जाति, धर्म और देश के समुदायिकत्व को ग्रहण करने का भी अधिकारी है। जैसे कि एक परवार जापान में है। वहाँ उस व्यक्ति विशेष को ही जापानी सामान्य रूप से समझ सकते हैं। कि हिन्दुस्थानी जैनी परवार ऐसे होते हैं। ऐसे स्थान में एक व्यक्ति पर ही देश, धर्म और जाति के सामान्यता का भार रहता है, वह अपने विचार और कृतियों से उन लोगों को ऐसा भी प्रतीत करा सका है, कि हिन्दुस्थानी जैनी परवार बहुत अच्छे होते हैं या बहुत बुरे होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ, कि किसी खास समुदाय का पूण सामुदायिकत्व भी कभी २ एक व्यक्ति तक आ पहुँचता है। ऐसी हालत में जाति क्या है, इस बातकी जिज्ञासा हमें यह विदित करती है, कि व्यक्तियों को छोड़कर जाति कोई स्वतंत्र चीज नहीं है। बल्कि अनेक व्यक्तियों का समुदाय ही जाति है। व्यक्ति उसका एक अखण्ड परमाणु के बतौर है। यही जाति का सब से सूक्ष्म किन्तु महत्व पूर्ण अंश है। जिसके आपसी सम्बध से परवार रूपी स्थूल स्कंध बनता है।

हमारा और हमारे परिवार का जाति से क्या सम्बन्ध है।

"परवार" शब्द से परिवार का अपभ्रंश ज्ञात पड़ता है। वर्त्तमान समय में जो कुछ परवार समुदाय है, वह प्राचीन काल में किसी वर्ण विशेष का एक बड़ा परिवार (कुटुम्ब) रहा होगा। वही बड़ा परिवार आज परवार जाति के रूप में परिणत हो गया है। अर्थात् एक बड़े परिवार (कुटुम्ब) के आज छोटे २ हजारों कुटुम्ब (परिवार) हो गये हैं। इस बात का अंदाज परवार जाति के मूर गोत्रों से थोड़ासा हो जाता है। कोई भी अपरिचित दूरवर्ती प्रांत के रहने वाले क्यों न हों, अगर वे दोनों परवार हैं। तो परस्पर का मूर गोत्र पूँछने पर कोई न कोई रिस्ता (नाता) उनमें निकल आता है। ऐसा अन्य जातियों में बहुत कम सम्बन्ध निकलता है। दूसरी जातियों में ऐसे ही निकलेगा कि आप फलाने के फलाने हो और हम फलाने के फलाने हैं अतएव आप से हमारी यह रिस्तेदारी है। परन्तु परवार जाति में कोई न कोई रिस्तेदारी अनजान आदमी से मूर गोत्र पूंछने पर निकल आती है। पूर्वजों के मूर गोत्रों के प्रचार का प्रयोजन भी शायद यही था, कि भविष्य में कोई भी व्यक्ति अपने से अन्य अपरिचित व्यक्ति को भी कौटुम्बिक सीमा के बाहर का

न समझे क्योंकि उन्हें यह ज्ञात था, कि यह जाति प्राचीन काल में एक बड़े कुटुम्ब से पैदा हुई है और इसका कुटुम्बी (पारिवारिक) प्रेम परस्पर विभक्त होने पर भी चिरकाल तक दृढ़ बना रहै, इसीलिये मूर गोत्रों की उत्पत्ति या प्रचार हुआ ऐसा अनुमान होता है। मूर गोत्र की उत्पत्ति या प्रारंभ भी उस समय से है, जब कि वह बड़ा परिवार १४४ कुटुम्बों में विभक्त हो कर अलग २ बारह ग्रामों में बस चुका था। वर्तमान परिवार जाति के कुटुम्ब होने का अनुमान इन बातों से और भी पुष्ट होता है। कि वर्तमान में कई कुटुम्ब परवार जाति में ऐसे दिखाई देते हैं जो हाल में कोई कहीं और कोई कहीं निवास करते हैं उन में भी कोई धनी और कोई निर्धन हैं। इस समय उनमें कोई २ का सोर सूतक नहीं टूटा और किसी २ का टूट भी गया है परन्तु पुराने-वृद्ध-पुरुषों से (जो उन विभक्त कुटुम्बियों की पूर्व पीढ़ियों को आँखों से देख चुके हैं) ज्ञात होता है, कि (यद्यपि ऐसे विभक्त कुटुम्ब परस्पर को नाम मात्र भी धन-स्वार्थ पूर्ती-या पूर्व हालत से भ्रष्ट होने के कारण पहचानने तक नहीं, परन्तु उनके पूर्वज एक पिता की संतान हैं और एक ही घर में रहने वाले हैं। आज समय के फेर से आजीविका के निमित्त कोई कहीं कोई कहीं आ बसे हैं। जिनका पूर्व-पुण्योदय था वे जाति में धनवान देख पड़ते है और जिनका अशुभोदय था वे पौरुषहीन होकर निर्धनता के पंथ में चल रहे हैं। ऐसे बीसों कुटुम्बी परवार जाति में देख पड़ते है जिनकी दो तीन पीढ़ियों के पेश्तर एक ही गृह में रसोईयाँ बनती थीं और साथ में व्यापार करते थे, बल्कि उनके पूर्वज एक ही माता पिता के जाए थे। आज वे किसी कारण से अपने कुटुम्बियों के साथ कौटुम्बिक प्रेम निवाहना तो दूर रहा जातीय प्रेम को भी हलकी नजर से बर्ताव करते आते हैं और कोई कोई तो पहचानते तक नहीं। जाति में जब कौटुम्बिक (पारिवारिक) सम्बन्ध की यह स्थित है तब जातीय प्रेम की बात तो कोसों दूर है। प्रत्येक परवार बन्धु परवार जाति को जाति ही नहीं किन्तु प्राचीन काल के एक बड़े कुटुम्ब रूपी वृक्ष शाखा प्रशाखा वर्तमान भिन्न २ परिवार को माने और जाति के प्रत्येक व्यक्तियों से ऐसा प्रेम सम्बन्ध हृदय में दृढ़तम रखें, कि जैसा किसी आदर्श कुटुम्बियों में या भाई भाईयों में परस्पर होता है। व भिन्न २ परमाणुओं का एकीकरण ही स्थूल स्कंध स्वरूप धारण करता है जहाँ ऐसा एकीकरण नहीं वहाँ स्थूल स्कंध का सद्भाव नहीं के बराबर रहता है। उसी प्रकार जिस जाति और परिवार रूपी स्थूल और सूक्ष्म स्कंध में व्यक्ति रूपी परमाणुओं का प्रेम रूपी तादात्म्य या एकीकरण नहीं है। तब तक वह सूक्ष्म स्कंध (परिवार) स्थूल स्कंध (जाति) और नाम को प्राप्त ही नहीं हो सका परन्तु हमारे कहने का यह तात्पर्य भी नहीं है, कि व्यक्ति के प्रेम रूपी तादात्म्य से व्यक्तित्व का अभाव हो जाता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व तो रहता ही है, किन्तु वह अपने प्रेम विकाश के कारण परिवार और जाति के साथ स्वतंत्र सत्ता रखते हुए भी तन्मय सा हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का जिस प्रकार अपने कुटुम्ब के साथ प्रेम रूपी एकीकरण रहता है उसी प्रकार जाति के प्रत्येक कुटुम्ब के व्यक्तियों पर वही प्रेम रूपी एकीकरण कुटुम्बवत् प्राप्त हो जाता है। जिस व्यक्ति का पारिवारिक

और जातीय प्रेम का प्रादुर्भाव नहीं वह व्यक्ति परिवार हीन और जाति हीन ही समझना चाहिये। प्रेम ही के विकाश से मनुष्य परिवार या जातीय एकीकरण को प्राप्त होता है। अगर जिस परिवार या जाति के अंतर्गत व्यक्तियों में इस प्रकार का एकत्व नहीं है वह परिवार या जाति मृतक तुल्य है—नहीं के बराबर है। व्यक्ति और परिवार जाति के अंग प्रत्यंग हैं अतः प्रत्येक व्यक्ति और परिवार की उन्नति पर ही जाति की उन्नति अवलम्बित है। अगर एक भी अंग प्रत्यंग दुःखी और कष्टी हो तो जिस प्रकार सारे शरीर में पीड़ा का अनुभव होने लगता है, उसी प्रकार जाति का एक व्यक्ति और परिवार अगर अवनति स्थिति में पड़ा हो तो जाति रूपी शरीर को प्रत्येक परिवार और व्यक्ति रूपी अंग प्रत्यंग पर उसका परिणाम होना ही जीवित जातीयता का लक्षण है। यह बात तभी हो सक्ती है, जब कि प्रत्येक व्यक्ति जातीयता के भावों को अपनी व्यक्तिगत कृतियों में परिणत करें। अन्यथा जातिकी उन्नति के बड़े२ भाव लोगों को दिखलाने में और सामुदायिक रूप से जाति की उन्नति में तन, मन, धन की आहुति-प्रख्यात होने की अपेक्षा रखते हुए—देने में कोई कितना ही आगे क्यों न बढ़े, यदि उसकी व्यक्तिगत कृतियाँ जरासी बातों में जातीयता के प्रतिकूल हैं तो वह मनुष्य जाति को धोखा देने वाला, धूर्त और मायाचारी के सिवा क्या हो सक्ता है? इसीलिये हम कहते हैं, कि जातीय सुधार के लिये प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत जीवन क्रम में ही जातीयता के अनुरूप सुधार करने की जरूरत है।

जातीय सँस्था का कार्य।

जातीय सँस्था (सभा) का सब से बड़ा कार्य यही है, कि वह जातीयता के भावों को प्रत्येक व्यक्तियों के हृदय में विकसित होने का प्रयत्न करे। यदि इसमें उसे सफलता प्राप्त हुई तो समझिये उसने जातीय संगठन कर डाला। वरना संगठन का बाहरी प्रयत्न चाहे जैसा करे, उसमें आन्तरिक सफलता हो सकना संभव नहीं। किन्तु आन्तरिक सफलता के प्रयत्न से बाहरी सफलता बहुत शीघ्र हो सकती है। जातीय संस्था का दूसरा कार्य यह है, कि अंतर्गत व्यक्तियों को चलने का मार्ग सामान्य रूप से प्रदर्शित करे जिसमें व्यक्तित्व भी नष्ट न हो और न सामुदायिक एकत्व ही भंग हो। तीसरा कार्य सामुदायिक उन्नति के लिये आवश्यक और उपयोगी अन्यान्य संस्थाओं को स्थापित करे और चलावे। चौथे सब पंचायतियों का केन्द्र बन कर आपसी झगड़े, फूट और कुरीतियों का निवारण करे। उक्त चार कार्यों के भीतर ही जातीय सभा के अन्यान्य छोटे मोटे कार्य गर्भित हो जाते हैं। व्यक्ति गत सुधार कार्य जातीय सभा की कार्य सीमा के बाहर का है। इस विषय में जाति के समुदाय को उत्तेजना देना और असमर्थों को प्रारम्भिक सहायता करना ही उसका कर्तव्य रह जाता है। जातीयता का व्यक्तिगत कर्त्तव्य प्रत्येक व्यक्ति पर ही निर्भर है। जो व्यक्ति ऐसी आकांक्षा रखते हों, कि जातीय सभा हमारा या हमारे परिवार का सुधार करे, उसको हमारे सुधार की या दुःख दर्द की फिकर करना चाहिये, इतनी बड़ी सभा हुई पर हमारा तो कोई भी उससे हित नहीं हो रहा है इत्यादि वे बड़ी गलती पर हैं। वे ऐसी आकांक्षा के

वशीभूत होकर वे अपने रहे सहे पुरुषार्थ को भी खो बैठते हैं। ऐसे लोगों को चाहिये कि वे अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक सुधार में स्वयं कटिबद्ध रहें। जो अज्ञानी हैं वे ज्ञान बढ़ाने का प्रयत्न करें। जो निष्कामी हैं वे उद्यम करने का प्रयत्न करें। जिनमें जो २ त्रुटियां हैं वे उन त्रुटियों को खुद दूर करने में प्रयत्न शील हों। व्यक्तिगत या पारिवारिक अभाव को व्यक्ति या पारिवारिक उन्नति जातीय उन्नति पर निर्भर नहीं, किन्तु जातीय उन्नति व्यक्तिगत और पारिवारिक उन्नति पर निर्भर है। अगर जाति का प्रत्येक व्यक्ति और परिवार अपने जातीयता के कर्त्तव्य पर पहले ध्यान देकर कार्य में प्रवृत्त हो जाय तो जाति का बहुत कुछ कार्य हो चुका। जाति सभा का कर्त्तव्य प्रत्येक व्यक्ति और परिवार का ध्यान उन्नति पथ में प्रवृत्त होने के लिये आकर्षित करना ही तो है। यह बात अलग है, कि वह जाति के धनवानों से धन लेकर गरीबों की उन्नति में लगावें। किन्तु यह उसके हाथ की बात नहीं। यह धनवान व्यक्तियों का व्यक्तिगत कर्त्तव्य है। कि जातीयता के भावों से प्रेरित होकर जाति उन्नति के कार्य में सभा द्रव्य प्रदान करें। इसलिये हम भी व्यक्तिगत कर्त्तव्य को जातीय सभा के कर्त्तव्य से विशेष महत्व का बतला रहे हैं। व्यक्तिगत कर्त्तव्य की जिसने पूर्ति की उसने जाति सुधार में अवश्य योग दे दिया। किन्तु जो जातीयता व्यक्तिगत कर्त्तव्य की तो अवहेलना करें और जातीय सुधार के कार्यों में प्रवृत्त होकर सभा के बड़े बड़े पदों को ग्रहण करें, ऐसे व्यक्तियों पर व्यक्तिगत कर्त्तव्य की सब से अधिक जिम्मेवारी है। और ऐसे लोग जब तक अपने व्यक्ति कर्त्तव्य का पूर्णतया पालन नहीं करते तब तक अन्य लोगों को जातीय सभा भी गजरथ इत्यादि के समान ख्याति या प्रसिद्धि का एक प्रकार मालूम दे सकता है। अतएव समस्त जातीय सभा के सम्पूर्ण श्रीमान कार्य कर्त्ताओं का लक्ष्य व्यक्तिगत कर्त्तव्य पर आकर्षित करना चाहते हैं। कि वे अपने व्यक्तिगत कर्त्तव्य पर विचार करें। कि हम जातीयता के उदार भावों को पुष्ट करते हुए भी उसकी पूर्ति अपने व्यक्तिगत जीवन में कितनी कर रहे हैं। इस प्रश्न पर अधिक श्रीमान् रुष्ट होकर यह उत्तर दे सकते हैं, कि "हम आप होकर तो जातीय कार्य में सम्मिलित होते ही नहीं लोग हमें खींच २ कर सामने लाते हैं, अगर हम उनकी बात न मानें तो उधर से भी लोग नाम रखने के लिये तैयार होजाते हैं, ऐसी हालत में हम से जो कुछ बन पड़ता है दे देते हैं वरना हमारी आन्तरिक इच्छा इन सभा सुसाइटियों के काम में पड़ने की नहीं रहती।" इन उत्तरों से समाज के अधिकांश भी संतुष्ट हो जाते हैं कि सम्मिलित न होने से तो किसी तरह ठोक पीट कर भी ऐसे व्यक्तियों का सम्मिलित होना और नहीं तो आर्थिक दृष्टि से तो लाभदायक ही है। धीरे २ ये ही श्रीमान् लोग चेतेंगे और कुछ उन्नति होगी इसे हम भी स्वीकार करते हैं। तथापि जब बार २ की प्रेरणा और आग्रह से ये लोग धार्मिक सामाजिक तथा जातीय कार्यों में बिना रुचि के सम्मिलित होकर भी यथेष्ट आर्थिक सहायता करते हैं, तब हमारी बार २ की प्रार्थना से इनका चित्त जातीयता के लिये आवश्यक ऐसे व्यक्तिगत कर्त्तव्य पालन में तत्पर न होगा? अवश्य ही होगा। ऐसा हो ही नहीं सकता कि इनमें कभी भी व्यक्तिगत कर्त्तव्य पालन की स्फूर्ति ही न हो यदि यह बात असंभव है तो जाति उन्नति की चेष्टा भी ढकोसला मात्र ही है। अगर जाति को जीवित

रखने की और उसे ऊँचे शिखर पर पहुंचाने की शक्ति है, तो धनिक आज विद्यमान हैं। वे ही जाति के गरीब लोगों के सच्चे आदर्श और शिक्षक हैं। वे चाहें तो अपने जातीय व्यक्तिगत कर्त्तव्य का पूर्णतया पालन करके जाति का शीघ्र ही उद्धार भी कर सकते हैं और वे ही अपने नीच आदर्श से जाति को मिट्टी में मिला सकते हैं। मिला सकते ही नहीं बल्कि मिला रहे हैं।

समस्या पूर्तिएं

(लेखक—श्रीयुत व्याकरण भूषण पं० कामताप्रसाद जी गुरु एम, आर, ए, एस, ।)

[१]

पीड़ित लाख विरोधी करें,
उत्साह में आलस नेकु न पै है।
जो विधि देत घने दुख है,
फिर सोई हमें सुख के दिन दै है।
शत्रु न भूल्यो रहे भ्रम में,
निज पातक को फल अंत में पै है।
हारि रहे हम हैं असहाय,
तऊ मनते जय "आस न जै है"।

[२]

न तो जाति में प्रेम गम्भीरता है।
न ऊंची कहीं धर्म की वीरता है॥
भरी दुर्दशा से हमारी कथा है।
अकर्मण्यता ही "बढ़ाती व्यथा" है॥

[३]

निर्णय की शक्ति नहीं, हृदय में भक्ति नहीं,
वाणी में प्रभाव नहीं बल है न अंग में।
धर्म की न टेक निज प्रण का न मान कछु,
साहस का नाम नहीं सार है न ढंग में॥
आपे ही में मस्त सदा साधक हैं स्वार्थ ही के,
रहते हैं पगे हुए नाम की उमंग में।
ऐसे भी अगात्र कई बाबू के भरोसे पर,
नेता बन बैठते हैं धन की तरंग में॥

कुल्हाड़ी के बेंट के प्रति।

(ले०—श्रीयुत पं० श्यामलाल जी पाठक साहित्यशास्त्री)

बनकर साथी बैरी का तू, फूला नहीं समाता है।
अरे निगोड़े, अपने हाथों, अपने को कटवाता है॥
आत्म-द्रोह करने में तुझको, नहीं लाज कुछ आती है।
देख विश्व तुझ पर हँसता है, हँसता तेरा साथी है॥
देखो, ईंधन तेरा भाई, पर-हित होता है बलिदान।
निज जीवन से सतत बढ़ाता, आत्म-जाति का यश-सम्मान॥
अरे बेंट धिक् तेरा जीवन, धिक् तेरा विधि-कृत-नाता।
क्यों तू नहीं वार करने में, स्वयं आप बलि हो जाता॥

दन्तधावन-विधि।

(लेखक—आयुर्वेदाचार्य पं० अभयचन्द्र जी काव्य तीर्थ)

दांतों और मुख के भीतरी बाहरी भाग का स्वच्छ रखना स्वास्थ्य रक्षा का एक प्रधान अंग है। क्या पशु क्या मनुष्य सभी के पास दांत अमूल्य और जीवनोपयोगी वस्तु है। दांतों के नीरोग रहने से मनुष्य भले प्रकार से भोजन को चबा सकता है और पाचक रस का भले प्रकार से भोजन में मिश्रण कर सकता है जिससे कि भोजन का ठीक परिपाक होता है और वह शरीर की बल वृद्धि करता है। दांतों का महत्व युवक पुरुषों की दृष्टि में भले ही कुछ भी न हो क्योंकि

सदैव प्रकाश में रहने वाले को प्रकाश का महत्व नहीं मालूम पड़ता है; परन्तु वृद्ध पुरुष हैं जिन्होंने कि दोनों दशाओं का अनुभव किया है भले प्रकार जानते हैं कि दाँत प्रकृति माता से प्रदान की हुई अपूर्व न्यामत है वृद्धावस्था में जब दाँत हिलने लगते हैं व युवावस्था में ही प्राकृतिक नियमों का भलीभाँति पालन न करने से दाँतों में अनेक तरह की पीड़ायें होने लगती हैं उस समय जो असह्य दुःख होता है और समय बचन का क्षय होता है उसको वही जानते हैं। दाँतों के गिर जाने पर तो भोजन का कुछ स्वाद भी नहीं मालूम पड़ता मिट्टी जैसा मालूम पड़ता है जिन चीजों के खाने से अपूर्व आनन्द मिलता था अब दाँतों के गिर जाने के कारण उन चीज़ों को खाने में असमर्थ हैं अतः उनके लिये हमेशा तरसते रहते हैं इसलिये दाँतों का स्वच्छ रखना उनमें कोई रोग पैदा न होने पर उनका उचित प्रतीकार करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है. यह आदत यदि बच्चों में बाल्य काल से ही डालदी जाय तो फिर वे इसके पूर्ण अभ्यासी हो जाते हैं जिससे कि भावी अनेक विपदा से बचे रहते हैं अतः माता पिताओं और संरक्षकों को इस बात पर हमेशा ध्यान रखना चाहिये। उन अनेक दन्त रक्षा के उपायों में से यहां पर दन्तधावन का विवेचन किया जाता है।

दन्तधावन

रात्रि को सोते समय मुख संचालन जिह्वा संचालन आदि क्रियाओं के बंद होने से व भोजन आदि के सूक्ष्म कण जो जलगंडूष (कुल्ला) आदि के द्वारा भी नहीं निकलते हैं रात्रि भर मुख में बंद रहने के कारण उनमें एक तरह की दुर्गंध पैदा हो जाती है तथा थूँक और कफ के सूखने से भी एक तरह का मल हमेशा बना करता है वह मुख के भीतरी भागों और दातों में जमा होता रहता है इन सब मलों और दुर्गन्धों से मनुष्य के चित्त में एक तरह की ग्लानि पैदा होती है और वह ग्लानि ही दन्तधावन करने के लिये प्रेरित करती है यही कारण है कि प्रत्येक देश में प्रत्येक समाज में दन्तधावन किसी न किसी रूप में पाया ही जाता है। आजकल दाँतों को साफ करने के लिये अनेक तरह की रीतियाँ प्रचलित हैं कोई बब्बूल आदि की ताजी नरम लकड़ी से दाँतों को साफ करते कोई लकड़ी के कोयले के चूर्ण से, कोई विविध औषधियों के चूर्ण से, कोई विलायती पाउडर से, कोई ब्रुश से इत्यादि अनेक प्रकार से दाँतों को साफ करते हैं। इन सब रीतियों में प्रथम रीति सब से उत्तम सुगम अमूल्य और अनेक रोगों का नाश करने वाली है इसी रीति का ही आदेश सुश्रुत आदि महर्षि कर गये है।

तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशांगुलमायतम्।
कनिष्ठिकापरीणाहमृज्वग्रथितमव्रणम्॥
अयुग्मग्रन्थि यच्चापि प्रत्यग्रं शस्तभूमिजम्।
अवेक्ष्यर्तुं च दोषं च रसं वीर्यं च योजयेत्॥
कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुत्थितः॥

प्रातः काल उठकर मलमूत्र त्याग करने के अनन्तर १२ बारह अंगुल लंबी छिंगरी के बराबर मोटी सीधी गाँठ रहित जिसमें कीड़े न लगे हों, एक साथ जिसमें दो गाँठें न हों ताजी स्वच्छ जगह में पैदा हुई दातुन को ऋतु, दोष, तथा दातुन के रस, वीर्य का विचार करके कषाय मधुर तिक्त और कटु रस वाली दातुन को करे।

प्रतिदिन ताजी दातुन करने से दांत सुडौल होते हैं मुख में किसी तरह की दुर्गंध नही आती चित्त प्रसन्न रहता है। ऐसा प्रत्यक्ष देखने में भी आया है कि दातुन का कषाय रस संकोचक होने से जो दांत मसूड़ों के ढीले पड़जाने से हिलने लगते हैं थोड़े ही दिनों तक मौलसिरी की दातुन व खैर, बबूर की दातुन प्रतिदिन करने से मसूड़ों का मांस संकुचित हो जाता है और दांतों का हिलना बंद हो जाता है।

उपर्युक्त प्रमाण वाली दातुन को लेकर विशुद्ध जल से कुल्ला करे बाद में उसको दाँतों से धीरे २ चबावे जिससे कि मुलायम कूंची बन जाय यह कूंची पत्थर आदि से भी कूटकर बनायी जा सकती है परन्तु दांतों से चबाकर बनाने में कुछ विलक्षण ही रहस्य है वह यह है कि चबाते वक्त दांतों के ऊपरी भाग में रगड़ होने से वहां का मल साफ हो जाता है अतएव कूंची चबाकर ही बनाना चाहिये उस कूंची से धीरे २ मसूड़ों को बचा कर एक २ दांत घिसना चाहिये। बहुत से आदमी मसूड़ों की कुछ परवाह न कर ऐसे ज़ोरों से दाँतों को घिसते हैं जिससे प्रतिदिन पैसे दो पैसे भर खून निकल जाता है इस तरह से घिसना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा हमेशा करते रहने से दाँतों की जड़ें कमज़ोर हो जाती हैं और दाँत हिलने लगते हैं जिससे कि दन्त-चाल वैदर्भ आदि अनेक रोग पैदा होजाते हैं और अन्त में दांतों से हाथ धोना पड़ता है।

आचार्य वाग्भट ने लिखा है—

घृष्टेषु दन्त मांसेषु संरम्भो जायते महान् ।
चला भवन्ति दन्ताश्च स वैदर्भो ऽभिघातजः ॥

दाँतों के मांसों (मसूड़ों) के घिस जाने से अत्यन्त सूजन और जलन होकर मसूड़े पक जाते हैं जिससे कि पीव बहने लगती है दाँत भी हिलने लगते हैं इसी को दाँतुन की रगड़ के आघात से उत्पन्न होने वाला वैदर्भ नाम का रोग कहते हैं। पूर्व महर्षियों का कथन है कि 'मणि-मंत्रौषधयो ह्यचिन्त्यप्रभावाः' हीरा आदि मणि-णामोकारादि मंत्र और सहदेवी आदि औषधि-यों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। बहुत से आदमियों को ऐसी शंकायें बिना ही किसी विषय में पूर्ण अनुभव किये होने लगती है कि अमुक औषधि अमुक जड़ी तो घास है उसमें इस रोग को इतने शीघ्र नाश करने की शक्ति कहा से होगी परन्तु उनका यह कहना अविचा-रितरम्य है क्योंकि आजकल के जमाने में भी औषधियों के प्रभाव को प्रत्यक्ष दिखलाने वाले अनेक महानुभाव विद्यमान हैं दातुन के विषय में भी पुरातन महर्षियों ने कुछ ऐसे फायदे बतलाये हैं जिनमें शंका हो सकती है परन्तु शंकित महाशय यदि इस विषय का कुछ काल तक अनुभव करें तो उनको अवश्य ही मालूम हो जावेगा कि यह बात सर्वथा सत्य है।

आचार्यों का अनुभव है कि आक की दातुन करने से वीर्य बढ़ता है, वट वृक्ष (वड़) की दातुन करने से दीप्ति बढ़ती है, खैर की दातुन करने से मुख में सुगंधता आती है, कदंब तथा चिरचिटा की दातुन करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है, चंपे की दातुन करने से कोयल के समान मधुर स्वर होता है और तोतलापन मिटता है श्रवण शक्ति बढ़ती है जिनयसार की दातुन करने से बुद्धि तेज होती है, चमेली, तगर और आक की दातुन करने से दुःस्वप्न मिटते हैं, अपूर्ण

" अनोखा विवाह "

(लेखक—श्रीयुत पं० कुंवरलाल जी न्याय तीर्थ)

(एक सत्य घटना के आधार पर)

(१)

कमाना खाना तो जीवन के संग है, हमने इतना कमाया और गमाया भी परन्तु अब यह बचा खुचा माल-मता किस काम में आवेगा, घर सूना पड़ा है आंखें मिचीं (मृत्यु हुई) कि लोग माल ले २ कर भगेंगे, मरने के बाद नाम लेने वाला और बीमारी में पानी देने वाला भी कोई नहीं है, माना कि हमारे पास धन है, पर आराम नहीं, लोग बात मानते और खातिर करते हैं पर शान्ति और चैन का नाम निशान तक नहीं, कुछ लोग मुझे खाता पीता देखकर सुखी समझते हैं परन्तु मेरे दिल से पूछिये कि सिवाय दुःख के सुख स्वप्न में भी नहीं मिलता। दुनियां में बिना स्त्री के जीना हराम है, न खाने का ठिकाना और न सोने का, न दिन में पेट भर खाया जाता है, और न रात को नींद भर सोया ही जाता है जहां देखो वहीं बेकली ही नजर आती है. ऐसे जीने से मरना ही भला है।

ऐसी बातें ला० दीनानाथ अपनी दुकान पर अकेले बैठे हुए मन ही मन सोच रहे हैं. उनका मन आज ठिकाने नहीं है, सब तरफ निगाह दौड़ाते हैं परन्तु निराशाभरी बातों के सिवाय उन्हें कुछ नजर ही नहीं आता।

इतने ही में लाला गपोड़मल के सुपुत्र दलाल दीनानाथ वहां आ पहुंचे और " जुहारु " करके दुकान पर चढ़ गये, उदास चित्त लाला जी ने उनका स्वागत किया और पास बिठला कर बोले कहो भैया! अच्छी तरह से हो, बाल बच्चे सब मजे में हैं! दलाल दीनानाथ ने कहा हाँ, लाला जी! आप की कृपा से सब कुशल है परन्तु आज आप उदास क्यों हैं? तबियत तो ठीक है न?

(पाठकों को दोनों दीनानाथों के पारस्परिक वार्तालाप के समझने में अड़चन न पड़े एतदर्थ हम पहिले दुःखित दीनानाथ को "लाला" और दूसरे आगत दीनानाथ को "दलाल" इन विशेषणों से विभूषित समझ कर लाला और दलाल के नाम से ही लिखेंगे—लेखक)

लाला—भैया! हमारी तबियत की न पूछो, हम तो जैसे हैं वैसे हैं ही, हमारा होना न होना एक बराबर है, अब तो जीवन बोझा मालूम पड़ता है, तुम ही कहो कि हमारी यह सब धन सम्पति किस काम आवेगी, आँख पसार कर देखते हैं तो बाहिरी—अपने २ मतलब को साधने वाले सैकड़ों नजर आते हैं किन्तु अपना कोई भी दिखाई नहीं देता, अपना सुख दुःख कोई देखने सुनने और पूंछने वाला ही नहीं, अतः तबियत भी अब तो सदा एकसी दुःख पूर्ण रहती है, जीने, और कमाने खाने का कुछ मज़ा नहीं।

दलाल—अजी लालाजी! इतने खेदखिन्न क्यों होते हैं, यदि ऐसा ही सब विचारें तो काम कैसे चले, इस समय आप को सिवाय स्त्री के और सब सुख हैं किसी बात की कमी नहीं है, जैसा चाहो

खाओ पिओ और खुश रहो, रही स्त्री सो यदि आप चाहें तो एक क्या अठारह हो सक्ती हैं आपके हुकम की देर है.

लाला—अरे भैया ! ये सब थोथी बातें हैं, बिना स्त्री के खाना, पीना और खुश रहना कहां है ! जिसके ऊपर बीतती है वही जानता है, तुम क्या जानो, तुम्हारे घर में स्त्री मौजूद है बालबच्चे खेलते कूदते हैं, सब बातों का आराम है अतः तुम सब को अपना सा सुखी समझते हो, यह कहावत भी ठीक कही है कि "जाके पांव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई,, । बात कह देना आसान है पर काम करना कठिन है, तुम अठारह स्त्रियों को कहते हो, किन्तु यदि मैं तुमसे एक स्त्री के लिए ही कोशिश करने की प्रार्थना करूं तो आश्चर्य नही कि तुम इसकान सुनकर उसकान टाल दो.

दलाल—नहीं लालाजी ! ऐसा न समझिये आपके काम को जान हाज़िर है, आपने आज तक हमसे जिक्र तक नहीं की आज आपने इतनी बात कही है अब आप देखें, कि मैं जो कहता हूं वही करके भी दिखला देता हूं मेरी कोरी बातें ही बातें नहीं हैं । (कुछ देर तक चुप रहकर और सोच विचार कर बोले) हाँ ! हाँ ! लालाजी, याद आगई, लीजिये, आपका काम अभी किये देता हूं, परन्तु यह तो बतला दीजिये कि आप बिवाह के लिए कितना खर्च कर सक्ते हैं !

लाला—क्या हमसे भी ठठोली करते हो ! ऐसे क्या तुम्हारी गांठ में ही विवाह बंधे हैं ! क्यों अपने मुँह मियांमिठ्ठ बनते हो ! रही खर्च की बात सो हमारा तुमसे छिपा थोड़ा ही है बिवाह के लिए जो कहोगे, खर्च कर दूंगा

दलाल—वाह लालाजी ! मैंने आजतक आपसे कभी ठठोली की है या आज ही करूंगा आप सच मानिये, आप हमारे यहां के ला० तेजराम को तो जानते होंगे, वे विचारे तो अब नहीं हैं किन्तु उनकी दुलहिन और बिटिया (स्त्री और पुत्री) हैं, बिटिया बड़ी सुन्दर मालूम होती है इस समय उसकी उम्र तो लगभग ११ ग्यारह वर्ष की है किन्तु काम काज में बड़ी होशियार है यदि आपको विवाह हो जायगा तो वह सुखी रहेगी और आप को हर प्रकार से सुखी बनाये रखने की कोशिश करेगी. हमारी राय से तो आप उसके साथ बिवाह करके स्वर्गसुख की भी उपेक्षा करने लगजांयगे यह कार्य बिल्कुल अपने हाथ का समझिये, क्यों कि लड़की की माँ अपने ही कहने में है उससे जो चाहे सो करवा सक्ते हैं और खर्च भी कुछ अधिक नहीं पड़ेगा उस दिन ला० छम्मोमल आये थे ५,०००) पांच हजार रुपये तक देते रहे थे किन्तु मेरी अनुमति न होने से सौदा न पटसका किन्तु हां ? आपके लिये इतने में पक्की समझिये. (इसके बाद दोनों में कुछ कानाफूसी होती रही और अन्त में यह बात निश्चित हुई) खर्च तो इतना अवश्य होगा. किन्तु यह बात अभी जाहिर न की जाय नहीं तो भूल बढ़ने या काम बिगड़ने की सम्भावना है और विचारे

परोपकारी दलाल दीनानाथ ने स्वयं ही कन्या का वारिस बनना भी स्वीकार कर लिया.

क्यों भाई साहब! आज किससटापटी में हो? हमने सुना था कि आ॰ का विवाह है सो क्या हुआ? चलो, सभा में चलें, आज व्याख्यान सुनें देखें क्या २ बातें होतीं हैं यह बात लाला दीनानाथ से उनके एक मित्र ने कही।

लाला—दीनानाथ बड़े उदासमन से बोले, क्या कहें, भैया! सब बना बनाया घर चौपट होगया, दुश्मनों ने नाश कर दिया. बड़ी कठिनाई से तो बात चीत पक्की कर पाई थी सोचा था कि सब काम चुप चाप होजांयगे कोई जानेगा और कोई नहीं, लेकिन यहां तो कुछ और ही मामला आखड़ा हुआ है आबरू भी कठिन है मैं स्वयं तुम्हारे पास सलाह लेने को आने वाला था अतः यदि थोड़ी देर बैठकर मेरी आपत्ति कथा सुनलो और सहायता करने का आश्वासन दो तो मैं आपका सदा ऋणी और आभारी रहूंगा मैं मुसीबत में फंसा हुआ हूं यदि ऐसा जानता, तो विवाह का नाम भी न लेता।

(मित्र महाशय बैठ गये और नीचे लिखे अनुसार बातचीत होने लगी)

मित्र—अच्छा लाला जी कहिये, सभा में जरा देर बाद ही जाऊंगा अभी तो सभा का समय भी नहीं हुआ है, मैं आपके काम को तो आधी रात में भी हाजिर हूं जो बात हो साफ कहिये, मामला क्या है! क्या लड़की की मां कुछ रुपये मांगती है अथवा कुछ और?

लाला—भैय्या रुपये पैसे की तो बात नहीं है, रुपया होता ही किस लिये है, आपको यह तो मालूम ही है कि उस दिन ला॰ गपोड़ेलाल के लड़के दीनानाथ यहां आये थे, बिचारे बड़े अच्छे आदमी हैं उन्होंने लड़की की मां को समझाबुझा लिया था, और मुझ से कुल ५०००) पांच हजार में ही सब काम करवा देने का वायदा कर गये थे, विवाह की मिती भी जेठ सुदी ८ निश्चित होगई थी किन्तु तुम यह जानते हो कि हमसे दुश्मनी मानने वालों की भी कमी नहीं है, और कुछ उपाय न देख कर मेरे दुश्मनों ने गपोड़ेलाल से दरखास्त ही दिलवा दी, कुछ कर कराके वारंट निकलवा दिये मैं तो मैं बिचारे दीनानाथ भी चक्कर में आगये दोनों को हवालात में रहना पड़ा, बड़ी सिफारस के बाद १२००) एक हजार दो सौ रुपया की जमानत पर छूटे हैं अब क्या करना चाहिये, विवाह भी नहीं हुआ, हँसी हुई और बात भी गई बड़ी द्विविधा में हूं इस समय कुछ उपाय बतलाइये।

मित्र—आपने ५०००) वाली बात जाहिर क्योंकर दी? यदि यह जाहिर न होती तो एक दरख्वास्त की तो चली ही क्या, हजारों दरख्वास्तों से भी कोई तुम्हारा बाल बांका नहीं कर सका था, अब तो मुकदमें बाजी छिड़ जायगी फिर न जाने किस करवट ऊंट बैठे, हाँ, यह तो बताओ कि लड़की और उसकी माँ क्या कहती है? वे किस के पक्ष में हैं!

लाला—बात ज़ाहिर क्या मैंने करदी? न जाने छिपाने की इतनी कोशिश करने पर भी कैसे प्रगट होगई! दीनानाथ ने भी छिपाने में कम कोशिश नहीं की किन्तु क्या करें! कुछ समझ में नहीं आता कि यह भण्डाफोड़ क्यों हो गया? और मुकद्दमा तो लड़ना ही पड़ेगा मैं वकील साहिब के पास गया था उन्होंने कहा कि यह रक़म की बात छिपाये रहो और लड़की की मां को अपने कर्ज में रक्खो लड़की और उसकी मां के बयान तुम्हारे खिलाफ न होने चाहिये। परन्तु भैय्या आपत्ति यह है कि लड़की की मां कम समझ-पागल है उससे आशा नहीं कि वह सिखाये हुए बयान ठीक २ कहदे और लड़की तो फिर लड़की ही है, न जाने क्या कह बैठे। यदि उन दोनों में से किसी ने भी रुपया का ज़िक्र करदिया तो सजा के सिवाय कोई इलाज ही नहीं

मित्र—लालाजी! वकील साहिब ने जो कहा है वह ठीक है किन्तु हम तो रात दिन अदालत में रहते हैं। जिसकी लाठी उसकी भैंस" मुकद्दमा तो जब होगा तब होता रहेगा पहिले किसी तरह लड़की को कहीं छिपाकर उड़वादो वहां चुपचाप विवाह कर डालो। भांवरों (सप्तपदी) के बाद लड़की और उसकी महतारी (माता) आप के खिलाफ़ कुछ न कह सकेंगी। क्योंकि यह उन्हें भी मालूम है कि जिसके साथ भांवरें पड़ गई उसी के साथ जन्म भर रहना है पति परिवर्तन वा पतित्याग तो हो ही नहीं सका है अतः विवाह के बाद हाकिम भी सोच लेगा कि जो होना था सो हो गया अब कुछ नहीं हो सका। बहुत करेगा तो कुछ जुर्माना कर देगा किन्तु वह आपको हो मिलेगी। जीवन भर मौज करना और गुलछर्रे उड़ाना।

लाला—आपकी बात तो ठीक है। अच्छा तो कुछ ऐसे आदमियों की तलाश करो कि जो लड़की को छिपाकर लेजा सकें और निश्चित समय तक कहीं छिपाये रख सकें खर्च की परवा मत करो जो होगा सो देखा जायगा। और हाँ यह तो बतलाओ कि दरख्वास्त देने वाले गपोडेमल के साथ क्या बर्ताव किया जाय! मैंने तो सोचा है कि गपोडेमल और उसके लड़के हरभजन दोनों के मुचलका करा दिये जांय। और कुछ घूंस पचोड़दे-दिला कर उन्हें तंग किया जाय जिससे यातो वे अपने पक्ष में आजायंगे या सजा भुगतेंगे। क्यों तुम्हारी क्या राय है?

मित्र—हाँ! हाँ! यह भी ठीक सलाह है। अवश्य ऐसाही करना चाहिये। मैं आदमियों की तलाश में जाता हूं। (आज अब सभा में न जाऊंगा) आप मुचलकों का बन्दोबस्त कीजियेगा

(३)

मुवक्किलों की दरख्वास्त पहुंची। तहकीकात का हुक्म हुआ। सच्चे झूंठे गवाह बनाये गये। कुछ नई और कुछ पुरानी दुश्मनी साबित करा दी गई तहकीकात करने वालों की जेबें गरम हुई गपोड़ेमल तथा हरभजन के ५००) पांच सौ के मुचलका होगये.

इसके बाद लाला दीनानाथ और उनके सलाहगीर मित्र एक दलाल दीनानाथ की चालाकियों का चक्र चला इधर उधर के धूर्त बदमाशों का सहारा लिया और एकाएक लड़की गायब करदी गई लड़की का गायब होजाना छिपा न रहा, तमाम गांव में सनसनी फैल गई, लोग अनेक तरह की बातें करने लगे, कोई लाला दीनानाथ की शरारत बतलाता था कोई दलाल दीनानाथ की, किन्तु इन दोनों की ओर से शोहरत उड़ाई गई कि गपोड़ेमल और हरभजन ने यह पाप कर्म किया है वे उसे अन्य किसी के साथ विवाहित करना चाहते हैं, अतः पहिले उनके मुचलके जप्त कराये जांय जिससे उन्हें आर्थिक क्षति पहुंचे, बाद में मुकद्दमा फौजदारी में चलाया जाय तब उन्हें भी मालूम होजाय कि किसी भले आदमी के सत्कार्य में रोड़ा अटकाने से क्या मज़ा चखना पड़ता है ।

दोनों ओर की अफवाहें ज़ोरों पर पहुंचीं गपोड़ेमल और हरभजन को भी फिक्र होगई, बड़ी भारी तलाश के बाद लड़की का पता चला है, अब देखें क्या होता है !

इसके बाद मित्र महाशय की अदालती सहायता पाकर लाला दीनानाथ अपने स्वार्थ साधन के लिए उचितानुचित का विचार छोड़ कर शीघ्र ही विवाह कर लेने के लिए उद्यत होगये, अपने प्रतिष्ठित नातेदारों की सलाह से दूसरे गांव में विवाह कर लेना निश्चित कर लिया गुप चुप बरात चली गई, और चार छः आत्मीय व्यक्तियों की उपस्थिति में विवाह हो गया वहां से नवविवाहिता बधू के साथ लाला दीनानाथ सानन्द अपने घर लौट आये, यार दोस्तों, नाते रिश्तेदारों और जान पहिचान वालों का यथोचित मिष्ठान्नादि से सत्कार किया ।

अब न बिरादरी का डर है और न अदालत का, क्योंकि सब लोग यह कहकर सन्तोष कर लेते हैं कि भई ! कर्म बलवान् है जिस २ का सम्बन्ध बदा होता है उसी का ऐसा मामला होपाता है परन्तु यह कोई नहीं सोचता, कि कुछ ही दिन बाद उस अल्पवयस्का की क्या दशा होगी ! वह किस तरह अपने कुल एवं धर्म की रक्षा कर सकेगी ! सिवाय इसके कि स्वयं नरकयातनाएं भुगतने और कुल तथा जाति को कलंकित करने वाले घोर व्यभिचार और भ्रूणहत्या के पापों में लिप्त हो !

हा जैन समाज ! क्या अब भी अचेत है ! ऐसे कार्यों का कब तक अस्तित्व बनाए रखता है ! केवल मौखिक बातों प्रस्ताव-पास करने आदि से काम चलना असम्भव है । अतः कर्त्तव्यपथ पर आ, और अपना कल्याण कर ।

वे और मैं ।

(लेखक—श्रीयुत नृसिंहदास जी)

नहीं आसरा नाथ,
दास को इस जीवन में ।

नित नूतन उत्पात—
घात, होते छन छन में ॥

मेरे चांउर चारु,
चाब कर ऐंठ गये वे ।

ले मेरा घर द्वार,
शान से बैठ गये वे ॥

× × × ×

मैं दीन दरिद्री दुखिया हूं,
वे सुखिया हैं मुल्कों वाले।
मैं निर्बल भंगा नीच और,
वे ताने हैं तीखे भाले॥
मैं भोला हूं भगवान और,
वे ज्ञानवान गुणधारी हैं।
मैं दर दर का दरवान और,
वे चौंर छत्र अधिकारी हैं॥
मेरे ही मुख पर माखी है,
उनके माथे पर मुकुट मढ़े।
मैं फिसला हूं हेमांचल से,
वे उन्नति की सोपान चढ़े॥
वे ज्ञानी हैं विज्ञानी हैं,
पर मैं नादानी भरा हुआ।
वे व्योमयान में उड़ते हैं,
मैं पिपीलिका से डरा हुआ॥
क्या भाल अंक पर यही लिखा,
क्या भाग्य लिपी भी ऐसी है।
क्या यही रहेगी सदा—
सदाशय! साम्प्रत दुर्गति जैसी है॥

विनोद-लीला

स्वप्न

मैं सो रहा था-स्वप्न में क्या देखता हूं कि परवार जाति के बुड्ढे एकान्त में बैठे जाति का भविष्य उज्वल करने का विचार कर रहे हैं जाति में कुंवारी लड़कियों से कुंआरे लड़का दूने हैं. अगर सब लड़कियां कुआंरों को ही विवाह दी जावें तो आधे लड़का बिना विवाह के ही रह जायेंगे फिर विवाहित युवा कुंआरे युवाओं की दाल नहीं गलने देंगे—इसलिये अब वृद्ध विवाह का ही विशेष प्रचार करना चाहिये ताकि किसी भी युवा को किसी का मुंह न ताकना पड़े और सुगमता से सबका निर्वाह हो-और मरते समय हमें भी परोपकार से पुण्य लाभ हों-एक देवी को परोपकार के लिये छोड़कर जाने से स्वर्ग में बहुत सी देवियां हमें प्राप्त होंगी क्योंकि दान वृथा नहीं जाता फिर पर कहीं समयोपयोगी हो तो फिर पूछना ही क्या है-नीति कार भी देखिये अपनी हां में हां मिलाते हैं वे कहते हैं "परोपकाराय सतां विभूतयः"।

× × × ×

इन बुड्ढों की बातें सुन कर मैं आगे बढ़ा तो क्या देखता हूं कि एक वृद्धबाबा स्त्री रहित होने से तो इतने दुःखी हो रहे थे कि उन्हें कोई एक चुल्लु पानी तक न देता था आज वे बाबा दो हजार कलदार की थैली बदलकर पत्नी ले आए हैं अब देखिए उन्हें कितने युवक घेरे रहते हैं-अब उनके सुख के दिन आगए हैं-धन्य है लक्ष्मी जी की मोहनी शक्ति को।

× × × ×

पहिले परवार जाति में बड़ी २ उमर के सज्जन मौजूद थे चाहे जितनी उमर में चाहे जितनी शादी करा लेते थे पर परवार सभा ने बड़े २ बुड्ढों की उमर कमती करादी ४० वर्ष से ऊपर कोई शादी न करावे-इस कानून के बनने से अब कोई भी शादी कराने वाला-३९ वर्ष-११ मास-२९ दिन से ज्यादा उमर का होता ही नहीं है-साठ २ साल के वृद्ध भी अब विवाह के समय ३९ वर्ष के युवा छोटी २ मूछों वाले बन जाते हैं-उनकी कुंडली वगैरः को भी जवानी आ जाती है—

× × × ×

सत्तर वर्ष का मनुष्य शादी कराते समय जो ४० वर्ष का हो जाता है-यह झूठ नहीं है देखिए उसे हम वेद और विज्ञान के द्वारा ४० वर्ष का बनाते हैं-शास्त्रों में स्त्री का अर्धाङ्ग कहा है आधा हक्क पति की प्रत्येक वस्तु पर स्त्री का है इस गणित के अनुसार वृद्ध ७० वर्ष, लड़की १० वर्ष कुल ८० वर्ष- आधी पति की आधी पत्नी की उमर समभाग में बांट देने से वृद्ध की उमर ४० वर्ष की हो जाती है कोई अगर इस हिसाब को गलत ठहरा दे तो स्वप्न में मैं जागना छोड़ दूं।

× × × ×

पंचामृत-से नीचे लिखेरोग पचते हैं।

१— भ्रूणहत्या करने से जो पाप लगा हो।

२— परस्त्री गमन से जो पाप लगा हो।

३— परधन हड़प जाने से जो अजीर्ण हुआ हो।

४— वृद्ध विवाह से जो खट्टी डकारें आती हों।

५— कन्याविक्रय से यदि किसी ऊँट के गले बकरी लटकाई हो और उससे लोग तुम्हारी निन्दा करते हों।

६— यदि वृद्ध विवाह के कारण अपने अपने नौकर चाकरों को भीतर जाने आने की खुलासी कर दी हो और कदाचित ऐसे समय में श्रीमान को पुत्ररत्न की प्राप्ति होगई हो फिर आप के पेट में पीड़ा उठती हो।

७— विवाह के लिये आपने बहुत हैरान होकर अष्टसका यदि बदला हो कुंडली के ग्रहा यदि गुरु घंटाल से बदलवा लिए हों ६० वर्ष से यदि ३९ वर्ष ११ माह २९ दिन का आपको मूछें कतरवा कर बनवाना पड़ा हो और पाप पचता न दिखे तो-

८ यदि तीर्थ रक्षा कमेटी की ओर से आपने शिखर जी गिरनारजी आदि क्षेत्रों में जाकर वहां का रुपया हजम करने की इच्छा से निगल लिया हो और वह पेट में मरोर देता हो।

९ बरसों परदेश में आपके रहने पर भी केवल चिट्ठी से ही आपके घर पुत्र रत्न हो गए हों इससे आपको बेचैनी रहती हो।

१० सत्तर सत्तर वर्ष की उमर में शादी करने के कारण यदि आपसे लोहे के चना न चाबे जा सके हों और किसी नवयुवक ने दांत लगा लिए हों इस से आप के हृदय में बड़ी दाह पड़ रही हो

तो आप इस चूर्ण को खाइए फिर देखिए रोग कितनी दूर भगते हैं हां चूर्ण खाने के पहिले सवासेर मिठाई पंचपेटी मे जरूर चढ़ा दीजिएगा इस के बिना मैं पाचक खाने की राह न दूंगा यह नुसखा मैंने जाति के मुखियों की संगति से एवं उनके अगम्य ज्ञान समुद्र के मथन से प्राप्त कर पाया है कितने बार उनके बिना लिखे शास्त्रों का ध्यान पूर्वक मनन करना पड़ा है पर परोपकार के लिए आपको यह दवा भेंट की गई है। आशा है आप इस उपकार को न भूलेंगे।

× × × ×

पंचामृत-पाचक

दुनियां भरके वैद्य, हकीम और डाक्टर खोज करते २ हार गए, पर ऐसा अमृत तुल्य

चटपटा, ज़ायकेदार शीघ्र गुणकारी चूर्ण तैयार न कर सके जैसा कि मैंने दुनियां भरसे पापनाशक इस पचलौने चूर्ण को खोज पाया है दुनिया भरके अनाज मुफ्त में खा जाइए दुनियां भरकी सम्पत्ति लूट लाइए दुनियां भरके भारी से भारी पाप कर डालिए बस सिर्फ एक खुराक पंचामृत पाचक खा जाइए आपके सब पाप बिना डकार आप ही पच जावेंगे। पंचामृत पाचक ताजा बनाकर खाने से ही गुण करता है इसलिये हम परवार जाति के उपकार्थ उसका नुसखा मय सेवन विधि के नीचे लिखे देते हैं यदि आपको फायदा करे तो एक सार्टीफिकट मुझे जरूर देने की कृपा कीजियेगा।

दवाइयोंकेनाम

१—बगुला भक्ति के बीजा १। तोला

२—बड़ोंकी हां में हां "खुशामदखोरी" १॥ तोला

३—मायाचारी की जड़ १॥। तोला,

४—मुखियों की अक्षर के अनन्त में भाग बुद्धि २ तोला,

५—भेड़िया धसानी के तंतु २। तोला

उपरोक्त पांचो दवाइयां अपने स्वार्थी खल स्वभाव से खूब कूटिए फिर पंचायत रूपी मैंदा की चलनी में चाल कर कमबख्ती की शीशी में डांट लगाकर रख छोड़िये और ऊपर लिखे मर्जों में से जब कोई मर्ज आपको आघेरे चट से शीशी का डांट निकाल एक खुराक पंचामृत पी जाइए फिर आप देखिए कि खाते देर कि मर्ज जाते देर !!!

एक मसखरा वैद्य.

मृत्युधर्म

(लेखक—श्रीयुत पं. लोकमणिजी गोटेगांव)

इस संसार में बहुसंख्यक लोग आपको ऐसे मिलेंगे जिन्होंने इस शरीर की स्थिति के लिए-जिन्दे रहने के लिए, ऊंच नीच सबही पापों से काम लिया है। मृत्युसे भय खाने वालों की दुनियां में भर पूर संख्या है कोई ऐसा वीर नजर नहीं आता जो मृत्यु के साम्हने हंसता हुआ जाता हो-छाती खोलकर साम्हना करता हो, मृत्यु के स्वागत के लिए हर समय हाथ फैलाए रहता हो, मित्र की तरह जो मौत के आने की वाट देख रहा हो।

मृत्यु क्या है ?

जिस तरह कार्य वश ग्राम से ग्रामान्तर जाना है-जीर्ण वस्त्र छोड़ नवीन धारण करना है-एक जगह का कार्य पूरा कर दूसरी जगह के जरूरी कार्य के लिये रवाना होना है-किसी विशाल कार्य को पूरा करने के लिए पहिली सीढ़ी से कदम उठा दूसरी सीढ़ी पर कदम जमाना है उसी तरह एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर को धारण करने के लिए गमन करना मृत्यु है। इसके विपरीत वह भयानक, विकराल एवं निर्दयी आदि नहीं है।

मनुष्य दिनरात अच्छे और बुरे सैकड़ों कार्य करता रहता है, अहर्निशी खोटे चोखे विकल्प किया करता है, पुण्य और पाप प्रति समय करता है जिन्दगीके कुल कार्योंका, कुल विचारोंका, पुण्य और पाप का हिसाब मृत्यु के पास अविकल अंकित रहता है। समय पूरा होने पर या कभी कभी बीच ही में वह तुम्हें साम्हने बुलाकर जिन्दगीके अच्छे और बुरे

कार्यों का नकशा दिखाती है नकशे में अच्छे कार्यों का खाना सफेद और बुरे कार्यों का खाना काला रहता है सफेद खाना अधिक देख तुम प्रसन्न होते हो मृत्यु से हंसकर बोलते हो हिसाब देखकर अधिक उत्तम फल पाने की इच्छा से मृत्यु को मित्रवत देखते हुए बड़े हर्ष से उसकी गोद में चले जाते हो। उसकी गोद तुम्हें स्वर्गीय विमान सी मालूम पड़ती है तुम्हें वह मृत्यु माता की तरह पुचकारती मालूम होती है और मालूम होता है यह मृत्यु परम सुन्दर दयावन्त और मनोभिलषित पदार्थों को देने के लिए किसी उत्तम स्थान की ओर लेजा रही है। और जिन्दगी तुमने पापमय कार्यों से व्यतीत की है तो मृत्युके नकशे में तुम्हें काले खाने अधिक दिखाई देते हैं तुम्हें वह मृत्यु महा भयंकर दिखाई देती है तुम्हें मालूम होता है कि मृत्यु काली, कुरूपा भयंकर काले २ नागिन जैसे बाल बिखरे तुम्हें मुँहफाड कर खाने को दौड़ रही है वेही काले खाने तुम्हें ओखली में धान्य की तरह कूटते नजर आते हैं तुम्हें वह मौत मानों चीर के दो किए देती है तुम्हें उसका प्रलयकालीन महा-संहारी मुख नजर आता है बड़े २ दांत उसके मुख में दिखाई देते हैं। मुंहसे आग उगलती मालूम होती है तुम उससे डरते हो पीछे हटते हो शय्या छोड़कर भागने की चेष्टा करते हो रोते हो-विलाप करते हो-दीर्घनिश्वास लेते हो और उसके पंजे में न फंसने के लिये इधर उधर करवटें बदलते हो अनाप सनाप तुम अपनी पापमयी भाषा में न मालूम क्या २ बका करते हो। कुटुम्बियों से बचाने के लिए प्रार्थना करते हो। जब तुम्हें मालूम होने लगता है कि मैं मृग का छोटा सा बच्चा हूं और मृत्यु जबर-दस्त शेर है। वह आया वह आया मुझे पकड़ा यहलो पकड़ ही तो लिया बस तुम टें बोल जाते हो और मृत्यु के बताए काले कमरे में चले जाते फिर कान पूंछ कुछ भी नहीं हिलाते।

इससे पाठकों की समझ में यह बात बिना आए न रही होगी कि मृत्यु न तो भयावह है न कुरूपा है न सुरूपाही किन्तु हम जैसे दुनियां में कार्य करते हैं उन्हीं कार्यों के फल स्वरूप वह हमें अच्छी और बुरी नजर में आती है देखने में आया है कि कठिन से कठिन रोग भी मृत्यु के कुछ समय पहिले क्षीण होगए है, शरीरको छोड़कर चले गए हैं रोगी को होश आगया है यह सब क्या है? बस यही समय जिन्दगी के कार्यों की सूची देखने का है उसी समय मृत्यु नकशा बतलाती है और प्राणी अपने कार्यों का निरीक्षण करता है पाप देख भय खाता, और पुण्य देख हंसता हुआ चल बसता है। मृत्यु का रूप रंग स्वभाव सब हमारे कार्यों से मिलता जुलता है। हत्यारे को न वह दयालु नज़र आती न धर्मात्मा को वह निर्दयी मालूम होती है हमारे कार्यों के ही परमाणुओं से वह अपना शृङ्गार बनाती है और हमें अपना कर्त्तव्य सुझाती है।

मृत्यु कैसी है?

मृत्यु प्राणी मात्र के लिये कल्याणकारी है कर्त्तव्य सुझाने वाली है पापों से विमुख कराने वाली पुण्य पथ पर ले जाने वाली न्याय और अन्याय के फलादेश अभिमुख कराने वाली और कल्पवृक्ष के समान-कामधेनु की नांई मनोभि-लषित पदार्थों की प्राप्त करा देने वाली है।

एक प्राणी कफादि रोग से व्यथित है-शरीर अत्यन्त कृश हो रहा है मुंह की मक्खियां

उठाते नहीं बनती। न कोई पानी देने वाला है न रोटी का टुकड़ा कोई देता है उठने बैठने के लिए अशक्त है मारे दुःख के रोता है चिल्लाता है दो बूंद पानी के लिए दो अंगुल जीभ निकालता है आप उसकी ओर देखते नहीं, पास जाते नहीं- उस क्षीण शरीर की पुष्टि करना आपको आपके कर्त्तव्यों से बाहर होगया है तब ऐसे समय में जब कि दुनियां में कोई उसका साथ नहीं देता मृत्यु आती है उसे धीरज बंधाती है वेदना दूर करती है भूख मिटाती प्यास मिटाती और सारे रोग क्षण मात्र में विलग करती है उस घृणित कमजोर जर्जरित शरीर से निकलती है और एक उत्तम नया शरीर अपनी इच्छा के अनुसार बनाने के लिये कार्य में लगा देती है ऐसे कठिन समय पर मृत्यु कल्याणकारी नहीं है तो कौन है ?

एक छोटेसे बट के बीज ने पृथ्वी के नीचे घुसकर जो इतना विशाल वृक्ष रूप धारण कर लिया है अगणित डालियों पत्तों और फलों वाला हो रहा है राई से सुमेरु बन गया है हजारों को जो विश्राम देने लगा है और अपना मस्तक ऊपर उठाए हुए है यह किस की बदौलत है ? यह उसही की बदौलत है जिसको आपने मृत्यु कह कर खरी खोटी सुनाई थी— वह बीज उसके पास पहुँचा उसने उसे शक्ति विकाश करने का मौका दिया और आज वह विशाल रूप धर कर तुम्हें कुछ करने के लिये किसी के स्वागत के लिए उत्साहित कर रहा है—कहता है उत्तम फल के चाहने वालो मिट्टी में मिल जाओ सब कुछ मृत्यु के हाथ में अर्पण कर दो यह शरीर देश सेवक बनाने के लिए धार्मिक और महावीर निर्माण करने के लिए हंसते हुए मृत्यु के लिए सौंप दो देखो तो सही वह तुम्हारे इस घृणित शरीर के अर्पण से क्या ही उत्तम और संसार का दुःख विमोचन महा- वीर शरीर देती है—पर जरा हंसते हुए आप मृत्यु की गोद में कूद तो पड़ो फिर देखो वह तुम्हें कितनी सुखद मालूम होती है आप कभी भी माता से भिन्न रूप में उसे न पाओगे।

धर्म के लिये प्राणी कष्ट भोग रहे हैं दुनियां भर की चीजें धर्म के लिये न्यौछावर कर रहे हैं राज पाट छोड़ जंगलों में धर्म के लिये गुहाओं में ध्यान लगा रहे हैं दुष्ट सता रहे हैं स्वतंत्रता के लिये यातना भोग रहे हैं दुष्ट सता रहे हैं मार रहे हैं अमानुषिक व्यवहार कर रहे हैं पर इस ओर चुप चाप यातना सह रहे दुष्टों को क्षमा से भूषित कर रहे और सारी सुखद सामग्रियां विपत्तियों को सानन्द लुटा रहे हैं यह सब किसके बल पर-किसके भरोसे पर सिर्फ एक मृत्यु के बल पर-मृत्यु के भरोसे पर जब कोई इन कार्यों का इन्साफ न करेगा दुनिया अन्यायियों से भर जायगी तब मृत्यु इन्साफ करेगी—राई के त्यागी को सुमेरु और सुमेरु के त्यागी को सर्वोपरि सुख सामग्रियों से परिपूर्ण मोक्ष की स्वतंत्रता देती है वह दुष्टों को गिन २ के मारती और अच्छों को और भी अच्छा होने के लिये उत्तम स्थानों पर भेजती है। यह सब कार्य वह बिना किसी स्वार्थ के करती है—मृत्यु किसी के गुणों को नहीं छीनती और न औगुणों को ले भागती है राम के गुण-सीता के गुण-तिलक के गुण- दादाभाई नौरोजी के गुण न मृत्यु ने छीने हैं न उनके गुण यहां से ले गई न उनका नाम ले- गई-लेगई सिर्फ एक बेकार शरीर सो भी उसकी एवज में अधिक टिकाऊ दूसरा शरीर देने के बदले में तब मृत्यु कैसी है ? है कोई दुनियां में ऐसा उपकारी और वीर जो मृत्यु से बाजी मार बैठे ? नहीं-नहीं-हो तो आप ही बतलाइए।

प्रत्येक धर्म ने मृत्यु को श्रेष्ठ माना के जैन धर्म तो खासकर उल्लेखना-समाधिमरण आदि के बिना मर जाने से ही खराब मृत्यु कहता है जैन धर्म तो बहुत दिन पहिले से ही सल्लेखन रूपी कसरत मृत्यु के लड़ने के लिये सिखलाता है संसार के पदार्थों से मोह छुड़ाकर निर्भीक बनाता है और कहता है मृत्यु से युद्ध करते समय ऐसे तन्मय हो जाओ कि खाने पीने तक का नाम भी न लो मित्रों की सहायता न चाहो अकेले ही इस महायुद्ध में भिड़ जाओ और मृत्यु जो अपने दूसरे हाथ में स्वर्गादि सुख छुपाए हुए है उसे छीन लो पीठ मत दिखाओ आत्मशक्ति से काम लो मृत्यु से मुकाबला करने के पहिले तुम सदाचारी, दंभरहित, ब्रह्मचारी, निर्भीक, और निःशल्य हो जाओ फिर मृत्यु से ऐसा मुकाबला करो कि फिर वह तुम्हारे पास कभी न आवे तुम मृत्यु रहित हो जाओ।

नास्तिक इसलिये मृत्यु को अच्छा कहते हैं कि उसके बाद उन्हें किसी का कुछ देना लेना नहीं पड़ता उधार ले लेकर यहां मौज से जिंदगी बिताई दुनियां भर के पाप किए चलो अच्छा हुआ साहूकार लोग तंग न कर पाए— पाप फल न दे पाए और हम मृत्यु राज में पहुंच गये अब हमें न कहीं जाना है न किसी का कुछ देना है न लेना है मृत्यु ने सब झंझटों से बचा दिया।

आस्तिक इसलिये मृत्यु को उत्तम बताते हैं कि हमने दान दिया है, ईश्वर भक्ति की है अपना जीवन परोपकारार्थ व्यतीत किया है- पाप छोड़े हैं, दंभ छोड़े हैं, दुष्टों पर भी दया की है देशसेवा, धर्मसेवा और जाति सेवा की है अनेकों नास्तिक हमारा द्रव्य उधार लेकर खागए और हमें मृत्युराज में लेने के लिए बाध्य कर गए हैं मृत्यु के बिना हमारे कार्यों का फल कौन देगा नास्तिकों से हमारा रुपया वसूल कौन करावेगा।

संसार में जब कोई सहायक नहीं रहता प्राणी, जब असह्य वेदना से व्यथित होता है तब मृत्यु का ही आव्हनन करता है उसकी हीं शरण उसे सुखद मालूम होती है, इसलिये मृत्यु को कोई बुरा नहीं कहता सब ही उसकी तारीफ करते हैं समस्त सुखों की देने वाली और दुःख दूर करने वाली जब मृत्यु है तब आपही कहिये उसे हम अधर्म कहें कि उसका ठीक नाम कहें—"मृत्युधर्म"।

उपदेश–विन्दु

लेखक—श्रीयुत गौरीशंकर शर्मा

मनुष्यत्व का तत्व कौन सा ?,
उत्तर देता यही विवेक।
"सौमन विद्या से बढ़कर हैं,
सदाचार की मुट्ठी एक"
क्या सम्पति संग्रह को समझें,
केवल अपना जीवन भार ?
"हां! यदि उसके द्वारा करलो,
आर्त्तबंधुओं का उद्धार"॥
पशुता कहते किसे ? "स्वार्थमय
जीवन है जो विता रहा"
मानवता क्या ? "जो परहित
कृत सरवर जल में रहा नहा"॥
सुर समाज में शीघ्र पहुंचने
का क्या साधन ?
"सद्ग्रंथों से नेह, प्रेम
प्रतिमा आराधन॥"
किसविधि से उस ओर,
झुकेगा यह चंचलमन ?
"इसका मात्र उपाय करो,
सत्संगति-पावन"

जातीय शिक्षा।

(अनुवादक—श्रीयुत मंगलप्रसाद विश्वकर्मा, विशारद)

आजकल जातीय शिक्षा पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है। किन्तु जातीय शिक्षा का अर्थ क्या है? क्या यह तपोवनवासी ऋषि का आश्रम है या भिक्षु-भिक्षुणी के विहार की पुनःप्रतिष्ठा? क्या यह सिन्दूर से लगे हुए ग्राम्य वट-वृक्ष का उद्बोधन है या गिर-गह्वरों के अन्धकार का आवाहन? यह शिक्षा क्या मन्त्र का मौखिक उच्चारण मात्र है या परम्परागत वाक्य का श्रवण और स्मरण अथवा अभ्रान्त शास्त्र या गुरु के चरणों का निवेदन है?

प्राचीन काल में इस प्रकार की प्रतिष्ठा सम्भव न थी। सम्भव होने पर भी वह समयोपयोगी हो नहीं सकती। चेष्टा विफल होगी। अपने को समस्त कालों के लिए उपयोगी करना भारतवर्ष की विशेष प्रकृति है। उसके कपाल में असामञ्जस्य लिखा ही नहीं है। भारतवर्ष अपने को युग युग में परिवर्तित करके एवं नवीनता में प्रतिष्ठित करके चला आ रहा है—उसने युग युग में एक नया ही रूप धारण किया है। क्या पारसी क्या ग्रीक, सेमेटिक क्या सिथियन, तुर्की क्या क्रिश्चियनों ने युग युग में जिस हिमाद्रिकिरीट महासिन्धु विधौत इस महादेश में आकर बसना आरम्भ किया है तभी से इस प्रकृति ने उन्हें मन्त्र मुग्ध कर रक्खा है। स्मरणातीत काल से भारतवर्ष में जो सभ्यता आबद्ध है उसकी भित्ति समन्वय के ऊपर ही प्रतिष्ठित है। किस प्रागैतिहासिक काल में उसका आरम्भ हुआ है, किस जाति के मनुष्यों को लेकर इसने अपनी सृष्टि की है—उसका तो किसीने खोज नहीं किया? उस आदिमानव के पद-चिन्ह को आज भी हम अपनी छाती पर धारण किये हुए हैं। इसके पश्चात् कोलारी द्राविड़—यह तो विस्मृति के गर्भ में है। इसके सिवा आज कल के ईसाई और मुसलमानों में अब भी इस सम्बन्ध में समन्वय चल रहा है। इस समन्वय के मध्य में बाह्य प्रकृति मानव प्रकृति के आलिङ्गन के पाश में आबद्ध है। इस विश्व में जहाँ प्राण स्थिर हो कर मानव-प्राण नत मस्तक होकर उसके साथ आत्मीयता के सूत्र में आबद्ध है वहाँ व्यक्ति समिष्टिगत ज्ञान से अपनी परिपुष्टि की सामग्री संग्रह कर सञ्जीवित रहते हैं। भारतवर्ष की इस विशेष प्रकृति से जिस शिक्षा का उत्स उत्साहित हुआ था वह प्राचीन ग्रीस तथा नव्य यूरोप की शिक्षा-प्रणाली से किसी भी अंश में ही नहीं है। भारतीय शिक्षा के उपादानों में विशेष रूप से जो उल्लेख योग्य हैं उनमें से कुछ ये हैं—(१) बहिर्प्रकृति, के साथ घनिष्टता रखना अनिवार्य है। विस्तीर्ण वट-वृक्ष के नीचे कुटी निर्माण करके, गुरु-शिष्य के सम्वाद बिना कोई लाभ नहीं हो सकता। विश्वविद्यालयों के पींजड़े में आबद्ध जीवन की अपेक्षा वृक्षों के नीचे पशु-पक्षियों से सहानुभूति-विशिष्ट जीवन में आबद्ध होना कितना उच्च और कितना सुन्दर है! (२) बचपन से ही पारिवारिक जीवन के सङ्कुचित क्षेत्र से बाहर आकर गुरु-गृह के विस्तृत परिवार में अङ्गीभूत होकर नागरिक जगत् के कतिपय लोगों के सुख दुख में सम्मिलित होने के अधिकार प्रत्येक बालक को प्राप्त थे। इस प्रकार नागरिक के स्वरूप को समझना कितना उपादेय था! (३) सकल बन्धनों से मुक्त होकर तथा सकल आकर्षणों से दूर स्थित होकर प्रत्येक को ज्ञानानुशीलन के लिए यथेष्ट अवसर था। एवं (४) सर्वोपरि ब्रह्मचर्य के नियमों का अनुसरण कार्य था। केवल

ग्रन्थगत विद्योपार्जन करना अनिवार्य नहीं था प्रत्युत अपने जीवन में उसे कार्य रूप में परिणत करना भी आवश्यक था।

चरित्र गठन के बिना कोई शिक्षा ही शिक्षा नहीं है एवं जिसको उपार्जन करके जिसने उसे कार्य रूप में परिणत करने-का अभ्यास नहीं किया तो उससे चरित्र संगठित नहीं हो सकता। शुभ के आचरण का नाम अभ्यास है एवं अशुभ से निवृत्ति प्राप्त करना वैराग्य है—केवल यही दो सिद्धान्त चरित्र-गठन के प्रधान साधन हैं। प्राचीन भारत में चरित्र-गठन के लिए तीन व्रत—पवित्रता व्रत, दारिद्र्य व्रत, और श्रम व्रत थे। ये अनिवार्य रूप से ग्रहणीय एवं अनुष्ठेय थे शरीर तथा मनोविकार का संयम, चित्त चाञ्चल्य और भोगाशक्ति का परित्याग ही पवित्रता का एकमात्र साधन था; दान यह नहीं थी, किन्तु प्राणपण से सत्यानुशरण करना ही पवित्रता का प्रधान अङ्ग था। जिस समय आर्थोपार्जन ही विद्यार्थी का चरम लक्ष्य हो जाता है उस समय दारिद्र्य व्रत की प्रयोजनीयता प्रतीत होने लगती है। अर्थग्रन्धता और अर्थलालसा परिहार करना आवश्यक था केवल इसलिए कि आर्थिक सम्बन्ध में एक राजपुत्र और एक भिखारी के पुत्र को समान रूप से एक पद पर अवस्थित रहना पड़ता था। आजकल एक ही छात्रावास में जिस प्रकार एक धनी पुत्र की व्यवस्था और ही और एक गरीब के लड़के की दूसरे प्रकार की होती है उस समय ऐसा हो ही नहीं सकता था। शारीरिक परिश्रम को केवल 'छोटे लोगों' का काम कहना जिन 'भद्र पुरुषों' की धारणा के अन्तर्गत था उनके बालकों को विद्यार्थी होने का अधिकार नहीं था। शारीरिक परिश्रम की मर्यादा स्वीकार करने से ही गुरु-गृह में प्रवेश हो सकता था। केवल गुरु की सेवा ही नहीं किन्तु शिष्य-भ्रातृ-मण्डली की सेवा स्वीकार करने के लिए तैयार रहना भी सर्वथा वाञ्छनीय था। उन लोगों में धनी और दरिद्र, ब्राह्मण और छत्रिय का विचार-भेद नहीं था। इँग्लेण्ड के राजपुत्र को इटनस्कूल में भरती होकर, अपने सहाध्यायी का जूता साफ़ करने से उसके मन में जिस प्रकार असम्मान की धारणा हो जाती है उस प्रकार की धारणा रखना तत्कालीन गुरुकुलों में एक प्रकार से असम्भव थी। उस काल में तो विद्यार्थी को गृह-निर्माण ही नहीं, गृह सम्मार्जन के लिए भी सदा तत्पर रहना पड़ता था एवं गुरु कुल के लिए अन्न एकत्र करने के लिए भिक्षा के लिए बाहर जाना भी उसके लिए किसी प्रकार के असम्मान का कारण भी नहीं था। हम लोग आजकल केवल 'डेमो-क्रेसी डेमोक्रेसी' कहकर ही चिल्लाते हैं। किन्तु, क्या हाथ में कलम लेने से ही उचित शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है? पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में भी उसको विपरीत आचरण ही परिलक्षित होता है। जब हम देखते हैं कि छात्रावास में विभिन्न जातियों के विद्यार्थी अपनी जाति मर्यादा की रक्षा के लिए नितान्त घृणय विवाद में प्रवृत्त हैं, तब तो डेमोक्रेसी की समस्त आशाओं को जलाञ्जलि देना ही होगा। किन्तु गुरुकुल में जाति भेद के प्रकोप-काल में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र भ्रातृ-मान से एकत्र रहते थे। हम लोग उसी भारत की प्रथा का अनुकरण करना चाहते हैं, किन्तु इस तरह कहाँ चले जायँगे—क्या यह अभी निश्चित हो गया है?

(अपूर्ण)

आंसू

(लेखक—श्रीयुत प्यारेलाल जी श्रीवास्तव)

[१]

कब तक रोकूं इन नयनों में, उर के ये तीखे से वार ।
या पहिना दूं सन्तापों को मुक्ताहल के लम्बे हार ॥
छोड़ न आना इन्हें देख तुम निश्वासों की सीमा पार ।
मन बहलाने के साधन हैं दुखी हृदय के हैं उपचार ॥

[२]

जगतीतल का शौर्य छोड़ दुखिया के प्राणाधार हुए ।
शीतल उर करके दूर चले. गिर पड़े मही पर छार हुए ॥
कोसें जो चाहें तुम्हें सखे. मैं खड़ा रहूंगा हृदय लिये ।
आना प्यारे हर समय, देख भूलूंगा तुमको, शूल हिये ॥

[३]

लुब्ध पाप के क्षुब्ध शाप के तुम पर आ टूटेंगे और ।
अवलंबन हो रखना उनको आशा के होकर शिर मौर ॥
कोमल कोमल से कोणों के तुम बीचों बीच छुपा लेना ।
अलमस्त बने हम आवेंगे उनको चुपचाप गहा देना ॥

[४]

आवेगों से रूठ २ मनसिज को भी चकरा दूंगा ।
मधु की मिठास को बंद किये विषधर के नैन छका दूंगा ॥
उठ कर दौड़ूंगा प्रेम पिये, दावानल आन बुझाऊंगा ।
इन करुण रस भरे मोती की, मैं आकर माल गुथाऊंगा ॥

[५]

मानस निकुञ्ज में पूंछ पैर देना अपना तुम वनमाली ।
बीहड़ बगिया में निश्वासों से सुन्दर प्रेम लता पाली ॥
अधिकारी होगा वही वीर जो विश्व प्रेम में मतवाला ।
पहिना दूंगा उसके सुकण्ठ में अश्रुन की मुक्तामाला ॥

भोला ।

(लेखक—श्रीयुत "विश्वात्मा)"

(१)

भोला एक बैंक में काम करता था । उसका काम रुपये वसूल करना था । लगातार दस बरस से वह इस बैंक में काम करता आ रहा है परन्तु किसी भी दिन उससे एक पैसे की भूल नहीं हुई । अन्य उच्च कर्मचारी प्राय: कहा करते थे कि कम से कम इस देश में तो ऐसा विश्वासी पुरुष नहीं है विदेश में है या नहीं यह बात सन्देह जनक है'। काम में उससे साधारण से साधारण भी त्रुटि कभी नहीं हुई वह ऐसा ही कर्तव्य परायण नौकर था ।

जो कुछ भी वह थोड़ा बहुत वेतन पाता साधारणतया उससे उसका निर्वाह हो ही जाता । उसको अपनी सामान्य अवस्था के लिए विधाता के समीप किसी प्रकार का अपराध करते हुए कभी किसी ने नहीं देखा । कभी कभी उसके दो एक मित्र उससे कहा करते— "देखो जो, तुम्हारी दोनों हथेलियों पर सदा रुपया खेला करता है क्या तुम कभी भी उसको प्राप्त करने के लिए प्रलोभन-ग्रस्त नहीं होते ।" भोला इसके उत्तर में कहता —"अरे मैं तुम्हारे समान होता क्या ?" क्या जो रुपये मेरे नहीं है वे तो हमारे लिए पत्थरों के ढेर मात्र हैं । पड़ोस के लोग उसे बहुत चाहते थे सुख दुख में वे उससे परामर्श लेना एक अत्यावश्यक कार्य समझते थे ।

एक दिन वह प्रातःकाल एक प्याला चाय पीकर रुपये-वसूली के लिए घर से निकलपड़ा । मास का अन्तिम दिन था अतएव आज उसे अधिक वसूली करनी थी । प्रतिदिन वह जिस समय घर लौट आता था उस दिन बड़ी देर होने पर भी वह घर नहीं लौटा । उसका अपना कोई नहीं था फिर भी पड़ोस के लोग उसकी इस देरी से बड़े चिन्तित हुए । प्राय: सबों ने यही सोचा कि निस्सन्देह आज वह चोरों के हाथ पड़कर मारा गया है । उसके पास बहुत रुपये होंगे अतएव तत्काल ही पुलिस को खबर दी गई । खोज करते करते पता लगा कि सन्ध्या के समय लगभग सात बजे वह एक दूर की बस्ती से रुपये वसूल करके लौट रहा था उस समय उसके पास अनुमानत: अढ़ाई लाख रुपयों के नोट थे । उसके पश्चात् उसका क्या हुआ, वह कहाँ गया इसका कहीं कुछ पता न चला । चारों ओर मैदान, घाट, वन सभी स्थान एक एक कर खोज लिए गये किन्तु कहीं भी उसका पता न चला । अन्त में सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए । वह स्वयं क्या उसकी खबर भी कहीं नहीं मिली उस समय पुलिस के सभी वयोवृद्ध कर्मचारी और बैंक के उच्च पद के कर्मचारी यही सोच रहे थे कि वह अन्यतम पुरुष विश्वासनीय पुरुष है । वह रुपये लेकर कहीं भी नहीं भाग सकता । पथ में निश्चय ही डकैतों के हाथ पड़कर वह मारा गया है । उन लोगों ने यह भी सोचा कि डकैतों ने निश्चय ही पूर्व से ही इस पर आक्रमण करने के लिए अपने विचार निश्चित कर लिए होंगे ।

भोला के अदृश्य होने के समाचार क्षण भर में नगर भर में फैल गये । यह खबर समाचार-पत्रों में बड़े बड़े अक्षरों में प्रकाशित की गयी पड़ोसियों ने कहा—"हाय ! हाय ! इस प्रकार के भले आदमी के अभाव में हमारा मुहल्ला एकदम सूना हो गया" । बैंक के लोगों

ने कहा—"अब हम इस प्रकार का आदमी और न पा सकेंगे। दस बरसों में उसने हमारा जो काम किया है अन्य कोई उसे चालीस वर्षों में भी न कर सकेगा।" भोला के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न लोग नाना प्रकार की बातें करने लगे।

एक तरफ जहाँ यह सब हो रहा था तो दूसरी ओर कुछ ही दूर पर एक दूसरे नगर में एक साधू बस कर ये सब बातें देख-सुनकर अपने मन में हँसा करता। पुलिस जब इसके लिए आकाश-पाताल ढूढ़ कर मर रही थी तभी उसने एक नदी की धार में अपने सब पुराने सड़े-गले कपड़े एक पत्थर में बाँध कर डुबा दिये। इसके पश्चात् वह केवल नोटों को अपनी छाती से लगाकर यहाँ आकर बस रहा। उसके मन में कोई भय या भावना नहीं थी। वह अधिकतर किसी होटल में ठहर कर रात काट लेता। दूसरे दिन सबेरे जब वह नींद से उठता तब वह अपने दिन भर के कार्यों का निश्चय कर लेता।

एक दिन वह पकड़ा जायगा यह बात उससे छिपी नहीं थी। पुलिस की आखों में धूल झोंककर अधिक दिन रहना नितान्त असम्भव है। इसलिए उसने अपने इन अढ़ाई लाख रुपये के नोटों को एक मोटे थैले में अच्छी तरह से बन्द करके ऊपर से सील लगा दी। इसके पश्चात् वह एक वकील के पास गया।

वकील के पास आकर उसने कहा "देखो महाशय मेरे इस थैले में कई आवश्यकपत्र बन्द हैं। मै कई वर्षों के लिए विदेश जाता हूँ। वहाँ जाने के पहिले मैं इन्हें आपके पास रख देना चाहता हूँ। आशा है, आपको इस बात में किसी प्रकार की आपत्ति न होगी।"

वकील महाशय ने "कहा नहीं नहीं आपत्ति क्या होगी? फिर भी आप एक रसीद दे जाइये।"

उसने रसीद के सम्बन्ध में विचार किया। रसीद देकर एक और फिसाद पैदा होगी। पुलिस के हाथ पड़ कर यदि वह रसीद उसके हाथ लग गई तो सब नष्ट हो जायगा। अतएव उसने कहा "देखिये" रसीद लिखने में कोई लाभ नहीं है। मेरा अपना यहाँ कोई नहीं है जिसके पास मैं रसीद छोड़ जाऊँगा। मैं स्वयं आकर जब आपसे अपना नाम बताऊँ तभी आप उसे मुझे दे दीजियेगा। हो सकता है कि मुझे लौटने में अधिक समय लग जाय।"

वकील महाशय और क्या करते? "बोले अच्छा, तो आप अपना नाम बताइए मैं उसे उस थैलेपर लिख रक्खूंगा और जब आप आकर अपना नाम मुझे बतायँगे उस समय आप उसे वापस पा सकेंगे।"

कुछ क्षण विचारने के पश्चात् उसने कहा "मेरा नाम देवदत्त" देवदत्त शर्मा है।

(३)

वकील का घर छोड़कर जब वह रास्ते पर आया उस समय उसके मन में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। वह केवल मन ही मन सोचने लगा "यदि पुलिस ने मुझे पकड़ भी लिया तो यह मेरा क्या करेगी? वह मुझसे प्रमाण क्या पायेगी? मैं एक प्रकार से पकड़ ही तो गया हूं किन्तु जिसके लिए मैं पकड़ा गया वहतो उन्हें मिल ही नहीं सकता। बहुत हुआ तो पांचक बरस का जेल हो जायगा कोई चिन्ता नहीं है। नियम के अनुसार खाना आराम निद्रा आदि सभी बातें होगी। कोई

छिपना नहीं है हृष्ट पुष्ट शरीर लेकर लौटूंगा इसके पश्चात् स्वच्छन्दता से घूमूंगा आधा वैशाख जब होगा अढ़ाई लाख मेरे हाथ में होंगे। दूर, पर बहुत दूर किसी ग्राम में चला जाऊंगा वहां नदी के किनारे एक सुन्दर घर बनाऊंगा वहां क्या वे लोग मुझे पहिचान लेंगे। उस समय मेरा नाम देवदत्त शर्मा प्रसिद्ध होगा घर इतना बड़ा बनवाऊंगा। दान ध्यान भी कुछ कुछ करूंगा। लोगों की आखें कृपाभार से अपनी ओर अकार्षित कर लूंगा कितना अच्छा होगा अहा हा! निश्चय ही मैं ऐसा करूंगा।

इसी प्रकार भोला ने एक दिन और लुक छिप कर व्यतीत कर दिया। क्या पुलिस के लोग नोटों के नम्बर लेकर उन्हें ढूंढ़ती नहीं रहे हैं! यही ख़याल आते ही उसका मन एक प्रकार से अवसन्न हो गया भय से अभिभूत हो गया।

अन्ततः वह पुलिस के हाथ पकड़ा गया। पुलिस के इन्सपेक्टर से उसने कहा—रास्ते के किनारे में बादाम के वृक्षों की छाया में एक बैञ्च पर बैठकर नोटों को लेकर सोगया। हठात् जब निद्रा भङ्ग हुई तब मालूम हुआ कि नोटों की थैली—साथ आवश्यक बही आदि न जाने कहां चली गयी। चोर लोग उसे कहां ले गये इसको कई बार खोज करने पर भी मैं इस सम्बन्ध में कुछ भी न जान सका।

अन्त में, रास्ते में अनायास सोजाने के कारण जेल में उसे पांच वर्ष तक सोने के लिए प्रबंध किया गया।

(४)

कारागृह में उसके दिन आनंद से ही कटने लगे। कारागृह के कष्टों को उसने अपने सामान्य पाप के प्रायश्चित्त स्वरूप ग्रहण किया। दूसरी ओर सभी लोग उसके दैनिक काम-धाम से सन्तुष्ट थे।

जेल के अन्य लोग कहा करते—"ऐसे भले आदमी को कैसे जेल होगया—यह बात समझ मे नहीं आती। ऐसा आदमी तो कभी चोरी नहीं कर सकता।" भोला का शरीर कारागृह में दिनों दिन निरोग और स्वस्थ होने लगा।

(५)

पांच वर्षों के लम्बे समय को काट कर वह कारागृह से बाहर आया। रास्ते पर चलते २ उसने सोचा—"इतने दिनों के पश्चात मेरे सभी प्रयत्न सार्थक हुए अब कुछ खा पीकर और दूसरे कपड़े बदल कर वकील के घर जाऊंगा। बहुत सम्भव है वे मुझे पहले पहल देखकर पहचान न सकेंगे। वे कदाचित "हां" करके मेरी ओर आश्चर्य चकित होकर देखेंगे तब मैं कहूंगा कि आप कृपा कर मेरे थैले आदि लौटा दीजिएगा। उनके मन में किसी प्रकार का भी सन्देह न होगा हाः हाः हाः कैसा मजा न होगा!

इसके पश्चात् वकील महाशय मुझ से कहेंगे—तो आप अपना नाम बताइयेगा—जिससे मैं आप का थैला दे दूं? तब मैं अपना नाम न बताऊँगा। थैला लेकर एक हँसी करूँगा बेचारे एक ही बार में आश्चर्ययुक्त हो जायँगे अन्ततः मैं उन्हें अपना नाम बताऊँगा, कहूँगा मैं श्री —! आह यह क्या? ओ क्या? मैं तो नाम भूल गया?

भोला चलते चलते रुक गया। वह अनायास ठिठक कर रास्ते पर खड़ा हो गया। किसी

भी प्रकार उसे अपने नाम का स्मरण न आया पास ही पड़ी हुई बेंच पर बैठ कर वह अपने नाम को आकाश पाताल में ढूंढने लगा धीरे धीरे उसके मन में "श्री" का आविर्भाव होना और उसके पश्चात् कुछ भी नहीं। नाम जैसे उसके गले में आकर अटक जाता, मुँह पर किसी प्रकार न आ सकता। केवल "श्री श्री" के अतिरिक्त उसके मुँह पर और कुछ भी न आता था। इसी प्रकार दो एक घन्टे विचारने के कारण उसका माथा गरम हो उठा। आँखों और मुँह से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। इस समय उस के ऊपर कड़ाके का घाम भी पड़ रहा था। ऐसा मालूम होता था जैसे उसके ऊपर अनायास हज़ार तमाचे पड़ रहे हों। क्षण भर में वह यह कहता हुआ ज़ोर से खड़ा हो गया इस प्रकार एक ही स्थान में बैठे रहने से नाम स्मरण न आयगा इसके लिए और ही दूरस्थ स्थान में जाना होगा कुछ खा पीकर शान्त होने से स्मरण हो आयगा यही ठीक है इस प्रकार सोचकर वह पागल की तरह रास्ते पर चलने लगा। रास्ते पर लोगों के चलने फिरने में गाड़ियों की घरघराहट के बीच में वह अपने अढ़ाई लाख पाने के लिये नाम का स्मरण करने लगा श्री—श्री—केवल इसके सिवा उसके मन में और कुछ भी नहीं आया।

सन्ध्या हुई। वह अब भी पथपर धीरे धीरे घूम रहा है।

उसके मनमें खाने पीने की कोई चिन्ता नहीं है। बाल अनादर के भाव से बिखरे हुए हैं दोनों आखें जैसे आग के समान जल रही हैं। लोगों के घरों में और दूकानों पर दीपक जग मग जग मग करने लगे। भोला घूमते २ वकील के घर के द्वार पर आकर हाथ में साँकल लेकर बोल उठा—आह! अब स्मरण नहीं आता। मैं पागल हो गया हूं क्या? अढ़ाई लाख रुपये चोरी किये थे किन्तु उनके लिये कम दण्ड भी नहीं भोगा! अब केवल रुपये रह गये हैं, वकील रह गया है और मैं भी रह गया हूं! क्या सबसे हाथ धो बठूंगा? एक बात केवल एक नाम के लिए ही मेरा सब चला जायगा क्या? श्री-श्री-नहीं अब वह स्मरण न आयगा-उसका क्या?-श्री-श्री-"

भोला अनायास ही हताश होउठा। वह रास्ते पर चलने लगा किन्तु उसमें चैतन्य नहीं रहा। लोगोंका उसे धक्का लग रहा है, लोग उसे पागल कह कर उससे दूर ही दूर रहते हैं—इस का कुछ भी खयाल नहीं है। कितनी बार वह गाड़ी के नीचे दबते २ बच गया? गाड़ी वाला उसे गाली देकर चला गया! परन्तु किसी भी ओर उसका ध्यान नहीं गया। "श्री-श्री—" के अतिरिक्त उसके मनमें और कुछ भी नहीं आया।

कुछ रात होजाने पर वह क्लान्त होकर नदी के घाट पर आकर खड़ा होगया। वह अनिमेष नेत्रों से नदी के स्तब्ध जल की ओर देखता रहा। "नदी के जल में क्या नाम पाया जायगा? कदाचित ऐसा हो सकता है—" यह बात भोला के मनमें दो बार आयी। इसके पश्चात सीढ़ियों से उतर कर उसने पानी के पास जाकर अंजुली भर पानी पिया। यह क्या नदी का जल उसे अपनी ओर खींच रहा है! क्या वह गुमे हुए नाम का पता बतादेगा! वह अब निश्चित् न कर सका केवल नदी के जल में कूद कर डूब गया। फिर पानी के ऊपर उठ कर बहने लगा। क्षण भर में वह अनायास

ही ! चिल्ला उठा " मिल गया, मिल—गौ हैमचन्द्र—गौ देव—! "

घाट पर आदमी न थे। नदी में नौका नहीं थी। स्तब्ध जल पर तटवर्ती दीपकों का प्रकाश और आकाश के तारों की छाया पड़ कर नाच रही थी। एक बार एक शब्द हुआ, क्षण भर पानी हिल डुल कर सीढ़ियों से टकराया और इसके पश्चात सभी निस्तब्ध हो गया। *

---

* श्री हेमन्त चाटोपाध्याय लिखित एक कहानी का अनुवाद।

प्राप्ति स्वीकार और समालोचना ।

जातीय संगठन ।

(सम्पादक—पं० कुंवरलाल जी न्यायतीर्थ)

प्रकाशक ताराचन्द करिया आगरा। मूल्य सदुपयोग प्रस्तुत पुस्तक उत्कर्ष लेख माला का प्रथमांक है इसमें भिन्न भिन्न लेखकों के लेख और कविताएँ हैं लेख प्रायः अच्छे हैं प्रत्येक जाति प्रेमी को पुस्तक पढ़ना चाहिये ।

मुख पृष्ठ के ऊपर दी हुई कविता अगर न दी जाती तो भी अच्छा था फिर भी प्रयत्न प्रशंसनीय है ।

जातीय सुधार ।

सम्पादक प्रकाशक मूल्य सब वही यह उत्कर्ष लेखमाला का द्वितीयांक है यह भी लेख और कविताओं का संग्रह है ।

दोनों अंकों में मुख्यतः लमेचू जाति को लक्ष्य करके लेख लिखे गये हैं किन्तु अधिकांश बातें सभी समाजों के लिये लागू हैं ।

क्षत्रिय ।

यह क्षत्रिय उपकारिणी प्रान्तिक सभा का प्रमुख त्रैमासिक पत्र है इसके सम्पादक हैं श्रीयुत रामचन्द्र शर्मा विद्यार्थी विशारद मूल्य १) रु०।

इसके लेख और कविताएँ प्रायः उत्तम हैं अंक में कलेवर इतना छोटा है कि इसको त्रैमासिक कहते हँसी आती है ।

देखने को लेख जो लखें न जीवन आपके ।
तो फेंक दूंगा लेखनी और फाड़ दूंगा पत्र को ॥

जातीय जीवन ।

की ज्योति जागृत करने के लिये इस वर्ष परवार-बन्धु नई सजधज के साथ प्रकाशित किया गया है । इसमें साहित्य, इतिहास, धर्म, उपन्यास, विनोद के लेख और कवितायें भी रहतीं हैं । इसका पहला और दूसरा अंक देखिये आगे भी प्रत्येक अंक में.

नवीन चित्र

रहेंगे । यह पत्र श्रीमान संरक्षकों की सहायता से घाटा सह कर चलाया जा रहा है इसलिये इसके प्रचार की दृष्टि से वार्षिक मूल्य भी तीन रुपया रक्खा गया है हम दावे के साथ कहते हैं कि जातीय पत्रों में

सबसे सस्ते और समय पर प्रकाशित होने वाले

व्यापक कोटि के पत्र

परवार बन्धु को आप अवश्य अपनाइये

शीघ्र ग्राहक बनिये और मित्रों को बनाइये

लखो बन्धुओ बन्धु आया तुम्हारा ।
गिरों का सहारा बड़ों का दुलारा ॥
इसे प्रेम से जो खरीदो पढ़ोगे ।
बनो ज्ञान आगार – आगे बढ़ोगे ॥

पता -

मास्टर छोटेलाल जैन

परवार बन्धु-कार्यालय,
जबलपुर सी. पी.

बस और देखिये

प्रार्थना

आवें विघ्न अनेक न उनसे कभी डरेगा।
निर्भयता का नाद समय पर बन्धु करेगा॥

प्रसन्नता की

बात है कि बन्धु के प्रेमियों ने हमारी पूर्व सूचना पर ध्यान देकर इसके ग्राहक बढ़ाने में पूर्ण प्रयत्न किया है। इतना ही नहीं किन्तु इस को आर्थिक हानि से बचाने और घर २ प्रचार बढ़ाने की दृष्टि से परवार सभा नागपुर के अधिवेशन में घाटा पूर्ति की अपील करने पर

१८ श्रीमान संरक्षक बन गये हैं।

अतः अन्तःकरण से यह आत्मा उनका आभार मानती है। और श्रीमान् सेठ पन्नालाल जी टडैया सभापति परवार सभा ने अपनी ओर से

२५ पंचायतों को परवार बन्धु मुफ्त में

देने की स्वीकारता देकर और भी उत्साहित किया है। इन्हीं सब कारणों से हमने समय की संकीर्णता रहने पर भी बन्धु के इस अंक में

४० की जगह ४८ पृष्ठ कर दिये हैं।

यद्यपि हमारा विचार इस अंक में सभापति महोदय का तथा और भी नवीन चित्र देने का था—किन्तु कलकत्ता से अब तक ब्लाक बन कर न आने के कारण निराश हो जाना पड़ा। अतः अब

होली का तीसरा अंक

पाठकों की सेवा में बहुत शीघ्र प्रेषित किया जावेगा। पाठकों से यह कहना अनुचित न होगा कि प्लेग के ऐसे समय में जब कि सब लोग अपने २ प्राणों की रक्षा के लिये यहां वहां भाग रहे थे तब कहीं अधिवेशन के पश्चात १ हफ्ते में— केवल समय पर प्रकाशित करने की दृष्टि से हम १ ले अंक की अपेक्षा यह दूसरा अंक कहीं और भी आपत्तियों का साम्हना करके पाठकों के पास उपस्थित कर सके हैं। अस्तु,

अन्त में प्रार्थना है कि जिन्हों ने अभी तक पत्र का मूल्य नहीं भेजा है वे सज्जन

तीन रुप्या मनिआर्डर द्वारा

भेज कर वी० पी० का व्यर्थ खर्च बचाने की कृपा करेंगे। तथा जिनको परवार बन्धु का १ ला अंक प्राप्त न हुआ हो वे मंगा लेवेंगे।

प्रार्थी का पता—
मास्टर छोटेलाल जैन
प्रकाशक—परवार बन्धु
जबलपुर.

विषय सूची।

उद्देश्य और नियम।

१—समाज में विशेषतः परवार समाज में नवीन जागृति उत्पन्न कर समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करना "बन्धु" का प्रधान लक्ष्य है।

२—बन्धु में सर्वोपयोगी साहित्यिक, ऐतिहासिक और धार्मिक लेख भी अवश्य रहा करेंगे।

३—धर्म विरोधी लेख बन्धु में स्थान न पासकेंगे।

४—लेख भेजने के लिये प्रत्येक लेखक को सादर निमन्त्रण है।

५—बन्धु की वार्षिक घाटा पूर्ति में भाग लेने वाले संरक्षक, २५) या उस से अधिक वार्षिक सहायता देने वाले सहायक और ३) वार्षिक देने वाले ग्राहक समझे जावेंगे।

६—संरक्षक और सहायकों का नाम बन्धु के प्रति अंक में प्रकाशित होता रहेगा.

७—बदले के समाचार पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें, लेख कविता आदि, "सम्पादक परवार बन्धु जँवरी बाग इन्दौर" के पते पर भेजना चाहिये।

८—प्रबंध विज्ञापन आदि के लिये नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करना चाहियेः—

मास्टर छोटेलाल जैन
दि. जैन शिक्षामन्दिर
जबलपूर, सी० पी०

विज्ञापन दाताओं के लिये।

विदित हो कि परवार बन्धु परवार सभा का मुखपत्र होकर के भी ऐसे श्रीमान संरक्षकों और सहायकों की पूर्ण सहायता पर निकाला जा रहा है कि जिनका उद्देश्य घाटा सहकर भी इसका प्रचार झोपड़ी से लगाकर महलों तक करने का है। और जैन जनता के अतिरिक्त ऐसे अजैन लोगों की दृष्टि में भी आता है कि जिनके यहां नित्यप्रति सैकड़ों रुपयों का माल आया जाया ही करता है अतः व्यापारियों को विज्ञापन देकर लाभ उठाना चाहिये।

विशेष सहायता मिलने के कारण

विज्ञापन की छपाई कुछ समय को कम कर दी है अतः विज्ञापन दाताओं को शीघ्रता करना चाहिये।

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई —८)
१/२ ,, या १ ,, ,, —५)
१/४ ,, या १/२ ,, ,, —३)
१/८ ,, या १/४ ,, ,, —)
कवर के चौथे पृष्ठ ,, —१२)
,, ,, तीसरे ,, ,, —१०)

नोट—(१) विज्ञापन छपाई का दाम पेशगी लिया जाता है। (२) विज्ञापन के बिना देखे स्वीकृति नहीं दी जाती।

ताः १८ फर्वरी सन् २४ के नागपुर षष्ठम परवार अधिवेशन में सहर्ष स्वीकारता देने वाले

परवार बन्धु के संरक्षक।

१—श्रीमान श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्द जी सिवनी.
२—श्रीमान सिंगई पन्नालाल जी अमरावती.
३—श्रीमान बाबू कन्हैलालाल जी अमरावती.
४—श्रीमान ठाकुरदास दालचंद जी अमरावती.
५—श्रीमान नत्थूमल जी साव जबलपुर.
६—श्रीमन बाबू कस्तूरचंद जी बी. ए एल. एल. बी. वकील जबलपुर.
७—श्रीमान सिंगई कुंवरसेन जी सिवनी.
८—श्रीमान चौधरी दीपचंद जी सिवनी.
९—श्रीमान फतेचंद दीपचंद जी नागपुर.
१०—श्रीमान सिंगई कोमलचंद जी आर्वी.
११—श्रीमान गोपाललाल जी आर्वी.
१२—श्रीमान पं० रामचन्द्र जी आर्वी.
१३—श्रीमान खेमचंद जी.
१४—श्रीमान सरकलाल झब्बूलाल जी.
१५—श्रीमान कन्हैयालाल जी डोंगरगढ़.
१६—श्रीमान सोनेलाल जी नवापारा.
१७—श्रीमान दुलीचंद जी.
१८—श्रीमान मिट्ठनलाल जी.

सहायक,

१—श्रीमान रामलाल जी साव २५)

वर्ष २ | फ़र्वरी सन् १९२४ ई० | संख्या २

वसन्तागमन ।

मोह ।

ऊषा के निर्मल अञ्चल से
ओसों की मुक्ता का हार ।
अरुणोदय की प्रथम किरण में
किसने पाया वह उपहार ?
परिवर्तन में प्रतिबिम्बित हो
बिथराया अमृत का विन्दु ।
क्या अपनी सम्पूर्ण कलाओं
से दे सकता उसको इन्दु ?
जागृत कर दी मधुर रागिनी
निखिल सरस स्वर हुए पुनीत ।
अनायास ही जब ऊषा के
अधरों पर फूटा सङ्गीत ॥

स्वप्न ।

खिले हुए नव प्रसून दल का
पाने को मादक मकरन्द ।
जब आये कुछ मत्त मधुप तब
कर डाला अवगुण्ठन बन्द ॥
भावों की उत्तेजित वहिया
रमणी का विकसित उल्लास ।
स्निग्ध सभय हो गया अचानक
मनुहारों का मुक्त विकास ॥
इस अखण्ड सौन्दर्य राशि से
विन्दु मात्र का मिला न दान ।
असमय में ही प्रिय जीवन-धन
हुए दृष्टि से अन्तर्द्धान ॥

दर्शन ।

अपनी प्रतिभा, छलना का या रस-धारा का वेग अनन्त ।
उज्ज्वल करके नियत काल में चाही तुमने भिक्षा अन्त ॥
ऊषा से आकर कहलाया—मुखरित तुमने किया दिगन्त ।
धन्य किया क्षणभर में मुझको हे मेरे प्रिय कान्त वसन्त ॥

जबलपुर, वसन्तपंचमी, सं. ८०

मंगलप्रसाद विश्वकर्मा ।

भारतीय पुरातन न्याय पद्धति।

(लेखक—श्रीयुत पं० गोविन्दराव जी काव्यतीर्थ)
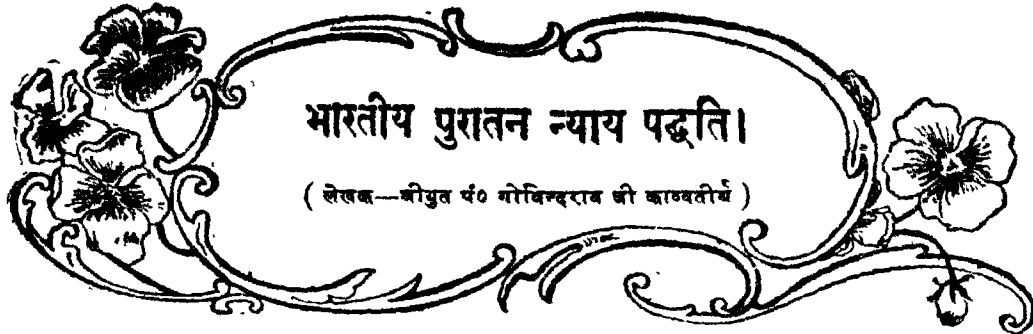
नये २ विज्ञान की जननी इस बीसवीं शताब्दी में पाठकों को इस विषय की जिज्ञासा अवश्य रहती होगी. कि अतीतकाल में भारतवर्ष में कैसी नीति प्रणाली प्रचलित थी। क्योंकि अतीतकाल में भारत जैसा अन्य विषयों में बढ़ा चढ़ा था उसी प्रकार इस विषय में भी विश्व के लिए आदर्श रहा होगा। न्याय पद्धति किन २ लक्ष्यों को लेकर कहाँ कहाँ पर किन किन के द्वारा किन२ साधनों से की जाती थी ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर इस लेख में ऐतिहासिक साधनों द्वारा दिया जायगा।

भारत में न्याय पद्धति निम्नलिखितः—

लक्ष्य।

को हृदयस्थ करके चलाई जाती थी। तराजू की डण्डी का यह स्वभाव होता है कि जिस ओर बेशी वजन होता है उसी ओर वह झुक जाती है। तथा जिस तरफ कम भार होता है उसी तरफ वह ऊंची हो जाती है, इस क्रिया के करते समय तुला दण्ड को जरा भी किसी पदार्थ की तरफदारी नहीं होती। वह तो प्रारम्भ में सब को एकही भाव से ग्रहण करता है। किन्तु पदार्थों के गुरुत्व और लघुत्व के कारण उनमें हल्का भारीपन होता है। तराजू की डण्डी तो केवल उनके इन गुरुत्व और लघुत्व गुणों की-वाद को अभिव्यञ्जिका भर होजाया करती है। क्योंकि उसके दोनों छोर एक से ही होते हैं। इसी प्रकार अर्थपति अर्थात् राजा सारी प्रजा को एकही दृष्टि से देखता है क्योंकि उसका विरुद समवर्ती है। जिस प्रकार मनुष्य को पांचों अंगुलियां प्यारी हैं उसी प्रकार राष्ट्रपति को सारा राष्ट्र और उसके सब आङ्गोपाङ्ग प्यारे है। कारण उन सबकी मङ्गलमय कामना वह अहर्निश किया करता है। ऐसी हालत में कोई विवेकी उसको पक्षपात के कलङ्क से कलङ्कित नहीं कर सका। रहा अपराधी को दण्ड देना और न्याय पक्षाश्रित को न्याय देना सो उसका यह पक्षपात नहीं किन्तु धर्म है क्योंकि वह समग्र देशकी शान्ति और न्याय का ठेकेदार है। और इसके लिये उसका उपमान तुला दण्ड ऊपर लिखा ही जा चुका है। यदि अन्यायी का पक्ष खण्डित होता है तो इसमें अन्यायी का अन्याय ही कारण है न कि राजा का व्यक्तिगत द्वेष। तथा न्याय पक्ष वाले को यदि राजा की तरफ से न्याय मिलता है तो इसमें निदान उसका न्याय पक्ष ही है। न कि राजा का उसके प्रति प्रेम। यदि मनुष्य को गौरव प्राप्त करना है तो वह गुणों को उपार्जन करे। हर एक व्यक्ति के लिए राजा की तरफ से उस को इस काम करने के लिये मुक्त द्वार

है। यदि उसमें लघुता जनक गुण है। तो राजा की ओर से वह सदैव लघु ही रहेगा। सारांश यह है कि राजा का किसी के प्रति द्वेष नहीं है। वह तो सब का अच्छा ही चाहता है। किन्तु सब मनुष्य एक से नहीं हो सके इस कारण वह सब को गौरव भरी दृष्टि से भी नहीं देख सका, तथा सब को उनके मनके माफिक फैसला भी नहीं दे सका। उसके पास तो गौरव और लाघव दान की कसौटी मनुष्य के गुण दोष ही हैं। जिधर ही वह गुण देखता है उधर ही वह झुकजाता है और जिधर ही वह दोषों को देखता है उधर ही से वह विमुख हो जाता है।

न्यायाधीश का कर्तव्य।

है कि वह एक से अपराधियों को एकसा दण्ड देवे अन्यथा पक्षपाती कहलायगा, समवर्ती न रह सकेगा। समवर्ती शब्द का अर्थ यमराज भी होता है इस कारण राजा यम बनकर अपराधियों को उनके अपराध के बदले में फल भोग कराता है इस बात को अपराधी अपराध करने के पहिले ही सोचले। यदि अपराधी को कठोर दण्ड देना है तो वह कुछ बुरा नहीं करता है। अपनी प्रसिद्धि के अनुसार ही कार्य करता है। ऐसी हालत में अपराधी का कठोर दण्ड प्राप्त होने पर राजा को दोष देना कभी ठीक नहीं।

जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में वस्तुएं ज्यों की त्यों दिखाई देती हैं उसी प्रकार जिनके न्याय में बात ज्यों की त्यों मालूम पड़े, दूध का दूध पानी का पानी हो वे ही न्याय सभा के सदस्य हो सकते हैं। जिनको* इस काम के करने में प्रतिभा नहीं है वे इस के योग्य नहीं हो सके—

न्याय सभा की रचना।

इस भांति होती है। राजा या राज प्रतिनिधि, न्यायाधीश (अध्यक्ष) अमात्य और पुरोहित। किसी २ के मत से इनके सिवाय ३ और सभासद् न्याय सभा में निर्वाचित रहते हैं। दो मुन्शी भी रहते हैं। जिनमें एक नाजिर का काम करता है और दूसरा मुन्शी का एक अर्दली भी रहता है वादी, प्रतिवादी और गवाहों को बुलाना तथा उनकी रक्षा करना इसी का काम है।

राजा सब जगहके न्यायालयों में उपस्थित नहीं हो सका, इसलिये राजा की तरफ से उन स्थानों में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य में से कोई एक प्रतिनिधि बनकर रहता है। इस प्रकार के प्रतिनिधि के दो और सहायक (असेसर) होते हैं इन तीनों को ही अमात्य (न्यायसचिव) नाम से पुकारते हैं।

न्यायालय—निम्न लिखित चार स्थानों में होते§ हैं जनपद संधि, संग्रहण, द्रौणमुख और स्थानीय।

---

*टिप्पणी लोक वेदज्ञधर्मज्ञाः सप्त पञ्च त्रयोऽपि वा। यत्रोपविष्टाविप्राः स्युः सा यज्ञसदृशी सभा॥ व्यवहारान् नृपः पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सह, श्रुत्यध्ययनसम्पन्ना धर्मज्ञाः सत्यवादिनः॥ राज्ञा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः॥

याज्ञवल्क स्मृति। २ वक्ताऽध्यक्षो नृपः शास्ता सभ्याः कार्यपरीक्षिकाः गण को गणयेदर्थं लिखेन्न्यायं च लेखकः। शुक्रनीति।

३ प्रमाण में मृच्छकटिक नाटक को देखिए।

§ टिप्पणी धर्मस्थास्त्रयोऽमात्या जनपदसंधि संग्रहण द्रोणमुख स्थानीयेषु व्यावहारिकान् कुर्युः

जनपदसंधि—यह सीमा प्रान्त का प्रधान स्थान होता है। इस जगह का हाकिम अन्तपाल कहलाता है, इसका वार्षिक वेतन १२०००) रहता है। यहां के मुकद्दमों को तय करने के लिये यहीं एक अदालत रहती है।

$संग्रहण—यह आसपास के १० ग्रामों में प्रधान स्थान होता है इस ग्रामों के प्रबंध और रक्षा के लिये इसमें खास तरह का राजा की तरफ से इन्तजाम रहता है। यहां का हाकिम गोप कहलाता है जिसकी वार्षिक तनख्वाह १०००) होती है।

द्रोणमुख—यह चारसौ ग्रामों के ऊपर एक मुख्य स्थान रहता है शब्दान्तर में यों कहना चाहिये कि यह उस राज्य शासन का केन्द्र है जिसके मातहत ४० संग्रहण रहते हैं। यहां का प्रधान अधिकारी प्रदेष्टा (तहसीलदार) नाम से पुकारा जाता है। इसका वार्षिक वेतन ८००० होता है।

स्थानीय—यह ८०० ग्रामों के ऊपर होता है। इसके नीचे दो द्रोणमुख रहते हैं यहां पर राजा की तरफ से एक दुर्ग अवश्य रहता है। यहां के शासक का नाम समाहरता (कलेक्टर) होता है। यह आजकल अंग्रेजी राज्य में जिला कहलाता है समाहरता वेतन २४ हजार वार्षिक होता है। स्थानीयस्थ न्यायालय के अधिपतिका वेतन १२००० होता है।

ऐसे पुरुष न्यायालय के सदस्य (असेसर) नहीं हो सके जिनको न तो व्यवहारों (मुकद्दमों) की शिक्षा ही मिली है। और न जिनको उनका अनुभवही है। अथवा जो वादी के बैरी हैं अत्यन्त क्रोधी या लांच लेने वाले हैं

क्योंकि लोभ पक्षपात के कारण यदि यथार्थ न्याय न होतो सभ्यसंघ तथा सभापति (राजा) की तुरन्त मानहानि तथा धन हानि होती है। सब जगह अपयश का ढिंढोरा पिटता है। इसलिये अर्थपति और न्यायालय के सदस्य कभी भी लोभ तथा पक्षपात के फंदे में न फसे।

उस जगह विवाद (मुकदमा) खड़ा करने से क्या लाभ है जहां पर स्वयं न्यायाधीश ही प्रत्यार्थी अर्थात मुद्दाहला है तथा जहां पर सभ्य (असेसर) और सभापति (न्यायालय के हाकिम) में अनबन है। वहां पर भी मुकदमा दायर करने से कुछ लाभ नहीं है। क्योंकि सभापती की सदस्यों की अधिक सम्मति के आगे कुछ न चल सकेगी। असमञ्जसता के कारण वे इसके विरुद्ध हुए बिना भी न रहेंगे।

तब ऐसी हालत में सत्य का निर्णय क्यों कर हो सका है। क्या बहुत आदमियोंने मिलकर बकरे को कुत्ता नहीं बना डाला था। इसकी कहानी पञ्चतंत्र में इस प्रकार लिखी है। :—

$ कौटिलीयार्थ शास्त्र ३ अधिकरण १ अध्याय २ कौटिल्य के मत से दोसौ ग्रामों के ऊपर अर्थात् बीस संग्रहणों के ऊपर खार्वटिक होता है, वहां का प्रधान हाकिम स्थानिक कहलाता है। पर खार्वटिक में न्यायालय नहीं होता।

कि कोई मित्र शर्मा नामका अग्निहोत्री ब्राम्हण यजमान के घर से बलि देने के लिए बकरा को अपने घर लिए जा रहा था। उस समय माघ का महीना था। तथा मावुट भी पड़ रही थी। रास्ते में उसको तीन धूर्तों ने जो कि क्षुधा से बहुत पीड़ित थे, जाते देखा। वे तीनों पुरुष आपस में सोचने लगे कि यार देखो तब चतुराई है जब इस ब्राह्मण का छाग छीनलो। इस एक बकरा से हम सभी की भूख भी मिट जावेगी। तथा आजका जाड़ा भी कट जावेगा। तब वे आपस में सलाह कर फैल फुट हो गये। और चरक कर उस ब्राह्मण से आगे निकल गये। कुछ दूर जाकर उनमें से एक ब्राह्मण के साम्हने खड़ा होकर कहने लगा कि कहो महाराज यह क्या लोक विरुद्ध हँसी का काम करते हो। जो उसको कांधेपर रख कर लिये जारहे। तो ब्राह्मण ने क्रोध में आकर उत्तर दिया। कि मूर्ख! अन्धा है जो बकरा को कुत्ता कहता है। इस पर धूर्त ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण देवता गुस्सा क्यों होते हो। यदि तुम को यही पसंद है। तो भले ही रक्खे जावो।

कुछ दूर चलने पर ब्राह्मण को दूसरा धूर्त मिला और बोला कि पंडित यह तुम्हारा बछड़ा कैसे मरगया है। और इसकी लाश को तुम कंधेपर क्यों रक्खे फिरते हो। कहीं कोई मुरदा को भी छूता है! इसको छोड़ दो लोक निंद्य काम अच्छा नहीं होता। इस पर ब्राह्मण ने उसको भी वही उत्तर दिया कि मूर्ख अंधा है। जो यज्ञ के पशु को मृत्यु वत्स बतलाता है।

इसके बाद द्वितीय धूर्त बोला कि भटजी बिगड़ते क्यों हो हमने अच्छी बात कही है अब जो तुमको रुचे सो करो। वहां से कुछ दूर चलने पर तीसरा ठग मिला और बोला कि गुंसाई जी क्या अक्ल मारी गई है। जो गधे को कंधे पर रखे फिरते हो। कोई तो छूता भी नहीं है। तुम सिर पर लादे हो इस तीसरे धूर्त की बात सुनकर ब्राह्मण भ्रम में पड़ गये। और सोचने लगा कि असलमें यह बकरा नहीं है। किन्तु कोई भूत है जो बार बार अपने रूप को बदलता है। सो डर कर उस छाग को वहीं पटककर भाग गयः और तीनों धूर्त उस बकरे को उठा ले गये इसलिए अधिक सम्मति ही प्रबल रहती है। और उसी की जीत होती है।

प्राचीन समय में आज कल की तरह न्यायाधीश, जज अपने अन्य सभ्यों की (असेसरों) अधिक सम्मति की अवहेलना नहीं कर सका था और तो क्या राजा भी विरुद्ध पक्ष में होकर सभ्यों की बहुत सम्मति के आगे टिक नहीं सका था प्रमाण में सम्यक कौमुदी नामक संस्कृत कथा ग्रन्थ को देखिये :—

"उसमें एक जगह वर्णन है कि एक राजा अपने शत्रु को पराजित करने के लिये बाहर बाहिर गया था जाते समय वह राज्य रक्षा का भार यमदण्ड नामक अपने एक कोतवाल को सौंप गया बाद कुछ वर्षों के जब वह लौटा तो अपनी प्रजा के जिस आदमी से पूछता कि कहो कुशल से तो रहे? वही उत्तर देता कि हां! यमदण्ड की कृपासे बड़े आनन्द में रहे। असल में बात यह थी कि यमदण्ड शासन कार्य में बड़ा दक्ष था! उसने चार्ज लेते ही ऐसा लोक रञ्जक शासन किया कि सारी प्रजा मंत्र मुग्धसी होकर उसके वश में होगई।" यमदण्ड के इस गुण की राजा ने कुछ कदर नहीं की बल्कि वह उसका उलटा बैरी होगया। एक दिन उसने

मंत्री और पुरोहितके साथ राज कोष की चोरी की, और अपने कर्त्तव्यका ठीक पालन न करने का अपराध यमदण्ड पर लगाया। साथही यह भी कहा कि यदि तुम चोर का पता सात दिन में न लगा दोगे तो तुमको फांसी मिलेगी। कोतवालने जाँच परताल की तो सारी करतूत राजा मंत्री और पुरोहित की मालूम हुई क्योंकि चोरी करते समय राजा का खड्ग मंत्री की खड़ाऊँ और पुरोहित का यज्ञोपवीत अटरी में छूट गया था। यमदण्ड सातों दिन एक न एक कहानी राजा को ढंग कर सुनाता रहा कि राजा अब भी समझ जाय परन्तु राजा की अकल ठिकाने नहीं आई कोतवालने सब दरबारियों से न्यायके लिये प्रार्थना की। और उनके सामने जाचक खड्गादि पेश किये दरबारियों ने राजा मंत्री और पुरोहित को अपराधी जानकर राज्य से निकलवा दिया।

न्यायाधीश।

अर्थी या प्रत्यर्थी के निम्न लिखित लक्षणों पर अवश्य ध्यान दे क्योंकि वह झूँठा होता है इसलिए उसे मानसिक उत्साह कभी नहीं होता।

मुकद्दमा खड़ा होने पर कचहरी (अधि-करण) में उपस्थित न होना, कचहरी की ओर से बुलायेजाने पर भाग जाना, पहिले कुछ और पीछे कुछ और बयान देना (पूर्वापर विरोध), अदालत के किसी पिछली बात के पूछने पर चुप हो जाना, ठीक बात को भी न मानना, अपने अपराध को छिपाकर दूसरे के अपराध को प्रकाशित करना, अदालत की उस यथार्थ बात से जो अपने विरुद्ध सी जान पड़ती हो द्वेष करना।

यदि न्याय सभा के सभ्य प्रतिवादी के साथ छल से बोलते हैं। उसके इजहार कपट से लेते हैं अथवा जान बूझ कर प्रत्यर्थी (मुद्दाइला) से यथेष्ट भाषण नहीं करते, उसके तर्क के साथ पूरे इजहार नहीं लेते, या उनमें अदालती ढंग से प्रश्न करने की चतुराई ही नहीं है तो वे अर्थी (दावा करने वाले) की हानि करते हैं, ऐसे भी सभ्य अर्थी को परिपन्थियों की कोटि में हैं।

धर्माधिकरण (इजलास) में तीन प्रमाण माने जाते हैं; दखल कब्जा (भुक्ति) गवाह, (साक्षी) और लेख्य (शासन) भुक्ति-यदि किसी पुरुष ने किसी भूमि को २० वर्ष तक बिना किसी रोक टोक के भोगा है—अपने कब्जे में रक्खा है तो ऐसी जगह अन्य सबूत (प्रमाण) न माने जावेंगे। सिर्फ अकेला भोग ही कारगर होगा। तथा इसी प्रकार किसी ने बिना किसी रोक टोक के किसी हाथी घोड़े को अपने कब्जे में १० वर्ष तक रक्खा है ऐसी जगह सिर्फ भोग ही प्रमाण माना जावेगा।

साक्षी—अर्थात् गवाह दो तरह के होते हैं एकतो विवदापन्न बातको स्वयं अपनी आंखों से देखने वाले, और दूसरे उसको स्वयं अपने कानों से सुनने वाले, कृत और अकृत के भेद से भी साक्षी दो प्रकार के होते हैं। कृत अर्थात् गवाह रूप में पेश किया हुआ और अकृत जो वादी या प्रतिवादी की ओर से साक्षी रूप में उपस्थित न किया गया हो। कृत के ५ और अकृत के ६ भेद होते हैं इस प्रकार साक्षी के कुल ११ भेद हुए। इन ग्यारहों का भी ब्यौरा सुन लीजिये:—

कृत साक्षी के ५ भेद

लिखित—जिसको मुद्दई या मुद्दाहले ने अपने अर्ज़ी दावे में या जवाब दावे में लिखवाया हो।

स्मारित—अर्थी ने जिसको अर्ज़ी दावे में दर्ज नहीं कराया है परन्तु कार्य के अनुसार वह अदालत को बार २ उसकी याद दिलाता है।

यदृच्छाभिज्ञ—जो आगन्तुक रूप में पहिले से ही अदालत में उपस्थित हो। यदि उस को भी अदालत अपनी इच्छा से साक्षी रूप में ले ले या बनावे तो वह इसी कोटि का गवाह कहलावेगा।

गूढ़—जिसको अर्थी अपना मतलब सिद्ध करने के लिए छुपाकर प्रत्यर्थी की बात सुनवावे।

उत्तर साक्षी—जो सफाई का गवाह हो ये पांच कृत साक्षी के भेद हैं।

अकृत साक्षी के ६ भेद ये हैं

ग्राम (सारागांव) सभ्य (वकील पेशकार वगैरह) राजा, और व्यावहारिक (न्यायाधीश मजिस्ट्रेट) अर्थी द्वारा भेजा हुआ आदमी, कुल्य (कोई खानदानी पुरुष)

शासन—अर्थात् लेख भी दो तरह* का होता है। एक तो राजकीय लेख (सरकारी कागज) और दूसरा प्रजा का लेख। प्रजा के लेख को चीरक भी कहते हैं। न्यायाधीश अर्थी प्रत्यर्थी के बयान जिस कागज पर लिखे उस कागज की खानापूरी इस प्रकार करें। संवत्सर, ऋतु, दिवस, करण, (दरबार) अधिकरण (अदालत), ऋण, वेदक (मुद्दई) और आवेदक (मुद्दाहला) का देश, ग्राम, जाति, गोत्र नाम और पेशा। इन खानों को पूरा करने के बाद वादी और प्रतिवादी के उन सवालों को जो प्रकरण संगत हों सिलसिलेवार लिखे, लिखने के बाद सोचकर फैसला लिखे।

यदि भुक्ति अर्थात् कब्जा बराजोरी से हो, गवाह बिगड़े हों, साक्षी सदोष हो और शासन अर्थात् दस्तावेज या खाता जाली हो तो मुकद्दमा समाप्त होने के बदले बढ़ता ही है। क्योंकि अदालत इन तीनों को अप्रमाण ठहराती है सो इन के बदले में वादी और प्रतिवादी को अन्य प्रमाण जुटाने चाहिये।

जबरदस्ती, अन्याय और राजा के बहाने से किया काम प्रमाण नहीं माना जाता। वेश्यादि अदालत में यह दावा करें कि मेरे अमुक यार ने मुझ को भोगने के बदले में अब तक वह रुप्या नहीं दिया है जो उसने देने का वायदा किया था। तथा इसी प्रकार जुआरी यह दावा करे कि अमुक पुरुष मेरे उस द्रव्य को जो उसने जुआ में हारा है, नहीं देता है। तो अदालत इन दोनों के दावाओं को खारिज कर देगी क्योंकि ऐसे दावा कानूनन नहीं समझे जाते। वेश्या ने अपने यार से जो कुछ ले लिया वही कानूनन उसकी चीज़ है। तथा जुआ खेलते समय जुआ में जो जीत कर ले लिया वही उसकी न्याय सिद्ध द्रव्य है अन्य नहीं।

बिना साई (पेशगी) के देन लेन में मुकद्दमा नहीं चल सका। धरोहर नष्ट होजाने से यदि

---

*टिप्पणी लेख्यन्तु द्विविधंज्ञेयं स्वहस्ता न्यकृतं तथा, असाक्षिमत्साक्षिमच्च सिद्धिर्देशस्थितेस्तयोः। लेखक

निक्षेपी साहूकार पर दावा करे तो गवाहों के कथनानुसार अदालत उसकी धरोहर का असली मूल्य साहूकार से दिलवादे। और यदि गवाह न हों तो उन दोनों को कसम दिलाकर ठीक २ निर्णय कर दे। विनष्ट धरोहर को सत्यसिद्ध करने के लिये जो गवाह अदालत में उपस्थित होता है वह ऐसा वैसा नहीं होता है किन्तु वादी और प्रतिवादी दोनों का विश्वास पात्र होता है। चाहे वह नीच जाति ही का क्यों न हो। वही दिव्य करके (परमात्मा की शपथ करके) सत्य निर्णय कराता है।

जो पुरुष दूसरे की द्रव्य का उपभोग करता है या अपलाप करता है कि मैंने नहीं ली है वह शपथ (लड़के वगैरह की कसम), कोश-पान (अपने इष्टदेव का चरणामृत) गन्धोदक को तीन चुल्लू भर कर पिये (परमात्मा की कसम को करे)

अदालत द्वारा की गई तण्डुल, कोष, तप्तमाषादि क्रियाओं से जो पहिले किसी प्रकार शुद्ध तो सिद्ध हो गया है तथापि बाद को जो पापी ही सिद्ध हुआ है ऐसे व्यक्ति का सिर्फ प्राण छोड़ कर सारा धन हरण कर लेना चाहिये।

वेश्याओं के उस्ताद, वैरागी, नास्तिक (परलोक को न मानने वाला चार्वाक) अपने वंशाचार से च्युत और पतित पुरुषों से अदालत कभी परमात्मा की कसम न लेवे। क्योंकि ये दुष्ट पुरुष परमात्मा से कुछ भय नहीं खाते हैं इस लिये इन से शपथ लेना व्यर्थ ही है। दोनों मुकदमों को खारिज करना या बहाल रखना यह काम खूब विचार कर ही करना चाहिये।

न्यायाधीश भाषा पत्र (अर्जी दावा) और उत्तर पत्र (जवाब दावे) को अच्छी तरह विचार कर न्याय करे। भाषा पत्र में-वादी न्याय सभा में आकर न्यायाधीश को अपनी अर्जी सुनाता है। और उत्तर पत्र में अर्जी दावा सुनने के बाद प्रतिवादी जवाब देता है। उत्तर पत्र को आज कल जवाब दावा कहते हैं। यदि वादी और प्रतिवादी धर्माधिकरण (अदालत) में न आकर स्वयं विवाद करने लगे तो उनका यह झगड़ा कई पुश्तों तक भी पूर्ण न होगा. क्योंकि उन दोनों के उत्तर प्रत्युत्तर का तांता कभी टूटेगा ही नहीं वह तो सदैव अनन्त ही रहेगा। इसलिये मुद्दई मुद्दाहलों को आपस में न झगड़ना चाहिये। किन्तु न्यायाधीश से तै करा लेना चाहिए।

अदालत में कोई किसी की जगह व्यर्थ न आवे जावे किन्तु जिसकी जो जगह निश्चित है वहीं पर वह आवे जावे। तथा वहां पर आपस में बात चीत भी न करे चुप चाप अपना काम करता रहे। ग्रामीणों और पुर-वासियों के आपस के व्यवहार में विवाद आन पड़ा हो तो पहिले उसे अपने गांव में आपस ही में चुका लेना चाहिए जब वहां भी न चुके तब राजा के पास जाना चाहिये।

राजा ने जिस मुकद्दमा को देखलिया उसमें कुछ दोष नहीं रहा इस कारण उसकी आगे अपील नहीं हो सकि। राजाकी अथवा न्याय सभा की आज्ञा को कोई व्यक्ति अनिवार्य कारण के बिना भी न माने उसको राजाकी ओर से या अदालत की ओर से दण्ड अवश्य मिलना चाहिये। क्योंकि दुराचारियों को विनित करने का दण्डसे बढ़कर और कोई अच्छा साधन नहीं है। टेढा बांस आग में

अपनाने से ही सीधा होता है। यदि राजा या अदालत दया बुद्धि कर आज्ञा भंग करने वाले को दण्ड दिये बिनाही छोड़ देंगे तो इसी प्रकार उसकी देखा देखी सभी उसकी आज्ञा भंग करने लग जावेंगे। क्योंकि कि सीधेका सबकोई अपमान करने को उतारु हो जाता है क्या देखा नहीं है कि लोग जिस प्रकार सीधे वृक्ष को काटते हैं उस प्रकार बांके वृक्ष को नहीं काटते हैं। कहावत है कि "टेढ़ जान शङ्का सब काहु, वक्र चन्द्रमा ग्रसे न राहु"। इसलिये मनुष्य को कभी कभी टेढ़ा होना चाहिए।

यदि कोई ऐसा मौका आपड़े कि आज्ञा भंग करने वालेको क्षमा कर देने से राजा का महत्व बढ़ता है तो ऐसे अवसर पर राजा उसे अवश्य क्षमा कर दे क्योंकि समर्थ का अपराधी को क्षमा का दान देना आत्म तिरस्कार नहीं किन्तु आत्म गौरव प्रकाश करना है

अपने विरुद्ध चलने वाले को जिस प्रकार सर्प तुरन्त डसता है उसी प्रकार अपने विरुद्ध चलने वाले को फौरन दण्ड देता है उस राजा से सब कोई डरता है उसके विरुद्ध चलने का कोई भी साहस नहीं करता।

राज दूत ऐसे राष्ट्र संघ की गोष्टी को जो सभा युद्ध समाप्ति के बाद आपस में निवटेरा करने के लिये राजाओं की हुआ करती है कभी खड़ा न करे या उस में शामिल न हो जिसमें शत्रुओं का आतंक छा रहा हो क्यों कि उसमें शत्रु ओं के दबाव के कारण अपनी भलाई की आशा बिलकुल नहीं होती है राजा इस सन्धि-परिषद् में अपने ऊपर की दोषापत्ति को हटाकर शत्रु के ऊपर दोषारोपण करे कि इस युद्ध के आदि कारण तुमही हो। और स्वामी की बढ़ती को अच्छी तरह जानकर ही राष्ट्र संघ को (गोष्टी को) यदि राष्ट्र संघ के जन्म से स्वामी का अहित ही हुआ तो उससे तो बिना गोष्टी के ही स्वामी अच्छा इस बात का ख्याल राजदूत को अवश्य रखना चाहिए। संधि परिषद् में राजदूत अपने स्वामी के पक्षपात में किसी दूसरे को चाहे वह सच कहता हो या झूंठ डांटे डपटेना।

रुपये पैसे का लेन देन और एक जगह का रहना ये दोनों बिना कलह के नहीं हो सकते। जहां रुपये पैसे का सम्बन्ध हुआ कि घनिष्ट से घनिष्ट मित्र के साथ लड़ाई हो जाती है तथा सहवास के कारण सहवासी के साथ भी कभी न कभी अवश्य खटक हो ही जाती है।

यदि अकस्मात् कोई खजाना मिलजाय या ऐसी ही कोई नई आमदनी होजाय तो ये दोनों मनुष्यों के प्राणों के साथ २ उसके पूर्व के संचित धन को भी ले बैठती है ऐसे लाभ को मनुष्य शकुन के रूप में न समझे।

स्वर्ण या यज्ञोपवीत को स्पर्श कर ब्राह्मणों को शपथ करनी चाहिए। शस्त्र, रत्न, पृथ्वी, घोड़ा (वाहन) और पलँचा इन चीजों में से किसी एक को छूकर क्षत्रिय शपथ करे। कुबेर की प्रतिमा, जहाज, छदाम स्वर्ण इन वस्तुओं में से एक किसी को छूकर वैश्य सौगन्ध करे। शूद्र को बीज अन्न,का दूध, और बामी की शपथ करनी चाहिए नौकरों में-कोरी-धोबी सुनार, तमेरा, छिपी जो जिस कर्म से आजी-विका करता हो उसे उस कर्म के उपकरणों को छूकर शपथ करना चाहिए। व्रती तथा अन्य पुरुषों की विशुद्धि अपने २ इष्ट देव के चरण स्पर्श से, उसकी प्रदक्षिणा देने से, दिव्य क्रिया से, कोशपात्र से, तंदुल भक्षण से, तथा तराजू पर तुलने से होती है। और भील अपने

मनुष लांघ जाय यही उसकी सौगंध है। एकाक धर्म के ऊपर चढ़ जाने से चाण्डाल की शपथ हो जाती है। *

उपालम्भ और आव्हान।

(उपजाति-वृत्त)

[१]

देवेन्द्र ! माहात्म्य अपूर्व तेरा,
तथैव सामर्थ्य अटूट तेरा,
सत्कीर्ति तेरी सुनते सुनाते-
शताब्दियाँ बीत गईं यहां हैं ॥

[२]

किया यशो-गान महा तुम्हारा,
पूजा करी अर्घ तुम्हें उतारा !
पड़े महा कष्ट तभी पुकारा;
आए नहीं हो पर एक बार !!

[३]

था प्रेम अत्यंत तुम्हें यहाँ का
आते सदा थे तुम बार बार,
दीनों दरिद्रों दुखिया जनों की
सहायता खूब किया करो थे ॥

(रोला-छंद)

[४]

भारत का क्या ध्यान तुम्हें अबतक नहिं आया ?
हुआ नहीं क्या ज्ञान, यहाँ दुख कैसा छाया ?
विषयों में था लीन हुए सब धर्म भुलाया ?
नहीं रही पर्वाह किसी की, प्रेम नसाया ?

[५]

अथवा तव सामर्थ्य आज सब हीन हुआ है ?
आज्ञामें नहिं देव, नष्ट ऐश्वर्य हुआ है ?
यदि इनमें से एक नहीं कारण ठहराओ
तो फिर इतनी देर हुई किस हेतु बताओ ?

[६]

देखो, भारत आज दुख दारुण सहता है,
सिसक सिसक कर प्राण दिये अपने देता है !
दुष्टों ने असहाय समझ इसको बांधा है,
इसका रक्त निकाल कार्य अपना साधा है !!

[७]

करुण रुदन से भी न तरस उनको आता है !
नहीं न्याय की भीख यहाँ कोई पाता है !
सुजनों का घर जेल बना है आकर देखो !
सत्य, प्रेम औ नीति-शांति सब दंडित देखो !!

[८]

ऋषियों की संतान हुई पददलित सभी है !
क्षात्र तेज है लुप्त, उठी मर्याद सभी है !!
स्वाभिमान मृत हुआ, गंध नहिं उसकी आती !
प्रण-दृढता की बात सुनी देखो नहिं जाती !!

[९]

तपो भूमियां शून्य पड़ीं हा ! देखो देखो !!
तीर्थ-भूमि अपवित्र हुई कैसी यह लेखो !
गोवध होता प्रचुर नहीं अब रोक किसी की !
होता अत्याचार घोर नहिं टोक किसी की !! १

[१०]

कर-भारों से पीठ देश की लदी हुई है !
फिर भी पड़ती मार होश सब उड़ी हुई है !!
मूर्छा आती कभी, कभी अँधियारी आती,
भूख सताती और वेदना मन घबराती ?

* नोट—यह समस्त लेख वाग्वधूवल्लभ सोमदेवसूरि के नीतिवाक्यामृत नामक राजनीत शास्त्र के आधार पर लिखा गया है।

[१२]

यों विह्वल है देश, हुआ पीड़ित अति भारी!
किं कर्तव्य विमूढ़ बना, सहता नित ख्वारी!!
लखकर यह सब दृश्य, फटी जाती है छाती!
होता हृदय विदीर्ण, तुम्हें क्या दया न आती?

[१३]

हो करके सामर्थ्यवान, क्या देख रहे हो?
क्यों नहिं आते पास? वृथा क्या सोच रहे हो?
धर्म पालना कठिन हुआ, अब देर करोगे-!!
तो तुम यह सब पाप भार निज सीस धरोगे।

[१४]

माना हमने भक्ति तुम्हारी नहीं रही है;
पर उसकी तो डोर तुम्हारे हाथ पड़ी है!
जो तुम चाहो उसे, एक अतिशय दिखलाओ;
क्षण भरमें हों भक्त सभी तुम पूजे जाओ!!

[१५]

यह भी माना धर्म-भावना नहीं रही है,
भारत में दुर्गंधि पापकी फैल गई है?
पर इस से क्या घृणा तुम्हें आने में होगी?
होकरके धर्मज्ञ धर्मपालन अनुरागी!!

[१६]

धार्मिक का कर्तव्य नहीं क्या धर्म चलाना?
पतितों को अवलम्ब दानकर शीघ्र उठाना?
इससे क्यों फिर विमुख हुए तुम होकर दाना?
किया नहीं उद्धार धर्म का निज मन माना!!

[१७]

भारत तो तव तीर्थभूमि औ पूज्य मही है;
लीला-धाम मनोज्ञ तुम्हारे लिये कही है!
इसही के सुप्रताप इन्द्र पद तुमने पाया,
तीर्थ-भक्ति क्या यही, इसे जो यों बिसराया?

[१८]

हो समर्थ अन्याय सहन करता नहिं कोई,
तुम कहलाते 'शक्र,' शक्तिक्या सारी खोई?
होते हैं उत्पात रात दिन इस पर भारी,
तुम हो निष्क्रिय मौन, यही क्या नीति तुम्हारी?

[१९]

देखो, तव अस्तित्व आज संदिग्ध हुआ है,
चर्चा करते लोग, तुम्हारा भय न रहा है!
निज पदस्थका ध्यान अगर कुछ भी तुमको है,
तो तुम आओ शीघ्र हरो भ्रम जो सबको है!!

[२०]

दिखलादो वह शक्ति पुराणों में जो गाई,
करो प्रकट वात्सल्य, छोड़ कर सब निठुराई!
भारत-तीर्थोद्धार तुम्हारे करसे होवे
तो तुमपर जो लगा पंक वह सब धुल जावे!!

[२१]

इससे आओ शीघ्र यहां अब देर न कीजे,
दुष्टों को दे दंड, धर्म की रक्षा कीजे!
कीजे ऐसा यत्न सभी नव जीवन पावें,
बन करके 'युग-वीर' पूर्व-गौरव प्रकटावें!!

जुगल किशोर मुख्तार,
सरसावा.
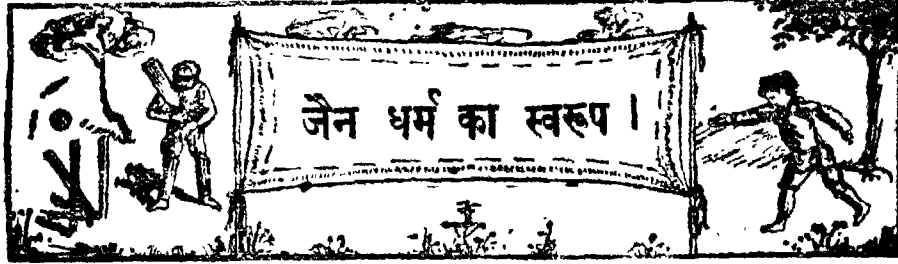
(लेखक—सि. गुलाबचन्द्र बैद्य, अमरावती।)

निश्चय या द्रव्यार्थिक नय ही जैन धर्म का अन्तरङ्ग स्वरूप-अध्यात्म वाद-परमार्थ है और व्यवहार या पर्यायार्थिक नय इसमें प्रवेश करने का साधनी भूत वाह्य स्वरूप है। अन्तर्बाह्य स्वरूप ही जैन धर्म का पूर्ण स्वरूप है। जो जैन धर्म के अनेकांत पूर्ण स्वरूप से अपरिचित हैं। ऐसे जैन धर्मानुयायी भी कभी २ इसके अन्तर्बाह्य (निश्चय-व्यवहार) स्वरूप में से किसी एक में पक्षपात या एकांत बुद्धि रखकर परस्पर का विरोध करते हुए नजर आते हैं। फिर परस्पर विरोधी भिन्न २ मतानुयायियों के विरोध की बात ही अलग। किसी भी नय की पक्षपात में जैन सत्यत्व (पूर्ण सत्य नहीं है)। जहाँ एक नय का पक्षपात है, वहाँ असत्य (मिथ्यात्व) अवश्य है। जहाँ पर परस्पर विरोधात्मक कथन है-"आत्मा बद्ध है, रागी है, द्वेषी है, कर्मों का कर्त्ता और पुण्य पाप रूप सुख-दुख के फल का भोक्ता है।"

"आत्मा न रागी है, न द्वेषी है, न बद्ध है, न कर्म का कर्त्ता है और न सुख दुःखादि का भोक्ता है वह अखण्ड चैतन्य मात्र है।"

इस प्रकार परस्पर विरोधात्मक कथन में जो पक्षपात या एकांत बुद्धि रखते है, वहाँ विरोध और वाद उपस्थित होता है। उस विरोध को मिटाने के लिये ही जैन शासन में स्य द्वा । की व्यवस्था है।

"उभय नय विरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके,
जिन वचसि रमन्ते ते स्वयं वान्त मोहाः।
सपदि समय सारं ते परं ज्योति रुच्चै,
रन वमनय पक्षा क्षुण्णमीक्षांत एव॥"

(समयसार)

भावार्थ—व्यवहार निश्चय रूप जो दो नय हैं। वे यद्यपि परस्पर विरोधात्मक हैं। (इसी प्रकार जो और भी भिन्न २ वाद जैन धर्म के बाहर वर्तमान में एकांत रूप से प्रवर्तित हैं और परस्पर में विरोध बढ़ाने वाले हैं) उनका विरोध दूर करने के लिये (यदि कोई उपाय है तो) स्यात् शब्द का सूचक जिन वचन (स्याद्वाद) ही है। उसमें जो पुरुष रमण करते हैं। वे पुरुष स्वयमेव ही अपने मोह (अज्ञान) का वमन करके शीघ्र ही परम-ज्योति स्वरूप शुद्ध आत्मा (परब्रह्म) का अवलोकन करते हैं, वह शुद्ध आत्मा (परब्रह्म) नवीन नहीं किन्तु जो एक प्रकार से पहिले अशुद्ध और कर्माच्छादित था, वह प्रगट में व्यक्ति रूप शुद्ध होगया है और वह सर्वथा एकांत रूप पक्ष से खण्डित नहीं होता। इसलिये निर्बाध (पूर्ण सत्य स्वरूप) है।

भिन्न २ विरोधी विचारों की अवस्था में सत्य अनेकांत स्वरूप में विद्यमान रहता है। और अनेकांत या पूर्ण सत्य की उपलब्धि प्रत्येक नय दृष्टि से विचार करने के पश्चात् पक्षपात रहित "मध्यस्थ" भाव में होती है।

"व्यवहार निश्चयौ यः प्रबुध्य
तत्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव
फलम विकलं शिष्यः॥"

(पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय)

भावार्थ—जो शिष्य या जिज्ञासु व्यवहार और निश्चय नयको समझ कर तत्वमें मध्यस्थ भाव रखता है वही तत्व के अनेकांत स्वरूप उपदेश के फल को अविकल रूपसे प्राप्त करता है।

"बहुत कहने से क्या! यह बात यथार्थ रीति जान लेना चाहिये और श्रद्धान कर लेना चाहिये कि संसार में जो कुछ भी ध्येय है वह सब माध्यस्थ ही है"। और तो क्या "आत्मा का निज स्वभाव स्वयं मध्यस्थ स्वरूप है। यह मध्यस्थ स्वरूप तभी प्रगट होता है जब कि एकांत पक्ष इत्यादि मिथ्याश्रद्धान (दर्शन) और मिथ्या बोध (ज्ञान) से रहित स्थिति हो?"

इससे पाठक विचार सके हैं कि जैन सत्य (अनेकांत पूर्ण सत्य) का विकाश माध्यस्थ भावमें होता है। माध्यस्थ भाव आत्माका स्वभाव है और वह मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष के अभाव में पूर्ण तया प्रगट होता है।

ऐसी स्थिति में जिन लोगों को यह आशंका हो कि जब मध्यस्थ भाव ही अनेकांत पूर्ण सत्यका केन्द्र (center) है तब जिनके राग द्वेषका पूर्ण अभाव नहीं हुआ है। वे इससे वञ्चित रहेंगे अब स्याद्वाद का अर्थ किया जाय कि दोनों प्रकार के परस्पर विरोधी विचारों में अविरोध प्रस्थापित करना तब चोरी के विषय में परस्पर विरोधी विचार हमारे सामने पेश होते हैं कि चोरी करना ठीकहै और चोरी करना बुरा है। ऐसी हालत में क्या कथंचित रूपसे दोनों का कथन ठीक मान लिया जाय? या अंशात्मक सत्व दोनों में विद्यमान है इस भांति अविरोध मिटाने के लिये स्वीकार करलिया जाय?

उक्त आशंकाओंका समाधान इस प्रकार है कि स्याद्वादका उपयोग असल में तात्विक या दार्शनिक क्षेत्र के लिये है स्याद्वाद का उपयोग ऐसे ही परस्पर विरोधी विचारों के लिये होना चाहिये जिससे उस विषय का यथार्थ बोध (सम्यक ज्ञान) लुप्त न हो जिन विचारों के साथ स्याद्वाद का उपयोग करने पर उस विषय का सम्यक ज्ञान लुप्त होकर उसके बदले में भ्रमसंशय और अज्ञान फैले उन विचारों के साथ स्याद्वाद का उपयोग निरर्थक ही नहीं किन्तु मखौल बाजी है। सम्यक ज्ञान का कारण स्याद्वाद ही है। जहां पर स्याद्वाद लागू करने से उस विषय का सम्यक ज्ञान ही लुप्त हो जाय, उस विषय में स्याद्वाद का सम्बध ही असंभव है। जैसा कि आकाशमें फूल नहीं लगते और न गधे को सींग होते है। ऐसा स्पष्ट रूपसे सम्यक बोध होने पर भी आकाशमें कथंचित् फूल हैं और कथंचित् नहीं। गधेको कथंचित् सींग है और कथंचित् नहीं। यहाँ कथंचित् घटाना निरी मूर्खता है। यही बात चोरीके लिये भी लागू है। सरासर झूठ (असंभव दोष) को कथंचित् रूप में स्वीकार करके आंशिक सत्य मान लेना मिथ्याज्ञान है अनेकांत पूर्ण सत्यका ऐसा

---

१ "किमत्र बहुनोक्तेन ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्वत.।
ध्येयं समस्तमाप्यै तन्माध्यस्थ्यं तत्र बिभ्रता"॥

२ "चलितमथ्या भिनिवेशेन मिथ्याज्ञानेन योज्झितं।
तन्माध्यस्थ्यं निजंरूपं स्वस्मिन्संवेद्यतां स्वयं"॥

अभिप्राय कदापि नहीं है। किन्तु अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव दोषोंसे रहित लक्षणों में जहाँ सामान्य विशेषका पारस्परिक विरोध हो उसको आंशिक रूपमें कथंचित पदके द्वारा स्वीकार करना अनेकांत पूर्ण सत्यका स्वरूप है। जो कि सम्यक श्रद्धान और सम्यक ज्ञानका अविनाभावी है। अनेकांत पूर्ण सत्यका सम्यक श्रद्धान और ज्ञानके साथ ही क्रमशः प्रादुर्भाव और विकाश होता है सम्यक दर्शनके होने पर राग द्वेषका सर्वथा अभाव नहीं होजाता किन्तु सम्यग्ज्ञानका युगपत प्रादुर्भाव रहता है। इसी प्रकार अनेकांत पूर्ण सत्यका रागद्वेषके सद्भाव में भी सम्याकदर्शण और सम्यकज्ञान के रूपमें सद्भाव रहता है। अनेकांत पूर्ण सत्यका प्रादुर्भाव होनेमें राग द्वेषके सर्वथा अभावकी जरूरत नहीं है। सम्यक दर्शन होनेके लिये जितने अंशोमें राग द्वेषका अभाव समझा जाता है उतना ही अभाव अनेकांत पूर्ण सत्यके प्रादुर्भावके लिये काफी है। सम्यक-दर्शन और सम्यक ज्ञान होनेके पश्चात् मध्यस्थभाव आत्मामें प्रगट होता है, वह मध्यस्थ भाव अनेकांत पूर्ण सत्यका कार्य है और उसी मध्यस्थ भावके पूर्ण विकाशमें आत्माके सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान इत्यादि अनेकांत स्वरूपका पूर्ण विकाश होता है।

जिस विषयका जैन महर्षि हजारों वर्ष पूर्व विस्तृत रूपमें प्रतिपादन कर चुके। उसी को अब आधुनिक विद्वान स्वतंत्र विचारके रूपमें प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करने लगे हैं। "पूर्ण सत्य मध्यवर्ती है", इस बातका समर्थन प्रो० गोविंद चिमणाजी भाटे एम. ए ने एक प्रस्तावनामें किया है—" यही बात आध्यात्मिक विचार और मतके लिये लागू है, कि उत्तर और दक्षिण ध्रुवके समान घोर विरोधी मतोंमें सत्यका अंश बहुत कम होता है। और ऐसे मत चिरकाल टिकनेवाले नहीं होते। सत्य मध्यवर्ती होता है और ऐसाही मत चिरस्थायी रहता है।" (नीति शास्त्र प्रवेशकी प्रस्तावना)

प्रोफेसर साहबने इस बातका जिक्र नीति-शास्त्र विषयक परस्पर विरोधी विचारोंको लक्ष करके उठाया था। तथापि अध्यात्म विषयक भिन्न २ विरोधी विचार और मतों में भी सत्य सम्बन्धी धारणा मध्यवर्ती ठहराई है।

कवि सम्राट रवीन्द्रनाथके दार्शनिक विचार भी इसी प्रकारके पूर्ण सत्यकी तरफ झुके हुए हैं। रवीन्द्र बाबू लिखते हैं—" समग्र सत्य की पहचानसे ही मनुष्यकी सच्ची उन्नति हो सकती है। सत्यका एकाङ्गी ग्रहण अथवा तत्वकी अधूरी पहिचान भी असत्यके तुल्य है, क्योंकि उसमें सत्यके कुछ अङ्गों की अवहेलना होती है। अतएव वह हमारी सर्वाङ्गीण उन्नति में बाधक होती है। यही नहीं किन्तु हमारी एकाङ्गी उन्नति स्वयंभी अन्य अङ्गोंकी अपेक्षा के कारण रुक जाती है और उलटा हानिकर सिद्ध होती है।" कवि सम्राट का उक्त वाक्य कदाचित् पूर्वी पश्चिमीसभ्यताके समन्वय पर विचार करते हुए प्रगट हुए हों। तथापि अन्त-रङ्गमें तात्त्विक दृष्टि रखतेहुए ही उक्त विचार प्रगट किये गये हैं। क्या सभ्यता, क्या उन्नति और क्या दर्शन हरएक विषयोंके लिये मूलमें तात्विक दृष्टि के अवलम्बन की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु वह तात्विक दृष्टि किस प्रकारकी है, इस बात पर जब विचार किया जाता है, तो उसमें दो भेद नजर आते हैं। एक अपूर्ण या आंशिक सत्यको पूर्ण समझ अव-लम्बन करती है। और दूसरी पूर्ण सत्यका ही पूर्णतया अवलम्बन करती है। इस दूसरी

दृष्टिको जैनत्व कहा जा सकता है। कवि सम्राट के उक्त वाक्योंमें पूर्ण सत्य (जैनत्व) की छटा संक्षेप मात्र झलक रही है। व्यापक और विराट स्वरूप जैन धर्म के स्याद्वादमें विद्यमान है।

कवि सम्राटके दार्शनिक विचारोंमें कई अंश ऐसे हैं, जो जैन धर्मके तत्वज्ञानसे साम्यता रखते हैं। आगे चलकर कुछ २ उल्लेख प्रसंगानुसार करेंगे। परन्तु इस विषयसे सम्बन्ध रखने वाली एक बात का और उल्लेख किया जाता है। रवीन्द्रबाबूने एक स्थान पर लिखा है "जब आत्मनिग्रह की शक्ति से हमारी आत्मा केन्द्रीभूत हो जाती है तब उसके द्वन्द्व भाव मिट जाते हैं और सबका समावेश एक स्थिर सुव्यवस्थामें हो जाता है। तब हमारे भिन्न २ निरीक्षणोंकी बुद्धिका साम्यावस्थामें समावेश हो जाता है।" द्वन्द्वभाव मिटकर उन सबका समावेश एक स्थिर व्यवस्थामें हो जाने पर यदि बारीकीसे विचार किया जाय तो इस ध्वनिका मतलब हमारे उपर्युक्त कथनको ही प्रमाणित करता है। अर्थात् वह सुव्यवस्था अनेकांत प्रणाली ही हो सकती है, जिसमें भिन्न २ निरीक्षणोंकी बुद्धि (नयवाद) अविरोध रूपमें गर्भित होकर साम्यावस्था (मध्यस्थता) प्रगट होती है।

ऐसे तत्वज्ञ और दार्शनिकोंके विचार प्रदर्शन से जिन्हों ने संसार के सभी तत्ववेत्ता और दर्शनिकों के ग्रन्थों का परिशीलन और अनुसन्धान में ही अपना समग्र जीवन व्यतीत कर दिया और करते आ रहेहैं। हमें भविष्यतका वह समय अत्यंत निकट दिखलाई दे रहा है कि एक दिन क्या भारतीय और क्या विदेशी तत्वज्ञ और दर्शनशास्त्र अपने अपने अन्वेषणों द्वारा जैनधर्म के अनेकांत सिद्धांत पर आ पहुँचेंगे। परन्तु इस बात का पता उन जैन धर्मानुयायियों को नहीं लगेगा जो भावके महत्व को भूलकर केवल शाब्दिक परिभाषामें निमग्न रहेंगे खैर इतना नहीं तो भी—

उपर्युक्त कथन से इतनी पुष्टि अवश्य होती है, कि पूर्ण सत्य अनेकांत स्वरूप है और उसका ज्ञान भिन्न २ दृष्टि से प्राप्त करके पक्षसे रहित मध्यस्थ भाव स्थिर होना ही उसका कार्य है और मध्यस्थ भावमें ही उसका पूर्ण विकाश है? जैन धर्मका तत्वज्ञान और प्रत्येक सिद्धांत इसी प्रकार के सत्य पर अधिष्ठित हैं। अतएव अन्यान्य धर्म दर्शन और वादों की अपेक्षा जैन धर्म का स्याद्वाद और उसके द्वारा निर्धारित सिद्धांत अधिक रूपमें अचल और अबाधित हैं†।

भयंकर भ्रांति।

(१)

क्या सोते तुम यही समझ कर
लम्बी सी हा! चादर तान।
"था असभ्य संसार सभी तब
दिया उसी को शिक्षा दान॥
और विजय पाचुके भली विधि
किया विश्व को अति गुणवान।
नहीं शेष अब करने को है
कार्य हमारे लिये महान।"

†लेखक "अनेकांत मय तत्वविज्ञान" अर्थात (जैन और हिन्दू तत्वज्ञान की तुलना) नामक लिखित अप्रकाशित पुस्तक का एक अंश।

(२)

छोड़ो बातें गइ बीती ये
नहीं चलेगा इनसे काम।
उठो उठो यह आलस त्यागो
पड़े हुये हो क्यों वे काम॥
विजय किया था तुमने जिनको
वही हुये अब अतिशय वाम।
सोते ही रह गये तुम्हीं हो
हाय! लुटाकर सब धन धाम॥

(३)

समय जगाता डंका देकर
हो जाओ तुम अभी सचेत।
प्रकृतिसाथ जो नहीं चलेगा
होगा उसका मटिया मेट॥
प्राची गौरव यदि रखना है
तो फिर अब क्यों हुये अचेत।
स्वर्ग पुरी से पूर्वज देखो
करते हैं कैसा संकेत॥

(४)

कमर कसो कर्तव्य करो वह
हो निशंक दो शंख बजा।
जिसमें नाम अटल हो जावे
तथा सुखी हो आर्य प्रजा।
सदा कीर्ति अक्षुण्ण बनी रह
इस प्रकार लो साज सजा॥
शान्ति सहित दिन बीतें
सबके फहेर सुन्दर पूर्वध्वजा॥

"निर्भीक हृदय"

दन्तधावन-विधि।

लेखक-आयुर्वेदाचार्य पं० [illegible] काव्यतीर्थ

[गताङ्क से आगे]

मधुर रस वाली दातुनों में महुआ की दातुन सर्व श्रेष्ठ गुणकारी और वायु व उससे उत्पन्न होने वाले रोगों का नाश करती है, कटु रस वाली दातुनों में करंज की दातुन सर्व श्रेष्ठ गुणकारी, और कफ व उससे उत्पन्न होनेवाली व्याधियों का नाश करती है तिक्त रसवाली दातुनों में निम्ब की दातुन सर्व श्रेष्ठ हितकारी और पित्त व उससे उत्पन्न होने वाली बीमारियों का नाश करती है कषाय रस वाली दातुनों में खैर की दातुन सर्वोत्तम है और कफ, पित्त व इनसे उत्पन्नहोने वाली व्याधियों का नाश करती है।

सुपारी, ताड़वृक्ष, केवड़ा, खजूर, नारियल, आदि वृक्षों का रस दांतों को हानिकारक है तथा इनको कूंची कड़ी होती है इस लिये दांतों को घिसते समय उनके रेशे मसूड़ों में घुस जाते हैं और अनेक तरह की व्यथाएं पैदा करते हैं इस लिये इन वृक्षों की दातुन कभी नहीं करना चाहिये। दातुन प्रातःकाल और भोजन के बाद भी करना चाहिये ऐसी आचार्यों की आज्ञा है जैसा कि आचार्य वाग्भट ने लिखा है "प्रात र्भुक्त्वाच" दातुन प्रातःकाल और भोजन करने के बाद करनी चाहिये। भोजन करने के बाद भी जो दातुन करने की आज्ञा है उसका अभिप्राय यह है कि जो कुछ भी खाया पिया जाता है उसके अंश अवश्य ही मुख में व दांतों में लगे रह जाते हैं जो कालान्तर में रोगों का कारण होते हैं दातुन के अतिरिक्त विशुद्ध जल के द्वारा किसी भी चीज को खाने पीने के बाद

मुख शुद्धि करनी चाहिये ऐसी भी आज्ञा है- यही कारण है कि भारत वर्ष में मुख को झूठा नहीं रखने की रीति चिरकाल से प्रचलित है कुछ समय से तो इस सुरीति को उखाड़ने के लिये सुशिक्षित जनता भागीरथ प्रयत्न कर रही है जिससे कि यह रीति कहीं २ ब्रह्मचारी, संयमी, मुनियों आदि में ही संकुचित होकर रह गयी है परन्तु वह समय बहुत जल्दी आने वाला है जब कि यही रीति बहुत अच्छी समझी जायगी कुछ दिन हुए दाँतों के संबंध में विचार करने के लिये योरोपीय विद्वानों की सभिति बैठी थी उसने पूर्ण रूप से निश्चय करके कहा था कि दाँतों की रक्षा का सर्वोत्तम उपाय प्रति दिन वृक्षों की ताजी दातुन करना और मुख को हर एक चीज खाने के बाद प्रक्षालन करना है। तथा यह भी कहा था कि दातुन करने वाले भारतीयों की दंतावली पाऊडर आदि से दाँत साफ करने वाले योरूपीयों की अपेक्षा मजबूत नीरोग और सुन्दर होती है।

अनुकरणशील भारतीयों ने—

सायंप्रात मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्र समो विधिः॥

संपूर्ण शास्त्रों की यही आज्ञा है कि मनुष्यों को अग्नि होत्र की तरह प्रातःकाल और सायंकाल दोबार ही भोजन करना चाहिये बीच में भोजन नहीं करना चाहिये—आदि पूर्वजों के वाक्यों पर-सुमार्गों पर-कुछ भी ध्यान नहीं देकर देखा देखी दिन रात में चार बार छह बार आठ बार तक भोजन करते हैं, भोजन के अलावा, चा, फल, पान, सुपारी, जलपान, बीड़ी आदि का इस्तेमाल तो अगणित बार करते हैं इस तरह की अव्यवस्थित भक्षण प्रणाली प्रणाली पशुओं में भी नहीं पायी जाती है फिर दुनियाँ का सर्व श्रेष्ठ प्राणी मनुष्य में होना कितनी हास्यास्पद है ऐसी भक्षण प्रणाली में दाँतों की व मुख की सफाई पर कितना ध्यान दिया जासकता है यह पाठक स्वयं ही विचार लें।

यहाँ पर इस कुटेव से पैदा होने वाले कुछ थोड़े से रोगों का दिग्दर्शन कराया जाता है

मछली आदि का मांस मनुष्यों का स्वभाविक खाद्य नहीं है इस बात को क्या पाश्चात्य, क्या पौर्वात्य सर्व विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। मांस के खाने से उसके सूक्ष्म रेषे दाँतों की संधियों में घुस जाते हैं और सड़ कर दंत रोगों के कारण होते हैं तथा नीचा मुख करके (औंधा) सोना, दातुन नहीं करना कुल्ला नहीं करना आदि कारणों से दंतों में रोग पैदा होता है जब दांतों में उपर्युक्त कारणों से मल का संचय होता है तब वातादि दोषों का प्रकोप होता है जिससे कि आगे अनेक रोग पैदा होते हैं।

अधावनान्मलो दन्ते कफो वावातशोषितः।
पूतिगंधःस्थिरीभूतः शर्करा॥

अष्टांगहृदय उ० स्था०

दातुन व जल के कुल्ले नहीं करने से दांतों के भीतर जो मैल व कफ जम जाता है उसको भीतरी वायु सुखादेती है।

उसमें अत्यंत दुर्गन्ध आने लगती है और मल उसी जगह पर मजबूती से चिपट जाता है इसी को शर्करा रोग कहते हैं यदि इस रोग की उचित चिकित्सा न की जावे तो कालान्तर में वह मैल दाँतों को खाजाता है और बाद में दाँतों में से छिलका निकलते रहते हैं अन्त में

दांत भी नष्ट होजाते हैं इसको कपालिका रोग कहते हैं इसी तरह से दाँतों की संधियों व जड़ों में जब भोजन के कण भर जाते हैं और उन कणों के सड़ने से जब छोटे २ कीड़े पैदा हो जाते हैं तब दाँतों के मसूड़ों में सूजन पैदा होजाती है खून और पीव निकलने लगती है, जब कीड़े उग्र रूप धारण करते हैं तब अत्यंत दर्द होता है, दांत हिलने लगते हैं जब कीड़े दाँतों की हड्डी को खालेते हैं तब दांत खोखला छिद्र युक्त हो जाता है उस छिद्र में अन्न भर जाता है और फिर बार २ कीड़ों का उपद्रव होता रहता और दांत काले पड़ जाते हैं इसको कृमिदन्तक व्याधि कहते हैं

खून बिना ही कारण कभी २ गिरता है दाँतों के मांस (मसूड़े) मुलायम गिलगिलाहट युक्त और काले होकर गिरने लगते हैं इसको शीताद नामक रोग कहते हैं।

दांतों के मसूड़ों में जलन और सूजन होती है, कभी २ खुजली चलती है, मसूड़ों का रंग लाल होजाता है, हमेशां खून निकलता है, जब कभी खून बन्द होजाता है तो मसूड़े फूल जाते हैं, दांत हिलने लगते हैं. थोड़ा २ दर्द होता है और मुख में बास आने लगती है इसको उपकुश नाम की व्याधि कहते हैं.

दो अथवा तीन दांतों में बेर की गुठली बराबर कठिन सूजन होती है, बहुत जल्दी पक जाती है और उसमें अत्यंत दर्द होता है इसको दन्तपुप्पुट रोग कहते हैं इत्यादि अनेक रोग केवल मात्र दंत धावन और मुख प्रक्षालन निरन्तर नहीं करने से उत्पन्न होते हैं लेख विस्तार के भय से उनका यहां सविस्तर वर्णन नहीं किया जाता है, हो सका तो इसका विचार एक स्वतंत्र लेख द्वारा प्रगट करूंगा.

दातौन किन २ पुरुषों को नहीं करनी चाहिये.

बहुत से दैनिक कृत्य ऐसे होते हैं जो केवल नीरोग पुरुषों को ही फायदा पहुँचाते हैं यदि उनका व्यवहार रोगी मनुष्य भी करने लगें तो उनको फायदे के बदले में नुकसान ही उठाना पड़ेगा, यही हाल दातौन का भी है इस लिये अजीर्ण रोग, वमन, श्वास, खांसी, ज्वर, लकवा, प्यास, मुखपाक, हृदय रोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, कर्णरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, मुख की सूजन हिचकी, मूर्छा आदि रोगों में दातौन नहीं करनी चाहिए।

इस उपर लिखी हुई विधि के अनुसार दांतों को दातुन के द्वारा भले प्रकार से साफ कर लेने के बाद उसी दातुन को बीच में से फाड़ कर जिह्वा-निर्लेखनी (जीभी) बनानी चाहिये। यद्यपि दातुन के अभाव में काम चलाने के लिए सुवर्ण, चांदी, तांबा आदि की जीभी भी बनवाकर उपयोग करने की प्रणाली है परन्तु जहां तक हो सके दातुन की जीभी से ही काम लेना चाहिये। वह भी कोमल गांठ रहित चिकनी होनी चाहिये। उससे धीरे २ जिह्वा के ऊपर के लगे हुए मल को खरोंच कर निकालना चाहिये क्योंकि जोर से खरोंच कर निकालने से जीभ में छाले पड़ जाया करते हैं। उत्तम प्रकार से जीभी का उपयोग करने से मुख का मैल, दुर्गन्ध, विरसता दूर हो जाती है। जिह्वा और मुख के रोग नष्ट होजाते हैं। अरुचि दूर होकर मुख में विशदता और हलकापन प्रगट होता है।

इसके अनन्तर पूर्ण रूप से मुख की भीतरी शुद्धि करने के लिये कुल्ले करना चाहिये।

यदि पित्त तथा पैत्तिक व्याधि प्यास आदि रोग हों तो ठंडे पानी से और यदि कफ, कफरोग, अरुचि, मल, दांतों की जड़ता, मुख का भारीपन आदि रोग हों तो कुछ गर्म जल से कुल्ले करना चाहिये।

जिन्होंने कोई विष खा लिया हो मूर्च्छित हों मद्य में हों, शोस, व रक्त पित्त की बीमारी हो, नेत्र दुखने आये हों रूक्षता अधिक हो, मल क्षीण हो ऐसे पुरुषों को गर्म जल का कुल्ला करना हितकर नहीं है।

बहिर्मुख प्रक्षालन।

मुख के बाहिरी भाग को कुल्ले के प्रकरण में कहे गये नियमों का अनुसरण करते हुए धोना चाहिये। इससे रात्रि में सोने से उत्पन्न हुई सुस्ती दूर हो कर मुख की कांति बढ़ती है। मुख में उत्पन्न हुईं जवानी की फुन्सियां, मुख का सूखना, झांई और मुख के दाग नष्ट हो जाते हैं।

गाय के दूध को कुछ गर्म करके उसमें कुल्ले करना चाहिये और मुख को भी धोना चाहिये इससे मुख की रूक्षता, सूखना दूर होता है और कफ वात की व्याधियाँ नहीं होती है।

शान्ति।

कहो कहो देवि! छिपी कहां हो।
पता बताओ रहती जहां हो॥
पड़ा हुआ सिर दुःख जैसा।
स्वराज्य के भी सिर हो न वैसा॥ १॥

...नीय सभाकी समकालीन, जैन समाज
...भारतवर्षीय जैन महासभा है और
मनु... ...र्जिक समस्याओं की पूर्ति के
विनाश ... ...न करती ही रहती है।
स्वजाति भक्षी ... जैन समाज का
मनुष्य ही लेकिन ... हरेक प्रान्त
मनुष्य भी भक्ष्य हुआ य...र्थों की
पशुत्व यों लज्जित सा कहां है ॥ ...॥

मनुष्यता का अभिमान छोड़ा।
परम्परा का निज प्रेम तोड़ा॥
हुए यहां युद्ध विनाश कारी।
मनुष्य ने मानवता बिसारी॥ ४॥

मनुष्य को पाशव भाव प्यारे।
लगे, इसी से बलहीन, मारे॥
चरित्र की इज्जत भी न बाकी।
रही, हुई दुर्गति न्याय्यता की॥ ५॥

रँगे सभी के मन स्वार्थता से।
भला रँगे क्यों परमार्थिता से॥
बढ़ा अविश्वास अशान्तिकारी।
हुए सभी चिन्तित वृत्तिधारी॥ ६॥

मिली न जानी सुषमा तुम्हारी।
तुम्हें छिपा के जड़ता पधारी॥
हुए हमारे गुण नष्ट सारे।
मरे बने जीवित ही विचारे॥ ७॥

शराबियों के सम होगये हैं।
प्रमाद में आकर सोगये हैं॥
रहा न उत्साह विवेक छूटा।
विपत्तियों ने दिन रात लूटा॥ ८॥

हुई हमारे मनमें निराशा।
कृपा करो देकर पूर्ण आशा॥
प्रसन्नता से हमको सम्हालो।
विरोध का बन्धन तोड़ डालो॥ ९॥
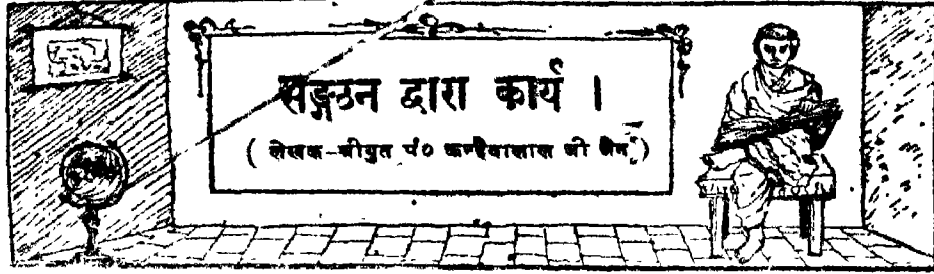
भारत वर्ष में एक लम्बी समय धारा ऐसी बह चुकी है जब यहां का "सत्वेषु मैत्री" वाला प्रातःकालीन मंत्र, घर घर बोला जाता था, देव पूजा के अन्त में शान्ति पाठ पढ़ कर सद्भावों से राजा राज्यों को सुख माँगा जाता था, सद्भावों से संसार के ऊपर दृष्टि डाली जाती थी। उस समय यहां पर वसुधा मात्र को कुटुम्ब समझने वाली उदार आत्माओं की प्रचुरता थी, वेही यहाँ के शिक्षक और शान्ति प्रचारक तथा संसार के अकारण बन्धु थीं। संसार ने अपना रूप दिखाया एकदम पलटा खाया मानवों के हृदयों में कलुषता बढ़ने लगी संकीर्णता ने स्वार्थपरता को उभारा, उसने अपना चमत्कार दिखाना प्रारम्भ किया, बस इसी रूप में संसार की उन्नति हो पड़ी जिसका आज मध्यम युग कहना चाहिये।

सभी को मध्यम काल सँभलने का अवसर दिया करता है और जो इस अवसर का सदुपयोग करते हैं—आत्म बोध करके अपनी भूलों का संशोधन कर डालते हैं वे स्वाभाविकता की ओर मुरक आते हैं और सन्मार्गगामी बन अपनी सदसद्भिलाषाओं को चिर सुखी बनादेते हैं।

पिछली कुछ शताब्दियाँ भारतवर्ष के लिये बहुत अनिष्टकर निकलीं इनमें वैयक्तिक स्वार्थान्धता नक की बुरी तरह घूर रही। राष्ट्रों का उद्योग विघ्न शक्तियों का नाश करना मिटा आत्मसामर्थ्य बढ़ाने के लिये, सामाजिक और साम्प्रदायिक उद्योग अपना ही सिक्का जमाने और दूसरों को विलोप करने देने के लिये तथा आत्म-प्रतिष्ठा पाने के लिये यहांपर जितने संघर्ष और प्रतिद्वन्द्विताएं हुईं, यदि तत्कालीन इतिहास में हम उन्हें और उनके परिणाम वृत्तांत को छोड़ दें तो फिर उसमें स्वाध्याय करने योग्य कोई विषय सामग्री नहीं नहीं रहती! सबसे बड़ा परिणाम जो हमारे सामने है वह यह है कि जिस भरत खण्ड में एक क्षत्रिय जाति की स्थापना केवल देश की रक्षार्थ की गई थी युगान्तरों से जिसके हाथ में शासन की बागडोर रही, जिसके अनेक घरानों ने शासन कार्य को पैतृक सम्पत्ति के रूपमें समझा और इसीसे उसकी रक्षा करने के लिये उन्हों ने अलौकिक दम्भ साहस और पराक्रम को किंकर तथा इन्द्रादि शायी बनाया, जिसके पवित्र पुरातन इतिहास में से उसके आसमुद्र मही पालों सम्राटों और महान दिग्वजयी चक्रवर्तियों के नाम को कोई किसी तरह से निकाल नहीं सकता। उसके वीर-रस चूते स्वर्गीय गायन कम से कम भारत-भूमिको सदा प्रसन्न रखेंगे—उसके हाथमें से शासन की बागडोर छीनकर सात समुद्र पार पहुँची। और उसके सुनिर्मित जालसे हम लोग बुरी तरह बद्ध बन बैठे। इसीसे हम लोगों का सामाजिक बल, जातीय धर्मभीरुता भी छिन्न भिन्न हो नाम को शेष रहगयी। जो राष्ट्र संसार का शिरमौर

और गुरु था वह आज राष्ट्र और चेला बनने योग्य भी नहीं रहा। ये सब बातें हमारी मनोभावना मात्रही नहीं हैं किन्तु संसार के समुन्नत देशों के हमारे ऊपर ये इङ्गित आक्षेप हैं।

जिस स्वार्थ लोलुपता ने भारत की यह दशा बनाई उसीने पश्चिमी देशों में विश्व व्यापी विप्लव खड़ा किया। उसके अन्य परिणामों के साथ एक यह भी परिणाम निकला कि कुछ महान आत्माओं को अपना परिचय देने का अवसर मिला। अशान्ति की धूहकती हुई भयंकर ज्वालाओं को शान्त करने के लिये राष्ट्रपति विलसन ने अखिल राष्ट्रों में शांन्ति स्थापित करने के लिये "पीस परिषत्" कायम की। जिसका उद्देश्य यह प्रकट किया गया कि यह सब राष्ट्रों में एका करेगी और सबके स्वत्वों की रक्षा करेगी। उन्ही दिनों कुछ विशेष कारणों के जुट जाने पर भारत में भी सार्वजनिक आन्दोलन का जन्म हुआ। इसका भी उद्देश्य यही था कि देश में शान्ति बढ़े और सङ्गठन होवे। इस आन्दोलन के कर्णधार म० गाँधी जी हुए जिन्हों ने उसकी प्राणपण से प्रगति बढ़ाई।

इधर कुछ दिन हुए तब माननीय मालवी जी ने भारत माता के हिन्दू अंगको दृढ करने के विचार से " हिन्दू संगठन सभा " की नीव डालदी है और हिन्दू मात्र से उसकी पूर्ति के लिये अपील की है। ये सब काम हमारे लिये आदर्श हैं जिनसे हमें संगठित होने—फूट को हटा एक बन जाने—की शिक्षा मिलती है।

यह हर्ष की बात है कि देशके प्रत्येक शुभ संकल्प में पवित्र अन्दोलन और दल बल में जैन जनता का भी हाथ रहता है। अखिल भारतीय सभाकी समकालीन, जैन समाज की भी भारतवर्षीय जैन महासभा है और वह अपनी समाजिक समस्याओं की पूर्ति के के लिये कुछ न कुछ करती ही रहती है। प्रान्तीय आन्दोलन में भी जैन समाज का पिछड़ा पाँव नहीं है। जिस तरह हरेक प्रान्त में अन्य समाजों की जनता हितकर कार्यों की ओर अग्रसर होती है जैन जनता भी यहाँ हाथों पै हाथ धरे नहीं रहती। इससे हम यह नहीं कहना चाहते कि जैन समाज अच्छी दशा में है।

बुन्देलखण्ड प्रान्त की अन्तरंग स्थिति से जो महाशय सुपरिचित होंगे उसकी स्मृति होते ही एक बार तो अश्रु धारा अवश्य ही उनके वक्षस्थल को गीला कर देनी होगी। बुन्देल खण्ड में घूमकर जिन्हों ने वहाँ की दशा को अच्छी तरह से जान लिया है और जान उन्हें देशकी पतित और समाज की मरणोन्मुख दशा का दूसरे देश कोगपर पहुंच कर अनुभव करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जिन्हों ने झाँसी और ललितपुर को ही देखा है या तीर्थ-यात्रा करने वाले कुछ भक्त पुरुषों का ही समागम किया है वे बुन्देल खण्ड की यथार्थ-दशा का अनुभव नही कर सकते। यह अनुभव तभी होता है जब वहाँ की देहातों में जाया जाता है और वहाँ के भोले-भाले भाइयों का रहन-सहन, पहिनाव-ओढ़ाव, खान-पान और बात-चीत की परीक्षा की जाती है। विद्या और शिक्षा के न होने से मनुष्यों में जो कुछ हो सकता है उसका समूचा-दृश्य वहां देखने को मिलता है। छोटे छोटे सुकुमार किन्तु होनहार बालकों की अवस्था केवल खेल-कूद और सोते जागते ही बीत जाती है। उनके बालक बनने तक

का साधन वहाँ पर नहीं है। बड़े बूढ़े तो उनके भी शिक्षा-शून्य सचमुच हैं ही। स्त्रियों का तो अबला बाना प्रकृति ने ही निर्माण की है। अतएव यह बतलाने की आवश्यकता नहीं रहती कि उनकी दशा कैसी होनी चाहिये। कुछ तो यह क्षेत्र ही ऐसा है कि वहाँ पर विशेष उद्योग-व्यवसाय की सामग्री उपलब्ध नहीं फिर भी यदि मनुष्य अपनी कर्मण्यता का सदुपयोग करे तो पहाड़ पर भी कुआँ खुद सकता है। अतएव हर कहीं अपनी उद्योगशीलता के बल अपनी स्थिति सुधार सकता है। परन्तु ऐसा कुछ देखने में आता है कि वाणिज्यवृत्ति का उच्च-भाव उनमें से विदा सा हो चुका है! बहुतों ने वाणिज्य-कर्म को ही छोड़ कृषि-कर्म को अपना लिया है, जिससे उनकी खेती ही जैसी दशा देख पड़ने लगी है। कुछ सिर्फ "बनजी-सौंगी" करके ही उदर-पूर्ति भर के निर्वाह से सन्तुष्ट बन बैठते हैं। स्थिति को बढ़ाने के लिए उनकी आँखों के सामने निविड़ तम रहता है उन्हें कुछ सूझ ही नहीं पड़ता। उनके भोलेपन के कारण उनको कुछ रूढ़ियों, कुछ कुप्रथाओं ने बुरी तरह जकड़ रक्खा है उनके वे इतने आदी हो चुके हैं कि किसी के हज़ार कहने पर भी उनकी यथार्थ बुराइयाँ इनके मस्तिष्क पर नहीं उतरतीं—उनके बुरे फल और परिणाम से भी इनकी आँखें नहीं खुलतीं। शेष बातें या तो इनके साथ ही आ जाती हैं या इनसे, ही अटकल से जानी जा सकता है।

हमारा उद्देश्य इस लेख में बुन्देलखण्ड या और किसी प्रान्त की वर्तमान दशा की आलोचना करना मात्र नहीं है क्योंकि किसी भी प्रान्त की अवस्था अब, इतनी उजागर प्रायः है कि उसे कदाचित् कोई ही पढ़ा-लिखा मनुष्य न जानता हो—साथ में न हम उन गुणों का ही यहाँ विश्लेषण करना चाहते हैं जो कि इस गिरी-पड़ी हालत में भी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बुन्देलखण्ड में ही अधिक पाये जाते हैं इस लेख में तो हम मुख्यता से ऊपर दिये गये शीर्षक के बारे में ही विचार करेंगे।

हम यह तो नहीं कहते कि बुन्देलखण्ड प्रान्त और मध्यप्रदेश में कुछ अन्तर नहीं है परन्तु हाँ, जिन बातों पर हम समानता रूपक प्रकाश डालना चाहते हैं वह हमारी अति धृष्टता भी नहीं कही जा सकती।

यह प्रसन्नता की बात है कि भारत में जैन समाज की जन संख्या आटे में नमक बराबर नहीं है तो भी वह सब प्रान्तों में विद्यमान है। बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश में जैनियों की जन-संख्या और प्रान्तों से बहुत बढ़ी चढ़ी नहीं है पर तो भी उसका छिटकाव ऐसे ढंग का है कि छोटी २ बस्तियों में भी थोड़े बहुत जैनों के घर, उनके देव घर पाये जाते हैं। जिससे सब कहीं जैनों का नाम और उनके काम सुनने और देखने को मिलते हैं। इन प्रान्तों में जैन जातियों की भी भरमार नहीं है जैसी कई अन्य स्थानों में परिलक्षित होती है। यहाँ तो परवार, गोलालारे और गोला पूरब बस, ये ही तीन जातियां रै परिमाण में पाई जाती हैं। इन तीनों के बीच में इतनी घनिष्ठता बढ़ी हुई है कि उसकी किसी भी बात से, उन्हें कोई न्यारा नहीं ठहरा सका मैंने कई ऐसे स्थान भी देखे हैं कि जो साधारण नगर हैं परन्तु वहाँ पर दशों प्रकार के भाई रहते हैं और उनके खान-पान रहन सहन, वेश-विन्यास आदि सभी बातों में वैषम्य है। परन्तु ललितपुर, जबलपुर आदि कई ऐसे स्थान हैं जहाँ

पर चार सौ पांच सौ घर तक जैनों की बस्ती है और वे सब हैं उक्त जाति त्रय के ही। ललितपुर के बारे में तो मेरा सच्चा ज्ञान है कि वहाँ की चार सौ घरों की जैन-संख्या में तीन सौ के लगभग परवार और एक सौ के गोलालारे हैं। यह सुविधा इन प्रान्तों के संगठन के लिये इतनी उत्तम है जो सचमुच में संगठन की पहिली-सीढ़ी अनायास ही बनी हुई सी है।

मंजिले-मकसूद तक पहुँचने के लिये--अभिमत स्थान तक वे खटके चढ़जाने के लिये पहिली सीढ़ी बड़ी उपयोगी पड़ती है। इसके बिना आगे बढ़ने का न किसी का हियाव पड़ता है और न कोई तदबीर सूझ पड़ती है। इतना ही नहीं वरन जो मनुष्य प्रथम-सोपान निर्माण [illegible] ऊपर जाने को लपकते हैं अपनी ढिठाई दिखाते हैं व अपने कार्य सम्पादन कर सकने की अनभिज्ञता प्रकट करते हैं और अपनी शक्तियों का अपव्यय करते हैं। किसी भी मनुष्य को या मनुष्य समूह को अभिमत स्थान पर आसीन होने के लिये पहिली सीढ़ी बनाना ही पड़ता है, और यहीं पर अपनी परिपक्व कर्मण्यता का परिचय देना पड़ता है, बहुत से शक्ति पुञ्ज का बलि करनी पड़ती है। सच तो यह है कि यही उसका कठिन परीक्षा स्थल है। अनेकों की तेज दौड़ एक दम यहीं पर पहुंचते अविरुद्ध हो जाती है, कुछतो किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन कर हतोत्साह बन जाते हैं और उनके आवेश के उबाल यहीं पर ठण्डे पड़ जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रथम सोपान का इतना अधिक महत्व प्रकट है वह हमारे प्रान्त बुन्देलखण्ड और मध्य-प्रदेश को पहिले तयार मिलती है यह उसका परम सौभाग्य है उसकी अभिमत सफलता का द्योतक चिन्ह है।

भारतीय मात्र संगठन करने वाले इस बात के लिये लालायित हैं कि यदि सब लोगों का इतना सम्बन्ध होजाय कि वे आपस में संकोच छोड़कर बातचीत करने लगजांय, एक दूसरेको आसन देकर पास बिठाने लगें, अपनेसुख-दुख की आत्म कहानी कहकर उसमें पारस्परिक सहानुभूति भरे वचन कहने लग जायँ तो हमें समझ लेना चाहिये कि देशमें राष्ट्रीय भावोंका बीज पड़ चुका, संगठनका पूर्वरूप पूर्ण रीति से झलक उठा, और अब हमारे अभिमतों और मनोरथोंके सिद्ध होने में कोई अड़चन नहीं आसकती। उक्त कथन पर मुझे "इत्थमेव" रूपसे विश्वास है और जब मैं अपनी इन्हीं आँखोंसे अपने बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेशीय प्रान्त को देखता हूँ, मुझे हर्ष होता है, अभिमान होता है, आशाकी बिजली एकदम शरीर भरमें दौड़ जाती है और स्नायु-तन्तुजालमें दृढ़ता पैदा कर देता है।

मैं पहिलेही लिख आया हूँ कि प्रान्तकी तीनों परवार, गोलालारे और गोलापूरब जातियां में बड़ा मेलजोल है। सब, सबकी पाँति-पङ्गतों में भी भाग लेते हैं। बहुतसे अवसरों पर सहानुभूति तो साधारण चीज बन जाती है वहाँ तो आत्मीयताका सुहावना-दृश्य मनको मुग्ध बना डालता है। भ्रातृ-वत्सलताकी कोई अपूर्व आभा उस समय आकर्षित करनेको नहीं बचती। यों तो परवार भाई शेष दोनोंको अपना, दायाँ, बायाँ हाथ समझकर उसकी रक्षा की खबर रखतेही हैं। चाहे वह पड़ौस-भावसे सही परन्तु कुछ महा पुरुषोंके आचरणमें मैंने उसे अकृत्रिम-जीवनी-दृश्यमें परिणत सरीखा देखा है। ललितपुर निवासी श्रीमान सेठ मथुरादासजी लड़ैयाकी स्वर्गीया धार्मिका मैं इस विषयमें सबसे

पहिले स्मरण करूँगा। आपके बारे में औरों के विचार कुछ भी हों पर मैंने उन्हें जितना जाना है उस बूते पर कह सकता हूँ कि उनके हृदय में संकीर्णताको बिलकुल स्थान नहीं था। उन्होंने समाज-सुधारके, अपनेही प्रान्तमें जितने कामों में भाग लिया है कभी उससे यह नहीं चाहा कि इसका लाभ केवल परवार जातिको ही मिले औरोंको न मिले। प्रत्युत गोलालारों की परवारोंकी अपेक्षा कुतहीन दशा देखकर कई अवसरों पर उनके साथ विशेष उदारताका व्यवहार किया। ललितपुरकी स्थानीय पाठशाला जिन दिनों साधारण रूपमें काम कर रही थी उन दिनों में आपने कई लड़कों का छात्र-वृत्तियाँ देकर उनके पढ़ाने का व्यवस्था की थी। उन लड़कोंमें प्रायः सब गोलालारे थे और उनमें मैं भी एक था। यहाँ पर जब क्षेत्रपालकी पाठशाला विस्तार रूपसे काम करने लगी जिसकी देख-भाल, प्रबन्धादिका भार सिर्फ आपकेही सिपुर्द था बल्कि उसके पोषक और ग्राहक भी विशेषतः आपही थे। उस समय भी आपने परवारीय लड़कोंकी अपेक्षा गोलालारों को ही अधिक स्थान दिया। (क्यों कि ललितपुर के आस-पास गोलापूरब हैं नहीं। उनका निवास प्रायः मध्यप्रदेशमें ही है। इसी कारण यहाँ पर उनका ज़िक्र नहीं आया) ललितपुरके गोलालारीय समाजके लड़ाई-झगड़े तथा निकटस्थ प्रान्तके विवाद-ग्रस्त पंचायती कामों के निबटारे आप सौ काम छोड़कर बुद्धिमत्ता और बड़े प्रेमसे करते थे। इसमें सन्देह नहीं कि आपका जीवन उदारता, सहानुभूति और हृदय-विशालताका सार्वरूपमें सामान्य किन्तु बुन्देलखण्ड वासियोंके लिये बड़ा आदर्श था। सेठ साहब के जीवनकाल की बहुतसी महत्व-पूर्ण घटनायें मुझे अच्छी तरह स्मृत नहीं। उनकी पक्की अवधारणाकर उन्हें मैं फिर कभी लिखूंगा।

बरवा सागरवाले श्रीमान मूलचन्द्रजी भी बुन्देलखण्ड प्रान्तके एक महान् व्यक्ति हैं, जिनका बर्ताव दोनों जातियों पर अभिन्न रूपसे रहता है। यों तो आप समस्त जैन समाजके उदार-गण्य पुरुषों में से एक हैं पर प्रान्तके तथा निकटवर्ती समाजमें आप कितने भी औदार्य-पूर्ण और सहानुभूति भरे काम करते हैं उनमें जातीय भेद-भाव तनिक भी देखने में नहीं आता।

मुड़ारा झाँसी निवासी चौधरी श्यामलालजी और ताल बिहट निवासी श्रीयुत खेतसिंह भैयालाल सिंघई, इनके विषयमें भी मेरी ऊंची भावना है। झाँसीके पास जो एक छोटासा चौरासी प्रान्त है। जिसमें भरपूर गोलालारों का निवास है उनके साथ आपका बड़ा प्रेम पूर्ण व्यवहार रहता है। उनके बहुत कामों की लाज तो केवल आप दोनों महाशयोंकी बचाई रहती है। इसी कारण बहुतसे अवसरोंपर तो आपको अनेक विवाह-काज और मामूली जीमनार आदि में उन कामों का पूर्ण स्वामी सरीखा बन जाना पड़ता है। कहनेका प्रयोजन यह है कि उस प्रान्तके गोलालारों से आप दोनों महानुभावोंकी पूरी आत्मीयता बनी हुई है। मैं मोतीलालजी वर्णी की भव्य उदारताको कभी भूल नहीं सकता। उसका सम्बन्ध तो मेरे जीवनके साथ है। आपने मुझे ही नहीं किन्तु मेरे अन्य भी कई भाईयों को बड़े लाड़ प्यारसे रखा और हमारी प्रारंभिक शिक्षाकी अब पपौराजीमें एक शिक्षा-संस्थाकी स्थापना करके आप अपनी स्वाभाविकी उदारता और उपकारिताके आदर्श बनेहुए हैं। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि आपने हमारे जातीय विद्यार्थियों के साथही अधिक सम्बन्ध रखा है। मुझे दुख है कि मध्यप्रदेशीय महानुभावोंका परिचय न

होनेसे मैं उनके बारे में कुछ भी नहीं लिख रहा हूँ।

इस बातको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं कि परवार जातिके सामने शेष दोनों जाति मिलकरके भी किसी बातमें बराबरी नहीं कर सकतीं तो भी वे अपनी स्थिति और शक्तिके अनुसार पारिस्परिक सहानुभूतिके कामों में पीछे पाँव नहीं रखते। सिमरा (झाँसी) निवासी विदुषी श्रीमती चिरौंजा बाईने अपने द्रव्यके द्वारा प्रान्तमें कई विद्वान खड़ेकिये। झाँसी निवासी स्व० श्रीमान् गबदूमलजी पसारी भी ऐसेही उदार पुरुष थे उनके समयमें झाँसी की जैन जनतामें उदार पुरुष वेही गिने जाते थे। स्व० पण्डित ब्रजलालजीने बीना रहकर थोड़ेही दिनोंमें सच्चे प्रमसे जो उन्नति कर दिखाई उसकी सराहना उनके छात्रोंसे सुनतेही बनती है महरौनी निवासी जैन सिद्धांतके प्रकाण्ड विद्वान श्रीमान पं० बंशीधरजी न्यायालंकारने मोरेनामें रहकर तथा इस समय जबलपुरके शिक्षा मन्दिरमें प्रान्तीय हित जो किया है और कर रहे हैं वह शिक्षित जनतासे अप्रकट नहीं है। ये सब आत्माएँ गोलालारीय हैं। इनके चित्तमें जाति-विशेषका विचार कभी उठा तक नहीं।

मैं इस बात को बढ़ा कर नहीं लिख रहा कि जितना भरोसा गोलालारों को अपने भाइयों का नहीं रहता जितना कि परवार भाइयों का रहता है। पारसाल जब देवरान में श्रीयुत लक्ष्मण रोकड़िया जी के गजरथ हुआ था तब उन्होंने उसकी सारी सफलता का भार ललितपुर की परवार पंचायत पर ही छोड़ दिया था। वे तो स्वयं उनके बताये अनुसार काम में लगे रहते थे।

बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश प्रान्त में कुछ ही नहीं किन्तु सैकड़ों महान आत्माएं ऐसी ही उच्चाशया और विशाल हृदया हैं जिनके उद्देश्य समान भावों से समस्त प्रान्तीय तीनों जातियों की उन्नति के हैं। इसका एक ही प्रमाण जबलपुर के शिक्षामन्दिर का स्थापन है। जिसके उद्देश्यों में स्पष्ट कर दिया गया है कि "इस संस्था का उद्देश्य परवार गोलालार तथा गोलसिंगार आदि जातियों की सर्वतोभावतः उन्नति करना है" इसके आगे यदि मेरे से अब कोई प्रश्न करे कि बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश प्रान्त में संगठन करने के लिये नहीं नहीं सब के हृदय एक करने के लिये किस बात की आवश्यकता है तो मेरा एक उत्तर होगा। और वह होगा केवल शिक्षा म[illegible] प्रान्त की जैन जातियों के शुभचिन्तकों, हितैषियों और अभिमानकों को सेवा करना उसे ही अपना आराध्यदेव समझकर अहर्निश उसी की चिन्ता करना, उसे कल्पतरु और कामधेनु समझकर उसकी स्थिति, समृद्धि और संरक्षण करने के लिये सब के हृदयों में उमंग होना, उत्साह होना उसको अपनी ही वस्तु जान कर सबके, उसके प्रति आत्मीयता के भाव होना। सब जातियों के श्रीमानों, धीमानों और सेवाअभिमान छोड़ सकने वालों के लिये अब यह विशाल और व्यापक कार्य क्षेत्र आह्वान करता है प्रेमके संकेतों से बुलाता है और घोर-रव के स्वर में यह संदेश घोषित करता है कि ऐ मेरे प्रेमियों, सदा मेरा राग आलापने वालों, लो तुम्हारी सोई हुई, कुण्ठित हुई शक्तियों को जागृत करने और तीक्ष्ण करने के लिये, तुम्हारे अलाल हुए पुरुषार्थों को कर्मण्य बनाने के लिये ही मैंने अवतार लिया है। मैं इस रूप में पहिले अपने

भक्तों की परीक्षा करूंगा, उसकी फल प्राप्ति मेरे अनुरंजित हो जाने पर है ।

हमारे अब इस प्रान्त को इस बात का सौभाग्य प्राप्त है कि उसमें कार्य सम्पादन की योग्यता सब तरह से विद्यमान है। आज से कुछ ही दिन पहिले इस प्रान्त में गद्दी पर बैठकर शास्त्र सुना देने तक के शिक्षितों की बेहद कमी था, अंगरेजी के बारे में तो यहां तक धारणा थी कि शायद यह भाषा और लिपी हमारे प्रान्तीय विद्यार्थी सीख ही नहीं सकते। पर इन अभावों का निरसन अब बहुत कुछ होगया और वह भी अल्पकाल ही में इसके सिवा वैद्यक तथा अन्य २ विषयों की ओर भी विद्यार्थियों की प्रवृत्ति बढ़रही है और उसमें सफलता भी दिखने में आई है।

मैं इससे आगे प्रान्त के प्रेणाधार, प्रान्तका अवतार रूपेण उद्धार करने वाले पूज्य पाद न्यायाचार्य श्रीमान गणेश प्रसाद जी वर्णी का स्मरण किये बिना आगे बढ़ नहीं सकता। मैं नहीं समझता कि आप के व्यापक कार्यों से आपकी हितामृत बरसाती हुई मधुर देशनायें कोई भी प्रान्त का व्यक्ति अपरिचित और वंचित हो यद्यपि उन्होंने अपने उद्देश के अनुसार अभी बहुत थोड़े काम किये हैं परन्तु वे सब हम लोगों के लिये इतने हैं कि जिनको सारा प्रान्त भी मिलकर नहीं कर सकता था। आपकी पूरी कार्यावली तो एक स्वतंत्र विस्तृत लेखकी जगह घेरने वाली है परन्तु सबसे बड़ा, महत्त्व शाली आपका काम है शिक्षा मन्दिर की स्थापना। मैं तो अपने प्रान्तीय भाइयों के लिये योग्य सलाह दूँगा कि वे सब अपनी कृतज्ञता घोतित करने के लिये देश प्राण और देश के हितकर्त्ता म० गांधी के फोटू की तरह वर्णी जी का सबको अपने २ घरों में चित्र टाँगना चाहिये और प्रातःकाल भगवत्स्मरण के अनन्तर आपके दर्शन से अपने में उमंग लाना चाहिये कि उनकी चिरायुष्कता की प्रार्थना करना चाहिये।

इस लेख में मुझे कहने तो बहुत सी बातें थीं, अस्तु उनको आगे दूसरे शीर्षकों में कहूँगा, यहां पर सिर्फ एक बात कहकर मैं अपने लेख को पूरा करता हूँ ।

यों तो "शिक्षा मन्दिर" के कार्य में कई निरपेक्ष और हृदय की चोटीली आत्मायें प्राण पण से संलग्न हैं और वह एक ऐसे केन्द्र में विराजमान हैं जो स्वयं अकेलाही उसका वाहक बन सकता है। पर नहीं वह अखिल प्रान्तीय संस्था है। इसलिये प्रान्त के व्यक्ति व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि इस महान् यज्ञ में कुछ आहुतिछोड़ने का पुण्यार्जन करें। गरमी के दिन निकट हैं जिसमें कि शिक्षक मण्डल तथा राजकीय दूसरी तरह के काम करने वालों को अवकाश मिलता है। उनसे विशेषतः प्रार्थना है कि वे इन दिनों को सुनहरा बनाने का सौभाग्य प्राप्त करें। इसके खेदविनोद करने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक कामों में शिक्षित लोगों पर ही उसका भार रखा जाता है। क्यः कि उन्हें अपने बातों का ज्ञान होता है जिनका वे विधिवत् पालन करना अपने जीवन का सर्वोपरि ध्येय बनाते हैं। वे अपने को जाति समाज आदिका ऋणी होना स्वीकारते हैं और उससे उऋण होने की चिन्ता से वे जीवनभर व्यग्र बने रहते हैं। इस समय में मैं सबसे अच्छा कार्य इसे समझूंगा कि हरेक जाति के शिक्षितों की कई टोली बनजाना चाहिये। हरेक टोली का एक मुखिया हो और उसी तरह एक २ दो २ हरेक टोली में सम्पन्न और

प्रतिष्ठित महाशय भी हों। इस भेशमें नगर २ ग्राम २ और बस्ती २ घूमना चाहिये। सब के हृदयों में उत्साह हो आशा की लहरें सबके बीच उठती हों और वह अभिनय प्रान्त भर में कर दिखाने का सब के मनों में चाव हो हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना के समय देखा गया था। उस समय काशी में बड़े २ रईसों के बालकों के हाथों में भिक्षा की झोली थी और सबके मुखसे जातीय गायन के सुरीले अलाप निकलते थे। यदि हम इस तरह घर २ फिर कर सब के हृदयों में प्रेम की आग लगा सकें तो सच ही समझिये कि हमारी मांगें बहुत शीघ्र पूर्ण हो जांयगी, प्रान्त भरमें प्रेम के स्त्रोत वह निकलेंगे जिनसे हमारी पृथ्वी हरी भरी हो जायगी।

मेरा यह आशय कदापि नहीं है कि जाति जाति का विशेष और स्वाभाविक स्नेह लुप्त किया जाय। नहीं उसे तो सौगुना और बढ़ाया जाय ऐसा करने से दूसरों को शिक्षा ही मिलेगी। मेरी विनीत विनती तो यह है कि दूसरों को छोटी निगाह से न देखा जाय, कुछ कह सुनकर उनके मन को न गिराया जाय प्रत्युत आत्मीयता भरे व्यवहार से बन्धु बना लिया जाय। बस, संगठन कार्य का यही निष्कर्ष है। और प्रान्त की उन्नति का सारा दार मदार इसी के अन्तर्निहित है।

उद्धारक।

[१]

तुम कहते थे हम आवेंगे,
पर भूल गये क्यों अपनी बात।
क्या विश्व-नियम तुमने भी पकड़ा,
निबलों पर जो करते घात॥

हम दीन हुए जग हँसता है पर,
तुम क्यों बन बैठे नादान।
या किसी तरह से रिसा गये हो,
मन में रक्खा है अभिमान॥

[२]

अथवा पिछले पापों का अब तक,
हुआ नहीं पूरा परि शोध।
या किया हमारी वर्तमान,
करतूतों ने ही पथ का रोध॥
तुम जिस बन्धन में पड़े हुए हो,
तोड़ो उस बन्धन का जाल।
मत ढील करो क्या नहीं जानते,
हम दीनों के हाल हवाल॥

परवार पंचान व परवार समाजके नवयुवकों के नाम खुली चिट्ठीः—

प्रिय बन्धुओ!

सादर जुहारू अपरंच नागपुरके परवार सभाके जलसेमें समाजने मुझे मंत्रीपनेका भार दिया है उस समय हमारे नवयुवकों ने जो वहां उपस्थित थे मुझे पूर्ण विश्वास दिलाया था कि समाजके नवयुवक मेरे साथ पूरा पूरा कार्य करेंगे और मैं उनका प्रतिनिधि की हैसियतसे मंत्री का काम करूंगा इसी आशा और विश्वास पर मैंने काम करना मंजूर किया था। अब मेरी लाज समाजके नवयुवकों पर है मैं समाजके नवयुवकोंसे प्रार्थना करता हूं कि वे इस सभाके कार्य को और विशेषता समाज संघटनके कार्यको शीघ्रही शुरू करदें आप लोगोंने देखा है कि महात्मा गांधीके

असहयोगके सफल करनेमें देशके कितने नवयुवकोंने धन मानको तिलांजली देकर कष्ट सहते हुए देश की वेदी पर अपने प्राण तक न्योच्छावर कर दिये थे और अब भी कर रहे हैं तब क्या हम अपने परवार समाजके नवयुवकोंसे यह आशा नहीं कर सकते कि वे सभाका कार्य करनेको अपना समय देंगे। हमे पूर्ण आशा है कि यह मेरी प्रेमकी भिक्षा मेरे समाजके नवयुवक प्रसन्नतापूर्वक देंगे और सभाके कार्यको अपना कार्य समझेंगे। इसलिये मैं परवार समाजके प्रेमी भाइयोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे खुद अपने व दूसरे समाजमें काम करने को राजी भाइयोंका नाम ग्राम मेरे पास तुरंत भेजदेने को कृपा करेंगे अगर समाजमें ऐसे सुधन्य नाम ६०-८० वालन्टियर मिल गये तो समाजका काम बन जायगा। वालन्टियर लोगोंको मुख्यता आपने जिलेका संगठन का कार्य १ महीनेही करना पड़ेगा उनके खर्च आदिका प्रबंध सभासे किया जावेगा। हमें आशा है कि हर जगह की पंचायत या समाज अपने यहां एक स्थानीय परवार सभाका कार्य करनेको मित्रों की एक २ २ मंडली स्थापित कर कार्य शुरु करदेंगे और मुझे भी सूचना देंगे। देखिये यही एक पुन्य कार्य हमारे जीवनको सार्थक बना देगा।

अब मेरा निवेदन परवार समाजके नेताओ और पंचोंसे है कि वे परवार सभाके प्रस्तावों को अमल में लाकर जात और समाज का हितकर आपना नाम अमर करलें और यह अच्छी तरह समझलें कि अगर उन्होंने समयकी अवहेलना की तो समाजकी दुर्गत होगी और इस सबका पाप आपही लोगों को होगा।

मैंआपका कार्य जभी कर सकूंगा जब समाज भी कार्य करनेको प्रस्तुत होगी अगर यह न हुआ तो मैं कुछभी कार्य न कर सकूंगा क्योंकि समाज की उन्नति और अवनति आप लोगोंके हाथमें है।

आपका विनीत,
कस्तूरचंद वकील,
मंत्री परवार सभा,

जबलपुर
ता० २४-२-२४

प्रभु।

प्रभु तेरा वन्दन करते हैं।

१—दोष हमारे दूर भगा दे,
हममें शुभ वासना जगादे;
सत्य धर्म से स्नेह लगादे,
जिससे जगत जीव तरते हैं। प्रभु

२—जब है तू दिल में आजाता,
अद्भुत नूतनता दिखलाता,
स्वानुभूति का अमृत चखाता;
मन में भव्यभाव भरते हैं। प्रभु

३—अब घेरें अगणित विपदाएँ;
पड़ें सुपथ में बहु बाधाएँ,
नष्ट होरहीं हों आशाएँ,
तो भी डग आगे धरते हैं। प्रभु

४—तू हम को बनना मंगलमय,
हनना दुष्ट विघ्न बाधा भय;
रखना हमको सदय सदाशय,
जिससे सभी सुकृत करते हैं। प्रभु

"पतितात्मा"

जातीय शिक्षा।

(गतांक से आगे)

जो हो, प्राचीनकाल की शिक्षा का आदर्श व्यक्ति गत और समष्टि गत नामक दो विभागों में विभक्त था। व्यक्तिगत शिक्षा आत्मविद्या थी जिसके द्वारा मनुष्य ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करके दिनोंदिन मोक्ष पद की ओर अग्रसर होता है मनुष्य का जन्म मात्र जिन ऋणों में आबद्ध है उनमें ऋषिऋण अन्यतम है। जातीय ज्ञान भाण्डार में पूर्व पुरुषों द्वारा संचित जो कला और विद्या है, और जिनकी पारम्परिक शिक्षा और साधना चली आ रही है उसीको आयत्त करके तथा उसे भविष्यवंशीयों के संरक्षण में ही इस ऋषि ऋण का परिशोध होना है। यही शिक्षा ही समष्टिगत शिक्षा की दिशा है। समष्टिगत जीवन में व्यक्ति का जो स्थान था शिक्षा उसके अविच्छिन्न अङ्ग रूप को ही निर्दिष्ट करती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों के लिये उच्च शिक्षा तथा ग्राम-संघ समूह-संगठन के लिये एक ही प्रकार की सार्वजनीन प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था थी। इसी प्राथमिक शिक्षा का आदर्श केम्ब्रिज से भारत वर्ष नहीं आया, परन्तु मद्रास से मेंचेस्टर गया था। सर्व-साधारण को शिक्षा का समान अधिकार था। उस समय में शिक्षा केवल ग्रन्थों के वर्णों में ही आबद्ध नहीं थी किन्तु विद्या और कला की सहायता से उसे कार्य में परिणत भी होना पड़ता था।

आधुनिक चतुष्पाठी में इसका व्यभिचार घटित हुआ था—इसीलिये ही राजा राममोहन राय इसकी तीव्र आलोचना करते थे। उनने जब देखा कि चतुष्पाठी की शिक्षाप्रणाली से कला और विद्या तिरोहित हो रही है और केवल प्राय है कितने ही परम्परागत अर्थशून्य बन्धनों का चर्वित चर्वण तब वे कला और विज्ञान की प्रतिष्ठा और दूसरी ओर आत्म विद्या के अनुशीलन के लिए वेदान्त विद्यालय का स्थापन करके जो केवल जातीय शिक्षा के आधार मात्र हैं- विच्छिन्न और विनिष्ट प्राय दिशा को पुनरुज्जीवित करके इनके संरक्षण और इनके प्रति नवीन योग के स्थान में बद्धपरिकर हुए थे। इन्हीं दो दिशाओं के पूर्ण सम्मिलित और पुनःप्रतिष्ठा को छोड़कर केवल अर्थोपार्जन विद्या तथा कार्यकारिणीशिक्षा की अपेक्षा जो वास्तविक स्वदेशी वस्तु है उससे हमें अपनी जातीय शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती। हमारा जातीय शिक्षा का जो यंत्र है उसके समीप वर्तमान विद्यालयों के ग्रहण करने योग्य अनेक बातें हैं। हमें अपने शिक्षा सौध को इसी जातीय भित्ति के ऊपर गढ़ना होगा। वर्तमान युग की परिवर्तित अवस्था का प्रयोजन जानकर तथा वर्तमान जटिल सार्वभौमिक शिक्षा और साधना को स्वीकार करते हमें उस भित्ति को गभीरतर और विस्तृत करना होगा।

सो आज जिस एक जातीय शिक्षा के संबंध में चर्चा हो रही है उसके बारे में एक बात विचारणीय है। वह न शिक्षा ही है और न वह शिक्षा जो जातीयता करती है। किन्तु पीछे से वैदेशिक वायु ने घर में प्रवेश करके इस भय को मिटा दिया है। यह भारतवर्ष के आत्म धर्म की विरोधिनी है। भारतवर्ष ने कभी भी बाहर की बातों का प्रत्याख्यान नहीं किया किन्तु जो सत्य है, जो सुन्दर है केवल उसको ही उसने सभी स्थानों से ग्रहण किया है और सभी लोगों को उसका दान किया है। किन्तु आज यह क्या देखा जाता है ? जिसको हम वैदेशिक शिक्षा कहते हैं-उसीकी शिक्षाशाला से कतिपय छात्र भगा लिये जाते हैं—उनकी परीक्षा की व्यवस्था करदी जाती है इसका नाम होता है जातीय विद्यापीठ। यह ऐसा ही है जैसे नामावली देकर पेन्टेलून गढ़ना और उसका नाम देना स्वदेशी वस्त्र नग्न होकर नग्न प्रकृति की गोद में अवस्थित होना क्या यह भारतवर्ष की इतने दिनों की साधना की सिद्धि है। आन्तिम समय में सब छोड़कर हिन्दी और चर्खा की चर्चा ही क्या इस जाति के पितृ पुरुष पूज्यपाद ऋषिगणों के ऋण परिशोध का यथेष्ट प्रयत्न मान लेना होगा ? हाय ! ऋषि गणों की युग युगान्तर व्यापिनी तपश्चर्या का क्या यह परिणाम है। यदि ऐसा ही है तो निश्चय ही हमारा पतन निश्चित है। जो जातीय शिक्षा विज्ञान—अन्य विद्या और वैदेशिक सांश्रय को परित्याग करती है प्रत्येक अवस्था में हमें उच्च कण्ठ से यही घोषित करना होगा कि वह भारतीय नहीं है। भारतवर्ष के विश्व विद्यालय वैदेशिक यांत्रिक रासायनिक और धातु विद्या विशारदों के लिए जिस प्रकार उन्मुक्त थे उसी प्रकार संसार के विक्रयस्थल पर भारतवर्ष ने भी विद्या वाणिज्य के आदान-प्रदान को कभी भी परित्याग नहीं किया। इसका स्पष्ट प्रमाण यही है, कि भारतमाता ने अपने नील के रंग और इस्पात के उद्भव को एक दिन मध्य एशिया की सम्राज्ञी के चरणों पर प्रतिष्ठित कर दिया था। भारतमाता जो एक दिन सहस्राधिक वर्षों से प्राच्य प्रतीच्य तथा शिल्प वाणिज्य की अधिष्ठात्री के रूप में विराजमान थी और जिसको संसार की समस्त जातियों के सर्ववादि सम्मत होकर बिना किसी विवाद के मस्तक नत करके स्वीकार किया था उसका कारण केवल चन्दन की लकड़ी, सुगन्धित वस्तुएं, कोहेनूर मुक्ता मणि की महिमा ही न थी। इसीलिए प्राचीन भारत की ओर केवल मुख फिराने से ही हमारी समस्त दुर्गति का अवसान न होगा। हम लोगों को यदि वास्तविक जातीयता प्राप्त करना है तो उसी शिक्षा पद्धति को ही पुनरुज्जीवित करना होगा जिसके लिए राजा राममोहन राय ने अपनी समस्त साधना को उत्सर्ग कर दिया था। तथा जिस शिक्षा में परा और अपरा विद्याएं समञ्जीसभूत होकर स्थित हैं।

जो शिक्षा विज्ञान और यन्त्र विद्या को अहिंसा के साथ समिहित करने में असमर्थ हैं। और जो विज्ञान की एक विकृति के साथ हिंसा का योग देख

कर विज्ञान को ही परित्याग करने के लिए उद्यत हैं, और जो शिक्षा पार्थिव लाभालाभ के साथ आध्यात्मिक मुक्ति के पथ को नहीं दिखा सकती उसको विद्व न्ममण्डली कभी भी भारतवर्ष की जातीय शिक्षा कहकर ग्रहण न करेगी। सच तो यह है कि भारतवर्ष ने ही पहिलेपहल विज्ञान की सहायता से ध्वंस का मूल मंत्र और इसके रहस्य को समस्त विश्व को सिखाया था। किन्तु उसने दाहिना हाथ उठाकर समस्त विश्व को विश्वमैत्री और परमशान्ति के पथ को दिखाया था। जो शिक्षा यही शान्ति यही मैत्री; यही मुक्तिदायिनी है यदि यही शिक्षा पुनरुज्जीवित हो सके तो इसे हम जातीय शिक्षा कह सकते हैं। जो हम करते आये थे वही करना हमें उचित है पाप का बोझा बढ़ाना उचित नहीं ×

परवार सभा नागपुर के अधिवेशन की कार्यवाही।

जिस प्रकार राष्ट्रीय कार्यों में नागपुर कांग्रेस ने जान डाल दी थी उसीप्रकार परवार सभा के नागपुर अधिवेशन ने सभा में जान डाल दी है।

अधिवेशन की तारीख १६-१७-१८-फरवरी थी लेकिन लोगों का आना १४ ताः से ही शुरू हो गया था। परवारबन्धु के सम्पादक पं० दरबारीलालजी १५ तारीख की मेल से उतरे उसी दिन दूसरी गाड़ी से बुंदेलखण्ड प्रान्त के कर्णधार श्रीमान पं० गणेशप्रसादजी वर्णी आये आपका स्वागत बड़ी धूमधाम के साथ जुलूस निकाल कर किया गया था। आपको लेने के लिये सभी छोटे बड़े आदमी आये थे। आपके साथ परवारबन्धु के प्रकाशक मास्टर छोटेलालजी सुपरिन्टेन्डेण्ट शिक्षा मंदिर जबलपुर भी थे। यद्यपि सभापति श्रीमान सेठ पन्नालाल जी टडैया के आने की तारीख १६ निश्चित थी लेकिन वे ता० १५ की शाम को सिवनी से सीधे मोटर में श्री मन्त सेठ पूरन साव जी और सेठ चैनसुख जी छावड़ा के साथ अचानक आ पहुंचे इस लिये आपका स्वागत दूसरे दिन बारह बजे बड़े जुलूस के साथ किया गया

सभामंडप इतवारी के बड़े मंदिर के पास बनाया गया था मंडप हांडी फानूस और कागज की पुष्प मालाओं से सुसज्जित किया गया था

×श्रीमन्नेन्द्रनाथ शील के भाषण का सारांश। अनु०

यद्यपि नीचे विदेशी कपड़ा भी था लेकिन सब से ऊपर का स्थान स्वदेशी वस्त्रों को ही दिया गया था। मंडप के पूर्वीय भाग में वेदी की रचना की गई थी बिजली की रोशनी से आंखें चकमका जाती थीं इसी प्रकार प्रायः सम्पूर्ण प्रबन्ध प्रशंसनीय था। परवार जाति के प्रतिष्ठित महानुभावों के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध जयकुमार देवीदास चवरो वकील अकोला, सत्याग्रही सेठ चिरंजीलालजी बड़जात्या वर्धा, सेठ चैनसुख जी छावड़ा महामंत्री दि० जैन महा सभा, सेठ हजारीलाल जी छिंदवाड़ा, सेठ खुशालचन्द्र जी छिन्दवाड़ा, सिंघई हीरालाल जी बदनेरा आदि महानुभावों ने आकर सभा को सुशोभित किया था ता० १६ के सबेरे से शान्ति विधान बड़ी शान्ति के साथ १० बजे तक होता रहा पश्चात दो पहर में दो बजे से परवार सभा का अधिवेशन शुरू हुआ शुरू में पं. देवकीनन्दनजी ने मङ्गलाचरण किया साथ में मङ्गलाचरण पर एक सुललित भाषण भी दिया। आप के दार्शनिक भाषण को सुनकर हम भूल गये कि हम किसी जातीय चुनाव सभा में आये हुए हैं इसके बाद सभापति का होने के पहिले ही सभापति महोदय स्वागत गायन किया गया और फिर सभापति के चुनाव का नम्बर आया सभापति के चुनाव का प्रस्ताव श्रीयुत कुंजीलाल जी कामटी वालों से उपस्थित किया जिसका समर्थन तुलसीरामजी सिंघई, पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी, सिंघई कुँवरसेन जी, रा० ब० श्री मंत सेठ पूरनसावजी, सिंघई, पन्नालालजी, आदि महाशयों ने किया किन्तु जबलपुर के सिंघई नत्थूलालजी जबलपुर वालों के अचानक विरोध करने पर सभा में उस समय सन्नाटा छा गया था किन्तु पं० गणेशप्रसाद जी के समर्थन करने पर उन्होंने अपने शब्द वापिस लेलिये इसके बाद सभापति महोदय ने आसन ग्रहण किया और अपना सुललित भाषण पढ़ा जिसकी छपी हुई प्रति इसके साथ भेजी जाती है बाद सबजेक्ट कमेटी का चुनाव हुआ और सभा विसर्जन हुई।

दूसरा दिन

आज सभा का कार्य तीन बजे से प्रारम्भ किया गया विषय निर्वाचिनी समिति द्वारा निर्वाचित सात प्रस्ताव उपस्थित किये गये जो कि सर्व सम्मति से पास हुए आज के प्रस्तावों में विशेष महत्व की बात यह हुई कि जो प्रस्ताव नं० ६ मन्दिर तथा पारमार्थिक संस्थाओं के हिसाब प्रगट करने तथा स्थानान्तरों पर जीर्णोद्धार की आवश्यक्ता देख पंचायती मन्दिरादि की संचित द्रव्य से यथा योग्य सहायता करने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया था उसका समर्थन पूज्यवर्य पं० गणेशप्रशाद जी वर्णीने जिन ललित और प्रभावशाली शब्दों में प्रकट किया था वह उस समय के एक महात्मा सत्याग्रह का विचित्र नमूना दिखाई देता था। आपने अपने स्पष्ट शब्दों में कहा "कि यदि केवल कागजों में हीरकओ प्रस्तावों को आप लोग पर्याप्त समझते हैं तो मैं इस प्रस्ताव को उस उद्देश से समर्थन कर सक्ता हूं किन्तु यह हमारे लिए गौरव की बात नहीं हो

सकी। यदि आप को यह प्रस्ताव सच्चे रूप में सफल करना है तो इसी समय जबकि सब स्थानों की पंचायतों के मुखिया इस स्थान पर उपस्थित हैं तब क्यों न इसी समय इसका अमल करके दिखा दिया जावे मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं" आपके इस कथन पर सभा में एक विशेष प्रकारकी शांति दिखाई दी किन्तु जब सभापति महोदय ने स्वयं उठकर अपने क्षेत्रपाल, पाठशाला औषधालय आदि संस्थाओं का हिसाब प्रकट करने को कहा, तब डोमरा साव पन्नासाव ने रामटेक का हिसाब, पन्नालाल जी अमरावती ने अमरावती के मन्दिर का, कुंजीलालजी कामठी ने कामठी के मन्दिर का, सिंघई लक्ष्मीचन्द नत्थूलाल ने लाठगंज जबलपुर का खेमचन्द जी ने आरवीका, सि० खूबचन्दजी सिवनी वालों ने भी अपना हिसाब स्वयं अपना वा सिवनी के छोटे मन्दिर का जो उनके पास हैं इसी प्रकार रा० ब० श्रीमान सेठ पूरन शाह जी ने अपने मंदिरों का हिसाब प्रकाशित करने को कहा यद्यपि सिवनी में इसी हिसाब बाबत परस्पर में कुछ वैमनस्य चल रहा था इसका अन्त पूज्यवर्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी के आदेसानुसार स्वयं स०सि० खूबचन्द रामलालजी साव ने दोहजार का ⅔ रु० उनके पिता के कहे अनुसार गिरनार जी में भेज देने को कहा इस पर इस प्रस्ताव को अमल में लाने की दृष्टि से अमरावती के सि० पन्नालाल जी ने १०१) रु० अमरावती के जैन मंदिर की ओर से, पं० बिहारीलालजी ने नागपुर के मंदिर की ओर से २०१), श्रीमान पन्नालालजी तडैया ने १०१) रुपया क्षेत्रपाल के मंदिर के फंड से, तथा ५००) श्रीमन्त रा. ब. सेठ पूरण साव सिवनी के मंदिर की ओर से तीर्थ जीर्णोद्धार के लिये देने का वचन दिया।

इस प्रस्ताव का समर्थन श्रीयुत जयकुमार देवीदास जी चवरे वकील ने भी बड़ी युक्ति और अनुभव पूर्ण भाषा में किया था आपने कहा कि

"मंदिरों का द्रव्य और उसका सदुपयोग"

करने से जैन जाति की बहुत कुछ उन्नति हो सकी है। मन्दिरों का उद्देश्य धर्म साधन है किंतु उसका संचित द्रव्य किसी एक के पास रहने से उस द्रव्य से मोह अधिक बढ़ जाता है—और वही मोह अन्य उपयोगी कामों में संचित द्रव्य-व्यय नहीं करने देता इस कारण प्रत्येक मंदिर के मुखिया को चाहिये कि वह मंदिर के द्रव्य को ३ या इससे अधिक लोगों की ट्रष्ट कमेटी बना लेवे और उसी की देख रेख में मंदिर का सम्पूर्ण कार्य चलावे आगे आपने अपने भाषण में जीर्णोद्धार के लिये कुछ न कुछ द्रव्य मंदिर के फंड में से देने की प्रथा चल जाना अत्यन्त लाभ बतलाया-और कहा कि यदि यह प्रथा चल निकली तो इसका श्रेय परवार सभा को होगा, मंदिरों के हिसाब को चतुर्दशी के दिन मंदिर में लगा देने के लिये प्रत्येक पंचायत के मुखियों का मुख्य कर्तव्य है, क्यों कि प्रायः प्रत्येक जगह इसी हिसाब के कारण झगड़े हो जाया करते हैं"।

समय अधिक हो जाने के कारण आज का परवार सभा का काम समाप्त किया गया। और रात्रि को सब्जेक्ट कमेटी होने के पहिले नागपुर के जैन औषधालय का अधिवेशन श्रीमान रायबहादुर श्रीमन्त सेठ पूरनशाह जी के मनोनीत पुत्र श्रीयुत विरधीचन्द्र जी के सभापतित्व में सफलता पूर्वक हुआ आप उत्साही तथा समाज के लिये होनहार मालूम पड़ते हैं। तथा औषधालय केमंत्री भाई टेकचंद्र जी भी कार्य शील व्यक्ति हैं।

तीसरा दिन।

आज प्रथम मास्टर छोटेलाल जी ने महात्मागांधीजी के जेल से मुक्त होने तथा उनके स्वास्थ्य लाभ से देश का उत्थान और उनके रचनात्मक कार्य क्रम से सहानुभूति रखने वाला प्रस्ताव उपस्थित किया जिसका समर्थन सिगई पंनालाल जी अमरावती, दुलीचंद जी चौधरी, श्री सत्याग्रही सेठ चिरंजीलाल जी बड़जात्या वर्धा आदि सज्जनों ने किया-प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास किया गया, पश्चात सोनागिर क्षेत्र के बाबत पं. देवकीनंदन जी तथा मंत्री द्वारा वार्षिक बजट, प्रबंध कारिणी कमेटी और कार्यकर्ताओं के चुनाव आदि के प्रस्ताव पास होने पर परवार सभा का कार्य समाप्त किया गया।

परवार बन्धु के लिये संरक्षक बनने वालों की इसी समय परवार बन्धु की ओर से घाटा पूर्ति की अपील की गई तो बरावर २ के हिस्सेदार १८ श्रीमानों ने अपने नाम लिखाये इनके नाम अन्य जगह प्रकाशित हैं कई नवीन ग्राहक भी बने। श्रीमान सभापति महोदय ने २५ पंचायतों को परवार बन्धु मुफ्त में देने के लिये सहायता प्रदान की और कई नवीन ग्राहक बने जिससे मालूम पड़ता था कि बन्धु के प्रति अब लोगों का प्रेम तथा पूर्ण सहानुभूति है-सभापति महोदय ने १५१) परवार सभा के लिये भी प्रदान किये। इस प्रकार समाज में समयानुकूल द्रव्य दान देने वालों को देखकर हृदय में अत्यन्त आनन्द होता है, और आशा होती है कि अब समाज शिक्षा-समाचार पत्र आदि कार्यों में दान देकर अपने को जीवित रखने में सहायक होगी।

"एक दर्शक"

परवार सभा के प्रथम अधिवेशन नागपुर में पास हुए प्रस्तावों की नकल।

प्रस्ताव नं. १

यह सभा पूज्यवर वयो वृद्ध बाबा गोकलचंदजी जी अधिष्ठाता कुंडलपुर आश्रम, ज्ञानानंद जी, श्री न्या० दि० पं. पन्नालाल जी, श्री सेठ मेवाराम जी, श्री लाला जम्बूप्रसाद जी, श्री सराफ चुन्नीलाल जी ललतपुर, श्री पं. पुसउलाल जी, भाई बप्पूलाल जी, बाबू वेनीप्रसाद जी जबलपुर के स्वर्गवास पर हार्दिक शोक तथा उनके कुटुम्बियों से समवेदना प्रकट करती है।

प्रस्तावक सभापति

प्रस्ताव नं. २

यह सभा प्रस्ताव करती है कि भारत वर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के आदेशानुसार श्री तीर्थ रक्षा फण्ड के लिये प्रत्येक परवार जाति के गृह से १) सालाना अवश्य दिया जावे।

प्रस्तावक-पं. देवकी नंदन जी समर्थक-स सि. नत्थूलाल जी
समर्थक-रा.ब. श्रीमान सेठ पूरनशाह जी,,सि-पंनालाल जी
,,पं.बिहारीलाल जी नागपुर ,, सिगई खेमचंद जी आर्वी

प्रस्ताव नं. ३

परवार जाति में यज्ञोपवीतादि संस्कार की प्रथा बंद सी हो रही है इसलिये यह सभा प्रस्ताव करती है कि इस प्रथा पर विशेष ध्यान दिया जावे।

प्रस्तावक--पूज्य पं. गणेशप्रसाद जी वर्णी

समर्थक—सिगई खेमचंद जी आर्वी

कुंजीलाल जी कामठी।

प्रस्ताव नं. ४

प्रांत व देश की व्यापक भाषा होने के कारण हिन्दी भाषा के द्वारा छात्रों के शिक्षा प्रचार में अधिक सहायता मिलती है, और इसमें एम. ए. तक की पढ़ाई के पठनक्रम योग्य ग्रंथों की बाहुल्यता भी है, अतः इस भाषा के प्रचार व विस्तार की दृष्टि से यह सभा प्रस्ताव करती है कि नागपुर विश्व विद्यालय की कमेटी अन्य देशी भाषाओं के साथ२ हिन्दी भाषाओं को भी स्थान देने का प्रबंध अवश्य करे। प्रस्तावक-सभापति

प्रस्ताव नं. ५

यह सभा प्रस्ताव करती है कि नवीन विश्व-विद्यालय नागपुर देश के अति प्राचीन साहित्य प्रकाश में लाने के लिये पाली और प्राकृत भाषा के पढ़ाने का भी प्रबंध करे और इसके लिये सरकार अपने खजाने से ही द्रव्य व्यय करे।

प्रस्तावक—सभापति

प्रस्ताव नं. ६

यह सभा प्रस्ताव करती है कि प्रत्येक पंचायत अपने स्थानीय श्री मंदिर जी व अन्य पारमार्थिक संस्थाओं के हिसाब प्रकट करे तथा स्थानान्तरों पर जीर्णोद्धारादि की आवश्यकता देख अपने पंचायती मन्दरादि की संचित द्रव्य से भी यथायोग्य सहायता करें।

प्रस्तावक— पं. देवकीनन्दनजी,

समर्थक—श्री जयकुमार देवीदास जी चवरे वकील

"पूज्य पं. गणेशप्रसाद जी वर्णी

,,—भाई कन्हैयालाल जी

प्रस्ताव नं. ७

यह सभा इस प्रस्ताव के द्वारा श्री महात्मा गांधी जी के जेल मुक्त होने से हार्दिक हर्ष प्रकट करती है-तथा श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करती है कि उन्हें शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हो जिससे वे देश केउत्थान में भाग लेकर सफलता प्राप्त करें। तथा उनके रचनात्मक-कार्यक्रम से सहानुभूति रखती है।

प्रस्तावक—मास्टर छोटेलाल जी
समर्थक—सिंगई पन्नालाल जी अमरावती,
सेठ चिरंजीलाल जी बड़जात्या
,, सिंगई दुलीचन्द जी चौरई

जातीय अभिमान

(१)

जाति है प्यारी हमारी, प्रिय हमारा देश है।
ललित है भाषा हमारी, और प्यारा वेश है॥
चाल सीधी और सादी, देश की पोशाक है।
दया मय भोजन हमारा, अन्न अथवा शाक है॥

(२)

पुण्य से प्रीति करना, बस हमारा धर्म है।
दुख न जिससे हो किसी को, वह हमारा कर्म है।
सन्त कहते श्रेष्ठ जिसको, वह हमारा ज्ञान है।
मर चुका जिसको नहीं निज, जाति का अभिमान है॥

सूर्यभानु त्रिपाठी "विशारद"।

व्यथा है।

धरा में धरी थी, महा मोल माया,
सदा ही कमाया न खाया खिलाया।
न कौड़ी कभी दी न कीन्हीं कथा है,
गड़ा ही उड़ा हा! यही तो व्यथा है॥ १॥

कहीं बांध बूढ़े से देते नवेली,
गिनें थैलियां पर न खरचें अधेली।
कहीं बाल व्याहों की फैली प्रथा है,
यही तो हमारी कथा में व्यथा है॥ २॥

गिरे हों गिरी से कि बांसो बढ़े हों,
मशीनों मढ़े हों कि फांसी चढ़े हों।
यही तो हमारे गुरू की प्रथा है,
न छूटे खुशी है, न बांधे व्यथा है॥ ३॥

यहां पैर से बेड़ियां टूटती हैं,
वहां जेल की दोबियां छूटती हैं।
रस्मा रीतियों में न गांधी गुथा है,
न कोई खुशी है न कोई व्यथा है॥ ४॥

कढ़ा कोठरी से कन्हैया हमारा,
असहयोग—योगीश प्यारा दुलारा।
मिटा रोग भारी सुधारी कथा है,
भगी भारती की अभागी व्यथा है॥ ५॥

"दास"

बजट नये साल के लिये।

१०००) स्कालरशिप तथा अनाथ सहायता
५००) उपदेशक फंड
५००) परवार बन्धु
४००) छपाई वगैरह
४००) दफ्तर खर्च
१०००) डेपुटेशनभ्रमण
२००) मुतफर्कात

४१००)

कार्यकारणी के सदस्य।

(१) पूज्यवर पं० गणेशप्रशादजी वर्णी—संरक्षक
(२) श्री०स०सिं० गरीबदासजी जबलपुर "
(३) श्री० सेठ पन्नालालजी तडैया ललितपुर—सभापति
(४) श्रीमंत सेठ रा० ब० पूरनसाहजी—उपसभापति
(५) श्रीमंत सेठ रा० ब० मोहनलालजी "
(६) श्री सिंगई पन्नालालजी अमरावती "
(७) श्री सेठ मूलचन्दजी सर्राफ बरुवासागर
(८) श्री सेठ चन्द्रभानजी बमराना "
(९) श्री सिंगई गोकुलचन्दजी दमोह "
(१०) श्री स० सिं० रतनचंदजी कटनी "
(११) सिंगई कुवरसैनजी सिवनी "
(१२) श्री बाबू कस्तूरचंजी (B.A. L. L.B.)मंत्री
(१३) श्री सिंगई नाथूरामजी ललितपुर उपमंत्री
(१४) श्री सेठ बिरधीचंदजी सिवनी "
(१५) श्री सिंगई प्रेमचंदजी जबलपुर "
(१६) श्री सिंगई मुन्नालालजी नागपुर सहायक-मंत्री
(१७) श्री सिंगई खेमचंदजी आर्वी (वर्धा) "
(१८) श्री बाबू जमनाप्रसादजी कलरैया "
(१९) श्री स० सिं० रतनचंदजी (रतनचंद लषमीचंद फर्म जबलपुर) कोषाध्यक्ष
(२०) श्री तेजसिंगजी (मुनीम) जबलपुर—आडीटर

प्रबंधकारणी के सभा सदों की सूची २१ नाम तो कार्य-कर्ताओं के हैं शेष निम्न हैं।

(२२) सेठ सरूपचंदजी बारासिवनी (बालाघाट)
(२३) स० सिं० नाथूरामजी नरसिंहपुर
(२४) श्री० सेठ लालचंदजी दमोह
(२५) स० सिं० हजारीलालजी महाराजपुर (सागर)
(२६) बाबू कन्छेदीलालजी B.A.B.L. जबलपुर
(२७) श्री दयाचंदजी बजाज रहली (सागर)
(२८) मास्टर छोटेलालजी खुरई (हाल जबलपुर)
(२९) श्री चौ० दयाचंदजी चंदेरी
(३०) मन्नूलालजी करैया वाले पो० पछार (गवालियर)
(३१) श्री सिं० मानकचंदजो रानीपुर मऊ (झांसी)
(३२) सेठ हीरालालजी राघौगढ़
(३३) श्री गुलाबरायजी बड़कुर छतरपुर स्टेट सी. आई.
(३४) श्री शिखरचंदजी पन्ना स्टेट
(३५) पं० फूलचंद्रजी रीवाँ स्टेट
(३६) श्री जसकरनलालजी पिडरई (मण्डला)
(३७) स० सिं० दीपचंदजी सिवनी
(३८) स० सिं० खूबचंदजी सिवनी
(३९) श्री रतनलालजी छिन्दवाड़ा
(४०) पं० कुंजीलालजी कामठी

(४१) सिंगई मूलचंदजी दीवान मकड़ाई स्टेट (हुशङ्गाबाद)
(४२) श्री पंचमलालजी ते० दा० साहब रहली (सागर)
(४३) सिंगई कन्हैयालालजी डोंगरगढ़
(४४) सेठ कपूरचंदजी कटक
(४५) सिंगई हजारीलालजी झाँसी
(४६) श्री गोविन्ददासजी बैसाखिया झाँसी
(४७) पं० जगमोहनलालजी कटनी
(४८) पं० लोकमणिजी शाहपुर (सागर)
(४९) श्री सि० सोनीलालजी नवापारा (रायपुर)
(५०) सिंगई पूरनचंदजी जुझार (दमोह)
(५१) सेठ धरमदासजी अमरावती
(५२) सिंगई परमानन्दजी बीना (सागर)
(५३) सेठ श्रीनन्दनलालजी बीना (सागर)
(५४) श्री गोपालजी (सोमतराय गोपालजी) भेलसा (गुवालियर)
(५५) सेठ काशीरामजी बमराना (पो० मड़ावरा जिला झाँसी)
(५६) श्रीमंत सेठ वच्चूलालजी ललितपुर
(५७) सिंगई अयोध्याप्रशादजी वैद्य चिरगांव—(झाँसी)
(५८) श्री हुकमचंदजी ईसागढ़ जिला (गुवालियर)
(५९) छुट्टीलालजी रावत गुनापोस्ट जिला ईसागढ़
(६०) सिंगई बृजलालजी बरगया मु० कुम्हेडी पो० महरौनी जिला झाँसी
(६१) श्री गिरधारीलालजी तडैया मुंगावली पो० जिला ईसागढ़
(६२) सिंगई भगवानदास सराफ ललितपुर
(६३) सेठ गोरेलालजी तडैया ललितपुर
(६४) श्री मुन्नालालजी सराफ ललितपुर
(६५) चौधरी पन्नालालजी मालथौन जि० सागर
(६६) श्री हुकमचंदजी सागर
(६७) बाबू खूबचंदजी B. A. L. T. सागर
(६८) सिंगई दीपचंदजी सागर सिटी
(६९) अनन्दीलालजी भलैया महरौनी (झाँसी)
(७०) फतेचंदजी नागपुर
(७१) सि० गनपतलालजी गुरहा खुरई
(७२) पं० दरबारीलालजी न्या० ती० इन्दौर
(७३) पं० जीवनधरजी न्या० ती० इन्दौर
(७४) सि० दालचन्दजी मु० विनेका पो० बंडा जिला सागर
(७५) पं० दीपचन्दजी वर्णी दाहोद
(७६) पं० तुलसीरामजी का० ती बडोत (मेरठ)
(७७) श्री गंठेलालजी सोरया मु० पो० मडावरा जिला झाँसी
(७८) श्री लछमनलालजी नायक मु० पो० मड़ावरा जिला झाँसी
(७९) पं० दरयावसिंहजी टीकमगढ़ स्टेट
(८०) सिंगई प्यारेलालजी खनियाधाना स्टेट—स्टेशन बसई जिला झाँसी
(८१) सिंगई दमडूलालजी खनियाधाना स्टेट—स्टेशन बसई जिला झाँसी
(८२) सिंगई खूबचन्दजी जाखलौन जि० झाँसी
(८३) रसिया मौजीलालजी मु० पाली पो०—जाखलौन
(८४) चौधरी बसोरेलालजी मु० जखोरा जिला झाँसी
(८५) श्री तेजसिंह बड़घरिया मु० लागौन जिला झाँसी (पो० केलवारा)
(८६) श्री परमानंदजी (परमानंद हाथीसाव) चंदेरी झाँसी
(८७) श्री मिठया हीरालालजी बानपुर जि० झाँसी
(८८) सेठ मन्नूलालजी सेतपुर पो० मडावारा जिला झाँसी

(८६) स० सिंगई लषमीचन्दजी मु० गढ़याना जि० झाँसी

(६०) बुखारियाधरमदासजी पृथ्वीपुर स्टेशन बरुआसागर जि० झाँसी

(६१) अंधेरिया गिरधारीलालजी मु० निवारी पो० सकरार जिला झाँसी

(६२) भैयालालजी मिडया मु० पो० तालवेठ—जिला झाँसी

(६४) चौ० हरप्रशादजी मु० गूडर पो० खनिया-धाना स्टेट

(६५) श्री शिवलालजी चौ० मुहारी पो० मुड़रा—स्टेशन बसई जिला झाँसी

(६६) चौ० श्यामलालजी मु० मुड़रा खनिया-धाना स्टेशन बसई जि० झाँसी

(६७) सिंगई नन्हेलालजी मु० खजुरिया पो०—महरौनी जि० झाँसी

(६८) चौधरीरामचंदजी (रामचंद मदनमोहन) मु० भोठ जि० झाँसी

(६६) सवाई चौ० खूबचन्दजी मु० गुरसराय जि० झाँसी

(१००) सिंगई मूलचन्दजी मऊ रानीपुर जि०—झाँसी

(१०१) श्री सुखलालजी मु० सिरोंज टोंक स्टेट

(१०२) सिंगई दुलीचन्दजी कलकत्ता

(१०३) ब्रह्मचारी मोतीलालजी

नोटः—उपर्युक्त नामों में यदि किसी का नाम और पता ठीक २ नहीं लिखा गया हो तो वे कृपा कर एक पत्र द्वारा ठीक २ पता लिख कर बाबू कस्तूरचन्दजी वकील मंत्री परवार सभा जबलपुर को भेजें

स्मृति।

(ले०—श्री० मंगलप्रसाद विश्वकर्मा, विशारद)

नगर में जब प्लेग का प्रकोप हो रहा था तब सभी लोग एक एक कर घर छोड़कर नगर से दूर मैदान में झोपड़े बनाकर अपने प्राण बचा रहे थे। परन्तु भयङ्कर स्थिति में भी हम लोग आत्मरक्षा का कोई उपाय न कर सकते थे। रातदिन माँ की बीमारी की चिन्ता हमें बनी रहती थी। हम लोग उनकी ही सेवा-सुश्रूषा में दिन काट देते थे। दिन भर केवल डाक्टर की पुकार होती थी। दवा का प्रयोग किया जाता था। परन्तु एक रात्रि को माँ ने अत्यधिक शिथिलता के कारण अपनी आँख फेर दीं। उस समय घर भर को कँपाता हुआ एक चीत्कार हो गया। मुझे ज्ञात हुआ जैसे प्राणों ने माँ की कङ्काल देह का मोह छोड़ दिया है। परन्तु मौसी ने रोकर कहा—"अब आशा नहीं है।" नानी ने कहा —"ज्ञात होता है जैसे पिछले दो महीनों की सेवा का फल हमारे हाथ न लगेगा।" मैं चुप हो गया। मुझसे कुछ कहा न गया। जैसे इस समय चित्त अवसन्न हो गया था। वैसा ही जैसे प्राण एक मृतक के शरीर में अगाध निद्रा में विलीन हो जाते हैं। पिता निश्चेष्ट रहे। किन्तु, उनने केवल इतना की कहा—"ईश्वर रक्षक है। यदि उन्हें नवजात पुत्र की रक्षा का कुछ ख़याल होगा तो मरण-शैया से भी फिर से प्राण संचार हो सकते हैं। किन्तु विधाता ने तो अलक्ष्य के अन्तराल में बैठकर न जाने किस नवीन सृष्टि की रचना कर रक्खी थी। उस सृष्टि में जैसे हम लोगों का एक नवीन पदार्पण होने वाला था। जैसे हम उस अज्ञेय पथ के पथिक होकर

अविराम प्रयत्न के पश्चात् किसी दुर्बोध लक्ष्य के चरणों पर पतित होने वाले थे। अन्ततः वही हुआ। माता के मृतक शरीर को श्मशान की भस्म में मिलाकर हम लोग तुरन्त केम्प में चले आये।

साथ में एक छोटासा नवजात बालक था। दुर्बल था साथ ही चिन्ता की रेखा में उन्मुक्त था। उसने एक भी दिन जन्म के पश्चात् माता की गोद में बैठकर आँचर का दूध नहीं पिया था। हम लोगों ने इसकी कोई आशा नहीं रक्खी। इसकी कोई आशा भी नहीं की जा सकती थी। फिर भी ऊपर का दूध पिलाते रहने से उसमें शक्ति का संचार होने लगा। वह भूखे रहने पर चिल्लाकर रो देता था। इस पर हम लोग उसे दूध पिला दिया करते थे। माता के मरण के पश्चात् हमारे छोटे से परिवार की दृष्टि अब इस बालक के ऊपर आ गई। सेवा में अविराम प्रयत्न किया गया। रात देखी न दिन। दिन को तो किसी न किसी तरह उसकी सेवा हो सकती परन्तु रात्रि राम राम कर कटती। पिता माता के वियोग से क्षुब्ध हो रहे थे। उनके सन्तापित हृदय को किसी प्रकार शान्ति न मिल सकती। फिर भी कभी वे, कभी मैं, कभी स्त्री, कभी बुआ रात को उठकर उसे दूध पिलातीं। इसके पश्चात् जब वह चुप हो रहता—सो जाता तब हम लोग अपने अपने बिस्तर पर लेट रहते।

धीरे धीरे एक माह बीत गया। इस बीच में हमें कई आश्चर्य—जनक घटनाएँ सुनने को मिलीं। यह सभी घटनाएँ माता की प्रेतात्मा से सम्बन्ध रखती हैं। एक दिन मुझे एक पड़ोसी से सम्वाद मिला। उसने कहा—“रात्रि को जब मैं अपने घर लौट रहा था उस समय तुम्हारे घर के दुमँज़ले पर कोई स्त्री सीढ़ियों पर से धमधम करती हुई ऊपर चढ़ गई। ऊपर आकर उसने पुकारा—“बिटिया, बिटिया उठ उठ; छोटा भैया रो रहा है। उसे दूध तो पिला दे।” पड़ोसी ने कहा—“मैं ने चिल्लाकर कहा कौन है?” परन्तु इसका उत्तर कुछ न मिला। स्त्री का धमधम क्षणमात्र में बन्द हो गया। पुकारना भी रुक गया। घर पूर्ववत् निश्चेष्ट हो गया। वहाँ एकबार फिर से प्लेग की विषैली वायु घर के भीतर होती हुई एक विकट ‘साँय साँय’ शब्द करने लगी। सुप्त-रजनी जैसे तारों को झल झलाने लगी। उसमें कोई आकर्षण नहीं था। केवल विकट रूक्षता की—भयङ्करता का एक अभूतपूर्व आह्वान था।” पड़ोसी की बातें सुनकर मुझे कौतूहल हुआ। मृतात्मा के छाया दर्शन में मुझे पहले से ही विश्वास नहीं था। फिर भी भय की एक रेखा जैसे चित्त पर बिजली के समान कौंध जाती थी।

इसके कई दिन बाद एक पड़ोसिनी स्त्री ने आकर कहा—“एक स्त्री छज्जे पर बैठकर जैसे एक रोते हुए बच्चे को थपकियाँ देकर दूध पिला रही थी। मालूम नहीं वह कौन थी। फिर भी वह बीच बीच में छोटी बहिन का नाम लेकर पुकारा करती थी। मैंने पुकारा परन्तु वह कुछ न बोली। इस पर मैं चीख मारकर भाग खड़ी हुई। ईश्वर जाने यह सब क्या था।”

पिता ने कहा—“यह सब कुछ नहीं केवल चित्त का विकार मात्र है।” फिर भी मेरे लिए ये सब बातें अभूतपूर्व होने के कारण मुझे इन

पर कौतूहल होता साथ ही एक अचिन्तनीय भय की रेखा खिंच आती। मेरी और माता की इस ज़िन्दगी में एक दिन के लिए भी कभ, नहीं पटी। अतएव क्षणमात्र के लिए यह कल्पना अवश्य हो जाती कि सम्भव है माता की प्रेतात्मा—यदि इसमें कुछ भी सत्यांश है—तो मुझ पर अपने चिरकालीन प्रकोप के कारण आक्रमण करेगी। परन्तु यह सब भावना मात्र थी। प्रत्यक्षतः मुझे कोई भी कभी ऐसी घटना नहीं दिखाई पड़ी। अतएव इन बातों पर मेरा विश्वास नहीं रहा।

धीरे धीरे कुछ दिन और बीते। खुली वायु का जीवन प्रत्येक के लिए सुखप्रद होता ही है यदि उसमें कोई बाधा न हो। परन्तु, सम्प्रति ऐसी बात नहीं थी। एक दिन आकाश में उजले बादल उड़े जा रहे थे जैसे मान-सरोवर गामी हंसों का समुदाय। जैसे स्मृति के ऊपर सुखद दृश्यों का आविर्भाव।

निर्मल नील आकाश में उजले बादल उड़ते ही न रहे। उनमें क्रमशः पानी का संचार हुआ। वे भारी होकर वायुमण्डल पर उतराने लगे। उनके कालेपन ने वृष्टि की कल्पना को अवसर दिया। उनकी गरजन ने समीपस्थ स्थिति के भयङ्कर रूप को प्रादुर्भूत किया और बिजली की चमक ने कहा आज सन्ध्या के पश्चात् यहाँ एक प्रलय का दृश्य उपस्थित होगा।

सन्ध्या का अन्धकार घना हो रहा था। बुआ ने नन्हें से बच्चे को बिजली की कौंध से चौंकता हुआ देखकर अपनी आँचर से लगा लिया। हम लोगों ने ब्यालू करली। भयङ्कर वायु ने हमारे झोपड़ों को उखाड़कर फेंकना शुरू किया। हम लोग बिस्तर भी यथा स्थान कर सके। केवल सृष्टि के हाहाकार के अन्त-र्गत पिता और मैंने टीन के झोपड़े को हाथ से वज्र के समान थाम लिया। पास के आम के झाड़ अर्रा कर गिरने लगे। पानी मूसलधार वृष्टि करने लगा। बादल एक निर्मम चीत्कार करने लगा। बिजली ज़ोर ज़ोर से कौंधने लगी। पानी की मूसलवृष्टि के बाद ही आँवले के समान ओलों की वृष्टि हुई। टीन के झोपड़े पर जैसे पत्थरों की वृष्टि हुई। हमारे कान बहरे हो गये। समस्त विश्व हाहाकार कर रहा था। निर्मम प्रलय के अन्तस्तल में एक विकट आर्त-नाद और क्रन्दन ध्वनि हो रही थी। छोटी बहिन ने चिल्लाकर कहा—"यह क्या, घर के भीतर ओले भर रहे हैं।" इस पर स्त्री ने उसे अपनी गोद में छिपा लिया। बुआ ने बच्चे को अपने आँचर में अच्छी तरह से ढाँकते हुए कहा—"अरे! आज दूध नहीं आया। कैसी मरन है।" पिता ने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—"हाय! इस समय कोई उपाय नहीं है।"

बारह बजे रात को काँपती हुई ग्वालिन दूध लेकर पहुँच गई। यह सहायता बच्चे के लिए जैसे संजीवनी बूटी थी। मैंने दौड़कर दूध ले लिया। पिता और बुआ ने अपना आश्वासन देते हुए अपना सन्तोष प्रगट किया।

सवेरा हुआ। जैसे राम राम करके रात कटी। परन्तु बच्चे ने रात को एक घूँट भर दूध नहीं पिया। उसकी तबियत बिगड़ने लगी। दिन भर उसने दूध नहीं पिया। सबों ने सोचा कदाचित् रात्रि की वृष्टि और ओलों

से उसका शरीर अवसन्न हो गया है। इस समय आशा और दुराशा में एक कल्पनातीत व्यवधान था।

आज रात को वृष्टि नहीं हुई। बच्चे ने दूध नहीं पिया। वह केवल रोता रहा। पिता ने कहा—"अब बच्चा नहीं बच सकेगा। थोड़ी देर के लिए हमारा और उसका साथ है।" हमारा छोटासा परिवार उसको घेर कर बैठ गया। सब लोग निश्चन्त थे। सुप्त रजनी में केवल बालक की क्रन्दन-ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। अड़ोस-पड़ोस से अन्य आत्मीय भी एकत्र हो गये। विदित हुआ जैसे उस आशा और दुराशा का कल्पनातीत व्यवधान जैसे मिट गया। परन्तु इस अवधि में बच्चे की मृत्यु नहीं हो सकी। सभी लोग हाय मारकर रह गये। कहने लगे—"हाय, परमेश्वर बच्चे को इतना दुःख क्यों दे रहा है। यदि उसे लेना है तो विलम्ब काहे के लिए है।" इस समय पौ फूटने का समय हो रहा था। एक किरण के फूटने पर आत्मीय गण अपने अपने झोपड़े में चले गये। बालक केवल क्रन्दन ध्वनि करता रहा। पिता ने कहा—"ज़रा बच्चे को दूध पिला दो।" बुआ ने दूध पिलाया। बच्चे ने जी भरकर दूध पी लिया। इसके पश्चात् क्षणभर में देखते देखते उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

कतिपय आत्मीय लोगों को लेकर मैं श्मशान गया। समीप ही गुप्तेश्वर की पहड़िया पर हम लोग गये। कुछ लोगों ने एक गढ़हा खोदा। बड़े भाई ने बच्चे की अँगुलिया चीरकर फेंक दी। तत्पश्चात् स्नान कराकर बच्चे के मृतक शरीर को गढ़े में पूरकर हम लोग घर लौटे। पहाड़ी के काले काले भयङ्कर पत्थरों पर कई गिद्ध बैठे हुए थे। मालूम होता था जैसे ये लोग श्मशान में सोये हुए मृतक मनुष्यों की रखवाली कर रहे हैं।

एक विकट और अवसाद से परिपूर्ण दिवस अनेक स्मृतियों को जागृत करता हुआ समाप्त हो गया। सन्ध्या के घने अन्धकार में हम लोग बैठकर चर्चा करने लगे। छोटी बहन मेरे पास एक कपड़े को लेकर दौड़ती हुई आई। कहने लगी—"छोटे भैया की अँगुलिया देखो।" बड़ी माँ ने कहा—"जब तक बच्चा जीवित था तब उसकी माँ की प्रेतात्मा घर में आकर उसकी रक्षा की चेतावनी दे जाया करती थी। देखो, वह कितनी सच बात नकली।"

पिता चुप रहे। परन्तु गोधूलीबेला में एक चमकीले तारे को दूर क्षितिज में ऊगते हुए देखकर मेरे चित्त में यह भाव उठा—मनुष्य जीवन में उदय के पश्चात् इतना प्रकाश क्यों नहीं है? क्षण भर में देखते देखते चमकीले तारे के ऊपर एक काले बादल के टुकड़े की छाया पड़ गई। उसका प्रकाश एक अन्तर्वेदना के साथ मलिन पड़ गया।

विविध विषय।

(अमृत बिन्दु)

कार्य्यारंभ करने का उपयुक्त अवसर।

यदि आप के हृदय में कोई कार्य्य करने

की इच्छा कई दिनों से लगरही हो और उसे प्रारंभ करना चाहते हों तो प्रारंभ करने का उपयुक्त अवसर अभी—ठीक अभी है। और प्रारंभ करने का उचित स्थान भी यही है।

यदि आप उस कार्य्य को भली प्रकार से करना न जानते हों तो उसे गलती तौर से ही कीजिये परन्तु उसे कीजिये अवश्य।

संसार में सभी आवश्यक कार्य्य कठिन होते हैं सहज कुछ भी नहीं है। प्रत्येक कार्य्य करने में विपत्ति का सामना अवश्य करना पड़ता है।

ऐसे अनेक मामले होंगे जिन पर आप का सुख निर्भर है किन्तु उलझा हुआ होने के कारणआप रुक रहे हों—तो कोई भी कठिन या उलझा हुआ कार्य करने के लिये यह आवश्यक है कि आप उसे जैसा हो वैसा ही प्रारंभ करें क्योंकि जब तक आप किसी काम के लिये प्रयत्न न करेंगे तब तक उसे करना सीख भी न सकेंगे।

× × × ×

जीवन एक कला है, न कि विज्ञान अतः जीवन की सफलता अनुभव, धैर्य्य और अनन्त बार निष्फल होने पर भी निराश न होने वालों को ही मिलती है। बिना अनुभव प्राप्त किये किसी कार्य्य को करना कोई कैसे सीख सकता है!

× × × ×

यदि आप किसी से मिलना चाहते हैं किन्तु बहुत ही बुरे स्वभाव के कारण आप उससे मिलने में भय खाते हों तो उससे मिलने का निश्चय आज ही कर डालिये। बिना ऐसा किये आप की कठिनाई हल नहीं हो सकती।

× × × ×

यदि आप की मेज पर कई अधूरे काम पड़े हों तो उन्हें अभी पूरा कर डालिये।

यदि आप को किसी का कर्ज देना है तो उसे इसी समय चुकता कर दीजिये। यदि इसी समय न चुका सके हों तो उसे चुकाने का अच्छा से अच्छा प्रबन्ध अभी कर डालिये। ऐसा करने में कभी मत चूकिये और न उसे आगे के लिये रख छोड़िये।

× × × ×

यदि आप को अपना पाठ याद करना है परन्तु वह बहुत कठिन जँचता हो और ठीक समय तक याद कर डालना असम्भव दिखता हो तो जितना बन सके उतना ही अभी याद कर डालिये। कोई आश्चर्य्य जनक घटना होने के लिये न रुके रहिये।

× × × ×

यदि आप में कोई बुरी आदत पड़ जाने के कारण बड़ी परेशानी उठाना पड़ रही हो तो उस आदत को छुटाने का प्रयत्न अभी से शुरु कीजिये। क्योंकि एक दिन उसपर आप को विजय पाना ही होगी और जितने दिन आप इसके करने में ढील डालेंगे आप का शत्रु उतना ही बलिष्ठ होता जावेगा।

× × × ×

यदि आप पैसा बचाना चाहते हों तो जो कुछ आप के पास हो उसमें से कुछ अभी बचा कर सेविंग्स बैंक में या अन्य कहीं जमा कर

दीजिये। कोई भी कार्य्य समाप्त नहीं हुआ है जिसका आरंभ न किया गया हो।

× × × ×

यदि आप उदार होना या अपने साथियों की सहायता करना अथवा दान देना चाहते हों तो जो कुछ आप के पास हो उसमें से कुछ अभी दे डालिये। यदि आप थोड़े में से कुछ न दे सकेंगे तो अधिक होने पर क्या दे सकेंगे।

× × × ×

आप जो कुछ करना चाहते हों उसे अभी कीजिये क्योंकि सम्भव है कि भविष्य में आप जो कुछ करना चाहते हों वह निरा स्वप्न ही निकले। इसलिये मूल्य उसी का हो सक्ता है जो कुछ आप आज कर सकते हैं।

उस सिद्धान्त का कोई महत्व नहीं जिसे आप स्वयं अपने काम में न लावें। कोई भी निश्चय जिससे आपकी उन्नति अथवा विजय हो सक्ती है वही हैं जो आप के मन वचन और काम तीनों को एक साथ ही प्रेरित न कर सके। अतएव किसी भी कार्य्य के आरंभ करने का उपयुक्त अवसर यही है।

"अमृत"

विनोद लीला।

१—श्रीमती परवार सभा का पाणिग्रहण अभी तक श्रीमान पांच पांडवों के साथ जैसा हुआ वैसा लोगों से छिपा नहीं रहा किन्तु भाई अब की बार बुंदेलखंड प्रान्त के मोटे मुखिया श्रीमान सेठ पन्नालालजी टडैया से पाला पड़ा है देखो अब इस सभा की प्रसूति में क्या २ गुल खिलते हैं।

२—परवार सभा में इस वर्ष मन्दिरों के रुपयों का हिसाब प्रकाशित करने तथा उनका द्रव्य अन्यउपयोगी कामों में भी खर्च करने का कोरा प्रस्ताव उगला जाने वाला था। परन्तु भला हो पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी का कि जो समर्थन के लिये खड़े होकर बीच ही में अड़ गये और प्रस्ताव को उसी समय अमल में करा लिया। अब विचारे मन्दिरों का रुपया हड़प जाने वालों की आफत है!

३—वाह परवार सभा का अधिवेशन तो समाप्त हो गया. पर क्या कहना पं० देवकी नन्दन जी की रसमयी, हास्यमयी सुरीली आवाज वाली मधुरमूर्ति "यमुनातीरे धीर समीरे वसति वने बन माला" की याद कराती थी। और पं० गुलाबचन्द जी वैद्य? वाह आपका कहना ही क्या है अगर कोई दूसरा कालिदास होता तो तुरन्त एक श्लोक पाद बना देता जिसका भाव होता "नीरस तरुरिह विलसति पुरतः"

४—परवार सभा के ललतपुर वाले अधिवेशन में पवित्र कार्यों में खादी का प्रयोग करने वाला प्रस्ताव पास हुआ था भला हो नागपुर के श्रीमान दीपचन्द फतेचन्द जी का जो उन्होंने वेदी प्रतिष्ठोत्सव के अव-सर पर परवार सभा को बुलाकर उसी मंडप में विलायती कपड़ों की झालर और

बिजली की रोशनी से सब की आंखों में चकाचौंधी मचाकर प्रस्ताव को पीछे ढकेल दिया।

५—कोई २ लोग कहते हैं कि कटनी के विमानोत्सव में परवार सभा का अधिवेशन किया जाता तो सोने में सुगन्ध हो जाती है। परन्तु भाई क्या ये कम महत्व की बात हुई जो पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी ने दो परसों के वैमनस्य को दूर कराके लोगों का दोनों ओर से मुंह मीठा कराया। यदि ऐसे अवसर पर दि० जैन शिक्षा मंदिर जबलपुर का अधिवेशन किया जाता तो उसे दोनों हाथ लड्डू मिलते।

६—सुना है कि कटनी के विमानोत्सव वाले मंडप में विलायती कपड़ों की सजावट नागपुर के मंडप को मात किये देती थी। परन्तु भाई अन्तर केवल इतना था कि नागपुर में बिजली की रोशनी के कारण आंखों में चकाचौंधी आती थी तो यहां गस के लेम्पों की भरमार थी।

७—बहुत से सज्जन सिंगई और सवाई सिंगई की पदवियां बहुत ही कम मूल्य (यहां तक कि मुफ्त) में देने को तैयार हैं मैं समझता हूं कि केवल इसी आशय से ही रथ आदि उत्सव करने वालों को ये मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। अभी सस्ता सौदा पाकर शीघ्र सुरफ लेने ही में सुघरई है।

वसंती मसखरा—

एक पड़रीमूर बाभणा गोत्र।

साहित्य परिचय

शासन देवता पूजन चर्चा

संपादक हीराचन्द्र नेमचन्द दोशी सोलापुर। मूल्य बारह आने। कुछ दिनों से समाज में शासन देवों के विषय में बड़ी चर्चा छिड़ी हुई है कुछ लोगों का कहना है कि शासन देवों की पूजा करना चाहिये और कुछ का कहना है कि ये कुदेव हैं। उनकी पूजा करना मिथ्यात्व है हीराचन्द्र नेमचन्द जी शासन देव पूजा के विरुद्ध पक्ष में हैं। इनके पक्ष में जो लेख समय समय पर जैन मित्रादिपत्रों में प्रकाशित हुए हैं उनका यह संग्रह है। कुल लेख पन्द्रह हैं। पूजक पक्ष ने आदि पुराण के कुछ मंत्र बता कर सिद्ध करना चाहा था कि जिनसेन स्वामी भी इन्हें पूज्य ठहराते हैं वास्तव में आदि पुराण में ऐसे मंत्र वाक्य पाये जाते हैं जिनमें साधारण देवों के नाम पड़े हैं। लेकिन इसके पीछे जो "एतेसिद्धार्चनकुर्यात्" यह वाक्य पड़ा है इससे कहना पड़ता है कि वे नाम सामान्य देवों के नहीं मगर सिद्ध परमेष्ठी के हैं जिन सहस्रनाम में भी ऐसे नाम दिये हैं जो कि साधारण देवों के या मनुष्यों के कहे जा सक्ते हैं मगर वास्तव में वे जिनके ही नाम हैं।

इसके अतिरिक्त पूजकों ने जो युक्तियां दी हैं वे बहुत पोच हैं जैसे देवों में मनुष्यों से अधिक ऋद्धि सिद्धि होती है इसलिये वे पूज्य हैं कहना न होगा कि जैन धर्म के मर्म को समझने वाला पूज्यता को इस तरह टके सेर नहीं बेच सक्ता इतना होकर भी यह तो कहना पड़ेगा कि आगम प्रमाण से इस बात का निर्णय न

होगा क्योंकि आशाधर प्रतिष्ठापाठ के जो सत्ताइस मंत्र उद्धृत किये गये है उनमें सराग देवों के भी मंत्र हैं जैसे—ॐ ह्रीं जयाद्यष्ट देवताभ्यः स्वाहा—ॐ ह्रीं रोहिण्यादि षोडस देवताभ्यः स्वाहा—ॐ ह्रीं चतुर्विंशति यक्षेभ्यः स्वाहा—ॐ द्वादशकल्प वासिभ्यः स्वाहा—ॐ ह्रीं अष्ट दिक्कन्यकाभ्यः स्वाहा—इत्यादि इसके उत्तर में पं० बनवारीलालजी ने साफ लिख दिया है कि "मुझे तो रत्नकरण्ड श्रावकाचार और पं०: मेधावीकृत धर्म संग्रह श्रावकाचार के कथनानुसार प्रतिष्ठापाठ अप्रमाण ही प्रतीत होते हैं"।

पंडित जी इतना लिखकर ही रह गये हैं अगर आगे कुछ और खोज करते या विचारते तो बहुत कुछ सफाई हो जाती।

असल बात तो यह है कि जब तक दोनों पक्ष संस्कृत पुस्तकों के आधार पर अपना निर्णय करते रहेंगे तब तक अर्थों की खींचा तानी के सिवाय कुछ लाभ नहीं हां जैन धर्म के सिद्धान्तों के ऊपर विचार करके इस बात का निर्णय किया जाय तब सफलता हो सक्ती है जैन धर्म आज कल का नहीं है उसने जमाना देखा है कई बार तो उसका अस्तित्व तक खतरे में पड़ गया है ऐसे मौके पर उसके बाहरी रूपों को बदलना पड़ा नवीन बनाना पड़ा और लिखना पड़ा कि

सर्व एवहि जैना नाम प्रमाणं लौकिको-विधिः। यत्र सम्यक्त्वहानिर्न, नयत्र व्रत दूषणम् अर्थात् जिन लौकिक व्यवहारों से सम्यक्त और चारित्र में दूषण नहीं आता वे सब जैनियों को मान्य हैं।

इतना ही नहीं चतुर आदमी के समान उन्हें "सर्व नाशे समुत्पन्ने, अर्धं त्यजति पंडितः" इस नीतिका भी अनुसरण करना पड़ा है और यही कारण है कि जब सराग देवों की पूजा का प्रचार बढ़ चला और जैन धर्म में सराग पूजा निषिद्ध होने से स्त्रियों ने और अज्ञ पुरुषों ने भी दूसरों के देवों के देवों की पूजा शुरू करदी तब कुछ विद्वानों ने शासन देव पूजा का आविष्कार किया।

जब मेरी उमर नव दस वर्ष की थी उस समय दमोह में स्त्रियां माता की बीमारी होते ही एक देवी की पूजा करने जाती थीं (और अब भी बहुतायत से जाती हैं) उस समय दमोह के कुछ लोगों ने स्त्रियों से कहा था कि "तुम लोग वहां पूजा करने मत जाया करो अपने मंदिर में पद्मावती की मूर्ति है उस की पूजा किया करो" यदि किसी ने अधिक जोर दिया होता तो यह रीति यहां भी चल गई होती।

शासन देव पूजा के विषय में कुछ ऐतिहासिक खोज की जाय तो बहुत कुछ सत्यता की रक्षा हो सक्ती है।

सत्यता की रक्षा हो सक्ती है यों तो इस पुस्तक में कहीं कहीं युक्तियों से भी काम लिया गया है मगर इस ओर अभी पूरा ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है।

इतना हम कहेंगे कि शासन देव पूजा जैन धर्म में कलंक का काम कर रही है इससे लोगों में अन्धविस्वास बहुत बढ़ गया है एक बार जब हम आरा गये थे तब वहां

हम से किसी आदमी ने कहा था कि " हम जिनेन्द्र की पूजन तो पीछे भी कर सक्ते हैं मगर क्षेत्रपाल की पूजा में ढील नहीं कर सक्ते क्योंकि अगर ये रुष्ट हो जाँय तो हमारा धर्म क्षण भर भी नहीं रह सक्ता "।

शासन देवों की पूजा जिन सेवक के समान नहीं, किन्तु जिनके ही समान होती है अभी जेष्ठ मास में जब मैं सूरत गया तो वहां पर मैंने खुद अच्छी तरह से देखा था कि एक बड़े भारी थाल में तीन मूर्तियों का अभिषेक किया गया उनमें एक मूर्ति पद्मावती की थी। जो कुछ हो जैन धर्म सरीखे वीतराग धर्म में इस तरह सरागी देवों की पूजा न होना चाहिये इस कार्य में सेठजी का उद्योग प्रशंसनीय है।

इस पुस्तक के विषय में मुझे एक बात, और कहना है कि इसकी भाषा बड़ी खराब है और लेखों की भाषा के दोष तो उन लेखकों का विचार करके क्षन्तव्य कहे जा सक्ते हैं मगर पं० जयदेव की भाषा की खिचड़ी क्षन्तव्य नहीं है कहीं संस्कृत भाषा के कठिन शब्दों कहीं लम्बे लम्बे समास कहीं वाक्य के वाक्य तक पड़े हुए हैं उदाहरणार्थ की अर्हन्तादिक की स्थापना तु तद्गुणा रोपणात् भवत्येव। ऐसे बहुत से वाक्य हैं इससे अच्छा होता कि संस्कृत में ही लेख लिखा जाता।

खैर पुस्तक उपादेय है और इस चर्चा में दिलचस्पी रखने वालों के लिये संग्रहणीय है।

उन्नतिमार्ग—सम्पाद् पं० कुंवरलाल न्यायतीर्थ प्रकाशक ताराचन्द्र बड़िया आगरा मूल्य सदुपयोग। यह उत्कर्ष लेख माला का तृतीयांक प्रायः सामाजिक लेखों का सग्रह है।

दिगम्बर जैन—सम्पादक मूलचन्द्र किसनदास कापड़िया सूरत। यह दिवाली का खास अंक है और सालों की अपेक्षा इस वर्ष का खास अंक अच्छा है इकीस चित्र हैं जिन में दो रंगीन हैं लेखों का संग्रह भी अच्छा हुआ है हिन्दी गुजराती मराठी संस्कृत अंग्रेजी पांच भाषाओं के लेख हैं अगर एक दो अच्छी कहानियां (गल्पें) होतीं तो और भी अच्छा होता फिर भी अंक बहुत सुन्दर बना है और पाठकों के संग्रह करने योग्य है।

समाचार संग्रह

संहार शक्ति

मनुष्यों में अविश्वास यहां तक बढ़ गया है कि आत्मरक्षा के लिये मनुष्य की बहुत सी शक्ति खर्च हो जाती है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को एक जाति दूसरी जाति को एक देश दूसरे देश को पीसना चाहता है और इसकेलिये नाना तरह के अस्त्र शस्त्रों का आविष्कार करता है न मालूम मनुष्य समाज कब " मरो और मारो " इस सिद्धान्त को छोड़ कर " जियो और जीने दो " इस सिद्धान्त का उपयोग करेगा। विज्ञान के एक छोटे से लेख में जनसंहारक अस्त्रों की सूची है जो कि अभी आविष्कृत हुए हैं।

अग्निवर्षक यन्त्र।

फ्रांस में यह अस्त्र बना है इसमें तेल और स्फोटक पदार्थ भरकर ज़मीन या हवाई जहाज पर से फेंकने पर समूची सेना नष्ट की जा सकती है।

बड़ी तोप ।

इसका गोला २०० मील तक आ सक्ता है विशेषता यह है कि छूटने के बाद इसकी तेजी बढ़ती जाती है यह फ्रांस की कारीगरी है।

शेल गोलों की माला ।

एक गोलों की माला बनाई जाती है गोला एक के बाद दूसरा बराबर छूटता जाता है गोलों की मार १२५ मील तक है उद्योग करने पर और दूर भी गोला फेंका जा सकेगा यह भी फ्रांस की कारीगरी ।

मोटर तोप ।

यह एक घंटे में ५०, ६० मील दौड़ने के साथ ही गोले भी बरसाती जायगी।

विक्षेपास्त्र ।

इसके द्वारा १०० मील तक गोले फेंके जा सक्त हैं।

चालकहीन टारपिडो।

अब टारपीडो बिना चलाने वालों के भी चल सकेंगे यदि लक्ष्य दृष्टिगोचर न भी हो तो भी यह उसपर चलाये जा सकेंगे इसमें सैकड़ों टन (एक टन करीब २० मन का होता है) स्फोटक पदार्थ भरे जा सके हैं यह अपने लक्ष्य पर जाकर फट जाता है और सारा नगर नष्ट कर देता है। आकाश में चलनेवाला बृटिश दस इंची टारपीडो तार हीन यन्त्र के द्वारा चलाया जाता है जब वह फटता है तो ५० फुट के भीतर की सभी चीजों को ध्वन्सकर देता है यह अकेली दम से बड़े बड़े लड़ाकू जहाजों का नाश कर सक्ता है।

बिजली वाल स्फोटक ।

यह शत्रु के गोला बारूद को बिजली की लहरों द्वारा क्षण भर में नष्ट कर सकेगा।

विषैली गैस की टंकी ।

इसका मुँह शत्रु की ओर कर देने से यह ऐसी गैस उगलती है कि सबका सफाइ कर देती है अभी तक इससे बचने का कोई उपाय नहीं है।

बिजली की तोप ।

इसका आविष्कार अंग्रेजी वैज्ञानिकों ने किया है इससे बिजली की लहरें निकलकर शत्रु का नाश कर सकेंगी गोला बारूद की कुछ जरूरत नहीं।

चालक हीन लड़ाकू जहाज़ ।

जर्मनी के विद्वानों ने इसका आविष्कार किया है यह आकाश म रहने वाले हवाई जहाज द्वारा चलाया जायेगा हवाई जहाज में वे तार के तार यंत्र से निकली हुई बिजली की लहरों से इसका नियन्त्रण होगा यह कभी आगे कभी पीछे कभी इधर उधर चलाया जा सकेगा। यह जहाज उड़भी सकेगा इसकी आकाश में जाने की शक्ति और तेज है यह बड़े बड़े जहाजों को मिनटों में डुबा देगा। इस आविष्कारों से मालूम होता है कि मनुष्य समाज अपना ही नाश करने के लिये कैसी घुड़दौड़ मचा रहा है।

शिक्षा मंदिर जबलपुर ।

प्लेग के प्रकोप के कारण शिक्षा मन्दिर ता० १७ फरवरी से १० मार्च सन् २४ तक के लिये बन्दकर दिया गया है।

Reg. No. 315

[वर्ष २] मार्च सन् १९२४. [अंक ३]

श्री भा. दि. जैन परवार सभा का मुख पत्र-

[वार्षिक मूल्य ३) रु.] [एक प्रतिका मूल्य ।-]

परवार-बन्धु

बुन्देलखण्ड के मान्य सेठ, श्री पन्नालाल टडैया जी।
सादर स्वागत-स्वागत करते, बदल दीजिये अब बाजी ॥१॥
नागपूर अधिवेशन में जब आप सभापति हुए निहार।
पलक पांवडे बिछा बहुत से, पहिनाता हूं तब हिय हार ॥२॥

छिन्न भिन्न अति खिन्न मलिन है निःसहाय निःस्तेज बड़ी।
उद्धार करो पतवार पकड़ परवार जाति मझधार पड़ी ॥

कितने भाई पतित हुए हैं कितने बैठे हैं मन हार।
लो सुधि उनकी अब श्रीमन्! शीघ्र लगाओ बेड़ा पार ॥४॥

सम्पादक
पं० दरबारीलाल साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ।

प्रकाशक
मास्टर छोटेलाल जैन।

परवार बन्धु की सहायता

मैं श्रीमान स० सि० लक्ष्मीचन्द जी गढ़याला वालों ने २५), स्वर्गीय श्रीमान सेठ मुन्नीलाल जी की ओर से १०), तथा श्रीमान सिंगई कुंवरसेन जी की माफत ५) मिले हैं। अतएव धन्यवाद है। कई प्रेमी सज्जनों ने परवार बन्धु को

प्रशंसा पत्र भी भेजे हैं :—

१—श्रीयुत बाबू पन्नालाल जी चौधरी भूतपूर्व प्रकाशक-परवारबन्धु बनारस से लिखते हैं :—

.........यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि आप बंधु के प्रकाशक और पं० दरबारीलाल जी सम्पादक नियत हुए हैं अब पत्र में जान आजायगी"

२—श्रीयुत पं० तुलसाराम जी काव्यतीर्थ भूतपूर्व सम्पादक परवार बन्धु बड़ौत:—

.........बंधु मिला मैं इसका हृदय से स्वागत करता हूं और इसकी सुन्दरता, विषय निर्वाचन क्रम आदि बातों का हृदय से अभिनन्दन करता हूं। मेरी यह हार्दिक कामना है कि इसका यह रूप स्थाई रहे"

३—श्रीमान बाबू हजारीलाल जी एम-ए-एल एल-बी कारंजा से लिखते हैं:—

.... "बन्धु ने आपके प्रकाशकत्व में निस्सन्देह अपूर्व उन्नति की है इसकी सौन्दर्य और भीतरी सामग्री महत्व पूर्ण और प्रशंसनीय है। मुझे आशा है, कि आप के सुयोग्य प्रकाशकत्व में बन्धु उत्तरोत्तर वृद्धि और उन्नति करता जावेगा। मैं प्रायः ता. २५ को इलाहाबाद पहुंचूंगा और वहां से बंधु के वार्षिक मूल्य का मनि० भेज दूंगा"

४—श्रीयुत कन्हैयालाल मुन्नालाल जी जैन जबलपुर से लिखते हैं:—

"परवार बन्धु का अग्रिम मूल्य भेजता हूं जमा करना और आगे के अंक बराबर भेजते रहियेगा। मुझे नये वर्ष के अंक देखने से परम हर्ष होता है श्री जिनराज से प्रार्थना है कि इस होनहार बालक का जीवन हमेशा हरा भरा बनाये रक्खें। और ग्राहक बनाने की कोशिश करूंगा"।

५—श्रीयुत पं० लोकमणि जी गोटेगांव:—

.... हम बन्धु को पढ़ कर बहुत खुश हैं। परमात्मा से प्रार्थना है कि वे इसे विशाल और दीर्घ जीवी बनावें। आप जैसे योग्य सम्पादक से बन्धु हर समय हरा भरा रहेगा। ऐसी आशा और प्रभु से प्रार्थना है।

६—श्रीमान पं० बाबूलाल जी वैद्य भूषण कलकत्ता:—

निवेदन के पूर्व में मुझे बड़े आदर भावों से पत्र की शैली पर प्रसन्नता होती है। अब आशालता का सिंचन संभव हो जावेगा। परवार सभा का जीवन भी पत्र से सार्थक था वह भी निष्कंटक समझ में आता है। विशेष पत्र की काया पलटने से जो हर्ष था वह केवल शैली सम्पादकीय कला को जागृत होने वाली छटा पर निर्भर करता है ऐसी आशाओं का एक मात्र स्थान हम आप के प्रकाशकत्व पर निर्धारित कर ग्राहक बने रहने का वचन देते हैं"

७—श्रीयुत बाबू पंचमलाल जी तहसीलदार रहली:—

परवार बन्धु का दूसरा अंक मिला अंक १ ला भेजने की और कृपा करेंगे ताकि वर्ष की पूरी फाइल तैयार हो सके वार्षिक मूल्य मनिया० से भेजता हूं।

८—श्रीयुत बाबू दुलीचंद जी परवार कलकत्ता :—

.........."आपका परिश्रम देखकर अब मुझे विश्वास है कि बंधु की उन्नति अच्छी रीति से होगी। वास्तव में जिसढंग से पत्र का पहिला अंक निकाला है वह सर्वथा जाति की संख्या के हिसाब से अनुकूलता लिए हुए है। मैं भगवान से प्रार्थना करता हूं कि हमारा बंधु दिन २ उन्नति करता हुआ अमर हो। बधु को वी. पी. भेजियेगा"

९—श्रीयुत सिंगई हीरालाल जी महामंत्री गोलापूरब सभा बदनेरा से लिखते हैं:—

........परवार बंधु के दो अंक प्राप्त हुए स्वरूप सुन्दरता और लेख साहित्य उत्तरोत्तर विकासवर्धक—समाधानकारक दृष्टिगोचर होने से आनन्दवृद्धि हो रही है।

१०—श्रीयुत पं० शालगराम जी द्विवेदी "विशारद" जबलपुर से लिखते हैं:—

............परवार बन्धु में जातीयता की पुट के साथ सर्वसाधारण के लिये उपयोगी सामग्री देख प्रसन्नता हुई। मैं पत्र की उन्नति हृदय से चाहता हूं।

हमारी आशा।

लता को हरी भरी बनाने के लिये परवार-बन्धु के प्रेमी पाठक जिस प्रकार उत्साह दान दे रहे हैं-उसको देखकर हमारा मस्तक नत हो जाता है। अपनी अयोग्य अवस्था का स्मरण आते ही इस भारी भार को निरापद ले चलने के लिये भय प्रतीत होता है। किन्तु अपने सहायकों की सहायता को आगे रखते ही हृदय बड़े वेग से आगे बढ़ने के लिये उछल पड़ता है।

और जब सेवा भाव का स्मरण नवजीवन का संचार करता है-तब बिना किसी अपेक्षा के इच्छा होती है कि अपनी तुच्छ-किन्तु सम्पूर्ण शक्ति समाजिक सेवा में समर्पण करें। अनुभव कुछ और बतलाता है-इसलिये उसका सेवाभाव से द्वन्द युद्ध होता है, उस युद्ध में सेवा भाव की विजय होती है-और उसी विजय श्री के गले में आकर आशालता लिपट जाती है।

परवार बन्धु के ग्राहकों से

नम्र निवेदन है- कि अब उसके ग्राहकों के पता छपवाये जा रहे हैं। अतः जिनको अपना पता बदलवाना हो ग्राहक होना स्वीकार न हो, तो कृपा कर हमें शीघ्र एक पत्र द्वारा सूचना देकर अनुगृहीत करेंगे। और उन ग्राहकों से भी प्रार्थना है कि जिन्होंने अबतक उसका वार्षिक मूल्य नहीं भेजा – वे ३) मनियार्डर भेजकर बन्धु के कार्य में हाथ बटावेंगे। मूल्य भेजने वालों के नाम इसी अंक से परवार बन्धु में प्रकाशित होते रहेंगे। जिसको जो अंक न मिला हो वह मंगा लेवेंगे।

पत्र मंगाने का पता

मास्टर छोटेलाल जैन

प्रकाशक- परवार बंधु कार्यालय- जबलपुर.

परवार-बन्धु का वार्षिक मूल्य भेजनेवाले महाशयों के नाम

ग्राहक नं०	नाम	रुपया	ग्राहक नं०	नाम	रुपया
३०	श्रीमान सि० दुरजनलालजी [illegible]	३)	२८५	,, पं० हरनामसिंह जी डीकनगढ़	३)
३४	,, कड़ोरेलाल मुन्नालालजी जगदलपुर	३)	३१०	,, पं राजमल जी जैन कुमावली	)
९०	,, मूंगालाल हजारीलालजी बजाज सुरई	३)	३२०	शान्तिमित्र ब्रह्मचारी स्या० महा० वि० काशी	३)
९५	,, पन्नालाल पन्नालाल जी भार्गी	३)	३२२	,, चौ० वृन्दावन फूलचन्द जी भागनगर	३)
९७	,, चन्दूलाल खेमचन्दजी भार्गी	३)	३२३	,, शालग्राम जी दलाल इन्दौर	३)
२१७	,, सेठ हुकमचन्द अगाधरमलजी देहली	६)	३२४	,, मौजीलाल भैयालाल जी ललितपुर	३)
२१८	,, मिट्ठूलाल पन्नालालजी अमरावती	३)	३२५	,, छुन्नालाल पन्नालाल जी भलैया महरोनी	३)
२१९	,, गुलाबचन्द कपूरचन्द जी सिवनी	३)	३२६	,, चौ० भैयालाल जी महरोनी	३)
२२०	,, टेकचन्द कपूरचन्द जी सिवनी	३)	३२७	,, मौजीलाल प्यारेलाल जी ललितपुर	३)
२२१	,, फतेचन्द जी सिवनी	३)	३२९	,, कड़ोरेलाल फूलचंद मुखरिया ललितपुर	३)
२२२	,, डोमन साव देवाजी सुकलेव	३)	३३१	,, पन्नालाल बलभैया सेमरा	३)
२२३	,, मन्नूलाल प्रेमीलालजी पिपरई	३)	३३३	,, जवाहरलाल रामप्रसाद कल्याणपुर	३)
२३४	,, रामचन्द्रलाल अगाधरलाल जी हटारसी	३)	३४०	भंवरलालजी मन्त्री दि० पर० जै० वि० उदयपुर	)
२४४	,, कन्हैयालाल जी जैन वैद्य चौरई	३)	३४१	,, पं० मुन्नालाल जी प्र० स० जै० पाठशाला	)

(क्रमशः)

सम्पूर्ण परवार पंचायतों के प्रति सभा का आदेश—

यह परवार सभा सम्पूर्ण प्रदेशों के परवारों मात्र की है। कार्य कर्ता भी सम्पूर्ण प्रदेशों के हैं फिर भी द्रव्याभाव होने के कारण दो हजार रुपया गरीबों, अनाथों, विद्यार्थियों की सहायता में व्यय किया जाता है। किन्तु अब जीर्णोद्धार के लिये इस में दस हजार रुपयों की अति आवश्यक्ता है। अतएव इस की पूर्ति के लिये जबलपुर अधिवेशन के प्रस्ताव नं० ५ के अनुसार "विवाह आदि संस्कार कार्य के अवसर पर परवार सभा के लिये यथोचित द्रव्य देना चाहिये" इस को स्मरण रखते हुए प्रत्येक पंचायतें द्रव्य इकट्ठा करके "मंत्री परवार सभा जबलपुर" के पतेपर अवश्य भेजने की कृपा करें। किसी भी पंचायत को परवार सभा के नाम की द्रव्य बिना सभापति तथा मंत्री की आज्ञा के खर्च करने का अधिकार नहीं है।

परवार-बन्धु

परवार जाति का एक मात्र मुख पत्र है। इस लिये इस के १०००० दस हजार ग्राहक हो जाना भी थोड़े हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के घर में परवार बन्धु को पहुंचना आवश्यक है। साल भर का ३) देकर पत्र की सहायता करने से नये २ लेख समाचार आदि पढ़ने को मिलेंगे। सभा के प्रत्येक कार्य कर्त्ता को इस पत्र के ग्राहक बनाने तथा अपने यहां के नये २ समाचार भेजने का लक्ष्य रखना चाहिये। ग्राहकों के नाम लिखकर "प्रकाशक परवार-बन्धु कार्यालय जबलपुर" के पते पर भेजते रहना चाहिये। निवेदक—कुंवरसेन, उपसभापति-परवार सभा.

आवश्यक्ता।

गोहाना रोहतक में हुकमचंद जैन औषधालय को एक वैद्य की—और "ज्ञान वनिता वनाश्रम" जिसका मुहूर्त वैशाख सुदी ३ सं० ८१ को होगा उसमें पढ़ने वाली बाईयों की आवश्यक्ता है। उक्त अवसर पर पधारने के लिये सम्पूर्ण विद्वानों और बाइयों को निमंत्रण है।

☞ पत्र व्यवहार का पता —सेठ हुकमचंद जी अगाधरमल, चांदनी चौक–देहली।

विषय सूची।

वर्ष २ | मार्च, सन् १९२५ ई० | संख्या ३

होली !

[१]

यह होली किस भाँति मनावें ?
जाति दुखी है—पराधीन है,
निज अधिकारों से विहीन है।
रोग-शोक से मन मलीन है,
शुभ अवसर पर अश्रु बहावें !
यह होली किस भाँति मनावें !

[२]

'पाप' हृदय का हार हुआ है,
जीवन भी अब भार हुआ है।
तम-मय सब संसार हुआ है,
कैसे जीवन-ज्योति जगावें ?
यह होली किस भांति मनावें !

[३]

शांति-सूर्य भी अस्त हुए हैं,
साधु-सरोरुह त्रस्त हुए हैं।
जीव मलीन समस्त हुये है,
कुछ विश्राम न मन में पावें ?
यह होली किस भांति मनावें ?

[४]

मन में यह विश्वास हुआ है,
" सत्य धर्म का ह्रास हुआ है,
दुख का अधिक विकास हुआ है,"
पग पग पर ठोकर भी खावें।
यह होली किस भाँति मनावें ?

[५]

चारों ओर घनान्धकार है,
जीवन में कुछ नहीं सार है।
मूक हुआ हृत्-तंत्रि तार है,
कैसे सुख के साज सजावें।
यह होली किस भाँति मनावें ?

" साहित्य रत्नाकर रामकुमार वर्मा।"

बहुत दिन ठोकरें खाने के बाद अब लोग मानने लगे हैं कि शिक्षा प्रचार मातृभाषा के द्वारा करना चाहिये। दूसरी भाषा के द्वारा शिक्षा देने से करीब आधा युग तो कोरी भाषा सीखने में ही चला जाता है। जब शिक्षा का आरम्भ होता है तभी शिक्षण काल खतम हो जाता है इस प्रकार देश के अधिकांश युवक शिक्षा के लिये योग्यपरिश्रम करके और पूरा समय देकर भी शिक्षा से वञ्चित रह जाते हैं।

भारत वर्ष की यूनिवर्सिटियाँ इंग्लेंडकी यूनिवर्सिटियों की बड़ी नकलें हैं इनमें सबसे बड़ा अन्धेर तो यह है कि ये सात समुद्र पार की भाषा में शिक्षा देती हैं इने गिने श्वेतांगों के लिये सारा भारतवर्ष इंग्लिश सीख रहा है गीदड़ की पूंछ पकड़कर हाथी कीचड़ से निकला जा रहा है अभी अभी नागपुर यूनिवर्सिटी बनी है उसमें मेट्रिक तक हिन्दी में भी शिक्षा दी जाती है लोग इसेही गनीमत समझते हैं।

हमारी समझ से हिन्दी का माध्यम कालेज तक जा सकता है हिन्दी में भी अनेक विषयों की ऊंचे दर्जे की पुस्तकें आगई हैं और जिन विषयों की नहीं आई हैं वे पुस्तकें इंग्लिश की नकली जावें और प्रोफेसरों के व्याख्यान तथा छात्रों के उत्तर पत्र हिन्दी में ही हो तो काम चल सका है मगर ऐसा करना तो तब न "न नोमन तेल होय न राधा नाचे" इसपर भी क्या भरोसा कि नाच ही देगी "बीबी के बहाने हैं अनन्त पार न पाहो" खैर।! हम आज इंग्लिश शिक्षा के ऊपर कुछ नहीं कहना चाहते हैं क्यों कि यह हमारे वश की बात नहीं है इसकी बागडोर सात समुद्र पार है इस लेख का लक्ष्य तो वे विद्यालय और पाठशालाएं हैं जो जैन समाज के धनसे और जैन नेताओं की सम्मति से चलती हैं।

बीस पच्चीस वर्ष पहिले जैनियों के विद्यालय प्राय: थेही नहीं स्वर्गीय पं० पन्नालाल जी न्यायदिवाकर और पूज्य पं० गणेश प्रसाद जी वर्णी ने बनारस में किसी तरह छिपछिपकर शिक्षा पाई थी वह बड़ा विकट समय था सिद्धान्त ग्रन्थों के कुछ पुराने हिन्दी अनुवाद थे लेकिन बिना संस्कृत शिक्षा के जैन धर्म का मर्म समझना कठिन था क्योंकि जैनियों का न्याय और साहित्य संस्कृत के गर्भ में ही है और किसी तरह पं० गणेशप्रशाद जी आदि के प्रयत्न से बनारस में स्याद्वाद विद्यालय की स्थापना हुई और जैनियों को संस्कृत शिक्षा का बड़ा भारी सहारा मिलगया इसके बाद फिर जगह २ संस्कृत विद्यालय खुलते गये और संस्कृत विद्वानों की भी संख्या बढ़ती गई लेकिन लोगों को " चलो जान दे

ढला चला " का रोग होता है वही रोग जैन विद्वानों को लग गया इतने दिन निष्कल जाने पर भी उन्हें अपने शिक्षाक्रम में कुछ परिवर्तन योग्य न दीख पड़ा बच्चे को जवान होजाने पर भी दीवाल के सहारे चलाना उन्हें अच्छा लगा इसका फल यह हुआ कि शिक्षा का मँहगापन पहिले जैसा ही बनारहा इससे उसका प्रचार भी बहुत कम हुआ। जैन समाज व्यापारी समाज है इसके लड़के ब्राह्मणों के समान अपना सारा जीवन पढ़ने में ही नहीं बिता सके यद्यपि ऐसे भी कुछ लोग हैं मगर हमें उन कुछ लोगों में ही शिक्षाका प्रचार नहीं करना है शिक्षा को इतना सुलभ बनाना है जिससे समाज का बच्चा इसे पासके।

हम अपने अनुभव से कह सकते हैं कि संस्कृत भाषाके द्वारा शिक्षा देने से शिक्षा की सुलभता नष्ट होजाती है यद्यपि हिन्दी में जैन न्याय और जैन काव्यों की बिल्कुल कमी है और हम एकदम शास्त्री परीक्षा तक हिन्दी नहीं कर सकते मगर हमारा कहना यह है कि कर सकें कैसे ? अभीतक करने की चेष्टा ही नहीं हुई है।

जहां विद्यार्थी प्रवेशिका कक्षा में गया कि उससे रत्नकरंडश्रावकाचार द्रव्यसङ्ग्रह सरीखे संस्कृत प्राकृत ग्रंथ रटवाना शुरू किये बिना संस्कृत ज्ञान के इन ग्रंथ को रटने रटाने में कितनी तकलीफ पड़ती है इसको रटने रटाने वाले ही जानते हैं।

अंग्रेजी स्कूलों में भला इतना तो है कि पहिले इंग्लिश का कुछ ज्ञान करादेते हैं फिर इंग्लिश में किसी विषय की शिक्षा दी जाती है यहांतो संस्कृत प्राकृत से बिलकुल शून्य बालकों को जैन दर्शन की शिक्षा दी जाने लगती है मनुष्यों के बच्चे तोतों के बच्चे बनाये जाते हैं।

वे बिचारे क्या जाने कि "निर्वृत्त कलिलात्मने" किस चिड़िया का नाम है ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है इससीधी सी बात याद रखने के लिये घंटों "णाणं अट्ठवियप्पं णाणं अट्ठवियप्पं" चिल्लाया करते हैं।

आप कहेंगे कि उनको साथ ही साथ एक एक शब्द का ठीक ठीक अर्थ बताते जाना चाहिये लेकिन जो प्रायमरी शिक्षण पद्धति से परिचित हैं वे जानते हैं कि ऐसा करना उनके ज्ञान के विकाश करने के स्थान में उनका ज्ञान दीपक बुझा देना है इसके पहिले उन्हें सरल साहित्य और व्याकरण से परिचित करा देना आवश्यक है।

जैन समाज में जो बड़े बड़े विद्यालय हैं उनमें रहने वाले छात्र तो पीछे संस्कृत पढ़ लेते हैं लेकिन जो छोटी छोटी ग्रामीण पाठशालाएँ हैं जिनमें घंटे आध घंटे शिक्षा लेने वाले छात्र हैं उनके पीछे भी यही पचड़ा लगा हुआ है किसी किसी पाठशाला के अध्यापक महोदय तक संस्कृत नहीं जानते फिर भी संस्कृत ग्रन्थों का पठन पाठन होता ही रहता है यह भी खूब रही "मिले एक से गुरु अरु चेला, दोउ गड्ढे में ठेलम ठेला"

यदि कोई छात्र द्रव्य संग्रह या रत्नकरण्ड श्रावकाचार का हिन्दी पद्यानुवाद पढ़कर परीक्षा देना चाहे तो उसे परीक्षालय मंजूर नहीं करता इससे साधारण लोग शिक्षण से वञ्चित रह जाते हैं बस यदि शिक्षित होना चाहते हो तो घर का काम छोड़ कर विद्यालयों में संस्कृत पढ़ो नहीं तो धर्म शिक्षा के हाथ जोड़ो और घर बैठो "न काबुल जैहो न घोड़ा पैहो"

जैन समाज में कुछ श्राविकाश्रम भी खुले हैं इन आश्रमों में रह कर अभी तक किसी ने

संस्कृत का ज्ञान प्राप्त नहीं किया फिरभी उनकी शिक्षा दीक्षा संस्कृत ग्रन्थों के द्वारा हुई है।

दस बीस बार बचवाने से तो विचारी श्लोक बाँच पाती हैं फिर तोता मैना सरीखी श्लोकों की रटाई, और करीब उतनी ही मिहनत अन्वय रटने में और वैसा ही परिश्रम अर्थ भावार्थ रटने में, मार रटने के मारे घुटने टूट जाते हैं मुँह छिला सा जाता है लेकिन सब चुप हैं सञ्चालक जी चुप हैं अध्यापको जी चुप हैं परीक्षक जी चुप हैं दर्शक जी भी चुप हैं चुप्पी का सुस्थिर साम्राज्य है मानों बचन गुप्ति नाक कटा कर इनके मत्थे पड़ी है यदि इन श्रावकाश्रमों में तथा पाठशालाओं में प्रवेशिका तक के सब ग्रन्थ हिन्दी के कर दिये जाँय और परीक्षालय भी उन्हें स्वीकार कर ले तो भी गनीमत है मगर हमें इतना और कहना है कि मान लीजिये ग्राम पाठशाला में कुछ विद्यार्थी ऐसे है जिन ने प्रवेशिका तक हिन्दी के द्वारा शिक्षा पाई है और वे अब उच्च शिक्षा लेना चाहते हैं तो उनका क्या होगा क्या वे विद्यालयों में जाकर फिर प्रवेशिका प्रथम खंड में भरती किये जावेंगे? यदि ऐसा ही हुआ (जैसा कि होता है) तो उनका पहिला परिश्रम एक प्रकार से व्यर्थ ही गया।

इसलिये चाहे महाविद्यालय हो या पाठशाला सब में प्रवेशिका की शिक्षा हिन्दी द्वारा दी जाना चाहिये या जो संस्कृत लेवें लेकिन जो संस्कृत नहीं ले सकते उन्हें वर्तमान और प्राचीन हिन्दी साहित्य का ज्ञान करा दिया जाय भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा की पूरी योग्यता करा दी जाय इधर हिन्दी के द्वारा धर्म शिक्षा भी बहुत दी जा सकी है सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा से उन्हें छन्द अलंकार इतिहास भूगोल गणित आदि का भी अच्छा ज्ञान हो सकता है अब यदि यह विद्यार्थी उच्चशिक्षा लेना चाहे और संस्थाओं के सञ्चालक विशारद में हिन्दी द्वारा शिक्षा देना मंजूर करें और परीक्षालय भी आना कानी न करे तो विशारद में सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा और ऊँची धर्म शिक्षा दी जा सकी है हाल में अनुवादों से काम चल सकता है दो चार वर्ष में धर्म न्याय आदि के मौलिक ग्रंथ भी बन सकते हैं।

कुछ महाशयों का कहना है कि उच्च दार्शनिक शिक्षा हिन्दी द्वारा नहीं दी जा सकी इसके उत्तर में इतना कहना ही बस है कि जब इंग्लंड में ऊँची धार्मिक शिक्षा लेटिन द्वारा दी जाती थी और कुछ लोगों ने इंग्लिश के द्वारा शिक्षा प्रचार की चेष्टा की थी तब भी लोग इंग्लिश को शिक्षा अयोग्य बताते थे लेकिन आज इंग्लिश में संसार भर का साहित्य विद्यमान है असल बात तो यह है कि संस्कृत विद्वानों के मन में कुछ हिन्दी के प्रति उपेक्षा के भाव हैं यदि हिन्दी में वैसे ग्रन्थ रचे जायें तो कुछ कठिनता न रहे।

संस्कृत विद्वान भी तो समाज में दार्शनिक व्याख्यान हिन्दी में ही देते हैं फिर हिन्दी पुस्तकें बन जाने पर हिन्दी के द्वारा शिक्षा देने में क्या हानि है।

एक बात और है संस्कृत ग्रन्थों के द्वारा हमें वही शिक्षा मिलती है जो करीब एक हजार वर्ष पुरानी है इन हजार वर्षों में क्या परिवर्तन हो गया इसका ध्यान भी नहीं किया जाता कम से कम चरित्र और इतिहास विषयक ग्रन्थों का जैसा का तैसा रहना बहुत अनुचित

है। हमारा यह मतलब नहीं है कि उन ग्रन्थों को छोड़ देना चाहिये मगर इतना अवश्य होना चाहिये कि वह शिक्षा वर्तमान काल के योग्य बन सके सागारधर्मामृत सरीखे सुयोग्य ग्रंथ से भी वर्तमान मानव जीवन के लिये उपयोगी सभी बातें नहीं मालूम पड़ती और संस्कृत ग्रन्थ रचना का प्रवाह प्रायः रुका हुआ हैं वर्तमान संसार से परिचित होने के लिये अब हिन्दी ही शरण है हिन्दी में बहुत से ग्रन्थ सदाचार नीति आदि के ऊपर लिखे जाते हैं और बहुत से लिखे जा चुके हैं आचार शास्त्र के साथ साथ समाज शास्त्र के ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है इस विषय के ग्रन्थ भी हिन्दी में मिलते हैं इन सब को पठन क्रम में रखना चाहिये यह तभी हो सका है जब शिक्षा की भाषा हिन्दी हो. इसके बिना विद्यार्थी पुस्तकों का भार नहीं सह सके जैन समाज में यह प्रश्न भी बहुत दिनों से चल रहा है कि सब जगह का पठनक्रम एक सा होना चाहिये कुछ लोगों का यह विचार भी है कि एक केन्द्रस्थल विद्यालय से सब छोटी छोटी पाठशालायें सम्बद्ध हो जावें लेकिन जब तक पठनक्रम में हिन्दी का बोलबाला न रहेगा तब तक हमें इस कार्य में सफलता नहीं मिल सकी कारण कि छोटी छोटी पाठशालाओं में संस्कृत का प्रबन्ध नहीं होसका और संस्कृत शून्य प्रवेशिकोत्तीर्ण विद्यार्थी बड़े विद्यालयों के काम का नहीं होता यदि आज हिन्दी में उच्च विषय की शिक्षा दी जाती तो अनायास ही विद्वानों की संख्या बढ़ जाती।

यदि हम हिन्दी को उच्च स्थान देना चाहते हैं तो हमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अनुसरण करना चाहिये।

सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा अनेक विषयों में होती है लेकिन दो विषयों को छोड़कर अन्य किसी विषय के हिन्दी ग्रन्थ नहीं मिलते फिर भी सम्मेलन उन विषयों की परीक्षा हिन्दी द्वारा ही लेता है।

जितने ग्रंथ हिन्दी के मिल जाते हैं उतने हिन्दी के बाकी संस्कृत तथा इंगिलश के रख दिये जाते हैं ज्यों ज्यों उन विषयों के हिन्दी में ग्रन्थ बनते जाते हैं त्यों त्यों दूसरी भाषा के ग्रंथों को हटाकर हिन्दी को स्थान मिलता जाता है।

विद्यार्थी किसी भी भाषा के ग्रन्थ द्वारा ज्ञान प्राप्त कर हिन्दी में परीक्षा दे सका है। यदि सर्वार्थसिद्धि, गोम्मटसार आदि ग्रन्थों की परीक्षा हिन्दी में हो तब आप देखेंगे कि इन ग्रन्थों के समझने वालों की संख्या बढ़ जायगी और थोड़े ही दिनों में इसी जोड़ के ग्रन्थ आजावेंगे तथा छात्रों को हिन्दी संसार का भी परिचय हो जावेगा जीवित भाषा के विशेष ज्ञान से और उसके साहित्य के परिचय से क्या लाभ है इसके कहने की जरूरत नहीं।

शिक्षा के कार्य में हमें यह बात न भूलना चाहिये कि यथा साध्य अधिक क्षेत्र में शिक्षा का प्रचार होने के लिये उसको सुलभता और सरलता आवश्यक है।

शीत ताप रहित सुगंधित समीर चले,
बार बार आनंद से मन उमगात है।
शिशिर की शीत को ठिकानो तक रहो नहीं,
नहीं दंत वीणा नहीं अंग सकुचात है॥
आयो है बसंत भये पल्लव नये ही नये,
कोऊ सूखे पत्तन की पूछत न बात है।
चलो मित्र देखो तो बसंत की बहार जरा,
ठौर ठौर अब तो बसंत ही दिखात है॥

फूलो है गुलाब ताको रूप गंध मन मोहै,
अनुपम गंध से चमेली इतरात है।
ठौर ठौर कानन करौंदी से महक रहो,
लौंने लौंने पल्लव से भरो लहरात है॥
काहू ठौर भरे हैं पलास पुष्प लाल लाल,
मानों दावा नलसे जलत बन गात है॥
आमन के वृक्षन से गंध को प्रवाह बहै,
फूले मौर देख मन पागल दिखात है॥

मुन्नालाल "मयंक"

होली का त्योहार।

(ले०--श्रीयुत सूर्य्यभानु त्रिपाठी "विशारद")
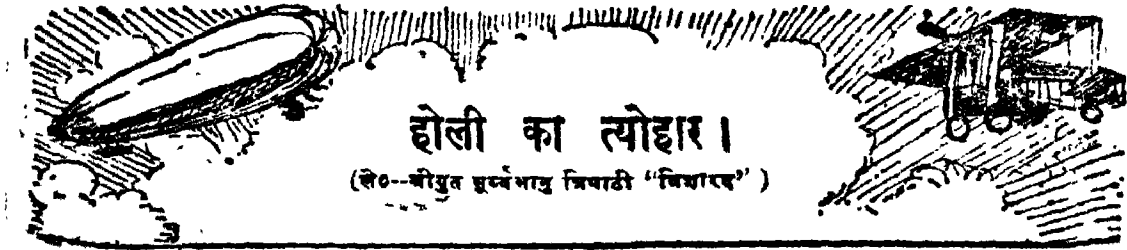
जातीयता की रक्षा के लिये जैसे खान-पान, वेषभूषा, बोली-भाषा. चाल-ढाल और स्वधर्म आवश्यक हैं। वैसेही त्योहार जातीय उत्सव भी आवश्यक हैं। जीवन कर्म से आबद्ध है। अहर्निश दिवस मनुष्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आकुल रहता है। क्या स्वार्थी, क्या परार्थी; क्या पापी क्या पुण्यात्मा, क्या मूर्ख क्या विद्वान, क्या राजा क्या रंक, सबको चिन्तायें घेरे हुए हैं। सब कर्म के कठघरे में बन्द हैं। इस प्रकार चिन्ता-ग्रस्त जीवन के लिये हँसने, खेलने तथा मन बहलाने के हेतु यदि वर्ष के बीच बीच में कुछ समय न रक्खा जावे तो जीवन त्रास और निराशा का घर हो जायगा। उसे कभी सुख और शांति न मिलेगी।

जान पड़ता है इसी कारण संसार की प्रत्येक जाति में जातीय त्योहारों की सृष्टि हुई है। वर्ष में झंझटों को भुलाकर दो चार दिन भी यदि पारस्परिक आनन्द और सुख के लिये न हों तो फिर सुख और आनन्द मिलेगा ही कब?

प्रत्येक जीवित जाति में जातीय त्योहार मिलेंगे। यदि किसी जाति में ये नहीं हैं तो वह

कोई जाति ही नहीं है और न उसका कोई गौरव है। ऐसी हीन पतित जाति, पद-कन्दुक (फुटवाल) के समान जीवित जातियों से ठुकराये जाने की वस्तु है।

वर्ण और आश्रम के समान हमारे चार जातीय त्योहार हैं। प्रकृति माता ने जैसी भारत वसुन्धरा को प्राकृतिक विभूति और प्राकृतिक साज-सामग्रियों से पूर्ण बनाया है वैसे ही हमारे पूर्व पुरुषों ने वर्णाश्रम और उपयुक्त त्योहारों की उसमें सृष्टि कर उसे अमरावती बना दिया है।

पर हाय! ये तो सब चैन की बातें हैं। जब पेट में रोटियाँ और बदन पर वस्त्र होते हैं तभी सब सूझता है। जिन्हें दानों के लाले पड़ रहे हैं, जिनके भाग्य में चिथड़े भी नहीं हैं उन्हें क्या आनन्द की सूझेगी? जिनके चार बाल-बच्चे हैं और भूख से उनके कुम्हलाये हुए मुखों को देखकर जिनकी सूखी हड्डियों से शोक और व्याकुलता की चिनगारियाँ उठ उठ कर शरीर को अब तक भस्म किया चाहती हैं उन्हें भी क्या उत्सव मनाने की सूझेगी? जिनकी लज्जावती कुल कामिनियों की लज्जा-आड़ के लिये चिथड़े भी नहीं मिलते उन्हें भी क्या कोई त्योहार या पर्व सुखी बना सकता है। हाय! अधिकांश राष्ट्र की आज यही दशा है।

धन्य भारत तेरा धैर्य, संतोष और जातीय गुण! तभी तो सहस्रों वर्ष से घात प्रतिघात सहते हुए भी तू आज भी बचा हुआ है। तेरे इसी गुण में आज तक तुझे जीवित रक्खा है और तब तक संसार को तू चकाता रहेगा जब तक पूर्वाचार्यों द्वारा बताये हुए दैवी गुण तुझ में विद्यमान रहेंगे।

जातीय त्योहारों की उत्पत्ति कथा चाहे जैसी हो पर उनका वास्तविक तत्त्व जातीय प्रेम, ऐक्य तथा भावों की रक्षा है।

हमारे चारों त्योहार प्राकृतिक भावों का अनुसरण करते हैं। प्राकृतिक कार्यों और मानवी कृतियों का हमारे त्योहारों में अद्भुत मेल है। सचमुच ही हमारे त्योहार तत्कालीन प्राकृतिक आदेशों की पूर्ति करते हैं। त्योहारों का इतना सुन्दर प्राकृतिक मेल सभ्य जाति के किस त्योहार में है? एक बार हमारे त्योहारों को नेत्रों के साम्हने कीजिए और प्रकृति के सामयिक दृश्य उनके सम्मुख उपस्थित कर मिला देखिये। कहिये क्या ही अलौकिक मेल है। क्या ही विचित्र प्रकृति का सच्चा अनुसरण है।

हमारा वेष बदल गया, भाषा का महत्त्व लीन हो गया, धर्म शिथिल हो गया और अब हम जातीयता-रक्षक त्योहारों को भी नष्ट कर देना चाहते हैं। हम पूरे नक्काल बन गये। नकल ही हमारे हाथ लगी अपना सर्वस्व खो गया। जिन जातीय त्योहारों से जाति की सभ्यता और गौरव रक्षा होती है उन्हें हम गंवारी त्योहार या असभ्यता का लक्षण बताकर छोड़ रहे हैं।

आज हमारी समाज में दो पक्ष हो गये हैं एक पक्ष अंध भक्त है वह कुरीतियों का क्रीत-दास है। उसे तो जैसा होता आया है वैसा ही होता जाना चाहिये। उसकी समझ में कुरीति और रूढ़ियों का त्याग करना धर्म-भ्रष्ट होना और नरक में गिरना है।

दूसरा पक्ष है सुधारकों Refarmers का, उनकी समझ में जाति की समस्त बुराइयों की

जड़ हमारा जातीय त्योहार होली है। वह तो वृक्ष ही को उखाड़ कर फेंकना चाहता है तब छाया कहाँ रहेगी।

अब विचारणीय यह है कि क्या होली का त्योहार सचमुच अशिष्टता और दुर्गुणों से भरा हुआ है? विवेक इसे स्वीकार नहीं करता। यदि दुर्भाग्य से हमने इस त्योहार को खोदिया तो स्मरण रहे निसर्ग-प्रकृति-की वसन्त तो बनी रहेगी, पर हमारी मानवी वसन्त का अन्त समझिये।

यह ऋतुराज है—वसन्त का साज है—वासन्ती प्रकृति वधू का अनोखा सौन्दर्य है। निसर्ग ने जगत-रंग-मंच को सुसज्जित करने की घोषणा कर दी है। गिरि-मालाएँ अद्भुत छटायें दिखा रही हैं। कन्दराओं और गिरि गह्वरों से भी शोभा फूट निकली है। वन उपवनों में वृक्ष रंग बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित, मतवाले हो झूम रहे हैं। निसर्ग नायिका रंगीन भड़कीला वस्त्र धारण कर मधुर मधुर मुसकान से जीवों को लुब्ध कर रही है। झरने और सरिताएँ सुधारस प्रवाहित कर रही हैं। उनके दर्शन मात्र से हृदय में आनन्द-सुधा-स्रोत उमड़ पड़ता है। उनका कलकल नाद, सुरीली खग-मृगों की तानों से मिलकर प्रेम और उमंगों से जीवों का चित्त चञ्चल कर देता है। गुलाब-पुष्पों से भरी वाटिकाएँ और कमलों से संकुलित सरोवर तथा उनपर भौंरों की गुंजार मानवी-मन का धैर्य छुड़ा देते हैं।

आकाश का मुसकराता हुआ मनोहारी दृश्य, सुरभित पवन के मस्ताने झोंके, प्रभाकर की माधुरी प्रभा, गगन मण्डल में हँसते हुए सुशीतल चन्द्र की स्निग्ध चन्द्रिका किसे विचलित नहीं कर देती।

प्रकृति के सारे जड़-जङ्गम जीव प्रेम और उमंग से उछल पड़ते हैं। जिधर देखिये उधर ही प्रेम और शोभा का महानद उमड़ रहा है। क्या धूप, क्या पवन; क्या जलाशय, क्या स्थल और क्या नभोमंडल सब कहीं से आनन्द की उमंगें फूट कर निकली पड़ती हैं। जीवों के हृदय प्रेम की उन्मत्तता से छक जाते हैं। प्रेम की प्रबल उमंगें हृदयों को चीर कर निसर्ग का सभी आनंद, साज और शोभा को लूट लेना चाहती हैं। आम की मञ्जरी पर कोयल का मस्ताना राग मुनियों के मन को भी खींच लेता है। ऐसे निसर्ग-क्रीड़ा-काल में जब जड़ जीव भी शोभा और उल्लास की छटाओं से मुसकराते हुए चले से पड़ते हैं तब हम फाग न खेलें तो करें क्या? जब स्वयं प्रकृति आनन्द हिलोरों में बही जा रही है तब मनुष्य प्रकृति के भावों का सहचर कैसे शान्त रह सकता है।

आइये प्रकृति की फाग में हम भी फाग मनाएँ और जगत में उस नैसर्गिक आनन्द लूटने की चिकीर्षा उत्पन्न कर यदि आप चाहते हैं कि कोकिला आम-मञ्जरी पर मस्ताना राग गावे, प्रकृति-वधू पुष्प लताओं से अलंकृत हो, नभोमण्डल का वासन्ती दृश्य जड़-जंगम जीवों को उल्लसित करे, तो हमें भी होली मनाने दीजिये। प्राकृतिक विश्व के भावों और भावनाओं से हमारे भावों और भावनाओं की एकता देखकर आपका मन मुग्ध हो जायगा। प्रकृति की नूतन उमंग धाराओं में आप हमें बहते देखेंगे। और सच कहते हैं उस दृश्य को देख आप चञ्चल चित्त हो स्वयं उस प्रेम निसर्ग प्रवाह में प्रवाहित हो चलेंगे।

निर्दोष कौन है। दोषों का निराकरण कीजिए पर उन के भय से जातीय जीवनाधार त्योहार को न त्यागिये। वस्त्र मलिन होने पर त्यागा नहीं जाता स्वच्छ और निर्मल कर लिया जाता है। अशुद्ध स्थल में फूले हुए गुलाब को त्यागना बुद्धिमानी नहीं। कीचड़ में उत्पन्न होने वाले कमल से परहेज करना कोई चतुरता नहीं खारे समुद्र में मिलने से मुक्ता का त्याज्य समझना नागरिकता नहीं। वैसे ही कतिपय दोषों के कारण अपने महत्व पूर्ण जातीय त्योहार का तिरस्कार करना जीवित जाति के लिये महान् कलंक की बात है।

आइये हम सब मिलकर कार्य्य करें। जहाँ कहीं हम हों वहीं भाइयों को सचेत कर उनमें होली के पवित्र नैसर्गिक आनन्द का भावभर दें। उन्हें चरस, गांजा, भंग आदि मादक पदार्थों से दूर कर पुष्प-लताओं तथा फल मिष्टान्न का त्योहार सिखा दें कि अश्लील गाने और शब्द, गँवारीपन के चिन्ह हैं। गुरुजनों के प्रति उन्हें शिष्टता और शीलता का बर्ताव करना सिखा दें। गन्दे गीत और अश्लील शब्दों के स्थान में भगवद्भजन, राष्ट्रीय गीत, पवित्र जातीय गान से भाइयों के हृदयों में नूतन जातीय स्फूर्ति, जातीय सच्चा जोश और राष्ट्रीय भावों की प्रबल उमंग भर दें। बुरे बुरे शब्दों का काला मुँह कर जगत मान्य महापुरुषों की छाप लगाना, अपने ग्रामीण बन्धुओं को बतला दें, जिनके दर्शन मात्र से आत्मा में पवित्रता का सञ्चार होता है।

आइये जातीय सामर्थ्य-सुधा-श्रोत द्वारा ऐक्य-भावों की अनन्त जल-राशि से राष्ट्रीय भावों के महानद को हम एक बार सदुपदेश प्रचार प्रचण्ड धारा से समस्त राष्ट्र को प्लावित कर बुराइयों, द्वेषभावों, निर्बलताओं, कुरीतियों शत्रुता के रोड़ों और कचड़े को सदा के लिये भारत से बहा दें।

गिरा देंगे पापों के शीस,
हटा देंगे भूतल-सन्ताप।
दिखा देंगे उनको सन्मार्ग,
पड़े पथ में जो सह परिताप॥
भुला देंगे सारा अभिमान,
जिन्हें पर पीड़ा से है काम।
दिखाते हैं जो केवल शान,
उड़ा देंगे बस जग से नाम॥
धरा पर उनको धूरि समान,
गिनेंगे. रक्खेंगे निज मान।
बढ़ेगा आगे शीघ्र समाज,
जगत मे हो उसका सन्मान॥
लगाकर अपना द्रव्य समस्त,
करेंगे यह तन भी बलिदान।
उड़ा देंगे यह जीता हंस,
कहावेंगे हम' वीर' निदान॥

भुवनेन्द्र

सङ्गठन पर विचार।

(लेखक–श्रीयुत खूबचन्द सोधिया बी. ए. एल. टी.)

परवार सभा अपने पिछले कई अधिवेशनों पर संगठन के प्रस्ताव को पास कर चुकी है उसने इतना महत्वशील माना है कि यह प्रस्ताव दो एक बार दुहराया भी जा चुका है। वास्तव में सङ्गठन के विचार और उसके महत्व को हर एक विचारशील व्यक्ति स्वीकार किये बिना नहीं रह सका। दुख का विषय है पिछले दो तीन वर्ष में सभा को संगठन के कार्य में कुछ भी सफलता नहीं मि[illegible] है। मैं सोचता हूं कि मिलेगी भी नहीं। [illegible] उपमंत्री सभापति आदि कार्य कर्त्ता [illegible] क्या [illegible]रें। इस विषय में सफलता [illegible] वर्तमान परिस्थिति में तो असंभव सा [illegible] है। पाठक शायद सोचें कि यह [illegible] पूर्ण अनिष्टद्वाणी कैसी! मै आशावाद या निराशावाद का कायल नहीं हूं अस्तु स्थिति को जैसी की तैसी देखना ही मेरा काम है। कोरे आशावाद के सहारे उचकने फिरने से न कभी काम हुआ है न होगा। निदान इस विषय मे मेरा तो मत स्पष्ट है। कारण कुछ भी हो—ये जाने भी जा सकते हैं और इनका योग्य उपाय भी हो सकता है—परन्तु इतना तो प्रत्येक आखों वाले के नजर में आवेगा कि हमारा समाज—समाज की दृष्टि से-प्रायः मर चुका है। शायद अभी बिलकुल ही मर न चुका हो। खैर मैं अपने पाठकों को बताना चाहता हूं कि समाज-संगठन के विषय में मुझे इतनी न उम्मेदी क्यों है!

परवार समाज को मैं रोगी मानता हूं वास्तव में यह ऐसा रोगी है जिस के विषय मे कवि ने विशेष लक्ष्य करके लिखा है-

> ग्रह गृहीत पुनि बात बश
> तेहि पुनि बीछी मार।
> ताहि पिआइय वारुणी
> कहो कवन उपचार —

इस शराबी रोगी के विषय में विस्तार से लिखने का स्थान फिर कभी माँगा जावेगा अभी तो मुझे इस विचित्र और भयानक रोगी के मूल मर्ज का इलाज करने का ठेका लेने वाले वैद्य महाशय का परिचय कराना है। मैं वैद्य इस लिये कहता हूं कि मुझे भान होता है कि अधिकांश परवार भाई अभी तक पुराने आयुर्वेद के ही उपासक हैं—शायद कोई भाई परवारों को अंधेरे में उड़ने वाली बोतलों की गटागट को सुनकर मुझे वास्तविक बात सुझादें। वे परवार समाज के वैद्यों का परिचय कराते समय मुझे कलियुग महाराज की मूर्ति दिखाई देने लगती है वाहरे कलियुग! समझदार लोग समय का रोना रोने वालों को अकर्मण्य समझते हैं। भले ही समझते रहें परन्तु समय की छाप उन समझदारों पर भी मौजूद है। अच्छा तो कलियुगी वैद्यों की नाईं हमारे समाज के जगाने वाले वैद्यों ने भी डंगरवारी की दवा करना योग्य समझा है. निदान समझने का प्रयत्न करें नादान। इनको तो रोगी के रोग को मारना है। रोग न मरे तो रोगी ही सही।

प्रस्तुत विषय पर विचार करते हुए सब से पहिले मैंने परवार सभा के पिछले उन अधि-वेशनों की कार्यवाही को गौर से देखा जिन में संगठन का विषय समाविष्ट हुआ था। मैंने सभापति महोदयों की स्थितियों को सावधानी से देखा। और प्रयत्न किया कि संगठन के विषय पर समाज के विचारकों के उन्नत और महत विचार भंडार में एक डुबकी लगाने का

प्रयत्न करूं परन्तु ध्यान से देखने पर विदित हुआ कि संगठन की उपयोगिता को दृष्टांतों द्वारा समझने का पिष्टपेषण करने के अतिरिक्त मैंने सभा के साहित्य में इस विषय सम्बंधी कोई महत्व पूर्ण विचारश्रेणी के देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं किया। इस विषय में यदि मैं गलती करता हूं तो पाठक उसे दूर कर सक्ते हैं. विषय की उपयोगिता को समझा देने से कार्यकर्त्ताओं को कोई विशेष लाभ होना संभव नहीं उनको बताने की आवश्यक्ता है तो कार्य प्रणाली के। ध्यान रहे कि जब तक सभा का प्रत्येक व्यक्ति इस विषय को न जान ले कि संगठन का कार्य कैसे करना होगा तब तक उस से किसी तरह की सहायता की आशा करना वाहियात है। जरूरत हमें ऐसे व्यक्ति की है जिसने समाज संगठन के प्रत्येक अंग पर दीर्घ विचार करके उसके ढांचे को आंखों के सामने रख कर उसे हृदयङ्गम कर लिया हो।

समाज संगठन का विषय बड़ा ही शिक्षाप्रद और मनोरंजक है साथ ही साथ वह बड़ा गहन और पेचीदा भी है। उसमें छोकरों की अस्थावर और कमजोर तर्क की गुजर नहीं है। व्यक्तित्व-प्रधानता के इस युग में अपरिपक्व बुद्धि के अनुभव हीन लड़के सब बातों को जान सकने और कर सकने का दावा करते हुए बहुत से काम बिगाड़ बैठते हैं। इन लोगों का समाज के आई. सी. एस. बनाने का दावा झूठ है। समाज सुधार व संगठन के कार्य में इन का काम हुक्म का बजा लाना होना चाहिये. समाज के संगठन का कार्य वास्तव में उन्हीं लोगों का है जो आज तक उस काम को करते आए हैं।

मैं कह चुका हूं कि समाज संगठन का कार्य समाज के मुखिया पंचों का है। लेकिन इन बेचारों की इस जमाने में बहुत बुरी हालत है. मेरी समझ तो यह है कि आज कल समाज का सामाजिक अस्तित्व बिलकुल मिट ही चुका है। जिस को हम कुछ समय पहिले 'पंचायत' अथवा 'बिरादरी' के नाम से पुकारते थे आज उसका अस्तित्व ही सा मिट गया है जहां थोड़ा बहुत है वहां भी शीघ्रता से मिटता जाता है. दो चार वर्ष पहिले ही यदि कहीं से कोई पंडित जी आते थे। लोग उनका व्याख्यान सुनने के लिये सहर्ष मय बाल बच्चों के आकर उपस्थित हो जाते थे, यदि कोई उपदेशक जी आये तो उनका यथार्थ आदर होता था उनकी समाज के सामने परीक्षा की जाती थी. खान पान व्योहार उत्सव में लोग प्रसन्नता से एकत्र होते थे देखने वालों को मालूम होता था कि समाज है लड़के बच्चे बिना सिखाये सीख लेते थे कि हमारा समाज है। हमारा सामाजिक कर्त्तव्य है दुख दर्द होता था समाज के लोग इकट्ठे होते थे. नुकता वगैरा पर चाहे लड्डुओं के लोभ ही से क्यों न हो समाज जुड़ती थी वह विद्यमान दिखाई देती थी. इन्साफ न होना था न सही. इन्साफ की मशीन तो दिखती थी। कुछ नये सामाजिक शास्त्रियों की कृपा से, कुछ फिजूल खर्ची के अंध भक्तों की कृपा से कुछ समाज के संचालक मुखियाओं की मुंहदेखी से, कुछ अंग्रेजी कानूनों की शिकार से। इस भांति हमारा सामजिक जीवन नष्ट हो गया। जोकुछ थोड़ा बहुत बचा है वह और भी धीरे २ नष्ट हुआ जाता है। सामाजिक संगठन होना अब बहुत ही कठिन कार्य हो गया है। प्रिय पाठक महोदय मैं आप से पूछता हूं क्या संगठन का कार्य सचमुच करना ही है।

कर्मवीर

[१]

जग युद्ध भूमि है हमें सजग
रह कर विजयी बन जाना है।
हम में जो पौरुष रहा कभी
उसका गौरव दिखलाना है॥
यद्यपि विपदाएँ आवेंगीं
पर उन को मार गिरावेंगे॥
हम कर्मवीर हैं नहीं विपद से
डर कर पैर हटावेंगे॥

[२]

यद्यपि छाती पर वज्र गिरेंगे
अगणित गोले छूटेंगे।
पर वज्रों के भी वज्र हृदय पर
ठोकर खाकर फूटेंगे॥
जो पथ में जाल बिछाते हैं
उनका हम नाम मिटावेंगे।
हम कर्मवीर हैं नहीं विपद से
डर कर पैर हटावेंगे॥

[३]

जग है अनन्त पथ जिस में
आगे आगे उन्नति उपवन है।
सब दौड़ रहे हैं उसी ओर
लेकिन हम में धीमापन है॥
अब हम दौड़ेंगे, अखिल जगत को
विस्मय चकित बनावेंगे।
हम कर्मवीर हैं कभी न खाई
खन्दक से डर जावेंगे॥

[४]

हम पथ के कंटक फेंकेंगे
या भस्म करेंगे पीसेंगे।
खाई खंदक से न डरेंगे
उसपार कूदते दीखेंगे॥
विघ्नों का जाल बिछा होगा
हम उसे तोड़ कर जावेंगे।
हम कर्मवीर हैं कभी न विघ्नों
के बल से घबरावेंगे॥

[५]

आगे अमराई आवेगी
कोकिल की कूक सुनेंगे हम।
भौंरों का वह गुञ्जार लुब्ध-
कानों में गूंजेगा हर दम॥
लेकिन हम इन्द्रियवशी बनें
भरजोर दौड़ते आवेंगे।
हम कर्मवीर हैं नहीं प्रलोभन,
मन के चक्कर में आवेंगे॥

[६]

इसके आगे नन्दन बन की
छवि छटा निराली आवेगी।
अप्सरा नृत्य होता होगा
सुन्दरता हमें लुभावेगी॥
मन ललचाना तो दूर रहे
नैना भी उधर न जावेंगे।
हम कर्मवीर हैं नहीं प्रलोभन
के चक्कर में आवेंगे॥

[७]

जब तक स्वतन्त्रता, न्याय, शान्ति,
लक्ष्मी, न पास आजावेगी।
तब तक न विश्व की कोई शोभा
हमें तनिक ललचावेगी॥
हम विघ्नों का सिर फोड़ेंगे
अपना मन नहीं लुभावेंगे।
हम कर्मवीर हैं सिद्धि बिना
क्षणभर भी नहीं गमावेंगे॥

"लाल"

बलिवेदी।

(ले०—चौधरी गुलाबचंद परमानंद जी)

समय की गति विचित्र है। इसे कर्मों का चक्कर कहें या और कुछ। भाई जीवन! प्यारी बाई की शादी की चिंता में जाति के छोटे से छोटे गांव से लगाकर बड़े बड़े शहरों तक खूब छानबीन की पर कोई उपयुक्त वर नहीं मिला। दो चार जगह वर मिला। पर अठ सका और पाप प्रीत का पचड़ा लग गया। बतलाइये अब क्या करूं?

सिंगई जीवनदास ने कहा—भाई बुद्धिसेन तुम भी बड़े विचित्र प्रकृति के मनुष्य हो। नित्य सैकड़ों विवाह होते हैं, और तुम कहते हो कि प्यारी बाई का कहीं ठिकाना नहीं पड़ता और तुम्हें अभी शादी करना ही नहीं है नहीं तो कब की हो जाती।

बुद्धिसेन—तो क्या आप यह समझते हैं कि मैं स्वयं ही देरी करना चाहता हूं।

जीवनदास—मेरा तो यही विचार है। नहीं तो पन्द्रह वर्ष की लड़की अभी तक कुंवारी रखते ही क्यों?

बुद्धिसेन—हां, आप अपने विचारों से चाहे जैसा समझिए। पर मेरा तो सदैव से यही ध्येय रहा है कि बाल विवाह करना ठीक नहीं है और यही कारण था। जो प्यारी बाई की शादी में अभी तक विलंब हुआ पर अब तो दो साल से चक्कर खा रहा हूं।

जीवनदास—बुद्धि भैया! मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि आप को लड़का नहीं मिलता। रामपुर के सूरत सिंगई का लड़का १८ साल का है घर के लखपती हैं। वहां तो सुना था कि सब ठीक हो गया है ऐसा घर तुम्हें कहां मिलेगा?

बुद्धिसेन—ठीक? पर लड़का अशिक्षित है। मैं चाहता हूं कि प्यारी के अनुरूप ही वर मिले।

जीवनदास—तो फिर श्रीपुर के धनपत सिंगई के यहां भी तो अठसका सुलझता है। लेकिन उमर ५५ साल की है, सो क्या हुआ, खाता पीता घर है। प्यारी को जरा भी तकलीफ न होगी। मेरी मानो तो वहीं करो फिर जैसा समझो। मैं तो समझता हूं कि जरूर वहीं करिये नहीं तो फिर मौका हाथ से निकल जावेगा।

बुद्धिसेन—हैं! क्या-प्यारी की शादी ५५ बरस के बूढ़े के साथ कर दूं न भैया जीवन! यह हरगिज न होगा।

जीवनदास—भैया तुम्हें दुनियां की कुछ खबर नहीं देवगढ़ वाले मुनऊ की लड़की १० साल की है। वहां सब तय ही हो चुका है। आप मौका न चूकें नहीं तो वहां हो जायगी। जब सब लोग ऐसा करते हैं तो तुम्हें इतना विचार क्यों? अच्छा सोच कर कल जवाब दे देना। तो मैं पक्की कर आऊँगा—जुहारु?

[२]

प्यारी बाई, बुद्धिसेन की इकलौती लड़की है। बुद्धिसेन जी विचारक एवं सात्विक

प्रकृति के मनुष्य हैं। भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा, परवार महासभा आदि सभाओं के अधिवेशनों में आप अवश्य ही उपस्थित होते हैं। वहां उन्हों ने वृद्ध विवाह, बाल्य विवाह, अशिक्षा आदि सामाजिक अधःपतन के कारणों पर जो प्रस्ताव पास हुए और उन पर विद्वानों के भाषण हुए सुन कर निश्चय किया कि प्यारी को 'आदर्श गृहिणी' बनाने का शक्ति भर प्रयत्न करेंगे। तदनुसार परिस्थियों के अनुसार प्यारी को शिक्षा भी दी गई।

प्यारी तो यों ही बड़ी सुशीला थी। क्यों कि उन के गृह का वातावरण ही ऐसा था उस को संस्कारों से और माता पिता के नित्य कर्मों से ही सद्गुण मिले थे। इस पर सुशिक्षा ने तो और भी सोने में सुगंधि का काम दिया। फलतः वह बुद्धिसेन जी के विचारों के अनुकूल और अपने नाम को सार्थक करती हुई सचमुच में प्यारी बन गई। प्यारी का चौदहवां वर्ष प्रारंभ होने पर बुद्धिसेन जी को उसके विवाह की चिन्ता हुई। वर की शोध करने में दो वर्ष व्यतीत होने को आए पर प्यारी के अनुरूप वर न मिला। जिसका कि आभास पाठकों को ऊपर लिखाई जीवनदास जी और बुद्धिसेन जी की वार्तालाप से होगया होगा।

[३]

प्यारी की मां लक्ष्मी ने सजल नयनों से बुद्धिसेन से कहा कि देखो, मैंने आप से पहिले ही कहा था कि, लड़की अपने घर की नहीं। अब समाज में अशिक्षा, रूढ़ियों, संकुचित विचारों का अखंड साम्राज्य है। तब आप क्यों प्यारी को शिक्षित बनाने की कोशिश कर रहे हैं कम उमर में ही शादी कर दीजिए। जैसा सब का होता है प्यारी का भी होगा। पर आपने एक न मानी। पंद्रह वर्ष की लड़की-घर में कुंवारी बैठी है उस की चिंता में अब आप अपना शरीर सुखा रहे हैं। जब योग्य वर नहीं मिलता तो जैसे हो अब ठिकाना पाड़िए। क्या कहूँ आप तो............कहते हुए लक्ष्मी बिलबिलाकर रो उठी—बुद्धिसेन का हृदय भी भर आया। अधीर हो उठे अश्रुप्रवाह रोकने का बहुत प्रयत्न किया बलात् वह निकल पड़े फिर भी लक्ष्मी को सांत्वना देते हुए बोले कि, मुझे ऐसा ख्याल ही न था कि इतने दिनों के उपदेशों का समाज पर कुछ असर न पड़ेगा। पर देखता हूं कि समाज ने, निद्रा से अभी करवट नहीं बदला है। क्या कहूं एक लड़का है तो गरीब का; पर पंडित परीक्षा पास और सदाचारी है। सुंदर एवं स्वस्थ है। विचार किया कि यहां ठीक होगा-पर दुर्भाग्य से अठसका और पायप्रीत नहीं मिलती। अब कोई उपाय नहीं सूझता, क्या करें। कई लड़के मिले और होशयार भी। पर पायप्रीत-आठसका की आड़ संबध स्थापित नहीं होने देतीं अब तो लड़की को जहाँ कहीं भी ढकेलना ही पड़ेगा क्योंकि अब प्यारी को अधिक रोक नहीं सकें।

सुशिक्षिता प्यारी को योग्य वर न मिला हिन्दू समाज में बाल विधवाएँ जन्मभर ब्रह्मचर्य से रह सकी हैं मगर कन्याएँ नहीं रह सकीं

बुद्धिसेन जी विवश थे आखिर एक दुराचारी निर्धन मूर्ख युवक के हाथ में प्यारी का हाथ पकड़ाना पड़ा फल भी वही हुआ जो होना चाहिये, युवक व्यभिचारी निकला उसने प्यारी की कुछ भी पर्वाह न की सबेरे शाम खाने पीने को आजाता था बस फिर उसका पता भी न

पढ़ना प्यारी ने बड़ी कोशिश की हाथ जोड़ पैरों पर गिरी आंसुओं से पैरों को तर कर दिया मगर सब व्यर्थ [illegible] फल [illegible] कि लातों घूसों से प्यारी की पूजा हो[illegible] एक तो घर में खाने को नहीं था इधर [illegible] के दर्शन भी न होते थे जब होते थे लातों घूसों से पूजा होती रहती थी इन सब बातों से प्यारी का शरीर सूख गया दिल मुरझा गया।

रोग बढ़ गया परिचर्या की बात ही क्या कोई सहानुभूति करने वाला भी न था माता को खबर लगी वह दौड़ती आई।

प्यारी ने माता को करुणा दृष्टि से देखा माता रोपड़ी उसने बिसूर बिसूर कर रोते हुए कहा बेटी! हमने आकाश के शनि मंगल पर ध्यान दिया मगर इस जीते जागते शनिश्चर पर ध्यान न दिया आंखों ने पोथी पत्रा अठसका आदि सब देखा मगर देखने लायक कुछ न देखा प्यारी ने कराहते हुए कहा अभी बहुत से बलिदानों की जरूरत है।

यह बात माता के हृदय में तीरसी लगी वह बिलबिला कर रोपड़ी। उसने कातर दृष्टि से प्यारी की ओर देखा प्यारी ने भी माता पर एक गहरी नजर डाली और धीरे धीरे आंखें बन्द करली फिर वे कभी न खुलीं वे मुंदी आखें मनुष्यों को बहुत शिक्षा दे रहीं थीं पर समाज में मनुष्य हैं कितने ?

आज कल।

(लेखक—श्रीयुत रामस्वरूप जी "भारतीय" सम्पादक वैश्यमार्तण्ड)

कर्म क्रिया से कोसों दूर
घर के घर बातों के शूर
ऐसे कायर कर्मवीर कहलाते मौज उड़ाते हैं।

पिटने में जिनकी न मिसाल
पचती जिन्हें न पतली दाल
[illegible] दया धर्म-रक्षक बनते न लजाते हैं॥

काले अक्षर भैंस समान-
जिनके हित, वे दयानिधान
सरस्वती पर दया दिखा गंभीर वीर बनजाते हैं।

तर्क शास्त्र से जिन्हें न काम
दें गालीं अगणित बेदाम
ऐसे बचन वीर भूतल में धर्म-ध्वजा फहराते हैं॥

बुद्धि गाँठ की जिन्हें न नेक
पर की नहि सुनने की टेक
जिनके हैं, वे स्वतंत्र नेता बन कर शोर मचाते हैं।

चाटुकारता के गुरुदेव
लीडर बन जाते स्वयंमेव
जननी के कोमल वक्षस्थल पर चक्की चलवाते हैं॥

हो समाज में जिनकी धाक
उनके ही श्री मुख को ताक
'जी हाँ जी हाँ' रटते चेले गणधर से बन जाते हैं।

जो न चाहते करना काम
किन्तु चाहते यश आराम
चटपट चटकदार वे चातुर सम्पादक बन जाते हैं॥

इधर उधर से रंग कर पेज
ख्याति हेतु, लोगों को भेज
समालोचना में वे अपनी प्रीत अप्रीत निभाते हैं।

धन्य! बने जनता की नाक
कर देंगे भूतल को पाक
कैसे उन्नति होगी जब ऐसी करतूत बताते हैं॥

कंजूस-स्तव

(लेखक--साहित्यरत्न पं० लोकनाथ शर्मा, सिलाकारी)

१—अनेक उपवास और कष्ट रूपी तपस्या से अपनी एकत्रित की हुई संपत्ति रूपिणी शक्ति के द्वारा अपने बंधु बांधवों के हृदयों में इच्छाओं की सृष्टि करने वाले देवता के समान कंजूस देव ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

२—आपके द्रव्य के मान को श्रवण कर आर्थिक कष्ट में पड़ा हुआ दीन जन अपने हृदय-देशके आशा-दुर्ग में अनेक संकल्पों को छिपाये हुये आपके निकट द्रव्य साहाय्य रूपी शरण की खोज में आता है, परन्तु आप उसके आशा दुर्ग अपने वज्र के समान नैराश्य पूर्ण परुष वचनों से शिव के तृतीय नेत्र के समान शीघ्र ही भस्मीभूत कर मिट्टी में मिला देते हैं । अतएव हे दीनजन के अभिलाषाओं से भरे हुए हृदयरूपी संसार में नैराश्य का प्रलय उपस्थित करने वाले संहार कर्ता ? आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

३—आप अपने एकत्रित किये हुये द्रव्य को प्राणों पर संकट आने पर भी कभी व्यय नहीं करते । सञ्चित द्रव्य में अत्यंत परिश्रम से और भी द्रव्य सम्मिलित करते रहते हो । अतएव अपने सञ्चित द्रव्य के पोषण कर्त्ता कंजूसदेव ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

४—आप लक्ष्मीजी की उपासना में इतने दत्तचित्त रहते हैं कि उस समय लक्ष्मी का ध्यान करते हुए आप स्वर्ग नर्क आदिका विचार भी नहीं करते । स्वर्ग, नर्क, अपवर्ग और चौरासी लाख योनियों में कहीं भी कोई भी गति प्राप्त हो आप इस की स्वप्न में भी चिंता नहीं करते । आप तो द्रव्य बटोरने के ध्यान में संलग्न होकर मनोरमा रमा की उपासना करते हैं । अतएव हे लक्ष्मी देवी के अनन्य उपासक भक्त प्रवर आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

५—आप तहखानों और तलघरों में सुदृढ़ पात्र रूपी सुन्दर सिंहासन में लक्ष्मी की बाँकी झाँकी लगाते हैं और फिर भक्तिभावापन्न मूर्तिपूजक उपासक के समान दर्शन मात्र से अपने नेत्रों और हृदय को शीतलता पहुंचाकर अपने आप को कृतकृत्य बनाते हैं । अतएव हे दर्शन मात्र से प्रसन्न होने वाले भक्तिभावापन्न प्रेमीप्रवर ? आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

६—निशि की निस्तब्धता में भी (जब प्रकृति का नीरव संगीत सुमधुर स्वर में साहित्य रसिकों के हृदयों में आनंद का स्रोत प्रवाहित करता है) आपके सन्मुख लोभका सूत्रधार मोह के रंग मंच पर तृष्णानारी का नृत्य दिखलाता है । उस समय आप तन्मय होजाते । अतएव हे रसिक प्रवर ? अपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

७—हे कंजूस प्रवर ! आप अपने समग्र स्वार्थों और सारी इच्छाओं को लक्ष्मी देवी के चरणों में सादर समर्पित कर देते हैं । उस समय आपको मानापमान का ध्यान नहीं रहता । सांसारिक यश आप की दृष्टि में सार हीन प्रतीत होता है । अपमान का आप कभी ध्यान भी नहीं करते । सांसारिक भोगों की प्रबल इच्छा को द्रव्यरूपिणी शक्ति रखते हुए भी आप दमन करते हैं । प्रतिहिंसा के भाव को आप द्रव्य बटोरने के पुनीत कार्य में ध्याना-वस्थित होने के कारण हृदय में स्थान ही

नहीं देते । अतएव हे पुरुष पुंगव हे इन्द्रिय निग्रह करने वाले वीर श्रेष्ठ !! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार हैं ।

८—आप स्वयं सांसारिक भोगों की तुच्छ वासना को अपने हृदय में ही दमन करते हैं और अपने बंधु बांधवों को भी सांसारिक भोगों के उपभोग से विमुख करने का प्रयत्न करते हैं । अतएव हे सुधारक प्रवर ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

९—आप स्वयं मानव मन मोहक विलास की सामग्रियों से द्रव्य का ध्यान रखते हुये घृणा करते हैं और अपने बंधु बांधवों को भी ऐसा न करने के अर्थ विवश करते हैं तथा अन्य सांसारिक जीवों के सन्मुख अपना आदर्श रखकर उन्हें ऐसा न करने का उत्कट उपदेश देते हैं । अतएव हे महोपदेशक कंजूस देव । आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

१०—आप विदेशी वस्तुओं में द्रव्य का अपव्यय करके राष्ट्र को निर्धन नहीं बनाते । आपके द्वारा राष्ट्र की संपत्ति राष्ट्र में ही रहती है । आपके कार्यों की समीक्षा करके ही विद्वानों ने अर्थशास्त्र का निर्माण किया है । अतएव हे राष्ट्रोद्धारक कंजूस प्रवर ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ।

ताश में तिथि पत्र तथा धर्मशास्त्र?

(लेखक—श्रीयुत बाबू सत्यरंजनराव ।)

भोला बड़ा ही चरित्र निष्ठ और कर्त्तव्य शील व्यक्ति था । उसे सेठ भगवान दास के यहां काम करते २५ वर्ष से अधिक हो गये होंगे परंतु उसके मालिक को उसके बाबत कोई शिकायत का अवसर न मिला । भोला अपने स्वामी के काम को अपना काम समझता और उसे बड़े यत्न और ईमानदारी के साथ किया करता । भगवानदास को भी अपने नौकर का गर्व था और स्वजातीय होने के कारण उनका पूरा स्नेह पात्र था । भगवानदास उस पर भरोसा रखते और कठिन कार्यों में उसकी सलाह अवश्य लिया करते थे ।

भगवान भी धर्मानुरागी और कर्त्तव्य निष्ठ थे । अपने धर्म से विचलित होने वाले पर वे सदैव कड़ी दृष्टि रखते और उसे अपने पास कभी न फटकने देते । वे दान पुण्य में हमेशा कुछ न कुछ शक्ति अनुसार दिया करते और सज्जनों के सतसंग का लाभ उठाने से कभी न चूकते थे । इन सद्गुणों के कारण उनकी गांव में खूब ख्याति की । छोटे बड़े अमीर गरीब सभी उनको चाहते थे ।

भगवानदास के यहां भोला के अतिरिक्त और भी कई नौकर थे उनमें से कुछ ऐसे भी थे जो भोला से उसके प्रभुत्व के कारण सदैव ईर्षा किया करते और रात दिन इसी चिन्ता में रहते कि उसे किस प्रकार निकलवा पायें । अवसर पाकर उनमें से एक ने भगवानदास से यह शिकायत कर दी कि भोला हमेशा जुआ ताश खेला करता है—और उसके समान खिलाड़ी शायद ही कोई दूसरा निकले । भगवानदास भोला के स्वभाव से भली भांति परिचित थे अतएव उन्हें इस बात पर विश्वास न हुआ । परन्तु उन्होंने भोला से दर्याफ्त कर लेना उचित समझा । और एक रोज मौका पाकर उन्हों ने भोला से पूछा—"भोला मैं तेरे बाबत क्या सुन रहा हूं ।"

भोला बोला,—"मैं कुछ भी नहीं जानता । क्या आप बतलाने की कृपा करेंगे ?"

"मैंने सुना है कि तुम पत्ते तथा जुआ खेलने में पूरे सिद्ध हो, क्या यह बात सत्य है ?"

" मालिक यह बिलकुल गलत बात है। आपसे किसने कहा ? "

" किसी ने कहा हो—मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम पत्ते खेला करते हो या नहीं ? "

" मालिक आपसे कहना न होगा कि मैंने इस जिन्दगी में कभी जुआ नहीं खेला और न यही जानता हूं कि ताश क्या चीज़ है ? "

मुझे यह जान कर बहुत प्रसन्नता हुई परन्तु मैं सूचित करने वाले को बुलवाता हूं।

भोला ने अपनी स्वीकारिता देते हुये कहा, " अवश्य बुलवाइये ? "

शिकायत करने वाला उसी समय सन्मुख उपस्थित हुआ। भगवानदास ने उससे पूछा,—" क्या तुमने मुझसे नहीं कहा था कि भोला जुआ और ताश खेला करता है। "

उसने उत्तर दिया, " जी हां मैंने कहा था ! "

" फिर क्या कारण है जो वह इस बात से इंकार करता है। तुम्हारे पास उसके विरुद्ध में क्या प्रमाण है ! "

वह बोला—" वह इंकार भले ही करे परन्तु मैं अभी उसीके सामने साबित कर दूंगा कि वह झूंठ बोलता है ? यदि उसकी जेबों की तलाशी लीजाय तो अवश्य ही ताश मिलेंगे ? "

भोला के जेबों की तलाशी लीगई और उसकी जेब मेंसे एक गड्डी ताशों की निकली।

अब भगवानदास के क्रोध का ठिकाना न रहा। वे जिसे २५ वर्ष से सच्चरित्र और सरल स्वभाव का जानते थे वही झूठा और जुआरी निकला। वे अपने क्रोध को न रोक सके— उन्हों ने कर्कश स्वर में कहा,—" नालायक ! मैं आज तेरे बावत क्या देख रहा हूं। क्या तूने मुझसे अभी नहीं कहा था कि मैंने कभी ताश नहीं खेले और न यही जानता कि ताश किसे कहते हैं। तू मेरे सामने से इसी समय हट जा। मैं तुझे पूरा दंड दूंगा केवल इसलिये नहीं कि तुम ताश खेलते हो परंतु इसलिये कि साथ ही झूठ भी बोलते हो ? "

भोला मालिक का यह हाल देख अवाक रह गया। कुछ देर चुप रहने के पश्चात् उसने कहा,—" यदि आप इन्हें ताश कहते हैं तो भले ही कहिये परन्तु मैं यह नहीं जानता कि ये ताश हैं अथवा कि इनका ताश की तरह उपयोग करता हूं ?

भगवानदास को अपने विश्वासी नौकर के इस विचित्र कथन पर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने कौतुक के साथ पूछा,—" अच्छा तो तुम उन्हें क्या कहते हो। "

भोला ने उत्तर दिया, " तिथिपत्र "

अब भगवानदास को पुनः क्रोध आगया। वे समझे भोला उनके साथ चाल चल रहा है। उन्होंने अपने क्रोध को दबाकर पूछा,—" तिथि-पत्र, अच्छा सुनूं किस प्रकार। "

भोला ने उत्तर दिया, " आप जानते ही हैं कि मैं पढ़ा लिखा नहीं हूं इसलिये मैं इन्हीं ताशों से वर्ष के माह दिन का लेखा लगाता हूं। "

" यह किस प्रकार—मैं सुनना चाहता हूं। यदि तुम मुझे भली प्रकार समझा सकोगे तो तुम्हारे अपराध को मैं क्षमा कर दूंगा। "

भोलाने अपना कथन इस प्रकार आरम्भ किया, " इस ताश की गड्डी में चार रंग हैं जो वर्ष की चारों ऋतुओं को दर्शाते हैं। प्रत्येक रंग में १३, १३ ताश होते हैं जो प्रत्येक ऋतु के हफ्तों की संख्यायें बतलाते हैं। गड्डी में १२ तस्वीरें वर्ष के १२ माह और ५२ ताश ५२ हफ्तों को दर्शाते हैं। अगर आप ताशों को और भी ध्यान से देखेंगे तो पता चलेगा कि उनमें

जितनी विन्दियां हैं उतने ही वर्ष में दिन होते हैं। काला और लाल ये दो रंग हमें कृष्ण और शुक्ल पक्ष की शिक्षा देते हैं,—"

भगवानदास अपने नौकर की सरलता में अब मुग्ध होगये। क्रोध के लिये उनके हृदय पर स्थान न रहा। उन्हों ने हंस कर पूँछा "अच्छा—इसके अतिरिक्त इन का और कोई उपयोग तो नहीं करते।"

भोला ने अपने मालिक को प्रसन्न देख और भी उत्साह से कहा, "क्यों नहीं! ये मुझे धर्मशास्त्र का काम देते हैं।"

भगवानदास अब फिर चकित हुए। उन्होंने पूछा, —"ताश तिथि पत्र का काम दे सकते हैं, —यह तो मैंने समझ लिया। परन्तु ये धर्मशास्त्र का भी काम दे सके हैं यह मेरी समझ में नहीं आता।"

भोला ने गंभीरता के साथ उत्तर दिया,—"मैं आपको अभी समझा दूंगा कि यह भी किस प्रकार संभव है।

"गड्डी में के चार रंग चार प्रधान धर्म जैन, हिन्दू, इस्लाम और ईसाई मत को प्रदर्शित करते हैं। प्रजा की पुत्रवत भलाई करने वाले "राजा और रानी" के रहने से धर्म की रक्षा होती है अन्यथा सम्पूर्ण व्यवस्था नष्ट हो जाती है।"

"इक्का" हमें यह बतलाता है कि एक मोक्ष पद ही ऐसा है जो जीवों को संसार के आवागमन से छुटकारा दिलाता है। और अहिंसा ही एक ऐसा परम धर्म है। जिसका पालन सब को करना चाहिये।

"दुग्गी हमें यह बतलाती है कि दुनियां में दो कर्म होते हैं भला और बुरा। पुण्य और पाप। पुण्य अथवा अच्छे कर्म करने ही से जीव को उच्च गति प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त दुग्गी हमें तत्वों के दो प्रधान भेद जीव और अजीव का ध्यान कराती है।

"तिग्गी से हम यह शिक्षा ग्रहण करते हैं कि सच्चे देव, शास्त्र, गुरु द्वारा बतलाए हुये सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यक चारित्र रूप तीन रत्नों का मन, वचन और काय से पालन करने से जीव को मुक्ति मिलती है। संसार के आवागमन से छुटकारा मिलता है और मोक्ष का अधिकारी होता है।"

"चौआ हमें चारों पाप काम, क्रोध, माया, और लोभ से बचने की चेतावनी, और चारों अनुयोगों (प्रथमानुयोग, कारणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग) के ग्रंथ अवलोकन करने की सुशिक्षा देता है।"

"पंजा हमें पंचपरमेष्ठी का स्मरण दिलाता है, जो संसार रूप महावन में से निकलने का मार्ग बतलाने में समर्थ हैं। जिनका ध्यान करने ही से पुण्य का बंध और पाप का क्षय होता है। यह हमें हिंसा, चोरी, झूठ, कुशील और परिग्रह पंचपापों से बचने और पांचों इन्द्रियों-जिनके वश में हमारा मन हो जाता है, उनकी माया में न फंसने की शिक्षा देता है।

'छक्का हमें मानव प्रकृति के छह भेदों को समझाता है जिन्हें छह लेश्यायें कहते हैं और हमारी जीभ जिन छह रसों के स्वाद लेने में रात दिन लगी रहती है, उनको क्रमशः त्याग करने की शिक्षा देता है।"

"सत्ता हमें तत्वों के सात विभाग अर्थात् जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष का ज्ञान कराता है जिनका श्रद्धान हमें करना चाहिये। जुआ, चोरी, झूठ, कुशील,

माँस, मद्य और वनिता इन सातों व्यसनों से सातों दिन बचे रहने की चेतावनी देकर यह समझाता है कि जो इनका सेवन करता है वह सात नरकों में से किसी एक का अनुगामी होता है।"

"अट्ठा हमें पहिले तो श्रीजी की आठों द्रव्यों द्वारा नित्य प्रति पूजन करने का उपदेश देता है इसके बाद चारों घातिया और चारों अघातियां ऐसे आठ कर्मों का क्षय कर अनन्त पद अर्थात् निर्माण प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है।"

"नहला हमें ६ पदार्थों का बोध कराता है और साथ ही उन ६ नारायण ६ प्रति नारायण और ६ बलभद्रों का स्मरण दिलाता है जो शुभ कर्म कर उच्च पद में स्थित हैं।"

"दहा हमें क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य इन दश धर्मों के पालन करने की शिक्षा देता है।"

"इस प्रकार इन ताशों को मैं नित्यप्रति देखकर ऊपर कहे हुए धार्मिक सिद्धान्तों का मनन करता रहता हूं और अपने अंधकार रूपी अज्ञान को मिटाने में सदैव प्रयत्नशील रहता हूं।"

इतना सुन चुकने के पश्चात् भगवानदास भोला से प्रेम पूर्वक बोले। —"भोला तुम एक बात समझाना तो भूल ही गये।"

भोला ने किंचित हास्य के साथ कहा,— "आपका मतलब शायद गुलाम से होगा।"

भगवानदास ने सिर हिलाते हुए उसे भी समझाने के लिये भोला से आग्रह किया।

भोला ने कुछ विरक्ति के साथ कहा,— "मालिक इसका नाम न लेना ही उचित था क्योंकि यह गुलाम हमें उन धूर्तों की याद दिलाता है जो दूसरों की बुराई करने ही में अपनी भलाई समझते हैं। ये सदैव स्वधर्म विमुख रहते हैं। ऐसे दुष्टों के संसर्ग से सदैव बचते रहना चाहिये कारण ये मौका पाकर अनर्थ करने में कदापि नहीं चूकते। अतएव मैंने इसे बाकी के ताशों में न मिला अलग ही रख छोड़ा था। परन्तु साथ ही ये दया के पात्र भी हैं कारण ये नहीं जानते कि इन्हें अपने बुरे कामों का क्या परिणाम भोगना पड़ेगा अतएव ऐसे व्यक्तियों को ठुकराकर उन्हें पाप के भयंकर गड्ढे में न ढकेल देना चाहिये।

बरन उन्हें यत्न पूर्वक सुशिक्षा देना चाहिये। यही कारण है कि गुलाम को भी और पत्तों के साथ गड्डी में स्थान मिल गया है। अगुओं और मुखियों का यही कर्तव्य है कि वे गिरे हुए भाइयों को ठुकरा देने की बजाय उन्हें अपने सतसंग और सदुपदेश का अवसर दें जिससे वे भी इस मनुष्य जन्म को सार्थक बना सकें।"

भोला के कथन को भगवानदास बड़े ध्यान से अब तक सुन रहे थे। उसका कथन समाप्त होने पर वे मन ही मन उसकी बुद्धिमानी की सराहना करने लगे। वे सोचने लगे,—"सृष्टि की सभी बातें विचित्र हैं। जब कि एक व्यक्ति उन्हीं ताशों से जुआ इत्यादि खेलकर अपना समय गवांता और पाप का भागी होता है दूसरा उन्हीं की सहायता से धार्मिक सिद्धान्तों का मनन कर अपने समय का सदुपयोग करता है। ठीक ही कहा है बुद्धिमानों को कहां कुअवसर नहीं और विचारशीलों के लिये ऐसी कौन सी वस्तु है जिसका वे सदुपयोग न कर सकें।"

कबीर ।

अररररररर भैया सुनो कबीर ।
माग नाथने वंशीधर जी,
कालीदह में कूद पड़े ।
किंतु अगम जल शीतल को लख,
ग्वाल बाल यों रहे खड़े ॥
भला हो जैन मित्र की होली है ॥ १ ॥ अरर० ।

पगड़ी टोपी वाले दोनों,
झण्डा को फहराते हैं ।
जैन गजट का रूप देख यह,
पंडित जी घबराते हैं ॥
वीर अब हम को बनना चहिये ॥ २ ॥ अरर० ।

यदि चाहो साहित्य अनूठा,
शंकर का प्यारा परसाद ।
तो फिर अब पूछो मत कुछ भी,
डेढ रुपैया देकर दाद ॥
बनो तुम ग्राहक जैन दिगम्बर के ॥ ३ ॥ अरर० ।

खण्डहरों के रहने वाले,
निशि ही में ये उड़ते हैं ।
मन मरती को बातों में बस,
पड़े पड़े यों सड़ते हैं ॥
मित्र ये पत्र पलौआ मत आनो ॥ ४ ॥ अरर० ।

रंग रूप में छटा अनोखी,
मन को खूब लुभाती है ।
महिला का आदर्श बताने,
घर बैठे आजाती है ॥
फीस बस दो.रुपया तुमरे देना ॥ ५ ॥ अरर० ।

× × × × ×

अररररररर भैया सुनो कबीर ।
महावीर साहित्य लड़ाया,
लेकर चले गुलाल ।
सरस्वती कुमरी के मुख को,
मलकर कीन्हीं लाल ॥
चलो बस संग हमारे होली है ॥ १ ॥ अरर० ।

देवी देख कुरीं यह लीला,
शुक्ल वस्त्र तन धार ।
दौड़ीं कुमरी और लड़इया,
दीन्हीं रंग को डार ॥
कहें चल दो चिन्तामणि पाने को ॥ २ ॥ अरर० ।

काल पथ कर बैठो देवी,
बांट रही परसाद ।
साढे छै की भेंट चढ़ा कर,
हंसो मिलो साल्हाद ॥
रिद्धि सिद्धि चाहक दौड़ पड़ो ॥ ३ ॥ अरर० ।

एक प्रयागी पंडित जी की,
गृह लक्ष्मी चित चोर ।
शिशु समेत वह क्रम से पहुंचे,
तुव गृह मासिक भोर ॥
भेंट पूजा में चार रुपये लेती ॥ ४ ॥ अरर० ।

इक वकील साहिब की लक्ष्मी,
जाती देश विदेश ।
दो रुपये लेकर सालाना,
मेटे विरह कलेश ॥
धन्य इन उपकारी भगवतियों को ॥ ५ ॥ अरर० ।

दुर्बल एक सुदामा जैसा,
ले प्रताप का नाम ।
माखन चोर संग में लेकर,
सिखलाना है काम ॥
धन्य इस यू.पी. के कनपुरिया को ॥ ६ ॥ अरर० ।

विष्णु कृपा से कर्मवीर,
इक हुआ मनोहरलाल ।
खूब खिलाया माखन उसको,
बड़ा हुआ तत्काल ॥
शुक्लजी अब उसको बहलाते हैं ॥ ७ ॥ अरर० ।

कहीं दुलारे चलो ग्राहको,
लखो माधुरी रूप ।
खाड़े हैं मैं मजा सालभर,
लूटो बनकर भूप ॥
भरोसा जब तक जियो न छोड़ोगे ॥ ८ ॥ अरर० ।

छैल छबीली अति-
गरबीली, रूप माधुरी ओर ।
ताक रहा छैला मतवाला,
उड़ा न ले चित चोर ॥
लाल जी संभल आइये होली है ॥ ९ ॥ अरर० ।

मोहन की मोहिनी मुदित मन,
कोक शास्त्र ले अंक ।
छटा निराली दिखा मोहनी,
चुप हो रही निशंक ॥
चलो अब ग्राहक ग्राम अभाना को ॥१०॥ अरर० ।

होली के मौसिम में फक्कड़,
रंगे भंग के रंग ।
यदि कुछ कहें पकड़ मत
लेना समझ बुराई ढंग ॥
सारा अर अब न बोलि हैं हे भैया ॥ ११ ॥ अरर०

एक फगवारा "फक्कड़"

सभापति के व्याख्यान पर एक दृष्टि ।

(लेखक--श्रीयुत पं० दीपचन्द जी वर्णी)

आज हमारे हाथ में परवार सभा के षष्टम अधिवेशन के सभापति का व्याख्यान है । ज्यों ही हमने उस को पढ़ना प्रारंभ किया कि प्रारंभ में ही जातीय संगठन पर विशेष रूप से समाज का चित्त आकर्षित किया गया है यह प्रतीत हुआ, क्यों कि यह एक साधारण बात है कि अनेकों व्याधियों में से जो विशेष भया-वह अर्थात् हानि कारक होती है, उसी पर प्रथम विशेष रूपेण ध्यान दिया जाता है । यह बात ठीक है, कि संगठन के बिना ही धर्म,जाति देश आदि की अवनति हो जाती है । और संगठन के होने ही से धर्मजाति तथा देश की दशा सुधर कर उन्नत हो जाती है इस लिये संगठन की आवश्यकता तो अवश्य है । वर्तमान समय में समाज और देश इसी संगठन के बिना शोचनीय दशा को प्राप्त हुए हैं इस विषय में केवल मैं ही नहीं किन्तु आबाल गोपाल सभी सहमत हैं । सभापतिजी ने संगठन से लाभ व असंगठन से हानियां तो ठीक बताई हैं, परंतु संगठन कैसे हो ? और उस के साधक व बाधक कारण कौन हैं ? इस विषय में केवल १ संगठन समिति बनाने मात्र का उपाय बताया है और कुछ नहीं बताया है । मेरी समझ में यद्यपि यह भी एक उपाय है तो अवश्य, परन्तु इतने ही से संगठन हो जाना असाध्य नहीं तो दुःसाध्य तो अवश्य है क्यों कि संगठन समिति ११ महाशयों की ललित-पुर के अधिवेशन में बन भी चुकी थी परन्तु उसने क्या कार्य किया ? सो अज्ञात है मान लें कि वह कुछ करती भी, तो केवल इतना ही कर सकी थी, कि भ्रमण करके कुछ ग्राम्य सभायें बनाती अथवा कहीं कुछ तड़े होतीं तो नरम गरम कर के मिला देती और उस की नियमानुसार रिपोर्ट भी पेश हो जाती आभार भी माना जाता । बहुत ठीक । कार्य का पुरस्कार देना उचित ही है । परन्तु हम यहां क्या यह पूछ सकते हैं ? कि उक्त समिति की ऐसी कार्यवाही क्या वास्तव में संगठन की कार्यवाही कही जावेगी ! यदि कहें भी तो क्या वह कुछ अधिक काल स्थाई होगी ? मेरी तुच्छ

बुद्धि में तो यह बात नहीं आती । और विशेष विद्वान जाने । क्योंकि जहां धूल व भुसा पड़ा है उस भूमि को बिना धूल भूसा दूर किये या यों कहिये कि बिना भूमि को ठोस किये केवल गोमय से लीप देने से वह स्थान निर्भय रहने योग्य होगा ! कदापि नहीं । क्यों कि गोमय के कण सूखने पर व पैरों से दबने पर बिखर जावेंगे । और फिर वही धूल की धूल उड़ेगी ठीक इसी प्रकार जब तक जातीय संगठन के बाधक कारण दूर और साधक कारण न मिलाये जांयगे । तब तक कोटि यत्न करने पर भी संगठन न होगा । यद्यपि सभापति महोदय ने समस्या रूप से दबे हुए शब्दों एक बात बहुत आवश्यक रीत्या ध्यान देने योग्य कही है । और उन के शब्दों में यह है कि हम को जाति का संगठन करने में प्रथम अपने गरीब और मूर्ख भाइयों के सुधार करने में ही लक्ष्य देना चाहिये । क्योंकि प्रथम उन का सुधार करने ही से हम अपनी समाज का पूर्ण सुधार कर सके हैं । हमारा प्रयत्न तभी सफल और प्रशंसनीय हो सक्ता है । जब हमारे द्वारा हमारी अज्ञानी और असमर्थ समाज का पूर्ण उद्धार हो जाय वास्तव में बात सत्य है और हम इस को सुवर्ण वाक्य कहें, तो अत्युक्त न होगी परन्तु अच्छा होता यदि सभापति महोदय, उक्त सूत्रों की कुछ विस्तृत टीका (व्याख्या) कर देते । क्यों कि सामान्य सूत्रों में तो किसी को भी कुछ आपत्ति नहीं परन्तु विशेष में ही विशेषता होती है । अतएव अच्छा हो यदि कोई महाशय इस विषय में समाज का लक्ष्य इस ओर खींचें । मेरी समझ तो झगड़े के कारण या असंगठन के कारण केवल यही हो सके हैं कि House of Lords and House of Commons." अर्थात् श्री मानों की रीति और गरीबों की भीति ॥ सो यदि इन का भेद भाव परवार सभा मिटा सके, तो संगठन हो चुका ही समझिये । फिर न समिति चाहिये और न उस का भ्रमण परन्तु स्मरण रहे कि मूल की रक्षा किये बिना वृक्ष की रक्षा होना असंभव है । यहां भेद भाव मिटाने से हमारा आशय यह नहीं है कि श्रीमानों की सम्पत्ति छीन कर गरीबों को देदी जाय और सब को समान बना दिये जांय परन्तु हमारा आशय यह है कि जाति सम्बधी निग्रहानुग्रह आदि श्रीमानों और श्री हीनों के साथ समान रीति से किया जाय अर्थात् जिस अपराध के लिये जितना दण्ड एक गरीब को मिलता है, उसी प्रकार व उस से अधिक श्रीमानों को होना चाहिये क्यों कि उनका अनुकरण सर्व साधारण करते हैं । वे जाति के अगो वान समझे जाते हैं यदि उनके साथ एक आना रियायत की जाय, तो गरीबों के साथ यदि अधिक नहीं तो उनके बराबर तो अवश्य ही होना चाहिये । इस के सिवाय उनको किस किस बात का दुख है । इस का भी ध्यान देना चाहिये । इस समय आर्थिक कष्ट तो उनको है ही परन्तु अब एक और बड़ा कष्ट यह हो रहा है कि उन के युवा पुत्र कुंवारे रह जाते हैं बेटी वाले प्रायः धनिक प्राणियों के घर ही अपनी बेटी दिया करते हैं । जब धनिकों में बारे बूढ़े अंग हीन आदि सभी ब्याह जांय, एक नहीं अनेकों बार तब कहीं उन से बची हुई कन्यायें किसी मध्यम स्थिति वाले को प्राप्त हो सकी हैं यदि कोई विवेकी पुरुष अपनी कन्या किसी होनहार पढ़े लिखे निरोग किन्तु गरीब सदाचारी युवा को देने का विचार भी करता है । तो फिर सौके प्राण लेती हैं । फिर पाई प्रीति और गुन मारे डालते हैं । यदि कदाचित इन दो महासागरों से पार हुआ,

तो लड़का दूर रहता है, कारे कोसों कोन देवे, इत्यादि बुरी खटकती है। यदि यहां भी कुछ सुभीता पाया, और सगाई सम्बन्ध भी होगया परन्तु ब्याह में कुछ देर होवे और उसी बीच में किसी श्रीमान की धर्मपत्नी परलोकवास कर जावे, तो फिर बस बेचारे के शेख चिल्ली जैसे विचारों का घड़ा ही फूट गया समझो और जब कभी ऐसे दीवानी जवानी के मारे किसी निर्बल कामान्ध से कुछ भी चूक होगई तो फिर वे ही श्रीमान जिन्हों ने उस के सामने का परोसा हुआ थाल खींच कर हड़प लिया है। उस की पंचायत करते हैं, उस को आजन्म काले पानी की सजा का हकदार ठहराते हैं। गरीब वर भले देख परख लेने पर भी अयोग्य ही रहता है। ठीक भी है उसमें बड़ा भारी दुर्गुण तो यह है कि सर्व दोषों का आच्छादन द्रव्य उनके पास नहीं है। परन्तु जैसे शरीर के भीतर हाड़, मांस, मज्जा, रुधिर, पीव, मलादिक रहते भी ऊपर श्वेत नरम सुहावना चर्म होने से अन्दर के सब दोष ढंकजाते हैं। उसी प्रकार श्री (लक्ष्मी) देवी की कृपा से श्री मान न तो कभी बूढ़े होते हैं न असदाचारी, न रोगी, न कुरूप अंग हीन, किन्तु वे तो सर्वांग सुन्दर युवा ही रहते हैं॥

समाजों के नियमों का पालन कदाचित् ही ये करते हैं। ठीक है जिसका गाड़ा अटके, सो ऑंगन देव। यहाँ तो रेत में भी नाव चलती है।

अब रही यह बात कि जब किसी गरीब का भाग्य से कुछ सम्बन्ध होजाय और उसे चतुष्पद बनने का समय आ जाय, तो वह मारे नेग दस्तूरों के और शक्ति से अधिक अनावश्यक खर्च के मराजाता है। यह समझ में नहीं आता कि ये नेग दस्तूर जो होते हैं, जैसे चौकट गणोवना, धरा, झोलोझोली इत्यादि खोइल से क्या अभिप्राय है? क्यों कि ये न तो शास्त्र विधि अनुसार कुछ हैं ही। न इन से बाह्य लौकिक ही कुछ लाभ है यदि कहो सुख साके हैं। तो हम कहेंगे ठीक है-श्रीमानों! आप के लिये अवश्य ही ये सुख साके हैं। परन्तु यह सुख साके तो पड़ने वाले गरीबों के फांके हैं। सोचो सही सुख साके वे कहाते हैं। जिन के करने से मनुष्योंको हर्ष होता है। परन्तु जो दवाव से करें, भार या करदेना समझ कर करें, दुखी होकर, ऋण लेकर करें, कुछ करें कुछ न करें, इत्यादि अवस्थाओं में इनको कैसे सुख साके कहें? भगवान जाने, या आगेवान जाने यदि कोई ऐसी बातें कहे। तो वह निरा पागल है, रीति भांति मिटाने वाला है। ठीक है रीति भांति अमर रहे। चाहे जाति पांति का मोक्ष होजाय। आज कल तो यह बात है कि हजारों निर्धन मिल कर जो बात तय करें। उसको अस्वीकार करने का अधिकार एक श्रीमान को प्राप्त है। गरीब बेचारे पीठ पीछे तो सत्य बोलते हैं डरते २। परन्तु साम्हना होते ही "नज़रें चार होती हैं मुहब्बत आही जाती है" श्रीमान भैया जी इत्यादि का कहना ठीक है। बड़ों की पहुंच भैया दूर तक होती है इत्यादि बातें होने लगती हैं। ये बातें सभी जानते हैं, परन्तु इनके सुधार की ओर दृष्टि नहीं है हम दृढ़ता से कह सक हैं कि यह जाति के जीवन मरण का प्रश्न है यदि इस पर दृष्टि न दी जायगी तो भले कितने ही अधिवेशन करो व्याख्यान सुनो सुनावो, प्रस्ताव पास करो, परन्तु न तो संगठन ही होगा और न उसके अभाव में कुछ सुधार व उन्नति ही होगी, इस लिये निवेदन है कि यदि संगठन और सुधार करना है। तो ऐसी २ बातों को जो विरोध या असंगठन की पक्का (पाया दार) बना रही है, खोज २ कर

दूर कीजिये, तभी कुछ हो सकेगा। संभव है यह लेख कुछ तीक्ष्ण मालूम हो, परन्तु न तो व्यक्ति विशेष पर लक्ष कर और न किसी को मिथ्या स्तुति रूप ही लिखा गया है किन्तु दयार्द्र और दुःखित हृदय से सत्यार्थ व्यवस्था जो अनुभव में आई वा आरही है सो लिख दी है आशा है जाति के नेतागण विचार करेंगे, और यदि कुछ अनुचित समझा जाय तो क्षमा करेंगे उक्त बातें बहुसंख्यक दुःखित जनों के हृदय के अनुसार है—

"अनुनय !"

चाहे भगवन्! मेरे ऊपर बज्र गिरावें।
चाहे निर्दय हो बम के गोला बरसावें॥
चाहे अब ही कृष्ण सदन में मुझे बन्दकर।
असिधारा भरपूर चलावें इस शरीर पर॥
ये सभी हमें स्वीकार हैं,सह लेंगे इनको सही।
किन्तु शीघ्रहो हे प्रभो!यह स्वतंत्र भारत मही॥

न्या. वा. हजारीलाल जैन "न्यायतीर्थ

होली।

(लेखक—श्रीयुत अध्यापक ठाकुरदत्त जी)

वर्ष का अन्त हो रहा है। नई आशाएँ, नई उमंगें और नया उत्साह लेकर नूतन वर्ष आ रहा है। वर्ष के अंत और वर्ष के आगमन की सूचना देने के लिये होली, प्रेम और आनंद भरी होली राष्ट्रीयता से भरी होली आ गई है। सारा देश वर्ष भर के उद्वेग, श्रम, कष्ट, दुःख आदि को भूलकर नूतन आनन्द और नूतन हर्ष का पुलकित होकर स्वागत करेगा। वास्तव में, हमारे पूर्वज बड़े ही योग्य, विद्वान और विचार शील, थे, जो उन्होंने वर्ष के अंत में ऐसे सुन्दर तेवहार की स्थापना की थी। उनकी बुद्धिमत्ता की कल्पना करके आज भी हमारा हृदय आनन्द, भक्ति और श्रद्धा से उमड़ उठता है। प्रत्येक देश के, प्रत्येक समाज के, प्रत्येक तेवहार में कुछ न कुछ तत्त्व सन्निवेशित है।

हिन्दू धर्म की कथा * में सुना जाता है, "कि प्राचीन समय में पुण्यमय भारत में हिरण्य-कश्यप नाम का एक दुर्दान्त दैत्य नरेश था। वह अपनी प्रजापर सदैव ही दमन का संहारकारी भीषण चक्र चलाया करता था। उसकी कठोर आज्ञाओं के कारण धर्म-प्राण ऋषि-मुनि भी धर्म-कार्यों से विरत किये जाते थे उसके दमन-चक्र की भीषण-गति से ऋषि-मुनियों तक का नाकों दम था। वे धर्म-कार्यों से रोके जाते थे। हिरण्य-कश्यप की यह अधर्म-गति यहां तक बढ़गई कि अंत में वह यही कहने लगा कि त्रैलोक्य में ईश्वर नामधारी कोई शक्ति या पदार्थ नहीं है। जो कुछ है वह मैं ही हूं मेरी ही पूजा और मेरी ही भक्ति होनी चाहिये। अंत में प्रजा उसके अत्याचारों से त्रस्त हो उठी। वह बार बार अपने उद्धार के लिये ईश्वर को पुकारने लगी।

ऐसे ही समय में हिरण्य-कश्यप को, धर्म-मार्ग पर लाने के लिये धर्म का प्रकाश करने के लिये, उसके यहां, धर्म के समान तेजस्वी पुत्र प्रह्लाद का अवतार हुआ। थोड़ा सा ज्ञान होते ही प्रह्लाद धर्म की ओर चलने लगे। वे धर्म के लिये मतवाले हो गये। हिरण्य-कश्यप ने उन्हें रोका, समझाया, धमकाया, पर प्रह्लाद

---

* जैन धर्म की कथा का सारांश विविध विषय में देखिये। स० स०

मतवाले ही बने रहे ! उन्होंने हिरण्य-कश्यप की बातों पर ध्यान ही न दिया ! तब दैत्यराज ने उस सुकमार कोमल बालक को पर्वत-शिखर पर से नीचे गिराया, अतल-जल में डुबाया, पर धर्म की उस प्रखर ज्योति का प्रकाश और भी तीव्र होता गया।

अंत में हिरण्य-कश्यपने धर्म के प्रखर प्रकाश का नाश करने के लिये अपनी बहिन होलिका से सहायता की भिक्षा मांगी। होलिका ने अनीत मयी होलिका ने अत्याचार रूपी हिरण्य-कश्यप को भिक्षा दी। धम प्रह्लाद् को गोद् में लेकर होली में बैठ गई। परिणाम विपरीत हुआ। कभी न जल ने वाली होलिका सदैव के लिये जल गई पर वही भीषण अग्नि प्रह्लाद के लिये शीतल जल का काम कर गई। अंत में भक्तवर की रक्षा के लिये स्वयं शक्ति सम्राट् भगवान ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्य-कश्यप का संहार किया इस प्रकार अत्याचार का अंत हुआ और धर्म की रक्षा हुई"।

संभव है, यह कथा सत्य हो, संभव है यह कथा कवि की सुन्दर कल्पना शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण हो। पर, है इस में एक भारी तत्व का एकभारी उपदेश का समावेश। हिरण्य-कश्यप, अत्याचार, अनीति और अधर्म का एक भारी भांडार है। वह इन पापों का एक जीता जागता चित्र है। होलिका एक स्त्री नहीं, अनीति की अंधकार मयी निशा है। अनेक हृदय में भी हिरण्य-कश्यप के समान स्वेच्छाचारिता और अनीति का साम्राज्य है। वह अधर्म की सहायक है। अनीति सदैव ही अधर्म की सहायक है। ये दोनों सदैव ही धम की ताक में रहते हैं। जहां इन दोनों का एकछत्र राज्य हो, वहां अत्याचार का वास होना ही चाहिये। अनीति, अधर्म और अत्याचार के इस भीषण त्रिशूल को कौन सह सकता है। इस भीषण त्रिशूल को फल के समान सह कर कौन निर्मूल कर सकता है? केवल धर्म।

इस कथानक में प्रह्लाद धर्म का उज्ज्वल चरित्र है। कविने इस चरित्र के विकाश को पराकाष्टा की सीमा तक पहुंचा दिया है। इस चरित्र में सत्य, धर्म, शान्ति, क्षमा और संतोष का अद्भुत संगठन दिखाई देता है। पिता कहता है, कि बेटा, राम कोई नहीं है। जो कुछ हूं, मैं ही हूं, मैं ही त्रिलोक का स्वामी हूं मेरी शक्ति ही से यह संसार लगा हुआ है। यदि मैं चाहूं तो इसे क्षण भर में ही उलट दूं। मेरे भय के मारे सारे देव और दैत्य थर थर कांपते हैं मेरे भय से ऋषि मुनि तप करना भूल गये हैं वे तेज हीन हो गये हैं। अतः तुम्हें मेरी भक्ति करनी चाहिये यदि तुम मेरी बातों पर ध्यान दोगे तो मेरे भृकुटि निक्षेप मात्र ही से तुम्हारे लिये प्रलय उपस्थित हो जायगा।

पर सत्य के लिये प्रह्लाद पिता की इस गर्वोक्ति पर ध्यान नहीं देते हैं। वे केवल धर्म को ही सब कुछ समझते हैं। और शांति, क्षमा तथा संतोष पूर्वक पिता का अत्याचार सह लेते हैं। अंत में इन्ही सद्गुणों के अपूर्व तेज से वे विजयी होते हैं। अधर्म और अनीति के भीषण तूफान के सामने सत्य धर्म का एक तिनका अचल अटल भाव से स्थिर रहता है। अनीति और अधर्म की भीषण दावाग्नि, सत्य धर्म के एक छोटे से तिनके को जलाने में असमर्थ रहती है। हिरण्यकश्यप और होलिका

पाप के स्वरूप हैं। प्रह्लाद धर्म का अवतार है। पाप अपना प्रबल पराक्रम दिखलाता है पर धर्म सदैव शांत रहता है। अंत में धर्म नाश के कठोर प्रयत्न में पाप का ही नाश हो जाता है। और धर्म का प्रखर प्रकाश, अपने सौगुने तेज से चमक उठता है। सच है, पाप पाप ही है। सत्य के सामने वह कबतक टिक सकेगा। अंत में उसका पराजय निश्चित ही है। उसे अन्त में सत्य धर्म के सामने परास्त होना ही पड़ेगा।

इस सुन्दर कथानक से हमें यही अमूल्य शिक्षा मिलती है। हमें सदैव ही अधर्म और अन्याय से दूर रहना चाहिये। केवल सत्य-धर्म के दृढ़व्रती होना चाहिये। अधर्म तथा अन्याय कितने दिन चलेगा? वह एक दिन हमें हिरण्य-कश्यप के समान ही मिटा देगा! तब फिर हम सत्य-धर्म के अनुयायी हो, प्रह्लाद के समान ही सौगुनी चमक से चमकने का प्रयत्न क्यों न करें? क्यों न शांति, क्षमा और संतोष के साथ रहकर अनीति का सामना करें? क्यों न कष्ट सहने के लिये तैयार रहें? क्या इतने पर भी हमें सत्य छोड़ देगा? क्या सत्यारूढ़ रहने पर हमारी विजय न होगी?

इसी सुन्दर शिक्षा का आदर्श लेकर होली आती और चली जाती है! पर हम क्या करते हैं? उस पवित्र आदर्श की अवहेलना और उपेक्षा! हम प्रह्लाद का आदर्श सामने न रखकर हिरण्य-कश्यप और होलिका का आदर्श ही सामने रखते हैं! आनंद मनाते हैं खुशी मनाते हैं तो केवल इसलिये कि इस दिन उस अत्याचार का अंत हुआ था इस दिन हिरण्य कश्यप और होलिका का संहार हुआ था! हमें उनके पराजय पर हर्ष मनाने का अधिकार ही क्या है? वे पतित थे उनका पराजय! यह तो हमारे लिये केवल दुःख मनाने और रोने की बात है इस पर हर्ष से नाच उठना तो और दुःख की बात है! यह तो हमारी ही पराजय की सूचना है वह तो हमारे ही पतित होने का प्रबल प्रमाण है! यदि आदमी दूसरे की, चाहे वह शत्रु ही पराजय पर सुखी होता है तो यह भी अनीति, अत्याचार और अधर्म की बात है! शत्रु की पराजय पर पतित के पतन पर यदि हम दुखित होना सीख लें, यदि हम उनसे सहानुभूति करना सीख लें तो हमारी विजय में संदेह नहीं यही हमारी विजय है, यही हमारे आनन्द मनाने का कारण हो सका है!

प्रह्लाद के शत्रुओं का संहार हुआ था, पर इससे वे सुखी नहीं हुए थे, उन्होंने भगवान् से उनके कृतापराधों के लिये क्षमा याचना की थी! यही प्रह्लाद की पूर्ण-विजय थी! यही सुन्दर आदर्श हमारे आनन्द का विषय है इसी पर हमारी होली की भित्ति-स्थित है! यदि हम भी अपने शत्रुओं के लिये, यदि हम भी अपने पतित तथा पापी भाइयों के लिये उनकी हित-कामना के लिये भगवान् से, सच्चे हृदय से प्यार करना सीख लें तो होली का यह पवित्र पर्व सार्थक हो जाय! होली का आदर्श और उद्देश पूर्ण हो जाय!

होली आ रही है—इसलिये कि हम अपने वर्ष भर के किये हुए सत्-असत् कार्यों का सिंहावलोकन करें। किये हुए सत्कार्यों पर ख्याल ही न करें-उनके लिये हमारे मनमें त्याग भाव रहे – ख्याल रहे केवल किये हुए असत् कार्यों के लिये! उनके परिणाम का विचार करें। उनके लिये हृदय से दुखी हों! ईश्वर से उन अपराधों के लिये क्षमा का दान मांगे! और आगे से वैसा न करने के लिये मन पर अधिकार ही न जमावें – शासन करना सीखें! वर्ष

भर में हमने अपने कितने ही भाइयों को दुःखी किया होगा होली इसलिये आई है कि हम उस पाप का प्रक्षालन करें। कितने ही भाइयों ने हमें भी दुख पहुँचाया होगा। हम इस ओर ध्यान भी न देकर उनसे केवल अपने अपराध के लिये क्षमा-याचना करें। उनकी क्षमा-याचना न सुनें – कान पर हाथ रख लेवें। केवल उन्हें हृदय से लगा कर कहें – भाई हमारा अपराध भूल जाओ! इस प्रेम मयी होली में हमें क्षमा करो! यदि हमसे अपराध हो गया है – तो हम तुम्हारे ही भाई हैं- दंड दो, हम सहने को तैयार हैं।" यदि हम यह क्षमा और यह शांति तथा संतोष हृदय में धारण करलें तो संसार में हमारा कोई शत्रु न रह जाय - रागद्वेष का सदैव को नाश हो जाय। यह मिट्टी का संसार सोने का हो जाय! इसमें सुख की सरिता अपनी अजस्र-धारा से अनंतकाल तक बहती रहे! यदि हम इतनी विजय प्राप्त कर लें तो होली का पवित्र उद्देश्य सार्थक हो जाय! यह आनंदमयी-यह राष्ट्रीयता मयी होली सार्थक हो जाय!

जीवन-धन।

सिर झुका वहीं, उर रुका नहीं
ठिठके बोले, है कौन हरे।
मन-मन्दिर की झन्कारों से,
यह निकल पड़ा तुम कौन खड़े?

कर चूम कहा उल्टी समीर को,
सह आओ मेरे सहवास,
उस मृदुल हास्य की रेखा में
आलोकित था जग का उपहास॥

वह अद्भुत सी मुस्कान निरख,
स्तम्भित हो आया रूप वही।
आते आते मैं चौंक उठा,
हो गया मोह का अन्त यहीं॥

जिनको देने मैं लाया था,
निज जीवन का यह पुष्प नवीन।
वे भाग गए मैं शीश झुका
हो गया विरह का धार विलीन॥

मन मचल गया मतवाला सा,
मुस्कानों की मनुहार गई।
महती ममता का मान गया,
मद की गति की अनुहार गई।
उनमत्त बना यह मन-मिलन्द,
इस जीवन की सब आश तजी।
दौड़ा जीवन-धन के पीछे,
जिस ओर मधुर मृदु तान बजी॥

उस ओर गया जिस ओर गए,
बलिवेदी पर चढ़ने वाले।
अधिकारों के उपसागर में।
बिन तरनी के तरने वाले॥
वह प्रखर तेज से ज्ञान मिला,
जग के कुण्ठित व्यापार हुए।
जिनको कण्टक का रूप दिया,
वे सब के सब उपहार हुए॥

वह मिला बहुत संकट सहने पर
कहने को सारा निष्कर्ष,
विचलित होगा अपने पथ से,
निश्चित होगा उसका अपकर्ष।
वह उठा फूटकर प्रेम,
अधिक संतापों का घमसान हुआ।
कहते कहते ही दुखद कथा—
मन मोहन अन्तर्ध्यान हुआ॥

— प्यारे

परवार सभाके प्रस्ताव की विजय ।

फागुन महीने के लगतेही जबलपुर के घर २ में एक प्रकार की नवीन चर्चा होने लगी थी। चर्चा के होने का कारण यह था कि स्वर्गीय स० सि० भोलानाथ जी के नाबालिग पुत्र का विवाह, जिन की अवस्था १४ वर्ष कुछ महीने की है—सिंगई खूबचन्द जी जबलपुर वालों की कन्या श्री जमनाबाई से जिन की अवस्था ११ वर्ष की है फागुन सुदी २ को होना निश्चित हुआ था।

किन्तु मंत्री परवार सभाने इस की खबर पाते ही परवार पंचायत जबलपुर का ध्यान परवार महासभा के जबलपुर अधिवेशन में पास हुए नीचे लिखे प्रस्ताव नं० ६ की ओर आकर्षित कराया।

प्रस्ताव नं० ६

यह सभा प्रस्ताव करती है कि लड़की की शादी ११ वर्ष लड़के की शादी १५ वर्ष से कम में न की जावे। अगर इस नियम को कोई महाशय उल्लंघन करेगा। तो पंचायती द्वारा दण्डित किया जावेगा।

वर कन्या उभय पक्ष का पूर्ण प्रयत्न परवार सभा के उक्त प्रस्ताव की अवहेलना करते हुए विवाह करने का था। एक बार तो यहां तक आशंका हो गई थी कि पंचायत के असहयोगी होने पर भी वर कन्या वाले विवाह कर डालेंगे।

परन्तु प्रसन्नता की बात है कि उभय पक्ष का प्रयत्न निष्फल हुआ। यहां पर हम जबलपुर पंचायत की प्रशंसा किये बिना न रहेंगे कि जब उनको वर की अवस्था १५ वर्ष से कम मालूम हुई तब उसी समय श्रीमानों (वर व कन्या पक्ष के घर लक्षाधीशों के हैं) का पक्षपात न करके अपने कर्त्तव्य का पालन किया।

समाज को इस की सूचना देने का केवल यही आशय है कि जब कभी ऐसा कठिन प्रसंग उपस्थित होवे तो हमारी पंचायतों का कर्त्तव्य है कि वे जबलपुर पंचायत की तरह निष्पक्षपात द्वारा निर्भीकता से निपटारा करें। व्यक्ति विशेष के लिये परवार सभा द्वारा निर्धारित प्रस्तावों की अवहेलना न स्वयं करें और न करने देवें।

हम इस स्थान पर यह लिख देना भी उचित समझते हैं कि उक्त विवाह बन्द होने पर भी जबलपुर के घर २ में उक्त चर्चा का होना बंद नहीं हुआ आबाल वृद्ध सभी स्त्री पुरुषों ने उसकी भलाई बुराई के साथ चर्चा करना नहीं छोड़ा था। विशेष करके स्त्री समाज में तो आजकल भी यह विषय जोर के साथ छेड़ा जा रहा है। मैं इसे बुरा नहीं समझता क्यों कि कोई भी ऐसी रूढ़ि जो अज्ञानता के कारण अनेक दिनों से हमारी समाज में प्रचलित हो रही है उसका विरोध होने पर ऐसी ही हलचल उत्पन्न हो जाती है।

किन्तु यदि हमारी समाज की स्त्रियां लिखी पढ़ी होतीं तो वे ऐसे विषय पर शांतिता पूर्वक विचार करतीं—स्वयं समझतीं दूसरों को समझातीं। इस प्रकार लाभ हानि के विवेचना हो जाने पर वे कभी भी उक्त प्रस्ताव के विरुद्ध अपना मत स्थिर न करतीं और न करने की सलाह देतीं। अतएव स्त्री समाज से मेरा निवेदन है कि वे इस विषय में अपनी

अनभिज्ञता—अज्ञानता को दूर करने का प्रयत्न करें जिस में कि होने वाली अनेक कुरीतियां आप ही दूर हो जावेंगी। कम से कम ऐसे आवश्यक विषयों पर तो पूर्वापर विचार करके समझ के साथ अपना मत स्थिर करें।

मैं जबलपुर की पंचायत को उस की निर्भीक कार्यपटुता पर अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। और परवार जाति की अन्य पंचायतों से भी प्रार्थना करता हूं कि वे समय पड़ने पर छोटे बड़े का पक्षपात न करके अपना कर्तव्य समझ कर न्याय करें तभी पंचायतों का कार्य सुचारु रूप से चल सकेगा।

गतांक में हमने उत्साही सज्जनों के नाम जो सङ्गठन के कार्य में पूर्ण निर्भीकता के साथ सहायता दे सकें मांगे थे। प्रसन्नता की बात है कि कुछ सज्जनों ने भेजने की कृपा की है। किन्तु इस महान कार्य के लिये हमें और भी चारों ओर के समाज के सच्चे शुभचिन्तक स्वयं सेवक चाहिये हैं। उपयुक्त संख्या हो जाने पर शीघ्र ही कार्यशुरू किया जावेगा।

समाज सेवक,
कस्तूरचन्द वकील.
मंत्री परवार सभा—जबलपुर,

"बेकार नव जवान"

जाति की रक्षा करो, बेकार नव जवानो।
इज्जत को मत गँवाओ, बेकार नव जवानो॥
वह क्या हुई तुम्हारी, हमें बतन बताओ।
दौलत कहां गई वो, बेकार नव जवानो॥
उम्रे अज़ीज़ तुमने, बस मुफ़्त में लुटाई।
कुछ अब भी दिल में सोचो, बेकार नव जवानो॥
बेकारी ने तुम्हारी, तुमको किया है बुजदिल।
जल्दी से अब भी सम्हलो, बेकार नव जवानो॥
है जाति को जरूरत, सच्चे सहायकों की।
कह दो कि हम हैं, हाज़िर-बेकार नव जवानो॥
गफ़लत की मीठी नींदें, अब खूब लो चुके हो।
नरगि़स कहो कि उठो बेकार नव जवानो॥

"नरगि़स"

यात्रा में एक लाख का चिट्ठा।

जिस दिन मैं नागपुर अधिवेशन से लौटा। उस के दूसरे ही दिन एक पत्र श्रीयुत कुंवरसेन जी भूतपूर्व मंत्री परवार सभा का मिला। उसमें लिखा था. कि "आप को गढ़-याने के रथोत्सव मे अवश्य शामिल होना चाहिये. क्योंकि वहां जन संख्या अधिक इकट्ठी होने की आशा है इससे परवार बन्धु की ग्राहक संख्या और शिक्षा मंदिर के उद्देश्य का प्रचार अच्छा होगा।"

मैं बड़े असमञ्जस में पड़ा। यद्यपि प्लेग के कारण शिक्षा मंदिर बन्द हो गया था। इस लिये श्रीयुत बाबू कन्छेदीलाल जी मंत्री शिक्षा मन्दिर ने भी जाने की सलाह दे दी। और यह भी कह दिया कि "अवसर पड़ने पर शिक्षा मन्दिर का उद्देश भर लोगों के प्रति प्रकट करना अपील करने में उतना अधिक लाभ नहीं होगा जितना डेपुटेशन के जाने में होगा"

मैं ने सोचा यह तो सब हो सकेगा. किन्तु फरवरी समाप्त होने को आया अतः बन्धु का

२रा अंक प्रकाशित होकर पाठकों की सेवा में पहुँच जाना अति आवश्यक है-- यदि मैं गदयाना चला गया तो फिर इस अंक के निकलने में विलम्ब हो जावेगा। इसलिये इसे प्रकाशित करके साथ ही रथोत्सव में अपने साथ ले जाने में ही अच्छा होगा। इससे परवार सभा नागपुर की सम्पूर्ण कार्यवाही भी समाज के सामने आजावेगी. और समुदाय में पास हुए प्रस्तावों को अमल में लाने के लिये भी कुछ प्रकाश पड़ेगा।

बस मैं उसी दिन तुरन्त मैटर इकट्ठा करके प्रेस में पहुँचा। पहुँचते साथ ही मैंने प्रेस मैनेजर को सारी व्यवस्था सुनाकर बन्धु को अपने साथ गदयाना जाने के पहले प्रकाशित करने को नम्र याचना की। वे बन्धु को शीघ्र प्रकाशित करने का बात सुन कर बीच ही में बड़े चिन्तित स्वर के साथ बोले "भाई आप को मालूम होगा कि इस समय शहर में ४०,५० तक प्लेग के केश होने लगे हैं. बल्कि हमारे प्रेस में भी २,३ चूहे गिरे हैं अतएव भयभीत हो कर प्रेस के कम्पोजीटर लोग भाग गये हैं। जो कुछ आते हैं उनसे इतने समय में बन्धु का निकलना कठिन है"

उनको ये बात सुन कर मैं अवसन्न हो गया -- मुझे अपने सब विचार शेखचिल्ली के समान नष्ट से प्रतीत होने लगे। किन्तु वहां किं कर्तव्य विमूढ सा चुपचाप बड़ी देर तक बैठा रहा। मन में कई विचार आते और जाते थे। किन्तु सहसा कुछ सहारा मिला और मैं तुरन्त अपनी साइकिल उठा कुछ मित्रों के पास पहुँचा उन्होंने मुझे सान्त्वना के साथ एक सम्मति दी। मुझे भी वह पसन्द आयी। अतः मैं ने फिर नवीन उमंग के साथ आकर प्रेस मैनेजर से अपनी वह सम्मति कही. वे सहमत हो गये. और प्रयत्न करने को कहा। तब से लगातार कई बार घंटों प्रेस में रहकर प्रूफ संशोधन करना पड़ा और करना पड़ा कई कठिनाइयों का सामना।

मेरे जाने की निश्चित तारीख २ मार्च आ पहुँची। उसी दिन सबेरे प्रेस मैनेजर ने केवल १०० कापी तैयार हो सकने की बात कही. मैंने गनीमत समझी। और भाई नन्दकिशोर जी से दूसरे दिन बाकी कापियां मोची से लेकर ग्राहकों के पास पहुँचा देने की बात कह कर उसी दिन शाम की डाक गाड़ी से गदयाना के लिये रवाना हो गया।

गदयाना को ललितपुर से उत्तर की ओर १२ मील पैदल रास्ते से जाना पड़ता है। इस लिये रात्रि को ९ बजे हम इसी स्टेशन पर उतर पड़े। स्टेशन पर जैसा मैं समझता था स्वयंसेवक आदि का कोई प्रबन्ध नहीं था। हां कुछ किराये की गाड़ीवाले वहां पर खड़े हुए थे. मैं ने उन्हीं से मेला की व्यवस्था जानना चाही। वे बोले "स्थापना हो चुकी है और वहां अभी प्रायः ५०० आदमी आ चुके हैं। प्रत्येक ट्रेन से १५-२० आदमी उतरते हैं सो हम गाड़ी का १॥) २) किराया लेकर उन्हें पहुँचा आते हैं। ललितपुर में गत वर्ष जितना जमाव हुआ था उससे आधा यहां न हो सकेगा" अस्तु

मैंने अपना सामान वगैरह अपने मित्र के साथ पहिले ही दिन रवाना कर दिया था। अब मेरे पास सिवाय एक धोती के और कुछ था ही नहीं--हां बीना से मा० हरिश्चन्द्र जी मेरे साथ हो गये थे। इसलिये हम दोनों ने क्षेत्रपाल में रात्रि विश्राम करने का निश्चय करके स्टेशन से चल दिया।

वहां पहुँचने पर मालूम हुआ कि पाठशाला के छात्र तथा पं० शीलचंद्र जी चले गये हैं। भाग्य से क्षेत्रपाल के पुजारी महाशय ने हमारे सोने आदि का उचित प्रबंध कर दिया। और समय अधिक हो जाने के कारण हम लोगों ने भी निद्रा देवी की शान्तिमय गोद में कुछ समय को चादर तानी। प्रात:काल नित्य कर्म से निश्चित होने पर

श्रीमान् सेठ पन्नालाल जी टड़ैया

सभापति परवार सभा से क्षेत्रपाल में भेंट हुई। मेरा भ्रम था कि आप गदयाना चले गये होंगे। भेंट होने का कारण यह हुआ कि आप प्रतिदिन प्रात:काल - शहर से १ मील दूर होने पर भी क्षेत्रपाल में दर्शन, पूजन, शास्त्र स्वाध्याय को आते हैं। क्षेत्रपाल के पश्चिमी भाग में एक छोटा सा किन्तु मनोहर बगीचा है उसके फाटक के पास पहुंचते ही पुष्पों की अनुपम सुगन्ध यात्री को आनन्दित करके हृदय से स्वागत करती है। अभिनन्दन जैन पाठशाला भी यहीं है-यात्रियों के उतरने के लिये अलग २ कमरा बने हुए हैं। तथा उनके आराम को सब प्रकार की सुविधा हैं। एक लम्बा कमरा अधबना पड़ा है. जो बन जाने पर व्याख्यान सभा आदि का काम देगा।

आपने बालकों को एक व्यायाम शाला बनवाने का भी स्थान बतलाया किन्तु उसे आप जिस तरह बनवाना चाहते थे वह संकुचित और व्यायाम शाला के योग्य नहीं था. इस कारण मैं ने उन्हें वर्धा और कारंजा व्यायाम शाला के नमूने पर बनवाने को कहा। उसे आपने स्वयं स्वीकार किया. और उसी दिन कार्य प्रारम्भ करने के लिये कारीगरों को आज्ञा भी दे दी।

अभी शाला के छात्रों को फुटबाल खिलाई जाती है। इस खेल में पैसा खर्च होने पर भी उतना लाभ नहीं जितना कि हमारे देशी खेलों से होता है मैं शिक्षा मंदिर के छात्रों को कवायद, कसरत, स्काउट मार्चिंग. दौड़ के अतिरिक्त खो, डूडू, आतीपाती आदि खेल खिलाना अधिक पसन्द करता हूं। कारण प्रतिदिन खेलों में परिवर्तन होने से रुचि भी बढती हैं तथा "आती पाती" जैसे देशी खेलों से खेल ही खेल में नेचर स्टेडी [प्राकृतिक अवलोकन] का भी ज्ञान होता रहता है। आशा है कि अन्य संस्थाओं के संचालक गण भी छात्रों की शारीरिक सम्पत्ति बढ़ाने वाले देशी खेलों से अवश्य लाभ उठावेंगे।

क्षेत्रपाल में श्री शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा दर्शनीय बड़ी मनोज्ञ और आकर्षणीय है। स्थान शान्तिप्रद और रमणीक है। यहां के सम्पूर्ण कार्यों के सञ्चालक तथा रक्षक श्रीयुत सेठ पन्नालाल जी टड़ैया ही हैं।

हमारी आपकी बातचीत-निरीक्षण आदि में प्राय: ८ बज चुके थे. उसके पहिले ही आपने घर चल कर भोजनोपरान्त साथ ही में गदयाना चलने की बात कह दी थी. मैंने उसमें कोई आनाकानी भी नहीं की. और करता ही क्यों ? क्योंकि उसके पहिले ही मैं ने आप को अपने आने की सूचना देकर प्रबन्ध की प्रार्थना करली थी। अस्तु।

बैल तांगा तैयार ही था. उसमें सामान रखवा कर हम लोग घर पहुँचे। और वहां पर भोजन करने के पश्चात प्राय: २ बजे गदयाना को रवाना हुए।

सेठ जी सा० ने अभिनन्दन और जिनेश्वर दास दोनों बालकों को भी साथ में बैठा लिया था। अभिनन्दन की उमर अभी प्राय: ११ वर्ष की होगी। इस उमर में प्राय: बच्चों के बचपने

बड़े लाड़ले होने के कारण नौकरों की गोद में खेलते हुए हमने देखे हैं। और फिर देखा है कि जब वे सम्पत्ति के स्वामी हुए तो उनके मुनीम गुमाश्तों ने उन को भोला समझकर उन पर अपना पंजा जमाया और धीरे २ सारी सम्पत्ति हड़पने लगे।

किन्तु अभिनन्दन को चौथी क्लास इंग्लिश की शिक्षा दी जारही है। वह तीव्र बुद्धि बालक है। तर्कणा शक्ति बहुत अच्छी है। निरी संस्कृत की शिक्षा पाने वाले शास्त्री कक्षा के छात्र भी अभिनन्दन के नेचरस्टेडी (प्राकृतिक अवलोकन) के प्रश्नों का उत्तर देने को एका-एक रुक जावेंगे। समाचार पत्रों के पढ़ने में भी उसकी रुचि है। परवार बन्धु के दोनों अंकों को ध्यान पूर्वक पढ़ कर गढ़ाकोटा में हम से एकबार जाति की गिरी हुई दशा पर शोक प्रकट किया था। ऐसे होनहार बालक की मंगल कामना के लिये किस का हृदय न उछल पड़ेगा ? जिनेश्वरदास अभी बालक ही है। उस की बुद्धि का अभी विकाश नहीं हुआ है। इन्हीं दोनों बालकों और सेठ जी सा० की प्रमोदमयी चर्चा में १२ मील का सफर कुछ भी नहीं मालूम पड़ा। और प्रायः ५ बजे रथोत्सव वाले मेला के मैदान में मंडप के पास पहुँच गये।

ये बात हम को स्टेशन पर ही मालूम हो चुकी थी। कि वहाँ पर ठहरने के लिये डेरे वगैरह का उचित प्रबन्ध ललितपुर की तरह नहीं किया गया है। इसलिये हम लोग सीधे पाठशाला के केम्प में पहुंचे। वहां पर पं० दीपचन्द जी की एक रावटी पहिले ही से अलग रक्खी थी। इसलिये वह छात्रों को खाली कर दीगई। और उसकी रावटी में हम लोगों का सामान रक्खा गया।

पास ही में श्रीमान् पं० लक्ष्मीचंद जी लश्कर वालों का केम्प था। आप सकुटुम्ब थे। सुनने में आया कि ठहरने का समुचित प्रबन्ध न होने के कारण आप सरोष वापिस जाने वाले थे। किन्तु फिर ज्यों त्यों लोगों की प्रार्थना करने पर ठहर गये। इन्हीं से बात चीत हो रही थी। कि साम्हने से बजते हुए अंग्रेजी बाजे हौदा कसा हुआ हाथी और कुछ आदमियों का झुण्ड इसी ओर आता हुआ दिखाई दिया। माली ने आकर सेठजी सा० को खबर दी कि सब लोग आप का स्वागत करने आरहे हैं। स० सि० लक्ष्मीचंद (रथोत्सव कराने वालों) ने पुष्पों की माला टड़ैया जी के गले में डालना चाहा परन्तु सेठजी सा० ने उसे अस्वीकार करते हुए नम्रता पूर्वक कहा कि " मैं यहाँ धर्म कार्य समझ कर आया हूं अतः मैं इस महत् कार्य के साम्हने अपने स्वागत का कोई आवश्यकता नहीं समझता हूं। और न मुझे इस आडम्बर का कोई इच्छा ही है। इच्छा केवल इतनी है और यही मेरा स्वागत है कि यह कार्य सानन्द समाप्त हो लोगों को कोई तकलीफ न हो "। लोगों के आग्रह करने पर भी आप हाथी पर नहीं बैठे, किन्तु मंडप की एक प्रदक्षिणा देते हुए प्रसन्नता सहित सब को विदा किया।

उस दिन ८ बजे शाम ही से कुछ श्रोता लोग पं० लक्ष्मीचन्द जी के आने की राह जोह रहे थे। दो तीन बार आदमी भी बुला आये थे। परन्तु ६ बजने २ मालूम हुआ कि आप आ रहे हैं। आप की उमर ढल चुकी है इसी कारण चौका के बराबर ऊँची गद्दी आप के बैठने को रक्खी गई थी। बैठने के साथ ही एक त्यागी जी ने शास्त्र के वेष्टन खोल कर चौका पर रख दिये। पंडित जी का मंगला-चरण शुरू हुआ। परन्तु बीच ही में गेस के

केम्प से अधिक गर्मी लगने के कारण उसे दूर हटा कर रखने की आज्ञा आपने दी। श्रोताओं ने तुरन्त वैसा किया। आप शास्त्र के पन्ने तक नहीं पलटते हैं। किन्तु अपने श्रीमुख से धारा प्रवाह कथन करते चले जाते हैं। बीच २ में जब आप इंग्लेण्ड के पहाड़ों, नदियों, मिठाइयों आदि की संख्या गिनते २ कह देते "कि बस नाम बहुत और समय थोड़ा है" तब कोई २ श्रोताओं का "और कहने" का आग्रह-मनुहार का आनन्द दे देता था। और हमारे पास बैठे हुए श्रीमान पंडित बंशीधर जी भी मानों एक मधुर मुसक्यान से उन का उत्तर दे देते थे।

शास्त्र सभा के समय बहुत से ऐसे लोग भी दिखाई देते थे कि जो आंखें मीच कर तल्लीन हो जाते थे। परन्तु भजन होने के पश्चात् नृत्य देखने के लिये सब से आगे आकर बैठते थे।

भजन मंडलियां कई जगह की आई हुई थीं जो प्रायः बुन्देलखण्ड ही की थीं। उनमें कोई २ तो नाम मात्र को ही खड़ी हो जाती थीं।

किन्तु एक जगह (प्रायः बानपुर) के २ लड़कों का नृत्य और गान भगवान की भक्ति के लिये गद्गद् कर देता था। पास २ में अपना अलग २ अलाप होता था। एक दूसरे के बाधक होने की परवाह किसी को नहीं थी। ऐसे अवसर पर किन्हीं के मुँह से तो हमने इसे "घमैया पावक" भी कहते सुना है। नहीं मालूम रात्रि को कितने बजे तक यह होता रहा। हम लोग प्रायः ११—११॥ बजे सो गये।

प्रातःकाल शौचादि कृत्यों से निवृत्य होने के लिये एक कुए पर गये वहां पहुँचते साथ ही एक कानिस्टबिल ने आवाज दी कि "इस कुए का पानी नहीं भरना" हम लोग ठिठककर खड़े होगये किन्तु उत्तर दिया गया "कुआ पानी भरने को ही होता है इसे रोकने का आप को कोई अधिकार नहीं है" उसने कहा "दरोगा साहब का हुक्म है कि इस कुए का पानी किसी को न भरने दिया जावे" सेठ जी सा० ने कहा "पुलिस वालों को एक कुआ अपने लिये रोक रखना न्याय संगत नहीं इस कुआ को रोक लेने से मेला के लोगों को बहुत तकलीफ होगी" कानिस्टबिल ने कहा "आप दारोगा साहब के पास चलिये" उत्तर दिया गया "उन के स्वयं बुलाने पर जावेंगे"।

दारोगा साहब ४० कदम की दूरी पर अपने केम्प के पास खड़े २ ये सब बातें सुन रहे थे। इसलिये उन्होंने बड़ी तेजी के साथ बुलाया और पहुँचते साथ ही पुलिस के रौब में कहा "आप लोग इस कुए पर पानी नहीं भर सकेंगे किसी दूसरे कुए पर जाइये" सेठ जी साहब ने कहा "कि मैं बिना कारण रोके जाने से पानी भरने को अन्य कुए पर नहीं जा सका" जब दरोगा साहब ने देखा कि ये लोग पानी भरे बिना न रहेंगे। तो उन्होंने अपनी शान रखने के लिये नाम पूछा:— इतने में पास खड़े हुए एक कानिस्टबिल ने सेठ जी सा० का परिचय दिया। तब दरोगा जी को कहना पड़ा "कि आइये पानी भरिये"।

जब गत वर्ष आपके बुलाने पर हम ललतपुर के रथोत्सव वाले मेला का प्रबन्ध करने ६० स्वयंसेवक लेकर पहुंचे थे। तब पहुंचते साथ ही आपने किसी प्रकार की राजनैतिक चर्चा न करने की बात कह दी थी। और इसका कारण मैंने प्रायः अफसरों को प्रसन्न करने का सोचा था। परन्तु वहपाने में जब हमने इस

तरह निर्भीकता की बातचीत सुनी तब हमारा पहिला विचार कुछ परिवर्तन हुआ। जिसका समर्थन स्वयं उन्होंने किया।

इस मेला का प्रबन्ध करने वालों में स्वयंसेवक कहलाने वाले एक भी नहीं थे। अतः पुलिस का ही दिन और उन्हीं की रात थी बाजार की दूकानें बे सिलसिले लगाई गई थीं। मैं लोगों के इस कथन को सर्वथा स्वीकार नहीं कर सका. कि इससे पुलिस की मुट्ठी गरम हुई होगी। हां मेला शुरू होने के पहिले यदि दरोगा जी वगैरह को सिंगई लक्ष्मीचन्द जी ने कुछ इनाम दी हो तो वे दोनों जानें।

किन्तु इतना तो मैं अवश्य कहूंगा। कि यदि स्वयंसेवकों का प्रबंध होता तो उससे बहुत कम खर्च में अच्छा प्रबन्ध होता – और बात की बात में ५–७ हजार की चोरियां न होने पातीं। सिंगई लक्ष्मीचन्द जी को पंगत के दिन दौड़ते हुए श्रीमान सेठ पन्नालाल जी टड़ैया के पास यह कहने को न आना पड़ता कि " हमने सुना है आज कंजरों के द्वारा तुम्हारी पंगत लुटवा ली जावेगी – और दरोगा साहब उसके कोई जिम्मेदार नहीं होंगे " यह सुन कर सभी लोग बड़े चिन्तित हुए किन्तु पीछे यह बात झूठ निकली – यदि सच भी होती तो ऐसे अवसर पर स्वयंसेवकों का प्रबन्ध काम दे देता।

तप कल्याणक के दिन बहुत कम लोग साथ में गये थे। औरतें जेवर चूड़ियां खरीदने में लगी थीं। पुरुष बिचारे हिंडोलों में झूलते, मित्रों के साथ खेलते-रिश्तेदारों की तलाश करते, और कोई २ तम्बू में बैठे दिखाई देते थे।

जिस दिन रथ की फेरी फिरने वाली थी उसकी पहिली रात को सिंगई लक्ष्मीचन्द जी बड़े व्याकुल हुए फिर रहे थे। उस व्याकुलता को मिटाने के लिये आपने रात्रिही को पंचायत बुलाने का बुलौवा फिराया। पंचायत उनके खास मंडप में बैठी। लोग चिन्तित थे कि आज पंचों के इकट्ठे करने का क्या कारण है। भेद खुलने पर मालूम हुआ। कि "हाथी के महावती मचले हुए हैं। यदि उनको न मनाया जावेगा तो वे रथ खींचते समय हाथियों को बिचला देंगे। " उनको बुलाया गया और चिट्ठी के अतिरिक्त १००), ७५) तथा कुछ कपड़ा देना निश्चित कर दिया गया।

प्रतिष्ठाचार्य जी ने एक दिन में दो कल्यानक कर डाले। एक दिन के नागा होने का कारण जैसा सुनने में आया वैसा हमने तलाश नहीं किया।

भगवान को आहार स० सि० लक्ष्मीचन्द जी की वृद्ध माता ने कराया था। आहार देते समय दान का महत्व बतलाया गया। चार दानोंमेंसे विद्यादान और श्री दिगम्बर जैन शिक्षा मन्दिर जबलपुर की उपयोगिता बतलाई गई। तो उनकी वृद्धमाता ने २०१) औरअन्य उपस्थित सज्जनों में से श्रीमान सेठ पन्नालाल जी टड़ैया ने ५१) तथा फुटकर मिलाकर

शिक्षामन्दिर को ४१२)

दान में मिले। जिसका उल्लेख डेपुटेशन के समय न किये जाने को भी उसी समय लोगों से कह दिया था। जिस दिन रथ की फेरी फिरने वाली थी. उस दिन प्रातःकाल से मंडप के पासवाले डेरा मोड़को स्थान रहने के कारण हटवाये जा रहे थे। बाहर से अजैन दर्शकों का

भी आना शुरू हो गया था। लोग जल्दी २ भोजन करके तैयार हो रहे थे। ऐसे समय में हमको परवार बन्धु के ग्राहक बनाने की बात सूझी - उसका कारण यह था कि इस समय लोग अपने २ डेरों में थे। अतः साथ में श्रीमान सेठ पन्नालाल जी टड़ैया, कठरया नन्दकिशोर जी, भाई नाथूराम जी बरया, चौधरी दयाचन्द जी आदि सज्जनों का डेपुटेशन डेरों २ जाकर परवार बन्धु के ग्राहक बनाने लगा। प्रत्येक गांव की चांदनी अलग २ लगी हुई थी - अतः जिस गांव की चांदनी में पहुंचे कम से कम एक न एक ग्राहक अवश्य बनाया।

लोगों के समझाने में अधिक समय व्यय होता था। किन्तु फिर भी दो पहर तक केवल ३ घंटे में हम लोगों ने

परवारबन्धु के ८० ग्राहक

बना डाले। जिसका श्रेय उक्त सज्जनों को है।

४ बजगये; लोगों की दृष्टि रथ पर है। महावती लोग हाथियों को गन्ना और मिठाई खिला रहे हैं-उनके सिर पर घड़ों पानी डालकर मस्तिष्क ठण्डा किया जा रहा है। इतनेमें उनके पास एक हथनी आई उस को देखकर एक हाथी बिचला उसके बिचलने ही प्राण लेकर भीड़ भागी किसी का दुपट्टा, किसी की टोपी, किसी की पगिया गिरी—किन्तु पास में खड़े हुए भाले वाले ने उसकी गर्दन के पास जोर से भाला मारा-भाला के लगते ही खून की धार लग गई सेरों खून गिरा। फिर उसे शान्त किया।

इस समय रथ के चारों ओर ही भीड़ नहीं थी. किन्तु कठघरे से लगाकर दूरतक अजैन लोगों का समुदाय देखने में आता था। कोई २ तो वृक्षों की शाखाओं पर चढ़े हुए रथ चलने का दृश्य देखने को उत्सुक हो रहे थे।

इस समय रथ चलाने वाले की हृदयस्थ गति का अनुमान सिवा सर्वज्ञ के और कौन जान सका है। हम लोग तो जैन धर्म की प्रभावना बढ़ाने वाले इस समय के दृश्य को देखकर फूले अंग नहीं समाते थे।

५ बजते २ श्री जी लाये गये. और वे प्रतिष्ठाचार्य सहित पहिले खण्ड में विराजमान किये गये। दूसरे खण्ड में नात रिश्तेदार तथा स्वयं सिंगई लक्ष्मीचन्द जी बैठे। पहिली फेरी बढ़ई लुहार को फिर चुकी थी पश्चात धीरे २ सात फेरी और फिरीं। प्रत्येक फेरी में हाथी के सिर पर से घड़ा घड़ नारियल फोड़े जा रहे थे। इस प्रकार बिना किसी उपद्रव के यह कार्य पूरा हुआ। सब लोग अपने २ डेरों में आकर दूसरे दिन जाने की तयारी में चिन्तित हुए। किन्तु रात ही को मालूम हुआ कि एक पंगत और होने वाली है। इसलिये कुछ लोगों ने जाने का विचार भी स्थगित कर दिया।

उसी दिन रात्रि को शास्त्र सभा के बाद पंच इकट्ठे हुए और यह विचार होने लगा कि इन को कौन सा पद दिया जावे। रीति के अनुसार

सिंगई लक्ष्मीचंद जी – सवाई सिंघई

बनाये गये। पहिले चंदेरी की पगिया पश्चात प्रत्येक पंचायत और रिश्तेदारों की बांधी गई। यहां पर हम एक बात लिखना और भूल गये थे। वह यह कि जब इनकी पिछली रात को क्षेत्र नृत्य गान में लगे हुए

थे । तब वहीं पर हम कुछ लोग सेठ पन्नालाल जी टडैया के सभापतित्व में कुछ पंचायतों के झगड़ा तय कर रहे थे । जिनकी दरख्वास्तें वहीं पर मिली थीं ।

अन्तिम दिन विमानों की विदाई का कार्य १० बजे से प्रारम्भ किया गया । पंच इकट्ठे हुए और प्रत्येक विमानों की दूरी का विचार करके २०), २५), ५०), तक नगद विदाई दी गई । इनके साथ सहारनपुर की एक गरीब बाई के चँवर छत्र भी दिये गये । प्रायः ७० विमानों को विदाई दी गई होगी । उदयपुर सं·कुल, ललतपुर, पपौरा, मुंगावली की पाठशालाओं को भी क्रमशः ८१), ८१), ५१), २५), ५१), विदाई में दिये गये थे । पीछे से

परवार बंधु को सहायतार्थ

२५) हम को भी दिये गये थे । जब मुझे यह मालूम हुआ कि कुछ लोगों ने भोजन के लिये सामान लेते समय प्रत्यक्ष दिन अधिक संख्या बतलाकर काम लिया, तो बड़ा दुःख हुआ । लोग धर्म कार्य में भी आकर सचारित्रता का परिचय नहीं देते । श्रीमान सेठ पन्नालाल जी टडैया के यह बात स्पष्ट कहने पर कुछ बुन्देलखण्डी लोगों ने तो दल बांध कर पंचायत में न्याय कराना चाहा था । ऐसे अवसर पर मुझ से न रहा गया—तब जो २ बातें मैं ने भी देखी थीं उन का उल्लेख भी इसी समय और कर दिया । जनता चुप हो गई ।

इस समय धूप कड़ी पड़ने के कारण हम व्याकुल हो रहे थे । परन्तु जब हमने मंडप के बाहिर उठ कर देखा तो मालूम हुआ कि लोग अपना २ लोटा लिये बाड़े की ओर पंगत में आ रहे हैं । दुपहर सिर पर पड़ा है— पसीना निकल रही है किन्तु उनकी धुन उसी मिठाई की ओर लग रही है ।

मैं बैठ गया और अपने इन भाइयों की दशा पर विचार करने लगा – इतने में श्रीमान सेठ पन्नालाल जी टडैया का संदेशा आया है कि तांगा तैयार है । आप चलिये मैं पीछे आता हूं ।

सायंकाल का सुहावना समय था सूर्य भगवान अस्ताचल की ओट में अपना मुंह छिपा चुके थे, केवल उनकी आभा से पश्चिम दिशा अरुण दिखाई दे रही थी – उसी समय हमारा तांगा आकर एक जगह खड़ा हो गया, पूछने पर मालूम हुआ कि आगे गाड़ियों का पता नहीं कि कितनी दूर तक हैं · और क्यों खड़ी हैं ? मैं चुपचाप बैठा रहा । और जब प्रायः १॥ घंटे में आगे की गाड़ियां चलीं तब मैं भी आगे चलकर किसी दूसरे रास्ते से होकर ललतपुर पहुंच गया । वहां रात्रि को पहुंचने पर मैं पिछली समस्त बातों पर विचार करते २ सो गया । सोकर उठा तो किसी ने मुझ से कहा कि " इस यात्रामें स० सि० लक्ष्मीचन्दजी और बाहिर के यात्रियों का खर्चा मिला कर प्रायः १ लाखका चिट्ठा तैयार होता है " । मैं ने कहा "ठीक है इसके सायर जिस दिन हमारे भाइयों की रुचि शिक्षा की ओर भी हो जावेगी उसी दिन हमारी समाज का सच्चा सौभाग्य सूर्य चमकेगा।" उन्होंने एक गहरी सांसली और मैं ने भी जबलपुर आने को स्टेशन का रास्ता लिया ।

" एक यात्री "

विविध विषय ।

१ धार्मिक सम्पत्ति ।

समाज में धार्मिक सम्पत्ति की कमी नहीं है । हजारों लाखों रुपया मंदिरों में पड़ा हुआ है लाखों रुपयों का दिया हुआ दान दाताओं के घर में ही सड़ रहा है । इस धन का अभी तक सदुपयोग बहुत कम होता है या यों कहना चाहिये कि होता ही नहीं है फिर भी इसकी पूंछ ताछ करने वाला कोई नहीं है संस्कृत में एक कहावत है ।

"अनायकाः विनश्यन्ति नश्यन्ति बहुन नायकाः"

जिसका कोई मालिक नहीं या जिसके बहुत मालिक हैं वह वस्तु नष्ट हो जाती है हमारी समाज में दोनों बातें हैं । इसलिये इसकी दुर्दशा का क्या ठिकाना है ! गुरबेल और नीम पर चढ़ी । हमारी समाज में अस्थायी धार्मिक सम्पत्ति तीन तरह की है । (१) मंदिरों के भंडारों में जमा है और भंडार किसी श्रीमान के हाथ में है (२) किसी संस्था की रकम है वह भी किसी श्रीमान के हाथ में है (३) वह रकम जो अभी तक दाता के घर में पड़ी हुई है ।

यद्यपि ये तीनों रकमें अग्राह्य हैं फिर भी मंदिरों के ऊपर लोगों की श्रद्धा अधिक होने से भंडार का धन महा अग्राह्य समझा जाता है । यदि किसी से कहा जाय कि मंदिर के धन से एक लायब्रेरी खुलजाना चाहिये तो वह तुरंत कान पर हाथ रखकर बड़े आश्चर्य से कहेगा "क्या निर्माल्यद्रव्य लेकर लाइब्रेरी खोलोगे ?" हम यहाँ विचार करेंगे कि भंडार का द्रव्य कहाँ लगाया जाता है और कहां कहां लगाया जा सका है ।

यह स्मरण रखना चाहिये कि मंदिर का द्रव्य अर्हन्त भगवान को नहीं दिया जाता है वास्तव में मंदिर को द्रव्य देने का मतलब है व्यक्तिगत स्वामित्व को हटाकर सामाजिक स्वामित्व स्थापित कर देना जो द्रव्य हमारी कहलाती थी वह सब पंचों की या समाज की कहलाने लगी ।

इसका यह मतलब नहीं है—कि अब हम उसका उपयोग न कर सकेंगे । हां हम व्यक्तिगत स्वामित्व रखकर उपयोग न कर सकेंगे । मंदिर की पुस्तक के ऊपर हमारा अधिकार नहीं है—मगर हम उसका उपयोग कर सके हैं । मंदिर में जितना धन जाता है उस सब का उपभोग या उपयोग हम ही करते हैं । भंडार के द्रव्य से दरियाँ और चटाईयाँ आती हैं बैठते हम हैं मंदिर की सारी इमारत का उपयोग भी हम ही करते हैं पुस्तकें आती हैं पढ़ते हैं मालाएँ बनती हैं जाप देते हैं धोतियाँ आती हैं पूजा के लिये पहिनकर खड़े होते हैं । धूप जलाई जाती है उसके धुँआ उड़ते समय नाक बंद नहीं करते मंदिर का चन्दन लगाते हैं यहां तक कि माली को चढ़ी चढ़ाई द्रव्य देकर सफाई कराते हैं । उस सफाई का उपयोग भी हम ही करते हैं । इससे मालूम होता है कि मंदिर में द्रव्य देने का मतलब भगवान के पास पोटली बांध कर रख देना नहीं है । किन्तु उसका ऐसे कार्यों में उपयोग करना है जिससे सब समाज का हित हो ।

नागपुर अधिवेशन के छठवें प्रस्ताव से यह सिद्ध हो चुका है कि मन्दिर की संचित द्रव्य का स्थानान्तर में उपयोग करना उचित है ।

यदि मन्दिर में द्रव्य बहुत है और लायब्रेरी या धर्मशाला नहीं है तो उसका द्रव्य इन कामों

में लगा देने से कोई हानि नहीं हो सकी ये भी धर्म के अंग हैं और समाज से सम्बन्ध रखते हैं।

इसलिये किसी आकस्मिक विपत्ति के लिये कुछ धन बचाकर शेष धन ऐसे कामों में लगा देना चाहिये। धर्मशाला वगरह बनजाने से समाज का लाभ तो होगा ही मगर एक स्थावर सम्पति भी हो जायेगी जिसे कोई पचा न सकेगा। हम यह नहीं कहते कि धर्मशाला ही बनवाई जाय इस धन के द्वारा लायब्रेरी, जैनधर्म के स्वरूप को प्रकाश में लाने वाली पुस्तकें बटवाना, उसकी जगह का जीर्णोद्धार कराना, तीर्थों के लिये किसी प्रकार की आवश्यकता हो उसे पूरी करना आदि बहुत से कार्य किये जा सक्ते हैं।

संस्थाओं की रकमों की भी बड़ी भारी दुर्दशा है वह जहां पड़ी हैं वहां ही पड़ी रहती हैं उनका ब्याज मारा जाता है और धीरे धीरे उसका अस्तित्व ही खिसक जाता है। इसका एक बड़ा भारी कारण यह है कि समाज के लोगों में अभी अपनी जिम्मेदारी का ज्ञान नहीं है और न वे समष्टि बना कर लाभ उठाना जानते हैं।

किसी प्रकार रो धो कर पाठशाला खुल जाती है। मगर विचारे अध्यापक जी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। दो तीन लड़के आ गये तो आ गये नहीं तो बैठे बैठे घर चले गये उन लोगों को इतना भी ज्ञान नहीं है। कि जब रुपया खर्च होता है तो उसका लाभ भी उठाना चाहिये कहा जाता है कि लोग स्वार्थी होते हैं लेकिन हम कहते हैं कि स्वार्थ-सिद्धि करने की भी अक्ल नहीं है इसका कारण है प्रमाद और मूर्खता, घर बैठे गप्पें करेंगे। मगर दो मिनट को पाठशाला में जाकर न देखेंगे कि क्या होता है। उनके लड़के हैं जो दिनरात खेल कूद या दुराचार में लगे रहते हैं। उन्हें इसकी पर्वाह नहीं है। बस वे तो अपना कर्तव्य समझते हैं सन्तान पैदा करना और उन के लिये कुछ धन छोड़ जाना।

लेकिन दवाइयों की पिटारी रख कर रोगी बनने की अपेक्षा बिना दवाई रखे निरोग होना अच्छा है धन से लदे हुए पशु बनने की अपेक्षा निर्धन मनुष्य बनना भला है। यदि इस सच्ची बात पर समाज के लोगों का ध्यान हो दशाब्द के भीतर ही समाज का काया पलट हो जावे और ये संस्थाएँ कंडे की आगी न बन कर बिजली की बत्ती बन जावें।

तीसरी सम्पत्ति है जो दाता के घर में पड़ी रहती है।

हम यह कह चुके हैं कि समाज को अभी अपनी जिम्मेदारी का ख्याल नहीं है इसलिये दाता या उसकी सन्तान सोचती है कि "रुपया दें तो किसे दें जिसे देंगे वही खा जायगा या बैठा २ ब्याज खायगा इसकी अपेक्षा तो यही अच्छा है कि मैं ही इसका उपयोग करूं" बस इसके इन विचारों से सम्पत्ति उसी के घर रह जाती है और धीरे २ वहीं रह जाती है समाज में यदि संगठन हो और उसे सम्पत्ति के अब सुरक्षित रहने की चिन्ता हो तो ऐसी घटना न होने पावे।

हां कुछ दाता महाशय ऐसे भी होते हैं कि मौके पर जोश में आकर बोल तो देते हैं या मृत्यु शय्या पर पड़े हुए बाप या दादा से बड़े प्रेम पूर्वक कहते हैं कि "आप को जो कुछ दान

करना हो कर दीजिये हम सब चुका देंगे" बिचारा बुड्ढा विश्वास में आकर दान करके परलोक चला जाता है इधर रुपयों का घर से निकलने का ख्याल आते ही बेटा के प्राण भी परलोक गमन की तैयारी सी करने लगते हैं बस धन भी दबा कर उन्हीं के घर में बैठ रहता है।

ये सब पाप घटनाएँ ग्राम पंचायत की कायरता से होती है इसलिये थोड़ा २ पाप का कलंक उन्हें भी मिल जाता है।

पंचायत को चाहिये कि दिया हुआ रुपया तुरन्त ले लो और यह तीनों तरह का धन कुछ भले आदमियों के पास ब्याज पर जमा करदें यदि इस तरह ब्याज पर जमा न हो सके तो सरकारी बैंक में ही डाल दें मगर किसी के घर यों ही न छोड़े। दाना लोग दिये हुए द्रव्य को जब तक घर से नहीं निकालते तब तक उसके ब्याज खाने का पाप उनके सिर पर लदता रहता है मन्दिर में चढ़ी हुई चिटक को छीकर हाथ धोने वालों को इस मोटे पाप करने में तो शर्मिन्दा होना चाहिये।

× × × × ×

२ होलिका दहन।

भारतीय जनता चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाली क्यों न हो—आरोग्य, समाज, नीति अर्थशास्त्र आदि के नियमों का पालन करने में आनाकानी कर देगी। उन्हें उपेक्षा से देखेगी—बल्कि देखेगी भी नहीं। किन्तु धर्मशास्त्र के नाम पर उसे यह कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। यदि कोई उसके विषय में कुछ जानता भी न हो तो जानने की भी कोशिश किये बिना उसे करता जावेगा।

मतलब ये कि धर्मशास्त्र के वाक्यों पर भारतीय जनता का विश्वास रहा है। और प्रत्येक धर्म के धर्माचार्यों ने इस विश्वास पर दृढ़ रहने का जगह जगह पर पूर्ण प्रयत्न भी किया है।

इस का फल यह हुआ कि जो बात जिसको अच्छी लगी उसने उसे धर्म के नाम पर समुदाय शक्ति से करवाना शुरू कर दिया। जब कि प्रकृति नये साज से अपना शृंगार करती है- पेड़ अपने पुराने पत्तों को परित्याग करके कोमल कोंपलों में परिवर्तित होते हैं तब मनुष्यों का भी होली के तेवहार में नई उमंगों को साथ लेकर दिखाई देना एक साधारण बात है। हिन्दू शास्त्र उसे हिरण्य-कश्यप और प्रह्लाद के रूप में इस तेवहार की कल्पना करते हैं- किन्तु जैन धर्म के अनुसार होली एक निकृष्ट और राक्षसी तेवहार है। उसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है:—

"जयपुर के राजा जयवर्ण के समय में मनोरथ नाम का सेठ और उसकी स्त्री लक्ष्मी-मती रहती थी। चार पुत्रों के अतिरिक्त उसके एक होलिका नाम की पुत्री भी उत्पन्न हुई। बड़ी होने पर उसकी शादी हुई। किन्तु शादी होने के ४ दिन बाद ही वह विधि के विचित्र विधान से विधवा हो गई। ऐसी अवस्था में पिता ने उसे घर बुला लिया. एक दिन वह पिता के शयनागार में उद्दीपक सामग्री को देख कर छत पर टहल रही थी- कि वहां के कामपाल राजकुमार निकला- उसके निकलने ही होलिका की दृष्टि उस पर पड़ी- वह अत्यन्त सुन्दर युवक था और ये भी पूर्ण यौवन सम्पन्न विधवा थी। इस लिये उसको देख वह काम ज्वर से पीड़ित होकर पानक की पड़ी रहने लगी।

एक दिन एक दूती ने आकर राजकुमार से मिलाने का वचन दिया- वचनानुसार दोनों का संयोग हुआ। किन्तु उस दूती के जीवित रहने से लोक लज्जा के डरने घर दबाया। इस लिये होलिका ने दूती के कोठे में आगी लगा कर आप राजकुमार सहित आनंद भोग के लिये बाहिर भाग गई। और फिर दुर्दिन पड़ने पर पिता के यहां आकर विपुल धन की स्वामिनी होकर रहने लगी। किन्तु मरने पर उसे नरक गति मिली।

यहां दूती अत्यन्त आर्तध्यान सहित अकाल मौत से व्यन्तरी हुई। अतएव उसने बदला चुकाने के अभिप्राय से शहर में हैजा, महामारी, आदि रोग पैदा किये- जिससे लोग अति कष्ट पाने लगे। तब प्रगट होकर उसने लोगों से कहा- "कि तुम लोग प्रति वर्ष फागुन सुदी १५ के दिन लकड़ी, घास, इंधन जोड़कर उसे "होली" के नाम से जलाया करो- क्योंकि वह हमारी शत्रु तथा व्यभिचारिणी है-ऐसा करने पर तुम्हें शान्त मिलेगी लोगों ने 'तथास्तु" कह दिया। तब से यह होली की प्रथा चालू हो गई"।

प्र. शा.

विनोद लीला।

(पागल का प्रलाप)

१—एक भिखमंगा किसी धनिक के दरवाजे पर खड़ा भीख मांग रहा था उसने सेठजी से कहा "आप लक्ष्मीपुत्र हैं कुछ दीजिये" अकस्मात पागल भी उधर से निकल पड़ा। उस की बात सुनकर पागल ने कहा "कैसा मूर्ख! सेठजी जब लक्ष्मी पुत्र हैं तब लक्ष्मी कैसे देदेंगे। क्या कोई अपनी माता देता है! माता की तो सेवा और रक्षा की जाती है दान में नहीं दी जाती और न भोगी जाती है।

२—आजतक तो पागल एक संस्था के नशे में मतवाला रहता था रात दिन सोते जागते उसीका प्याला पिया करता था। परन्तु अब कुछ समय बाद और अरमान निकालने वाला है। इस के लिये उसने कागज और कलम सम्हाला है और बाला बाला आपके पास पहुंचने वाला है, वहां पहुंचकर देखेगा कि क्या दाल में काला है? सम्हल जाना यह होली का हुलड़बाज निर्भीकता से हरेक की होली का हवाला खोलेगा।

३—बरनेरा के श्रीमान सिंघई हीरालाल जी महामंत्री गोलापूर्व सभा बड़े खोजी और साहित्य प्रेमी हैं। प्रत्येक जातीय सुधार के कामों में आप दिलचस्पी से काम लेते हैं। परवार बन्धु पर आप की असीम कृपा है। तभी तो आपने उसमें प्रकाशनार्थ नीचे लिखा शैर भेजा है

दीद की आखों को हसरत हो वदन अयसा हो-
कान सुनने को हों मुशताक सखुन अयसा हो।

धन्यवाद-

४—होली के अवसर पर अब की बार रंग गुलाल की मौज कौंसिल वालों से ठनना चाहिये, बेचारे गांधी बाबा जिस स्वराज्य को दो साल के कठिन परिश्रम से भी न बुला सके उसी स्वराज्य को ये बहादुर लोग तीन माह में ही गिरफ्तार कर लाये।

शाबास यारो अगर हिन्दुस्थान तुम्हारे पाले पाड़ा तो जरूर उसे स्वर्ग-यात्रा करनी पड़ेगी।

५—कढ़ी भात रोज खाते २ पागल को अब इससे नफरत हो गई है. कितनी गंदी चीजें हैं हाथ धोने के लिये मटकों पानी चाहिये इसी लिये पागल का प्रस्ताव है कि हर एक हिन्दुस्थानी सद्गृहस्थ खास कर हमारे परवार भाई अपने चौकों से इन चीजों का बायकाट कर्दें। छनने दो यार बिस्कुट और 'जाम' पश्चिमी सभ्यता का गठजोड़ा है न।

६—पागल के पास परवार समाज की औरतों का एक डेपुटेशन कुछ दिन हुए तब आया था. गांधी बाबा के खद्दर के खिलाफ बड़ी २ दलीलें पेश की गई थी. पागल ने इन महिलाओं को आश्वासन दिया था कि जब तक बजाजों का बोलबाला है तब तक तुम्हें कोई चिंता नहीं सेठानियों के कोमल शरीर को छूसकने का अहोभाग्य बेचारे देशी खद्दर को कहां?

७—परवार समाज के एक नामी शास्त्री जी ने कल पागल से भेंट करने की तकलीफ उठाई थी। बातचीत करते २ शास्त्री महोदय समाज की शिक्षा-संस्थाओं पर बहुत ही बिगड़े। आपका फरमाना था कि इतने दिन तक इन सस्थाओं के चलते रहने पर भी जैनी लोग आज तक स्वतंत्रता पूर्वक धार्मिक विषयों पर विचार करने की ढीठता करते चले जाते हैं।

८—पागल के मित्र एक प्रेमी जी (मोदी जी) परवार समाज के गृहस्थाचार्य बनने की जी तोड़ कोशिस कर रहे हैं आपने दावे के साथ समाज की फिजूल खर्ची को चुटकी के सहारे विदा कर देने का एक अपूर्व नुस्खा ईजाद किया है। आप कहते हैं कि "पैसे को दांत से पकड़ रक्खो बस सब झंझट दूर हो जायगी।"

होली का हुलड़बाज एक "पागल"।

समाचार संग्रह।

अठसका मिलाने में सुभीता।

परवार जाति में वर कन्या की साकें मिलाने को कभी २ बड़ी कठिनाइयों का साम्हना करना पड़ता है। इसके लिये कुछ शुभचिन्तक मित्रों की सम्मति से (यदि समाज ने पसंद किया तो) परवार बन्धु-कार्यालय में एक ऐसा रजिस्टर रखना निश्चित किया है। कि जिसमें आये हुए कुंडली और अठसका दर्ज कर लिये जावेंगे। और परवार सभा के नियमानुसार मिलान होने पर दोनों पक्षों को सूचना दे दी जावेगी। फिर प्रत्यक्ष देखकर सम्बन्ध स्थिर करने का अधिकार उभय पक्ष को होगा। यदि किसी की इच्छा उसे बन्धु में प्रकाशित कराने की होगी तो वह परवार बन्धु में भी प्रकाशित कर दिया जावेगा। अतएव जिनको भेजना हो पूर्ण परिचय के साथ निम्न लिखित पते पर भेजें।

पताः—

मास्टर छोटेलाल जैन,
प्रकाशक-परवार बन्धु कार्यालय,
जबलपुर.

नागपुर के औषधालय को श्रीमान सेठ बिरधीचन्द जी सिवनी ने सभापतित्व की हैसियत से १०१) दान में प्रदान किये थे।

परवार कन्या की आवश्यक्ता।

(१)

हमारे परम मित्र को एक सुशीला परवार कन्या की जरूरत है वर की सालाना आमद १०००) से ऊपर है वर की योग्यता बहुत अच्छी है, हिन्दी की निपुणता के साथ २ इंग्लिश एवं संस्कृत में आप अच्छा दखल रखते हैं, तथा कार्य दक्ष और सकुटुम्ब हैं। वर का अठसका इस प्रकार है—

प्रथममूर—बहुरिया कोछल्लगोत्र
दूसरे—आजा के मामा डावडिममूर
तीसरे—बाप के मामा पेंडममूर
चौथे—आजी के मामा उजगमूर
पाँचवें—लड़का के मामा देदामूर
छठवें—नाना के मामा रकया
सातवें—मतारी के मामा गांगरे
आठवें—नानी के मामा गाईमूर

पत्र व्यवहार इस पते से करें

श्री भगवान दास चुन्नीलाल बजाज,
मु०-पोष्ट-मालथोन,
सागर (सी. पी)

२—वर का अठसका निम्न प्रकार है

प्रथममूर—बहुरिया कोछल्लगोत्र
दूसरे—आजा के मामा सोलामूर
तीसरे—बाप के मामा देवदामूर
चौथे—आजी के मामा कुछाछरेमूर
पाँचवें—लड़का के मामा कुड़ीमूर
छठवें—नाना के मामा बैसखिदामूर
सातवें—मतारी के मामा बिगमूर
आठवें—नानी के मामा रकयामूर

नोटः—ज्यादा परिचय जानने वालों को परवार सभा के सभापति श्रीमान् सेठ पन्नालाल जी सा० टड़ैया से पत्र व्यवहार करना चाहिये।

पत्र व्यवहार का पता

व्या० भू० पं० मुन्नालाल जैन
प्र० अ० दि० जैन पाठशाला
चौक-भोपाल

१—परवार वर की आवश्यक्ता

कन्या का अठसका निम्न प्रकार है

पहले—डेरियामूर बासल्ल गोत्र
दूसरे—आजा के मामा गिलाडिम
तीसरे—बाप के मामा खोना
चौथे—आजी के मामा बहुरिया
पांचवें—लड़का के मामा धना
छटवें—नाना के मामा छेहर
सातवें—मतारी के मामा रखिया
आठवें—नानी के मामा गांगरे

जन्म सं० १९६६ कुंवार बदी ५ सोमवार का

पत्र व्यवहार का पता—

माणकचन्द मुख्तार, परवार
खुरई—(सागर)

रोगियों को लाभ

जून १९२२ से जून १९२३ तक अभिनन्दन दिगम्बर जैन औषधालय ललितपुर से जैन हिन्दू मुसलमान समस्त जाति के आबाल वृद्ध ९२९५ रोगियों ने लाभ उठाया है। इसके संरक्षक और संस्थापक स्वर्गीय श्रीमान सेठ मथुरादास जी टड़ैया हैं।

पंच मुकर्रर हुए

मन्दिर सम्बन्धी हिसाब और जमीन के झगड़ा तय करने को लागोन के पंचों की दरख्वास्त गढ़याना के रथोत्सव में परवार सभा के सभापति श्रीमान सेठ पन्नालाल जी टड़ैया के पास आई थी अतः उसको मौका तर्कीकात कर फैसला देने को मिती वैसाख बदी ९ सं० ८१ निश्चित हुई थी । पंचों के नाम निम्न प्रकार हैं ।

१ श्रीमान पन्नालाल जी टड़ैया सभापति परवार सभा ललितपुर, २ श्री खेतसिंह जी मिठया तालबेट, ३ श्री बदलीलाल जी सनभे [illegible], देलवारे ५ श्री चौ० रामचन्द्र जी खनियाढाना ६ श्री सि. दामोदरदास जी खनियाढाना, ७ श्री भूरेलाल जी बैद्य-घुरसोरा, ८ श्री मरदन-लाल जी बड़कुर-घुरसोरा, ९ श्री गोरेलाल जी, टड़ैया ललितपुर, १० श्री चौ० पल्टूराम जी ललितपुर ११ श्री बनोरेलाल जी जखौरा, १२ श्री बिहारीलाल जी जखौरा वारे ।

फैसला ।

[illegible]पुर के मोतीलाल जी सराफ का ६ माह से मन्दिर बन्द था, गढ़याना रथोत्सव में परवार पंचायत ने दोनों ओर की बातें सुनकर उनको मन्दिर जाने की इजाजत दी, तथा दोनों ओर का मनोमालिन्य दूर कराके एक दूसरे की भेंट कराई ।

परवार सभा का न्याय उचित है.

फाल्गुन सुदी १४ के जैन मित्र में किसी अनुपस्थित व्यक्ति ने नागपुर की परवार पंचा-यत के किये हुए फैसले को अनुचित ठहरा कर व्यर्थ में आक्षेप किया है । चोरई वालों का फैसला इक तर्फा नहीं किन्तु दोनों की रजामन्दी से हुआ था ।

आहार दान.

मिल मालिकों के बोनिस न देने के कारण हजारों मजदूरों ने हड़ताल करदी थी । जब हड़ताल करने वाले मजदूर लोग भूखों मरने लगे, और लोग उपद्रव करने- तो सरकार ने उन्हें बिना टिकट अपने २ घर भेजना शुरू किया । घर जाते हुए कई दिनों के भूखे प्रायः १० हजार आदमी जबलपुर स्टेशन से गुजरे थे । उनके खाने का प्रबन्ध पं० नाथूराम जी व्यास ने बड़े परिश्रम के साथ इकट्ठा कर दिया था । श्रीयुत साव लक्ष्मीचन्द जी श्री सूरजमल भूरामल जी, श्री राय सा० कपूरचन्द चौधरी श्री रामचन्द्र जुहारमल जी दी० ब० सेठ वल्लभदास जी और बाबू कस्तूरचन्द जी नकील का नाम भी सहायता देने वालों मे उल्लेख-नीय योग्य है ।

वाइसराय के आने पर हड़ताल.

यहां पर भारत के वाइसराय लार्ड रीडिंग के आने की खबर सुन कर जबलपुर की जनता ने उस दिन हड़ताल करने का निश्चय कर लिया है । म्यू० क० कमेटी तथा डि० कौं० की ओर से भी स्वागत की कोई तैयारी न होगी ।

मृत्यु समय १० हजार का दान.

जबलपुर में श्रीमान नन्हूलाल जी बड़े उद्योगी, सहनशील तथा मिलनसार व्यक्ति थे । आप इस वर्ष अचानक प्लेग के प्रकोप में पड़ कर अकाल ही काल कवलित हो गये । आप के इस प्रकार सहसा स्वर्गवास से जबलपुर की परवार समाज को बड़ी क्षति पहुंची है । भगवान से प्रार्थना है कि आपके कुटुम्बियों को इस दुख के सहन करने का साहस देवे । और सुबुद्धि देवे कि जो वे स्वर्गवास के समय १० हजार का दान दे गये हैं वह किसी शिक्षा संस्था में लगा कर उनके नाम को चिरजीवी बनावें ।

उद्देश्य और नियम।

१ समाज में विशेषतः परवार समाज में नवीन जागृति उत्पन्न कर समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करना "बन्धु" का प्रधान लक्ष्य है।

२ बन्धु में सर्वोपयोगी साहित्यिक, ऐतिहासिक और धार्मिक लेख भी अवश्य रहा करेंगे।

३ धर्म विरोधी लेख बन्धु में स्थान न पासकेंगे।

४—लेख भेजने के लिये प्रत्येक लेखक को सादर निमन्त्रण है।

५—बन्धु की वार्षिक घाटा पूर्ति मे भाग लेने वाले संरक्षक, २५) या उस से अधिक वार्षिक सहायता देने वाले सहायक और ३) वार्षिक देने वाले ग्राहक समझे जावेंगे।

६—संरक्षक और सहायकों का नाम बन्धु के प्रति अंक मे प्रकाशित होता रहेगा

७ बदले के समाचार पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें, लेख कविता आदि "सम्पादक परवार बन्धु जंवरी बाग इन्दौर" के पते पर भेजना चाहिये।

८—प्रबंध विज्ञापन आदि के लिये नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करना चाहिये:

विज्ञापन दाताओंके लिये।

विज्ञापन की छपाई कुछ समय को कम कर दी है अतः विज्ञापन दाताओं को शीघ्रता करना चाहिये।

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	८)
[illegible] ,, या १ ,,	,, ५)
[illegible] या [illegible] ,,	,, ३)
[illegible] ,, या [illegible] ,,	,, २)
कवर के चौथे पृष्ठ	,, १२)
,, ,, तीसरे ,,	,, १०)

☛ पता— मास्टर छोटेलाल जैन
दि. जैन शिक्षामन्दिर, जबलपूर, मो० पी०

ता० १८ फर्वरी सन् २४ के नागपुर षष्ठम अधिवेशन में सहर्ष स्वीकारता देने वाले

परवार-बन्धु के संरक्षक

१—श्रीमान श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी सिवनी
२—श्रीमान सिंगई पन्नालाल जी अमरावती.
३—श्रीमान बाबू कन्हैयालाल जी अमरावती.
४ श्रीमान ठाकुरदास दालचंद जी अमरावती.
५ श्रीमान नन्थूमल जी साव जबलपुर.
६ श्रीमान बाबू कस्तूरचंद जी बी ए. एल एल बी वकील जबलपुर
७—श्रीमान सिंगई कुंवरसेन जी सिवनी
८ श्रीमान चौधरी दीपचंदजी सिवनी
९—श्रीमान फतेचंद दिपचंद जी नागपूर
१०—श्रीमान सिंगई कोमलचंद जी आर्वी.
११ श्रीमान गोपाललाल जी आर्वी
१२—श्रीमान पं० रामचन्द्रजी आर्वी.
१३ श्रीमान खेमचंद जी आर्वी.
१४ श्रीमान मरउलाल झब्बूलाल जी.
१५—श्रीमान कन्हैयालाल जी डोंगरगढ़.
१६ श्रीमान सोनेलाल जी नवापारा.
१७—श्रीमान दुलीचंद जी चौरई.
१८—श्रीमान मिट्ठनलाल जी छपारा.

सहायक

१ श्रीमान रामलाल जी साव सिवनी २५)
२ स० सि० लक्ष्मीचंद जी गढ़याना २५)

Reg. No. 315

[वर्ष २] एप्रिल सन् १९२४. [अंक ४]

श्री भा. दि. जैन परवार सभा का मुख पत्र--

परवार बन्धु

सुन कढ़े कलेजे आते हैं, औ पत्थर को आते आंसू ॥ २

"तू चूल्हे में सिर फोड़, नींद में पल पलका पर लें साथ। " १

जननी, जड़ता, जाया, जवान हित याना औ' करतूतों का । ३

ये गड़े नहीं हैं? खड़े जनाजा जाहिर लिये सपूतों का ॥ ४

सम्पादक
पं० दरबारीलाल साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ ।

प्रकाशक
मास्टर छोटेलाल जैन ।

उद्देश्य और नियम।

१—समाज में विशेषतः परवार समाज में नवीन जागृति उत्पन्न कर समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करना "बन्धु" का प्रधान लक्ष्य है।

२—बन्धु में सर्वोपयोगी साहित्यिक, ऐतिहासिक और धार्मिक लेख भी अवश्य रहा करेंगे।

३—धर्म विरोधी तथा परस्पर विरोध बढ़ाने वाले लेख बन्धु में स्थान न पासकेंगे।

४—लेख भेजने के लिये प्रत्येक लेखक को सादर निमन्त्रण है।

५—बन्धु की वार्षिक घाटा पूर्ति में भाग लेने वाले संरक्षक, २५) या उस से अधिक वार्षिक सहायता देने वाले सहायक और ३) वार्षिक देने वाले ग्राहक समझे जावेंगे।

६—संरक्षक और सहायकों का नाम बन्धु के प्रति अंक में प्रकाशित होता रहेगा।

७—बदले के समाचार पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें, लेख कविता आदि "सम्पादक परवार-बन्धु जँवरी बाग इन्दौर" के पते पर भेजना चाहिये।

८—प्रबंध विज्ञापन आदि के लिये नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करना चाहिये:

☛ पता— मास्टर छोटेलाल जैन

परवार-बन्धु कार्यालय- जबलपुर, सी० पी०

ता० १८ फर्वरी सन् २४ के नागपुर षष्ठम अधिवेशन में सहर्ष स्वीकारता देने वाले

परवार-बन्धु के संरक्षक

१—श्रीमान श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी सिवनी

२—श्रीमान सिंगई पन्नालाल जी अमरावती

३—श्रीमान बाबू कन्हैयालाल जी अमरावती.

४ श्रीमान ठाकुरदास टालचंद जी अमरावती.

५ श्रीमान स० सि० नन्थूमल जी साव जबलपुर

६ श्रीमान बाबू कस्तूरचंद जी बी ए एल एल बी वकील जबलपुर

७—श्रीमान सिंगई कुंवरसेन जी सिवनी

८ श्रीमान स० सि० चौधरी दीपचंदजी सिवनी

९—श्रीमान फतेचंद डालचंद जी नागपुर

१०—श्रीमान सिंगई कोमलचंद जी कामठी

११ श्रीमान गोपाललाल जी आर्वी

१२—श्रीमान पं० रामचन्द्रजी आर्वी

१३—श्रीमान खेमचंद जी आर्वी

१४ श्रीमान सरजूलाल फब्बूलाल जी. निवरा रायपुर

१५—श्रीमान कन्हैयालाल जी डोंगरगढ़

१६ श्रीमान सोनेलाल जी नयापारा

१७—श्रीमान दुलीचंद जी चौरई छिंदवाड़ा

१८—श्रीमान मिट्ठूलाल जी छपारा

सहायक

१ श्रीमान रामलाल जी साव सिवनी २५)

२ स० सि० लक्ष्मीचन्द जी गढ़ाना २५)

सहायता

परवार-बन्धु की सहायता में श्रीमान श्रीमन्त सेठ बच्चूलाल जी ललितपुर ने पुत्रोत्सव के समय ६) प्रदान किये हैं तदर्थ धन्यवाद है। निम्न लिखित सम्मतियां भी प्राप्त हुई हैं:—

परवार-बन्धु पर सम्मतियां

१ श्रीयुत रामस्वरूप जी भारतीय "जैन मार्तण्ड" में लिखते हैं—

"मुख पृष्ट का भावपूर्ण चित्र अवलोकन कर मुंह से बरबस आह निकल पड़ी। अन्तरङ्ग देख कर हृदय में आशा का संचार हुआ. कहना व्यर्थ है कि बन्धु, क्या भाव क्या भाषा, रूप रंग सब प्रकार से जैन संसार में सर्व श्रेष्ठ पत्र है। जैन पत्रों में इस श्रेणी की कविताएँ ऐसी परमार्जित भाषा के लेख और इतनी हृदय ग्राही गल्पें और ऐसा चटपटा विनोद बहुत कम देखने को मिलता है"।

२ श्रीयुत चौधरी दौलतराम जी तहसीलदार उपमंत्री प्रा० सभा खनियाधाना—

मैं बन्धु के लेख छपाई आदि देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूं। और चाहता हूं कि उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो आशा है कि जैन समाज इस होनहार बालक पर अत्यन्त कृपा रक्खेगी।

३ श्रीयुत पं० भागचन्द जी काव्यतीर्थ भेलसा से लिखते हैं—

३ रा अंक मिला लेख और कविताएं सामयिक अत्यन्त मनोहर और शिक्षाप्रद हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बन्धु ने इतने थोड़े समय में इस भांति हृदय-ग्राहित्व प्राप्त किया है वह एक आप सदृश कार्यकुशल संचालकों को प्राप्त करके ही की है।

४ श्रीयुत पं० छोटेलाल जी सुपरिन्टेन्डेण्ट जैन बोर्डिंग अहमदाबाद से लिखते हैं—

बन्धु के २ अंक को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी। परन्तु मार्च माह के ३रे अंक ने तो मेरा चित्त आकर्षण कर लिया। कृपया उस को वी. पी. भेज दीजिये। और नियमित रूप से भेजते रहिये। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि आप के प्रकाशकत्व तथा पं० दरबारीलाल जी के सम्पादकत्व में पत्र की वृद्धि दिन प्रति होवे।

५ श्रीयुत सेठ लालचन्द जी दमोह से लिखते हैं—

परवार-बन्धु की उन्नति देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। हमें पूर्ण आशा है कि यह दिन प्रति उन्नति करता हुआ विशेष महत्वदायक होगा। बन्धु का मूल्य आगामी सप्ताह में भेज दूंगा।

६ श्रीयुत देवेन्दनाथ जी मुकुर्जी सम्पादक "उदय" सागर—

पत्र के द्वितीय वर्ष का प्रथम अंक हमारे सामने है। पत्र में लहजेदार भाषा और सामाजिक विषयों पर अच्छी विवेचना रहती है। परवार जाति की तरक्की ही परवार-बन्धु का मुख्य ध्येय है।

परवार-बन्धु के प्रेमी पाठकों से निवेदन

अब तक आप की सेवा में परवार-बन्धु के अंक भेजे जा रहे हैं, साथ ही प्रत्येक अंक में हम प्रार्थना करते गये हैं कि यदि आप को ग्राहक होना स्वीकृत न हो तो एक कार्ड भेज कर सूचित कर दीजियेगा। अन्यथा मूल्य भेजकर सहायता कीजियेगा। कई प्रेमी सज्जनों ने हमारी प्रार्थना के अनुसार मनियार्डर से मूल्य भेज कर अपनी सहृदयता तथा सज्जनता का परिचय दिया है। हमें केवल निम्न लिखित सज्जनों के सम्बन्ध में कुछ कहना है:—

नं० क्र०	ग्रा० नं०	नाम		
(१)	१२६	श्रीयुत मोहनलाल सुन्दरलाल-निवरा	पहिले अंक के बाद पत्र द्वारा अस्वीकृत की	
(२)	१५६	,, गनेशीलाल जी मोड़ी ,,		पुराने ग्राहक
(३)	१५०	,, सोमचन्द जी जैन रीवाँ	३ रे अंक के पैकेट पर पोस्टमैन ने लिखा "कजा इलाही से फौत हो गई"	
(४)	११०	,, परमलाल मूलचन्द जी राहतगढ़		
(५)	१५	,, मास्टर रूपचन्द जी चिरगांव	३ रे अंक पर पोस्टमैन ने लिखा "पता नहीं"	
(६)	५	,, मडालेलाल रमरूलाल सिदगवां		
(७)	६४	,, सिंगई मन्नूलाल जी पठा		
(८)	१२०	,, चौधरी रतनलाल जी रीवाँ	३ रे अंक के पैकेट पर "लेने से इंकार"	
(९)	१२	,, राजधर जी बैलगवां		
(१०)	२१२	,, सेठ मुन्नालाल जी सैदपुर	,, ,,	नये ग्राहक
(१)	२४०	,, अमीरचन्द भागचन्द जी छपारा	,, ,,	

हमें उन सज्जनों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना कि जिन के पैकट पर पोस्टमैन ने "कजा इलाही से फौत हो गई" लिख कर वापिस कर दिया है। पहिले दो सज्जनों ने मिल कर दो पैसे के कार्ड द्वारा १ ले अंक के बाद ही पत्र बन्द करने की सूचना देकर सज्जनता का ही काम किया? किन्तु पिछले चार सज्जनों ने तो २ अंक को ले करके भी ३ रे अंक के पैकट को वापिस किया—सो भी अपने दो पैसे का कार्ड खर्च करके नहीं, किन्तु हमारे भेजे हुए पैकट पर ही पोस्टमैन से इंकार लिखा दिया है। मुझे उन (सिंगई, चौधरी, सेठ) सज्जनों की इस कोताही पर इस लिये अफसोस होता और दया आती है कि जो सरकारी टैक्सों में, आपसी झगड़ों के लिये अदालतों में, वकीलों में, लांच घूस में, और पुलिस की धमकी में सैकड़ों रुप्या पानी की तरह बहा डालें-रियासत वाले चाहे सब द्रव्य हड़प कर लें, किन्तु एक जातीय पत्र को, खैरात में नहीं बल्कि मूल्य से अधिक का माल लेकर भी ३) एक वर्ष भर में देने के लिये आना कानी करते हैं। कोई २ तो ऐसे भी हैं जो पत्र को बन्द करने के लिये २ पैसे का कार्ड खर्च करने में भी कौमियाई से काम लेते हैं। हम उन सज्जनों से फिर प्रार्थना करते हैं कि जिनको अपनी जाति, धर्म, साहित्य का कुछ गौरव है- अभिमान है वे इस का मूल्य भेज करके धन्यवाद के पात्र होंगे।

☛ पता— मास्टर छोटेलाल जैन

प्रकाशक— परवार-बन्धु कार्यालय जबलपुर. (म० प्र०)

७ श्रीयुत पं० दीपचन्द जी वर्णी दाहोद से लिखते हैं—

...परवार-बन्धु का २ रा अंक मिला। देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ।

८ श्रीयुत बाबा भागीरथ जी वर्णी खतोली से लिखते हैं—

...परवार बन्धु के २ अंक मिले। आदि से अन्त तक पढ़ा लेख अच्छे प्रतीत होते हैं।

९ श्रीयुत पं० हीरालाल जी बालाघाट से लिखते हैं —

परवार-बंधु का सम्यकरीत्या निर्विघ्नसंचालन होता रहा तो भविष्य में आशा की जाती है कि यह पत्र जैन समाज में आदर्श कर्णधार होगा। धर्म और समाज की प्रगति को वृद्धिगत करता हुआ विजय क्षेत्र में उतर कर निश्चित केन्द्र पर अवश्य ही पहुंचेगा। कारण दोनों महाशय प्रतिभाशाली अनुभवी, सतत-शांतिमय आन्दोलक हैं। परमात्मा से यही विनय है कि हमारे बंधु को अनुकूल साधक अवस्था प्राप्त हो।

परवार-बन्धु का वार्षिक मूल्य भेजने वाले महाशयों के नाम।

३४६ श्रीमान ठाकुरदास हरचरनलाल जी चिरगांव ३)
३४७ ,, परमानन्द नन्दराम जी गुढ़ा ३)
३४८ ,, बड़कुर धन्नालाल जी मस्तौन ३)
३५३ ,, गिरधारीलाल श्यामलाल जी सिवनी ३)
३५४ ,, चुन्नीलाल जी जैन सकलपंचान बालाघाट ३)
३५६ ,, चौ० शिवलाल मोतीलाल जी गुढ़ारी ३)
३६३ ,, सि० भैरोंप्रसाद तुलसीराम जी दरभर्वा ३)
३६२ ,, मोहनलाल मोतीलाल जी ललवैया मारवाड़ ३)
३६४ ,, सेठ रामप्रसाद मोहनलाल जैन टीकमगढ़ ३)
३६७ ,, नन्हूलाल भैयालाल जी नजहा ललितपुर ३)
३७२ ,, बन्नीलाल भागचन्द जी सराफ चँदेरी ३)
३७३ ,, विद्यार्थी गुलाबचन्द जी जैन पाठ० ,, ३)
३७४ ,, कुन्दीलाल मोतीलाल गौरझामरपुर ३)
३७५ ,, सि० पंचमलाल कुंजीलाल जी मोनपा ३)
३७६ ,, मंगलप्रसाद पटवारी बरमा ३)
३७७ ,, नरहनलाल खामूराम जी पंडिया ३)
३७८ ,, रसिया प्यारेलाल किशोरीलाल जी दाली ३)
३७९ ,, मोतीलाल बड़कुर जैन पंचान चिचियान ३)
३८१ ,, बाबू हजारीचंद जी सिरनज ३)
३८२ ,, रज्जीलाल चुन्नीलाल जी बमनौरा ३)
३८३ ,, भागचंद जी सोहया चिनसोंधा ३)
३८५ ,, चौ० भूरेलाल मुन्नालाल जी मोहनगढ़ ३)
३८६ ,, सि० कन्हैयालाल परमानन्द जी मदनपुर ३)
३८७ ,, बारेलाल भाई सहीलाल मुखारिया कारी ३)
३८८ ,, बलदेवप्रसाद कुन्दनलाल जी बजाज नारायनपुर ... ३)
३८९ ,, जमन्दीलाल जं० सराफ बजोरा ३)
२०० ,, बाबू प्यारेलाल जी जैन दरबाई जबलपुर ३)
२६६ ,, सि० गुलजारीचंद जी जैन परवार जबलपुर ३)
३९६ ,, पन्नालाल नटोमिलाल जी बेहाड़ ३)
४६० ,, रतनचन्द लखमीचन्द जी जैन कोठिया पथरागर .. ३)
१२९ ,, रूपचन्द पन्नालाल जी जैन सिवनी ३)
५१८ ,, बाबू हीरालाल जी जैन एम. ए. एल. एल. बी. इलाहाबाद ३)
१८० ,, चौ० दौलतराम जी लहचौन्दार उप-मंत्री मा० स० सभिवाहाया ३)

(क्रमशः)

आगामी अंक ३≈) की वी. पी. से उनको भेजा जावेगा

जिनको बन्धु अब तक भेजा जा रहा है और उनकी अस्वीकृति हमें प्राप्त नहीं हुई है। आशा है कि वे वी. पी. वापिस न करके समाज के द्रव्य को व्यर्थ हानि से बचावेंगे।

विषय सूची।

वर्ष २ | एप्रिल, सन् १९२४ ई० | संख्या ४

नवायु-नव जीवन, नवबाल !
घूम रहा है मानस-रथ में, जैसे बाल-मराल ।
ऋतु बसन्त वृद्धावस्था में, होती थी बेहाल ॥ १ ॥ नवायु०

हिम की घड़ियाँ बनी हुई थीं, मानिन्द शुष्क कराल ।
आया मास तेरे जीवन का, पुलकित हुए रसाल ॥ २ ॥ न०

भर २ झोली भारत खेले, रोरी और गुलाल ।
प्रेम मग्न हो मानव-जीवन, छोड़ कपट जंजाल ॥ ३ ॥ नवायु०

विटप बल्लियां हरी भरी हों, फूलें ताल तमाल ।
हर्षित हो भूमण्डल सुन के, आया काल सुकाल ॥ ४ ॥ नवायु०

विजय शंख के मुक्ताफल से, गूथी है जयमाल ।
पहिनाता हूं पुलकित होकर, आशिष दे नव साल ॥ ५ ॥ न०

—प्रवासी ।

गृहिणी चर्या ।

(लेखक—श्रीयुत पं० गोविन्दराव जी काव्यतीर्थ)

प्राचीन भारत के विषय में ज्यों २ खोज की जाती है त्यों २ वह वर्तमान संसार की दृष्टि में अधिक उपादेय सिद्ध होता जा रहा है। उसके जिस विषय को हम लेते हैं, वही हमें ऐसा मनोमोहक लगता है कि उसको छोड़कर दूसरी तरफ चित्त जाना ही नहीं चाहता। अध्यात्म विषय में आज भी उसकी शानी का कौन है ? जीवनके जो सुन्दर नियम उसके पास हैं वैसे क्या हमें दूसरी जगह देखने को मिलते हैं। कुछ पल्लवग्राहि-पाण्डित्यवाले व्यक्ति भारत पर कभी २ यह आक्षेप किया करते थे, कि भारत में ग्रंथ रचना धर्म विषय पर ही हुआ करती थी। समाज या राजनीति विषयक साहित्य यहाँ रहा ही नहीं है। उनके इस मत प्रत्याख्यान के लिए "कौटिलीय अर्थशास्त्र" और "नीति-वाक्यामृत" ने उसके राजनीतिक भाग पर

ऐसा प्रकाश डाला कि वर्तमान जगत उन्हें देख दाँतों तले उँगली दबाने लगा है—उन्हें देख कर वह सहमसा गया है।

यही बात है कि आज संसार के नामी २ विद्वान् मन्थर गति से उनका अध्ययन कर उनके भीतरी मर्मों को निकालने के लिये उतावले हो रहे हैं। समाज विषयक साहित्य भी यहाँ रहा है, और वह भी ऐसा वैसा नहीं किन्तु अपने विषय का पूरा शुक्रतारा, परन्तु कुटिल काल की अनर्थ गति के कारण उसका अधिकांश भाग अब विलुप्त हो गया है। उस की स्मृति भर दिलाने के लिए कुछ ग्रंथ बच गये हैं, उन में एक "वात्स्यायन कृत काम सूत्र" भी है, इसको बने आज से लगभग २२००-२३०० वर्ष हो गये हैं यह अपने विषय का अद्वितीय ग्रंथ है। अतीत भारत के नामी २ विद्वानों ने इसका उल्लेख किया है। पंडितप्रवर आशाधर जी ने भी अपने सागारधर्मामृत में इसका एक अंश प्रमाण में उद्धृत किया है। यह संस्कृत के उंचे साहित्य का ग्रन्थ है। खुशी की बात है ऐसे कठिन ग्रन्थ की टीका पं. यशोधर जी ने बड़े पाण्डित्यके साथ लिखी है, भाव के समझाने में आपने पूरी कोशिश की है; जहाँ कोई कठिन स्थल आया वहाँ आपने खूब रेल पेल मचायी है। ऐसे टीकाकार ग्रन्थकार और पाठकों के भाग्य से सदा कदाचित् ही मिलते हैं।

आप जैन थे। यह जैन साहित्य सेवियों के लिये एक प्रमोद जनक बात है। इस ग्रन्थ में गृहिणी की कैसी सुन्दर दिनचर्या दी है, यही बतलाने के लिए हम इस लेख को लिख रहे हैं। आशा है हमारे बहुत से भाई बहिन आज भी उससे लाभ उठावेंगे। पहिले समय में प्रत्येक मनुष्य को ६४ कलाएँ सीखनी पड़ती थीं उनके सीखे बिना वह नागरिक कोटि में शामिल नहीं हो सकता था, समाजका वह आदर भाजन नहीं बन सकता था। प्रत्येक कला के जुदे २ ग्रन्थ थे, जिन्हें विद्यार्थी गुरू आम्नाय से पढ़ कर सामाजिक कार्यों में दक्ष बनता था। इसी प्रकार कन्याओं को भी पूरी शिक्षा दी जाती थी, उन्हें ये ही कलाएँ सिखायीं जातीं थीं, जिनके कारण उनका आनन्द और धर्म मय जीवन बनता था। पाठक नीचे के अंशों को पढ़कर अवश्य धारणा कर लेंगे कि ऐसी स्त्रियाँ अपने पति को क्यों न प्यारी न हों जिनका ऐसा जीवन है। मेरी समझ में ऐसी ललनाएँ देवाङ्गनाएँ ही हैं जिनके कारण सारा कुटुम्ब सुख मे सरावोर रहे अस्तु।

भार्या–

पद पाने की वह कन्या अधिकारिणी है कि जिसका अग्नि की साक्षी से निश्चित पति साथ विवाह हुआ हो। उस भार्या के दो भेद हैं। एकचारिणी अर्थात् अपने पति की अकेली स्त्री, और दूसरी सपत्निका अर्थात् सौत सहित, इन दोनों में एकचारिणी अत्यन्त श्रेष्ठ है, क्योंकि वह ऐसी गुणवती होती है कि उसका पति उसके गुणों में अनुरक्त होकर इतर कामिनी की कामना भी नहीं करता। उसके प्रेम में वह इतना मस्त रहता कि उसकी दृष्टि में अन्य स्त्रियाँ तुच्छ ही जँचती हैं उसकी परख में उसकी परिणीता भार्या ही सब से अधिक खरी रहती है। और सचमुच में वह अंगना किस काम की जिसके रहते हुए उसका पति दूसरी औरत की लालसा रक्खे। अतः एकचारिणी सपत्निका की अपेक्षा अधिक गुणशीला सिद्ध हुई इसलिए उसका ही पहिले परिचय दिया जाता है।

कुलीना भार्या अपने अपने पति को ईश्वर वत् आराध्य समझे, उससे गुप्त से गुप्त बात कहदे, कोई भी बात छिपा के न रक्खे, क्योंकि गुप्त बात के कहने या सुनने से आपस में मित्रता बढ़ती है। तथा इष्ट अनिष्ट बातों का पता भी पतिको पहलेसे लग जाता है जिससे उसको लाभ का या बचाव का पूरा मौका मिलता है। इसके विपरीत हृदय की बात को छिपाने से प्रेम का बन्धन ढीला पड़ता है। स्त्री पुरुष की छाया कहलाती है बल्कि छाया से भी बढ़कर, क्योंकि छाया तो अंधेरेमें पुरुषका साथ भी छोड़ देती है, परन्तु पतिव्रता परलोक में भी पति के साथ जाने के लिए धधकती हुई आग में कूदती है। इसलिए उसे हर हालत में पति की अनुकूलता में ही रहना चाहिये। स्त्री और पति को विभिन्न राय रहनेसे प्रणय विच्छेद के साथ गृह दुःख निकेतन बन जाता है। गृहस्थों में पुरुष तो राजा और नारी मंत्री है अब आपही सोचें कि उस राज्य की कहाँ तक उन्नति हो सकती है जहाँ के राजा और मंत्री में ही एकवाक्यता नहीं है। इसके विरुद्ध राजा और अमात्य की परस्पर की अनुकूलता में राज्य की लक्ष्मी उत्तरोत्तर बढ़ती है। और किसी की न हो तो न सही पर राजा और मंत्री की तो एक सलाह होनी ही चाहिए इसी प्रकार स्त्री और पुरुष को तो सर्वत्र एक घाट उतरना चाहिए, यदि पुरुष शुद्ध मार्ग पर न हो-अपने से विभिन्न मति हो तो उसको कार्य वेला के पहिले एकान्त में स्त्री अपनी राय में मिलाले। पुरुष जब किसी की नहीं सुनता, तब स्त्री ही उसको वश में करती है, कान्तासम्मत उपदेश मानने के लिए पुरुष फौरन तैयार हो जाता है। स्मर शासन का अपूर्व प्रभाव है। स्त्री पति की किसी गुप्त बात को कण्ठगत प्राण होने पर भी किसी से न कहे। जिस प्रकार मंत्री राजा की अनुमति से राज्य का भार अपने ऊपर ले लेता है। सब कामों को व्यवस्थित करने का प्रबन्ध करता है, वैसे ही नारी अपने पति की अनुज्ञा से गृहभार अपने ऊपर ले लेवे, घर के भीतरी कामों का प्रबन्ध अपने अधीन करले।

स्त्री का कर्तव्य है कि वह अपने मकान को खूब शुद्ध रक्खे, कहीं पर भी मकरजाला या कूड़ा कचरा न हो, लिपा पुता रहना चाहिए। गरज यह है कि सारी हवेली देखने में बहुत सुहावनी लगती हो ऐसा प्रबन्ध रखना चाहिए अपने मकानके देव स्थान में सायं प्रातः आरती और पूजा होनी चाहिए, तीनों संध्याओं में शक्ति के अनुसार उचित पात्र को दान देना चाहिए। सास ससुर आदि गुरुजन, अपने पति के मित्र, अपने घर के नौकर चाकर, ननदों और ननदेउओं का यथा योग्य सत्कार होना चाहिए। हरे और ताजे शाकों की सुलभता के लिए गृहिणी अपने घर के पवित्र और एकान्त स्थान में कुछ ऐसी क्यारियाँ अवश्य बनाले जिनमें शाक भाजी के सिवाय जीरा, सरसों, अजमोद, सौंफ, तथा तमालतक भी लगे हों। कुटुम्बिनी अपने घरकी बगियामें नीचे लिखे पौधों को भी अवश्य रोपे क्योंकि गृह में इनकी पग पग पर आवश्यकता पड़ती है। वे पौधे ये हैं। बहेड़ा, आम, चमेली, पीलाकटैया बड़मोगरा तगर, नन्द्यावर्त, जपा आदि और भी ऐसे गुल्मे जो बहुत फूल वाले हों। इनके पौधे रहनेसे एक तो मकान में सदैव खुशबू बनी रहती है। क्यों कि उपरि वर्णित पौधों में ऐसा एक भी गुल्म नहीं है जिसका फूल अपनी खुशबू के लिये प्रसिद्ध न हो। दूसरे औषधियों में भी इसका प्रयोग होता है। नेत्रवाला, खस, तथा पातालिका को भी अपनी बगिया में स्थान दे देवे क्योंकि ये भी बड़े मुफीद तथा उपकारी पौधे

है। बगिया में बैठने लायक मनोज्ञ चबूतरे भी बनाने चाहिए बगिया के बीच में कुआ, बावली चौपरा आदि में से कोई एक जल साधन भी अवश्य खोद रक्खे।

पतिप्राणा भार्या नीचे लिखी स्त्रियों से कभी सम्पर्क न रक्खे क्योंकि इनके संसर्ग से दुःशील होने का अधिक अंदेशा रहता है इनकी संगति का कुछ न कुछ बुरा असर अवश्य पड़ता हैं। भिक्षुकी (भीख मांगने वाली) श्रमणा (बौद्ध सन्यासिन) क्षपणा (वैरागिन) कुलटा (बदचाल) कुहका (इन्द्रजालिन) ईक्षणिका (हाथ देखकर जीवन का हाल बताने वाली)

घरवाली भोजन बनाने के पहिले इन बातों को अवश्य सोच ले कि मेरे पति को कौन सी चीज रुचती है और कौनसी नहीं। कौन पथ्य है और कौन अपथ्य। जो चीज उसे रुचे और पथ्य हो उसे ही बनावे। जिस समय पति की आवाज बाहिर से सुने और पति घर के भीतर आ जावे तब प्रेम से पूछे कि क्या कार्य है? गरज यह है कि सदैव उसकी आज्ञा पालन के लिए महल के भीतर तयार रहे परन्तु महल के बाहिर कभी न दौड़ी जावे क्योंकि कुलीना का यह काम नहीं। दासी को हटाकर पति के पग स्वयं धोवे। नायक के सामने कभी बिना गहने तथा बिना सुन्दर वस्त्रों के पहरे, न जावे क्योंकि संभव है कि ऐसा करने से उसको उससे विरक्ति पैदा हो जावे। यदि पति असद्व्यय या अतिव्यय करता हो तो उसे एकान्त में कोमल कान्त पदावली में समझा दे। सब के सामने उसकी कभी भर्त्सना न करे क्योंकि वह उस समय लज्जित होकर उससे भागे के लिए रुष्ट हो जावेगा। अपने पति की आज्ञा पाकर ही सहेलियों के साथ एकचारिणी भार्या जनवासे में, किसी कन्या की शादी वाले घर में, गोठ में, पूजा पाठ में और देव मंदिर में जावे। पति के खेलों में भी अवश्य शामिल हो अथवा पति से अनुमोदित खेलों को ही खेले। पति के सोने के बाद सोवे और उसके जगने के पहिले जाग उठे यदि पति सोता हो तो उसे न जगावे। रसोई घर एकान्त तथा पवित्र स्थान में हो तथा साथ ही ऐसा भी हो जो देखने में बहुत मनोज्ञ मालूम पड़ता हो, अन्धकारसे आच्छन्न न हो। गरज यह है कि खाने वाले को किसी तरह की बाधा न होनी चाहिए। यदि पति से कोई अपराध बन गया हो और उससे अपना मन कलुषित भी हो तो चतुर नारी उसको ताने में ऐसा समझा दे जिससे उसका मन उचाट भी न खावे और अपना काम सिद्ध हो जावे। मुँह जोरी कभी न करे। यदि पति की मित्र मंडली में उसको उलाहना देने से काम बनता हो तो चतुराई से वहां पर उपालम्भ दे सकती है, तथा ताना भी मार सकती है परन्तु तंत्रादिक का प्रयोग भूल कर भी न करे क्यों कि ज्ञात हो जाने पर पति की ऐसी उलटी भी धारणा हो सकती है कि आज इसने वशीकरण के लिए यह दवाई खिलाई है कल मारण के लिये विष भी खिला सकती है।

ऐसी हालत में पति को अपनी पत्नी के ऊपर कभी विश्वास न रहेगा, कुलीना नायिका भूल कर भी अपने पति के साथ न तो विरक्ति जनक भाषण करे और न बुरी तरह से उसकी तरफ चितावे, लापरवाही से बात का उत्तर भी न दे। दरवाजे पर खड़ा होना या दरवाजे की तरफ बार २ चिताना, घर की बगिया में किसी के साथ गुप्त मंत्र तंत्र करना अथवा घर के ही किसी एकान्त स्थान में चिरकाल तक ठहरना

पतिव्रता का काम नहीं। इसलिए एकचारिणी इन कामों को दूरसे जलाञ्जलि दे देवे।

पसीना तथा दन्तमल के सिवाय और भी शारीरिक दुर्गन्धियों को समय २ पर देखती रहे, पता लगने पर तुरन्त उनको दूर करदे क्यों कि ऐसा न करे तो उसका रसिक नागर पति उससे विरक्त होजावे। स्त्री सौन्दर्य की पुतली है, इसलिए वह पति के पास जाते समय खूब सजधज के जाय उस समय उसके ऊपर पूरे गहने होने चाहिए अनेक प्रकार के कुसुम और अनेक प्रकार के अनुलेपनों से लिप्त हो। वस्त्र अत्यन्त उज्ज्वल और रंग बिरंगे होने चाहिए। पर रति क्रीड़ा के समय इससे भिन्न ही उसका वेष होना चाहिए, उस समय उसके वस्त्र परिमित होने के साथ महीन और चिकने हों। गहने भी इने गिने ही हों हाँ शरीर अलबत्ता सुगन्धि से सराबोर हो लेकिन अनु लेपन अधिक न हो, फूलों से ऐसी सजी हो कि देखने में वन देवी सी भान होती हो। पति जिस व्रत या उपवास को करे वही व्रत या उपवास एक चारणीं भी करे यदि पति हटके तो उससे कहदे कि इस विषय में आप को हट नहीं करना चाहिए. वह तो हमारा धर्म है। मिट्टी के वर्तन, काष्ट के सन्दूक खाट पिड़ी और लोह पात्र इन को मौके पर कम दामों में जरूरत के अनुसार खरीद रक्खें, क्यों कि बेमौके लेने से वेशी दाम लगते हैं। नमक. तेल मून इतर तूमरी, औषधियाँ, और भी ऐसी चीजें जो उस जगह मुश्किल से मिलती हैं घर के ऐसे गुप्त स्थान में सावधानी से रक्खें जहां पर वे खराब तथा टूट फूट न जावें।

पालक, दमनक, पलुआ, कदुआ, लौकी सूरण करेंच शुकनास (सोनापाती) अग्निमंथ, (अरणी) प्रभृति, शाकों और औषधियों के बीज ठीक समय पर तोड़ रखे, और ठीक समय पर इनको बो देवें।

अपने धन का तथा पति की बातचीत का किसी को पता न दे। अपनी बराबरी की स्त्रियों को अपनी चतुराई से, अपनी सफाई से, अपनी बनाई रसोई से, और अपनेपति के सत्कारों से मात देने की कोशिस करती रहे। वर्ष भर की आमदनी का हिसाब लिखकर उसके अनुरूप व्यय करे। पति और कुटुम्ब के भोजन करने से जो जूठन बचे उससे सार भाग जैसे तेल, गुड़ और गोरस निकाल लेवे। उसका उपयोग मित्रों को और ढोरों को देकर करे। घर के कपास का सूत कातना और सूत का बुनना जारी रहना चाहिए, छींका, रस्सी, और जाल बनाना चाहिए, इनके उत्पादक वकलों को भी समय समय पर बटोर लेना चाहिए, घर में जो स्त्रियां कूटती पीसती हैं उनका समय समय पर निरीक्षण करना चाहिए।

मांड़, भुसा, कण, टुटी और अँगार इनको उपयोग में लावे, इनको निरर्थक न जाने दे। मांड़ ढोरों को पिलादे, भुसा को छाव ने के लिए रख छोड़े। कणों का चिरइ चिरवों को डालदे। टुटी गाय भैंसोंको खिलादे। अंगारों से टूटे फूटे बासनों में टार जोड़े। नौकर चाकरों को किस काम के बदले कितना वेतन दिया जाता है किस नौकर को किस समय किस चीज की आवश्यकता है इन बातों का भार्या को अवश्य ज्ञान होना चाहिए। यदि घर में खेती होती हो तो जरूरत के अनुसार उसकी जुताई बुवाई तथा रखाई को भी देखे। घर के

दोनों की निगरानी रखना यह भी भार्या का कर्तव्य है। घर की कौन कैसी सवारी है वह कैसे दुरुस्त रह सकती है इसका पर्यवेक्षण होना चाहिए, यदि पति ने शौक से घर में कोई पशु पाल रक्खा है तो उसके ऊपर भी उसकी निगाह रहनी चाहिये, दिन भर में जितनी आमदनी हुई हो और जितना व्यय हुआ हो उस सब को जोड़ कर एक जगह लिखे, और संध्या को पति के सामने पेश करके उसके हस्ताक्षर करवा ले।

पति के पुराने और उतारन के वस्त्रों को सी गूँथ ले और धोबी से उसको धुलवाले, बाद को अच्छे २ रंगों में रँग वाले, और उत्सव खुशी के मोकों पर अपने नौकरों को बांट दे इससे वे बड़े खुश होंगे। घर में जो बोतलें आवें उनको काम के बाद जुदी जगह में रख देवे, बहुत सी जब हो जावें तो बजार में उन्हें बिकवा दे। यदि अपने पति के मित्र अपने घर पर आवें तो एकचारिणी भार्या उनका माला, इतर, तथा ताम्बूल से अवश्य सत्कार करे। परन्तु यह काम उतना ही होना चाहिये जितना न्यायसंगत हो।

सास श्वसर की प्रति दिन परिचर्या होनी चाहिए, उन्हीं की अधीनता में उसको रहना चाहिए। उनको मुँह जोरी से उत्तर न देना चाहिए। कुलीना भार्या धीरे २ बोले और धीमी तौरसेही हँसे, सास श्वसुर के प्रिय अप्रियों को अपना प्रिय अप्रिय समझे भोगों में उत्सुकता न बतलावे, परिजनों के साथ दाक्षिण्यमय व्यवहार करे, बिना पति की आज्ञा के किसी को कुछ न दे। नौकर चाकरों को अपने २ काम में लगाती रहे, वे ठलुआ न बैठ न पावें। खुशी और त्योहारों के दिनों में नौकर चाकरों का भी सन्मान करती रहे।

यदि पति परदेश में हो तो एकचारिणी उतने ही गहने पहने जितनों से उसके सुहाग का पता लगता रहे। अहर्निश ईश्वर आराधना और उपवास में समय बितावे तथा पति का हर समय सन्देशा पाने की कोशिस करे, और घर का काम काज देखती रहे। सास के पास में सोवे और उसके अभिमत कार्यों को ही करे। नायक को जो पदार्थ अभिमत थे उनके बनाने में तथा बने हुओं को दुरुस्त करने में यत्न शील रहे। नित्य नैमित्तिक कार्यों में कार्य के अनुसार व्यय करे। पति जिन कामों को अधूरा छोड़ गया था उनको पूरा करने की कोशिस करे खुशी और रंज के मौकों को छोड़ कर बाकी के समय में मायके में न जावे, और खुशी तथा रंज के मौकों में भी नायक के परिजनों के अधिष्ठातृत्व में ही जावे, कुछ दिन ठहर कर वहां से लौट आवे वहां चिरकाल तक न ठहरे, प्रोषितभर्तृका के वेष को खुशी उत्सव के समय में भी न त्यागे। गुरु जनो से अनुमोदित उपवासों को ही करे। सदाचारी और आज्ञा पालक परिचारकों के द्वारा खरीद बेंच करके धन वृद्धि करती रहे, और यथाशक्ति खर्चों की मदों को कम करदे, जब पति परदेश से लौट आवे तो उसको प्रथम दर्शन उसी वेश में दे जिसमें कि रहती थी बाद को पति के शुभागमन के उपलक्ष्य में परमात्मा की पूजा करे और जो दान पुण्य बोला हो उसे जहाँ का तहाँ पहुँचावे।

जो नायिका सदाचार और पतिहितनिरता होगी वह पति की अत्यन्त प्यारी होकर स्वर्गीय सुख को भोगेगी। और आज कल के भारत वासी इस लेख को पढ़कर अपने समय को रोवेंगे।

यह स्वर्गीया धर्मपत्नी की स्मृति में लिखित।

आरंग *

(लेखक—श्रीयुत [illegible] जैन)

यह नग्र रायपुर तहसील में २१-१२° नार्थ और ८१-५६° ईस्ट पर, रायपूर से २२ मील और महानदी से ४ मील की दूरी पर सम्बलपूर सड़क पर बसा हुआ है। कहा जाता है कि इसका नाम आरासा (a-ra-saw) से पड़ा है। आरासा कृष्ण की कथा में वर्णित एक व्यक्ति हैं जो हैहयवंश के थे उनसे कृष्ण ने अपने को आरे से (saw) चीरकर दो हिस्से कर देने को कहा था। यद्यपि ऐसा समझा जाता है कि आरे से चीरे जाने की क्रिया किसी अन्य स्थान पर की गई थी किंतु इसी समय से सारे छत्तीसगढ़ में आरे का उपयोग सदैव के लिये बंद कर दिया गया था। इस नग्र की जन संख्या २० साला बंदोबस्त से बहुत बढ़गई है सन १८७२ में ३८६८, सन् १८८१ में ४६०८ सन् १८९१ में ५२५०, और सन् १९०१ में ६४९९ जन संख्या हो गई। अंत की जन संख्या में ६२ ४ हिंदू है। आरंग के वे चिन्ह अब भी मौजूद हैं जिनसे पता चलता है कि यह नग्र पहले कोई बहुत बड़ा शहर रहा होगा। यहां यत्र तत्र बहुत से सुंदर ताल हैं और जैन और ब्राह्मण दोनों के खंडहर मंदिर और हस्तकला के परिचायक अनेक प्रकार के खुदावदार पत्थरों के नमूने मिलते हैं। अब सिर्फ एक जैनियों का मंदिर विद्यमान है। यह विशाल मंदिर कभी का धराशायी होगया होता, यदि इसमें बड़े २ लोहे की जंजीरों के बंद न दिये रहते जो कि पैमायश वालों ने पैमायसी काम के वक्त ठहरने के निमित्त से लगाये थे। यह भास-बंध देवल के नाम से प्रसिद्ध है जिससे ही प्रगट होता है कि यहां उच्च जैन नग्न प्रतिमाओं की तीन प्रतियें (figures) भीतरी में अंकित हैं। मंदिरकी बाहरी ओर शिल्पकारी में प्राचीन कारीगरों ने बेशक़ीमती बारीक खुदाव का बहुत सुंदर काम किया है और बेशुमार खुदाव-दार सुन्दर मूर्तियों से अलंकृत कर दिया है जिनमें बहुतसी तो बहुत ही नाशायस्ता (बेलिहाज) पुतलियां तक हैं। इससे आधी मील हटकर ही बाघेश्वर का मंदिर है जो कि जगन्नाथ जी की यात्रा करने वालों के मार्ग में पड़ता है। इससे हजारों यात्री इसे देखने को आते हैं। इस नग्र के पश्चिम दिशा में एक तालाब के किनारे छोटा मंदिर है जो महामाया या बड़ी माई के नाम से प्रसिद्ध है यहां बहुत से खुदाव के टुकड़े मिलते हैं उनमें से एक पर १८ सतरें खुदी हुई हैं और भीतर बाजू तीन जैन नग्न मूर्तियों की प्रतियें (figures) हाथी, शंख और गेंडे के चिन्ह से चिन्हित हैं जो क्रमशः अजितनाथ, नेमिनाथ और श्रीशांतिनाथ तीर्थंकरों के परिचायक हैं।

दूसरा तालाब नारायणताल है जो कि महामाया ताल के पश्चिम में है इन दोनों तालों के बीच में एक बहुत बड़ा बांध है इस तालाब के किनारे विष्णु की गार्हस्थ्य अवस्थाओं की अनेक मूर्तियां चौखूटे भारी पत्थर के चबूतरों पर बनी हैं जो कि किसी प्राचीन मंदिर के खंडहर प्रतीत होते हैं नींव और आधार स्तम्भ

* रायपुर तहसील गैज़ेटियर से अनुवादित ।

अब भी १८८१ जनरल कनिंघाम ईंटों की गहराई तक खोदने से मिलते हैं इकट्ठे पड़े हुए बड़े २ चौड़े पत्थरों के ढेर में सर्कारी पुलिस स्टेशन के पास एक पत्थर की शिला मिली है जिस पर बहुत छोटे और प्राचीन लिपी में कुछ लिखा हुआ मिलता है जिस पर गुप्तासन खुदा है और वह करीब १४०० वर्ष का प्राचीन है। अभी हाल में ता० ३१ मई सन १६०८ में श्रीयुत मि० हीरालाल (अब रिटायर डिपुटी कमिश्नर) को एक शिला लेख पीतल के प्लेट पर मिला है जो शायद मध्यप्रदेश में पाये गये पीतल के शिला लेखों में सबसे ज्यादा प्राचीन है इसी तरह का एक शिला लेख कुछ वर्ष हुए और मिला था वह एक सन्दूक पर ईस्वी सन की ८ वीं ९ वीं सदी में प्रचलित मध्यप्रदेश की अनेक लिपि में लिखा था। छै या सात वर्ष पहले एक कीमती धातु की जैन मूर्ति मिली थी जो २) या ३) रु० को लीगई थी लेकिन जब उसकी जांच की गई तो वह ५०००) रु० के न्योछावर पर बिकी इन तमाम खडहरों से यही प्रगट होता है कि आरंग हिन्दू और जैन दोनों धर्मों का मुख्य अड्डा और बड़ा भारी शहर रहा है। जिसमें पिछले धर्म (जैन धर्म) की तो यहां ज्यादा मुख्यता रही है। लेकिन मिले हुए शिला लेख सब हिन्दू राजाओं के मालूम होने थे आरंग और लारिक चन्दन का निवास स्थान कहा जाता है और दोनों की प्रेम-कथा छत्तीसगढ़ की प्रेम कथाओं में सबसे प्रसिद्ध है। नग्र के समीप ही आम्र वृक्षों की घनी झाड़ियां हैं इससे यहां फलों की बहुतायत रहती है आरंग विशेष कर अधिक संख्या बसने वाले बड़े २ साहूकारों (ऋण दाताओं) के लिये अधिक प्रसिद्ध है जिनमें अधिकतर अग्रवाल वणिक (वनिये) हैं। जो अब यहीं बस गये हैं। यहां बहुत से जमींदार भी रहते हैं। आरंग अपने बहुत बड़े अनाज की मंडी के लिये प्रसिद्ध है और हर शनिवार को एक बहुत बड़ा बाजार लगता है। यह पहले लाख के व्यापार का केन्द्र था अब जंगलों के कटजाने से प्रसिद्धता नहीं रही। साग की बड़ी २ बाड़ियां हैं आबपाशी की वजह से यहां सांटे भी अच्छे होते हैं। यहां आनरेरीमजिस्ट्रेटी की एक शाखा है। सार्वजनिक संस्थाओं में एक डाकघर, अस्पताल और सराय हैं। यहां एक मिडिल स्कूल है वहां के महाजनों के खर्च से चलता है और एक कन्याशाला भी है। मालगुजार श्रीकृष्ण एक अच्छा वणिक (बनिया) हैं जो यहीं का वासिंदा होगया है। नग्र में मुकद्दम के कायदों की तामीली होती है। और हर साल करीब ४०००) रु० सफाई (Sonitation) के लिये निकाले जाते हैं जो कि मकान की कीमतों पर ।।।) से लगाकर ३) के अन्दर तक टेक्सों द्वारा वसूल किया जाता है। १००) से नीचे की हैसियत वाले टेक्स देने से मुस्तसना रहते हैं। किसान लोग अपने किराये पर)॥ रुपयाके हिसाब से कर देते हैं।

स्त्रियों के प्रति—

पाप पंक पागी रहें शील से विरागी, हिये बसे क्रोध आगी-नहीं नेह सरसाती हैं।
पति पै न प्रेम राखें-बैन कटु नित्य भाखें, फूट बैर बीज बोय मोद मन पाती हैं॥
हिम्मत में पश्त रहें-फैशन में मस्त, काम करने में सुस्त-इमि जीवन बिताती हैं।
प्रेत-प्रतिमायें ऐसी 'फक्कड़' विराजें जहां, बैसे भौन बीच कभी लक्ष्मी न आती हैं॥

——फक्कड़,

मेरी द्रव्य–पूजा ।

(लेखक—श्रीयुत पं० जुगलकिशोरजी मुख़्तार ।)

[लेखक महोदयने, प्रकृत विषयपर संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओंमें कविताएँ की हैं। हिन्दीकी कविता आपकी संस्कृत कविता का शब्दशः अनुवाद नहीं, किन्तु उसके भावोंका प्रायः विशद और अस्पष्ट रूप है। हम आपकी दोनों कविताओं को यहांपर इस ढंगसे प्रकाशित करते हैं जिससे पाठकों को, दोनों का एक साथ रसास्वादन करते हुए, यह मालूम करने में भी आसानी रहे कि संस्कृत-पद्यों के भावको हिन्दी में किस प्रकार से विशद बतलाया गया है। सं०द० ।]

[१]

नीरं कच्छपमीनभेककलितं तज्जन्म मृत्याकुलं, वत्सोच्छिष्टमयं पयश्च कुसुमं घ्रातं सदाषट्पदैः ।
मिष्टान्नं च फलं च नात्रघटितं यन्मक्षिकाऽस्पर्शितं, तत्किं देव समर्पयामि इति मच्चित्तं तु दोलायते ॥

[१]

कृमि-कुल-कलित नीर है जिसमें मच्छ-कच्छ-मेंडक फिरते,
हैं मरते औ' वहीं जनमते, प्रभो ! मलादिक भी करते ।
दूध निकालें लोग छुड़ाकर बच्चे को पीते पीते;
है उच्छिष्ट-अनीतिलब्ध यों, योग्य तुम्हारे नहिं दीखे ॥

[२]

दही-घृतादिक भी वैसे हैं कारण उनका दूध यथा ;
फूलों को भ्रमरादिक सूंघें वे भी हैं उच्छिष्ट तथा ।
दीपक तो पतंग-कालानल* जलते जिनपर कीट सदा ;
त्रिभुवनसूर्य ! आपको अथवा दीप-दिखाना नहीं भला ॥

[३]

फल-मिष्टान्न अनेक यहां, पर उनमें ऐसा एक नहीं;
मल-प्रिया मक्खीने जिसको आकर प्रभुवर, छुआ नहीं ।
यों अपवित्र पदार्थ, अरुचिकर, तू पवित्र सब गुण-घेरा ;
किस विध पूजूँ क्या हि चढ़ाऊँ, चित्त डोलता है मेरा ॥

[२]

यत्क्षुत् हृदि वर्तते प्रभुवर क्षुत्तड्विनाशाच्च ते—नार्थः कोऽपिहि विद्यते रसयुतैरन्नादिपानैः सह ।
नो वांछा न विनोद भाव जननं नष्टश्च रागोऽखिलः—एवं त्वर्पण व्यर्थता गतगदे सद्भेषजानर्थ्यवत् ॥

[४]

यों' आता है ध्यान 'तुम्हारे क्षुधा-तृषाका लेश नहीं ;
नाना रस-युत अन्न-पानका, अतः, प्रयोजन रहा नहीं ।
नहिं वांछा, न विनोद-भाव, नहिं राग-अंश का पता कहीं ;
इससे व्यर्थ चढ़ाना होगा, औषध-सम जब रोग नहीं ॥

---

*पतंगों के लिये कालरूपी अग्नि, अतः 'हिंसोपकरण' और कीट-पतंगों के निरन्तर ऊपर पड़ते रहने से श्मशान तुल्य अपवित्र, ऐसे दीपक हैं ।

[३]

निःसारं प्रति बुध्य रत्ननिवहं नानाविधं भूषणं—हृद्यंकान्तिसमन्वितं च वसनं सर्वं त्वया श्रीपते।
संत्यक्तं प्रमुदा विरागमतिना तत्त्वदग्रेऽधुना—यद्याराध्य समर्पयामि भगवन्तद्धृष्टता मेऽखिला॥

[५]

यदि तुम कहो 'रत्न-वस्त्रादिक-भूषण क्यों न चढ़ाते हो,
बहुमूल्य, पावन हैं, अर्पण करते क्यों सकुचाते हो'।
तो, तुमने निःसार समझकर खुशी खुशी उनको त्यागा;
हो वैराग्य-लीन-मति, स्वामिन, इच्छाका तोड़ा तागा।

[६]

तब क्या तुम्हें चढ़ाऊँ वेही, करूँ प्रार्थना 'ग्रहण करो'?
होगी यह तो प्रकट अवज्ञा तव स्वरूप की, सोच करो।
मुझे धृष्टता दीखे, अपनी और अवज्ञा बहुत बड़ी
हेय तथा संत्यक्त वस्तु यदि तुम्हें चढ़ाऊँ घड़ी घड़ी।

[४]

तस्मान्मस्तकन्यस्त हस्तयुगलो भूत्वाऽतिनम्रो महान्—भक्त्या त्वां प्रणमामि नाथ सततं लोकैकदीपं परं
संस्तौमि त्वां प्रवरो भवामि च मुदा दत्तावधानः सदा—एतन्मे तव द्रव्य पूजन महो मोहारिसंहारये॥

[७]

इससे 'युगल' हस्त मस्तक पर रख कर नम्रीभूत हुआ
भक्ति-सहित मैं प्रणमूँ तुमको बारबार, गुण-लीन हुआ।
संस्तुति शक्ति-समान करूँ औ' सावधान हो नित तेरी;
काय-वचन की यह परिणति ही अहो द्रव्यपूजा *मेरी॥

[८]

भाव भरी इस पूजा से ही होगा, आराधन तेरा,
होगा तब सामीप्य प्राप्त औ' मिटजागा भव जग फेरा।
तुझ में मुझमें भेद रहेगा नहिं स्वरूप से तब कोई,
ज्ञानानंद-कला ‡ प्रकटेगी थी अनादि से जो खोई॥

भगवान महावीर और बुद्धदेव

(लेखक—श्रीयुत पं० फूलचन्द्र शास्त्री)
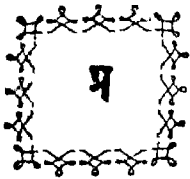
प्रत्येक जाति तथा धर्म का अस्तित्व उसके पूर्व इतिहास पर निर्भर है। जिस जाति या धर्म का अस्तित्व पाया जाता है, और यदि उसका पूर्व बहुभाग तत्कालीन ऐतिहासिक अन्य घटनाओं के साथ सम्बन्ध नहीं रखता तो वह जाति या धर्म मृत तुल्य समझा जाता है। यही कारण है कि जैन धर्म सर्व श्रेष्ठ तथा प्राचीन धर्म होने पर भी लोगों की दृष्टिमें अन्य धर्म सम्बधी ऐतिहासिक घटनाओंसे तुलना करने पर निःसत्वसा मालूम पड़ता रहा है।

---

* श्री अमितगति आचार्य ने इसी को पुरातन द्रव्यपूजा प्राचीनों द्वारा अनुष्ठित द्रव्यपूजा-बतलाया है। आप लिखते हैं—

वचो विग्रहसंकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते। तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनैः॥

उपासकाचार।

अर्थात्-काय और वचन को, अन्य व्यापारों से हटाकर परमात्मा के प्रति हाथ जोड़ने, शिरोनति करने, स्तुति पढ़ने आदि द्वारा एकाग्र करने का नाम 'द्रव्य पूजा' और मनकी नाना विकल्पजनित व्यग्रता को दूरकरके उसे ध्यानादिद्वारा परमात्मा में लीन करने का नाम 'भावपूजा' है। ऐसा पुरातन आचार्यों ने अंग पूर्वादि के पाठियों ने प्रतिपादन किया है।

‡ ज्ञान और आनन्द की मह विभूति।

आधुनिक इतिहास खोजियों ने जो कि इतिहास के प्रखर विद्वान् माने जाते हैं प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक जैन धर्म से सम्बन्ध रखने वाले समग्र इतिहास के विद्यमान रहने पर भी जैनियों के धार्मिक, समाजिक और नैतिक ग्रन्थों में प्रवेश न होने से अथवा प्रसिद्ध राज्य या राष्ट्र भाषा में इस धर्म से सम्बन्ध रखने वाली ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक घटनाओं के सांगोपांग उल्लिखित न होने से मनगढन्त अनेक प्रकार की कल्पनायें कर डाली हैं, जो कि जैन धर्म-के प्राचीनता की बाधक हैं। यद्यपि जैन संप्रदाय वाले "वत्थु सहावो धम्मो स च होई अणाई णिहणो" सिद्धान्त के अनुसार जैन धर्म को पदार्थ की असलियत का द्योतक होने से अनादि निधन स्वीकार करते हैं क्योंकि पदार्थ अपने स्वरूप को कभी भी नहीं छोड़ता, हाँ 'वीचितरंग' न्याय से पदार्थ की हालतों में रद्दोबदल हुआ करती है। ऐतिहासिक खोज करने से भी जैन धर्म प्राचीन सिद्ध होता है। परन्तु कोई इतिहासकार इस धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी को लिखते हैं; कोई पार्श्वनाथ स्वामी को, कोई कोई तो इस अभिप्राय के प्रगट करने में भी नहीं हिचकते कि इस धर्म की उत्पत्ति बौद्ध धर्म से हुई है।

यद्यपि बौद्ध-धर्म से इस धर्म के सिद्धान्त, आचार, व्यवहार भिन्न भिन्न हैं। बौद्ध-धर्म क्षणिकवाद का पोषक है तो जैन धर्म अनेकान्त का-बौद्धों के यहाँ मृत शरीर के माँस खाने का उपदेश दिया है तो जैनियों के यहाँ माँस के स्पर्श करने में भी हिंसा बतलाई जाती है। फिर भला किस आधारपर वर्तमान इतिहास खोजियों ने जैन धर्म को बौद्ध धर्म का बच्चा बनाने की कोशिश की। ये स्वतंत्र विचार केवल प्रत्येक धर्म के सिद्धान्त, रीतिरिवाज और उसके पूरे इतिहास को अनुशीलन कर अपने विचारों को प्रगट न करने के ही द्योतक समझना चाहिये।

दूसरे यदि प्रत्येक इतिहासकार के विचार बिलकुल ठीक होते, और वे बराबर उस धर्म की तह तक पहुंचे हुए होते जिसका विवेचन कर वे उस धर्म के अस्तित्व की सीमा बांध देते हैं, तो उनके विचार एक दूसरों के विचार से मिले हुये होना चाहिये थे। इस से मैं ये नहीं कहता कि उसका लिखना निर्मूल है-उन्होंने अपनी लेखनी बिना किसी शिलालेख आदि प्रमाणों के चलादी होगी। बल्कि मेरे लिखने का ये अभिप्राय है कि उन महाशयों को अपने इतिहास में जहां तक के वे प्रमाण पाते हैं वहीं तक के इतिहास से उस धर्म का सम्बन्ध मिलान करते हुए उन्हीं प्रमाणों के आधार पर उसके पूर्व इतिहास के अस्तित्व का लोप न कर देना चाहिये।

हमारे सामने वर्तमान में ऐसी कई आलोचनात्मक स्मृतियां मौजूद हैं जिनके अत्यन्त प्राचीनता में सिवाय उन ग्रन्थों के जिनकी प्रमाणिकता उन्हीं स्मृतियों के ऊपर निर्भर है प्राचीनता साधक और कोई ताम्र लेखादि प्रमाण नहीं पाये जाते जिनसे उनको अति प्राचीन माना जावे। हां इतना जरूरी है कि विषय के प्राचीनता-साधक जितने प्रबल प्रमाण मिलते जावेंगे उतना ही उसकी प्राचीनता में गौरव आता जावेगा। इससे किसी धर्म या जाति का अस्तित्व वहीं से न मान लेना चाहिये। संभव है कि उस विषय के साधक प्रमाण या तो उनकी समझ में न आते हों, अथवा कई दुष्ट कारणों से उनके अस्तित्व का लोप हो गया हो।

श्री नगेन्द्रनाथ वसु हरिवंश पुराण की समालोचना करते हुये लिखते हैं कि "जैन धर्म कितना प्राचीन है इस विषय के आलोचना करने का यह स्थान नहीं है, तब इतना ही कह देना बस होगा कि जैन संप्रदाय के तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी खोष्टब्द के ७७७ वर्ष पहिले मोक्ष पधारे थे। उनसे पहिले के २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ स्वामी—भगवान श्रीकृष्ण के संपर्क भ्राता थे। ऐसी हालत में भगवान श्रीकृष्ण को यदि हम उस समय के ताम्रलेख, शिलालेख तथा पुरातन ध्वंसावशेष आदि चिन्हों के न रहने पर भी ऐतिहासिक मानते हैं तो हमें बलात् उनके साथ होनेवाले बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ स्वामी को भी ऐतिहासिक पुरुष मानना पड़ेगा। भगवान श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जिस तरह हिन्दू लोगों के महाभारत, हरिवंश आदि नाना पुराणों में नाना आख्यायिकायें कही गई हैं उसी तरह जैन लोगोंके उपास्य तीर्थंकर श्री नेमिनाथ स्वामीके संबन्ध में भी नाना आख्यान और उपाख्यान बहुत प्राचीन कालसे चले जाते हैं।"

इसके आगे जब हम दृष्टि डालते हैं तो हमारे सामने बाल्मीकि रामायण उपस्थित होती है कारण कि लोगों में ऐसी जनश्रुति है ये महान ग्रन्थ राजा रामचन्द्र के सामने बनाया गया था। इस ग्रन्थ के कर्ता राजा रामचन्द्र के गुरु बाल्मीकि थे, क्योंकि उन्होंने ही राजा रामचन्द्र को भगवान का अवतार मान कौतुक से उसका निर्माण किया। इतिहासखोजी भी बाल्मीकि रामायण को लिपिबद्ध साहित्य में सबसे पुरातन स्वीकार करते हैं। डाक्टर हण्टर भी अपनी इण्डियन इम्पायर पृष्ठ १६२ में लिखते हैं "कि यह संभव है कि महाभारत से रामायण के कुछ भाग पहिले के हों। यदि ये बात सत्य है तो सर्व साधारण को भी उनके आधार पर जैन धर्मको राजा रामचन्द्र के पहिले का बलात् स्वीकार करना पड़ेगा। कारण कि बाल्मीकि रामायण में महाकवि बाल्मीकि ने अयोध्यापुरी का वर्णन करते हुए वहां की वीथियों में दिगम्बर जैन साधुओं को विचरते हुये लिखा है"।

इसी तरह जब हम और आगे बढ़ते हैं तो हमारी दृष्टि वेदों पर जाती है, क्यों कि आर्य लोग वेदों को रामायण से भी प्राचीन मानते हैं। वे यहां तक लिखते हैं कि सृष्टि की आदि में ईश्वर ने वेदों का स्वयं निर्माण किया। इस विषय में कई लोगों का ऐसा मंतव्य है कि सृष्टि के प्रारंभ में ईश्वर ने चार वेदों को चार ऋषियों द्वारा प्रगट किया। इसलिये पूर्व इन दो सिद्धान्तों को लेकर सृष्टि निर्माण काल के अनुसार वेदों को भी वर्तमान ऐतिहासिक खोज के मुताबिक कम से कम १९६०८५३०२१ वर्ष पूर्व के मानना होगा। साथ ही जिस सम्प्रदाय के मत से वेद अकृत्रक होंगे, उन के यहां वेदों को अनादि संज्ञा भी देनी होगी।

इस क्रम से आर्य समाज में वेदों को अति प्राचीन सिद्धि लेने पर वेदों से मंत्रों में उल्लिखित आदि ऋषभजिन, आदि शब्दों के अनुसार जैन धर्म को भी प्राचीन स्वीकार करना होगा क्यों कि आदि और ऋषभ यह नाम जैनियों के यहां जैन धर्म के २४ तीर्थकरों में से प्रथम प्रचारक तीर्थंकर श्री आदिनाथ स्वामी के लिये ही प्रयुक्त किये जाते हैं। सम्भव है सनातन धर्मावलम्बी इस बात पर जोर देंगे कि २४ अवतारों में ऋषभावतार हमारे यहां भी माना जाता है, और उसी का नामोल्लेख वेदों में आता है। यह जैनियों के उपास्य तीर्थंकर श्री आदिनाथ स्वामी नहीं हैं।

पाठकगण समस्या भी अच्छी उपस्थित है निष्पक्ष इस पर विचार कर लेना ही होगा। यदि ऋषभदेव का जो कि आपके २४ अवतारों में से एक अवतार माने जाते हैं वेदों में नामोल्लेख स्वीकार किया जावे तो ऋषभावतार के अनन्तर वेदों की उत्पत्ति स्वीकार करनी होगी। इस क्रमसे सृष्टि के आदि में वेद रचना संभव नहीं। शायद पहिले से ही ऋषभावतार का नामोल्लेख वेद में स्वीकार करेंगे, तो अवशिष्ट अवतारों के भी उल्लेख पाये जाना चाहिये। इसलिये ये ही ऋषभदेव हैं जो जैन धर्म के प्रथम प्रचारक माने जाते हैं। वेद और सृष्टि को ईश्वर कृत स्वीकार न करने से जैन लोग इस लांछन से बचे रहते हैं। जैनियो ने सृष्टि की व्यवस्था हमेशा से स्वीकार की है। हाँ असि, मसि कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इस तरह षट कर्म रूप व्यवस्था भगवान् आदिनाथ स्वामी के समय से ही इस युग में स्वीकार करते हैं।

इससे पहले लोग आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करते थे, उस समय उन लोगों में पाप-वासनायें नहीं पाई जाती थीं सिंहादिक हिंसक प्राणियों के रहने पर भी वे उस समय निर्बल प्राणियों का वध करना नहीं जानते थे। बाद सृष्टि क्रम नियमानुसार सृष्टिने जब अपना वेश बदलना स्वीकार किया तो मनुष्यों के हृदयों में भी पाप वासनाओं ने अपना अधिकार जमाया, हिंसक प्राणी भी निर्बल प्राणियों पर आक्रमण करने लगे। इन सब असुविधाओं को देखकर और आगामी काल में पाप से भरपूर पृथ्वीतल का अनुमान कर भगवान् ने दु:खित प्रजा के प्रार्थी होने पर भिन्न भिन्न रूप से सामुदायिक शक्ति का संगठन करने के लिये कर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था की नींव डाली और प्रत्येक वर्णोचित कार्य निश्चित कर प्रजा को धार्मिक शिक्षा के साथ साथ नैतिक शिक्षा का उपदेश दिया।

इसके पहले कुछ सुधार कुलकरों (मनु) ने किया था। इस से अनुमान किया जाता है कि इस घटना के बहुत प्राचीन हो जाने से ही लोगों में इसने इस तरह का रूप धारण किया हो कि ईश्वर ने सृष्टि रचना की और वेदों द्वारा प्रत्येक वर्णोचित कर्म का उपदेश किया। ऐसा हो भी सकता है, और ऐसा स्वीकार करने में किसी भी संप्रदाय को हानि नहीं। रही वेदों की बात सो उसी समय या कुछ काल बाद संकलित किये गये होंगे। उस में कर्मकाण्ड प्रक्रिया जिसको आधुनिक विद्वान् भी निन्दित समझते हैं तदनुसार अहिंसा का उपदेश दे उस प्रथा का लोप भी करना चाहते हैं किन्हीं जिव्हालोलुपी असत्मार्ग प्ररूपक पुरुषों ने मिलादी होगी। इस तरह संसार प्रक्रिया का रूपान्तर करने से ही सनातन धर्मावलम्बियों के ग्रन्थों में भगवान आदिनाथ स्वामी ने अपना स्थान पाया हो।

१८ पुराण के कर्ता व्यास भगवान ने भी अपने भागवत के पंचम स्कंद में भगवान आदिनाथ को दिगम्बर, एकाकी, गिरिगुहा-वासी रूप से उल्लेख किया है। तथा वेदों में धुकदंड का प्रमाण बताते हुये धुकदंड को "जिनाङ्गुलय:" जिनांगुल प्रमाण होना चाहिये। यहां जिन शब्द से २४ विवक्षित हैं, क्योंकि जिन तीर्थंकर २४ होते हैं, और यह शब्द जैन संप्रदाय के प्रचारक तीर्थंकरों के लिये प्रयुक्त किया जाता है। जिन शब्द का व्यवहार और किसी भी सम्प्रदाय में नहीं होता। व्यास भगवान ने योगसूत्र में भी "नैकस्मिन्नसंभवात्" इत्यादि रूप से जैन

धर्म को स्मरण किया है। विष्णु पुराण में तो बहुत ही स्पष्ट रूप से जैन धर्म का उल्लेख पाया जाता है। जो कि जैन धर्म के प्राचीन साधक हैं। अतः किन्हीं महाशयों को जैन धर्म की प्राचीनता में संदेह नहीं करना चाहिये। यदि हो भी तो उक्त प्रमाणों के आधार पर खोज कर निश्चय कर सकते हैं।

बहुधा लोगों को बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में भी विश्वास है कि इस धर्म का प्रारम्भ बुद्धदेव के समय से हुआ है परन्तु ऐसी भावना भ्रम है। कारण कि बुद्धदेव के पहिले भी बौद्धधर्म का उल्लेख पाया जाता है। भगवान महावीर की तरह बुद्धदेव भी बुद्धधर्म के प्रचारक थे न कि प्रवर्तक। यद्यपि वेदों में बौद्धधर्म से सबन्ध रखने वाली कोई भी बात नहीं पाई जाती परन्तु भगवान व्यास ने जैन सम्प्रदाय की तरह प्रथक बौद्धधर्म का भी उल्लेख किया है। सनातन धर्म वाले व्यास को भगवान के अवतार लिखते हैं और उनके बनाये गये ग्रन्थों को सब से अधिक प्रमाणिक स्वीकार करते हैं। जैन ग्रन्थों में भी बौद्धधर्म के सम्बध में इस तरह का उल्लेख पाया जाता है कि जिस समय भगवान आदिनाथ ने गार्हस्थ्य जीवन छोड़ मुनिपद अंगीकार किया था उस समय भक्ति के वश से अन्य ६०० मांडलिक राजाओं ने भी भगवान् का अनुकरण किया। साधु वृत्ति स्वीकार करने पर भगवान् ने ६ माह तक कायोत्सर्ग ध्यान किया। परन्तु अन्य राजा भूख, प्यास की बाधा न सहकर अनुकरण में सफल प्रयत्न न हो सके, और वे मुनि पद से भ्रष्ट हो गये। भूख, प्यास की बाधा से पीड़ित हो उनका जीवन क्षण भंगुर मालूम पड़ने लगा। संसार के समस्त पदार्थ नश्वर प्रतीत होने लगे। इसलिये उन्हीं में से किन्हीं राजाओं ने समस्त पदार्थों को क्षणिक जान बौद्धधर्म की नीव डाली।

जब कि वेदों में बौद्धधर्म के सम्बन्ध में कोई भी उल्लेख नहीं पाया जाता, और वेदों के अनन्तर बनाये गये योग सूत्र में व्यास भगवान् ने स्वतंत्र रूप से बौद्ध का उल्लेख किया है, तो इससे वेद के अनन्तर और व्यास भगवान् के पूर्व ही बौद्धधर्म की उत्पत्ति मालूम पड़ती है। यद्यपि इस आधार पर पूरी तौर से ये निश्चित नहीं होता कि बीच के काल में भी बौद्धधर्म ने कब से जन्म पाया। परन्तु जैन ग्रन्थों में बौद्धधर्म के सम्बन्ध में किये गये उल्लेख से यह निश्चित मालूम पड़ता है कि वेदों के श्रृंखलित होने के कुछ ही काल बाद बौद्धधर्म ने इस संसार में जन्म लिया होगा। वेदों की उत्पत्ति के विषय में मैं पहिले लिख ही चुका हूं। बौद्ध संप्रदाय में भी शाक्य वंशीय महात्मा कुछ इस धर्म के चलाने वालों में पच्चीसवें अवतार समझे जाते हैं। उन के यहां इससे पहिले २४ अवतारों के होने का और भी उल्लेख आता है।

(अपूर्ण)

जीवन काल

मानवी जीवन जहां सौ वर्ष का माना गया—रात्रियों के भाग से आधा बचा जाना गया॥
अर्धस्थ दे वृद्धत्व को कुछ बाल जीवन में चला-कुछ काल दुख जंजाल आधि व्याधि में समझोटला॥
रह गई बाकी भला क्या? जन्म में सुख की घड़ी—संसार पारावार में आधार बिन तरनी पड़ी॥

—दास,

स्वाँति-बूंद ।

(१)

स्वाँति बूंद के लिये, पपीहा तरस रहे हैं ।
पराधीन हा ! मेघ, गगन में बिखर रहे हैं ॥
असहयोग की छटा ! देश पर छिटक रही है ।
कूटनीति, विष अहो ! देश में उगल रही है ॥
दमननीति ने खूब ही, कारागृह मन्दिर भरे ।
अत्याचारी पातकी, थक जावेंगे ही हरे ! ॥

(२)

गये हजारों वीर, मात की सेवा करने ।
स्वार्थ मोह को हटा, लगे भारत पर मरने ॥
शान्ति अहिंसा मंत्र, कृष्ण मंदिर में जपते ।
सुख स्वराज्य की, स्वाँतिबूंद के लिये तरसते ॥
जंजीरों की झनक को, सुन २ कर हुँसने खड़े ।
ऊपर सहते मार को, निश्चल हैं वे तो अड़े ॥

(३)

कर्मवीर बन कभी न, पीछे पैर हटाया ।
कार्य क्षेत्र में अरो, उन्होंने हाथ बटाया ॥
कर्मयोग का मंत्र, देश में घर घर फूंका ।
रक्खा है अभिमान, वही अपने स्वदेश का ॥
जिसे न अपने देश का, कुछ भी जी में ध्यान है ।
व्यर्थ जन्म उसने लिया, नर नहिं वह हैवान है ॥

(४)

सूख गया अब रक्त, हड्डियाँ बचीं निरी हैं । करुन वृक्ष की जड़ें, निबल हो उखड़ गिरी हैं ॥
तुम औरों की अरे ! बदौलत बन बैठे हो । बात बात पर हमें, डम कह कर ऐंठे हो ॥
शाँति दिगन्तों में रहे, अधमरूप आँधी बही । हे ! प्रभु इस अन्याय का, न्याय न क्या होगा सही ॥

परमानन्द चान्देलीय ।

दिन पानी (मृतक भोज्य)

(लेखक—श्रीयुत प० लोकमणि जी)

हमारी परवार जाति में इस समय अनेक नाशकारी कुप्रथायें प्रचलित हैं। उनका जिकर प्रायः बहुत समय से होता आ रहा है अनेकों लेख विद्वानों ने लिखकर जातीय कुप्रथाओं की भयंकरता बताई है। पर एक कुप्रथा जाति में मुद्दत से चली आरही है इस पर विद्वानों ने आज तक अपना ध्यान बहुत कम दिया इस लिए मैं थोड़ा बहुत प्रकाश इस बुरी प्रथा पर डालना उचित समझता हूं। और आशा करता हूं कि विद्वान इस पर समुचित प्रकाश डाल कर जाति को धर्म से विलग न होने देंगे।

जाति में इस समय यह नियम बड़ी मजबूती से बना हुआ है कि घर में कोई मरे उसके दंड में एक भोज्य अवश्य कराया जाय। बिना

मृतक भोज्य कराए जाति में गुजर नहीं मृतक भोज्य अनिवार्य कार्य है। बड़े आदमी की मृत्यु में तो छप्पन भोजन मिलते ही हैं। पर बिचारे गरीब की इसमें बड़ी आफत है। गरीब पिता की मृत्यु हुई। लड़का अभी १२ वर्ष का है स्त्री के पास कानी कौड़ी भी नहीं है। चक्की पीस २ कर अपना उदर भरती है—दो बाल बच्चे आगे पीछे रोटी २ चिल्ला रहे हैं—गरीबी नाकों दम कर रही है—आढ़ने बिछाने के लिए काफी कपड़ा नहीं है,—दो चार रिश्तेदार हैं वे भी गरीब हैं वे सहायता करना तो दूर रहा थोड़ी बहुत आशा ससुराल से ही लगाये रहते हैं पर उसे दिन पानी अवश्य करना ही होगा। उसके बिना उसका छुटकारा नहीं। बिचारी स्त्री रोती है आज रो धो कर दिन कट गया कल से रुपया उधार लाने की फिकर सवार हो गई। अपने एक दो जेवर उतार बेचे या गहने धरे। लड़कियों के गंडा तावीज बेंच कर बड़ी कठिनाई से सात जन्म के लिए कर्ज़ काढ़ कर दिन पानी की तैयारी की गई। कल जीमने को तो सब लोटा ले ले कर सोलह शृंगार कर दश बजे से ही आ पधारेंगे। पर आज घर २ फिरने पर भी कोई रसोई बनवाने के लिए नहीं आता। दश २ बार घर घर स्त्री चक्कर लगाती है पर कोई नहीं आता बड़ी मुश्किल से गरीब घर की दो चार औरतें रसोई बनवाने आईं। बड़े आदमियों की औरतें भला गरीब के घर बिना पान मसाले के दो घंटे कैसे धुवां में आखें फोड़ती फिरेंगीं। धुवां में उनके रेशमी कपड़े खराब हो जावेंगे।

सबेरा हो गया रसोई भी तैयार है। पहुंचे लोग अपना २ लोटा ले ले। दश मिनट में ही उसका सब चौपट कर आए। आजन्म के लिए उस बेचारी को मिट्टी में मिला आए। बस भोजन में दाल पतली थी चांवल स्वाद रहित थे—पूड़ियों में घी की कंजूसी की गई और ग्राम को अंथऊ तक को न पूछा इत्यादि चटपटे मसाले मिलाकर फिर किसी मृतक भोज्य के लिए जीभ लपलपाने लगे। यह सब होते हुए भी जाति के मुखिया इस घृणित प्रथा के दूर करने की ओर ध्यान नहीं देते। उल्टा कहने लगते हैं यह तो सनातन की रीत है। यह कैसे छोड़ी जा सकती है सब जातियों में ऐसा होता है। हमही अकेले थोड़े ही करते हैं।

ऐसे सज्जनों से मेरी विनय है कि आप तनिक जैन धर्म के शास्त्रों का मत देखिये वे इस विषय में क्या कहते हैं।

पहिले हम सूतक के विषय में जैन विद्वानों की राय बतलाकर प्रश्नोत्तरी में विशद रूप से आपकी शंकाओं का समाधान करेंगे ———

जैन शास्त्रों में सूतक के दिनों में 'देव दर्शन' पूजन, शास्त्र स्वाध्याय आदि धर्म कार्य वर्जित किए हैं। जन्म का सूतक (पुरुष को) १० दिन का। (स्त्री को) ४० दिनका मरण का सूतक १ दिन से लेकर १३ दिन तक का माना गया है मरण के सूतक में मृतक की उमर की विशेषता से-सन्निकट और दूरन्देश की विशेषता से एवं गोत्र की पीढ़ी आदि की विशेषता से भी भेद माना गया है। सूतक के दिन पूर्ण होने पर - तथा घर की उज्वलता करने पर देव दर्शन आदि कर सकते हैं। तथा पंक्ति भोजनादि भी करते हैं। अब आप विवेक और अज्ञान की प्रश्नोत्तरी में देखिए।

विवेक—परवार जाति में दिन पानी (मृतक भोज्य) किस लिए होता है। ?

अज्ञान—दिन पानी मृतक मनुष्य के घर तथा कुटुम्बियों की शुद्धि के लिए होता है।

विवेक— क्या बिना दिन पानी (मृतक भोज्य) किए उनकी शुद्धि नहीं हो सकती ?

अज्ञान—नहीं। कदापि नहीं।

विवेक—यह बात आप अपने मन से कह रहे हैं-या किसी शास्त्र के आधार से।

अज्ञान—भाई शास्त्र तो मैंने अधिक देखे सुने नहीं हैं-पर दुनिया की रीति रिवाज और अपनी जाति की प्रथा देख कर मैं कहरहा हूं। शास्त्रों में भी ऐसा लिखा होगा।

विवेक—अच्छा तो आप बतला सकते हैं कि सूतक में किन २ कार्यों की मनाई है?

अज्ञान—क्यों नहीं! यह तो जरा सी बात है. सुनिए-देव दर्शन, शास्त्र स्वाध्याय पूजन, आदि धर्म कार्यों की और जाति में बैठकर पंक्ति भोजन की मनाई है।

विवेक—क्या आप को मालूम है मरण का सूतक कितने दिन का होता है?

अज्ञान—हां! क्यों नहीं!! १ दिन से लेकर १३ दिन तक का होता है।

विवेक—१३ दिन के बाद सूतक तो रहता नहीं फिर देव दर्शन स्वाध्याय-पूजन कर सकते हैं या नहीं?

अज्ञान—यदि दिन पानी हो जाय तो कर सके हैं।

विवेक—यदि दिन पानी न कर सकें तो?

अज्ञान—कर क्यों नहीं सकें-यह कोई बच्चों का खेल है, वह तो अवश्य करना पड़ेगा-हां-यह बात दूसरी है कि प्लेग आदि में किसी की मृत्यु हो जाने की वजह से दिनपानी का सुभीता न पड़े तो साधारण शुद्धि कपड़े लत्ते वगैरहः धुलवाकर घर द्वार साफ कर लेने पर ही मंदिरजाने लगें-तथा पूजनादि भी करने लगें पर दिन पानी तो फिर भी करना ही पड़ता है।

विवेक—अच्छा भाई अज्ञान जी-यह तो बतलाइए क्या साधारण शुद्धि के बाद जिस तरह मंदिर जाने तथा धर्म कार्य करने में आपत्ति नहीं रहती-ऐसा लाइ जाति में पंक्ति भोजन करने की मनाई तो नहीं रहता है।

अज्ञान—नहीं! ऐसी कोई मनाई नहीं रहती-पर दिन पानी तब भी करना पड़ता है।

विवेक—अच्छा तो यही बात ठहरी न-कि साधारण शुद्धि कर लेने पर मंदिर और पंक्ति भोजन दोनों में कोई रुकावट नहीं रहती।

अज्ञान—हां बात तो ऐसी ही है-जहां तहां ऐसाही देखा गया है।

विवेक—अच्छा भाई क्या आपको याद है? कि आपने कहा था-कि दिन पानी बिना किए शुद्धि नहीं होती-और शुद्धि हुए बिना धर्म कार्य और जातीय पंक्ति भोजन आदि कार्य नहीं हो सकते? पर यहां तो साधारण शुद्धि याने बिना दिन पानी किए ही मंदिर और पंक्ति भोजन की खुलासी हो गई-तब कहिए यहां शुद्धि हुई या नहीं?

अज्ञान—अशुद्धि ही रही।

विवेक—यदि अशुद्धि रही-तो. पंक्ति भोजन और मंदिर की खुलासी कैसे हो सकी है?

अज्ञान—अच्छा भाई-शुद्धि रही।

विवेक—वाह! भाई यदि शुद्धि रही तो फिर दिन पानी की क्या आवश्यकता है-साधारण शुद्धि से ही काम निकल आया।

अज्ञान—भाई विवेक जी-तुम तो ठहरे विद्वान तुमसे भला हम कैसे जीत सकते हैं-पर जो मर्याद की रीति है वही जाति में चली आती है-दूसरे मत वाले सबही तो ऐसा करते हैं—

विवेक—भाई—इस में--विद्वान और मूर्ख की कोई बात नहीं—हां दूसरे मजहब के लोग दिन पानी करते हैं-उनका करना उनके शास्त्रों के आधार पर है—वे मानते हैं जब तक दिन पानी न किया जाय मरी हुई आत्मा का कहीं ठिकाना नहीं पड़ता। पर अपने यहां शास्त्रों में कहीं भी दिनपानी करने को नहीं लिखा है। न अपने यहां यह भी लिखा है कि दिनपानी न करने से मृत आत्मा को मड़राते रहना पड़ता है। या वह उसके न होने से किसी प्रकार के दुःख उठाता है हां रही शुद्धि की बात सो शास्त्रों के अनुसार १३ दिन में शुद्धि आपसे आप हो जाया करती है। १३ दिन के भीतर दिनपानी करने से भी जैन धर्म के अनुसार सूतक दूर नहीं होता।

अज्ञान—आपने क्या कहा! कि १३ दिन के भीतर दिनपानी करने से भी शुद्धि नहीं होती? तो क्या अपनी जाति में ९ दिन में—७ दिन में—५ दिन में और कभी २ एक दिन में ही शुद्धि कर लेते हैं यह क्या ठीक नहीं है?

विवेक—हां भाई यह बिलकुल ठीक नहीं है-जो ऐसा करते हैं वे शास्त्र के विरुद्ध करते हैं उन्हें शास्त्रों का नियम मालूम नहीं है या है भी तो वे लोकरूढ़ि के गुलाम हो रहे हैं इस लिए श्रेष्ट मार्ग पर चलने में डरते हैं।

अज्ञान—भाई तुम्हारी बातें हैं तो समझ की पर बिना दिनपानी किए निस्तार नहीं हो सकता अन्यमती कल से ही व्यवहार में बाधा डालेंगे—कमीन ढीमर नाई वगैरः आपत्ति करेंगे और बड़ी बदनामी करेंगे, काई काम काज न करेंगे, ढीमर बर्तन न मांजेंगे, नाई कलेवा न लेंगे और सब जाति के लोग अपने मार्ग में रोड़े अटकावेंगे।

विवेक—भाई यह भी सब कल्पना मात्र है कोई किसी के मार्ग में बाधा नहीं डाल सकता फिर क्या हम इस भय से अपना धर्म त्याग देंगे। क्या शास्त्रों के बताए मार्गपर अमल न करेंगे। अपने २ मजहब के बतलाए मार्गपर हर कोई चल सकता है। बाधा डालने वाले राजसे भी दंडित हो सकते हैं—पर यह सब कुछ कल्पना मात्र है। हम देवी देवता नहीं पूजते चण्डी मुण्डी काली भैरों को नहीं मानते जोकि दूसरे मजहब वाले मानते हैं तो क्या हमारा कोई व्यवहार दूसरों ने बंद कर दिया। नहीं! यदि हम ठीक मार्ग पर चलें तो हमें कोई नहीं रोक सकता और यदि रोके भी तो क्या हम रुक सकेंगे— क्या हम इन छोटी २ बातों के भय से अपने धर्म पर कुठार चलावेंगे।

अज्ञान—भाई हमारी-राय में तो तुम्हारी बातें जचती हैं—साधारण शुद्धि से ही मृतक का सूतक दूर हो जाना चाहिए पर जाति के मुखिया बड़े आदमी इस बात को मानें तब न।

विवेक—भाई यह बात दूसरी है—वे मानें—या न मानें—पर जो प्रथा शास्त्र सम्मत नहीं और केवल दूसरों को दुखः पहुंचाने वाली है उसे तो दूर कर देना ही उचित है। जिस तरह से मृतक भोज्य निंदनीय है-शास्त्र विरुद्ध है उसी तरह पातक दूर करने के लिए जितने भोज्य किए जाते हैं वे सब ही खराब हैं और जाति को रसातल पहुंचाने वाले हैं। हम लोग दूसरे को देखा सीखी बहुतसी खोटी रीतियां अपनी जाति में चलाए हुए हैं और दिन पर दिन पतित होते जा रहे हैं। आप यह खूब सोचलीजिए कि खोटे कार्यों का-अनर्थ का माल खाने से सदा खोटे ही परिणाम होते हैं। सदा कुगति की तैयारी रहती है सदा मन पापी

बना रहता है—कहा भी है—जैसा खावे अन्न-वैसा होवे मन-हमारे उदर में मरे का-पैदा हुए का, व्यभिचारी के दंड का इत्यादि सबही खोटा अन्न पहुँच कर हमें पाप मय बना रहा है हमें प्रत्येक कार्यों में खाने खाने की धुन सवार रहा करती है इसलिये इस खोटी प्रथाका सर्वदा के लिए जाति से कालामुख करना चाहिए।—

इस समय में इतने में ही इस लेख को समाप्ति करता हूं आशा है विद्वान इस पर और ही विशद विवेचन करेंगे। *

(लेखक—श्रीयुत कुन्दनलाल जी न्यायतीर्थ)
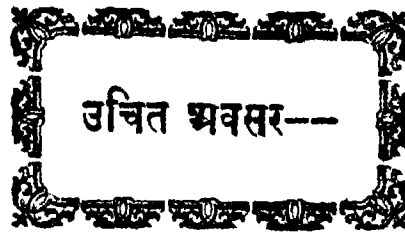
परवार सभा का नागपुर वाला छटवां अधिवेशन होगया। इसने परवार सभा में नवीन जीवन प्रदान करदिया है। देखें अब हमारे नव युवक भाई कहां तक इसमें भाग लेते हैं। सब से पहिले कार्य जातीय संगठन का है। तितर वितर हुई जाति की शक्ति को इकट्ठा करने का है। क्योंकि बिना संगठन के कोई भी कार्य नहीं हो सकता। संगठित हुए दश व्यक्ति भी अपने से पचास गुणी असंगठित शक्ति का मुकाबला कर सकते हैं। अतएव सामाजिक एवं जातीय उन्नति का पहला अंग संगठन है। और उसका बहुत कुछ तरीका पूर्व के कई लेखकों ने स्पष्ट कर दिया है।

अब विचारणीय बात सिर्फ यही है कि इसके लिये उचित अवसर कौनसा है। पहले परवार सभा की शक्ति कई कारणों से कई हिस्सों में बटी थी। उसके कई अंग इससे सर्वथा पृथक थे। और वे अंग भी ऐसे वैसे निरर्थक नहीं किन्तु प्रबल एवं मुख्य थे। अतएव उस समय संगठन का आलाप प्रलाप मात्र ही था। परन्तु इस समय उस विरोध के वातावरण का नाम निशान भी परवार सभा के आकाश में नहीं है, प्रत्युत उसका आकाश स्वच्छ एवं शान्त वायु से संयुक्त है। तथा काले बादलों से आच्छन्न समाज के नक्षत्र, बादलों के छिन्न भिन्न हो जाने से परवार समाज के भव्याकाश में प्रकाशित हो रहे हैं। अर्थात् इसकी समस्त छिन्न भिन्न शक्तियें मिलने की फिराक में हैं।

दूसरे परवार सभा के पास कोई भी खुद का ऐसा मजबूत साधन नहीं था। जो स्वतः बलवान् एवं व्यापक होते हुए परवार सभा

---

* नोट—समाज मान्य विद्वान और जाति के मुखिया इस प्रथापर आदरक विचार करें उनका विरुद्ध या अविरुद्ध जैसा मत हो संक्षेप में युक्तियुक्त रूप में प्रकाशनार्थ भेजें किन्तु कठोर शब्दों का व्यवहार नहीं होना चाहिये। सम्पादक।

को भी सर्व व्यापक बनाने में उपयोगी हो सका। इस कमी की पूर्ति करने के वास्ते परवार सभा ने निज का एक मासिक पत्र निकाला था। परन्तु यह कई कारणों से अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। परन्तु कोई भी कार्य अथवा विचार जिसका आरम्भ कर दिया जाता है, उसका विकाश एवं प्राबल्य समय आने पर अपने आप हो जाता है। अथवा लोगों के हृदय में जब उस कार्य की आवश्यकता खटकने लगती है। तब वे उसके भीतर योग्य सुधारों का समावेश करके उसकी पूर्ति करते हैं। यही बात हमारी परवार सभा के मुख्य-पत्र परवार-बन्धु के लिये भी लागू हुई। और उसने शीघ्र ही अपना सुधार करके उन्नति के पथ की ओर पैर बढ़ाया है। यह हमें अभिमान की बात है और आशा है कि वह शीघ्र ही परवार सभा की उन्नति का प्रबल एवं मुख्य सहायक बन जायगा।

तीसरे मंत्री महोदय का चुनाव एक महत्व का कार्य हुआ है क्यों कि आप उत्साही, विद्वान्, नवयुवक एव सार्वजनिक कार्यों से दिलचस्पी रखने वाले हैं। अतएव आशा है कि पुरानी नयी स्कीमों का अपूर्व सम्मेलन देखने का अपूर्व सौभाग्य प्राप्त होगा। अब नवयुवक भाइयों को जो इन कार्यों के वास्ते सदैव तरसा करते हैं तथा कार्य करने का साहस रखते हैं--उनके लिये अपूर्व अवसर हाथ आया है कि वे आलस्य का त्याग करके अपनी सिंह गर्जना द्वारा सोई हुई समाज को जगा देवें। उसमें नये बल का संचार कर देवें। और शीघ्र विच्छिन्न जातीय शक्ति को ग्राम पंचायत तहसील, जिला, प्रान्त पंचायतों के रूप में संगठित कर सब को परवार सभा से संबन्धित करदें। इसमें ज्यादा परिश्रम करने की आवश्यकता यों नहीं है कि पहले की पंचायतों का ही उचित सुधार कर देने से यह काम हो जायगा सिर्फ़ रही अधिकार और ऊपरी पंचायतों के चुनाव को सो उनका चुनाव भी बुन्देलखण्ड में एक सीधी और सरल रीति से हो जायगा। क्योंकि हमारे यहां पंचायती प्रथा एवं उसका ऊपरा ऊपरी संबंध पहले से ही है। परन्तु कुछ समय से अभी वह शिथिलि प्राय हो गया है जिसके दृढ़ करने की आवश्यकता है सो उसको पूरा करदें।

ऐसा समय शायद फिर न मिले, क्योंकि प्रत्येक उद्देश्य की सिद्धि के लिये उपयोगी सामग्री हमेशा नहीं मिला करती है किन्तु बड़ी साधनाओं एवं परिणामों के द्वारा भाग्य के ठीक होने पर ही अनुकूल परिस्थिति पैदा हुआ करती है। इस समय अनुकूल वायु, आकाश में बवंडर का अभाव, योग्य कर्णधारों का मिलना ही हमारे उद्देश की सिद्धि का काफी प्रमाण है। यदि इस उत्तम अवसर को भी आप लोगों ने हाथ से छोड़ कर समय के आसरे बैठे रहे तो फिर सिवाय पछताने के और कुछ भी हाथ नहीं आने का है। अतएव मेरे प्यारे भाईयो! उठो और शीघ्र इस उपयुक्त समय का सदुपयोग करो!

कार्य करने वाले एवं जातीय दुर्दशा से खेदित उत्साही या योग्य कार्य करने वाले पुरुष समय की प्रतीक्षा नहीं करते। वे इस बात को नहीं मानते कि समय कार्य को बनाता तथा बिगाड़ता है अर्थात् भाग्य, मनुष्य का विधाता है परन्तु वे मनुष्य को ही काल का बनाने बिगाड़ने वाला मानते हैं-मनुष्य, भाग्य का विधाता है ऐसा उन लोगों का सिद्धान्त है। क्योंकि महान् पुरुष प्रतिकूल परिस्थिति में पैदा होकर अपने ज्ञान एवं बाहुबल के द्वारा

अनुकूल परिस्थिति पैदा करते हैं। और यही बात उनकी महत्ता की द्योतक है। सिंह अपना आहार स्वतः खोजता है, दूसरे के द्वारा पाये हुए आहार में उसे मजा नहीं आता। महान पुरुष संकटों में पलते हैं और संकटों से भरे रास्ते में प्रवेश करके दूसरों के लिये सरल एवं सुखद करदिया करते हैं। इसी लिये कहना पड़ता है कि "आपत्तियां महत्ता की जननी हैं।" और यदि कदाचित् योग्य और अनुकूल परिस्थिति अपने आप मिल जाय तो उसको आलस्य में गमा देना बुद्धिमानी नहीं है। परन्तु बुद्धिमानी उसके सदुपयोग में ही है। अतएव नवयुवक भाइयो! हम लोगों के लिये जातीय संगठन का उचित अवसर यही है। आशा है इसे आप लोग व्यर्थ ही न गमा देंगे। किन्तु इससे कुछ कार्य लेंगे।

नया और पुराना।

मानव हृदय में, आज से नहीं अपरिमित काल से, एक महायुद्ध हो रहा है दोनों पक्ष जबर्दस्त हैं एक का नाम है नया, दूसरे का नाम है पुराना। जगत शब्द का अर्थ ही है कि जो चले इसलिये हर एक चीज चलती ही रहती है। अवस्था से अवस्थान्तर में, क्षेत्र से क्षेत्रान्तर में, जाना अनिवार्य है। इन अनिवार्य छोटे छोटे परिवर्तनों से ही महापरिवर्तन हो जाते हैं इसी समय नये और पुराने का युद्ध जोर पर आता है।

मनुष्य प्राचीनता का कायल है जो रीति या वस्तु उसे एक बार अच्छी लगती है, मनुष्य उसे सदैव अच्छी ही देखना चाहता है मगर प्रकृति ही मनुष्य की इस स्वतंत्रता को छीन लेती है गर्मियों के दिनों में हम जिस कपड़े को ओढ़ कर सोते थे जाड़े में उससे काम नहीं चलता। सामाजिक बातों के लिये भी यही नियम है।

किसी समय बालक बालिकाओं की छोटी उमर में विवाह करने की आवश्यकता हुई थी इससे बालविवाह होने लगे आवश्यकता दूर हो गई फिर भी वही बात चलती ही जाती है। मनुष्य समाज यहीं पर एक बड़ी भारी भूल यह करता है कि उन कार्यों को धर्म का रूप दे देती है इसलिये बालविवाह के पोषण में लिखा गया कि—

> अष्ट वर्षा भवेद्गौरी नव वर्षा च रोहिणी,
> दशवर्षा भवेत्कन्या तदूर्ध्वञ्च रजस्वला।

मनुष्यों में आंख मूंद कर विश्वास करने वाले बहुत होते हैं इसीलिये इस रीति की अच्छी विजय हुई वैद्यक शास्त्र ने कहा कि "पूर्ण षोड्स वर्षा स्त्री पूर्ण विंशेन संगता" आदि, मगर कौन पूछता है? धर्म की ओट में छिपकर इस रीति ने विजय पाली बिचारा वैद्यक मुँह ताकता ही रह गया

कोई कोई रीति रिवाज तो बहुत बेहूदे भी होते हैं फिर भी वे इसी दम पर चलते रहते हैं कि वे पुराने हैं पुरानेपन का सहारा सब से बड़ा सहारा है इसके आगे किसी की नहीं चलती। पुराने की यही युक्ति है कि "हम पुराने हैं पहिले आवश्यक थे तो अब अनावश्यक कैसे बन सके हैं?"।

वह कहता है भाई ! रागी देवों की पूजा करो क्योंकि तुमने एक दिन की थी, क्या अब वे दिन भूल गये तुम्हारे बाप दादों ने जो काम किया तुम उस पर उपेक्षा क्यों दिखलाते हो ? क्यों कृतघ्नता माथे लेते हो ? नया कहता है "नहीं ! मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह विवेक शक्ति से काम ले जो बात अच्छी है उसे करना ही उचित है वह चाहे आज की हो या पुराने जमाने की। और जो बुरी है उसे न करना ही उचित है वह भी चाहे आज की हो अथवा आदम के जमाने की"।

पहिले जब नयादल नयी बात कहता है तभी पुरानेदल की आंखें टेढ़ी हो जाती हैं और हर तरह से उसके दबाने का चेष्टा की जाने लगती है मगर इतिहास साक्षी है कि सत्य की विजय होती है चाहे वह आज हो या दो दिन बाद।

हमारी समाज में सैकड़ों रिवाज हैं जो किसी समय आवश्यकता पड़ने पर चल पड़े थे मगर धीरे धीरे उनने रूप पकड़ लिया। बीस वर्ष पहिले विवाहों में इतने नेग दस्तूर होते थे जिनके पूरे करने में आठ दिन लग जाते थे यद्यपि धीरे धीरे ये दस्तूर बहुत घट गये हैं फिर भी लकीर के फकीर कहलाने के लिये काफी हैं इतने पर भी पुराने दल के लोग बहुत उदास हैं "हाय अब विवाह में रहा ही क्या ? बाप दादा के दस्तूर तो मिट ही गये" अगर आप उनसे पूछिये कि इनसे क्या फायदा है ? तब वे बिचारे यही उत्तर देते हैं कि वाह ! बाप दादों से चले आये हैं क्या अपने पुरखा मूर्ख थे ? उनने चलाये तो कुछ समझ के चलाये होंगे ! बस यही उत्तर है उस सोच समझ की बानगी भी ले लीजिये

हमारे एक अग्रवाल मित्र हैं उनकी ससुराल के लोग पचवारे अग्रवाल हैं। पचवारों में यह रिवाज है कि जब भाँवर पड़ने लगती हैं तब चार आदमी कन्या को मृतक सा बना कर खाट पर ले जाते हैं और चार आदमी उस खाट को उठा कर जोर से दौड़ते हुए भागते हैं बिचारी कन्या की हड्डियाँ ढीली हो जाती हैं वर को भी एक घोड़े पर चढ़ाकर खूब दौड़ाते हैं धीरे धीरे चलाने का रिवाज नहीं है भागते भागते एक वट वृक्ष के नीचे पहुंचते हैं और वहीं से भाँवरें पड़ती हैं अब इस रिवाज की उत्पत्ति भी सुन लीजिये—

एक बार किसी पचवारे के घर बरात आई थी भाँवर पड़ने का समय हो गया था कि खबर मिली कि मुसलमान लोग कन्या छीनने के लिये सेना लेकर आ रहे हैं बस ! सुनते ही सब के मुंह फीके पड़ गये। एक चतुर ने कहा कि इस समय भागने के सिवाय कुछ उपाय नहीं है कन्या को मुर्दा सा बना कर भाग चलो अगर रास्ते में मुसलमान मिल जावेंगे तो कह देंगे कि मुर्दा है जलाने के लिये जा रहे हैं।

वर को भी भगा ले चलो जहां मौका मिलेगा भाँवरें पाड़ देंगे निदान ऐसा ही हुआ भागते भागते एक जंगल में वट वृक्ष मिला वृक्ष, देव स्वरूप माना जाता है इससे अच्छा साक्षी और कहां मिलेगा बस भाँवरें पड़ गईं।

अब न मुसलमानों का डर है न कोई वैसा आक्रमण करता है तो भी वही रीति आज तक चली आती है। रीति चलाने वाले एक जगह भूल गये उन्हें चाहिये था कि मुसलमानों की कृत्रिम सेना का आक्रमण और कराते तो पूरी नकल हो जाती। रिवाज विकलांग क्यों रहे

बिचारे ने क्या पाप किया! पाठक इससे समझ गये होंगे कि ये रिवाज कैसे पैदा हुए हैं और उन समझदारों ने कैसी बुद्धि का परिचय दिया है यदि खोज की जावे तो प्रायः सभी रिवाज के ऐसे ही कारण मिलेंगे।

अपने यहां विवाह में वधू के द्वारा बर्तन में आटा रख कर हंडिया पिट्ठले बनवाये जाते हैं जो कि वधू की गृह कार्य विषयक परीक्षा है और वर से "ओनामासीध"* लिखवाया जाता है जो कि वर के ज्ञान की परीक्षा है अब इस बात की कोई जरूरत नहीं है वर कन्या की तो पहिले ही परीक्षा हो जाती है फिर इस प्रकार गमारू ढंग से परीक्षा करने की क्या जरूरत है? मगर बड़े बूढ़े क्या मूर्ख थे इसका उत्तर क्या दिया जाय?

गधना अपने यहां का प्रधान दस्तूर है इस में वर पक्ष वालों की, औरत बनने की हवस पूरी हो जाती हैं मगर इन बनी ठनी औरतों की मूछें, औरत का स्वांग भी पूरा नहीं बनने देतीं। न औरत-न मर्द फिर क्या कहें दादा! मालूम नहीं किस दिल्लगी बाज बड़े बूढ़े के दिमाग शरीफ में यह बात आई थी जिसकी कि परम बूढ़े भक्तों ने पूरी नकल की। सम्भव है किसी समय किसी विवाह मे ऐसी दिल्लगी हुई होगी मगर सदा के लिये सारी जाति में ऐसा रिवाज चला देना अक्ल की खूबी है। हां वर पक्ष की स्त्रियों का कपड़े आदि देकर कुछ सत्कार करना है तो सभ्यता के साथ किया जा सकता है उसके लिये इस बेहूदे रिवाज की क्या आवश्यकता है ऐसे समय में जबकि गरीबी और मूर्खता लोगों को तबाह कर रही है, इस ढंग से किया जाता कि जिसे देख कर संसार का कोई भी सभ्य अ कर प्रसन्न हो जाता और पैसा भी थोड़ा लगता।

बड़ी भारी बरात लेकर आने की क्या आवश्यकता है इने गिने आदमी जावें ग्राम वालों को पंगत देने की भी क्या आवश्यकता है समय पर पान सुपारी मोला फल आदि से उनको सत्कार कर दिया जाय दुनियां भर के नेग दस्तूरों की क्या आवश्यकता है जैन विवाह पद्धति से विवाह कर दिया जाय! दहेज देने की या मन मुटाव करने की भी क्या आवश्यकता है? बारह वर्ष पालन पोषण कर कन्या सौंप दी यही क्या कम है! सच पूछो तो इस दान से वर-ससुर का इतना ऋणी हो गया है कि जितना मा बाप का भी नहीं है मा बाप को लड़का तो बुढ़ापे की लकड़ी होता है मगर ससुर को तो सहारा देने के सिवाय लेने का विचार भी नहीं आता मगर यह सत्य भी सिर्फ नया होने के कारण पुराने दल के तृतीय नेत्र से भस्म हो जाता है।

करना तो दूर रहा वे ऐसी बातें सुन कर कान तक इतने जोर से मूंदते हैं कि पिचक जाते हैं और भी न मालूम कितने रीति रिवाज हमारी जाति में फैले हुए हैं जिनकी न तो कुछ उत्पत्ति ही मालूम पड़ती है और न कुछ प्रयोजन, कई तो ऐसे हैं जो धर्म के नाशक हैं। जैसे विवाह होने के पहिले देवी देवताओं की पूजा करना, बच्चों को माता की बीमारी होने पर देवी ढारने जाना, विवाह में कढ़ाही रखने के पहिले छिटकी देना या वर-ढोल के चबूतरे पर नारियल चढ़ाना, गड़ा ताबीज बंधवाना इत्यादि-माना कि कहीं कहीं या किसी किसी घर में ये काम नहीं होते जिस

* ओनामासीधं—ओं नमः सिद्धं' का अपभ्रंश है पुराने समय में प्रायः नमः के योग में द्वितीया का भी प्रयोग होता था।

जाति का अधिकांश भाग ऐसा अन्ध श्रद्धालु है- इस जाति का उद्धार कभी नहीं हो सका। इसके लिये बहुत प्रयत्न किया गया मगर इसलिये ये रवाज बन्द नहीं होते कि ये पुराने हैं अस्तु—अब परस्परिक व्यवहार के विषय में भी सुन लीजिये—

पौराणिक काल के बाद से भारतवर्ष का आदर्श भ्रष्ट हो गया है इसी भ्रष्टावस्था में जो रिवाज उसके हाथ लगे वे आज पुराने कहलाने लगे। जिनके मिटाने की तो बात जाने दीजिये उनके विषय में बात करना भी पाप समझा जाता है। जब रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी के साथ सीता को ढूड़ते हुए बन में भटक रहे थे कि उन्हें अचानक सीता जी का एक आभूषण मिला। रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी से कहा कि देखो यह सीता जी * का भूषण मालूम पड़ता है लक्ष्मण जी चुप रहगये उन बिचारों को मालूम ही नहीं था कि सीता जी पैरों के ऊपर क्या पहिनतीं हैं निदान जब चलते चलते पैरों का भूषण मिला तब लक्ष्मण ने तुरंत पहिचान लिया और रामचन्द्र जी से कहा "आर्य † मैं यह तो नहीं जानता कि सीता जी पैरों के ऊपर क्या पहिनतीं हैं हां पैर के भूषण पहिचानता हूं क्यों कि हर दिन सीता जी के चरण बन्दना का मौका आता है—माना कि यह कवि कल्पना ही है। मगर इससे यह तो अच्छी तरह विदित हो जाता है कि देवर भौजाई के सम्बन्ध में भारतीय आदर्श क्या है।

प्राचीन समय में वर सास ससुर को प्रणाम करता था उनको बिलकुल उसी दृष्टि से देखता था जिस प्रकार कोई अपने माता पिता को देख सकता है। जिस समय दशरथ को कैकेई ने वर लिया उस समय कुछ राजा लोग बिगड़ पड़े दशरथ के ससुर को युद्ध करना आवश्यक था इसलिये वे युद्ध को तैयार हुए दशरथ ने यह देखकर कहा "तात! पुत्र के समर्थ रहते आप को इस अवस्था में कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। मैं इन सब को परास्त कर दूंगा, ससुरने आशीर्वाद दिया। दशरथने प्रणाम किया। और युद्ध के लिये प्रस्थान करने लगे रणनिपुण कैकेई से न रहा गया उसने लज्जा छोड़कर पति का साथ दिया अर्धांगिनी शब्द का अर्थ क्या है? यह प्रत्यक्ष बतला दिया। आज पति के काम में इस तरह हाथ बटाने वाली नवबधुएँ कहां हैं? यदि सौभाग्य से ऐसी कोई हो भी तो समाज ऐसा नहीं करने देती वे बूढ़ी डुकरियाँ तुरन्त चिल्ला कर कहने लगती हैं कि एक दिन हमारा भी विवाह हुआ था। मगर हम पति के पीछे इस तरह कभी न फिरतीं थी विवाह होते ही तुझे बाप महतारी सब भूल गये एक आदमी से ही लगन लग गई" भला ऐसी परिस्थिति में पति पत्नी की सहायता कैसे ले सका है? हमें ऐसी घटनाओं का भी पता है कि पति मृत्यु शय्या पर पड़ा है और नवबधू लोकलाज के कारण उसका मुंह भी नहीं देख पाती पति परलोक चला जाता है नवबधू सिर पीटती रह जाती है इतने पर वे ही डुकरियाँ आजाती हैं जिनके बिजूके बननेसे बिचारीने मुंह तक नहीं देख पाया और कहने लगतीं हैं "राम! राम! बिचारीने मुंह तक नहीं देख पाया" यह घाव पर नमक छिड़कना

* जब रामचन्द्र जी के मुख से सीता जी के लिये "जी" शब्द का प्रयोग जान बूझ कर करा रहे हैं तब उस समय स्त्रियों का नाम सम्मान के साथ ही लिया जाता था आजकल के समान उनके पैर की जूती न समझी जाती थी।

† कैयूरे नैव जानामि कुंडले नूपुराण्येव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्

नहीं है तो क्या है यह अन्धेर सब इसी लिये होता है कि बाप दादों की यही रीति है।

अगर कैकेयी ने भी ऐसा ही किया होता तो शायद दशरथ विजयी न हुए होते और इससे कैकेयी का सर्वनाश हो जाता। इससे मालूम होता है कि प्राचीन भारत का जीवन कितना स्वतंत्र और सभ्यता पूर्ण था और एक आज का जीवन है। कन्या पैदा होते ही यह चिन्ता होने लगती है कि हाय! अब तो छोटे छोटे लोगों के भी पैर पूजना पड़ेंगे कहावत है कि कन्या को तो ससुराल के कुत्ते तक की बड़ी इज्जत करना चाहिये। यह ठीक है मगर पितृगृह के कुत्ते ने क्या अपराध किया है? क्या कन्या का जन्म इतना खराब है कि घर वाले तो घर वाले, गांव वालों को भी इज्जत से हाथ धोना पड़े। जब ऐसी परिस्थिति है तब कन्या पैदा होते ही मुँह लटकाने वालों को बुरा कहने का किसी को क्या अधिकार है?

यह समाज की दुर्नीति ही कन्या के माता पिता को यह मौका देती है कि "चलो क्या करना है लड़की को अपने घर में तो रहना नहीं है फिर व्यर्थ ही क्यों उसे लालन पालन के लिये कष्ट उठाया जाय" यही कारण है कि कन्या मैं अशिक्षित और मूढ़ रहकर ही वधू बन जाती हैं और ससुराल में आकर सारे कुटुम्ब को ले डूबती है। ससुराल वाले मा बाप को गालियाँ देते रह जाते हैं। यह सब होता है पुरानी रीति और व्यवहार के नाम पर।

समाज ने कन्या पक्ष को इतना गिरा दिया है कि जिस माता की हम पूजा करते हैं उसी के बड़े भाई से पैर पड़वाने में शरमिन्दा तक नहीं होते। गुरुजनों की पूजा करने के बदले पूजा कराना भी निकटभूत में होने वाले पुराने जमाने की खूबी ‡ है।

इन सब बातों पर विचार करने से साफ मालूम होता है कि हम रूढ़ियों के दल दल में ऐसे फँस गये हैं। कि हम में चलने फिरने की ताकत तक नहीं है। हमारी विवेक शक्ति भी लुप्त हो चुकी है और अब हम आंख मीच कर रहना चाहते हैं क्योंकि खोलना पुरानी रीति के विरुद्ध है।

सब बात तो यह है कि यदि हम अपने में फिर जीवन लाना चाहते हैं तो हमें शान्ति मय क्रान्ति के लिये तैयार रहना चाहिये गतानुगतिकता लोगों में स्वाभाविक ही होती है मगर इस की भी कोई हद है।

यूरोप में दो शताब्दी पहिले हजारों औरतें डाइन कहकर मार डाली जाती थीं। यह वहां की धार्मिक पुरानी रीति थी। मगर जिस समय इस काम की बुराई योरोपवासियों को मिली तुरन्त उनने इस प्रथा का काला मुँह किया। पहिले वे लोग इन्हें दोजख का रास्ता समझते थे। मगर जबसे उनकी हत्या बन्द हुई दोजखका रास्ता भी बन्द हो गया।

इसी तरह हमारे यहां के जिन लोगों को विश्वास है। कि अमुक देवी हमारी कुल देवी है, वह बच्चों की रक्षा करती है, आदि उन्हें अब इस प्रकार के मिथ्या विश्वास से दूर रहना चाहिये। हमारी माताएँ ही हमारी कुल देवियां हैं—वे ही हमारी रक्षा कर सकी हैं। कल्पित देवताओं के पीछे हाथ धोकर पड़ने से धर्म से हाथ धोना पड़ता है। उन्हें यह तो विचार करना

‡ ऐसा क्यों होने लगा है इस विषय में कभी फिर लिखा जायगा।

चाहिये कि जो लोग दुनियाँ भर के देवी देवतों को नहीं मानते वे हम से भी हृष्ट पुष्ट पाये जाते हैं। यूरोप के देशों में जहां कि प्रायः अनेक देवी देवों की पूजा उठ गई है—आयुका औसत पैंतालीस वर्ष है और हमारे भारतवर्ष में जहां कि घर पीछे सैकड़ों देवी देवता रखवारे हैं आयु का औसत सिर्फ चौबीस वर्ष है। क्या अब भी लोग मिथ्या अज्ञान से बाज नहीं आना चाहते ?

मनुष्य को सदा विवेक शील होना चाहिये उसे स्वयं अच्छे बुरे की, आवश्यक अनावश्यक की, न्याय, अन्याय की परीक्षा करना चाहिये। जो चली आ रही है वह चली जाने दो यह मनुष्य की अन्धता जाहिर करती है।

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणः-
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।

यह कुआ हमारे बाप दादों से चला आ रहा है ऐसा कहनेवाले कायरपुरुष जन्म भर खारा पानी ही पीते रहते हैं।

शान्तिमय सामाजिक क्रान्तियाँ अशान्ति से नहीं होतीं और न उनके लिये अशान्ति की आवश्यकता है। समाज स्वयं विवेकसे काम ले, भला बुरा सोचे-अच्छा लगे तो किसी की न सुनकर करने लगे। बुरा लगे तो और सोचने को समय निकाले।

न नया सभी खराब है और न पुराना सभी अच्छा। थोड़ी थोड़ी दोनों में खराबी है और थोड़ा थोड़ा दोनों में अच्छापन। ऐसे मौके पर मनुष्य की विवेक शीलता ही काम दे सकी है।

पुराण मित्येव न साधुसर्वं

चपला।

बचपन से चपला के रूप की तो प्रशंसा थी ही अब उसके यौवनोन्मुख लजीले मुख और शरीर की सुन्दरता ने उसे अत्यधिक प्रसिद्ध बना दिया है पनघट, हाट-बाजार, घर-दुकान यहां तक कि देवालयों में भी जहां दस पांच स्त्री पुरुष इकट्ठे हुए कि चपला की चर्चा का प्रसंग आया, कोई उसकी रूपराशि का बखान करते हैं, कोई उसकी विद्याबुद्धि का, कोई उसके कला कौशल का, और कोई २ उसकी सरलता, सहृदयता, एवं मधुर वचनालाप और स्वाभाविक सहानुभूति का। तात्पर्य यह है चपला ने प्रायः सबके ही हृदयों में अच्छा स्थान पा लिया है सब कोई उसे देख सुनकर प्रसन्न होते हैं। किन्तु जैसे पूर्णचन्द्र जगत् को सुखकर होनेपर भी विरहीजनों को दुःखकर होता है। ठीक वैसे ही अनुपम सुन्दरी एवं सर्वप्रिय चपला अपने विचारवान् पिता को क्लेशदायिनी हो रही है।

[२]

सेठ प्रेमसुखदास का कारबार के साथ नाम भी बहुत फैल गया है, उन्हें छोटे बड़े सब जानते हैं. बिना उनके पञ्चायत में न्याय भी नहीं होता, जाति बिरादरी के सब कामों

में वे पहिले पूछे जाते हैं। वे दिन गये जब इन्हें कोई अपने पास भी न बैठने देता था इनके फटे हुए अंगरखे और लटकती हुई पगड़ी की मखोलें उड़ाने वाले ही आज उनके दास एवं पिछलग्गू बने हुए हैं, प्रतिदिन लाखों का देन लेन होजाता हैं। जबान हिली कि काम हुआ। इन सब सुखों के होने पर भी स्त्री के मर जाने से दुखी हैं। एक तो ढलती उम्र दूसरे ५ पुत्र ३ पौत्र ४ पुत्री और ७ धेवते धेवतियों (दौहित्र) को छोड़कर स्त्री का मरजाना बड़े दुःख ही सामग्री है। इसी से सेठ जी की भरी मशक (दृति) बराबर फूली हुई तोंद पटक कर लटक गई है। सब अड़ोसी पड़ोसी और नाते रिश्तेदारों ने उन्हें प्रसन्न-एवं कारबार में दत्त चित्त रहने की सलाह दी, किन्तु ऊसर जमीन में बोये हुए बीज के समान सब कहना सुनना, समझाना बुझाना निष्फल हुआ। और उन्हों ने सबसे यही कह दिया कि सुख बिना स्त्री के नहीं है, सब अपने २ मतलब के गीत गाते हैं, कोई हमारा भी सुख सोचने और दुःख देखने वाला है, इस लिये यदि आप सब वास्तव में हमारे हितू (हितचिन्तक) हैं तो शीघ्र ही कहीं से हमारा विवाह होजाना चाहिये।

[३]

बहाना बनाने से तो काम नहीं चल सका है। वे तो अब बिलकुल इसी बात पर हठ ठाने हुए हैं, मैंने बहुतेरा कहा, दीनता दिखाई खुशामद की, हाथ जोड़े, पांव छुए और सिर पटका तो भी उन्हों ने एक न मानी बताओ, मैं अब क्या करूं ?

ये बातें बाबू नारायणदास ने अपनी धर्मपत्नी पद्मावती से झुंझलाते हुए बड़े ही अनमने भाव से कहीं, सुनते ही यह बेचारी दुःखमना रोती हुई एक ओर बैठ गई, कुछ देर बाद इस तरह बात चीत होने लगी।

पद्मावती-क्यों जी ! क्या मेरी प्यारी चपला उसी बूढ़े कसाई को ब्याही जायगी ? मुझ से तो यह न देखा जायगा।

नारायणदास—क्या बताऊं ? मैं तबही से परेशान हूं, पर क्या करूं बुरी तरह फंसा हूं। एक ओर कन्या के जीवन की चिन्ता है और दूसरी ओर जातीय बन्धन, पञ्चायती, नियम, और इज्जत, आबरू, तथा घर, जमीन का ख्याल है। कन्या की रक्षा करने के उपायों को काम में लाते ही सब गुड़ गोबर हुआ जाता है।

पद्मावती—जाति वाले क्यों ऐसा कहते हैं। क्या तुमने उनसे यह नहीं कहा कि हम बाबू मोतीलाल वकील के सुपुत्र बृजमोहनलाल के साथ अपनी कन्या का विवाह करना चाहते हैं। लड़का सुन्दर, सुशील और हृष्ट पुष्ट होने के साथ ही बी० ए० में पढ़ता है। यदि तुम ये बातें कहते तो जातिवाले बड़े प्रसन्न होते और तुमसे वैसा हठ न करते।

नारायणदास—मैंने ये सब बातें भी कहीं थीं इसके उत्तर में वे कहते हैं कि बा० मोतीलाल का गोत्र—मूर तुम्हारे गोत्र से नीचा है, नीचे गोत्र में कन्या देना पाप है जातीय नियमों का उल्लंघन है और अपने पुरखों (पूर्व पुरुषों) की बात में बट्टा लगाना है। अतः यदि जाति में रहना है तो जातीय नियमों के अनुसार चलो पढ़ लिखकर ऐसे अंधे न बनो कि जाति तुम्हें दुत कारने लगे-छोड़दे। उन (पंचों) के ऐसा कहने पर मैंने यह भी कहा था, कि तो मैं राधेलाल या माणिकचन्द को अपनी कन्या ब्याह दूंगा। वे भी पढ़ते लिखते हैं, वैसे तो बृजमोहनलाल

के बाबत ही सोच रक्खा था। क्यों कि जब हमारा आपका और उन सब का खान पान आचार विचारादि एक ही है तब विवाह हो जाने में ही कौनसी आपत्ति है ?

[४]

"बिरादरी की बात न मानने का यही दण्ड है. अब देखें, नारायनदास को कौन साथ देता है ? हम सब ने समझाया पर उनकी समझ में एक भी न आई अपना ही निराला राग आलापते रहें, इत्यादि बातें प्रेमसुखदास के खुशामदी टट्टू इधर उधर करते फिर रहे हैं"। इन लोगों ने आपस में सलाह करली है कि यातो नारायनदास अपनी कन्या चपला का विवाह सेठ जी के साथ कर दे, नहीं तो कुछ (मनमाना) दोष लगा कर उन्हें बिरादरी से बहिष्कृत कर देंगे और फिर "नारायणदास के पिता ने अपने घरेलू झगड़ों के कारण घर-ज़मीन का जो फर्जी (केवल नाम मात्र को-वास्तव में झूठा) बैनामा (बिचते नामा) सेठ जी के नाम कर दिया था" उसके दख़ल का दावा करवा देंगे। तब ही नारायणदास की अक्ल ठिकाने आयेगी-तब मालूम हो जायगा कि वह कहां रहता है ! और कैसे सेठ जी के सिवाय दूसरे बी० ए०-एम० ए० लड़कों के साथ अपनी कन्या के विवाह की बातें करता है।

इन सब अफवाहों ने विचारे नारायणदास को विकल करदिया बिरादरी की बेजा धौंस और सेठ जी के विश्वास घातक व्यवहार की बातें सुनते २ वह बीमार पड़ गया, दिन निकलते २ उसे दो चार असह्य बातों को सुनाने वाले आजाते और समझाते कि "भैय्या ! हमतो तुम्हारी भलाई में हैं, देखो ! मान लो, सब से बिगड़ना अच्छा नहीं है, इस बार सेठ जी की ही बात रख दो, नहीं तो क्या तब समझोगे जब दावा हो जायगा ! खर्चे की डिग्री में लट्टू पट्टू नीलाम होने की बारी आयगी और कहीं बैठने को हाथ भर जगह तक न रहेगी" ऐसी २ अनेकानेक बातें नारायणदास के हितैषी बनने वाले उनसे कह जाया करते थे, एक तो बीमारी दूसरे इन बातों का सोच विचार—इस चक्र में पड़ कर विचारे नारायणदास की अवस्था शोचनीय हो गई, वैद्य डाक्टरों के अनेक प्रयत्न करने पर भी उनकी दशा सँम्भलना तो दूर, नित्य प्रति बिगड़ती ही गई उनकी आखों से अविश्रान्तरूप से अश्रुधारा बहती है, न वह किसी से कुछ कहते हैं और न कुछ सुनने की ही इच्छा है।

पद्मावती और चपला भी यथा साध्य उनकी सेवा सुश्रूषा करती और शेष समय में उनकी चारपाई-पलंग के पास बैठकर उन्हीं के अनुकरण से अविरल अश्रुधारा बहाया करतीं। उन्हें अपने सर्वस्व की यह दशा, खाना पीना, आराम आदि सब बातों की ओर उपेक्षा कराने लगी. उनके घर में चारों ओर सांय २ सन्नाटा सा छाया रहता।

[५]

सेठ जी की ओर से नारायणदास के नाम अदालत दीवानी में दख़ल का दावा दायर हो गया. २५ तारीख फैसले के लिए मुकर्रर हुई। सेठ जी की ओर से खूब पैरवी की गई, किन्तु नारायणदासको उस दिन होश भी नहीं था— उन्हें स्वप्न में भी यह बात मालूम न होने पाई कि उनकी इस रोगजर्जरित दशा में कोई विश्वास घातक उनकी पैत्रिक सम्पत्ति को ही हड़पने की पूरी चेष्टा कर रहा है। अदालत में

मुकदमा पेश हुआ और एक तरफा फैसला सुना दिया गया कि "मकान पर सेठ जी को दखल दिलाया जाय और बाजाब्ता खर्चा मुद्दई (सेठ जी) को मिले"

अब क्या था? अपील की मियाद निकल जाने के बाद तुरन्त ही डिग्री जारी कराई गई और दखल लेने की कारवाई की।

आज बड़ी शान शौकत से सेठजी के खास गुमाश्ते दयाचंद ने अमीन के साथ नारायण दास के घर की ओर प्रस्थान किया। गली के पास पहुंचते ही उनके मन में एक अनिर्वचनीयभय का संचार होने लगा. रास्ते भर मन ही मन जो अपने सेठ जी की स्वार्थ साधना के लड्डू बनाते आये थे वे सब विलीन होगये.

नारायणदास के दरवाजे पर पहुंचे ही थे कि भीतर के करुणाक्रन्दन ने उन्हें पिघला दिया, पद्मावती और चपला के रोदन से उन्हें भी रुलाई आगई, भीतर जाकर देखा मृत नारायणदास का दाह क्रिया के लिए ले जाने की प्रस्तुत व्यक्तियां दिखाई दीं। सबने दयाचंद के साथ अमीन को देख कर एक स्वर से कहा, हाय! क्या सेठ जी इतने निर्दयी—हृदयहीन और पाप वासना लिप्त हो गये हैं कि उन्हें इस काम (कुर्की और दखल) के लिए यही समय उपयुक्त जचा! अफसोस.।

[६]

आश्रयहीना पद्मावती को चारों ओर सिवाय अन्धकार के और कुछ दिखाई ही नहीं देता था बिलख २ कर रोने चिलपने में ही रात दिन काटने लगी, दयालु मोतीलाल वकील ने उसके रहने खाने पीने आदि की सुव्यवस्था करनी चाही, किन्तु पुराने खुर्राट पंचो के प्रपंच के कारण वे अपने हार्दिक भावों को सुस्पष्ट रीति से चरितार्थ न कर सके फिर भी उन्होंने उसकी यथा साध्य सहायता करके अपने उदारभाव का अच्छा परिचय दिया।

दुःख की भट्ठी में जलती हुई पद्मावती के ऊपर पंचों को प्रपंच रचने का अच्छा अवसर मिला, उन्होंने सेठ प्रेमसुखदास की हां में हां और नां में नां मिलाते हुए निश्चित आज्ञा देदी। "पद्मावती नारायणदास की तेरहीं (नुकता) करे, और पंच तब भोजन ग्रहण करेंगे जब कि वह यह प्रतिज्ञा करले कि अपनी कन्या चपला का विवाह पंचों की ही आज्ञा से करेगी। यदि ऐसा न करेगी तो बिरादरी से खारिज हो जायगी" राजाज्ञा से भी पंचायती हुकम अधिक प्रभावक होता है, अतः पद्मावती को उसकी इच्छा के विरुद्ध भी यह हुकम मानने के लिए बाध्य किया गया, उसने बहुतेरा कहा कि जब इसी बिरादरी की न्यायवेदिका पर मेरे प्राण-प्यारे के प्राण बलि किये जा चुके हैं उन्हें आमरणान्त शान्तिलाभ न प्राप्त होने का श्रेय इन्हीं पंचों के माथे शोभायमान कर रहा है और मुझ दीन, हीन निराश्रया बनाने का पुराणपुण्य भी इन्हीं महानुभावों को है तब मैं इनकी बात मानकर के ही क्या करूंगी? अब मेरे पास रहा ही क्या है? जो ये लोग अपने छल कपटों द्वारा छीनने की कोशिश करेंगे इत्यादि २ बातों का उत्तर उस असहाय अबला को यही समझाया जाता कि अरी पगली! तू यही तो नहीं जानती, यदि नारायणदास ही पंचायती बातों की अवहेलना न करते तो क्यों उन्हें और तुम्हें इतना कष्ट भोगना पड़ता! इसीसे हम कहते हैं कि अब भी मानले और पंचायती नियमों के अनुसार चल और प्रतिज्ञा करले कि सदा उसी की आज्ञाकारिणी रहेगी, यदि तूने ऐसा किया तो हम सब तुझे मकान वगैरह दिलाने का

भी प्रयत्न करदेंगे, अतः तू हम लोगों का कहना मानले, नहीं तो पछतायगी ।

[७]

पञ्चायती आज्ञा के अनुसार तेरहीं का प्रबन्ध किया गया। अब सब लोगोंकी यही राय है कि पद्मावती अपनी कन्या चपला का विवाह सेठजी के साथ ही करे, बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी बिचारी पद्मावती पंचों के कठोर हृदयों को न पिघला सकी और उनके आदेशों को, इसलिए मनाने को बाध्य हुई क्योंकि लोगों ने उसे यह भय दिला दिया था कि अब की बार पंचायत की अवहेलना करने पर तू लज्जित करदी जायगी। फिर देखें ! कैसे तू किसी और के साथ भी चपला का विवाह करदेगी ।

बिचारी पद्मावती को लाचारी से उसी सेठ के साथ अपनी प्राणप्यारी कन्या का विवाह कर देने की स्वीकारता देनी पड़ी जिसे वह एक दिन "बूढ़ा कसाई" कह चुकी थी। विवाह की तैयारियाँ हुईं और विवाह होगया सुशिक्षिता चपला पर इन बातों का जो असर हो सकता था वही हुआ उसे खुशी का कोई चिन्ह भी नज़र न पड़ा पंचों ने माल उड़ाये और सेठ प्रेमसुखदासजी अब सपत्नीक होने का गर्व करने लगे किन्तु पद्मावती अपने घर पर और चपला ससुराल में रात्रि दिन रोने के सिवाय दूसरी ओर दृष्टिपात ही नहीं करती क्यों कि इनको अब सिवाय रोने के कुछ सूझता ही नहीं है ।

[८]

अरे यह क्या बात है ? सब लोग क्यों उधर जा रहे हैं क्या कोई नई घटना है ? या वैसे ही लोग उधर की ओर दौड़ रहे हैं ? आइये पाठक महोदय ! हम और आप भी चलें और देखें कि क्या तमाशा है ?

यह तो सेठ प्रेमसुखदास जी की हवेली दिखाई दे रही है जरा पूछो तो कि माजरा क्या है ? और रोने पीटने की आवाज क्यों आ रही है ?

"विमान बनाओ" सेठजी बड़े भाग्य शाली थे अपने सब कुटुम्ब के सामने प्राण छोड़े, देखो निमित्त भी कैसा अच्छा आ मिला था कि सब लड़की धेवते, धेवतियाँ वगैरह भी आ गये थे, नहीं तो इन बिचारों को सेठ जी का अन्तिम दर्शन भी न हो सका था ।

क्यों पाठक महाशयो ? आपने यह नहीं देखा कि विवाह में आये हुए नाते रिश्तेदारों ने भी उनकी अन्तिम दाह क्रिया में सम्मिलित होने का अवसर सौभाग्य से प्राप्त कर लिया ।

सेठ जी की अन्तिम सवारी निकली, विवाह के दिन के बाद आज ही सेठ जी की सवारी निकली है, सेठ जी को विमान पर जाते देख अनेकों निरपेक्ष व्यक्तियों के मुँह से यही ध्वनि सुन पड़ती थी कि हाय बुड्ढे ने क्यों बिचारी चपला का गला काटा ? न पंचों ने समझाया और बिरादरी ने । अफ़सोस !

अन्तमें हम इतना कहते हुए "कि चपला का भविष्य तो भविष्यत् की गोद में है, किन्तु ऐसे सेठ संसार में बढ़ें, पंचों की बातों का सन्मान हो, ऐसे पंचायती नियम अटल रहें और बिरादरी वाले माल उड़ाने के लिए चिरजीवी हों ताकि संसार की अधिकाधिक उन्नति हो सके" विश्राम लेते हैं ।

"उन्निनीषु"

लीला-संवरण ।

(लेखक—बाबू मंगलप्रसाद विश्वकर्मा, विशारद)

गोधूली-बेला थी। श्रीकृष्ण और अर्जुन नन्दनवन के एक रमणीक स्थान में विचरण करते हुए वनछवि के आनन्द का उपभोग कर रहे थे। क्षण पश्चात् अलक्षित और अप्रासङ्गिक होने पर भी आन्तरिक उत्तेजना के उद्वेलन पर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—"केशव! कुरुक्षेत्र के महायुद्ध को समाप्त हुए आज बहुत समय हो चुका है तब भी शान्ति नहीं मिली। एक अव्यक्त, अपरिस्फुटित एवं अनिश्चित हाहाकार वेदना ने राज्य के वायु-मण्डल को बड़ी स्वेच्छाचारिता के साथ ढक लिया है। हृदय में धूमकेतु के समान आसुरिक प्रवृत्ति-राजत्व जागृत हो उठा है। सामयिक लालसा राहु की उद्दाम शक्ति के समान, दृढ़ता से मनोराज्य को ग्रसती जा रही है। ज्ञात होता है जैसे अभी रक्त पिपासा नहीं मिटी। बताओ माधव स्वर्गीय शान्ति का मार्ग बताओ जिससे मुझे शान्ति मिल सके।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण के मुख-मण्डल पर एक मृदुल हास्य की रेखा खिंच गई। उन्होंने देखा—अर्जुन अपने प्रश्न के उत्तर के लिए बड़ी गम्भीरता के साथ उनकी ओर देख रहा है। श्रीकृष्ण अपनी हँसी को और अधिक न रोक सके। उन्होंने हँसते हँसते कहा—"यह कुरुक्षेत्र की संग्राम-भूमि नहीं है अर्जुन जो मैं तुम्हें फिर उपदेश दूँ। यदि तुम्हें शान्ति ही चाहिए तो जाओ अपने वैभव पूर्ण राजप्रासाद में कुम्भकर्ण की तरह छै छै माह खर्राटे लिया करो—बस, समग्र शान्ति तुम्हें ही मिल जायगी।"

अर्जुन ने कहा—"यह तुम्हारा स्वभाव-चापल्य और सदैव का हास्य-विनोद ऐसे समय पर अच्छा नहीं लगता। आज परम शान्ति का उपाय तुम्हें बताना ही होगा।"

श्रीकृष्ण ने उत्तर में कहा—"देखो, अब बार बार तर्क न किया करो। इतने बड़े भारत-साम्राज्य के प्रभु होकर मेरे पास शान्ति की भिक्षा लेने आये हो। चक्रवर्ती-सम्राट् का यह भिक्षा-दान कैसा? आश्चर्य है! क्या अब गाण्डीव धारण करना छोड़ दिया?"

अर्जुन—"हाँ, बहुत दिनों से उसका उपयोग नहीं किया। प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति जागृति नहीं हो सकी।"

अर्जुन के इस वाक्य को सुन कर श्रीकृष्ण के अन्तस्थल में एक हास्य-स्रोत का आविर्भाव हुआ। वे अपनी हँसी को नहीं रोक सके। हँसी के कारण उनकी बाँसुरी भी हाथ से छूट गई। खिलखिला कर हँसते हुए उन्होंने कहा—"तो क्या अब बृहन्नला बन कर, स्त्रियों के सामने आप अन्तःपुर में नाँचा करते हैं?"

अर्जुन ने कहा—"फिर वही हँसी!—नहीं, नाँचा तो नहीं करता।"

श्रीकृष्ण ने स्मित हास्य से फिर कहा—"तब फिर क्या किया करते हो?"

अर्जुन इस प्रश्न का उत्तर दे सका। उस ने कहा—"भारतवर्ष के दिगन्त व्यापक साम्राज्य का सञ्चालन-परिचालन।"

श्रीकृष्ण ने कहा— "तब फिर गरीबों का लालन पालन भी किया करो।"

अर्जुन— "क्यों? -किया तो करता हूँ। तब भी इनसे क्या लाभ उठा लेना है?"

यह सुन कर श्रीकृष्ण का मुख गम्भीर हो गया। ज्ञात हुआ जैसे उनके अन्तस्तल में एक घोर विप्लव का आक्रमण प्रारम्भ हो गया। उन्होंने बड़ी आतुरता के साथ अर्जुन से कहा- "इसलिए कह रहा हूँ अर्जुन, जिन पर्णकुटियों में धन-धान्य का अभाव है— जहाँ सदैव एक अपरिमित शोकोच्छ्वास और मर्मान्तक आर्तनाद छाया हुआ है- उनके द्वार पर आकर आदर के साथ मस्तक नवाओ। जिस दिन तुम ऐसा करोगे उस दिन तुम्हें परम शान्ति का मार्ग स्वच्छ, उज्ज्वल और सन्निकट दिखाई देगा। तुम्हारा अभीष्ट उपलब्ध हो जायगा और पार्थ?"

अर्जुन—"तब क्या त्याग करना होगा?- त्याग तो मैं युद्ध के पूर्व ही करता था!"

श्रीकृष्ण ने कहा— "उस समय और इस समय की परिस्थितियों में विभिन्नता है। वह त्याग मोह से परिपूर्ण था और यह त्याग स्वर्ग का धर्म है। परमार्थ लोकोत्तर विभूति है और स्वार्थ ऐहिक आडम्बर! औदार्य अनन्त सुखप्रद है और घृणा मृग-तृष्णा का नयन-सुखद सरोवर! त्याग की महिमा बड़ी विचित्र है अर्जुन।"

अर्जुन ने कहा—"निस्सन्देह विचित्र है। पर उसे कहाँ पाऊँगा?"

श्रीकृष्ण—"यमुना के उस पार— जहाँ नन्दन-कानन में, कदली-कुञ्ज में सुन्दर लता-द्रुमादि वेष्टित वृक्षों की शीतल छाया में मेरे बाल सहचर सुदामा का आश्रम है। अर्जुन, तुम वहाँ जाकर देखोगे कि उसका आसन संसार के सभी प्रभुओं से महान् और गरिमा पूर्ण है। वहाँ, घनीभूत निश्छल स्वर्गीय शान्ति का पसार है"।

उत्तर में अर्जुन ने कहा— "तो एक दिन ऐसा ही करूँगा।"

श्रीकृष्ण ने यह सुन कर मौन धारण किया उनके हृदय में एक लोकोत्तर भावना का सूत्रपात हुआ। उनका कण्ठ गद्गद और शरीर रोमांचित हो आया। पृथ्वी पर से बाँसुरी उठा कर उन्होंने बड़े विनीत आग्रह के साथ अर्जुन से कहा— "बस, अब तुम यहीं खड़े रहो और मैं उस सामने वाले बकुल के वृक्ष-तले जाकर बाँसुरी बजाऊँगा। बहुत दिनों से मैंने बाँसुरी नहीं बजाई है। देखो उसमें वही माधुर्य और मोहिनी शक्ति है या नहीं। मुझे बाँसुरी बजाने का बड़ा अभ्यास था। किन्तु देख रहा हूँ कि अब वह नित्यप्रति छूटता जाता है।"

इस समय अन्धकार हो चला था। चन्द्र की सुहासिनी शुभ्र ज्योत्स्ना पृथ्वी पर प्रतिफलित हो रही थी। नक्षत्र समुदाय उदित हो रहा था। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से बड़ी नम्रता के साथ निवेदन किया —"नहीं अब गोधूली बेला हो चुकी है। रात्रि भी हो रही है। अतएव निवास-स्थान को लौट चलो मुरलीधर! आज नहीं, किसी रहस्यमयी राका रजनी में बैठकर मैं तुम्हारी भुवन मोहिनी मुरली-ध्वनि को जी भर कर सुनूँगा।"

इच्छा न रहते हुए भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा— "अच्छा चलो। देखूँ, फिर कभी अवसर मिलता है या नहीं।"

(२)

रात्रि के घोर निविड़ अन्धकार में सुन्दर पुष्पित पल्लव पूर्ण निकुञ्ज में श्रीकृष्ण एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। उनकी आँखों में अलसाया हुआ प्रेम छाया हुआ था। ऊपर नभोमण्डल में तारागण हँस रहे थे और नीचे निकुञ्ज की पुञ्जीभूत निस्तब्धता में कमनीय कुसुम स्तब्धता गम्भीरता में परिणत होती आ रही थी। पास ही अनन्त प्रवाहिनी नील यमुना वैसी ही मृदु मन्थर गति से अग्रसर हो रही थी जैसी वह किसी भी शरत्पूर्णिमा में, वसन्त ऋतु के मुखरित प्रभात में अथवा ग्रीष्म ऋतु की सुखद सन्ध्या के मधुर उच्छ्-वास में पहले कभी बही थी। वैसे ही अति-रञ्जना के साथ जैसे उसके हरित तटद्वय पर प्रफुल्लित मयूर और मृगछौनों का केलि-कलाप। यमुना के आवेगमय सङ्गीत से जैसे समस्त धरित्री मण्डल पर सुप्त सौन्दर्य जागृत हो रहा था।

क्षण भर में श्रीकृष्ण चिन्तालीन हो गये। उन्हें अपने मनोहर अतीत-गौरव का स्मरण हो आया। बाल्य एवं यौवन कालीन स्मृतियाँ उनके काल्पनिक राज्य में एक एक कर आविर्भूत हुईं। वे कहने लगे— "वसन्त ऋतु थी। एक दिन उषःकाल के पूर्व वृषभानु नन्दिनी प्रियतमा राधा कालिन्दी तट पर मधुर नूपुर ध्वनि करती हुई चली गईं। मैं भी उनके पीछे पीछे कौतूहल वश चुप के से चला गया। उन्हें वन्यस्थली से अत्यन्त अनुराग था। वे प्रकृति को अपनी प्यारी सखी सहेली कह कर पुकारती थीं। हाँ, तो मैं एक वृक्ष की ओट में छिप गया और वे वनच्छवि को देख कर मुग्ध हो गईं। वासन्ती वायु उनके वक्षस्थल के वस्त्र-भाग को विकम्पित कर रहा था। नन्दन-कानन सौरभ-पूर्ण था और पृथ्वी पर उषा का आगमन बड़ी गरिमा के साथ हो रहा था। राधा अपने हृदय के आवेग को न रोक सकी। उन्होंने उषा को सम्बोधन करके कहा-आओ सखी उषा अरु-णिमामय आकाश से अपने साजबाज के साथ सुन्दर सलोने सुकुमार वसन्त को गोद में लेकर इस वन-पार्श्व में उतर आओ प्यारी — और अपनी कृपामयी कोर से यहाँ नूतन भाव, नूतन उत्तेजना और नूतन उल्लास हिल्लोल फैला दो। देखो, नव वसन्त के आगमन पर, मधुर सङ्गीत ध्वनि में, नवीन अभिलाषाएँ लेकर मैं इस कालिन्दी तट पर तुम्हारे कुसुम कोमल पद संचार के अभिनय को देखने के लिये कितनी आवेश विह्वलमयी हो रही हूँ। -आओ सजनी"।

उसके पश्चात् राधा ने अपने अप्सरा-विनिन्दित कण्ठ से उल्लसित होकर मधुर रागिनी में गाया—

> आयहु ऋतुराज वरष सुन्दर सुखदाई ।
> बहत सुखद मलय पवन छावत सुचि सुरभि विपन,
> निरखि निरखि बढहिं मगन प्रीति हिय अघाई ॥
> नील वर्ण सुभ्र गगन सोहत है कुञ्ज भवन,
> मोहत है अलिन सघन देखहु सखि आई ॥
> जगमगात निशि चन्द हास सुमन चन्द्रिका प्रकाश,
> मोहन को रुचिर राग छावत दिन जाई ॥
> आवहु सखि कुञ्ज भवन आज करें सुमन चयन,
> जागें ऋतुराज सघन उर विधु सुखदाई ॥

इस अपूर्व गायन से जैसे सुप्त सौन्दर्य में सञ्जीविनी शक्ति का सञ्चार हुआ। मैंने पीछे से जाकर राधा की आँखें मींच ली। तत्काल ही मेरा हाथ हटाते हुए उसने कहा—"ऐसी आँख-मिचौनी अच्छी नहीं लगती।" तब मैंने कहा "तो क्या मुरली-ध्वनि सुनोगी?" यह सुनते ही राधा की आँखें लज्जा से पृथ्वी पर गड़ गईं। उसने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया।

श्रीकृष्ण इतना कह कर चुप हो गये। प्रेम के आवेश से उनका कण्ठ रुद्ध हो गया। श्रीकृष्ण नहीं समझ सके कि निकुञ्ज, रात्रि के इस गम्भीर अन्धकार में इतना प्रफुल्लित क्यों हो रहा। नक्षत्रों की ज्योति क्यों बढ़ गई और इस निर्बल एवं परिश्रान्त हृदय पर इस संसार विरत नर-कङ्काल पर अपना प्रभाव डालती हुई वसन्त की कोकिला, समीप ही बोल उठी—'कुहू कुहू।'

अन्धकारमयी रजनी और भी गम्भीर हो चली। श्रीकृष्ण वृक्ष के नीचे वैसीही स्थिति में आश्चर्य-चकित होकर बैठे रहे। क्षण पश्चात् वे कहने लगे — "नहीं, राधा के प्रेम से बढ़ कर सुदामा के आश्रम की किशोरी कन्याओं का संगीत अधिकाधिक पवित्र एवं लोकोत्तर है। एक समय मैं वसन्त ऋतु में इस आश्रम में गया। वहाँ जाकर देखा कतिपय किशोरी ऋषि-कन्याएँ नाचती हुई गा रही हैं—

जब नवल लताएँ कुञ्जन में नाचत हैं।
तब मदमाते मधुकर मधु हित आवत हैं॥
जब वसन्त के मधुर प्रणय परिचय में।
जब उषः काल के रुचिरतर सुखद समय में।
जब रवि किरणों के जलज सहित अभिनय में।
जब यमुन-पुलिन में, ताण्डव नमन में किसलय में॥
जब वन-कुसुमों की सुरभि शान्ति युत आवत हैं।
तब मदमाते मधुकर मधु हित आवत हैं॥
जब उमङ्ग में नव तरङ्ग में उपवन में।
कोयल—कूजत कुहू कुहू तब कानन में॥
तब प्रेम—पाश में स्निग्ध कान्ति में मन में॥
अलि रव गुंजत ही आवत नील गगन में॥
जब इस ऋषि बाला बलि कर गहि नाचत हैं।
तब मदमाते मधुकर मधु हित आवत हैं॥

"भोली प्रकृति के समान उदार, माता के अक्षुण्ण स्नेह की तरह लोकोत्तर और पिता की निश्छल ममता के समान वह मधुर तरल ध्वनि थी।" श्रीकृष्ण यह कह कर चुप हो गये। अर्द्ध निशा पूर्वापेक्षा रमणीक और सुहासिनी हो गई। मन्द मन्द पुरवैया बहने लगी। कोकिला फिर कूक उठी कु-हू-हू। — इस निश्छल आनन्द रागिनी में आज की यामिनी याम्रा अत्यन्त सुखद प्रतीत होने लगी।

चिन्ता के एक आभ्यन्तरिक उद्वेलन से श्रीकृष्ण का मुखरित कल्पना-प्रवाह अनायास ही अवरुद्ध हो गया। फिर वे कहने लगे—"विश्व ब्रह्माण्ड मेरा है। विश्व की समस्त उद्दाम शक्तियाँ मेरी हैं। उनकी गणना निःसीम एवं अपरिमित हैं। फिर भी आज नारायणी सेना का नाश हो चुका है। द्वारका में यादवों ने उपद्रव खड़ा कर दिया है और मैं अर्जुन के सारथी के समान, क्षुद्र व्यक्ति की तरह इस निकुञ्ज में विश्राम कर रहा हूँ। इच्छा होती है इस समीपस्थ प्रवाहिनी यमुना में कूद कर इस विरस-जीवन-ज्वाला का अन्त कर दूँ।" श्रीकृष्ण यह कह कर क्षण काल के लिए मौन हो गये। फिर वे कहने लगे— "नहीं, इस आकाँक्षा की आवश्यकता नहीं है तब भी चाहता हूँ इस अधम संसार के उद्धार के लिए एक भयानक क्रान्ति, एक भयङ्कर अन्धकार मयी रजनी, बीभत्स भाद्रपद का मास, काले मद मताङ्ग मेघों की गर्जना और बीचबीच में घोर वृष्टि में बिजली की भयावनी कौंध। — हाँ, और इस प्रलय हिल्लोल में उदार प्राण वसुदेव यमुना की बाढ़ को पार करते हुए एक टूटे सूप में नवजात शिशु को गोकुल-ग्राम लिए जा रहे हों। — आहा, अब केवल चाहता हूँ वसुदेव जैसे पिता का निश्छल प्यार, देवकी जैसी स्नेह प्राणा माता की अपार ममता।"

यह कहते कहते श्रीकृष्ण की आँखों से प्रमाश्रु झरझर कर गिरने लगे। इसी समय

वन-पार्श्व से सनसन करता हुआ एक तीर आकर उनको बेध गया। उनके मुख से एक दीर्घ निश्वास निकल गई। क्षण भर में उन्हें मर्मान्तक पीड़ा होने लगी।

क्षण पश्चात् उनके सामने एक धनुष-धारी पुरुष उपस्थित हुआ। वह यमुना में कूद कर इस पार आने से भीग गया था। श्रीकृष्ण ने प्रश्न किया--"तुम कौन हो?"

आगन्तुक ने उत्तर दिया--"मैं बहेलिया हूँ। मृगाखेट करने के लिए आज इस नन्दनवन में निकला था।"— इतना कहते ही बहेलिया स्तम्भित हो गया। उसके मुख से केवल यही निकला-"भगवान् श्रीकृष्ण, इस हत्या का कोई प्रायश्चित्त नहीं। आपके पद-प्रान्त में पद्म आलोकित हो रहा था। एक मृग के धोखे में आकर मैंने तीर छोड़ा था।"

श्रीकृष्ण ने कहा- "स्वार्थान्ध तुम नहीं समझ सके- पद्म में सहज ही दिव्य आलोक है और मृग के नेत्रों में सुकुमारता है—मनुष्य का हुआ प्रेम है। मैं नहीं जानता था कि अर्जुन के राज्य में उदर-पोषण के लिए अब जीव-हिंसा होने लगी है। जाओ मूर्ख, एक बार मैंने कहा था कि धर्म के ह्रास होने पर इस भूमि पर मैं जन्म लिया करूँगा - परंतु अब कदाचित् ऐसा सम्भव नहीं। - जाओ प्रलय का अट्टहास करो नराधम!"

बहेलिया कुछ न कह सका। श्रीकृष्ण की पीड़ा बढ़ गई। अर्द्ध निशा-काल भयङ्कर हो गया और निकुञ्ज वन श्मशान। श्रीकृष्ण का सुकुमार शरीर संज्ञाहीन होने लगा। वे कहने लगे—"साध नहीं मिटी। मैं आज भुवन मोहिनी मुरली नहीं बजा सका।"

बहेलिया वैसा ही खड़ा रहा। इसी समय श्रीकृष्ण की लीला—संवरण हो गई।

स्वास्थ्य-सम्बंधी उपयोगी नियम।

१—आपत्तियों के आने से पहिले ही घबराना शक्ति को नष्ट करना है। इस प्रकार घबराने से जीवन युद्ध नहीं जीता जा सका, आपत्तियां आने पर सन्तोष के साथ उनका मुकाबिला करो तभी तुम जीवन समर में विजय प्राप्त कर सकते हो अन्यथा नहीं।

२—सूर्य-मुख वाले कमरों का प्रयोग करना अच्छा है उठते, बैठते, सोते जागते, हर समय यह जरूरी है कि स्वास्थ्य-युक्त स्थान को पसन्द करो। अच्छा भोजन और-कपड़े जितना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है उतना ही अच्छा स्थान भी स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

३—जिस प्रकार भोजन का बदलना शरीर के लिए जरूरी है उसी प्रकार शरीर के बाहिरी और भीतरी कपड़े भी बदलना आवश्यक है। कपड़े के रंग का शरीर पर बहुत बड़ा प्रभाव

बढ़ता है। धुंधली पोशाक चंचलता को दूर कर देती है परन्तु जिनकी आत्माएं मत हो गई हैं उन्हें रंगीली पोशाक स्वांग के समान मालूम होती हैं।

४—न बोना, न काटना-लेकिन काट तभी सकते हैं जब कि बोया जाए। "बोए पेड़ बबूल के आम कहां से होय" लापरवाही से जीवन घट जाता है। और स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। लापरवाही के साथ शारीरिक यंत्र नहीं बना है। यदि शरीर में कोई बाधा हो जाए तो उसे प्राकृतिक इलाज ही जरूरी है बनावटी नहीं।

५—अच्छा भोजन वही है जिससे शरीर को लाभ पहुंचे परन्तु जिस भोजन से शरीर में खराबी पैदा हो जाए वही बुरा भोजन है। भोजन के पसन्द करने में तालू ठीक नहीं।

६—डाक्टरों के बिलों को बन्द करदो ज़रा २ सी बीमारियों पर ध्यान दो और उनको कभी बढ़ने न दो।

७—हमेशा बीमारी का ही ध्यान नहीं रखना चाहिए परन्तु जो लोग ऐसा करते हैं वे अपनी गाढ़ी कमाई से डाक्टरों की जेबें भरते रहते हैं।

८—संसार में मनुष्य स्वास्थ्य की उस वक्त कद्र करते हैं जब वह नष्ट हो जाता है। स्वास्थ्य का नष्ट होना सम्पत्ति का खो जाना है। बाज़ वक्त स्वास्थ्य ऐसा खराब होजाता है कि फिर उसका प्राप्त करना दुर्लभ हो जाता है। सम्पत्ति संग्रह करने के लिए स्वास्थ्य अच्छा होना जरूरी है। स्वास्थ्य का मूल्य कुछ नहीं, अमूल्य है।

९—बहुत से आदमी फैशन के गुलाम बने हुए हैं परन्तु तुम्हें स्वास्थ्य की कुछ भी परवाह नहीं। फैशन से स्वास्थ्य बनता नहीं किन्तु बिगड़ जाता है। बहुत ही कम फैशन ऐसे हैं जिनसे स्वास्थ्य बनता है। प्रकृति भी अपने फैशन को लिये हुए है।

१०—यदि तुम गर्मी के दिनों में बाहर नहीं सो सकते हो तो जहां तक संभव हो, बाहर रहो! यह स्वास्थ्य सुखकर है। बड़े २ नगरों शहरों में रहकर अपना जीवन कभी व्यतीत मत करो क्योंकि ऐसा जीवन अस्वाभाविक है।

११—सदैव प्रसन्न रहो, खुश मिजाज और खुश दिली से स्वास्थ्य और जीवन की वृद्धि होती है। चिर-जीवित रहने के लिये इनका होना जरूरी है।

१२—शारीरिक और मानसिक कमजोरियों को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करो। कमजोरी को पहिचान लेना और फिर उसे [दूर करना आधी लड़ाई जीतने के बराबर है, आधी उसको हिम्मत के साथ मुकाबिला करना है। यही सफलता और विजय का मार्ग है।

१३—जीवित रहने के लिये खाओ पिओ, खाने पीने के लिए मत जीवित रहो-नहीं तो समय से पहिले मरकर दंड पूरा करना होगा।

१४—मनुष्य के लिए जितना जरूरी काम है उतना ही आराम है। यदि तुम्हें शारीरिक यंत्र को ठीक रखना हो तो काम के बाद आराम जरूर करो। बहुत काम और कम आराम करने से मनुष्य बेवकूफ बन जाता है।

१५—घबराओ मत, काम करते रहो, घबराना बहुत बुरा है। छोटी २ घबराहटों को दूर करो तो बड़ी २ घबराहटें स्वतः ही दूर होजाएंगी।

नाथूराम सिंघई

मध्यप्रदेश

(लेखक--श्रीयुत [illegible])
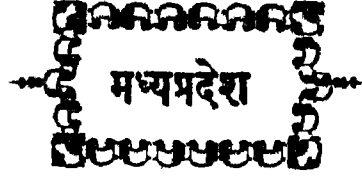
जय मनमोहन मध्यप्रदेश,
अद्भुत-निर्मित प्रांत विशेष।
जय २ सुन्दर गौरव धाम-
जय २ पावन प्रांत महान ॥ १

दायें दमयन्ती का देश-
शीश शारदा हरती क्लेश।
पन्ना पड़ा पद्म सा पास,
वायें बाजू रीवां वास ॥ २

देखो सागर सी. पी. कान-
यू सी. पी. है सागर वान।
निर्मल उज्वल कमलाकार-
हिय धारे रेवा की धार ॥ ३

शक्कर, दूधी, हरनी, शेर-
रापी, तापी, बंजर, हेर।
शिव, गौरा, तावा, गंजाल-
वैन गंग लख होय निहाल ॥ ४

कुम्भज की कीरति का केतु,
विन्ध्याचल आदर का हेतु।
अंचल ले रेवा की धार,
कर देता भवसागर पार ॥ ५

गिरिवर निर्झर झील, तलाव-
मैकलगिरि मंडले का राव।
वन, उपवन, कांतार सुकुँज
सुखदायक, आरण्यक पुँज ॥ ६

पादप-पुंज प्रसून प्रसार-
पथिक वृन्द जों करें विहार।
केतकर की झूमें डार-
कहुं फूले हैं चारु अनार ॥ ७

पळा, केळा, बेला, बिम्ब
बड़हर, कटहर, पीपर निम्ब।
राजैं चम्पक, कुन्द, कदम्ब-
जुही, जम्बू, अम्ब, कदम्बु ॥ ८

कूजैं गूजैं चातक, बाज-
शुक, सारक, पिक हंस समाज।
जंगल में मंगल की याद-
सुनके मनहर-माधुरि याद ॥ ९

हरनी, चीते, शेर मतंग-
गंडए, गैंड़े फिरें निहंग।
कदली वन में करें विहार-
आलिम करने जांय शिकार ॥ १०

राजिव लोचन शबरीनाथ-
चौंसठ जोगन अनगढ़ साथ।
गुप्तेश्वर भृगुक्षेत्र महान,
औंकारेश्वर औ, वरध्यान ॥ ११

सोहैं सातों तीर्थ स्थान
जनता का करते कल्यान।
बन्दर कूदन ठौर निहार-
जल प्रपात वह धूआंधार ॥ १२

शिमला शैल सुहावन जान,
पंचवटी करते प्रस्थान।
कहुं नृसिंह मन्दिर अभिराम-
कहुं दूधाधारी का धाम ॥ १३

मदन महल के शंकरशाह-
दुर्गा और दुर्गा के नाह।
रण संगर की लेते थाह
देते हैं वीरों को राह ॥ १४

विहग वृंद वंदित धीमान;
मंडन सी तेरी संतान।
उभय भारती जाकी नार,
शंकर को देती है हार ॥ १५

धूनी वाले दादा देव,
तेरे तट करते हैं सेव।
बूढ़े औलिया ताजुद्दीन,
दुख संकट लेते हैं छीन ॥ १६

नागपूर झण्डा संग्राम,
जाहिर करता तेरा नाम।
तेरा बंधी बांका वीर-
सोहे है जमना के तीर ॥ १७

बरदोली बन बालाघाट-
सदा बढ़ाता तेरा ठाट
सिवनी में दुर्गा की शान-
रायपूर रविशंकर भान ॥ १८

श्यामा-खाटे, छेदी, राघ-
सुन्दर-माखन, लक्ष्मण, साव।
गुरू, गुणाकर धीर धुरीण।
मुरली, लोचन, मोहन, दीन ॥ १९

झा, नायक, प्रीतम, मति, माम-
तेरे ही हैं प्यारे भान।
तेरे पाले मीर, ज़हुर-
हिन्दी सेवक हैं भरपूर ॥ २०

तीन कोटि का तू आधार-
भारत का भावी भण्डार।
घट कोटी करले किरपान-
कर लेते हैं सर मैदान ॥ २१

कल कण्ठों से करते गान-
पाते हैं जीवन सम्मान।
आर्यावर्त का हृदयप्रदेश
तू ही तो है मध्यप्रदेश ॥ २२ *

परवार पंचायत के मिथ्या आक्षेप का निर्णय।

किसी मनचले व्यक्ति ने "एक परवार बन्धु" के नाम जैन मित्र फागुन सुदी १४ वीर सं० २४५० में "परवार जाति की पंचायत का नमूना" शीर्षक देकर एक लेख प्रकाशित कराया है। लेखक ने स्वीकार किया है कि मैं स्वयं पंचायत में उपस्थित नहीं था अतः सुनी हुई बहुत सी मिथ्या बातों के आधार पर तथा व्यक्ति विशेष के द्वेष भाव की प्रेरणा से युक्त होकर लिखे हुए लेख को पढ़ कर लोग उल्टा सीधा न समझ बैठें इस कारण मैंने उस समय की पंचायत का सम्पूर्ण वृतान्त समाज के सामने रखना उचित समझा है। परवार पंचायत ने अच्छा किया या बुरा- इस का निर्णय पाठक स्वयं करें।

* यह कविता राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर के कवि सम्मेलन जबलपुर में पढ़ी गई थी और लोगों को इतनी पसन्द आई थी कि उसी समय पं० कुंजीलाल जी दुबे वकील ने कवि महोदय को एक रजत पदक प्रदान करने की सूचना दी थी। हम चाहते हैं कि मध्यप्रदेशीय शालाओं में इसपद्य का प्रचार अवश्य हो। स० द०।

नागपुर पंचायत में उपस्थित व्यक्ति, उक्त लेख को पढ़कर निःसंकोच कह देगा कि वह केवल परवार जाति की पंचायतों को बदनाम तथा समाज में फूट पैदा करने की दृष्टि से लिखा गया है। मैं नहीं चाहता कि समाज में ऐसे भड़कीले, फूट पैदा करने वाले लेखों का सवाल जवाब जारी रहे-क्योंकि समाज और देश के नाश होने का कारण यही फूट है-भारत के गारत होने का भी यही कारण है। हमारे लेखक महाशय ने यदि जितना समय उस मिथ्या लेख को तैयार करने में किसी के पक्ष पर किसी को बुरा बताने में लगाया-अच्छा होता कि वे वह समय किसी समाज हित के कार्य क्रम में लगाकर अपना कर्तव्य पालन करते। आशा है कि अब इस उत्तर प्रत्युत्तर का यहीं अन्त हो जावेगा।

मैं उक्त पंचायत में मौजूद था-उसके पहिले सिंगई दुलीचंद जी चौरई वालों ने परवार सभा की विषय निर्वाचनी समिति में यह बात उठाई थी-कि "सिवनी व दूसरे जगह की पंचायतों ने उन्हें बिना चौरई के पंचों की चिट्ठी के (परवार सभा के नियम विरुद्ध) बन्द कर दिया है इस पर परवार सभा उन लोगों पर क्या कोई कार्यवाही करती है?" सिंगई जी से कहा गया कि आप लिख कर दीजिये तब सिवनी व दूसरी पंचायतों से पूछकर कार्यवाही की जावेगी। यह भी कहा गया था कि मंत्री जी स्वयं इस बात की तहकीकात करके सभा में पेश करेंगे फिर सभा उस पर निश्चित कार्यवाही कर सकेगी यह हुई सभा की "टालमटूल"।

सभा की सम्पूर्ण कार्यवाही समाप्त हो चुकी थी-तब कहीं लोगों के उकसाने पर उक्त सिंगई जी ने वही अपना राग अलापा और मनमाना लगे कहने। उस से मालूम हुआ कि आप सभा से नहीं किन्तु एकत्रित पंचायत से अपना फैसला वहीं और उसी समय कराना चाहते हैं।

उपस्थित लोगों ने उसे स्वीकार किया। सिंगई जी ने वही अपना आक्षेप पेश किया उसका उत्तर सिवनी के पंचों ने जो कि वहां उपस्थित थे इस तरह दिया--" कि चौरई पंचायत के पत्रानुसार हम लोगों ने सिंगई जी को बन्द कर दिया है" व चौरई के पंचों ने कहा कि "हम ने पंचायत को सिंगई जी के बन्द होने की चिट्ठी दी थी और यह भी कहा कि उक्त सिंगई जी ने चौरई वालों को लिखकर दिया है कि "परवार सभा की ओर से ब्राह्मण के हाथ की कच्ची रसोई दाल-भात खाने का चलन है अगर मैं ऐसा चलन न बताऊं तो पंचायत को ५००) दंड दूंगा" आप लोग जैसा फैसला करें हम लोगों को मंजूर है"।

सिंगई जी से पूछा गया कि आप ऐसा चलन साबित कीजिये-उत्तर अनाप सनाप और उद्दण्डता से दिया जा रहा था किन्तु समाज ने इस का कुछ भी ख्याल न रख के ख्याल मामला तय करने की ओर रक्खा था-आप की बातों को सुनकर कहा गया कि "आप यह स्वीकार कीजिये कि असहयोगी की हैसियत से भोजन किया है न कि जातीय नियम की अवहेलना करने की दृष्टि से। अतः आप सब जगह खुलाशा कर दिये जावेंगे" सिंगई जी ने उस समय यह स्वीकार नहीं किया तथा सभा में से पंचों की अवहेलना करते हुए चल दिये, और बाहिर बेलगाम बकझक

शुरू किया । ऐसी परिस्थिति होते हुए पंचायत ने सरलता पूर्वक-निष्पक्ष और शांतिता से यह निश्चय किया कि " उक्त सिंगई जी यदि चौरई के पंचों को लिखित खेद और अपनी भूल स्वीकार करें तो चौरई वाले उन्हें जाति में मिलावें व दूसरी जाति को भी चिट्ठी देकर खुलाशा कर देवें-जब तक वे ऐसा न करें उन का बिरादरी मे चलन बन्द रहे। (इतना होने पर भी मंदिर खुलाशा रक्खा गया था) ।

दूसरे दिन सिंगई जी के मित्रों ने अवश्य कोशिश की थी कि रात का फैसला रद्द कर दिया जावे । और सायंकाल को सिंगई जी ने मेरे पास आकर लिखित खेद प्रकट किया तो मैंने चौरई के पंचों से उनके स्थान पर आकर सिंगई जी को बिरादरी में खुलाशा करादिया ।

यही "परवार जाति की पंचायत का नमूना " "एक परवार बन्धु " के नाम से प्रकाशित मिथ्या आक्षेप का खुलाशा है। अब समाज इस पर से निर्णय कर सकी है कि पंचों ने अन्याय किया या मुन्सिफी से काम लिया है । उस दिन पंचायत में कोई पक्षपात या मुंह देखी का कार्य नहीं हुआ ।

समाज का नम्र सेवक—
कस्तूरचंद वकील
मंत्री परवार सभा—
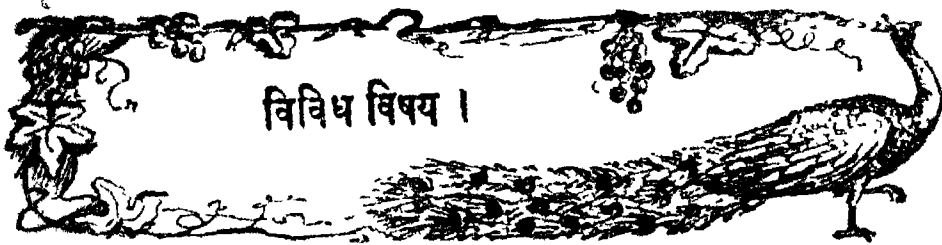
(समाचारालोचना)

प्रद्युम्न चरित्र में लिखा है कि जब वृद्ध वेशधारी प्रद्युम्न को भानुकुमारादि घोड़े पर चढ़ाने लगे तब पहिले उनका वजन बहुत थोड़ा था मगर उठाने पर उनका वजन इतना बढ़ गया कि कोई भी उसे सहन न कर सका और प्रद्युम्न के वजन से बहुत से आदमी कुचल गये । अभी तक ऐसी घटनाओं पर लोग विश्वास नहीं करना चाहते मगर अमेरिका में [illegible] नाम की महिला, शरीर का वजन इच्छानुसार घटा बढ़ा लेती हैं । इसके शरीर का स्वाभाविक वजन सवा मन के करीब है मगर इच्छा करते ही इसका वजन पांच मन हो जाता है । वैज्ञानिक लोग इस अद्भुत शक्ति का कारण अनुसंधान कर रहे हैं ।

× × × ×

हाल में पार्लमेंट में मजदूर दल की एक छोटीसी हार हो गई है । यद्यपि मंत्रियों ने इस्तीफा नहीं दिया है फिर भी इतना तो देखने में आया कि यदि मजदूर दल भारत के लिये

कुछ अधिकार देना हो चाहें तो कुछ नहीं दे सके। फिर मजदूर दल भी क्या देना चाहता है? मजदूर दल के वे नेता जो पहिले स्वतंत्रता की डींग मारा करते थे सब चुप हैं सच बात तो यह है कि "अधिकार मांगना" यह वाक्यही बेढंगा है अधिकार तो लिये जाते हैं। १६१६ में अधिकार लिये ही गये थे। क्योंकि अंग्रेज लोग या कोई दूसरी शासक जाति, परिस्थिति से विवश होकर ही अधिकार देती है "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः" इस नीति में अंग्रेज लोग कच्चे नहीं हैं इसलिये अधिकार माँगने की अपेक्षा शासकों को परिस्थिति से विवश करना उचित है। क्या अधिकार या स्वराज्य आप से आप आ जायगा?

\+ \+ \+ \+

१६२१ की मनुष्य गणना

१६२१ में जो मनुष्य गणना हुई थी उसकी रिपोर्ट अब प्रकाशित हो रही है हम पाठकों के स्मरणार्थ कुछ फुटकर बातें देते हैं।

कुल जनसंख्या	इकतीस करोड़ ९० लाख
हिन्दू (जैन बौद्ध सिक्खों सहित)	तेइस करोड़ २७ लाख
बौद्ध	एक करोड़ १६ लाख
सिक्ख	बत्तीस लाख
जैन	बारह लाख

– शिक्षा –

हिन्दुओं में शिक्षित पुरुषों की संख्या	फी सदी	१२
मुसलमानों में	,,	६
ईसाइयों में	,,	३३
बौद्धों में	,,	५० से कुछ कम
जैनियों में	,,	५० से कुछ अधिक
पारसियों में	,,	८०

शिक्षित स्त्रियों की संख्या

मुसलमानों में	फी सदी	१ से कम
हिन्दुओं में	,,	१॥ से कम
सिक्खों में	,,	१॥ से कम
जैनियों में	,,	८
बौद्धों में	,,	६
ईसाइयों में	,,	१८
पारसियों में	,,	६७

इससे मालूम पड़ता है कि ईसाई और पारसी समाज में स्त्रियों की दशा बहुत कुछ सुधरी हुई है। वहाँ पुरुष शिक्षाके ऊपर जितना ध्यान दिया जाता है उससे कुछ ही कम स्त्री शिक्षा के ऊपर दिया जाता है मगर जैनियों की तो बातही निराली है वे पुरुष शिक्षा के ऊपर जितना ध्यान देते हैं स्त्री शिक्षा के ऊपर उसका छटवां हिस्सा भी नहीं देते— इने गिने जैनियों को ईसाई और पारसी समाज से शिक्षा लेना चाहिये हिन्दू और मुसलमानों को देख कर— खालिक ने एक एक से बढ़कर बना दिया। सौ से बुरा तो एक से अच्छा बना दिया।

न कहना चाहिये जैनियों की कुल संख्या के ऊपर विचार करने से तो छाती फटती है।

भारतवर्ष में—

२३ करोड़ आदमी किसानी करते हैं
सवातीन करोड़—कारीगरी कलाकौशल आदि
पौने दो करोड़—व्यापार
एक करोड़—नौकरी वकालत डाक्टरी आदि
तीन लाख—चोर, भिखमंगे, वेश्या, आदि

यहाँ कुल २५७ भाषाएँ बोली जाती हैं लेकिन हिन्दी, बंगाली, तेलगू, मराठी तामिल, पंजाबी, राजस्थानी, कनाड़ी, उड़िया इन भाषा

भाषियों की संख्या एक एक करोड़ से ज्यादा है। हिन्दी भाषा भाषी १० करोड़ हैं तथा और भाषा भाषी भी अच्छी तरह हिन्दी बोल लेते हैं यहां कुल विधवाओं की संख्या पौने तीन करोड़ है अर्थात् फी सदी १७ स्त्रियाँ विधवा हैं।

पागलों की संख्या ८८ हजार। गूंगे बहरे १ लाख ८९ हजार। अंधे चार लाख अस्सी हजार। कोढ़ी १ लाख से कुछ अधिक। कुल ग्राम नगर शहरोंकी संख्या ६८७९८१ है। इनमें तेतीस शहर ऐसे हैं जिनकी जन संख्या १ लाख से ऊपर है। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, हैद्राबाद, रंगून, देहली, लाहौर, अहमदाबाद, लखनऊ, बेंगलोर, करांची, कानपुर, पूना, काशी, आगरा, अमृतसर, प्रयाग, मांडले, नागपुर, श्रीनगर, मदुरा, बरेली, मेरठ, त्रिचनापल्ली, जयपुर, पटना, शोलापुर, ढाका, सूरत, अजमेर, जबलपुर, पेशावर, रावलपिंडी ऐसे भी कुछ शहर हैं जिनकी जनसंख्या १ लाख से कुछ कम है जैसे बड़ौदा इन्दौर आदि।

कहीं कहीं स्त्री पुरुषों की संख्या ही असम है कलकत्ते में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां आधी हैं इनमें विधवाएँ भी बहुत हैं ऐसी हालत में सदाचार की कैसी दुर्गति होती है इसके कहने की आवश्यक्ता नहीं है।

इन सब बातों पर विचार करने से मालूम पड़ता है कि भारत किस तरह राष्ट्रीय और समाजिक गुलामी से जकड़ा हुआ है।
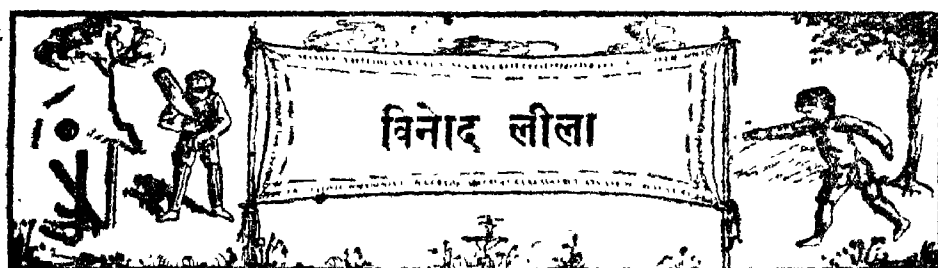
(दिया तले अंधेरा)

—हम जैनी लोग पक्के बानियां हैं भगवान के साथ भी बनियाई करते हैं देखोना, श्री जी की पूजन में नाम तो लेते हैं नाना भांति के पकवानों का और चढ़ाते हैं नारियल की चिटकें।

—धर्म पालने की क्या बात ! हम इतने धर्मात्मा हैं कि धर्म की आवश्यकता ही नहीं। छान कर पानी पीना ही पक्के जैनी बनना है।

—ज्ञान का क्या ठिकाना ? चौबीस तीर्थंकरों के नाम तक नहीं कह सकें। सिर्फ "अ.सि.उ" की जाप दे लेने से सम्यकज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

—हमारी दया की क्या प्रशंसा ! एक चींटी भी न मरने पावे, चाहे ब्याज की तलवार से बिना खून का कत्ल भी क्यों न कर डालें।

—दान की क्या बड़ाई। जिन्दा में एक अधेला भी न दें चाहे मरती समय थैलियां की थैलियां उडेल दें।

—क्षमा व्रत की क्या सीमा ! दशलाक्षणी पर्व में भी मंदिर में क्रोध आ जाय। परन्तु

वकील साहब की बैठक में मुन्शी जी की भी सौ खरी खोटी सुनलें।

—आचरण की क्या तुलना? दूसरी जाति का छुआ हुआ पानी न पियेंगे चाहे आचरण भ्रष्ट हलवाई की बनाई हुई पक्की खा जांय।

—त्याग व्रत का क्या कथन! मंदिर के बाहर आते ही-भगवान के उपदेश उन्हीं के द्वारे पर त्याग आते हैं। चाहे लक्ष्मी की सेवा में शरीर भी क्यों न त्याग दें।

—हमारी छूत अछूत की क्या सीमा! महतर का मुंह देखना पाप समझें चाहे म्लेच्छ अंग्रेज से हाथ मिलावें।

—हमारे जीवन का क्या मोह! दूर २ छालें खांयगी बस मिट्टी में मिल जांयगे-पर घर के काम न आंयगे, भाई का नाश करायंगे।

—हमारे अधिकार का क्या ठिकाना! हम अन्याय भी करें सो न्याय और तुम सच भी कहो सो झूंठ।

एक सेवक—
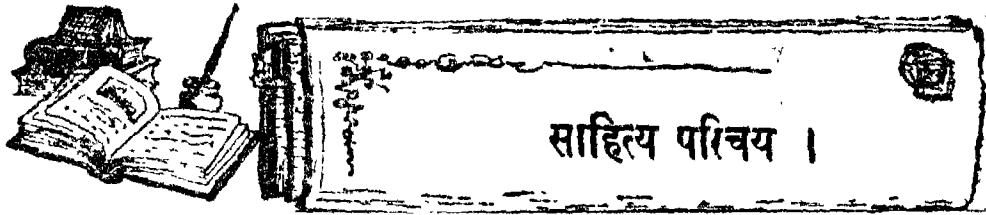
(षोडश संस्कार--सम्पादक पं० लालाराम शास्त्री प्रकाशक जिनवाणी प्रचारक कार्यालय ६३ लोअर चितपुर रोड कलकत्ता।)

यह पुस्तक भगवज्जिनसेनाचार्य के आदि पुराण से ली गई है पुस्तकमें गर्भाधान से लेकर मरण तक के सब संस्कारों का अच्छी तरह से वर्णन हुआ है। पुस्तक के पढ़ने से संस्कारों का अच्छा ज्ञान तो होता ही है साथही एक सूक्ष्मदर्शी को यह बात भी मालूम पड़ जाती है कि जैन धर्म को एक दिन कैसी परिस्थिति का सामहना करना पड़ा था। और उस समय भगवज्जिनसेनाचार्य ने किस चतुराई से काम लिया था यद्यपि आज कल लोग कहते हैं कि जैन धर्म सरीखे वीतराग धर्म में भी परिवार सहित सराग देवों की पूजा क्यों करना चाहिये-धन पैसा मिले शत्रु मरे आदि याचनायें क्यों करना चाहिये। बात बात में मंत्रों के उपयोग की क्या अवश्यकता है। तिथि देवता, बार देवता, ग्रह, भूत, पिशाच, आदि की पूजा कर सम्यक्त्व को कलंकित करने से क्या लाभ? इत्यादि, यद्यपि यह कहना ठीक है, मगर जब हम देश काल का विचार करते हैं तब सब की शंकाओं का समाधान हो जाता है। आज भी भारतवासियों के हृदय से क्रिया कांड की महत्ता उठ नहीं गई है एक बार हमसे एक आदमी ने कहा था कि आपके यहाँ ध्यान प्राणायाम आदि के बारे में कुछ नहीं लिखा है। तब हमें क्रिया कांड की विशालता बतलानी पड़ी थी यह तो बीसवीं शताब्दी की बात है। जब कि लोगों के हृदय में क्रिया कांड के ऊपर बहुत कम श्रद्धा है। वह पुराना जमाना था और उसमें भी दक्षिण-प्रान्त। दक्षिणप्रान्त में आज भी क्रिया कांड

बहुत प्रचलित है। फिर उस समय का तो कहना ही क्या है ? ऐसे समय पर यदि भगवज्जिनसेनाचार्य जैन क्रिया कांड को इतना न बढ़ाते तो जैन धर्म का शायद अस्तित्व ही न रहता "तुम्हारे यहां कुछ क्रियायें ही नहीं हैं। तुम्हारे देव कुछ देते नहीं भला बुरा भी नहीं कर सके तब तुम्हारा धर्म किस काम का" ये सोचने और लोगों के घृणापात्र बनना, हृदय विदीर्ण करने के लिये पर्याप्त था संस्कारों को बिना बढ़ाये जैन लोग शूद्रव्यपदेश से नहीं बच सके थे ऐसे समय में भगवज्जिनसेनाचार्य ने वह काम किया जिससे जैन लोग चिरकाल तक उनके ऋणी रहेंगे।

आज समय बदल जाने पर नूतन अनेक आवश्यकताओं के आजाने पर, तथा पुरानी आवश्यकताओं के नष्ट हो जाने पर भी हम वही लकीर पीटते गये तो समझना चाहिये कि जैन धर्म की बागडोर बहुत ही अयोग्य मनुष्यों के हाथ में टिकी हुई है। आचार्यों ने क्या किया इसकी अपेक्षा यह विशेष विचारने की बात है कि किस ढंग से क्रिया-संस्कारों की बड़ी आवश्यकता है। प्रस्तुत पुस्तक से इस काम की पूर्ति हो सकी है, इनी गिनी बातों में मत भेद है लेकिन इससे इसकी उपयोगिता नष्ट नहीं होगी।

पुस्तक संग्रह करने योग्य है छपाई सफाई और सुन्दरता पर ध्यान देने से ॥) कीमत भी नहीं खटकती ग्राहकों को पौने मूल्य में और वाचनालयादि को अर्ध मूल्य में मिलती है।

मौनव्रत कथा—मूल लेखक गुणभद्राचार्य, अनुवादक पं० नन्दनलाल शास्त्री प्रकाशक सिंघई छोटेलाल। मिलने का पता जिनवाणी प्रचारक कार्यालय पो० बाक्स नं० ६७४८ कलकत्ता।

यह १२६ श्लोकों में एक आख्यायिका है तुङ्गभद्रा को व्रत माहात्म्यसे अन्त में मुक्ति प्राप्त हुई यही इसका वर्णनीय विषय है स्वाध्याय प्रेमियों के पढ़ने योग्य है छपाई आदि उत्तम है।

सुलोचना चरित्र

लेखक—ब्र. शीतलप्रशाद जी प्रकाशक मूलचन्द किसनदास कापड़िया सूरत-मूल्य दस आना। इसमें भगवज्जिनसेनाचार्य कृत आदि पुराण में वर्णित सुलोचना सती का चरित्र है सुलोचना का चरित्र तो आदर्श है ही किन्तु उस समय की सामाजिक व्यवस्था भी आदर्श मालूम पड़ती है इससे साफ जाहिर होता है कि पुराने जमाने की स्त्रियाँ विनय शीलता आदि के साथ स्त्री स्वातन्त्र्य की रक्षा करना भी जानती थीं। उनकी विनय शीलता भक्ति आदि गुलामी का रूप न थी उनको इच्छानुसार वर ढूंढने की स्वतन्त्रता थी हर तरह से अपनी जिम्मेदारी का ख्याल था।

ब्रह्मचारी जी ने इसे और भी समयोपयोगी बना दिया है मौके मौके पर अपनी ओर से कुछ अच्छी अच्छी बातें भी मिलादी हैं लेकिन वे बातें ऐसी नहीं हैं जो मूल ग्रन्थ के विरुद्ध कहीं जासकें ब्रह्मचारी जी ने समय देखकर यह अच्छा ही किया है कुछ नमूना भी लीजिये

"वास्तवमें विवाह सम्बन्धमें मुख्य संयोग कन्या और वर का होता है उनमें परस्पर एक दूसरे पर न्योछावर हो जाने वाला प्रेम

होना चाहिये" "वास्तवमें माता पिता दलाल के समान हैं मुख्य सौदा तो वर वधू का है" "कुँवारे बालक और कुँवारी बालिकाओं को यह बात अच्छी तरह ध्यान में लेलेनी चाहिये कि अब तक वे युवापने के निकट न पहुंचे अपना विवाह न करावें......यदि माता पिता विरुद्ध वर्त्ताव करें तो उस सम्बन्ध को आप जिस तरह बने दूर करावें"......

पुस्तक के अंतिमांश में भगवान ऋषभ-नाथके उपदेश रूप से जैन धर्म का अच्छा परिचय देदिया गया है पुस्तक उपयोगी बनगई है हां भाषा कुछ बिगड़ी हुई है युवा-वस्था, वर्त्ताव आदि शब्दों के स्थान में युवा-वय, वर्तन आदि शब्दों का प्रयोग खटकता है। अन्त में जो ग्रंथकर्ता का परिचय दिया गया है वह भी अनावश्यक है पुराने ज़माने में तो प्रशस्तियों की जरूरत थी आजकल इसकी क्या आवश्यकता है। हां, इसके स्थान में भग-वज्जिनसेनाचार्य के विषय में कुछ लिखा जाता तो अच्छा होता परिचय के दोहे भी रद्दी हैं। दोहा सरीखे सरल छन्द में भी छन्दो-भंग ने पीछा नहीं छोड़ा है। खैर इनबातों से पाठकों का कुछ नुकसान नहीं है पुस्तक उपयोगी है प्रारम्भ में स्वर्गीय फूलवंती बाई का एक सुन्दर चित्र भी है इन्हीं की स्मृति में यह पुस्तक छपाई गई है और जैन महिलादर्श के ग्राहकों को भेंट में मिली है।

जैनमार्तण्ड।

मासिक पत्र, यह पत्र फिर निकलने लगा है सम्पादक अब रामस्वरूप जी भारतीय हुए हैं पत्र की रीति नीति सब पहिले के समान ही है भविष्य में कलेवर बढ़ाने की सूचना दीगई है हम सहयोगी की वृद्धि चाहते हैं मूल्य १॥) पता—जैन मार्तण्ड हाथरस।

श्रीमती रूपाबाई स्मारक मंडलनुं प्रथम विवरण।

प्रकाशक शा० छोटेलाल मोतीलाल (बाबरा) उपप्रमुख श्रीमती रू० स्मा० मंडल अहमदाबाद। यह रिपोर्ट गुजराती भाषा में सन् १६११ से १६२३ तक की प्रकाशित की गई है-इसके जन्म दाता स्वर्गवासी परीख लल्लु भाई प्रेमा-नंददास एल. सी. ने जर्मनी देश की शिक्षा संस्थाओं का संचालन छात्रों के द्वारा किस प्रकार होता है—ये सन् १६१० में भ्रमण से लौटने के पश्चात् बतलाया था। उसी उत्साह की प्रेरणा से सेठ प्रे० मो० दि० जैन बोर्डिंग अहमदाबाद के छात्रों ने एक "विद्या विकास मंडल" स्थापित किया था. इस का उद्देश्य वाचन, विचार और वक्तृत्व शक्ति का विकाश करना था. परन्तु फिर कुछ समय बाद श्रीमती रुपबाई के स्वर्गवास होजाने पर उनके स्मारक में इस का नाम परिवर्तन हो गया, और उद्देश्य "विद्यार्थियों की शारीरिक मानसिक और वक्तृत्व शक्ति का विकाश करके छात्रोंको स्वावलम्बी, सादा, सहनशील, देश भक्त और धर्म के सच्चे सेवक बनाना और भावी जीवन शांति तथा सुख से व्यतीत करना है।" इस मंडल के द्वारा एक हस्त लिखित मासिक पत्र, चरखा प्रचार व्यायाम तथा प्रति रविवार को पूजन व्याख्यान आदि का कार्य उत्तमता से होता है।

इसी के साथ परस्पर में ऐक्यता स्थिर रखने और प्रेम बढ़ाने की दृष्टि से "एक संयुक्त जैन" विद्यार्थी मंडल की स्थापना भी की गई है। जिस के सभापति उत्साही कार्यकर्त्ता

पंडित छोटेलाल जी परवार सुप० जैन बोर्डिंग अहमदाबाद हैं। इस मंडल ने भी सेवा समिति, गरीब विद्यार्थियों की सहायता को स्कालरशिप फंड आदि के द्वारा अच्छा कार्य किया है। यह प्रसन्नता की बात है कि बगीचा, व्यायामशाला, रसोई घर, चरखा वर्ग, धर्मशाला आदि का कार्य छात्रों द्वारा ही होता है। ऐसी उपयोगी संस्था की द्रव्य द्वारा सहायता करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।

भाग्य निर्माण ।

लेखक—आदित्य प्रकाश गुप्त बी ए० मुरादाबाद। और प्रकाशक—हिन्दी साहित्य प्रचारक कार्यालय नरसिंहपुर (मध्यप्रदेश)। मूल्य १।=) सजिल्द १॥) है। यह अंग्रेजी पुस्तक आर्कि टेक्टस आवफेट के आधार पर लिखी गई है। मूल पुस्तक में जहां यूरोपीय विद्वानों के उदाहरण रक्खे गये थे—उन की जगह में भारतीय प्रसिद्ध पुरुषों की जीवनी पढ़ने से हृदय में नवीन जागृति उत्पन्न हो जाती है। इस पुस्तक में १६ परिच्छेद हैं। प्रत्येक परिच्छेद इस खूबी के साथ उदाहरण देकर लिखा गया है कि सचमुच में लेखक की भूमिका में लिखे हुए "सफलता प्राप्ति से वंचित होकर हतोत्साहित हुए युवकों में नव जीवन और नवाशा का संचार करना—संसार यात्रा में अग्रसर होने वाले ऐसे युवकों को साहस दिलाना और सजीव बनाना है, जिनका न कोई मित्र है, न पास में धन है,—है केवल संसार में कुछ बनने की दृढ़ इच्छा"। इस उद्देश्य की पूर्ति करने वालों को यह पुस्तक मार्ग दर्शक तथा साहस का काम देगी। प्रत्येक उन नव युवकों को जो संसार में आकर अपने देश जाति तथा स्वतः का कुछ कल्याण करना चाहते हैं एकवार इस पुस्तक को अवश्य पढ़ लेना चाहिये। मेरी इच्छा थी कि उसमें के किसी एक परिच्छेद का रसास्वादन पाठकों को कराऊं परन्तु स्थानाभाव के कारण ऐसा न करसका।

भाई परमानन्द जी एम. ए. के भाषण पर विचार।

तारीख १२. १३ अप्रेल को स्थानीय जबलपुर के राष्ट्रीय हिन्दी मंदिर का चौथा वार्षिकोत्सव स्वनाम धन्य भाई परमानन्द जी एम. ए. के सभापतित्व में सानन्द समाप्त हो गया। भाई परमानन्द जी पंजाब के उन प्रसिद्ध देशभक्तों में से एक हैं, जिन्होंने अपने जीवन के बहु भाग को देश सेवा ही में बिताया है। और भारतीय सरकार ने इसी अपराध में आप को ५ वर्ष तक काले पानी की सज़ा देकर अपना अतिथि भी बना लिया है। अस्तु, मुझे आप के उस वक्तव्य के विषय में कुछ लिखना है—जो कि आपने सभापति की हैसियत से उत्सव के रंगमञ्च पर खड़े होकर दिया था। आपने भारतवर्ष के नाश का कारण उसकी ऐतिहासिक नाड़ी टटोलकर यह बतलाया कि :—

"इस देश के अधःपात का असली हेतु बुद्ध की शिक्षा है—शाक्य मुनि की शिक्षा ने यहां की वर्णव्यवस्था को रौंद डाला, यदि वैदिक धर्म ज्यों का त्यों बना रहता—उसको गौतम

को धर्मशास्त्रता से धक्का न पहुंचता तो भारत की जातीयता न जाती। बुद्ध की शिक्षा ने संसार की अनित्यताओं का वर्णन करके युवकों के हृदय में सांसारिक प्रलोभनों को मिटाकर व्यक्तिगत धर्म का प्रचार किया। इन्हीं सब कारणों की समष्टिका यह फल है कि भारतसन्तान विदेशियोंका अच्छी तरह से मुकाबला न कर पाई-और पराधीनता की नापाक जंजीर में फँस गई"।

आप ने अपनी ओज पूर्ण पंजाबी-हिन्दी भाषा में ये बातें इस ढंग से कहीं थीं कि सुनने में बड़ी प्रिय मालूम पड़ती थी किन्तु ये जांचपड़तालें केवल साम्प्रदायिकमोह में पड़कर की गई हैं। यद्यपि मैं जैन हूं इस लिए बौद्ध धर्म के ऊपर किये गये आक्षेपों के प्रतीकार की आवश्यकता नहीं थी तथापि अहिंसाधर्म के ऊपर भी उसके छींटे आने से मुझे सत्य की दृष्टि इसपर विचार करने को विवश कर रही है।

मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि एकबार सारनाथ (बनारस) के बौद्ध सन्यासी विज्ञान भिक्षु ने भी इसी साम्प्रदायिक मोह में पड़कर ऐसी ही बात इसके विपर्यय कही थी कि "भारत ने बौद्ध धर्म को बिसार दिया, इसी पाप के कारण आज वह अधम जीवन में पड़ा हुआ है। अपनी स्वाधीनता खोने में समर्थ हुआ है। यदि वह बौद्ध धर्म का अनुयायी बना रहता, तो चीन जापान की तरह आज भी स्वाधीनता के सुख को भोगता"।

सारांश यह है कि दोनों पक्ष के व्यक्ति एक दूसरे के धर्म पर दोषारोपण करके भारत के नाश की समस्या को हल करना चाहते हैं। अपनी कमजोरी कोई नहीं बताता, कोई किसी को दोष देता है तो कोई किसी को। हम अपनी त्रुटियों को न बता कर लोकोत्तर-महात्माओं के वचनों के ऊपर दोषारोपण करके बचना चाहते हैं। बलिहारी!

माना कि बौद्ध धर्म ने व्यक्तिगत धर्म का प्रचार किया पर क्या वैदिक धर्म व्यक्तिगत धर्म के प्रचार से अछूता बच जायगा? उसके उपनिषद् तो केवल व्यक्तिगत धर्म के ही प्रचारक हैं। गीता के उपदेश क्या जातीयता का निर्माण करते हैं? अर्जुन जब अकेले अपने स्वार्थ के लिए अपने भाइयों का वध नहीं करना चाहते थे, तब कृष्ण ने उन्हें क्या व्यक्तिगत धर्म ही की सुध नहीं दिलाई थी? स्वार्थ की ही ओर नहीं झुकाया था? क्या कृष्ण ने इस परिस्थिति पर भी कभी ध्यान दिया था, कि महाभारत के बाद भारतवर्ष की क्या दशा होगी? असल में भारतवर्ष इसी समय से फूट के फन्दे में फँसा-और अवनति की ओर अग्रसर हुआ।

योग और सांख्य दर्शन जो कि वैदिक धर्म का ही अनुधावन करते हैं इस व्यक्तिगत धर्म के ही प्रबल प्रचारक हैं। शंकराचार्य के इन वाक्यों की ओर तो आप दृष्टि पसारिये-वे क्या कहते हैं?

> मूढ़ जहीहि धनागमतृष्णां,
> कुरु तनुबुद्धे मनसि वितृष्णाम्।
> यल्लभसे निज कर्मोपात्तं,
> वित्तं तेन विनोदय चित्तम्॥
> का तव कान्ता? कस्ते पुत्रः?
> संसारोयमतीव विचित्रः!

अर्थात्-हे मूर्ख धन के आने की लालसा को त्याग। मन में सन्तोष रख-जो कुछ भी धन भाग्य से मिले उसी से चित्त को प्रसन्न रख। कौन तेरी स्त्री? कौन तेरा लड़का? अरे भाई इस संसार की लीला अत्यन्त ही विचित्र है!

क्या ये विचार व्यक्तिगत जीवन के प्रचारक नहीं हैं ? जब तक भारत में जैन और बौद्ध राजा रहे तब तक भारतीयों का अक्षुण्ण शासन रहा। उन्होंने विदेशियों का मुकाबला किया और उनको खदेड़कर भारत की सीमा से परे किया।

जैन राजा चन्द्रगुप्त इसके लिए एक ज्वलन्त उदाहरण है। अशोक, हर्षवर्धन आदि बौद्ध, सम्राटों के समय में भारत की कैसी श्रीवृद्धि हुई, इसको भारतीयइतिहास के विद्वानपाठक अच्छी तरह जानते हैं। अशोक की तो विदेशों में भी धाक थी। फिर भी बौद्ध धर्म के ऊपर दोषारोपण करना क्या सत्य की दृष्टि से उपेक्षणीय है ?

जापान और चीन का क्यों अधःपात नहीं हुआ ? वहां पर भी तो हजारों वर्ष से बौद्धधर्म, राष्ट्रीय धर्म बना हुआ है। आप के व्याख्यान का एक अंश है कि:—

"जब हमारे बड़े २ नगर और राजधानियाँ लूटी जाती थीं-हमारी स्त्रियां और बच्चे गुलाम बनाये जाते थे, तब मैं समझता हूं कि उस समय भी इसमें बहुत से ऐसे लोग थे जो परमात्मा की भक्ति और ध्यान में ऐसे मग्न रहते थे। जो सत्यवादी थे, किसी मनुष्य को तो क्या प्राणिमात्र को भी दुःख देना नहीं चाहते थे। परन्तु इन गुणों में से कोई भी हमारे देश और जाति को लूटमार और विनाश से न बचा सका"

उक्त वाक्यों को पढ़कर पाठक महाशय ही सोचें-कि ये दोष उन निवृत्तिप्रधान समदर्शी साधुओं पर कहा तक लागू होते हैं ! क्या संसार इन निरीह साधुओं से देश रक्षा की आशा करता है ? अथवा क्या वे ही देश रक्षा का विश्वास जनता को दिलाते हैं ? देशरक्षा का कार्य प्रवृत्तिप्रधान गृहस्थों का है। यदि वे संगठित न होंगे तो उन्हें अवश्य कोई न कोई सबल हड़प जावेगा। आप अपने दोष न देखकर दूसरों को दोष देना कहां की बुद्धिमानी है !

सन्यासी तो सन्यासी है—उसे शत्रु मित्र, महल मसान सब बराबर हैं। यदि वह स्वदेश प्रेम के फन्दे में फंसता है तो क्षमा कीजिये-सत्य की दृष्टि से कहना पड़ता है कि वह अपने कर्तव्य से च्युत होता है। जब परिव्राजक ही बने तो क्या स्वदेश और क्या विदेश ? उनकी दृष्टि में यही निवृत्ति मार्ग ठीक है इसलिए वे इसी का उपदेश देते हैं। अब यह बात तो गृहस्थों को चाहिए कि जबतक प्रवृत्ति में रहें तबतक प्रवृत्ति प्रधान सब कामों में डटे रहें।

असल में एकता, उन्नति की जड़ है न कि वर्णव्यवस्था का सद्भाव या अभाव। क्यों कि एकता से ही संगठन होता है और एकता के नाश से संगठन का नाश होता है। यह एकता जबतक भारत में रही तबतक वह ऋद्धि सिद्धियों का मंदिर बना रहा, एक घर में जैन बौद्ध और वैदिक धर्म पाले जाते थे। परन्तु विधि के विधान से एकता नष्ट हुई कि आपस में एक दूसरे के जातीय दुश्मन बन गए। भारत के भाग्य दोष से शंकराचार्य ने इसमें आहुतिसा काम किया। पहिले परधर्म सहिष्णुता का नाश हुआ बाद को सभी बातों में वैमनस्य बढ़ता गया और यही भारत के नाश का कारण है। प्रवृत्तिप्रधानपुरुष (गृहस्थ) मद मूढ़ता में भूल कर अनुदार बनें और कर्तव्य भ्रष्ट हो गये। गोविन्दराय
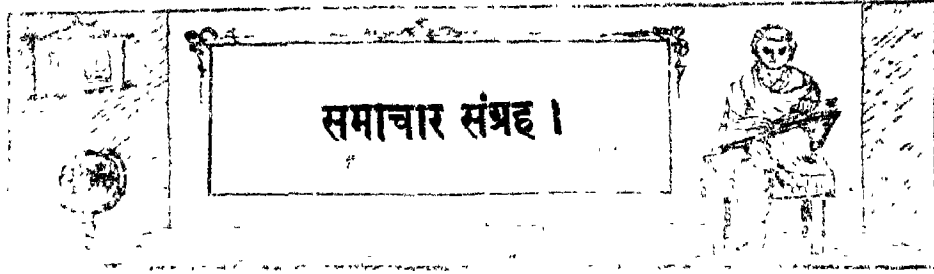
पुत्रोत्पत्ति के उत्सव में दान।

१०) प्राचीन श्री जैन मंदिर ललितपुर.
१०) नवीन श्री जैन मंदिर ललितपुर.
१०) श्री अभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला
१०) श्री अभिनन्दन दिगम्बर जैन औषधालय
२) श्री जैन चैत्यालय ललितपुर.
१०) श्री दिगम्बर जैन शिक्षा मन्दिर जबलपुर.
६) परवार बन्धु जबलपुर.
१०) श्री जैन मंदिर देवगढ़.
५) श्री शान्तिनाथ जैन मंदिर सैरोन.
३) श्री जैन मन्दिर पवा.
२) श्री जैन मंदिर गोलाकोटे.
३) श्री जैन मंदिर पचराई.
१०) औषधालय मालवा प्रान्तिक सभा.

१०१)

भूल सुधार।

तीसरे अंक में लामौन के फैसला की तिथि बैसाख वदी ६ छापी गई थी। उसकी जगह पाठक गण चैत्र वदी ६ सुधार लेवें।

खरगापुर का झगड़ा।

पिछले अंक में हमने गदयाना रथोत्सव के समय खरगापुर के मौजीलाल सराफ और पंचायत के मेल का समाचार लिखा था। उस के बाबत हमें समाचार मिले हैं। कि गदयाने में दोनों ओर से केवल चतुराई का अभिनय खेला गया था। घर पहुंचने पर फिर ज्यों का त्यों मामला खड़ा हो गया है। मामला केवल इतना है कि– "मौजीलाल सराफ को, जिस वेदी पर पंचोंने विधान विस्तारा था, उसी वेदी पर अलग पूजा करके, विधान की समाप्ति तक शान्ति और विसर्जन नहीं करना चाहिये था"।

"२—उनके द्वारा पूजन की थाली में से (जिस चौकी पर कि थाली रक्खी जाती है) उसी चौकी पर नैवेद्य गिर गया और फिर उस नैवेद्य को उन्हों ने श्री जी के लिये चढ़ाया है।"

इन्हीं दोनों अपराधों के कारण मौजीलाल सराफ का ६ माह तक मंदिर बंद रहा सरकार में मुकद्दमा चलाया गया। और १००) का मुचलका लिया गया।

प्रत्येक पाठक के चित्त में यह समाचार पढ़ कर आश्चर्य और खेद दोनों होंगे। समाज की परिस्थिति का पता भी इससे लग जाता है। जो समाज प्रति दिन के नित्य नियम में इस प्रकार अनभिज्ञ होकर परस्पर में युद्ध करती है। और उसका फैसला विजातीय सरकार द्वारा कराती है। उसके पतन का क्या ठिकाना है? मौजीलाल सराफ ने उक्त पूजन में पवित्र या अपवित्र कार्य किया है। इसका फैसला स्थानीय जागीरदार की अदालत में हुआ है या होगा।

उक्त फैसले को जैन पाठक गण स्वयं सोच सकते हैं कि वह कहां तक न्याय संगत

होगा । मैं खरगापुर के पंचों से पूछना चाहता हूं कि पूजन का उद्देश्य क्या है? और उस उद्देश्य की पूर्ति किस तरह होती है? यदि आप कहें कि पूजन का उद्देश्य पुण्योपार्जन और उसकी पूर्ति भावों पर निर्भर है। तो फिर आप पूजन करने वाले के भावों का पता कैसे लगा सके हैं। दूसरे वह अपने भावों का आप भोक्ता है—आपको दंड देने का क्या अधिकार है? सो भी एक अजैन जमींदार के पास जाकर दोनों ओर से द्रव्य व्यय करके फैसला चाहना कहां तक बुद्धिमानी है? आप दोनों लड़ें और तीसरा जुर्माना लेकर बिल्ली बन्दर की कहावत चरितार्थ करे। इस लिये हमारी प्रार्थना है कि आप लोग आपस ही में इसको शान्त चित्त से तय कर लेवें। पूजा का विवेचन आगामी अंक में प्रगट करने का प्रयत्न किया जावेगा।

जैन मंदिरों का हिसाब।

परवार सभा के नागपुर अधिवेशन में जैन मंदिरों तथा सार्वजनिक संस्थाओं का हिसाब प्रगट करने तथा उसे अन्य उपयोगी संस्थाओं में खर्च करने का प्रस्ताव हुआ था-कई सज्जनों ने वहीं पर हिसाब भेजने का वचन दिया था। परन्तु अभी तक किसी का भी हिसाब प्रगट करने को नहीं आया है आशा है कि जैन मंदिरों के संरक्षक तथा पंच लोग इस प्रस्ताव को अमल में लाने के लिये अपनी स्पष्टता का परिचय देंगे।

द्रव्यकी उपयोगिता।

कई सज्जनों ने अपने मंदिर का रुप्या जीर्णोद्धार में देने का भी नागपुर की परवार सभा में वचन दिया था। अब उनसे प्रार्थना की जाती है कि कई मंदिरों के जीर्णोद्धार के पत्र आ रहे हैं यदि आप लोग इस कार्य में अपनी उदारता का परिचय देंगे—तो पुराने मंदिरों की रक्षा हो सकेगी। बजरंगगढ़ और गढ़ा के मंदिरों की जीर्णावस्था शोक जनक है। सेरोन के मंदिरों का भी सुधार आवश्यक है।

क्या मुनीम चाहिए?

एक दिगम्बर जैन उमर ३५ साल, गृहस्थ, अदालत के काम में होशियार और सब प्रकार के व्यापार में कुशल है। यदि किसी को आवश्यकता हो तो नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार कीजिये।

पता—

ब्रह्मचारी शिवप्रसाद-पा० म लथान
(सागर) सी. पी.

अटसटा भेजनेवालों को सूचना

हमारी पूर्व सूचना पर ध्यान देकर बहुत से महाशयों ने इसे पसन्द किया—और वर, कन्याओं के अटसटा भी भेजे—परन्तु अटसटा भेजने वालों के प्रति हमारी प्रार्थना है कि मूल, गोत्र, जन्म तिथि- १ या २ री शादी आर्थिक स्थिति, शिक्षा और स्वास्थ्य की योग्यता, और पता आदि बातें स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजना चाहिये अन्यथा आपके पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया जासकेगा।

हम कई पत्रों का उत्तर नहीं दे सके उसका कारण पता की अस्पष्टता है अतः आगामी अटसटा भेजनेवाले महाशय इस बात का स्मरण अवश्य रक्खेंगे।

कन्या का अठसका
(१)

१-कुआ भारल्ल गोत्र
२-डुही
३-देशामूरी
४-सर्व छोला
५-गोदू मूरी
६-पाहु मूरी
७-बहुरिया
८-बीबी कुट्टन

जन्म
असाढ़ बदी ४ सं० ६१

पता -
रामचन्द्र किसनदास
परवार
इटारसी (होशंगाबाद)

कन्या का अठसका
(२)

१-सेत गागर गोहिल गोत्र
२-बहुरिया
३-गाहेमूर
४-रैंवा
५-डेरिया
६-रकया
७-उछाछरे
८-छभरा

जन्म
बैशाख सुदी ३ सं० ६६

पता -
सेठ हुकमचन्द जैन
सिवनी

स्थानाभाव के कारण अप्रकाशित

हम को एक लेख श्रीयुत सिंगई मौजीलाल जी का "परवारसभा के प्रस्ताव की विजय" के उत्तर में अंक तैयार हो चुकने पर ता २५ ... को रजिस्ट्री से मिला है। किन्तु हम उसे स्थाना भाव के कारण प्रकाशित नहीं कर सके। क्षमा करेंगे।

अठसका वर का
१

१-कुआ भारल्ल गोत्र
२-सिंगा
३-रकिया
४-भारू
५-चंदाडिम
६-बशाखिया
७ बीबी कुट्टम
८-अंडेला

जन्म सम्वत
असाढ़ कृष्णा ६ सं१९६७

पता—
सिंगई फितूरीलाल
मनीराम
देवरी कला-सागर

अठसका वर का
२

वर को अभी बाबू कन्छेदी लाल जी वकील की ओर से ४०) मासिक स्कालर मिलती है इस कारण हिन्दू विश्व विद्यालय में इंजीनिरिंग की शिक्षा पा रहे हैं विशेष नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार कीजिये।

१-डेरिया वासल्लगोत्र
२-छिगा
३-रकिया
४-भारु
५-बीबी कुट्टम
६-बैसाखिया
७-बहुरिया
८-दिवाकर

जन्म सम्मत
मार्गशीर्ष बदी १३
सं: १९५५

पता—
बाबूलाल मोतीलाल
जैन.
जैनबोर्डिंग-जबलपुर

छात्रवृत्ति स्वीकार।

अमरावती के श्रीयुत बाबू कन्हैयालाल जी ने एक वर्ष तक १०) मासिक छात्रवृत्ति आयुर्वेद की शिक्षा पानेवाले पं० सत्यंधर जी जैन काव्यतीर्थ को देना स्वीकार कर लिया है। आप पिछले वर्ष भी १०) मासिक देते रहे हैं। आप को इस उदारता को धन्यवाद।

Reg. No. 315

[वर्ष २]   मई सन् १९२४.   [अंक ५]

श्री भा. दि. जैन परवार सभा का मुख्य पत्र-

वार्षिक मूल्य ३)]

परवार-बन्धु

[एक प्रति का ।-)

महा भयानक दृश्य! कृरने, बता कहां तेरी सीमा।
ज़रा चिता को तेज़ जलादे, यह प्रकाश तो है धीमा ॥ १

दीख पड़ें तेरी करतूतें, हत्यारी न्यारी न्यारी। चिन्ता की जीवित आहुतियाँ, आकृतियाँ प्यारी प्यारी ॥ २ ॥

बिखरे बाल, भाल है सूना, इनको दूना लूटा है।
पहिले जीवन-धन छूटा फिर-लाल हृदय का छूटा है ॥ ३

"मा ! अपना त्रिशूल हलादे, मरनेदे मर जाने दे। शुभ चिन्हों से रहित देह यह इन गिद्धोंको खाने दे" ॥ ४

सम्पादक
पं० दरबारीलाल साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ।

प्रकाशक--
मास्टर छोटेलालजैन

संरक्षक

१—श्रीमान श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी सिवनी
२—श्रीमान सिंगई पन्नालाल जी अमरावती.
३—श्रीमान बाबू कन्हैयालाल जी अमरावती.
४—श्रीमान ठाकुरदास टालचंद जी अमरावती.
५—श्रीमान स.सि.नत्थूमल जी साव जबलपुर.
६—श्रीमान बाबू कस्तूरचंदजी वकील जबलपुर.
७—श्रीमान सिंगई कुंवरसेन जी सिवनी
८—श्रीमान स सि. चौधरी दीपचंदजी सिवनी.
९—श्रीमान फतेचंद दीपचंद जी नागपूर.
१०—श्रीमान सिंगई कोमलचंद जी कामठी.
११—श्रीमान गोपाललाल जी आर्वी
१२—श्रीमान पं० रामचन्द्रजी आर्वी.
१३—श्रीमान खेमचंद जी आर्वी.
१४—श्रीमान सरउलाल झब्बूलाल जी. निवरा
१५—श्रीमान कन्हैयालाल जी डोंगरगढ़.
१६—श्रीमान सोनेलाल जी नवापारा
१७—श्रीमान दुलीचंद जी चौरई छिंदवाड़ा
१८—श्रीमान मिट्ठनलाल जी छपारा.

सहायक

१—श्रीमान रामलाल जी साव सिवनी २५)
२—स० सि० लक्ष्मीचंद जी गढ़याना २५)

विज्ञापन दाताओं को सूचना—

विदित हो कि जनवरी सन २४ से "परवार-बन्धु" सचित्र प्रकाशित होने लगा है। इस में प्रति मास सरस्वती साइज के ५० पृष्ठ और मुख पृष्ठ चिकने सुन्दर आर्ट पेपर पर नवीन २ चित्र दिये जाते हैं। इस की बाग डोर का भारतवर्षीय परवार महासभा तथा १८ श्रीमान संरक्षक है। अतः जैनियों के सम्पूर्ण ऐसे स्थानों में जाता है। जहां कि दूसरे पत्रों की पहुंच नहीं। कई उदार दाताओं और संरक्षकों का कृपा से तीर्थ स्थानों, पंचायतों आदि को भी सैकड़ों की संख्या में मुफ्त भेजा जाता है। जिस से एक २ अंक सभी प्रकार के सैकड़ों भाइयों की दृष्टि में आता है। कागज, छपाई, सफाई सभी सुन्दर रहती है। उस की उपयोगिता इसी से स्पष्ट है कि जैन, अजैन सभी प्रसिद्ध विद्वानों और पत्रों ने इस की मुक्त कंठ से प्रशंसा और स्वागत किया है। ग्राहक संख्या भी दिनों दिन बढ़ रही है। आशा है कि आप भी विज्ञापन देकर हमारी उक्त बातों का परिचय लेंगे।

इस समय विज्ञापन की दरः—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	८)	प्रति मास
आधा पृष्ठ या १ ,, ,,	५)	,,
चौथाई ,, या आधा कालम ,,	३)	,,
अष्टमांस पृष्ठ या चौथाई ,, ,,	२)	,,
कवर के चौथे पृष्ठ की ,,	१२)	,,
,, तीसरे ,, ,,	१०)	,,
पाठ्य विषय के पहिले और पीछे की छपाई	१)	,,

नोटः—(१) पूरी छपाई पेशगी ली जावेगी। (२ एक कालम से कम विज्ञापन छपाने वाले को "बन्धु" बिना मूल्य नहीं भेजा जावेगा। (३) नमूने की प्रति का मूल्य पांच आने।

विज्ञापन दाताओंके पत्रोंका उत्तर।

हमारे पास कई विज्ञापन दाताओंके पत्र आये है—उनमें उन्होंने ग्राहक संख्या और रेट के सम्बन्धमें स्पष्ट उत्तर मांगा है। अतएव हमारा उनसे केवल इतना निवेदन है कि यह पत्र किसी एकका नहीं किन्तु समाजका है— इसकी कोई भी बात गुप्त और संशयात्मक नहीं रक्खी जाती है। इसके ग्राहकोंकी संख्या थोड़े ही समयमें सभी जैनपत्रोंसे अधिक होगई है। यह भी छिपा के नहीं रक्खी जाती किंतु शुरू से ही प्रत्येक अंक में नाम सहित प्रकाशित की जा रही है। और अलग भी रिपोर्ट में छपाई जावेगी। जिससे हमारी बातों का पता लग सकता है। सभा, विद्वानों, तीर्थ स्थानों, व्यापारियों, पंचायतों, आदि को सेवामें भेजा जाता है। उदारदाताओं और संरक्षकोंकी सहायतासे असमर्थों को मुफ्त में भी भेजा जाता है। जिससे एक २ अंक सैकड़ों लोगोंकी दृष्टिमें पहुंच जाता है।

छपाई का रेट लागत मात्र उपर्युक्त दिया गया है उसमें कुछ भी कमी नहीं हो सकेगी— केवल एक वर्ष के विज्ञापन की छपाई पेशगी देने वालों को =) रुपया कम कर दिया जावेगा। आये हुए विज्ञापन आगामी छापे जावेंगे।

पता :—
मास्टर छोटेलाल जैन
परवार-बन्धु. कार्यालय जबलपुर (सी. पी.)

सहायता।

परवार-बन्धु के गतांक में श्रीयुत पं० जुगलकिशोर जी की "मेरी द्रव्य पूजा" शीर्षक कविता पाठकों को इतनी पसन्द आई थी कि अनेक [illegible] से उसको पुस्तकाकार में प्रकाशित करके प्रचार करने की प्रेरणा होने लगी थी। प्रसन्नता की बात है कि श्रीयुत बाबू कस्तूरचन्द जी वकील मंत्री परवार सभा ने अपनी ओर से "मेरी भावना" के साथ "मेरी द्रव्य पूजा" को प्रकाशित करके परवार बन्धु के प्रेमी पाठकों को उपहार में देने के लिये १५) प्रदान किये हैं। तदर्थ धन्यवाद। शास्त्रदान के लिये हमारी समाज को यह बहुत अच्छा अवसर और निमित्त है। इसी प्रकार परवार-बन्धु की ग्राहक संख्या बढ़ाने का अधिक प्रयत्न करने वाले श्रीयुत चौधरी सुलक्षीचन्द जी जबलपुर तथा श्रीयुत कड़ोरेलाल मुन्नालाल जी जबलपुर निवासी भी धन्यवाद के पात्र हैं।

परवार-बन्धु का आकार—

प्रकार प्रथम अंक से उत्तरोत्तर बढ़ता चला आ रहा है। पाठकों ने इसे कैसा पसन्द किया है—यह उनके लगातार पत्रों से विदित होता है जो हरेक अंक में क्रमशः छपते रहते हैं। हम ने पहिले अंक में जो प्रतिज्ञा की थी उससे अधिक पृष्ठ संख्या ही हरेक अंकों में रहती है। उसका कारण ये है कि इस पत्र का उद्देश्य रुपये पैदा करना नहीं किंतु केवल उत्तम विचारों का समाज में प्रचार करना है—इसलिये घाटे की भी परवाह किये बिना उसको, विचार शील विद्वानों के लेख, कविताओं गल्पों, नाटक, विनोद, विज्ञान आदि विविध विषयों से विभूषित करके आप लोगों की सेवा में प्रेषित किया जाता है। अतएव यह परिश्रम और व्यय की सफलता तभी समझी जावेगी जब आप उसमें से कम से कम अपने पसन्द विचारों (लेखों) को अधिक से अधिक लोगों के पास पहुँचाने की चेष्टा करेंगे-स्वयं पढ़ कर मित्रों को जो कि इसके ग्राहक नहीं हैं यह पत्र पढ़ने को देवेंगे। और यदि इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने का भी थोड़ा २ सब प्रयत्न करेंगे तो-अभी पृष्ठ संख्या बढ़ाते रहने पर भी स्थानाभाव के कारण जो हमारे पास विद्वान् लेखकों के समयानुकूल उपयोगी लेख आदि पड़े रहते हैं उनको प्रकाशित करने के लिये तथा और भी चित्ताकर्षक-मनोरंजक बनाने के लिये ३) वार्षिक मूल्य में ही

पृष्ठ संख्या ८० तथा रंगीन चित्र

सादे चित्र, कार्टून (व्यंग चित्र) आदि के रखने का भी प्रबन्ध करेंगे। लेखों के विषय में भारतवर्ष की बहुतायत जन संख्या कृषि और व्यापार पर निर्भर है। और इस समाज के भी यही दो मुख्य उद्योग हैं। अतएव आगामी अंक से—

कृषि और व्यापार

सम्बन्धी लेखों को भी प्रकाशित करने का प्रबन्ध कर रहे हैं। तथा हमारे पाठक महाशय और भी जो उचित सूचनाएँ देंगे-उनके हम अत्यन्त आभारी होंगे।

परवार-बन्धु पर सम्मतियां।

१ श्रीयुत हजारीलाल जी मास्टर बोर्ड मिडिल स्कूल सागर—

"परवार-बन्धु" का अंक ३ रा हस्तगत हुआ। हर्ष है कि दोनों महाशयों के द्वारा बंधु को उन्नति होने के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे हैं। मैं इसका ग्राहक बनना चाहता हूं। कृपया जून का अंक वी. पी. से भेजियेगा। पीछे के दो अंक और भेज दीजियेगा ताकि मैं इसकी फाइल बना लूं।

२ श्रीयुत सिंगई खेमचन्द जी जबेरा—

बन्धु पर मेरा हार्दिक प्रेम है। इसलिये मैं इसके ग्राहक बनाने की कोशिश किया करता हूं। निम्न लिखित सज्जनों का नाम ग्राहकों में लिख कर वी.पी. भेज दीजिये।

३ श्रीयुत सम्पादक "संगीत रत्नाकर" कलकत्ता—

पत्र को आदि से अन्त तक पढ़ा। सारे लेख उत्तम नये २ भावों से भूषित समाजोपयोगी संग्रह किये गये हैं। छपाई बहुत ही सुन्दर हुई है। मुख पृष्ठ पर एक सुन्दर भावपूर्ण चित्र भी दिया गया है जिससे पत्र की शोभा और भी बढ़ गई है। मूल्य ३) कुछ भी नहीं है। प्रत्येक को इसका ग्राहक होना चाहिये।

४—श्रीयुत बाबू मूलचन्द जी जैन बीना इटावा से लिखते हैं:—

बन्धु का चौथा अंक उपलब्ध हुआ। "बन्धु" की सज धज, लेख, गल्प, कविताओं आदि में सामयिक प्रगति एवं आवश्यकता के अनुकूल विचार पाये जाते हैं। "बन्धु" की इस प्रकार शीघ्र काया पलट और उन्नति को देख कर प्रसन्नता होती है। आशा है कि यह पत्र उच्च कोटि का स्थान ग्रहण करेगा।

५—श्रीयुत पं० रघुनन्दनप्रसाद जैन, अमरोहा:—

बन्धु में मातृ भाषा हिन्दी सम्बन्धी लेख वाङ्मय में बहुत प्रशंसनीय निकल रहे हैं। मेरे मतानुसार जैन विद्यालयों में शीघ्र ही इस प्रकार के पठनक्रम प्रचार की आवश्यकता है। यदि "जैन शिक्षा मन्दिर जबलपुर" हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी तीनों परीक्षाएं मातृ भाषा हिन्दी में रख कर उसी के साथ जैन ग्रन्थों का पठन-पाठन चलावे तो इससे समाज का बहुत लाभ होगा। आशा है कि आप इस को ओर शिक्षामंदिर का ध्यान अवश्य दिलाएंगे।

६—श्रीयुत पं० भागचन्द जी, गोंदिया:—

मैं परवार बन्धु का बाह्य आभ्यंतर रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि इसका ऐसा रूप चिरस्थाई रहे। तथा समाज की कुरीतियां दूर करने को यह समर्थ होवे।

७—श्रीयुत मठोलेलाल दमरूलाल जी, टीकमगढ़:—

"बन्धु" के अब तक के चारों अंकों के निकलने में बहुत उन्नति हो गई है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि दिन प्रति यह इसी प्रकार बढ़ता जावे। प्रति अंक में चित्र बहुत चित्ताकर्षक आता है। कविता, लेखादि, सारगर्भित और उपयोगी निकलते हैं।

विषय सूची।

वर्ष २ | मई, सन् १९२४ ई० | संख्या ५

ग्रीष्म-तपस्या।

ग्रीषम की ऋतु माहिं जल थल सूख जांहि, परत प्रचंड धूप आग सी बरत है।
दावा की सी ज्वाल माल बहत बयार अति, लागत लपट कोऊ धीर न धरत है॥
धरती तपत मानौं तवा सी तपाय राखी, बड़वा अनल सम शैल जो जरत है।
ताके शृंग शिला पर जोर जुग पांव धर, करत तपस्या मुनि करम हरत है॥

तृषा-परीषह।

धूप की झलनि परै आग सो शरीर जरै, उपचार कौन करै दहै हार आन के।
पानी की पियास जेती कहै को बखान तेती, तीनौं जोग थिर सेती सहै कष्ट जान के॥
एक छिन चाह नाहिं पानी के परीसे माहिं, प्राण छिन नाश जाहिं रहै सुख मान के।
ऐसी प्यास मुनि सहैं तब जाय सुख लहैं, 'भैया' इहि भांति कहै वंदिये पिछान के॥

—भैया भगौतीदास।

शिक्षा कैसी होना चाहिये ?

(शिक्षा का स्वरूप)

शिक्षा ऐसी होना चाहिये जो मनुष्य की ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नतियों में सहायक हो सके। हर एक जाति व व्यवसाय वाले व्यक्तियों की आवश्यकताएं भिन्न २ होती हैं इसलिये उनकी पूर्ति के लिये उन्हें भिन्न२ उपायों से काम लेना पड़ता है। जैसे ब्राह्मण को जीविका और प्रतिष्ठा के लिये पठन पाठन करना, यज्ञ करना तथा धार्मिक मामलों में व्यवस्था के लिये संस्कृत भाषा के साहित्य, न्याय, व्याकरणादि की आवश्यकता है। क्योंकि बिना इन विषयों का ज्ञान प्राप्त किये वह भरण पोषण करने में; प्रतिष्ठा पाने में असमर्थ रहेगा। और अपनी इस असमर्थता से खेदित हो धर्म ध्यान पूजादिक कार्यों को नहीं कर सकेगा। ठीक इसी तरह क्षत्री के बालक को जीवन के कार्य संचालन योग्य साहित्य के सिवाय युद्ध विद्या, शासन शिक्षा और न्याय विद्या की वैश्य को व्यवसायिक शिक्षा की-शूद्र को सेवा ज्ञान की आवश्यकता है। इस लिये शिक्षा तत्वज्ञों का कथन है कि शिक्षालयों के प्रबंधकों का प्रधान कर्तव्य यह है कि वे उसमें शिक्षार्थियों की स्थिति के अनुकूल शिक्षा दिलाने का प्रबंध करें।

आज कल हमारी आर्थिक, शारीरिक व मानसिक स्थिति कैसी है ? हमारी आजीविका का साधन क्या है ? हमारी प्रतिष्ठा का आधार कौन है ? आदि बातों को विचार कर हमें अपने बालकों की शिक्षा के विषय निर्धारित करना चाहिये। केवल धार्मिक विषय की शिक्षा से हमारा कल्याण नही हो सकेगा न धर्म शून्य निरी व्यवहारिक शिक्षा से। पुरुषार्थ के विषय पर गुसाईं तुलसीदास जी इस दोहे में कितनी नपी-तुली बातें कह गये हैं:—

> कला बहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार।
> एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार॥

जैन जाति के लिये प्रयोजनीय शिक्षा।

जैन जाति व्यापारी है। इसमें धनी और निर्धनी दोनों स्थिति वाले गृहस्थ हैं। दोनों की जीविका का प्रधान साधन व्यापार है। हमारी प्रतिष्ठा का कारण धन बल है और उसकी प्राप्ति व वृद्धि व्यापार से होती है। अपने सुहृद को देख शारिरिक कुशलता के साथ दुकान की स्थिति व माल की बिक्री व भाव आदि के प्रश्न पूंछना हमारी जाति की परिपाटी है। इस लिये हमें आवश्यकता ऐसी पद्धति की है जो हमारे बालकों को व्यापारिक कार्य में सहायता पहुँचाती हुई उन्हें धर्म साधन में लगावे-जिसके प्रसाद से वे पापभीरु बन जीवमात्र के सहायक हो सके। और अपनी सदाचार वृत्ति से राष्ट्र की सेवा करने में समर्थ हो सकें।

वर्तमान स्कूलों के शिक्षित नवयुवकों की स्थिति।

आज कल देखा जाता है कि धनिक महाशयों के यहां नौकरी के उम्मेदवार विशारद कक्षा व इंट्रेंस क्लास तक के शिक्षित नवयुवकों को सीधी नकार मिलती है--व्यापार के लिये आर्थिक सहायता मिलना तो दूर की बात है सलाह भी नहीं मिलती। उन्हीं धनी महाशय के यहां सामान्य लिखना पढ़ना जानने वाले माल

के खरीदने व बेचने का ज्ञान रखने वाले बालक अच्छे वेतन पर भरती हो जाते हैं। यहां यह प्रश्न पैदा होता है, कि क्या धनी इन विद्वान् नवयुवकों से घृणा रखते हैं, या कुछ उनकी विद्या का भय करते हैं ? सो ठीक नहीं है। बात ऐसी है धनी और दुकानदारों को जिस कला व ज्ञान की जरूरत है। इन शिक्षित नवयुवकों में उसकी मात्रा अत्यल्प होती है और दुकानों में काम करने वाले विद्या विषय में मूर्ख होने पर भी उन के व्यापारिक कार्य को जानते हैं। इससे वे इन मूर्ख बालकों की चाह करते व उन्हें व्यापार के निमित्त दी जाने वाली पूंजी की रक्षा होने की प्रतीति से उन्हें भरपूर सहायता भी देते हैं। समाज में अभी विवेक की मात्रा इतनी कम नहीं हुई है। कि जिस से वह शिक्षा के महत्व को न जानती हो। हम देखते हैं कि हमारा हर एक भाई अपने छोटे २ बालकों को शिक्षा के लिये शालाओं में भेजने के लिये प्रयत्न करते हैं। और फिकर के साथ उन्हें उन कक्षाओं तक पढ़ाता है जहां तक की शिक्षा को वह अपने धंधे में सहायक समझता है। जहां बालक ने प्रायमरी कोर्स पहिली दूसरी अंग्रेजी कक्षा की पढ़ाई पूरी की-कि उसके पिता ने शाला से हटा उसे दुकान के काम में लगाया। क्योंकि वह जानता है कि अब आगे की शिक्षा मेरे कारोबार में सहायक नहीं है। अपनी निजी शालाओं में भी अपने धंधे की सहायक शिक्षा न होने से वह बालकों को वहां नहीं भेजता। उसकी यह उदासीनता संस्था व शिक्षा प्रति नहीं है- है केवल उन संस्थाओं की शिक्षाप्रणाली के प्रति। वह शिक्षा प्रति प्रेम होने से ही समाज प्रति वर्ष अपने विद्यालयों को सहस्रों रुपया भेंट करता है। शिक्षा से उसका पूरा प्रेम है। परंतु वह किस प्रकार दिलाई जावे इस बात को नहीं जानता। लोग अपनी इस अनभिज्ञता के कारण अधिवेशनों में आने और प्रबंधक सभा के मेम्बर रहने पर भी संस्थाओं की सारहीन शिक्षा प्रणाली को जानते हुए उसके सुधार के विषय में मौन ही रहते हैं वे संस्थाओं की इस सारहीन शिक्षा से अपने दुखित चित्त को "खैर विद्यादान तो हो रहा है" ऐसी कल्पना से संतोष कर लेते हैं।

सरकारी शालाओं की शिक्षा लाभदायक क्यों नहीं है ?

प्रति वर्ष टेक्स व चंदा रूप से, प्रजा से वसूल हुए करोड़ों रुपया आज जिन सरकारी स्कूलों और कालेजों में स्वाहा हो रहे हैं—उन की भी शिक्षा प्रणाली देश के शिक्षा तत्वज्ञ परोपकारी नेता निकम्मी और बालकों को पौरुष हीन बनाने वाली कहते हैं। महात्मा गांधी जिन्हें मनुष्य मात्र के हित की चिन्ता अहर्निश रहती है। इन स्कूलों व कालेजों में लड़कों को भेजने की मनाई कर रहे हैं। एक तो इन में प्रारंभ से ही सब विषय अंग्रेजी भाषा में सिखाये जाते हैं। जो कि हमारी मातृ भाषा न होने से बालकों के कमजोर मस्तिष्क को खराब कर देती है। माता का दूध ही बालक के कोमल शरीर को निरोगी रख उसे सुन्दर और सुदृढ़ बना सकता है न कि दूसरा दूध। यद्यपि दूध पौष्टिक पदार्थ है परंतु कोमल शरीर वालों के लिये मातृ दुग्ध के समान हितकर नहीं। इसी [illegible] व्यवहारिक ज्ञान के सम्पूर्ण अंगों युक्त होने पर भी यह अंग्रेजी साहित्य अशिक्षित या अर्द्ध-शिक्षित विद्यार्थियों को उनके हृदय कमल के विकसित करने में समर्थ नहीं हो सकता।

दूसरे वहां शिक्षा विषयों के सिखाने का ढंग ही ऐसा है कि जिस से वे उपयोगी होने

पर अनुपयोग करते हैं। इस ढंग के खराब होने का कारण है उन विदेशी विद्वानों के हाथ में यहां की यूनिवर्सिटियों का होना। जिन की स्वार्थ लिप्सा इस देश में वास्तविक शिक्षा प्रचार करने से उन्हें रोकती है।

जैन विद्यालयों की शिक्षा पद्धति ।

सरकारी स्कूल व कालेजों का तो यह हाल है। अब रहीं हमारी निज की शालाएं और विद्यालय। सो भाषा और शिक्षा विषयों में ये भी सरकारी शिक्षालयों के समान हैं। इन में भी छात्रों को प्रारम्भ से ही संस्कृत भाषा में व्याकरण न्याय आदि शुष्क और क्लिष्ट विषय पढ़ाये जाते हैं। और आदि से अन्त तक केवल उन्हीं विषयों की शिक्षा में बालक के दस बारह वर्ष बिताये जाते हैं। जिन से उसे विद्यालय से निकलने पर व्यवहारिक कार्यों में अत्यंत कम सहायता मिलती है।

जब इन जैन महाविद्यालयों से निकले हुए अपने शाब्दिक बल से बाल की खाल निकालने वाले व्यवहारिक ज्ञान शून्य पंडितों की योग्यता की तुलना हम आर्य समाजियों के गुरु कुलों से निकले स्नातकों से करते हैं तब हमें आश्चर्य और दुख दोनों होते हैं। वहां की शिक्षा का क्रम दूसरा ही है। वे वैज्ञानिक ढंग से सरलता पूर्वक बालकों को ऐसी शिक्षा देते हैं। कि जिससे वे लौकिक विषयों के साथ २ धार्मिक ज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। हमने अभी तक जो अनुकरण किया है सो कुछ बुरा कर्म नहीं किया। घोर निद्रा से चौंक कर उठी जैन समाज को उस समय यही मार्ग ठीक जंचा था। उस समय हमारे यहां संस्कृत विद्वानों का प्रायः अभाव था। परंतु अब वह समय नहीं है-समाज के पास विद्यालय हैं और हर एक विषय के ज्ञाता अनेक जैन पंडित। इसलिये अब हमें अपना मार्ग बदल देना चाहिये।

जैन जाति के विद्यालयों में कैसी शिक्षा होना चाहिये ?

समाज को चाहिये कि अभी चल रहे अपने विद्यालयों में सरल नवीन वैज्ञानिक पद्धति द्वारा संस्कृत शिक्षा के। दिलाने का प्रबंध करे। जिससे प्रति वर्ष कुछ ऐसे धुरंधर विद्वान तैयार होकर निकलते रहें, जो अपने ज्ञान से प्राचीन अलभ्य बातों को खोज कर जगत् को जैन साहित्य के अमूल्य रत्नों का परिचय देने में समर्थ हों। परन्तु सर्व साधारण की शिक्षा के लिये अन्य पाठ-शालाओं में तथा नवीन खुलने वाले विद्यालयों में उसे प्रारम्भ से केवल संस्कृत भाषा द्वारा शिक्षा नहीं दिलानी चाहिये। जिस भाषा से केवल शास्त्र स्वाध्याय के समय ही सहायता मिलती हो, और दिन रात के शेष २३ या २३॥ घंटों में जिसका एक भी वाक्य मुंह से न निकालना पड़ता हो ! भला ऐसी भाषा में अपनी मातृ भाषा का भी पूरा २ ज्ञान न रखने वाले बालकों को शिक्षा दिलाना कहां तक लाभदायक है ? सो भी न्याय, व्याकरणादि ऐसे विषयों में जिनका गार्हस्थ्य जीवन में (गृहस्थी में) अत्यंत कम काम पड़ता है। इस शिक्षा क्रम से वाणिज्य प्रिय जैन जाति कहां तक लाभ उठा सकती है ? इस बात के निर्णय का भार हम पाठकों पर छोड़ते हैं।

भाषा के विषय में हमारा यह कथन कदाचित् उन भाइयों को खटकेगा, जो इस कलि-काल में संस्कृत भाषा को जिनवाणी की मूर्ति मान मोक्ष नहीं तो स्वर्ग प्रदायनी अवश्य

मान रहे हैं। उन्हें यह सोचना चाहिये कि जिन-राज की वाणी कोई भाषा विशेष में नहीं हुई थी। गुरु परम्परा से उसका ज्ञान प्राप्त करते चले आये पूर्वाचार्यों ने तत्समय की प्राकृत संस्कृत भाषा में अपने उस ज्ञान को लिखा था।

हिन्दीभाषा की शिक्षा का महत्व।

इस महत्वशाली साहित्य भंडार के ज्ञाता कुछ पंडितों का सद्भाव समाज के लिये भूषणीय है। परन्तु सर्व साधारण के लिये प्रयोजनीय जैन धर्म को जानने के लिये संस्कृत भाषा जानना ही आवश्यक है सो बात नहीं है। अपने स्वर्गीय पूज्य पंडितों की कृपा से हम गंभीर जैन धर्मका बोध, हिन्दी भाषा द्वारा ही कर सकते हैं। स्वर्गीय पूज्य पंडित टोडरमल्ल जी के संस्कृत भाषा द्वारा प्राप्त किये अगम ज्ञान भंडार को कौन जैन विद्वान् नहीं जानता? इन्हों ने स्वयं जिस भाषा में वर्षों अभ्यास करके ज्ञान प्राप्त किया था; उसमें एक श्लोक या वाक्य तक न लिखकर सर्व साधारण के हित की दृष्टि से स्वज्ञान भंडार का परिचय प्रचिलित हिन्दी भाषा द्वारा ही दिया है। यह साधारण बात नहीं है- आप अपने मोक्षमार्ग प्रकाश ग्रंथ में इस बात को स्पष्ट रूप से लिख गये हैं कि; शिक्षा अर्थात् उपदेश देशभाषा में देने से लाभ होता है और उन ही विषयों की शिक्षा पहिले दी जावे जो लौकिक व पार-लौकिक जीवन में प्रयोज नीय होवे।

हिन्दीभाषा का महत्व।

भाषा में विशेष महत्व नहीं होता। महत्व होता है कथन शैली की उत्तमता में। चतुर वक्ता अपने कथन की उत्तमता से प्रत्येक विषय को महत्वशाली बना सकता है- चाहे वह किसी भी भाषा का बोलने वाला क्यों न होवे। आप लोग अभी भूले न होंगे कि थोड़े ही वर्ष हुए कि कलकत्ता यूनिवर्सिटी द्वारा निर्मन्त्रित होकर गये स्वर्गीय पूज्य पंडित गोपालदास जी के जिन भाषणों पर मुग्ध होकर संस्कृत अंग्रेजी और बंगला के धुरंधर विद्वानों ने उन्हें "न्यायवाचस्पति" की उपाधि से विभूषित किया था-वे भाषण जैन सिद्धांत के गहन विषयों पर इसी हिन्दी भाषा में दिये गये थे। इसी से तो कहा जाता है कि कोई भाषा महत्व शालिनी नहीं बन सकती-महत्व शाली होती है सम्यक् कथन प्रणाली। भाषा को उसके भक्त विद्वान्ही अपनी बुद्धि बल से समृद्धिशालिनी बनाते हैं। आज हिन्दी की वह गिरी दशा नहीं है जो पृथ्वीराज रासे के जन्म समय में थी। आज उसका शब्द भंडार विस्तृत और रचना क्रम अव्यभिचरित हो गया है। और वह थोड़े ही दिनों में राष्ट्र भाषा का आसन ग्रहण करने वाली है। परिवर्तन शील काल ही जब उसे देश प्रिय बनारहा है तब जैन समाज को भी उचित है कि शिक्षा के लिये शीघ्र उसका आश्रय लेवे।

संस्कृत व अंग्रेजी भाषा का प्रयोजन।

हमें इस बात के मानने में किंचित आपत्ति नहीं है, कि संस्कृत भाषा में भी शिक्षा न दिलाई जावे। हम इस बात को ज़ोरों के साथ कहने को तैयार हैं कि हम अपने साहित्य का पूरा परिचय इसी भाषा द्वारा पा सकते हैं। इस लिये इस की भी शिक्षा हमारे लिये प्रयोजनीय है परन्तु वह सर्वसाधारण को आवश्यकीय न होने से प्रवेशिका में नहीं दी जावे। उसका श्रीगणेश तुलनात्मक पद्धति द्वारा विशारद में कराया जावे। और इति शास्त्रीय कक्षा में। अपने धार्मिक ज्ञान की वृद्धि और

प्राचीन काल के वैभव के जानने के लिये जिस प्रकार संस्कृत भाषा की आवश्यकता है उसी प्रकार व्यवसायिक कार्य में सहायक होने से अंग्रेजी भाषा का ज्ञान भी हमारे लिये हित कर है। एक तो वह राज्य भाषा है, दूसरे आज कल यहां की राष्ट्र भाषा भी बन रही है, तीसरे उन्नति शाली वाणिज्य प्रिय देशों से इसी भाषा द्वारा पत्र व्यवहार किया जा सकता है। इससे तुलनात्मक रीति से इस की शिक्षा प्रवेशिका से प्रारम्भ कर विशारद में समाप्त करा दी जावे। और वह इतनी दी जावे जिससे बालक स्पष्ट बोल लिख और शुद्ध भाषण कर सके, पत्र व्यवहार करे और समाचार पत्रादि पढ सके। जैसा कि कलकत्ता यूनिवर्सिटी में संस्कृत शिक्षार्थियों को कराया जाता है।

साहित्य।

अब हमें इस बात का भी विचार करना चाहिये। कि वे कौन २ से प्रयोजनीय विषय हैं जिनकी शिक्षा दिलाना हमारे लिये आवश्यक है। अपने मन के विचारों को सरल और सरस शब्दों द्वारा प्रकट करना और दूसरों के वचनों से उसके कथन का सार निकालने की शक्ति मनुष्य के लिये भूषण है। इसका दूसरा नाम साहित्य-ज्ञान है। प्रत्येक मनुष्य अपने सुख-दुख, इच्छा, संकल्प आदि भावों को वचनों द्वारा प्रगट कर अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये दूसरों से सहानुभूति, सम्मति, आश्वासन आदि सहायताओं को प्राप्त करता है। उत्तम कथन शैली का ज्ञान व बुद्धि का विकास केवल अक्षर लिख लेने और लिखे हुओं को पढ़ लेने से नहीं होता है। इसके लिये बड़े २ विद्वानों के अनुभव तथा जीवन के रहस्य और सांसारिक घटनाओं के जानने की जरूरत है। चतुर गुरुओं के उपदेश और विद्वानों के लिखे लेखों के सुनने व पढ़ने से बालक के हृदय कमल की कली विकसित होती, अपनी तर्कणा, स्मरण, धारणा आदि शक्तियों की सौरभ प्रतिभा से इस प्रकार जगन्मोहनी बना सुख प्राप्त कराती है—जिस प्रकार शीतल मंद समीर के झकोरों से खिली हुई कमल की कली अपनी शोभा और सुगन्धि से भ्रमर वर्ग को सुख पहुचाती है।

साहित्य के दो भेद हैं एक गद्य दूसरा पद्य। गद्य रचना की पद्धति व्याकरण शास्त्र से और पद्य की पिंगल शास्त्र से सीखी जाती है। रचना में ओज, माधुर्य आदि गुण लाने का ज्ञान कराने वाले अलंकार ग्रंथ हैं। और इन तीनों द्वारा प्राप्त ज्ञान का सद्व्यवहार कराने वाली योग्यता प्राप्त करने के लिये काव्य, नाटक, उपन्यास, जीवन चरित्र आदि नाना प्रकार के ग्रंथों को पढ़ना चाहिये।

धर्म।

भाषा ज्ञान से पश्चात् धार्मिक ज्ञान की आवश्यकता है। केवल दो चार पूजा, दर्शन, भजन आदि पढ़ लेने से कोई धर्म विषय का ज्ञाता नहीं कहा जाता-जीविका के लिये उद्योग करने के समान ही धर्म पालन करना आवश्यक है। सरकारी शालाओंमें इसकी शिक्षा का अभाव होनेके कारण यहांसे निकले शिक्षित युवक स्वेच्छाचारी हो रहे हैं। इसी ज्ञान के न मिलने से लौकिक उन्नति में, संसार को चकित बना देने पर भी आज पश्चिमीय वैभव-शालिनी जनता अपनी विषय तृष्णा को तृप्त करनेमें असमर्थ है। और आत्मीक सुखसे कोरी रहने के कारण निरंतर मृगतृष्णावत् जड़ पदार्थोंके व्यवहार में व्यस्त रह खेदित हो रही है। मनुष्य को उचित है कि वह इन बातों को

अवश्य ज्ञान होवे। कि मैं कौन हूं ? संसार क्या है ? संसार से मेरा क्या सम्बंध है ? सुख की चरमसीमा कौन अवस्था में प्राप्त होती है ? उस अवस्था की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? जन्म मरण क्या है ? वस्तु का स्वरूप क्या है ? परमात्मा का स्वरूप क्या है ? सुख क्या वस्तु है ? क्रोध, मान, मायादि आत्मा के गुण हैं या विकार ? यदि विकार हैं तो ये कैसे दूर किये जा सकते हैं ? आदि जानना आवश्यक है। अपनी हीन अवस्था के कारण हिंसादि पाप हैं। हीन अवस्था का स्वरूप नाना प्रकार के दुखोंसे पूर्ण मनुष्य, पशु आदि गतियोंमें भ्रमण करना है-तथा इनसे बचने के उपाय सम्यक्-दर्शनादि हैं। इनके स्वरूप को बताने के लिये प्रयोगों-दृष्टांतों तथा अन्य सरल उपायों द्वारा शिक्षा दिलाने का शालामें प्रबंध करना चाहिये। जिससे बालकों की प्रवृत्ति तात्विक ज्ञान प्राप्त कर और विनयादि गुण सीख पूजा, स्वाध्याय, सामायिक, दान आदि शुभ कार्यों में होवे।

इतिहास।

हमारे देश की व हमारी जाति की पहिले क्या स्थिति थी अब क्या है ? ये फेरफार क्यों हुए ? और कौन २ से कारणों से हुए ? दूसरी २ जातियों ने व देशों ने किन २ उपायों से अपनी उन्नति की ? और उन्नतावस्था में उन्होंने संसार के हित या अहित रूप कौन २ से काम किये पीछे किन २ कारणों से उनका पतन हुआ ? तीर्थंकर देव कब हुए ? उनने क्या २ काम किये ? महाराज राम, कृष्ण, युधिष्ठरादि के जीवन में कौन २ सी विचित्र घटनाएं हुई ? रावण, कंस कौरवादि का विनाश क्यों हुआ ? भिन्न २ धर्मों का उदय विकाश क्यों और कब हुआ ? उनसे संसार को क्या लाभ हानि हुई ? उस समय की परिस्थितियां कैसी थी जिनसे प्रेरित होकर बुद्धदेव, यीशुख्रीष्ट, मुहम्मद साहिब आदि महापुरुषों ने नवीन धर्मों की योजना की था ? दिग्विजया, स्वामीसमंतभद्र, भट्टाकलंक-देव, स्वामीशंकराचार्य, सरस्वती दयानंद स्वामी आदि महात्मा कौन हैं ? जैनाचार्यों ने अपने जीवन काल में कौन २ से महत्व पूर्ण कार्य किये हैं ? जैनियोंका राज्य इस देशमें कब तक रहा ? उनका शासन कैसा था ? भारतीयों के हाथ से मुसलमानों के हाथ में राज्य सत्ता कब और कैसे गई ? और उनसे अंग्रेजों ने राज्यअधिकार कैसे प्राप्त किया ? हिन्दू और मुसलमानों के राज्य शासन से अंग्रेजों के राज्य शासन में क्या न्यूनताएं व विशेषताएं हैं ? आदि बातों के ज्ञान से बालक अपनी आकांक्षाओं को उच्च बना सकते और उन्हें उन्नत पथ पर पहुंचाने के लिये मार्ग खोज सकते हैं। तथा आदर्श पुरुषों के आदर्श जीवन का अनुकरण कर सदाचारी बन सकते और दुराचारी व्यक्तियों की पतित अवस्था को जान लेने से—पाप पंक में डूबने से अपने को बचा सकते हैं। जीवन को उन्नतशील बनाने में सहायक होने वाले इस ज्ञान को ऐतिहासिक ज्ञान कहते हैं और पुस्तकों को इतिहास। इसके ज्ञान की बालक को आवश्यकता है।

भूगोल।

हम जहां रहते हैं वह परगना जिला व देश कौन है ? इसकी प्राकृतिक व कृत्रिम रचना कैसी है ? इस देश की (जहां हमें अपना जीवन बिताना है) राज्यकीय अवस्था कैसी है ? शासन से हमारा क्या सम्बंध है ? देश व प्रांत की कृषि, खनिज और शिल्प सम्बंधी पैदावार क्या हैं ? कहां कौनसी चीज अधिक खपती है ? चीजें एक स्थान से दूसरे स्थान

तक कैसे पहुंचाई जा सकती हैं? अन्य देशों की स्थिति व व्यवस्था कैसी है? उनसे व्यवहार कैसे कर सकते हैं? आदि को भौगोलिक ज्ञान कहते हैं। बालकों को इस ज्ञान की भी जरूरत है परंतु इस विषय की प्रचलित पुस्तकों के उन्हीं अंशों की शिक्षा दिलाई जावे जो प्रयोजनीय होवे।

गणित।

गिनने के ज्ञान का नाम गणित है। अक्षर ज्ञान के न जानने से चाहे मनुष्य का काम चल जाय परंतु गिनती बिना उसका काम नहीं चल सकता। गणित शास्त्र के मूल गिन्ती, पहाड़े आदि तेरह लेखे हैं। इनका भिन्न २ प्रकार से उपयोग करके कठिन प्रश्नों के उत्तर सरलता पूर्वक निकालने की शक्ति प्राप्ति करना सब के लिये आवश्यक है। बिना इस योग्यता के हम अपना व्यापार भलीभांति नहीं कर सकते। गणित का ज्ञान जिन्दगी में बहुत सहायक है। वस्तुओं के खरीदने, बेंचने आदि व्यवहारिक काम में इसकी पद पद पर जरूरत होती है। अंकगणित, रेखागणित, और बीजगणित इन तीनों भेदों में यह विभाजित है। इन तीनों के प्रयोजनीय अंश की शिक्षा भी आवश्यक है।

स्वच्छता।

शरीर घर व नगर की सफाई की आवश्यकता, उसके रखने के उपाय, आहार बिहारादि शारीरिक कार्यों का ज्ञान, शरीर की रचना, रोग के कारण, उनसे बचने के सरल उपाय आदि बातों का ज्ञान भी आवश्यक है।

शासन पद्धति।

म्युनिसिपल व डिस्ट्रिक्टबोर्ड क्या हैं? इन की रचना कैसे होती है? वोटर कौन हो सकते हैं? बोर्डों तथा वोटरों के काम व अधिकार क्या हैं? अधिकारियों के पद का सिलसिला कैसा है? अधिकार और काम क्या हैं? शासन कार्य में हम कहां तक भाग ले सकते हैं? हमें कौन २ टेक्स देने पड़ते हैं? उनको लगाने, बढ़ाने, घटने का अधिकार किसे है? आदि बातों का ज्ञान भी जरूरी है।

महाजनी।

जैन जाति के अर्थ के साधन व्यापार, साहूकारी तथा कृषि कर्म हैं। बजाजी, सराफी पसरट, गल्ला, लेन देन आदि धंधे व्यापारिक कार्य कहलाते हैं। किसानी, मालगुजारी आदि काम कृषि कर्म हैं। व्यापारी को किसान के समान ही शिल्पकार से काम पड़ता है इसलिये उसे कुछ शिल्प सम्बंधी ज्ञान की आवश्यकता है। व्यापारिक कार्य के लिये बालक को सब प्रकार की बहियें लिखने, बीजक बनाने, कागजात जांचने, चिट्ठा तैयार करने चिट्ठी पत्री लिखने का ज्ञान, हुंडी, नोट, चेक, बिल आदि लिखने इनके व्यवहार करने की रीति। आढ़त, दलाली, कमीशन, बट्टा बढ़ती, एक्सचेंज आदि के नियम का ज्ञान कराना आवश्यक हैं। उसे पोस्ट, रेल, चुंगी आदि के नियम, रेट तथा महसूल चुकाने, उसे वापिस लेने आदिका भी ज्ञान कराना चाहिये। कोठो व बैंक के नियम, इनसे व्यवहार करने की रीति, विदेशों से व्यापार करने की पद्धति, माल खरीदते बेंचते वक्त की सावधानी, दुकान की सम्हाल आदि की शिक्षा देना तथा अर्थ शास्त्र के तत्वों को सिखाने से वह अपने कार्य में कुशल बन सकता है।

सरकारी शालाओं में तो इस विषय की शिक्षा का नाम न होना उतना नहीं अखरता—

जितना कि अपनी निजी शालाओं में न होगा। क्योंकि सरकारी शालाएं जिन शासकों के हाथ में हैं वे भारतीयों को ऐसी शिक्षा नहीं देना चाहते जिससे वे अपने व्यापारिक स्वत्व को समझने लगें। जैन शालाओं में धनियों व व्यापारियों के बालकों के दर्शन न मिलने का कारण भी इसी व्यापारिक शिक्षा का अभाव है। यदि किसी किसी विद्यालय व शाला में आटा में नमक के समान एक दो धनिक पुत्र गये भी तो केवल अपने पिता की धार्मिक ज्ञान-भक्ति की प्रेरणा वश। सो भी कितने दिनों को? चार छै महीने या पूरे साल भर को।

कारिंदगिरी।

व्यापारियों के बालकों के समान मालगुज़ारों के बालकों को (जिनका सम्बन्ध काश्तकारी से है) बहियों के ज्ञान के सिवाय बीज, बाक़ी, लगान, अव्वाब, वरू आदि के नियम, जमा वसूली व अदा करने, तकावी लेने व सहयोग पद्धति वाली बैंकों के नियम आदि के जानने, टीप, रहननामा, बयनामा, इकरार नामा, अर्ज़ी दावा आदि लिखने की रीति, पटवारियों के कागज़ात लिखने, मेंढ़ मिलान करने, किसान के हक्क, भूमि के भेद, काश्तकारी, स्टाम्प और कोर्ट फीस एक्ट तथा किसान, मालगुज़ार, पटवारी, तहसीलदार आदि का पारस्परिक सम्बन्ध आदि बातों को जानने की ज़रूरत है। इन दोनों विषयों की शिक्षा को महाजनी शिक्षा कहते हैं। इसके ज्ञान होने से बालक अपने निजी कारोबार को भलीभाँति चला सकता और उसे आगे बढ़ा सकता है। और अगर वह दूसरी जगह काम करना चाहे तो वहां के काम को अच्छी तरह से संभाल अपने पद व वेतन की वृद्धि कर सकता है।

शिल्प व चित्रकारी।

बालक को घरू काम में सहायता पहुँचाने वाले व समय पर उसके भरण पोषण के साधन होने वाले शिल्पों की भी शिक्षा देना आवश्यक है। कागज काटना, चिपकाना, और उससे खिलौने बनाना, चर्खा चलाना, कपड़ा सीना, गलाबंद आदि बुनना, कसीदा निकालना, कम्पोज़ीटरी, फोटोग्राफी, टाइप राइटिंग, बगीचे के काम आदि शिल्प और कागज़ पर चित्र बनाना रंग भरना घर व खेत आदि के नकशे बनाना आदि चित्रकारी की शिक्षा उसके जीवन में उपयोगी हैं।

कसरत।

उसे तन्दुरुस्ती बनाये रखने, बल बढ़ाने आदि के लिये खेल कूद व कसरत कराना लाभदायक है।

इस शिक्षा-क्रम का महत्त्व।

संस्कृत भाषा द्वारा उच्च कक्षाओं में जैन तथा अन्य धर्मी विद्वानों द्वारा रचे न्याय, व्याकरण, काव्य, दर्शन, धर्म आदि विषयों की शिक्षा तथा प्रवेशिका व विशारद में काम चलाऊ अंग्रेज़ी भाषा के साहित्य तथा व्याकरण का ज्ञान कराना उचित है। यह शिक्षा विषयक क्रम ऐसा है जिससे जैन अजैन सबही छात्र लाभ उठा सकते हैं। ऐसी ही लाभदायक शिक्षा दिलाने से बालकों का जीवन तथा समाज के द्रव्य की सार्थकता हो सकेगी। और शीघ्र ही शिक्षालय समाज के प्रीति-भाजन बन जावेंगे। इसमें संदेह नहीं कि इस तरह के शिक्षा क्रम को काम में लाने के लिये हमें योग्य पाठकों की खोज करने में पूरी खटपट करना पड़ेगी परन्तु अब वह समय नहीं है जब कि कार्यकर्त्ताओं की प्राप्ति न हो सके। शिक्षालयों को इस प्रकार की शिक्षा दिलाने

में जो रुपया खर्च करना पड़ेगा उसकी तादाद किसी भी हाई स्कूल के खर्च से अधिक न होकर प्रायः कम ही रहेगी । और उत्साही कार्यकर्ताओं के रहने पर उसकी पूर्ति भी हमारे श्रीमानों के द्वारा हो सकती है। ध्यान में रखना चाहिये कि अमेरिका के बुकर टी. वाशिंगटन महोदय की छोटी सी शाला ने इसी नीति पर चल सम्पूर्ण देश की प्रीति संपादन कर—उससे करोड़ों की सहायता प्राप्त कर यूनिवर्सिटी का रूप धारण किया था। उन्होंने उसमें नीग्रो जाति की स्थिति का विचार कर उसे सुधारने और जाति को समृद्धिशालिनी बनाने के लिये अनेक अड़चनों का सामना करते हुए साहस पूर्वक काम चलाया था । दूसरे देश की बात छोड़ अपने ही देश में देखिये कि अपने कार्यक्रम की उत्तमता से आज समाजियों के गुरु कुल-विद्यालय आदि किस प्रकार उन्नत शील बन रहे हैं। इनने लकीर के फकीर बन कर काम नहीं किया और इसी कारण से इनके विद्यालयों, गुरुकुलों से निकले विद्वान् सजीव शास्त्र व 'कलम-घिस्सू' विद्वान् न होकर नवीन और प्राचीन जगत् की बातों के मार्मिक विद्वान् होते हैं। हमें भी प्राचीन युग में विचरने की रीति बदल देना चाहिये। हमें आशा है कि अपनी आवश्यकताओं पर लक्ष्य रखती हुई जनता मेरे इस विचार से सहमत होवेगी कि संस्थाओं में शिक्षा इस नवीन पद्धति से दिलाई जावे।

परीक्षा कार्य ।

शिक्षा का प्रबंध कर देने से ही शिक्षालयों को काम पूरा न हो जावेगा उसे विद्यालयों, पाठशालाओं, बोर्डिङ्गहौसों आदि जैन शिक्षा संस्थाओं के प्रबंध को भी हाथ में लेकर उनकी सुव्यवस्था करना पड़ेगी इन्स्पेक्टर द्वारा उनका निरीक्षण, परीक्षण कराना, छात्रों को कक्षा वृद्धि, पारितोषक, प्रमाण पत्रादि दे उनका उत्साह बढ़ाना वहां के पंचों की सहायता से प्रबंध करना आदि आवश्यक काम को उसे जरूर हाथ में लेना चाहिये ।

जैन बेंक ।

इन संस्थाओं में तथा जाति की और दूसरी धार्मिक संस्थाओं में हजारों रुपया के फंड हैं। इनकी सम्हाल करने में पंचों व मुखियों को बड़ी कठिनाई उठाना पड़ती है। इसलिये अच्छा होवे यदि एक जैन बैंक की नीव डाल दी जावे। और उसमें इन संस्थाओं का नगद भंडार नियमित सूद पर जमा कराकर वह रकम जहां तक हो सके सहयोग पद्धति द्वारा ब्याज पर उठाई जावे । और अमानत रकमके ब्याज व दीगर खर्च को निकालने पर जो कुछ बचे वह शिक्षा या अन्य उपयोगी कार्यों में खर्च किया जाय। ऐसा करने से द्रव्य की रक्षा के साथ २ गरीबों को पूंजी द्वारा भी सहायता मिलने लगेगी क्योंकिः—

"चार जने चार हू दिशा से चारों कोने गह
मेरु को हिला के उखारें तो उखरि जाय"

इस लोकोक्ति को सिद्ध कर दिखाने के लिये तत्पर हुए अपने उन परोपकारी वीरों के प्रयत्न से वह दिन दूर नहीं है जब कि हम जैन संस्थाओं में सैकड़ों छात्रों को वास्तविक शिक्षा पाते देख अपने नेत्रों को सफल करेंगे।

—बाबूलाल गुलजारीलाल जैन।

वीणा की झङ्कार।

(१)

हो जाते जब भग्न हमारे आशाओं के तार।
जीवन भार तुल्य बन जाता छिन जाता संसार॥
इधर हमारे इष्ट—देव की होती है हुंकार।
चरणों पर तब अर्घ चढ़ाये जाते बारम्बार॥

(२)

पतित हुये हम इसीलिये, संकुचित किया व्यवहार।
दैत्य सैन्य ने चाबुक मारे भुला दिया आचार॥
नहीं जानते इस जीवन का क्या होगा सत्कार?
किङ्कर्तव्यविमूढ़-दशा में जन्म गया बेकार॥

(३)

हृदय कपोत विचार-विटपि पर कूदा बिन आधार।
किन्तु दृष्टिगत हुई बसन्त में अचल मोद की धार॥
'धर्म करो' 'सद्ध्यान धरो' 'नित करो जगत उपकार'।
अमित हुआ आनन्द हृदय में सुन वीणा-झङ्कार॥

—भुवनेन्द्र।

मातृ-भाषा में शिक्षा प्रचार के उपाय।

(ले०—श्रीयुत सिंघई गुलाबचंद जैन)
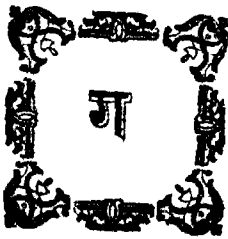
तांक में 'मातृभाषा में शिक्षा' शीर्षक लेख में, जैन समाज में मातृभाषा में शिक्षा दिये जाने पर लेखक ने खासा प्रकाश डाला है। मातृभाषा में शिक्षा देने की उपयोगिता को प्रायः नये और पुराने पद्धति के सभी शिक्षित, हृदय से स्वीकार कर रहे हैं। इसकी उपयोगिता के विषय में अब समझदार विचारशील व्यक्तियों में विरोध नहीं रहा है। तथापि अधिकांश संस्कृतज्ञ और अंग्रेजी के विद्वान मातृभाषा में शिक्षा देने की उपयोगिता को समझते हुए भी मातृभाषा में उच्च शिक्षा को महत्व नहीं देना चाहते। ऐसे व्यक्तियों का कथन है, कि जिस विषय के साहित्य ने जिस भाषा में जन्म लिया है और उसी में जिसकी बहुलता है, उस विषय का मार्मिक ज्ञान उस भाषा पर प्रभुत्व प्राप्त किये बिना या उस भाषा में पूर्ण व्युत्पन्न हुए बिना कदापि नहीं हो सकता। अतएव किसी भी विषय की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये उस विषय के मूल साहित्य की जो भाषा हो, पहिले उस भाषा की पूरी जानकारी विद्यार्थियों को होना परमावश्यक है। यह तभी हो सकता है, कि उस विषय के मूल साहित्य की भाषा के द्वारा ही उच्च शिक्षा देना अनिवार्य हो। उक्त शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को उस विषय के मूल साहित्य की भाषा में अच्छी योग्यता हो जाना उचित ही नहीं, किन्तु परमावश्यक भी है। पर ऐसी योग्यता रखने वाले विद्यार्थियों को भी उच्च शिक्षा मातृभाषा में देने से उन्हें उस विषय का परिपक्व ज्ञान प्राप्त करने में अधिक समय व्यतीत करना पड़ता है। इतने पर भी ऐसे विद्यार्थी जब उच्च शिक्षा समाप्त करके निकलते हैं तो वे अपने पठित विषय को मातृभाषा में सरलता पूर्वक समझाने में भी असमर्थ रहते हैं। उनके विषय प्रतिपादन में (चाहे वह व्याख्यान के द्वारा हो या लेखों के द्वारा हो) भी पद २ पर मूल भाषा के शब्दों का आडंबर और पारिभाषिक शब्दों का खुलासा बहुत कम रहता है। जिस से कि साधारण जनता उनके द्वारा, चाहिये जैसा लाभ उठाने से वंचित रहती है। ऐसे व्यक्तियों से यदि कोई

जिज्ञासु लाभ उठाने की आशा से ज्यादह ऊहा-पोह या मोद-विनोद करने की चेष्टा भी करे तो उसकी बातों का निरसन करना तो दूर उसे बालकों की तरह पहले मूल भाषा पढ़ने की सलाह दी जाती है, कि "भैया पहले समझने की योग्यता तो कर लो तब ऐसे प्रश्न करना।" जिज्ञासु बिचारे यह सुन कर अतृप्त हो रह जाते हैं। आजकल मूल भाषा की प्रधानता के सामने ज्ञानका विषय गौण माना जाता है। यदि उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाओं में भी विषय ज्ञान पर ही अधिक महत्व और प्रधानता रक्खी जाय और उसे हिन्दी में ही पढ़ाने का प्रयत्न हो तथा मूल भाषा केवल भाषा ज्ञान के तरीके पर पढ़ाई जाय तो उच्च शिक्षार्थियों को विषय का सर्वोच्च और परिपक्व ज्ञान प्राप्त करने में समय और परिश्रम कम हो। वही समय और परिश्रम अन्यान्य विषयों को पढ़ने में लगाया जाय। ऐसा प्रयत्न होने पर मातृभाषा का उच्च शिक्षा में प्रवेश होकर उसके द्वारा विषय का परिपक्व ज्ञान करने वाले विद्वान् निकलेंगे। उनसे साधारण जनता को भी विशेष लाभ होगा कहने का तात्पर्य यह, कि उच्च शिक्षा में संस्कृत, प्राकृत, अँग्रेजी इत्यादि भाषाओं को सर्वथा तिलाञ्जलि न दे दी जाय और न उनका महत्व, विषय ज्ञान से भी अधिक रक्खा जाय। बल्कि इन भाषाओं को उच्च शिक्षा ऐच्छिक विषय रख कर हिन्दी में ही सब विषयों की उच्च शिक्षा देने का प्रयत्न हो।

जैन समाज की जितनी शिक्षा संस्थाएँ हैं। उनमें धार्मिक शिक्षा ही मुख्य है। धार्मिक शिक्षा के लिये आज तक हमारी समाज ने जितना रुपया खर्च किया, उतना फल अब तक नहीं मिलने के जो कारण हैं उनमें मुख्य कारण यह भी है कि संस्कृत में धार्मिक शिक्षा देने के सिवाय मातृभाषा में धार्मिक शिक्षा का (और वह भी बालकों के अतिरिक्त अपनी २ आजीविकामें लगे हुए युवक और प्रौढ़ व्यक्तियों में) कोई दृढ़ प्रयत्न नहीं किया गया। वर्तमान में जरूरत है आजीविका में लगे हुए निरक्षरों को साक्षर बनाने और लिखे पढ़े व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार माध्यमिक और उच्च शिक्षा देने की। यह किस प्रकार दी जा सकती है इसी पर विचार प्रगट करने की उत्सुकता से कुछ लिखने की प्रेरणा हुई है।

जीविका में लगे हुए शिक्षित व्यक्तियों में मातृभाषा हिन्दी में धर्म विषयक उच्च शिक्षा देने के कई उपाय हैं उनमें से कुछ विचारानुसार प्रदर्शित किये जाते हैं।

(१) एक ऐसी संस्था कायम हो या शिक्षा-मंदिर ही इस कार्य को उठावे। वह पहिले स्वाध्यायोपयोगी मुख्य २ जैन शास्त्रों के भिन्न विषयों की वर्गवारी करके विषयों की मुख्यता रखकर पठन क्रम बनावे। पठन क्रम में हरएक विषय का स्पष्ट निर्देश हो और उसका ज्ञान जिन ग्रन्थों के जिस अंश के पढ़ने से हो सके उन ग्रन्थों की, अंश सहित सूची दे दी जाय। पठन क्रम दो प्रकार की परीक्षाओं के लिये बनाए जायँ—एक सामान्य दूसरा विशेष। पठन क्रम ऐसा बने और परीक्षाएँ भी ऐसी ली जायँ, कि मामूली लिखे पढ़े व्यक्ति भी कुछ दिनों तक स्वाध्याय करके सामान्य परीक्षा में बैठने पर पास हो जायँ। विशेष परीक्षाओं में गम्भीरता पूर्वक कुछ गहन और विस्तृत ग्रन्थों का स्वाध्याय करने वाले पास हो जायँ। हरेक स्थानोंमें परीक्षा-केन्द्र स्थापित कर दिये जायँ। पास होने वालों को धार्मिक ग्रन्थ, रुपये या पदक प्रदान किये जायँ।

इस प्रकार की धर्म विषयक परीक्षाएँ जारी करने से स्वाध्याय की ओर शिक्षित व्यक्तियों की प्रवृत्ति अधिकाधिक बढ़े इस प्रकार का धोरण परीक्षा समिति रक्खे और पुरस्कार देने की भी अच्छी व्यवस्था करे। परीक्षा समिति विशेष परीक्षा के पश्चात् और भी ऊँचे दर्जे की एक परीक्षा जारी करे। इस परीक्षा में बैठने वाले, समिति की विशेष परीक्षा पास हों और उनसे सिर्फ किसी एक विषय पर अच्छा निबन्ध लिख कर मांगा जाय। सामान्य परीक्षा स्वाध्याय प्रचार की दृष्टि से रक्खी जाय। विशेष परीक्षा उच्च धार्मिक ज्ञान की दृष्टि से रक्खी जाय और। तीसरी परीक्षा धर्म विषय में अच्छे लिखने वाले तैयार हों इस दृष्टि से रक्खी जाय।

(२) ऐसी परीक्षाओं के लिये विद्यार्थी किस प्रकार तैयार हो सकेंगे, इस विषय में निम्न प्रकार की तजवीज हो :—

(अ) हरेक स्थानों में प्राचीन काल से मंदिरों में रात्रि के समय शास्त्र सभाएँ होने की प्रथा है, वह नियमित रूप से हुआ करे। प्रत्येक भाई शास्त्र सभा के समय पर उपस्थित हो कर धार्मिक चर्चा करना शुरू करें।

(आ) सबेरे शास्त्र स्वाध्याय का नियमित रूप से अवलम्बन किया जाय।

(इ) हरेक स्थानों के पंच अपने २ स्थानों में मंदिरों के निकट जैन पुस्तकालय (स्वाध्याय शाला) खोलें। उसमें जैनेतर व्यक्तियों को भी आने की कोई रुकावट न हो। जैन साहित्य के अतिरिक्त सार्वजनिक समाचार और मासिक पत्र तथा अन्य विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकों का भी संग्रह रहे।

(ई) जिन स्थानों में जैन पाठशालाएँ हैं, उन स्थानों में जो २ धर्म शिक्षक हैं वे कुछ समय देकर स्वाध्याय प्रेमियों को धर्म चर्चा के रूप में उक्त परीक्षाओं के योग्य बनावें।

निरक्षरों को साक्षर बनाने का तरीका—

जो भाई लिखे पढ़े हैं वे अपने यहां के निरक्षर व्यक्तियों को साक्षर बनाने का अवश्य उद्योग करें। मंदिर जी में ही कोई समय नियत कर दिया जाय या लिखे पढ़े व्यक्ति नित्य प्रति अपढ़ व्यक्तियों के पास जाकर उन्हें कम से कम पढ़ने के योग्य बनाने की अवश्य चेष्टा करें। अपढ़ व्यक्तियों को भी कोई न कोई पद्य, कविता दर्शन आदि मुख पाठ रहता है। वे जैसा बोलें उसी तरह के उच्चारों में उनकी कण्ठ की हुई कोई बात साक्षर व्यक्ति लिखलें जैसे कि किसी के सिर्फ निम्न पाठ याद हो

'करों भक्ती तेरी हरो दुख माता भ्रमणका।'

इसे आप इस तरह कोष्टकों में लिख डालें—

क	ते	ख	ण
रों	री	मा	का
भ	ह	ता	
क्	रो	भ्र	
ती	दु	म	

इस प्रकार कोष्टक में उसके मुख पाठ पद्य को उसी के आधार में लिख कर उसे प्रति दिन एक२ अक्षर की पहिचान कराते जावें, कि देखो यह तुम्हारे पाठ का पहिला अक्षर "क" है उसे ऐसा लिखते हैं। इसी तरह एक२ लाइन के अक्षरों की पहचान कराते जावें कुछ दिनों में मुख पाठ हुए पद्य के अक्षरों को बड़ी खुशी से पहचानने लगेंगे। अगर उन्हें अपने पाठ के अक्षर पहचानने की योग्यता हो जावेगी तो उन्हें पढ़ने की अधिकाधिक रुचि बढ़ेगी और वे कुछ दिनों में साक्षर अवश्य हो जायँगे। परवार जाति के लिखे पढ़े व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि वे अपनी जाति के अपढ़ की

पुरुषों को साक्षर बनाने के लिये यदि १ घंटा भी एक साल तक बराबर लगाते रहें तो एक भी व्यक्ति अपढ़ नहीं रह सका। *

जबलपुर-जैन-शिक्षा-मन्दिर में हिन्दी का स्थान ।

मध्यप्रदेश के जबलपुर नगर में जैन-जाति का एक शिक्षा-मंदिर कुछ वर्षों से स्थापित है। पहले कदाचित् यह जैन-छात्रों का केवल छात्र-वास था। धीरे धीरे इसने शिक्षा-मन्दिर का रूप धारण किया। आज इस शिक्षा मंदिर में दूर दूर से जैन बालक आकर छात्र-वृत्ति तथा आश्रय पाते हैं। रङ्ग ढङ्ग से जान पड़ता है कि यदि ईश्वर ने चाहा तो यह शिक्षा-मन्दिर भविष्य में अच्छी उन्नति करेगा।

इस मन्दिर में शिक्षा के भिन्न भिन्न विभाग हैं जिनमें छात्रों की योग्यता और आवश्यकता-नुसार शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है। धर्म शिक्षा, अंग्रेजी भाषा की शिक्षा, संस्कृत-शिक्षा, हिन्दी-शिक्षा और कदाचित् मुनीमी की भी शिक्षा यहां पर दी जाती है। वर्तमान में शिक्षा मन्दिर की देख रेख पं० छोटेलाल जी मास्टर के तत्वावधान में होती है जो जैन जातीय इस "परवार-बन्धु" पत्र के प्रकाशक भी हैं। सुना जाता है कि आप की देखरेख से शिक्षा-मन्दिर का सुधार और उसे बहुत कुछ लाभ भी हुआ है। खेद की बात है कि अब मास्टर जी इस पद को त्यागने वाले हैं, क्योंकि इसमें योग देने से पत्र का प्रचार सुचारु रूप से करने को पर्याप्त समय नहीं मिलता। अस्तु

मुझे आज मन्दिर की हिन्दी-शिक्षा पर उस का वर्तमान प्रचार, महत्व और आवश्य-कता बताते हुए कुछ निवेदन करना है। मन्दिर की हिन्दी-शिक्षा में जो हिन्दी-पाठ्य-क्रम रक्खा गया है वह मुझे पूर्ण ज्ञात नहीं। हां यह जानता हूं कि पठन पुस्तकें शिक्षा मन्दिर ने मध्यप्रदेशीय सरकारी शिक्षा-विभाग की न रख कर बाबू रामदास जी गौड़ एम्. ए. रचित् राष्ट्रीय पुस्तकों को पसन्द किया है और ये ही पढ़ाई जाती हैं। जहां तक मैं सोचता हूं ये पुस्तकें मध्यप्रदेशीय शिक्षा-विभाग की पुस्तकों से--राष्ट्रीय हित के विचार से कहीं अधिक उपयोगी हैं।

मुझे यह नहीं ज्ञात हुआ कि हिन्दी-शिक्षा अथवा अन्यान्य शिक्षाओं के पाठ्य-विषय-काल-पूर्ण होने पर उनकी परीक्षाओं का क्या आयोजन किया गया है। आज कल की शिक्षा में जिस कड़ाई और कठिनता का बोझ छात्रों पर लादते हुए परीक्षा लेने का ढङ्ग रक्खा गया है यदि वही ढङ्ग यहां का भी हो तो कहना होगा कि मन्दिर ने छात्रों की अड़चनों का विचार करने में एक स्वाधीन संस्था होते हुए भी उपेक्षा की है।

यह सर्वमान्य बात हो चुकी है कि भारत की राष्ट्र-भाषा का मुकुट हिन्दी के शिर पर एक दिन सुशोभित होगा और वह भाषाओं में उच्चस्थान और ईश्वरेच्छा हुई तो राज-सम्मान भी पावेगी। लगभग एक युग के भीतर हिन्दी

---

* नोट—शिक्षा का प्रश्न सब से महत्व पूर्ण है समाज के सुयोग्य व्यक्तियों को इस विषय में अपने अपने विचार प्रगट करना चाहिये और नेताओं तथा संचालकों को इसके ऊपर ध्यान देकर जल्दी से जल्दी इस कार्य में सुधार करना चाहिये। संपादक।

में जो उन्नति की है वह प्रशंसनीय और उसकी भावी उन्नति का सूचक है।

हर्ष की बात है कि इस ओर प्रयाग की हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-परीक्षाएँ बहुत कुछ कार्य कर रही हैं। सम्मेलन की परीक्षाओं का आदर सरकारी और देशी संस्थाओं में भी न होते हुए जिस तत्परता से ये परीक्षाएँ सफलता लाभ करती हुई परीक्षोत्तीर्ण युवक और युवतियों की संख्या बढ़ा रही हैं उससे स्पष्ट ज्ञात पड़ता है कि राष्ट्र इन परीक्षाओं का मूल्य समझने में समर्थ हुआ है और हिन्दी भविष्य में अच्छी उन्नति करेगी अथवा परीक्षाओं की उपयोगिता का अनुभव राष्ट्र को हुआ है और इसी कारण इनका प्रचार अधिकाधिक हो रहा है।

सम्मेलन की ये (प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा) परीक्षाएँ आजकल की भारतीय सरकारी यूनिवर्सिटियों की परीक्षाओं से किसी प्रकार ज्ञान और महत्व में कम नहीं; प्रत्युत इतनी विशेषता उसमें अधिक है कि ये परीक्षाएँ भारत की भावी राष्ट्र-भाषा हिन्दी और सर्वाङ्ग-पूर्ण सुन्दर देव नागरी लिपि में ली जाती हैं। यदि भगवान् की कृपा है तो राष्ट्र-भाषा के भावी विश्वविद्यालयों की पदवियाँ इन्हीं परीक्षाओं द्वारा आगे चलकर प्राप्त होंगी।

हर्ष की बात है- भावी उन्नति का चिन्ह है- कि सरकारी विद्यालयों में पढ़ते हुए भी छात्रों ने हिन्दी परीक्षाओं के महत्त्व को हृदयङ्गम कर उन्हें अपनाया है। विद्यालयों की इतनी कड़ी और दुरूह शिक्षाओं को प्राप्त करते हुए वे वीर, सम्मेलन की परीक्षाओं में स्वयं अध्ययन कर सम्मिलित होते और सन्तोष प्रद संख्या में उत्तीर्ण (सफल) होते हैं आज भारत के भिन्न भिन्न भागों से मिडिल स्कूलों से लेकर कालेजों तक के छात्र विशेष-कर के हिन्दी-भाषा-भाषी अथवा मैट्रिक में दूसरी भाषा हिन्दी लेने वाले इन परीक्षाओं को आदर की दृष्टि से देखते और इनमें सम्मिलित होते हैं। इस समय बी०, ए०, एम०, ए०, भी 'विशारद' और 'रत्न' से अपने को गौरवान्वित समझते हैं।

केवल हिन्दी-भाषा-भाषी ही नहीं; प्रत्युत अन्य भाषा-भाषी लोगों ने भी इन परीक्षाओं में भाग लिया है। हमारे मुसलमान भाई भी इसमें अच्छी अभिरुचि दिखा रहे हैं। कई मुसलमान बन्धु "विशारद" उपाधि प्राप्त अभी विद्यमान हैं। क्या आश्चर्य है कि कोई मुसल-मान सज्जन विद्वान् ने 'उत्तमा' भी उत्तीर्ण हो 'रत्न' उपाधि उपलब्ध करली हो अथवा आगे करे। मुसलमान, भ्राताओं का यह हिन्दी प्रेम नया नहीं। 'रहीम' रसखान सम्राट 'अकबर' आज भी हिन्दी के इतिहास में उसके लाड़िले पुत्र बने बैठे हुए हैं।

इस प्रकार जब हम एक दृष्टि, हिन्दी की व्यापकता, उपयोगिता और महत्व पर डालते हैं तब हमें कोई कारण नहीं दिखता कि हमारे जैन-बन्धु विद्वान् और हिन्दी भाषा-भाषी एवम् हिन्दी प्रेमी इन परीक्षाओं को अपने जातीय शिक्षा मन्दिरों में स्थान दे राष्ट्र भाषा की उन्नति से संस्थाओं को लाभ पहुँचाते हुए अपने जातीय भावी युवकों को हिन्दी का प्रेमी और विद्वान् न बनावें तथा इस ओर अपना अनुराग न प्रगट करें?

यदि मैं भूलता नहीं तो प्रायः सारी जैन जाति हिन्दी-भाषा-भाषिणी है। यदि ऐसा नहीं तो अधिकांश जैन-जनता अवश्य हिन्दी बोलती है उसकी मातृभाषा हिन्दी है। ऐसी

अवस्था में सम्मेलन की इन हिन्दी की उच्च परीक्षाओं को जैन विद्यालयों और जैन भाइयों में उचित स्थान और आदर मिलना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

क्या ही अच्छा हो कि जबलपुर-जैन-शिक्षा मंदिर (और अन्यान्य जातीय विद्यालय भी विशेष कर हिन्दी-भाषा-भाषी) साधारण योग्यता के छात्रों के लिये साधारण हिन्दी-शिक्षा तो रक्खें ही जैसा कि वर्तमान में जैन-शिक्षा-मन्दिर में है साथ ही विशेष योग्यता और हिन्दी-प्रेमी छात्रों के लिये सम्मेलन परीक्षाओं का आयोजन कर उन्हें इन परीक्षाओं के योग्य शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध करे। प्रथमा और मध्यमा इनकी शिक्षा का प्रबन्ध तो अवश्य मन्दिर करने की कृपा करे। जब तक उत्तमा की शिक्षा का आयोजन स्थगित रक्खा जाय; पर जब मन्दिर हिन्दी-माता के ऐसे सपूतों विशारदों को उत्पन्न करने लगे जो 'रत्न' बनने के पात्र हों तब इसकी शिक्षा का भी आयोजन किया जाय। इस प्रकार ये जातीय संस्थाएँ अपने छात्रों को उच्च शिक्षा देते हुए उन्हें विद्वान् तथा राष्ट्रोपयोगी बना 'एक पन्थ दो काज' की उक्तिचरितार्थ कर सकती हैं।

जैन-जाति में द्रव्य का अभाव नहीं केवल योग्य कर्म-वीर-कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता है, जो यत्न से सहज ही दूर हो सकती है। उसके लिये विद्वान् और योग्य पुरुषों को यथार्थ सम्मान और समुचित अर्थ साहाय्य देना होगा।

इसके प्रधान सञ्चालक-मन्त्री-श्रीयुक्त बाबू कन्छेदीलाल जी जैन बी०, ए०, एल०, एल०, बी०, एम० एल०, सी०, हैं। आप वकील भी हैं और जबलपुर के उन इने गिने वकीलों में से हैं जिन्होंने राष्ट्रीय भावों की जागृति के लिये—आदर्शों और यत्नों से जनता को बहुत कुछ लाभ पहुंचाया है। आप की सादगी, सहृदयता भाव सारल्य, स्वदेश प्रेम और हिन्दी अनुराग प्रशंसनीय है।

आशा है ऐसे सज्जन की अध्यक्षता तथा प्रबन्ध में मन्दिर की वास्तविक उन्नति होगी। मैं उक्त मन्त्री जी का ध्यान इस ओर आकर्षित करता हुआ आशा करता हूं कि शिक्षा मन्दिर में हिन्दी-सा०-सम्मेलन की परीक्षाओं को उचित स्थान और आदर मिलेगा और उससे छात्रों-जातीय छात्रों को लाभ पहुंचाने और राष्ट्र-भाषा के प्रचार करने में कुछ प्रयत्न उठा न रक्खे जावेंगे।

विनीत—सूर्यभानु त्रिपाठी
'विशारद'

फल है।

इत शासक, नाशक नीच भए
जनता जग, जीवन वे कल है।
शुचिता, समता, ममता न रही
निजता-पशुता बल है छल है॥
दल दंभन-द्रोहिन के बढ़िगे
नहिं गेहिन की तनिको चल है।
प्रति वर्ष पिशाचनि प्लेग परै
यह पूरव पापन को फल है॥ १
बहु कूर बबूर उगे उर में
न अँगूर खजूर को या थल है।
दल लाड़की ठाड़ कियोचित है
झरि भूमि परयो तुलसीदल है॥
इत चाह न अम्ब अनारन की
जु अनारिनही को इतै बल है।
कहुँ बैरिन बैर विलास भरी
कहुँ फूटको फूटि रह्यो फल है॥ २
—दास।

हृदयोद्गार।

(लेखक—चौधरी नन्हेंलाल जी मास्टर)

सबल, निबल को दबा रहे हैं,
क्यों होता ऐसा व्यवहार ?
"निबल निबल की ऐक्य शक्ति से,
प्रबल शक्ति की होती हार"।
ऐसा समझ दबाओ मत अब,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥१॥

सधन निधन को सता रहे क्यों ?
हड़प रहे उनका घर द्वार।
"दुखित हृदय की आ कठिन है,
हो जाता लोहा भी क्षार"।
ऐसा समझ सताना छोड़ो,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥२॥

जैसे ऊपर भाव दिखाते,
करो कृत्य भी उसी प्रकार।
मायाचारी में फँस करके,
कैसे होगा जाति सुधार।
बाहिर—भीतर रखो एकसा,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥३॥

स्वार्थ-चक्र के प्रबल वेग से,
होता नहीं कहीं उपकार।
दीन—त्राण दीनों की सुनकर,
कर दो उनका बेड़ा पार।
करो करो उपकार अन्त तक,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥४॥

तड़फ रहे हैं अन्न—वस्त्र बिन,
भोग रहे हैं कष्ट अपार।
बाँध टकटकी तुम्हें निहारें,
देखो उनको दृष्टि पसार।
उन्हें दया कर शीघ्र उबारो,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥५॥

दया धर्म का मूल समझ कर,
कर दो अब इस का विस्तार।
दिल न दुखाओ कभी किसी का,
सब धर्मों का है यह सार।
दीन जनों पर करो दया अब,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥६॥

लम्बी चौड़ी डींग हांकना,
क्या इस में कुछ भी है सार ?
किये पास प्रस्ताव अधिक पर;
हुआ न कुछ उन के अनुसार।
करो कार्य में परिणत उनको,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥७॥

बहुत दिनों से भटक रहे पर;
कभी न पहुँचे उन्नति द्वार।
अपनी ढपली बजा बजा कर,
उन्नति हेतु किये दरबार।
करो एकता से उन्नति अब,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥८॥

गोलापूरब, गोलालारे,
सी. पी. यू. पी. के परवार।
इन तीनों की संघ शक्ति बिन,
होगा कभी न बेड़ा पार।
बन्धु बन्धु सम मिलो प्रेमसे
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥९॥

समय यही है हाथ बटा लो,
पीछे हटो न अब हर बार।
एक एक पर ग्यारह होते,
केवल रहे एक लाचार।
एक एक मिल करो एकता,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥१०॥

स्वार्थ-त्याग का अब भी बीरो।
करो जाति में तुम सँचार।
जाति-प्रेम पर करो लक्ष्य अब,
यही एक जीवन का सार।
स्वार्थ त्याग कर करो काम सब,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥११॥

सब प्रकार की पंचायत में,
पक्ष पात बढ़ चला अपार।
दोषी मजा उड़ाता देखा,
निर्दोषी पर दण्ड-प्रहार।
सत्य न्याय का खून बचाओ,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥१२॥

किसी किसी पंचायत की तो,
पेशीं करते बारम्बार।
किसी किसी में ऐसा कहते,
पेशी रखो न दूजी बार।
पक्षपात तज करो न्याय तुम,
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥१३॥

जैन जाति की उन्नति को तो,
पृथक पृथक हो रहे विचार।
पर संख्या घट रही दिनों दिन,
नौका फँसी पड़ी मँझधार।
यह उन्नति है ? या अवनति है ?
प्यारे जैन—बन्धु—परवार ॥१४॥

परवार-डिरेक्टरी

अमरावती वाले श्रीमान् सिंघई पन्नालाल जी ने परवार डिरेक्टरी तैयार कराके हम लोगों के लिए अपनी अवस्था पर अच्छी तरह विचार करने का एक बड़ा भारी साधन खड़ा कर दिया है। परवार जाति की सामाजिक आर्थिक और नैतिक अवस्था पर विचार करने की इसमें काफी सामग्री है। यदि हमने इससे लाभ उठाया तो सिंघई जी का परिश्रम और लगभग ५-६ हजार रुपये का खर्च सफल हो जायगा। परवार जाति के शिक्षितों, विद्वानों और की मुखियों चाहिए कि वे इससे पूरा पूरा लाभ उठावें और यह सिद्ध कर देवें कि यह कार्य सिंघई जी ने अपात्रों के लिए नहीं किया है—अपना रुपया पानी में नहीं फेंका है।

× × × × ×

परवारों की कुल जन संख्या ४८२४० है। इसमें समैया १७८६, चौसके, बिनैकया, लुहरीसेन आदि ६७१६ और अठसके ३९६७१ हैं। हमारी समझमें चौसकों की संख्या बिनैकया और लुहरीसेन आदि से अलग दिखलानी थी—जिस तरह कि समैया भाइयों की दिखलाई है। क्योंकि समैया और चौसकों के साथ हमारा खानपान का सम्बन्ध है, साँकें तथा गोत्रादि एक हैं और इस कारण निकट भविष्य में उनके साथ बेटी व्यवहार भी शुरू होने की संभावना हैं। स्वनाम धन्य सेठ माणिकचन्द जी की डिरैक्टरी में चौसकों की संख्या १२७७ बतलाई गई है, अतएव इस गणना में भी उनकी संख्या लगभग इतनी ही सौ पचास कम ज्यादा होगी और सम्मिलित संख्या में से इसको निकाल देने से बिनैकया या लुहरीसेन की संख्या

(६७७१-१२७७ =) ५५०२ के लगभग होगी। अर्थात् समग्र परवार जाति में लगभग अष्टमांश रुपये में दो आने संख्या विनैकया भाइयों की है।

× × × ×

स्व० सेठ माणिकचन्द जी डिरैक्टरी का काम सन् १६०८ के प्रारंभमें शुरू किया गया था और परवार डिरैक्टरी जून १६२० में शुरू हुई है, अर्थात् दोनों के बीच में लगभग १२। वर्ष का अन्तर है। पहली डिरैक्टरी के अनुसार विनैकया भाइयों की संख्या ३६८१ थी जो अब परवार डि० के अनुसार ५५०२ हो गई है, अर्थात् पिछले बारह वर्षों में उनमें १८२१ की बढ़ती हुई है। इस तरह हमारे इन विनैकया भाइयों की संख्या हर बारहवें तेरहवें वर्ष लगभग ड्योढ़ी और हर पचीसवें वर्ष दूने के लगभग हो जाती है। जहां तक हम जानते है कोई भी जैन जाति इस तेजी के साथ नहीं बढ़ रही है। संभव है कि पहली डिरैक्टरी की गणना में थोड़ा बहुत भूल हो; परन्तु फिर भी उनकी बढ़ती में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। हम अपने आसपास उन्हें प्रत्यक्षता बराबर बढ़ते हुए देखते हैं।

× × × ×

इधर हमारे अठसके परवार भाइयों की संख्या में बराबर घटी हो रही है। सेठ माणिकचन्द जी की डिरैक्टरी के समय उनकी संख्या ४१९९६ थी और अब इस डिरै० के अनुसार जैसा कि ऊपर बतलाया गया है ३९६७५ है। अर्थात् पिछले बारह वर्षों में हमारी संख्या में २३२१ की घटी हुई है! अर्थात् हम प्रतिशत ५ के लगभग कम हो गये हैं और बराबर कम होते जा रहे हैं। इस में सन्देह नहीं कि हमारे विनैकया भाइयों में जो १८२१ की बढ़ती हुई है, वह अधिकांश में हमारे ही द्वारा हुई है. अर्थात, हमारे ही स्त्री पुरुष हमसे मुँह मोड़कर उनमें शामिल हो गये हैं। यह ठीक है कि हमारी पड़ोसिन गोलापूरब, सैया आदि जातियों के भी कुछ स्त्री पुरुष जातिच्युत होकर विनैकयों में मिल जाते हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम आटे में नोन के बराबर-ही होती है. अतएव कम १८२१ में अधिक नहीं, १७ स्त्री पुरुष ही गोलापूरब आदि जातियों में से विनैकया समाज में मिले होंगे।

× × × ×

विनैकया समाज में जो क्रमशः १८२१ की बढ़ती हुई है वह परवार जातिच्युत स्त्री पुरुषों से ही नही उन की निज की सन्ततिवृद्धि से भी हुई होगी जब कि अन्य उच्चजातियों की संख्या का दिन पर दिन ह्रास होता है तब जिन जातियों में पुनर्विवाह की रुकावट नहीं है और अविवाहित युवाओं की संख्या अधिक नहीं है, उनकी बराबर बढ़ती होती रहती है और विनैकया जाति ऐसी ही जाति है अतएव दस वर्षों में अधिक नहीं तो सौ डेढ़ सौ की वृद्धि उसमें सन्तान विस्तार द्वारा अवश्य हुई होगी और तब यह मानना पड़ेगा कि हम में से पौने दो हजार के लगभग स्त्री पुरुष निकल कर विनैकया समाज में मिल गये हैं और उनकी संख्या वृद्धि के कारण हुए हैं।

× × × ×

हमारी कुल घटी २३२१ के लगभग हुई है, जिसमें से उक्त पौने दो हजार निकाल देने से मालूम होता है कि विनैकया समाज में जो लोग चले गये हैं उनके अतिरिक्त हमारी ५७१ की और भी घटी हुई है। यह कोई साधारण घटी नहीं है। जाति के शुभचिन्तकों को इसकी खास तौर से चिन्ता होनी चाहिये।

× × × ×

सन् १९११ की सरकारी मनुष्य गणना के अनुसार समस्त जैनों की जन संख्या १२,४८,१८२ थी जो सन् १९२१ की गणना के अनुसार घट कर ११,७८,५९६ रह गई। अर्थात् उक्त १० वर्षों में समस्त जैनियों में ६९,५८६ की घटी होगई। यह घटी प्रतिहजार ५५ के लगभग होती है। हम देखते हैं कि परवार जाति में जो घटी हुई है, वह भी लगभग इसी हिसाब से ४१,९९६ में २३२१ की घटी भी प्रति हजार ५५ के ही लगभग बैठती है। इससे सिद्ध होता है कि समस्त जैन समाज की घटी जिस हिसाब से हुई है, परवारों की भी उसी हिसाब से हुई है। इसमें कोई खास विशेषता नहीं है। विशेषता यदि है तो विनैकया समाज में है, जिसकी घटने के बजाय बराबर बढ़ती हो रही है।

× × × ×

परवार-डिरेक्टरी में उन लोगों की संख्या भी बतलाई गई है, जो जाति से पतित हो गये हैं। जहाँ तक हम जानते हैं जिन पुरुषों ने दूसरी जाति की स्त्रियों को डाल लिया है और जिन स्त्रियों का दूसरी जाति के मर्दों से ताल्लुक हो गया है, उन्हीं की गणना इन पतितों या जातिच्युतों में की गई है। वे स्त्री और पुरुष जो अपनी ही जाति के पुरुषों और स्त्रियों से सम्बन्ध कर लेते हैं विनैकया समाज में शामिल हो जाते हैं, अतएव वे इस गणना से बाहिर हैं। जातिच्युतों की संख्या २६४ है जिनमें १०४ पुरुष और १७० स्त्रियाँ हैं। अच्छा होता यदि डिरेक्टरी में इन सब की एक सूची दे दी जाती और उससे हम यह मालूम कर सकते कि हमारी जाति के स्त्री और पुरुष किन किन अपराधों के कारण जातिच्युत हैं।

× × × ×

श्रीयुत पं० पीताम्बर दास जी उपदेशक ने मेरी प्रेरणा और प्रार्थना से ऐसी सूची बनाना प्रारंभ किया था। यद्यपि इस सूचीका एक अंश जिसमें लगभग ५० नाम थे, खो गया है, परन्तु जो अंश बच रहा है वह भी यह जानने के लिए काफी है कि हमारी सामाजिक अवस्था कितनी शोचनीय हो गई है जिसके कारण हमारी जाति के स्त्री पुरुष इतने नीचे गिरने के लिये लाचार होते हैं। इस शेष सूची में ७ पुरुषों और २५ स्त्रियों का विवरण दिया है जिससे मालूम होता है कि ७ पुरुषों में से एक ने नाइन को, एक ने सुनारिन को, दो ने गौड़ जाति की औरतों को, एक ने दाँगिन को, एक ने चौलकिन को और एक ने चमारिनो को रख छोड़ा है! अब रहीं औरतें सो उनकी दशा और भी खराब है। पाठकों का सिर लज्जा से नीचे झुक जायगा जब वे सुनेंगे कि उक्त २५ भगनियों में से एक कलार के, एक धोबी के, एक धीवर के, एक कुम्हार के, एक भंगी के और ५ मुसलमानों के घरों को पवित्र कर रही हैं! और उनकी सन्तान को बढ़ा रही हैं। लोधी, ब्राह्मण, कायस्थ, ठाकुर, दांगी, पटवा, अहीर, माली, कुरमी, आदि घरों में भी एक एक दो दो हैं! यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन स्त्री पुरुषों से परवार जाति का नाम उजागर हो रहा है! हमारी सामाजिक दुर्दशा का यह बहुत ही स्पष्ट प्रमाण है।

× × × ×

ऊपर बतलाया जा चुका है कि चौकसे परवारों की संख्या १३०० के लगभग है। गत फागुन महीने में कुनपुरा (दमोह) की रथ-प्रतिष्ठा के अवसर पर कुछ सज्जनों ने चौकसों के साथ बेटी व्यवहार शुरू करने का प्रस्ताव

उपस्थित किया था, और परवार जाति के बड़े बूढ़ों ने उसे पास होने देना अनुचित समझा था; परन्तु मुझे सिलवानी (भोपाल) के एक सज्जन से अभी हाल ही मालूम हुआ है कि उस प्रस्ताव के पास न होने पर भी चौकसों का बेटी व्यवहार परवारों के साथ शुरू हो गया है और अभी कुछ ही समय में इस तरह के अनेक विवाह हो चुके हैं! सेवास, बरेली, सिलवानी, बमौरी, समनापुर, सोड़रपुर और पड़ा आदि के परवारों ने जो चौकसों के साथ विवाह किये हैं उनमें से ६ विवाहों की सूची तो उक्त सज्जन ने अपनी स्मृति के अनुसार मुझे लिख दी है। इनके सिवाय और भी चार छह विवाह हो चुके हैं जिनका पता वे नहीं बता सके। और ये सब विवाह करने वाले दोनों समाजों में चालू हैं बहिष्कृत नहीं किये गये हैं। दूसरे शब्दों में, प्रस्ताव के पास न होने पर भी, अठसकों और चौकसों के इस नवीन सम्बन्ध का अनुमोदन किया गया है। आशा है कि आगे भी इस तरह के सम्बन्ध होते रहेंगे और शीघ्रही बिछुड़ी हुई जातियाँ मिल जायँगी। सभैया भाइयों की ओर भी हमें अपना उदार हाथ बढ़ाना चाहिये।

× × × ×

(अपूर्ण)

—हितैषी।

प्रार्थना।

(लेखक—श्रीयुत पं० सुरेशचन्द्र जैन)

संसार में सतत शान्ति सुराज्य छावे।
हो धर्म में निरत उन्नति गीत गावे॥
सद्भावना यह रहे नित चित्त मांहीं।
हे शान्तिनाथ सुख शान्ति रहे सदा ही॥१॥

होवे न शोक दुख—द्वंद सुकीर्ति पावें।
आलस्य में फँस न मानुषता गमावें॥
फैले न रोग नर स्वस्थ रहें सदा ही।
हे शान्तिनाथ सुख शान्ति रहे सदा ही॥२॥

जो बन्धु निर्धन पड़े उनको सहारा।
देवें, विनष्ट कर दें दुख दैन्य सारा॥
होवें सुशिक्षित तथा नत हों सदा ही।
हे शान्तिनाथ सुख शान्ति रहे सदा ही॥३॥

विद्या कलादि गुण को फिर से जगावें।
जो द्वेष भाव हम में उनको मिटादें॥
श्रीवीर का मत समुन्नत हो सदा ही
हे शान्तिनाथ सुख शान्ति रहे सदा ही॥४॥

होवें सदैव निज देश अनन्य भक्त।
हिंसा—असत्य-अघ में न रहें सरक्त
आपत्तियां यदि पड़ें न डरें कदापि।
हे शान्तिनाथ सुख शान्ति रहे सदा ही॥५॥

श्रीवीर के सदुपदेश न भूल जावें।
अन्याय से हम कदापि न दुःख पावें॥
चोरी, कुशील, अघ दूर रहें सदा ही।
हे शान्तिनाथ सुख शान्ति रहे सदा ही॥६॥

देखें न दोष पर के गुण ही चितारें।
"सन्मार्ग के पथिक हों" यह ही विचारें॥
कर्त्तव्य पालकर धीर बनें सदा ही।
हे शान्तिनाथ सुख शान्ति रहे सदा ही॥७॥

संसार में प्रथम हो गणना हमारी।
होवें सदैव तज बैर परोपकारी॥
आशा यही बस निरन्तर चित्त माहीं।
हे शान्तिनाथ सुख शान्ति रहे सदा ही॥८॥

इस गार्हस्थ्य शकट के दोनों चक्र पुरुष हैं नारी नर।
छोटे बड़े चक्रों से गाड़ी कभी न चल सकी गज भर॥

क्या जैन जाति में, क्या भारतवर्ष में, और क्या ज्ञात संसार में नारियों, की समस्या इतनी विकट होगई है कि जिसका हल करना बहुत कठिन है। कहा जाता है कि यह स्वतंत्रता का जमाना है। मगर अभी स्वतंत्रता बड़ी दूर है। हाँ, स्वतंत्रता के नाम पर उच्छृंखलता ने स्वतंत्रता से भी ज्याद: जगह घेर ली है। खैर इस उथल पुथल से यह तो साफ विदित हो रहा है कि इस क्रान्ति युग में सामाजिक क्रान्ति हुए बिना न रहेगी। आई हुई नदी में जोर से पैर जमा कर स्थिर रहने की चेष्टा हास्यास्पद ही है। मगर अन्य देशों की परिस्थिति से भारतवर्ष की परिस्थिति में बहुत अन्तर है इसका मतलब यह नहीं है कि हम आज भी अन्य देशों से समुन्नत हैं। बाप दादों का का जमाना गया; शताब्दियों और सहस्राब्दियों पहिले दूसरे किस हालत में थे - और हम किस हालत में। इन बातों का संसार के ऊपर कुछ असर नहीं है। हां, हमारे ऊपर इतना असर जरूर हुआ है कि हम दुरभिमानी हो गये हैं बाप दादों का नाम लेकर मद में सदा चूर रहते हैं।

इतना होने पर भी इतिहास अनुपयोगी नहीं है। मनुष्यों से सदा भूल होती है। हम पुरानी भूलों को जान कर बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं और उस समय के आदर्श कार्यों को जान कर साहस पैदा कर सकते हैं। इसलिये अब हम देखना चाहते हैं कि स्त्रियों की पहले कैसी दशा थी। जैन पुराणों के अनुसार जब यहां भोग भूमि की रचना थी। उस समय स्त्री पुरुषों की आदर्श अवस्था थी स्त्री और पुरुष समानाधिकारी थे, व्यभिचार का लेश न था। पुरुष स्त्री का सच्चा पति (स्वामी) था और स्त्री, पुरुष की सच्ची पत्नी (स्वामिनी)। हमारी समझ में "पतिपत्नी" सरीखे श्रेष्ठ शब्दों का व्यवहार सत्यरूप से उसी समय होता था। पीछे तो पत्नी शब्द का अर्थ दासी हो गया। और यहीं से स्त्रियों का पतन शुरू हुआ। जिसने समाज को अवनति के गढ़े में गिरा दिया। यह सब किया तो पुरुषों ने हो, मगर प्रकृतिक घटनाओं ने ही उन्हें ऐसा करने के लिये विवश किया भोगभूमि में खाने पीने की चिन्ता न थी, शरीर हृष्ट पुष्ट और तन्दुरुस्त रहता था, स्त्री पुरुषों की संख्या बराबर थी। समाज रचना की जरूरत ही न थी।

पीछे स्त्रियों की संख्या कुछ बढ़सी गई, एक एक पुरुष के पीछे हजारों स्त्रियों का नम्बर आया सपत्नी (सौत) शब्द की उत्पत्ति हुई। बस यहीं से स्त्रियों के अधिकार छिनने लगे, स्त्रियों का पतन यहां तक हुआ कि वे पुरुषों की सम्पत्ति बन गईं। उसमें पत्नीत्व के स्थान में गुलामी आ गई। इसका सब से बड़ा बीभत्स और भारतवर्ष के मुँह पर स्याही पोतने वाला दृश्य उस दिन दिखा जिस दिन सती द्रौपदी दाव पर रक्खी गई। मगर पुरुष

समाज के इन अत्याचारों को सह कर भी नारियों ने वे कामकर दिखाये जिससे भारतवर्ष आज भी सिर ऊँचा कर सकता है।

उनका केवल प्रेम, भक्ति, क्षमा, उदारता, सहिष्णुता आदि गुणों ही का विकाश, चरम सीमा तक न पहुंचा था। मगर उनने वीरता, विदुषता आदि में भी अजर--अमर नाम पाया था। लेकिन समाज के नियम इतने बेहूदे हो गये थे। जिससे पतन अवश्यम्भावी था। और वह अन्त में हो के ही रहा।

स्त्रियों का यह पतन केवल भारतवर्ष में ही नहीं हुआ, बल्कि प्राय: सभी देशों में यही हालत हो गई या रही। कुछ वर्षों से दूसरे देश वासियोंका ध्यान नारी समस्या पर लगा है, और उन्हें क्रमशः अधिकार मिलने लगे हैं। मगर इस अधिकार-प्रदान से भी विशेष लाभ नहीं हुआ है आज भी यूरोप की रमणियों की दशा कुछ अच्छी नहीं है आज कल वहां विवाह के लिये बालिकाएँ रिझाने की कला सीखती हैं। थोड़े से स्वार्थ के लिये तिलाक देने को तैयार रहती हैं-और दुख है कि तिलाकों की संख्या धीरे धीरे बढ़ती ही जाती है। ऐसी हालत में यह स्वतन्त्रता भी समाज के लिये लाभप्रद नहीं कही जा सकती। यूरोप के स्त्री स्वातंत्र्य ने प्रेम का बन्धन तोड़ दिया है अपने व्यक्तित्व के लिये गार्हस्थ्य जीवन विश्वास शून्य कर दिया है। हम नहीं चाहते कि भारतवर्ष भी ऐसे दिन देखे। जब कोई नई नीति आती है तो कुछ बुराई और कुछ भलाई दोनों लाती है। इसलिये इस स्त्री स्वातंत्र्य से कुछ लाभ भी हुआ, वहां के प्रत्येक व्यक्ति में स्वावलम्बन आगया। जिस प्रकार स्त्री के बिना पति जीवन बिता सकता है। उसी प्रकार वहां की स्त्रियां भी पति के बिना आजीविका चला सकती हैं। उन्हें झिड़कियां खाकर जीवन नहीं बिताना पड़ता है।

दूसरा लाभ इससे यह हुआ, कि पुरुषों को यह चिन्ता मिट गई कि मेरी अनुपस्थिति में मेरी स्त्री क्या करेगी? वहाँ स्त्रियाँ पुरुषों की भांति बाहर जाकर योग्य परिश्रम करके द्रव्योपार्जन कर सकतीं हैं। और गृह प्रबंध में भी स्वतंत्रता से काम ले सकती हैं। इधर पुरुष भी निश्चिन्त होकर राष्ट्र के लिये मर सकते हैं। मगर भारतवर्ष में यह बात नहीं है पुरुष के बिना किसी कुटुम्ब का एक दिन काम चलना भी मुश्किल है।

इतना सुभीता होते हुए भी पश्चिम ने स्वार्थवश प्रेम बन्धन तोड़कर जो अशान्ति मोल ले रक्खी है। उसे देखते हुए यह सुभीता उपादेय नहीं मालूम पड़ता। जो हो, योरोप की दशा भारतवर्ष के लिये आदर्श नहीं हो सकती हमारे सौभाग्य से हमें अनुभव करने के लिये पूरा समय मिला है। इस लिये हमें उसी रास्ते से चलना चाहिये जिससे योरोप की अशान्ति मोल लिये बिना ही हम नारी समस्या को हल कर सकें।

यह तो स्पष्ट है कि पुरुषों का सम्बन्ध दो मित्रों के समान नहीं है। मगर यह सम्बन्ध ऐसा घनिष्ट है जैसे शरीर में दायें बायें भाग का रहता है। एक के पतन से दूसरे का पतन अवश्यम्भावी है। ऐसी हालत में हमें बहुत सोच विचार कर ही काम करना है। राज-नैतिक अधिकारों पर लड़ना झगड़ना भी व्यर्थप्राय है। इससे स्त्रियों की दशा का सुधार नहीं होसकता। वोट का अधिकार इतना बड़ा नहीं है, जिसके लिये ईंटे बरसाना पड़ें। पुरुष भी इन छोटे छोटे अधिकारों में विघ्न डालकर

अपनी क्षुद्रता का परिचय देते हैं। और! इस बात की इतनी चिन्ता नहीं है। स्त्री पुरुष के रहने का क्षेत्र घर है। हमारे घरों की कितनी दुर्दशा है यही बात विचारणीय है।

जब किसी घर में सन्तान पैदा होने वाली होती है। तो सभी को बड़ी खुशी का अनुभव होने लगता है। मगर सन्तान पैदा होते ही अगर यह मालूम हो कि लड़की हुई तो सब की आशा पर वज्रपात सा हो जाता है। पिता का मुख जो कुछ समय पहिले फूले कमल सा था, शीघ्रही दुपहर के गुलाब सा मुरझा जाता है। क्या समाज के पतन का कारण और पतन का यह चिह्न बहुत बड़ा है। विचारना है कि ऐसा क्यों होता है? आप किसी भी लड़की के बाप से पूछ लीजिये, अगर वह स्पष्टवादी है तो वह साफ कहदेगा कि लड़की के पैदा होने से मुझे इतना ही दुःख हुआ है जितना कभी कुड़की के वारंट आने पर होता है। इसके कारण भी निम्नलिखित बतलाये जायेंगे:—

१—लड़के के आचरण की अपेक्षा लड़की के आचरण पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

२—बारह वर्ष पालन पोषण करके कन्या दूसरे को देना पड़ती है।

३—लड़की अगर अच्छी निकली तब तो ठीक, नहीं तो जन्म भर उनके उलहने खाने पड़ते हैं—जिनको कि लड़की देकर घर बसा दिया है।

४—वर चाहे कितना ही योग्य या अयोग्य हो लड़की देकर उसका उपकार करने के साथ अपने को और अपने वंश भर को नीचा मानना पड़ता है। और उसकी पूजा करना पड़ती है।

५—लड़की यदि दुर्भाग्य से विधवा होगई! तो उसको जन्म भर तक सहारा देना पड़ता है। ससुरालवालों को तो विधवा पुत्र वधू से प्रेम रहता नहीं, लेकिन माँ बाप का हृदय तो इतना कठोर नहीं हो सकता! विधवा बेटी को घर में सुरक्षित और सुखी रखना कितना कठिन है इस का कटुक अनुभव दूसरे को नहीं हो सकता—यदि मान भी लिया जावे कि उसका भार किर पर न पड़ा तो भी उसका असादर पूर्ण जीवन माँ बाप के हृदय में हो सब से ज्यादः दुख शोक पैदा करता है।

६—पालकर लड़की देने के साथ वर पक्ष को और भी बहुत सी सम्पत्ति देना पड़ती है। इतने पर भी शायद ही हजार में कोई एक हो जो कन्या पक्ष के देने की प्रशंसा करे। मनमाना लेकर भी पहसान जताते रहते हैं। और कन्या पक्ष वाले को हाथ जोड़ कर खड़ा रहना पड़ता है। ये कारण क्या कन्या जन्म से हृदय दुखी बनाने के लिये काफी नहीं है? जब कन्या जन्म से ही लोगों को बुरी मालूम पड़ती है। तब इस बात का प्रभाव कन्या की आत्मा पर और उसके पालन पोषण के ढंग पर भी पड़ता है। हमने लोगों को निःसंकोच यह कहते देखा है कि "ठहर जा और थोड़े दिनों की बात है फिर जन्म भर तेरा मुँह न देखेंगे" क्या उस कोमल हृदया बालिका पर इन कठोर बातोंका कुछ असर नहीं पड़ता? क्या अब भी उच्चाभिलाषायें उसके हृदय में वास कर सकतीं हैं? उसके पालन-पोषण में सदा इस बात का स्मरण रक्खा जाता है, कि आखिर यह पराई बलाय है। इससे हमें कुछ कमाना तो है नहीं, हर तरह लुटना और नीचा ही बनना पड़ेगा। लड़की के लिये ज्यादा खर्च करने की क्या जरूरत? उसकी परिचर्या में इतना खर्च क्यों किया जाय? जितना कि एक लड़के की परिचर्या में।

इन सब बातों का यह प्रभाव पड़ता है। कि कन्या न तो शिक्षित हो पाती है, और न उसके जीवनोपयोगी उत्तम गुणों का विकाश होने पाता है। किसी तरह ग्यारह बारह वर्ष बीतने पर ससुराल में पटक दी जाती है।

हमें सोचना है माता पिता, जिन कारणों से लड़की से इतनी घृणा प्रगट करने लगते हैं।

के कारण प्राकृतिक हैं या अप्राकृतिक। अप्राकृतिक कारणों में से कितने हटाये जा सकते हैं और कितने अनिवार्य हैं। हमारी समझ में ऊपर बतलाये हुए कारणों में चौथे पाँचवें, छठवें कारण बहुत खटकने वाले हैं। और वे अनिवार्य भी नहीं हैं। समाजमें न मालूम कबसे पैदा हो गये हैं। यह बात निश्चित और साफ़ है कि कन्या का पिता बहुत उपकारी है। पं० आशाधरजी तो साफ़ कह रहे हैं कि:—

सत्कन्यां ददता दत्तः सत्रिवर्गो गृहाश्रमः।
गृहं हि गृहिणी माहुर्न कुड्यकटि संहतिम्॥

अर्थात् सत्कन्या देने वाले ने धर्म, अर्थ, काम सहित पूरा गृहस्थाश्रमही दे दिया; क्योंकि गृहिणी को घर कहते हैं न कि ईंट पत्थर के ढेर को। भला, इतने उपकारी पिता का आभार न मानकर उलटी उससे पूजा कराना कितनी कृतघ्नता है! लड़की का पिता इतना विचार भी नहीं सकता कि मैंने किसी का उपकार किया है! कितने आश्चर्य की बात है कि जिनका ऋण इस जन्म भर नहीं चुकाया जा सकता उन पर उलटा एहसान बताया जाता है!

लड़की का पिता इतना ही उपकार क्या कम करता है? जिस पर दहेज देने की प्रथा भी चालू है-हमारी समझ से फूटी कौड़ी भी देने की जरूरत नहीं है। समाज ने विवाह की आवश्यकतायें व्यर्थ ही बढ़ाली हैं। क्या जरूरत है कि गाँव वालों को भी लड्डू-पेड़े खिलाये जाँय। जो लोग मेहमान हैं उनके भोजन का प्रबन्ध करना तो उचित है, बाकी गाँव वालों का तो साधारण इत्र पान से भी स्वागत किया जा सकता है। लोगों का तो एक या आधे दिन का अन्न बचता है और इधर बिचारे की दुपरिया बिकने तक नौबत आ जाती है। इसलिये न तो लम्बी बरात लाने की जरूरत है न ग्राम वालों को भोजन की, और न दहेज की।

पुत्री के वैधव्य की चिन्ता अनमेल और बालविवाह के दूर करने से बहुत कुछ दूर हो सकती है। यदि दैवदुर्विपाक से ऐसी घटना हो भी जावे तो समाज का कर्त्तव्य है कि विधवाओं को घृणा की दृष्टि से न देखें-उन्हें दुर्मुखी न कहें। गृहवालों का परम कर्त्तव्य है कि जब वह एक ओर से निराश्रया हो गई है तो उसे इतना आश्रय दिया जावे जिससे वह अपने जीवन को बलाय न समझ सके। साथ ही साथ सधवा स्त्रियों की अपेक्षा विधवाओं की अधिक इज्जत करना चाहिये। हम जैन धर्मी हैं-वीतरागता के उपासक हैं इसलिये वैधव्य दीक्षा से दीक्षिताओं का अधिक आदर न करके वास्तव में हम वीतरागता का अपमान करते हैं। क्या आजन्म ब्रह्मचर्य व्रतपालन करना कोई व्रत नहीं है? हम विषयभोगों में अनुरक्त नारियों को सौभाग्यवती कहकर आदर करें और विधवाओं को दुत-कारते रहें क्या यही मनुष्यता या जैनत्व है?

स्त्री के मर जाने पर यदि पुरुष आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करे, और अपना वेश विन्यास सादा बना ले, विषयभोगों का ममत्व तोड़ दे, तो हम उसे कितना पूज्य गिनते हैं? क्या यही पूज्यता स्त्रियों के लिये लागू नहीं है? सच पूछा जाय तो हम सरीखे अविरतों के घर में विधवा एक पूज्य वस्तु है। जैन धर्म के आदर्श पर वह हम से कई कदम आगे बढ़ी है-उसका अपमान करके हम जैन धर्म का ही अपमान कर रहे हैं। हमें चाहिये कि हम जिस प्रकार त्यागियों का आदर करते हैं-उन्हें एक तरह की सुविधायें देते हैं, उसी प्रकार विधवाओं को

भी दें। ऐसा करने से उनकी हालत सुधर आवेगी, हमारी पिछड़ी समाज कुछ कदम आगे बढ़ आवेगी। अगर हम इस प्रकार ही उन्हें पीसते रहे-किसी प्रकार गृहस्थों में जोतकर अवहेलना पूर्वक उन्हें जिलाते रहे, तो निश्चिन समझिये कि उन मूकों की आहें हम सरीखे वज्रों को भी भस्म कर देंगी।

विधवाओं की दुर्दशा से खाली उन्हीं का नुकसान नहीं है, मगर स्त्री समाज मात्र का नुकसान है। और स्त्री समाज के नुकसान से पुरुषों का भी पतन हो रहा है।

अगर हमारा ध्यान इन सब बातों के ऊपर गया तो हमारा दृढ़ विश्वास है कि पिता को कन्या जन्म से दुख न होगा। और न उनके पालन पोषण में अवहेलना की जायगी।

—(अपूर्ण)

अन्याय पतन ।

[२]

अत्याचारी! व्यर्थ, पाप सिर पर मढ़ते हैं।
पाकर जग में जन्म, अकारत ही मरते हैं॥
उनके हृद में, तनिक हिता-हित ज्ञान नहीं हैं।
क्रूर उनका हृदय, दया का भाव नहीं है॥
अत्याचारी का प्रभो! यश अपयश रहता बना।
स्थिर वह संसार में, कब रह सक्ता है बना॥

[१]

वसुधापर अन्याय, सदा क्या बना रहा है।
स्वयँ आप ही आप, शीघ्र वह नष्ट हुआ है॥
जीवन में वह व्यर्थ, बीज अपयश बोता है।
इससे कौन बताव, ? लाभ जग का होता है॥
अत्याचारी से प्रभो! कौन टिका है विश्व में।
आखिर होता पतन ही, इस क्षण भंगुर संसारमें॥

परमानन्द चाँन्देलीय।

चिर-जीवन का एक मात्र उपाय ।

संसार में ऐसे अनेक पदार्थ हैं कि जिनके कारण जीवन-वृद्धि हो सकती है, परन्तु बहुत ही कम व्यक्ति ऐसे हैं कि जिनका ध्यान उनकी ओर जाता है। औषध-सेवन परित्याग कीजिए तो अवश्य आयु में वृद्धि होगी। जिस प्रकार जरा २ सी तकलीफें मृत्यु का कारण बन जाती हैं उसी प्रकार उन पर ध्यान देने से आयु की वृद्धि अवश्य हो सकती है। चिर-जीवन के लिए यही एक राजमार्ग है दूसरा नहीं।

प्रकाश और पवन ।

ये दोनों वस्तुएं जीवन और स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी हैं। इनके बिना किसी भी प्राणी का अस्तित्व नहीं रह सकता।

एक बार, अन्न, जल, वस्त्र बिना प्राणी कितने ही दिनों तक जीवित रह सकता है परन्तु-बिना वायु और प्रकाश के एक क्षण मात्र भी स्थिर नहीं रह सकता।

ताज्जुब तो यह है कि मनुष्य जानबूझकर भी भूल कर बैठते हैं जैसे अंधेरे में रहना कितनेक मनुष्य बहुत पसंद करते हैं परन्तु उनका ऐसा करना महा भूल है। प्रकाश जीवन के लिए उतना जरूरी है जितना कि वायु। और जहाँ प्रकाश है वहीं वायु है कारण कि इन दोनों में अविनाभावी सम्बन्ध है।

सर्दी ।

जहाँ पर प्रकाश की पहुंच नहीं, वहीं पर शीत अपना ओर पकड़ती है। इसके कारण मनुष्य महा दुखी हो जाते हैं। यही रोगों की जड़ है। अशुद्ध वायु बीमारी का घर है। जिस

मकान में खिड़की द्वारा ताजा हवा का प्रवेश हो वहाँ बीमारी बहुत कम रहती है। किसी मकान में प्रवेश करने के पहिले उसकी सब खिड़कियाँ और दरवाजों को खोल देना चाहिए जिससे उसमें ताजी हवा और प्रकाश पहुंच जाए। ये दोनों वस्तुएं मकान की सारी गंदगी को दूर कर देती हैं।

अन्न-जल।

अन्न-जल भी जीवन वृद्धि के लिए अति उपयोगी है। एक अनुभवी डाक्टर का मत है कि मनुष्य चिर-जीवित तभी रह सकता है जब कि वह शुद्ध अन्न-जल का प्रयोग करे?

"मैं क्या खाऊं पिऊं" ?

"मैं कब खाऊं पिऊं" ?

इन दोनों प्रश्नों का हल करना उन लोगों के लिए आवश्यक है जो चिर-जीवित, सुखमय रहना चाहते हैं। सब से पहिले मनुष्य का यह धर्म है कि वह इस बात का पता लगाए कि मैं क्या खाऊं पिऊं? जो पदार्थ तालु के लिये ठीक होवे स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त नहीं। भोजन के पसंद करने में तालु ठीक नहीं इसको तो लजीज और काबिज पदार्थ पसंद हैं; परन्तु ये स्वास्थ्य नाशक हैं।

भोजन नियत समय पर और परिमित मात्रा में खाया जाए। जिह्वा लम्पटता से नाना प्रकार के कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं। जैसा कार्य हो उसी के अनुसार भोजन भी होना चाहिए।

पोशाक।

पोशाक का भी स्वास्थ्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। फैशन के गुलाम स्वास्थ्य से हाथ धो बैठते हैं। जिनको स्वास्थ्य का ख्याल है वे फैशन की जरा भी परवाह नहीं करते। जो वस्त्र तुम शरीर पर धारण करो और जो शरीर से स्पर्श करता रहे वह फुलालैन या बसो की भांति का मुलायम कपड़ा होना चाहिए। भारी वस्त्र कभी शरीर में नहीं डालना चाहिए। बोझ से गर्मी नहीं आती।

यदि तुम्हें स्वास्थ्य का ख्याल है तो तुम कपड़े लत्ते में अधिक धन व्यय मत करो-किन्तु भोजन में खर्च करो। जिससे शरीर बने और स्वास्थ्य रहे।

कपड़ा शरीर से मिला हुआ होना चाहिए यानी कपड़ा वह होना चाहिए कि जो न जियादा ढीला हो और न जियादा तंग हो किन्तु जिसे आजकल फिट कहते हैं। ऐसा कपड़ा बना हुआ हो तो इससे शरीर को बहुत लाभ पहुँच सकता है।

बड़े बड़े शहरों और नगरों में रहकर काला कपड़ा कभी नहीं पहिनना चाहिए कारण कि उससे स्वास्थ्य पर बड़ा भारी धक्का लगता है। हलके रंग का कपड़ा धारण करना चाहिए जिससे गर्मी, बरसात, जाड़े का उसपर फौरन असर मालूम पड़ सके।

नाथूराम सिंघई।

अभिलाषा।

चाह महलों की न मुझको, झोपड़ी रखकर रहूँ।
वृक्ष के नीचे रहूँ, स्वाधीन होकर के रहूँ॥
चाहिये रेशम नहीं इस, देह पर खद्दर रहे।
हों नहीं गद्दे गलीचे, सूत की चद्दर रहे॥
रोटियाँ सूखी मिलें पर, दुख न औरों को मिले।
देखकर सुख भाइयों का, जी सदा मेरा खिले॥
छोड़ दूं मैं राज—पद को, देश रक्षा के लिये।
पुण्य समझूँ सब दुखों को, धर्म रक्षा के लिये॥
शत्रु हो सम्राट भी पर, दीन पर ममता रहे।
हीनता में या विभव में, चित्त में समता रहे॥
क्षीण हो यह देह सारी, जाति के उपकार में।
शूर वीरों सा कटे शिर, देश के उद्धार में॥

सूर्यभानु त्रिपाठी "विशारद"

(ले०—साहित्य रत्न पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ ।)

(परदा उठता है ।)

(नट नटी और गाने वाली बालिकाएँ आती हैं)

हमारा प्यारा भारत देश ।
सौम्य शान्ति मय, तेज कान्ति मय,
धीर, वीर, गम्भीर कान्तिमय,
शोणित आज कलेश, हमारा प्यारा भारत देश ॥ १ ॥
हे दुख भञ्जन, पाप निकन्दन,
नयन रहित को अनुपम अञ्जन,
मेटो यह दुख वेश । हमारा प्यारा भारत देश ॥ २ ॥
आओ, आओ, कर्म सिखाओ,
हम से आलस दूर भगाओ,
हे अनुपम कमलेश । हमारा प्यारा भारत देश ॥ ३ ॥
सौख्य सदन हो दुःख कदन हो,
शोक चिन्ह से रहित वदन हो,
रहे न विपदा लेश । हमारा प्यारा भारत देश ॥ ४ ॥

नटी—प्राणनाथ ! आज इस सभ्य समाज के लिये कैसा दृश्य दिखलाने का विचार है ?

नट—अच्छा, तुम्हारी क्या इच्छा है ? मेरी समझ में भारतोद्धार नाटक दिखलाया जाय तो बहुत अच्छा होगा। इससे दर्शकों का मनोरञ्जन तो होगा ही, साथ में शिक्षा भी बड़ी भारी मिलेगी।

नटी—मगर मेरी समझ में नहीं आता, कि भारतोद्धार का दृश्य दिखलाने से दर्शकों को क्या लाभ होगा। भारत का उद्धार कैसा ? भला जिस देश का पतन ही नहीं उसके उद्धार करने की जरूरत ? जिस भारतवर्षने राम, कृष्ण सरीखे महापुरुष, महावीर, बुद्ध समान महात्मा। सीता, सावित्री, अञ्जना सरीखी देवियाँ। प्रताप, शिवाजी सरीखे देशभक्त, अपनी गोद में खिलाये हैं। उसका उद्धार कैसा ? गिरा हुआ देश उठाया जाता है लेकिन जो उठा हुआ है, संसार का सिर मौर है, उसे उठाने का प्रश्न क्यों छेड़ा जाता है ?

नट—(मुसकराकर) तुम्हारा कहना ठीक है लेकिन—

जो भारत जगमें श्रेष्ठ रहा वह आज नीच कहलाता है।
जिसके नीचे संसार रहा वह पद पद ठोकर खाता है॥
जिसने सब जगको ज्ञान दिया वह आज मूर्ख है बना हुआ।
जो कमल किसी दिन खिला रहा वह है कीचड़में सना हुआ॥

वही हिमालय है, वही विन्ध्याचल है, वही गंगा है, वही महावीर और राम की सन्तान है; सब वही है, परन्तु—

वह रंग नहीं, वह ढंग नहीं,
तन धन जीवन बरबाद हुआ।
फूलों की शोभा नष्ट हुई,
कांटों का वन आबाद हुआ॥

नटी—हैं ! आज तो आप कुछ नई बातें सुना रहे हैं। यद्यपि आपके कहने पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। फिर भी यह बात मेरी समझ में नहीं आती-कि जिस देश के मनुष्य इस प्रकार चटकीले कपड़े पहिनते हों, मोटर और बग्गियों में सवार होते हों, सभा-सोसाइटियों में जाते हों, वह देश पतित कैसे कहा जा सकता है ?

नट—ठीक है मगर ज़रा सोचो तो, हमारे देश के कितने मनुष्य मोटरों पर सवार होते हैं ? कितने मनुष्य चटकीले कपड़े पहिनते हैं ? कितनों को अक्षरों से पहिचान है ? उनमें कितनी एकता है ? कितनी सभ्यता है ?

कहते दुख होता है कि अपने देश में लाखों मनुष्य भूखों मरते हैं। धनवानों के और अधिकारियों के कठोर से कठोर अन्यायों को सहते हैं। सामाजिक कुरीतियों ने उनकी आत्मा को इतना कस दिया है कि वे मुर्दे हो गये हैं। किसी ने एक पद्य में भारतीयों का हुबहू चित्र खींच दिया है (स्मरण करके)

हा-किसी विधि पेट भरना ही हुआ उद्देश जीवन का।
मगर वह भी नहीं मिलता, दर्द किससे कहें मनका॥
जिन्हें कुछ शक्ति मिलती है दया दिलमें न वे धरते।
जिन्हें कुछ है दया आती स्वयं वे भूख से मरते॥

जिस देश के आधे अंग को लकवा मार गया हो, जहां के लोग हिताहित की परीक्षा के बिना ही कोरे नकलची बनना चाहते हों, जिस देश के कोने कोने में सत्यनिष्ठा की जगह चापलूसी; गुणों की जगह दुर्गुण भरे हुए हों उस देश को उन्नत कैसे कहा जा सक्ता है! भले ही कहीं कहीं ऊपर से चटक मटक हो। मगर देश की सच्ची परिस्थिति बहुत खराब है।

नटी—तब तो भारत की भीतरी दशा दिखलाने के लिये भारतोद्धार नाटक दिखलाना बहुत ही ठीक होगा।

नट—हाँ! यही तो मेरी मंशा है।

नटी—तो चलिये! शीघ्र तैयारी करें और इन बालिकाओं को गाने दें।

नट—हां चलो।

(दोनों का प्रस्थान)

(बालिकाओं का गायन)

दुखनी है मात तुम्हारी तुम सोवत पैर पसारी।
जिसकी गोदी में सोये—हा भर भर आंसू रोये,
रो रो कर वस्त्र भिंगोये—तब उसने आंसू धोये,
वह फिरती मारी मारी-दुखिनी है मात तुम्हारी ॥तुम०
जिसकी मिट्टी है तन में—कण कण है भरा बदन में,
उसका न ख्याल तक मन में-सब सूते पांव पसार के,
है सुध बुध सभी बिसारी-दुखनी है मात तुम्हारी ॥तुम०
इसके हित शीश कटाओ-तन मन धन सभी लगाओ,
अपनी वीरता दिखाओ-माता पर मुकुट चढ़ाओ,
दुख सहे न मात बिचारी- दुखनी है मात तुम्हारी ॥तुम०

(प्रस्थान)

प्रथम दृश्य।

(दुखित देश में भारतमाता खड़ी है और भारतवासी बे होश पड़े हैं)

भारतमाता—हाय जिसके मुकुट की चमक से संसार की आँखें नीची हो जाती थीं, जिसके पैरों को चूमने के लिये संसार के सिर उमड़ते थे, जिसके पैरों पर स्वर्ग के देवता आकर सिर झुकाते थे; जिसकी तलवार देखकर बड़े बड़े पापियों के दिल दहल जाते थे, आज उसीकी यह दशा है। शस्त्र छिन गया, मुकुट चकनाचूर होगया।

(रोतेस्वर से) हाय! आंखों से निकलते हुए आसुओं को पोछने वाला-मेरी डूबती नैया को पार लगानेवाला एकभी न रहा।

जहां की वीर गौतम सम महात्मा जन्म पाते थे।
जगत का भार हरने को चतुर्भुज राम आते थे॥
वहीं पर आज लाखों क्या करोड़ों भूख से मरते।
बचे जो भूख से दुख से परस्पर युद्ध से मरते॥

अब यह होगया बांझ स्त्री के समान मेरी गोदी सूनी हो गई। हाय! आज मेरे ही लड़के

मेरे ही लड़कों के खून के प्यासे हैं। भाई, बहिन पर अत्याचार करता है। बाप बेटे में, पति पत्नी में, सास बहू में, दिन रात महाभारत मचा रहता है। धनवान गरीबों को चूसना चाहते हैं पढ़े लिखे अनपढ़ों को, सुधारने की अपेक्षा घृणा करते हैं। हाय! दबे को दबाना चाहते हैं, पिसे को पीसना चाहते हैं, मरे को मारना चाहते हैं। हिन्दू मुसलमान को म्लेच्छ समझते हैं और मुसलमान हिन्दुओं को काफिर कहते हैं।

घर लुट जावे या बिक जावे पर झूठी शान दिखायेंगे।
घर में कुत्तों से लड़ा करेंगे मारेंगे मर जायेंगे॥
हाई चावल की जुदी जुदी खिचड़ी भी सदा पकायेंगे।
सिर पर आवेगा शत्रु अगर तो पूँछ दबा भग जावेंगे॥

बस यही दशा इनकी है। जब मैं इनकी ऐसी अवस्था देखती हूं तब जिगर के टूँक टूँक हो जाते हैं। सवेरे के बाद शाम होती है, और शाम के बाद सवेरा होता है, इसी तरह उन्नति के बाद अवनति और अवनति के बाद उन्नति होती है परन्तु कब तक सहूं इससे मरना अच्छा है।

जिसके न मुख पर आत्म गौरव की जरा भी कांति है।
जीवन उसी को मौत है जो मौत है वह शान्ति है॥

(पास में पड़े हुए भारतीयों को लक्ष्य करके) मेरे पुत्रो! मुझे इस बात का इतना दुख नहीं है कि तुम्हारे पैरों में बेड़ियां हैं, मगर दुःख इस बात का है कि तुम्हारी आत्मा गुलामी की जंजीर से जकड़ गई है, तुममें न आत्म-गौरव है न विनय, न ताकत है, न एकता। तुम्हारी टूटी फूटी शक्ति तुम्हारे भाइयों का ही सत्यानाश करती हैं। हाय अब मैं किससे आशा करूं, इन बुरे दिनों में यमराज भी सूरत नहीं दिखाता।

बुरे दिन में न कोई पास भी आकर फटकता है।
तभी यमराज का भैंसा वहां जाकर अटकता है॥
न दुःख में सांप डसता है न आगी भी जलाती है।
हृदय सौ टूँक होता है नहीं पर जान जाती है॥

हाय! मेरा गौरव, मेरा धन, कहां गया? उड़ गया, फिर भी मुझे जीना है, नहीं, नहीं, अब तो नहीं सहा जाता है (बेहोश होती है, बेहोश भारतवासियों में से कुछ कुनमुनाते हैं इतने में परदा फटता है एक महापुरुष दिखाई देता है)

महा-उन्नति तथा अवनति किसी की है जगत में थिर नहीं।
आज जो राजा बना है कल उसी का सिर नहीं॥
आज जो आकाश से नीचे न पग धरते यहीं।
कल उन्हें मिलता नहीं वन में ठिकाना भी कहीं॥

हाय! आज भारतवर्ष की कैसी दुर्दशा है। मगर इसमें आश्चर्य ही क्या है सब अपनी करतूतों का फल है। जहां के किसान जमींदारों के मारे तबाह होगये हों, स्त्रियां गुलामी और मूर्खता की मूर्तियां बन गई हों, लोगों के हृदय से आत्मगौरव निकल गया हो, अपने व्यक्तिगत तुच्छ स्वार्थ के लिये देशहित, जातिहित, धर्महित का बलिदान होता हो, आदर्श पर चलना कुरीतियों को हटाना दुश्चरित्रता में शामिल किया जाता हो, वहां की ऐसी दुर्दशा होना स्वाभाविक ही है।

मगर, सहचुके, बहुत सह चुके, अब इन्हें स्वार्थ त्याग का पाठ पढ़ना होगा, धनवानोंको गरीबों की, विद्वानों को मूर्खों की, पुरुषों को स्त्रियों की कदर करना होगी और संसार के साथ खड़ा होना होगा।

संसार में सब का समय है एक सा जाता नहीं।
रहता जहां पर है शिशिर ऋतुराज भी आता वहीं॥
उन्नति अवनति चक्र जग में सर्वदा से चल रहा।
प्रातः कभी होगा उदित जो आज नीचे ढल रहा॥

(पटाक्षेप)

द्वितीय दृश्य।

(स्थान-पंडित जी के घर की दालान का बाहरी हिस्सा)

(पंडित जी का प्रवेश)

पंडित जी—क्या गजब की बात है, पढ़ते पढ़ते जवानी तो निकल गई, अइ, उण, से लगा कर भाष्य पर्यंत व्याकरण घोटकर पी गया। कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, हरिश्चन्द्र के काव्य अब भी पेट में गड़ रहे हैं। (पेट टटोलता है)। इको यणचि, की खिच पिच पागल बनाये देती है। नैयायिकों के सोलह और वैशेषिकों के सात पदार्थ, सांख्यों के पचीस और जैनियों के सात तत्व, रटते रटते गला बैठ गया। (गला टटोलता है) फिर भी रोटियों का तत्व न खोज पाया।

दिनरात मंत्र जपा करता हूं 'ॐ भगवते विष्णवे नैवेद्य' निर्वपामीति स्वाहा' 'ॐ भगवते त्रिशूल पाणये जलं निर्वपामीति स्वाहा' परन्तु अब इस जाप में चित्त नहीं लगता। अब तो जी चाहता है कि दिनरात यही जपा करूं कि 'ॐ भगवते पेट देवाय रोटीं दालं चांवलं निर्वपामीति स्वाहा'।

(पंडितानी का प्रवेश)

पंडितानी—अजी पुजारी महाराज, 'निर्वपामीति स्वाहा' तो पीछे कहना, पहिले रोटी, दाल, चावल का ठिकाना भी है या नहीं?

पंडित—बस! इसी बात से तो मुझे पित्त ज्वर चढ़ा है इतने पर तुम भी ऐसी बातें कर करके मेरा पित्त गरमा गरम बनाये देती हो।

पंडितानी—तुम्हें पित्त ज्वर चढ़ा है इसीलिये तो मेरी दूध सरीखी मीठी बातें तुम्हें कड़वी मालूम पड़ती हैं।

पंडित—बस! बस! अब रहने दो, मैं इस समय शास्त्रार्थ नहीं करना चाहता। अब तो जल्दी कह दो, कि क्या बनाया है इस समय बड़ी भूख लगी है।

पंडितानी—तो मुझसे क्या कहते हो

पंडित—तो किससे कहूं?

पंडितानी—चूल्हे से!

पंडित—चूल्हे से? चूल्हे से क्या कहूं?

पंडितानी—यही कि हे चूल्हे देवता! तुम बिना चावलों का भात, और बिना आटे की रोटियां बना बना कर दिया करो—

पंडित—एँ! क्या ऐसा भी हो सका है?

पंडितानी—मुझसे क्या पूछते हो? तुम्हीं सोच लो तर्क तो बहुतसी पढ़े हो। तुम हर दिन बाजार जाते हो और पीछे से कोरे हाथ डुलाते ही। चले आते हो इसलिये मैं यही समझती हूं कि कुछ चूल्हे से नातेदारी लगा ली होगी।

पंडित—ओ-हो! अब तो वक्रोक्तियां फटकारने लगी, मगर यह तो बताओ कि हम करें क्या? कहां जावे, कैसी करें, जब भगवान ही हम पर रूठा है तब दूसरा कौन सहायता दे सका है?

रमादेवी—भगवान क्या करें? क्या छप्पर फोड़के दे दें? जब तुम इतना पढ़े लिखे हो तब भगवान को क्यों बुलाते हो कुछ अपनी विद्यासे भी काम लो। जो अपनी टांगों पर आप खड़ा होता है, उसकी, भगवान क्या सभी सहायता करते हैं।

पंडित—(जोर से) अरे तो कुछ काम मिले तब तो। आज कल विद्या की कदर है कहाँ? पुराने जमाने में एक एक श्लोक पर

लाख २ रुपया मिलते थे परन्तु आज कल एक लाख रुपया तो क्या एक पैसा भी मिलना कठिन है।

पंडितानी—तो कोई दूसरा उपाय करो। हटाओ इस पोथी पत्रा को।

पंडित—दूसरा काम भी क्या करूं? इन पोथी पत्रों ने किसी काम का न रक्खा। जी चाहता है कि पोथी पत्रों को जलाकर एक दिन की रसोई का ईंधन बना डालूं।

पंडितानी—अजी ऐसी बातें क्यों करते हो? पुराने ऋषियों ने जो बातें बड़ी तपस्या से निकालीं उनकी तुम ऐसी निन्दा करते हो!

पंडितजी—तो क्या करूं भूखे भक्ति तो होती नहीं।

पंडितानी—यह ठीक है परन्तु उनके भीतरी तत्व निकालो। नारियल में ऊपर तो जटा रहता है परन्तु भीतर कैसी मीठी मीठी गरी रहती है।

पंडित—(कुछ शोक सा बतलाते हुए) रहती होगी, मैंने बहुत दिन से नारियल खाया ही नहीं इसलिये उसका स्वाद ही भूल गया हूं। जजमान तो ताकते भी नहीं फिर नारियल आदि भेंट करदें यह तो सोचना भी पागलपन है। खैर, अब इन बातों से क्या मतलब। तुम्हारा कहना है तो बहुत ठीक मगर क्या करूं कुछ भी तो नहीं बन पड़ता। देखो फिर कोशिश करूंगा।

पंडितानी—अच्छा तो चलो! तनिक भीतर चलो कुछ खा पीलो।

पंडितजी—(आश्चर्य से) एं! क्या कुछ खाने पीने को है?

पंडितानी—खाने पीने को तो क्या रक्खा है थोड़े से भुने चने पड़े हैं उससे जलपान तो करही लो।

पंडितजी—चलो, यही बहुत है इस कल-युग में पंडितों को चने मिलजाना भी गनीमत है। अच्छा तो चलूं?

पंडितानी—नहीं, कुछ ठहर कर आना तब तक मैं कुछ तैयारी करलूं?

पंडित—(मुंह बनाकर) अरे! सूखे चने मिलेंगे और उसमें भी तैयारी!

(पंडितानी का मुसकराते हुए प्रस्थान)

पंडित—ब्राह्मणी है तो होशियार! अगर आज यह न होती तो मुझ सरीखे आलसी पुरुष तो भूखों पड़े पड़े मर जाते। यह मुझ से दिन रात कहती रहती है कुछ काम करो, कुछ काम करो, परन्तु मैं करूं क्या? कुछ उपाय भी तो नहीं सूझता किसका दरवाजा खटखटाऊं, किसकी चापलूसी करूं—दुनियां तो आजकल इतनी उलटी हो गई है कि उसमें हम सरीखे सीधे मनुष्यों की गुजर ही नहीं है। किसी ने क्या ही भला कहा है—

(गायन)

है गुजर संसार में सीधे मनुष्यों की नहीं।
पड़ गये हों फाक, खाने को मगर रोटी नहीं॥
इस नये युग में नयापन आज सबको चाहिये।
उस बिना हीरा—जवाहर आज कौड़ी भी नहीं॥
हो रहा है विश्व में संग्राम जीवन का हरे।
जो विजय पाता नहीं उसके बदन में की नहीं॥
शान्ति से जीवन बिताना यह असम्भव बात है।
यह सिधाई ही उन्हें धक्के दिलाती सब कहीं॥

(पंडित जी का प्रवेश)

धन्य है! धन्य है!! गाने में तो तानसे की नाक काट सके हो

पंडित—अरी मेरी हँसी करती है !

पंडितानी—हँसी. नहीं सच बात कहनी हूं। जितना परिश्रम गाने में करते हो उतना किसी काम में करो तो चार पैसे भी दिखने लगें—

पंडित—अरी तू तो दिन रात, काम नहीं करने की रटन ही लगाये रहती है। खड़ा रहूं तो काम नहीं करते, बैठूं तो काम नहीं करते, पुस्तक पढ़ूं, तो काम नहीं करते, जब देखो तब काम नहीं करते, खाता हूं, पीता हूं. पूजा करता हूं यह क्या कोई काम नहीं है ?

पंडितानी—वाह रे काम ! इसी काम में तो जिन्दगी निकल गई मगर भर पेट रोटी एक दिन भी न मिली।

पंडित—न मिली तो न सही शास्त्र तो पढ़ लिया।

पंडितानी—पढ़ कर कौनसी करतूती करली ? कितने मूर्खों को तार दिया कितना यश और पुण्य कमा लिया। किसी भी लोक का भला तो न होसका, इससे तो यही अच्छा था कि वह शास्त्रों का बोझा न ढोते।

पंडित—(जोरसे) अरी ! तो क्या शास्त्र पढ़ना बोझा ढोना है ?

पंडितानी—तो और क्या है ?

पंडित—इसेरे की ! वास्तव में तू तत्त्व चर्चा के योग्य नहीं है—सिद्धान्त की बात बिलकुल नहीं समझती।

पंडितानी—क्या करें तुम्हारे तत्त्व सिद्धान्त से दाल में बघार भी तो नहीं लगता। अब बातें न बनाओ, भीतर चलो सूखे चने तुम्हारी बाट देख रहे हैं।

पंडित—अच्छा चलो

(दोनों का प्रस्थान पंडितजी शान से जाते हैं)

(क्रमशः)

बाबू रामचन्द्र ।

(लेखक—श्रीयुत बाबू लाभोचंद जी जैन बी. ए.)

(१)

बाबू रामचंद्र बड़े अल्लड़ स्वभाव के हैं। अभी आप संसार के माया जाल से दूर हैं। ब्रह्मचर्य अवस्था में रहते हुए आप विद्याध्यन कर रहे हैं अभी आप गृहस्थी के चक्कर में नहीं पड़े। इसलिये आप को सब वस्तुएँ हरी ही हरी दिखाई देती हैं। बाल्यावस्था से लेकर अभी तक केवल आप को पुस्तकों के संसार में विचरना पड़ा, इसलिये सिवाय पन्ने पलटने के और बकवक करने के आप कोई सांसारिक कार्य नहीं कर सके। बस जो कुछ किताबों में लिखा है वही आप के ज्ञान का आधार है। इस निरे थोथे किताबी-ज्ञान ने आप को आलसी बना दिया है। जब कभी कोई कार्य सामने आ अड़ता तो आप झट किताबों में लिखे हुए विषयों की तरह खूब लंबी चौड़ी सोचने लगते और इसी सिद्धान्त पर पहुँचते कि उक्त कार्य बिलकुल सरल है और मुझ से बढ़कर सफलता पूर्वक इसे अन्य दूसरा पुरुष नहीं कर सका। परन्तु यदि कार्य करने का समय आता तो आप के हाथ पैर भी आगे न बढ़ते। सोचने लगते अजी इसमें क्या रक्खा है ? यह बात तो कोई बच्चा भी कर देगा ? मुझे क्या करना है ? संसार असार है, इसकी झंझटों से दूर रहना ही अच्छा है।

रामचंद्र के और भी भाई, बन्धुजन थे। बहुत दिनों तक तो इनकी इस कर्तव्य-शून्य जीवन चर्या पर किसी ने ध्यान न दिया। सोचा, कि अभी इसे पढ़ने दो जब गृहस्थी के जंजाल में फँसेगा तब सब कार्य ठीक करने लगेगा। परन्तु परिणाम उलटा ही हुआ, 'भरोसे की भैंस

पड़ा ध्यानी बाबू साहब ज्यों २ बड़े होते गये त्यों २ संसारी कामों से उदासीनता होने लगी। करना धरना कुछ नहीं सिर्फ किताबें पढ़ते रहना और अपने को बुद्धिमान बतलाने के लिये कोई भी विषय पर विवेचना करना। चाहे आप उसमें कुछ भी न जानते हों-परन्तु बातों की चतुराई से यह सिद्ध कर देना कि अमुक विषय के भी आप पारंगत विद्वान हैं। तात्पर्य यह कि इधर यह बकबक का मर्ज बढ़ता ही गया और उधर किसी ने मर्ज की परवाह भी न की।

(२)

दैवी प्रबल है, नहीं मालूम किस समय क्या हो जाय जिससे सारा बना बनाया कार्य चौपट हो जाय? अभी तक बाबू रामचंद्र आर्थिक कष्टों से मुक्त थे। सब भाई वगैरह खूब कमाते थे और हमारे बाबू साहब रुपया पानी की तरह बहाते रहे। कभी स्वप्न में भी आप ने यह सोचने का कष्ट न किया कि मेरी अवस्था क्या है? मैं कितना द्रव्य उपार्जन करता हूं और कितना व्यय करता हूं? आज कल की शिक्षा में यही तो तारीफ है कि पैसा गमाना चाहे जितना सीखलो परन्तु पैसा कमाना नहीं सिखाया जाता? संगति में पड़कर हमारे बाबू साहब ने पैसा खर्च करने के तो बहुत से साधन बना लिये थे परन्तु कमाने के संबंध में कुछ नहीं जानते थे। थे तो निरे बुद्ध, परन्तु जब कभी पैसा कमाने की चर्चा निकल पड़ती तो आप लाखों और करोड़ों के गीत अलापने लगते। मन में विचारते, कि रुपया कमाना क्या बड़ा बात है जहां मैंने पढ़ लिया कि फिर एक झटका में थैलियां की थैलियां उड़ेल दूंगा। परन्तु यह अवस्था बहुत दिनों तक न रही। गांधी जी के असहयोग ने सारे के सारे रोजगार चौपट कर दिये-खासकर विदेशी कपड़े बेचने वालों का तो पूंजी पसारा भी चौपट होने लगा। जब सारे ही देश में यह आर्थिक कष्ट हुआ तो फिर बाबू रामचंद जी के सह कुटुम्बियों को भी यह मुसीबत झेलना पड़ी। दूसरों की बात तो जैसी तैसी बाबू रामचंद्र को बड़ी आफत पड़ी। इधर रोजगार की मट्टी पलीत हुई तो उधर हमारे बाबू साहब की भी नानी मर गई। जहां महीने में चालीस पचास रुपया मौज के साथ उड़ाने को मिलते रहे वहां अब फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती। एक दम से सारी शान और शौकत पर पानी फिर गया।

(३)

आर्थिक कष्ट ने बाबू साहब के होश दुरुस्त कर दिये। अब उन्हें मालूम पड़ने लगा कि दुनियां में पैसा गमाने और कमाने में कितना अंतर है। परन्तु जिस प्रकार एक अड़ियल टट्टू को चाबुक मारने से वह और भी अड़ जाता है-ठीक यही दशा हमारे बाबू साहब की हुई। पहले तो खूब मौज उड़ाते रहे परन्तु जब देखा कि अब बिना हाथ पांव हिलाये काम नहीं चल सक्ता तब और भी दशा खराब होगई। आर्थिक कष्टों से मुक्त होने के कारण पहले इनके ऊपर कोई भार न था इसी लिये कम से कम ये अपना पढ़ना लिखना ठीक चलाये जाते थे। परन्तु अब पैसे की चोट ने इन्हें बेकाम कर दिया। किताब खोली कि बस मन में पैसा कमाने की चिन्ता उत्पन्न होगई। उठते, बैठते रात दिन बस, अब पैसा कमाना ही सूझने लगा। परन्तु परिश्रम और कार्य करना तो आपने सीखा ही न था। पैसा कमाने के सैकड़ों उपाय सोचते, पर कष्टों का सामना करने का साहस न होता। यदि भूले भटके दुकान पर जा बैठते तो आलस के वशीभूत होकर कमाना तो दूर रहा और उल्टे गदिया

पर पौढ़े रहते जिससे ग्राहक के आने की भी हिम्मत न होती ।

सारांश यह कि एक तरफ तो बाबू रामचंद्र पढ़ने लिखने से दूर भागने लगे और दूसरी तरफ पैसा कमाने की चिन्ता में रात दिन पिसने लगे । अच्छा होता कि दोनों में से कोई भी रास्ता उद्यमी होकर ग्रहण करते । परन्तु करें क्या परिश्रम करना तो सीखा ही न था । सिर्फ किताबों के पन्ने पलटे थे !

(४)

मनुष्य जो बुरी आदतें लड़कपन में सीख जाता है बड़े होने पर उनका त्याग करना बड़ा कठिन हो जाता है । कहा है कि आदत चली जाती पर ढलन नहीं जाती । ठीक यही हाल हमारे रामचंद्र बाबू का हुआ । लड़कपन की बुरी आदतें अब कष्टदायक प्रतीत होने लगीं । यह बात नहीं थी कि अब उन्हें अपनी गलतियों और दुर्गुणों का ज्ञान न होता हो परन्तु बेचारे करें क्या यदि चाहें भी तो उन्हें एकाएकी त्याग नहीं कर सकते ! जब बहुत ही कष्ट होता तो अपना सिर खुजला लिया करते । परन्तु थोड़ी देर के बाद फिर वही पुरानी बेढंगी चाल चलने लगते । रात्रि के समय जब बिस्तर पर लेटते तो अपनी शोचनीय अवस्था पर तरस आजाता । और कभी २ तो घंटों रोते रहते । परन्तु सुबह उठने पर फिर ज्यों के त्यों हो जाते और निरुद्यमी होकर आलस्य वश फालतू बातों में समय व्यतीत करते । ज्यों २ दिन गुजरते गये त्यों २ बाबू साहब को अपना जीवन असह्य मालूम होने लगा । रात दिन घर के बूढ़े से लेकर बच्चे तक सब ताना मारा करते । यहां तक कि देखा सुनी बाहर के लोग भी दिल्लगी उड़ाया करते । परन्तु ये सब बातें बाबू साहब के ऊपर कुछ भी रंग न लातीं बल्कि उलटे उनसे रामचंद्र को संसार असार प्रतीत होने लगता । सोचते कि ये सब घर और बाहर के लोग मेरे दुश्मन हैं । ये मेरा भला नहीं चाहते । यदि ये अपने होते तो कभी भी मुझ से बुरा भला न कहते । इन सब बातों से बाबू साहब के मन में एक तूफानसा उमड़ आता । कभी २ तो इन्हें रात भर नींद भी न आती । सोचते कि अकेले शरीर के लिये ये सब सांसारिक झगड़े बहुत बुरे हैं क्या धरा है पढ़ने में और क्या धरा है कमाने में ? एक दिन मर जायंगे और खाली हाथ चले जायंगे । चलो कहीं घर के बाहर भग चलें और आनंद के साथ पड़े २ जी न व्यतीत करें ?

(५)

जिस प्रकार एक श्वान हड्डी को चबाता हुआ अपने दांतों में से निकले हुए खून को आप ही चूसता है और आनन्द मनाता है उसी प्रकार एक आलसी पुरुष भी अपने बल और पुरुषार्थ को नष्ट करता हुआ समझता है कि बिना परिश्रम के आराम से जीवन व्यतीत करने ही में सुख है । मूढ़ यह नहीं समझता कि मैं स्वतः अपनी शक्ति का ह्रास कर रहा हूं और अपने हाथों अपने पांव में कुल्हाड़ी मार रहा हूं हमारे बाबू रामचंद्र जी का ठीक यही हाल था । आलसी होकर सिर्फ विचार ही विचार करते रहते परन्तु परिश्रम नहीं करना चाहते थे—आपकी अधोगति का मुख्य कारण यही था ।

(६)

संसार में मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है । हमारे बाबू साहब ने विचारा कि चलो घर से भाग चलने पर सब झंझटों का पिंड छूट जायगा । परन्तु ज्योंही आपने

घर छोड़ा कि आटे दाल का भाव मालूम पड़ गया । सोचा था, कहीं एकान्त स्थान में आकर जीवन व्यतीत करूंगा परन्तु ऐसे स्थान पर पहुंच कर भी संसारिक व्याधियों से मुक्ति न हुई । घरमें कम से कम दोनों जून खाने को तो मिल जाता था । परन्तु यहां वह भी नसीब नहीं । बिना हाथ हिलाये मुंह में कौर भी नहीं पहुंच सका । घर में तो सिर्फ अपने कर्तव्य करने की आवश्यकता थी. परन्तु बाहर तो एक न एक बलाय हमेशा लगी रहती है. आज भोजन का प्रबंध नहीं हुआ! कल कपड़े कहां से आवेंगे? इत्यादि बातों से रामचंद्र जी का दिमाग चक्कर में पड़ गया. कभी २ तो बाबू साहब ठग विद्या से पैसा कमाने की सोचते । परन्तु परिणामों की भयंकरता देख कर मन कंपायमान हो जाता । और बुरे रास्ते में उतरने का साहस भी न होता. आखिर जो होना था वही हुआ. जब देखा कि बिना जीवन सुधारे संसार में गुजर नहीं तब फिर झक मारकर अखाड़े में उतरना पड़ा. आवश्यकता एक ऐसी बात है कि उससे प्रेरित होकर मनुष्य को अपने मन के विपरीत भी कार्य करना पड़ता है. जब बाहर, सुख की तो कौन कहे रोटियों का भी ठिकाना न लगा, तब हमारे रामचंद्र बाबू को भी लाचार होकर हाथ पैर हिलाने पड़े. संसार का अनुभव करते ही उनका किताबी-ज्ञान नौ दो ग्यारह हो गया. अब उन्हें मालूम पड़ा कि संसार असार सिर्फ निरुद्यमी पुरुषों के लिये ही हुआ करता है. जो परिश्रमी और बुद्धिमान हैं उन्हें सदैव संसार कुछ न कुछ सारगर्भित प्रतीत होता है. सच्चे सुखी वे ही हैं जो अपने पैरों पर खड़े होकर अपनी तथा दूसरों की अवस्था का सुधार करते हैं. संसार में केवल वेही पुरुष जीवित रह सक्ते हैं जो कष्टों को सहन करते हुए इस सांसारिक रण-भूमि में विजयी होते हैं ।

(७)

आज हमारे बाबू रामचंद्र सच्चे रामचंद्र जी का अवतार प्रतीत होते हैं. जब से इन्होंने संसार का अनुभव प्राप्त किया तब से मानों इनकी काया पलट गई. अब न तो ये आलसी ही रहे और न पैसा-कमाऊ बने रहे—

घर आकर प्रथम तो इन्होंने परिश्रम करके अपना विद्याध्ययन पूर्ण किया और अब अपने सांसारिक कार्यों को बड़ी कुशलता पूर्वक संपादित करते हैं. इस कारण आप के हाथों में यश और लाभ दोनों विराजमान हैं. घर और बाहर सब जगह आपकी प्रतिष्ठा होती है । इस समय अनुभवी भी हैं और गृहस्थ भी हैं. तथा आप संसार का ज्ञान किताबों से नहीं बल्कि अनुभव से प्राप्त करते हैं. अतः अब रामचंद्र बाबू को संसार में सार ही सार दिखाई देता है ।

भगवान महावीर और बुद्धदेव ।

(गतांक से आगे)
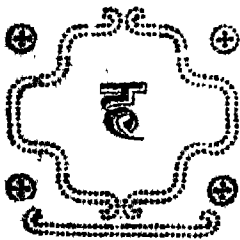
हम पहिले लिख आये हैं कि जैन धर्म के प्रचारक २४ तीर्थंकर हुये । अन्तिम प्रचारक भगवान् महावीर स्वामी थे, जो कि बुद्धदेव के समकालीन बतलाये जाते हैं । आगे हम इन्हीं दोनों महात्माओं की संक्षिप्त जीवनी का क्रमशः परिचय देकर अनन्तर दोनों की जीवनी के साथ साथ उनके मुख्य मुख्य सिद्धान्तों को तुलनात्मक दृष्टि से पेश करेंगे । आशा है कि पाठकगण प्रत्येक धार्मिक सत्ता का ख्याल

रखते हुये उस पर निष्पक्षरीति से विचार करेंगे।

यद्यपि हिन्दू समाज पर जैन धर्म का जितना असर पड़ा उतना बौद्ध धर्म का होना दुःसाध्य रहा। परन्तु भगवान् महावीरके मोक्ष चले जाने पर भारत में इसका कैसा प्रसार था? कौन राजा जैनी थे? और उन्होंने इस के लिये कहां और कितनी कोशिशें कीं? इस के प्रचार करने वाले जैनाचार्यों ने कहां कहां भ्रमण कर इस धर्म के बढ़ाने का प्रयत्न किया? इस तरह महावीर स्वामी के अनन्तर के इतिहास के बराबर न पाये जाने से इतिहास प्रेमी जैन धर्म के महत्व को न समझ सके। तथा जैन-धर्म के सम्बन्ध में लोगों से जैसा सुना, या थोड़ा बहुत यहां वहां से पाया भी तो उसी को तत्कालीन ऐतिहासिक अन्य घटनाओं से सम्बन्ध का मिलान न करके वर्तमान इतिहास में स्वतंत्र विचार रूप में परिणत कर दिया। जिससे जैन धर्म को बहुत भारी धक्का पहुंचा। दूसरे जैनियों के महान् महान् ग्रन्थों का नष्ट होना भी जैन धर्म के ह्रास का कारण हुआ। कहते हैं कुछ दिन पहले सनातन धर्मावलम्बी विद्वान् जैन ग्रंथों का छूना भी पाप समझते थे, और जहां तक ये जैन ग्रन्थ पाते थे उनके नष्ट करने की कोशिश करते। इसका कारण भी उनका इस धर्म से टक्कर खाकर परास्त होना मालूम पड़ता है, और यही कारण है कि जैन-धर्म भारतवर्ष का अब भी शिरमौर बना हुआ है।

जिस समय वैदिक धर्म अपना जोर पकड़ रहा था, जहां तहां होम यज्ञादि देखे जाते थे; उसी समय भगवान् महावीर ने संसार में जन्म ले जैन धर्म का लोगों पर प्रकाश डाला। श्री महावीर स्वामी का जन्म आधुनिक इतिहास खोजी ईसा से ५६६ वर्ष पूर्व निश्चित करते हैं, और बुद्ध देव को ईसा से ५५७ वर्ष पूर्व। अर्थात् भगवान् महावीर के ४२ वर्ष बाद लिखते हैं। जैन ग्रन्थों में भी महावीर स्वामी के सम्बन्ध में इसी तरह का उल्लेख पाया जाता है। त्रिलोकसार गाथा नं० ८५० में शक के ६०५ वर्ष और ५ माह पूर्व श्री महावीर स्वामी का निर्माण काल उल्लिखित है। जो कि ईस्वी से ५२७ वर्ष पूर्व होता है। क्योंकि शक और ईस्वी में ८० वर्ष का फरक है। भगवान् को आज से लेकर मोक्ष गये २४५० वर्ष हो गये हैं। और ईस्वी १९२४ तथा शक १८४५ है। इस तरह २४५० में से दोनों सम्वतों को घटाने पर ईसा से ५५७ तथा शक से ६०५ वर्ष ५ माह पूर्व निश्चित होता है।

भगवान महावीर का निर्वाण कार्तिक कृष्ण अमावस्या को हुआ था। और शक सम्वत् का प्रारंभ चैत्र कृष्ण अमावस्या से होता है; क्योंकि विक्रम में से ठीक १३५ निकालने पर शक संवत् आता है। इस तरह कार्तिक कृष्ण अमावस्या से चैत्र कृष्ण अमावास्या तक ५ माह होते हैं जो कि ६०५ वर्ष अधिक बताये जाते हैं। स्वामी जिनसेनाचार्य भी इस विषय में इसी तरह का उल्लेख करते हैं। कि:—

> वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पंचाग्रां मासपंचकं।
> मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत्॥

अर्थात् भगवान महावीर के मोक्ष चले जाने से ६०५ वर्ष ५ माह बाद शक राजा हुआ। कहीं कहीं शक से ४६१ वर्ष पूर्व भगवान का मोक्ष लिखा हुआ है। परन्तु इस विषय के साधक अभी तक कोई भी प्रबल प्रमाण नहीं पाये जाते। दूसरे अन्य संवतों से मिलान

करने पर विरोध भी आता है, अतः पाठकों को पूर्व संवत् ही निश्चित समझना चाहिये। अध्यापक जेकोबी तो ईसा से ४७७ पहिले भगवान का मोक्ष लिखते हैं। परन्तु ये उल्लेख उन्होंने कहां से किया इसका कोई निश्चय नहीं। संभव है उन्होंने बुद्धदेव के समकालीन समझ कर बुद्धदेव के काल के साथ साथ महावीर स्वामी के काल का भी उल्लेख कर दिया हो, क्यों कि बुद्धदेव का भी मृत्यु काल ४७७ वर्ष पूर्व बताया जाता है या उन्हें बुद्धदेव के स्थान में महावीर स्वामी का भ्रम हो गया हो?

भगवान महावीर संसार में ७२ वर्ष पर्यन्त रहे, इसलिये भगवान् का जन्म काल ईसा से ५६६ वर्ष पूर्व मालूम होता है। भगवान् का जन्म बिहार प्रान्त कुण्डनपुर में हुआ था। भगवान् की उत्पत्ति के ६ माह पूर्व आप की त्रिशलादेवी (प्रियकारिणी) को ऊषाकाल में १६ स्वप्न हुये। जो स्वप्न भगवान् के अतुल पराक्रम और धर्म वैभव को द्योतन करने वाले थे। जन्म के पहिले भगवान् के गृह-रत्न-वृष्टि भी होती थी। श्री महावीर स्वामी का जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सोमवार के दिन हुआ था, इस समय चन्द्रमा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र पर थे। आप इतने पुण्यात्मा थे कि देव समुदाय भी आप के जन्मोत्सव में शामिल हुआ। देव लोग आप को ऐरावत हाथी पर आरूढ़ कर सुमेरु गिरि पर ले गये, और वहां पर आप के तत्कालीन नवजात बालक के रहने पर भी देवों के अधिपति ने भक्ति वश १००८ कलशों से अभिषेक किया। जो भगवान् के अनन्त बल और धैर्य को प्रगट करता है। उसी समय से आप वीर इस नाम से प्रख्यात हुये। नाम संस्करण के दिन धर्म वृद्धि केन्द्र जान आप वर्द्धमान नाम से विभूषित किये गये। कहते हैं आप के शरीर में पुण्य शाली पुरुषोचित १००८ लक्षण पाये जाते थे। आप का शरीर इतना सुन्दर और आनन्दप्रद था कि देव लोग भी बालक रूपधारण कर आप के साथ शिशु क्रीड़ा किया करते थे। शैशव अवस्था को छोड़ जब भगवान् ने कुमारावस्था में पदार्पण किया, तो एक दिन भगवान् अन्य राजकुमारों के साथ बाल क्रीड़ा करते करते वट वृक्ष पर खेलने लगे। यह देख साहस की परीक्षा करने के लिये वहां के अधिष्ठाता देव ने भयंकर काले नाग का रूप धर वट वृक्ष को आ घेरा। इसका वट को घेरना था कि अन्य राजकुमार भय से त्रस्त हो वृक्ष से गिरने लगे। परन्तु भगवान् निर्भीक हो सर्प के फणपर से ही उतरे। देवतों ने राजकुमार की निर्भयता से संतुष्ट हो अपने असली रूप को प्रगट करके अभिषेक पूर्वक भगवान् की स्तुति और महावीर नाम से प्रख्याति की।

क्रमशः भगवान् कुमार अवस्था को छोड़ यौवन श्री से शोभित होने लगे। आप का विद्या गुरु कोई न था क्योंकि आप जन्म से ही विपुल ज्ञान के स्वामी थे। आपको परोक्ष पदार्थ के जानने की भी ताकत थी। आप संसार के ऐश्वर्य का भी उपभोग करके सदा उससे विरक्त रहते थे। उस समय आप के जीवन काल से मनुष्यों को इस जाति की शिक्षा मिलती थी। कि--ये संसार के प्राणी अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोग रहे हैं। यद्यपि असल में यह जीव रागादि विकारों से रहित है परन्तु राग द्वेष के वश से ये अपने को दुखी, सुखी, पुत्रवाला, स्त्रीवाला, धनी, मानी, ऐश्वर्यशाली और नीच समझता है। यद्यपि ये

मरता जीता नहीं है परन्तु अज्ञान वश माता पिता के शुक्र शोणित निर्मित और आहारादि से संवर्धित इस देह में आ जाने को अपनी उत्पत्ति और पूर्व शरीर के त्याग को अपना मरण समझता है। पूर्वोपार्जित पुण्य योग से धन, संपत्ति आदि का उपभोग करता हुआ अपने से भिन्न प्राणियों को निंद्य, नीच और दुखी समझता है। सिकन्दर बादशाह ने अपने राजत्व काल में संसार की संपत्ति लूट अपने खजाने भरे, बिचारे दीन, हीन प्राणियों पर अत्याचार किये। मगर परलोक में कौन से खजाने उसके साथ में गये। अन्त में उसे यही कहना पड़ा कि—

सिकंदर बादशाहत, सभी हाली मुहाली थी।
सभी था धन दौलत, मगर दो हाथ खाली थे।

भगवान् के युवा काल में राजा जितशत्रु ने अपनी पुत्री यशोदा का विवाह भगवान के साथ करना चाहा, परन्तु भगवान् पहिले से ही संसार से उदास रहते थे, इसलिये विवाह न किया। बाबू श्यामबिहारी मिश्र तथा शुकदेव बिहारी मिश्र अपने "भारतवर्ष का इतिहास" नाम की पुस्तक में लिखते हैं कि-"आप भी २८ वर्ष पर्यन्त गृही रहे और आप के एक पुत्री उत्पन्न हुई" उक्त महाशयों ने किस आधार पर भगवान का विवाह तथा पुत्री की उत्पत्ति लिखी सो मालूम नहीं पड़ती। ये केवल चरित्रवान् पुरुष के चरित्र में लाञ्छन लगाना मात्र है। जैन ग्रन्थों में कहीं भी इसका उल्लेख नहीं पाया जाता। न आज तक किसी इतिहास कारने अपने इतिहास में इस विषय का उल्लेख किया। भगवान् महावीर आजन्म ब्रह्मचारी रहे, न उन्होंने विवाह किया और न संतानोत्पत्ति हुई। विवाह और संतानोत्पत्ति का मानना भ्रम है। २८ वर्ष की अवस्था में वैराग्य का भी उल्लेख नहीं पाया जाता।

इस तरह गार्हस्थ्य जीवन में तीस वर्ष व्यतीत हो जाने पर शांत चित्त भगवान् को संसार से स्वयं वैराग्य हो गया। इस समय लौकान्तिक देवों ने (विशिष्ट देवों की संज्ञा) स्वामी महावीर को नमस्कार किया, और वैराग्य की प्रशंसा की। अनन्तर स्वर्गवासी देवों ने भगवान की पूजन की। वैराग्य होने पर अगहन कृष्णा दशमी को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र पर चद्रमा विद्यमान रहने पर वैराग्य से ७ पग आगे चलकर अनेक देवों से रची गई शिविका पर आरूढ़ हो भगवान् बन को चले गये। बन में समस्त वस्त्राभूषण उतार पंच-मुष्टी केश लौंच कर साधु हो गये। गार्हस्थ्य जीवन छोड़ साधु होते समय पहिले मनुष्य को यही दो प्रधान कार्य करना पड़ते हैं।

साधु हो भगवान् षष्टोपवास धारणकर ध्यान में मग्न हो गये। जिस ध्यान अवस्था में द्वैत अवस्था का प्रतिभास नहीं रहता, अर्थात् उपयोग बाह्य पदार्थों से हट आत्म-चिंतवन में संलग्न होता है। इसी को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। यह समाधि एक मर्तबा ज्यादह से ज्यादह ४८ मिनट के भीतर ही होती है। भगवान् ने सब से पहिले कूल्यपुर के राजा कूल के यहां पारणा की। इस तरह बाह्य और आभ्यंतर तपश्चर्या करते हुये भगवान् को कई वर्ष व्यतीत हो गये। बीच बीच में कई देवताओं ने उपसर्ग भी किये पर भगवान् ध्यान से विचलित न हुये। क्योंकि रणशूरमी पुरुष कभी रणसे पीठ नहीं फेरता है।

१२ वर्ष घोर तपश्चर्या करने से वैशाख शुक्ला दशमी को सायंकाल जृंभक ग्राम में ऋजुकूला नदी के तट पर शाल वृक्ष के नीचे चन्द्रमा के सूर्य पर रहने पर निर्विकल्प समाधि के बल से पूर्व संचित कर्मों का नाश कर देने से केवल ज्ञान (संपूर्ण ज्ञान) प्राप्त हुआ। देवों ने उत्सव मनाया, आपके लिये समव-शरण की रचना की गई। उसी समय इन्द्रभूत, (गौतम) अग्निभूत और वायुभूत अपने १५०० शिष्यों समेत भगवान् के समवशरण में आये, और जैनेश्वरी दीक्षा ले साधु हो गये ।

भगवान् की १२ सभायें थीं । जिनमें मनुष्य, देव और तिर्यञ्च सभी आकर धर्मोपदेश सुनते थे। भगवान का विहार ज्यादहतर मगधदेश (बिहार प्रान्त) में हुआ, अन्यत्र भी आपने विहार किया। विहार के समय आप भव्य जीवों के पुण्यप्रभाव से कल्याणमार्ग का उपदेश देते थे। आपके उपदेश का सारांश यह है, कि—जैन धर्म अनेकान्तात्मक है, अर्थात् अनेक धर्मात्मक पदार्थ का कथन जैन धर्म करता है । अनेक धर्मात्मक वस्तु-स्थिति नयाधीन है। जो प्रमाण से प्रकाशित पदार्थ के अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व धर्मों में किसी एक धर्म का सम्यक् रीति से विवेचन करता है, उसे नय कहते हैं। वह नय सामान्य और विशेष रीति से पदार्थ का कथन करता है। साकल्य से कथन करने वाले नय को द्रव्यार्थिक और विशेष रूप से कथन करने वाले नय को पर्यायार्थिक नय कहते हैं। ये दोनों नय परस्पर सापेक्ष हैं, किसी एक के द्वारा वस्तुस्थिति होना दुःसाध्य है। जिस तरह एक मनुष्य पुत्र की अपेक्षा पिता, पिता की अपेक्षा पुत्र, बहनोई की अपेक्षा साला और साले की अपेक्षा बहनोई कहलाता है। उसी तरह पदार्थ भी अनेक धर्म वाला है. जिस तरह उस मनुष्य में नाना धर्मों के रहने पर विरोध नहीं आता, क्योंकि वे नाना धर्म एकही दृष्टि को अवलंबन नहीं करते, उसी तरह एक पदार्थ को भी अनेक धर्मात्मक मानने में कोई दोष नहीं आता।

विशेष खुलाशा जैन ग्रंथों के अवलोकन से पाठक गण कर स्वयं सकते हैं। भगवान् ने केवल ज्ञान के बाद ३० वर्ष पर्यंत नाना देश देशान्तरों में परिभ्रमणकर धर्मोपदेश दिया अनन्तर ७२ वर्ष की अवस्था में भगवान् पावा पुर के वन से कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि के अन्त समय में (अमावस्या के प्रातः काल) चन्द्रमा के स्वाति नक्षत्र के ऊपर रहने पर मोक्ष गामी हुए । अनन्तर देवों ने आप के नख और केशों को एकत्र कर संस्कार किया, कारण आप का शरीर तप के माहात्म्य से धातु विकार रहित हो गया था। और अन्त में कपूर की तरह उड़ गया सिर्फ नख और केश अवशिष्ट रह गये थे। भगवान् के सम्बन्ध में स्मरण रखने योग्य समय निम्न प्रकार है:—

जन्म ईसा के ५९९ वर्ष पूर्व
वैराग्य ,, ,, ५६९ ,, ,,
ज्ञानलाभ ,, ,, ५५७ ,, ,,
मोक्षलाभ ,, ,, ५२७ ,, ,,

(अपूर्ण)

—फूलचन्द शास्त्री ।

——:०:——

विधवा-विलाप ।

(लेखक—ठाकुर लक्ष्मणसिंह, बी. ए., एल. एल. बी.,)

महा भयानक दृश्य ! क्रूरते,
बता कहां तेरी सीमा ।
ज़रा चिता को तेज़ जलादे,
यह प्रकाश तो है धीमा ॥ १

दीख पड़ें तेरी करतूतें,
हत्यारी न्यारी न्यारी ।
चिन्ता की जीवित आहुतियाँ,
आकृतियाँ, प्यारी प्यारी ॥ २

बिखरे बाल, भ ल है सूना,
इनको दूना लूटा है ।
पहिले जीवन-धन छूटा फिर
लाल हृदय का टूटा है ॥ ३

दुर्गतियों की प्रतिमाएँ हैं,
पति—हीना दीना सतियाँ ।
पास पड़ीं सुख की घड़ियों की,
स्मित—विहीन ये हैं स्मृतियाँ ॥ ४

हिन्द देवता के चरणों को,
शरण पड़ीं करुणावलियाँ ।
निरानन्द निश्चल नयनों से,
चढ़ा रहीं शोकांजलियाँ ॥ ५

"हम जीती जलती जाती हैं,
जीवन हुआ श्मशान हमें ।
अब तो सहा नहीं जाता है,
दे मैया, विष दान हमें ॥ ६

या अपना तिरशूल हूल दे,
मरने दे मर जाने दे ।
शुभ चिन्हों से रहित देह यह
इन गिद्धों को खाने दे ॥ ७

विधवाओं की देख दशा तू,
मन में कुछ करुणा लाना ।
मा, तुझ से है यही प्रार्थना,
अब न पुत्रियाँ उपजाना ॥ ८

यदि उपजें तो दूर फेंकना,
उनको दूध पिलाना मत ।
भूल प्यार मत करना उनको,
अपनी गोद खिलाना मत ॥ ९

फिर भी जीवें तो विवाह का,
उनको नाम सिखाना मत ।
ब्याह हुआ तो विधवा होंगी,
मा, यह दृश्य दिखाना मत" ॥ १०

हिन्द देवि, यों तेरी लाखों
ललनाएँ लाचार हुईं ।
कहता है संसार "अभागी,
हैं, दुनियाँ को भार हुईं ॥ ११

किसे हाय ! इनकी चिन्ता है,
डाँयन हैं मर जावें ये ।
कोई नहीं सहारा देता,
भले कलंक लगावें ये ॥ १२

चाहे अपने चीत्कारों से,
नभ-मंडल दहलावें ये ।
चाहे अपनी गर्म आह से,
जीवित जाति जलावें ये ॥ १३

जहां एक सीता, सावित्री,
दमयन्ती उद्धार करें ।
तहां हाय ! लाखों ललनाएँ,
विधवा हो बे मौत मरें ॥ १४*

* मुख पृष्ठ के चित्र को लक्ष्य में रख कर यह कविता पढ़िये ।—श्रीशारदा से उद्धृत ।

बालकों की नामकरण-प्रथा।

(अनु०—श्रीयुत पारसनाथ जैन)

सभ्य तथा असभ्य सभी जातियों में मनुष्य के जन्म से मृत्युकाल पर्यन्त, उनके जीवन से कितने ही संस्कार, क्रिया तथा उत्सव आदि आबद्ध हैं। यद्यपि ये विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार हैं तथापि एक देश में भी भिन्न भिन्न जातियों की क्रिया भिन्न भिन्न प्रथाओं के द्वारा अनुष्ठित होती है।

बङ्गाल में हिन्दू के घर में बालक के जन्म के छै दिन बाद एक प्रकार की देवी-पूजा, एक मास में षष्ठी पूजा अब भी अवस्था भेद के अनुसार अधिक धूमधाम के साथ होती है। किन्तु बालिकाओं के नामकरण के शुभ दिन आजकल वहाँ कोई विशेष क्रिया का भाव परिलक्षित नहीं होता। जो हो पश्चिम बङ्गाल में तो इसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। यही नामकरण की प्रथा अनेक देशों में अनेक प्रकार की प्रथाओं एवं कहीं कहीं उत्सव के साथ सम्पन्न होती है।

हम लोगों के समान चीन देश में लड़की का जन्म विशेष आनन्द की वस्तु नहीं होती। उनके दुर्भाग्य की सूचना प्रथमतः उनके नामकरण के उत्सव से परिलक्षित होती है। बालक के जन्म के एक मास पश्चात् उसका नामकरण किया जाता है। पुत्रोत्सव के समय आत्मीय गण अपने बन्धु बान्धवों को निमन्त्रण देकर एक भोज की व्यवस्था करते हैं। एक पुत्रवती नारी के द्वारा बच्चे का मूंड़ना कर दिया जाता है। हमारे देश में जिस प्रकार सधवा और पुत्रवती स्त्रियों के द्वारा इस प्रकार अनेक माङ्गलिक कार्य सम्पन्न होते हैं उसी प्रकार विधवा अथवा पुत्रहीना माता के द्वारा नहीं होते। चीन देश में भी इसी प्रकार पुत्रवती रमणी को ऐसे अनेक माङ्गलिक कार्यों को सम्पन्न करने के अधिकार हैं—विधवा एवं पुत्रहीना माता को नहीं। सिर मूंड़नेके पश्चात् बच्चे का एक नाम रख लिया जाता है। जिस प्रकार हम लोग पहले पहल निकलने वाले दाँत को दूध का दाँत कहते हैं उसी प्रकार चीनी बालक के प्रथम नाम को दूध का नाम कहते हैं। यह नाम बालक के जीवन पर्यन्त नहीं रहता। बालक जिस दिन से पाठशाला जाना प्रारम्भ करता है उसी दिन से उसका दूसरा नाम रक्खा जाता है। इसी प्रकार विवाह के शुभावसर पर बालिका का एक दूसरा नाम रक्खा जाता है। बालक के नामकरण के उत्सव में जो बन्धु-बान्धवगण अभिमंत्रित होते हैं उनमें से अधिकांश लोग बालक को किसी न किसी प्रकार का उपहार देते हैं। देश के किसी किसी विभाग में यह उपहार एक रौप्य निर्मित रिकाबी को देकर किया जाता है। इस पर सुन्दर अक्षरों में 'दीर्घ--जीवन, सम्मान और सुख' खुदा रहता है।

भारतवर्ष में बानिया नामक एक प्रकार की निकृष्ट श्रेणी ब्राह्मण व्यवसायी जातियों में नामकरण की एक विचित्र प्रथा देखी जाती है। बालक के जन्म के चार दिन पश्चात् यह उत्सव मनाया जाता है। इस कार्य के लिए कई पड़ोसी बालक आते हैं जो मेज के ऊपर एक बड़े कपड़े को बिछा कर चारों ओर से पकड़ लेते हैं। इसके पश्चात् पुरोहित कपड़े पर कोई अन्न छिड़क कर नवजात बालक को उस पर रख देता है। इसके पश्चात् कई पड़ोसी बालक मेज पर बिछे हुए कपड़े को उठाकर यहाँ वहाँ

हिलाते हैं। तत्पश्चात् बालक की बहिन आकर अपनी इच्छानुसार उस बालक का नामकरण करती है।

पिकार्ट (Bernard Picart) साहब ने अपने ग्रन्थ में इस विवरण को चित्र सहित लिपिबद्ध किया है। किन्तु यह जाति भारतवर्ष के किस विभाग में है और यह आजकल भी इस निष्ठुर प्रथा का अनुकरण करती है या नहीं—ज्ञात होता है, इसे अनेक लोग नहीं जानते।

अमेरिका के फ्लोरिडा नामक प्रदेश में बालक का नाम संस्कार किसी अभिन्न मित्र के नाम के साथ—जिसकी कोई मिल (mill) नहीं होती रख लिया जाता है। बालक का पिता अथवा पितृ-बन्धु यदि अपने किसी शत्रु का संहार कर चुकते हैं, या उनके द्वारा कोई गांव विध्वंश हो जाता है, अथवा किसी युद्ध में उन्हें अपनी वीरता से यश प्राप्त होता है तो बालक का ऐसा ही कोई अनुकूल अर्थ-बोधक वैशिष्ट्य पूर्ण नाम रख लिया जाता है।

लेप्लेण्ड देशमें अन्यान्य क्रिश्चियन जातियों के समान बालक का नामकरण धर्म-संस्कार अथवा दीक्षा के साथ ही हो जाता है। इन लोगों के उत्सव में अन्य लोगों की समता से कोई विशेषता होने पर भी इसमें एक नवीनता है। निर्दिष्ट दिन में बालक को एक चन्द्राकृति आवरण के भीतर बन्द कर दिया जाता है। लेप जाति मात्र ने गत शताब्दि के शेष भाग में क्रिश्चियन धर्म का अवलम्बन किया है। पूर्व संस्कारों को अब भी त्याग न सकने के कारण अथवा अन्य किसी बाधा के उपस्थित होने पर भी वे लोग अपने पूर्व पुरुषों के अनुसार ही बालकों का नामकरण करना अच्छा समझते हैं। ये लोग बालक को उक्त आवरण के बीच में रखकर तथा जल की एक रेखा खींचकर एक नाम रख लिया जाता है। उसका वह नाम यावज्जीवन उपयोग में लाया जायगा—बात ऐसी नहीं हैं। अनेक अवसरों पर किसी पीड़ा के आधिक्य मात्र से नाम में परिवर्तन कर दिया जाता है।

अटलांटिक महासमुद्र के तट पर काबी नामक एक जाति है। क्रिश्चियन लोगों के समान ये लोग अपने बालकों का नामकरण धर्म पिता और धर्म माता के साहाय्य से कर लेते हैं। ये लोग इसी समय गहने पहिनने के लिए कान, नाक और नीचे का ओंठ छेद देते हैं। यह निष्ठुर प्रथा आजकल न होने से भी नामकरण किया जा सकता है।

मेक्सिको देश में बालक को मन्दिर में ले जाना पड़ता है। यहाँ धर्म याजक बालक को लक्ष्य करके प्रथमतः कई उपदेश सूचक बातें कहता है। इसके पश्चात् कौटुम्बिक-स्थिति के अनुसार यदि बालक ऐश्वर्यवान् का पुत्र होता है तो उसके दाँये हाथ में तलवार और बाँये हाथ में ढाल दे दी जाती है। और यदि उसने कारीगर अथवा मिस्त्री के घर में जन्म लिया हो तो उसके हाथ में एक ऐसा औजार रख दिया जाता है जिससे वह अपने भविष्यत् जीवन को सुख मय बना सकता है। इसके पश्चात् बालक को वेदी के पास ले जाकर उसके शरीर से दो दो बूँद रक्त निकाल कर उस पर पानी सींच उस बालक को एकही बार एकदम पानी में डुबा दिया जाता है।

किसी किसी स्थान में बालक के जन्म के कुछ दिन पश्चात् धात्री उसे बस्टो के पास ले जाकर उसे उसमें तीन बार स्नान करा देती

है। प्रत्येक बार स्नान कराते समय तीन वर्ष के तीन बालक एक नाम ज़ोर से चिल्लाते हैं। अन्ततः उस बालक का वही नाम रख लिया जाता है। अमेरिका के पश्चिम तट पर म्याडिङ्गों नामक एक मुसलमान जाति में जन्म के आठ दिन पश्चात नामकरण कर दिया जाता है। ये लोग किसी आत्मीय के नाम में किसी घटनाका नाम संश्लिष्ट कर बालकों का नामकरण कर देते हैं। पहिले पहल बालक का मूडना कर दिया जाता है। उत्सव में अभिमंत्रित लोगों के लिये दही और एक शस्य का चूरण मिलाकर एक प्रकार की 'डिगा' नामक खाद्य वस्तु तैयार की जाती है। जो लोग यथेष्ट सामर्थ्यवान रहते हैं वे लोग छाग तथा मछली का मांस भी इसके साथ देते हैं। जिस रात्रि को वह भोज तैयार किया जाता है उसी रात्रि को दूसरे सप्ताह वह उपस्थित जन समुदाय को दिया जाता है। पुरोहित तथा मनोनीत उपस्थित लोग इस डिगा की प्राप्ति के लिए उच्च स्वर में प्रार्थना करते हैं। तत्पश्चात् बालक को गोद में लेकर उपस्थित जन मंडली के समक्ष ये लोग ईश्वर के समीप बालक का आशीर्वाद करते हैं। इसके अनन्तर बालक का पिता इन सब लोगों को उपर्युक्त खाद्यपदार्थ का एक एक लड्डू बना कर देता है। यह सामग्री विशेष कर कई प्रकार के रोग नष्ट करने की क्षमता रखती है। ऐसा इन लोगों का विश्वास है। अतएव ये लोग ढूँढ़ ढूँढ़ कर इसका अधिक अंश उस व्यक्ति को देते हैं जो मरण प्राय रहता है।

पारस देश में नामकरण के लिए एक शुभ दिन निर्दिष्ट किया जाता है। उस दिन बन्धु-बान्धव तथा मुल्ला लोगों को निमंत्रण दिया जाता है। सब लोगों के उपस्थित होने पर मिठाई बाँटी जाती है। इसके पश्चात् बालक के ऊपर कई प्रकार के इत्र आदि छिड़ककर तथा अच्छे कपड़े पहिना कर उसे एक मुल्ला घर की मेज पर लिटा देता है। इसी समय कागज के पाँच टुकड़ों पर पाँच नाम लिखकर गलीचे के किसी एक कोने के नीचे रख दिये जाते हैं। तत्पश्चात् कुरान के प्रथम अध्याय को पढ़ने के पश्चात् उन कागज़ों में से एक कागज़ निकाल लिया जाता है और एक मुल्ला उसमें लिखे हुए नाम को बालक के कान में कहता है साथ ही उस कागज को उसी कपड़ों पर रख देता है। इसी समय आत्मीय बन्धु गण अपने अपने सामर्थ्य के अनुसार बालक को उपहार देते हैं।

पारस देश के समान जापान में भी नामकरण के उत्सव के समय बालक को मेज पर पौढ़ा दिया जाता है। घर के बाजू में इसी दिन एक लम्बे बांस में कागज़ का, मछली के आकार का एक झण्डा लगा दिया जाता है। यह हवा से फूल उठता है और फहराने लगता है। जापानियों का विश्वास है कि यह बालक के लिए, अध्यवसाय, साहस और दीर्घजीवन का चिन्ह स्वरूप है। बालक के जन्म के एक सौ दिनों के पश्चात् यह उत्सव मनाया जाता है। इसी दिन 'शिन्टो' मन्दिर के याजक के घर बालक को लेजाना पड़ता है जहां पुरोहित बालक का एक नाम निश्चित कर देता है। इसके पश्चात् जिस दिन बालक की शुभकामना के लिए प्रार्थना की जाती है उसदिन उसे घर में उसकी इच्छानुसार घूमने की स्वतंत्रता दे दी जाती है। बालक की गति देख कर जापानी लोग उसके भविष्यत् जीवन के सम्बन्ध में कल्पना कर एक प्रकार का निर्णय कर लेते हैं इसी समय छोटे-मोटे देवता

बालक की गति मङ्गन करदे इसलिये सिर पर कागज की एक चँवर हिलाई जाती है। तत्पश्चात् बालक को दो पंखे उपहार-स्वरूप दिये जाते हैं।

पारसी लोगों में नामकरण के दिन किसी प्रकार का अनुष्ठान नहीं किया जाता। बालक के पिता माता के परामर्श से पुरोहित चार-पाँच लोगों के सामने एक नाम का उल्लेख कर देता है। इसके पश्चात् बालक को एक टब में स्नान कराकर धर्म मन्दिर में ले जाते हैं केवल इसलिए कि यदि उसे कोई भूत-प्रेत लगा हो तो मुक्त हो जाय। इसी समय बालक को कुछ क्षण के लिए अग्नि की आँच दिखाई जाती है।

अग्नि उपासक पार्सियों में अग्नि द्वारा परिशुद्धि के सम्बन्ध में एक अर्थ निहित रहता है। यह प्रथा कुछ समय पूर्व स्काटलैण्ड में भी दिखाई पड़ती थी। इनमें बालकों के नाम संस्कार के समय बालक एक कड़ाई पर अच्छे कपड़ों के ऊपर बैठा दिया जाता है। यहाँ उसे रोटी और पानी भी दिया जाता है। इसके बाद छत से लगी हुई साँकल में यह कड़ाई लटका कर अग्नि के ऊपर हिलाई जाती है और मन्त्रोच्चारण किया जाता है। बालक के जन्म के पश्चात् जितने दिनों तक यह उत्सव नहीं मनाया जाता तब तक माता केवल इसी चिन्ता से दुखी रहती है कि उसे कहीं कोई परी न उड़ा ले जाय।

इँग्लेण्ड में नामकरण का उत्सव गिरजाघर में आत्मीय लोगों के सामने होता है। *

विविध विषय।

१-बालकों का नाम-कर्म।

भिन्न २ देशों में बालकों के नामकरण की प्रथा भिन्न २ प्रकार से प्रचिलित है। यह बात इसी अंक में प्रकाशित एक लेख द्वारा प्रकट की गई है। अनेक जाति सम्पन्न भारतवर्ष में भी ये प्रथा अनेक रूप से प्रचिलित है। जैन शास्त्रानुसार षोड़श-संस्कारों में से यह सातवां संस्कार है। परन्तु समाज का ध्यान इस पर इतना नहीं है जितना कि होना चाहिये। हां, षोड़श संस्कारों में से एक उपनयन संस्कार का प्रचार कहीं २ हुआ है बल्कि परवार-सभा ने तो इसके प्रसार की आवश्यकता समझ इस का प्रस्ताव भी पास कर डाला है-और कहीं २ हो भी रहे हैं।

जैन समाज में नाम—करण की प्रथा प्रायः दाशियों पर निर्भर है। और कहीं २ तो इसका भद्दा प्रयोग किया जाता है। जो कि बालक को बड़ी उमर होने पर उसे स्वयं लज्जास्पद मालूम पड़ने लगता है। घसीटेलाल, खुखरलाल, कड़ोरेलाल, भोलानाथ, सरउलाल, भूरेलाल,] छैकोड़ी, भोंदूलाल, इत्यादि नाम ऐसे रक्खे जाते हैं कि जो निरर्थक और आत्मगौरव विहीन होते हैं। प्रायः स्त्रियों की अनभिज्ञता से ही ऐसे नामों की उत्पत्ति होती है। जिसके सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है।

आदि पुराण में पुत्रोत्पत्ति से १२ वें, १६ वें, २० वें, ३२ वें दिन (तथा एक वर्ष पर्यंत) नाम-करण के संस्कार करने की आज्ञा है। होम के लिये वेदी बनाकर कुण्डों के पूर्व दिशा में काष्ट की चौकी पर पुत्रसहित दम्पत्ति को बिठाकर मंगल कलश उनके साम्हने रक्खे जाते हैं। प्रथम यथा

* बँगला से अनुवादित।

विधि होम समाप्त हो चुकने पर मन्दिर तथा घर में बाजे बजवावे तथा आचार्य मंगल कलश को हाथ में लेकर पुण्याहवाचन पाठ को पढ़ता हुआ दम्पति और पुत्र को सिंचन करे।

पिता एक थाली में चांवल फैला कर उसमें प्रथम अपना और फिर पुत्र का जो कुछ नाम रखना हो सो लिखे किन्तु वह नाम देव वाचक-१००८ नामों में से ही कोई नाम होना चाहिये। आप्त मंत्रों सहित श्री जिनेन्द्रदेव से तीन बार प्रार्थना कर मंत्र पढ़ता हुआ पुत्र का नाम उच्च स्वर से कह कर भगवान को नमस्कार करे।

दूसरी विधि इस प्रकार की है। कि भगवान के १००८ नामों को उतने ही कागज पर लिख कर तथा दूसरे १००७ कोरे कागज के टुकड़े और १ टुकड़ा में -"नाम" इस प्रकार लिख कर दो अलग २ घड़ों में डाल देवे-पश्चात् एक अबोध बालक से दोनों घड़ों के टुकड़ा निकलवाता जावे। जिस "नाम" वाले कागज के टुकड़े के साथ भगवान के नाम वाला टुकड़ा मिल जावे। वही बालक का नाम समझा जावे +

समाज को अपने यहां के इस नामकरण संस्कार पर ध्यान देकर आगे हास्यास्पद और निरर्थक नामों की बढ़ती को रोकने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

२—पपौरा छात्रावास की अकाल मृत्यु।

एक "राधन्त" सज्जन ने "बन्धु" में प्रकाशनार्थ उक्त शीर्षक लेख भेजा है। उसमें आपने बतलाया है कि "इस बुंदेलखण्ड की जनता शिक्षा न मिलने के कारण सब से गिरी हुई अज्ञान दशा में है। शिक्षित बनाने के साधन शिक्षालयों की बहुत कमी है। केवल १००० गांव पीछे ६ स्कूल हैं उन स्कूलों में भी अध्यापकों के जिम्मे दो डाकखाने हैं जिसके कारण उनका अधिक समय उनकी देखरेख में व्यतीत हो जाता है। अब रही धार्मिक शिक्षा-सो उसके लिये टीकमगढ़ रियासत में पपोरा का ही एक ऐसा छात्रावास है कि जो कुछ दिनों से बालकों को धार्मिक शिक्षण देने का काम कर रहा है। परन्तु अब द्रव्याभाव के कारण सम्भव है कि जेष्ठ मास के अन्त तक सदा को अन्त हो जावे।"

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि बुंदेलखण्ड और विशेष कर टीकमगढ़ तथा उसके आसपास ही परवार, गोलापूरब, गोलालारे भाइयों का मुख्य अड्डा रहा है। और वहीं से किन्हीं कारणों को पाकर तितर बितर होगये हैं अब भी हम लोगों की संख्या सबसे अधिक वहीं पर है। वह स्थान हम लोगों की विलायत है। अतएव हम कहीं भी रहें अपने उस स्थान को नहीं भूल जाना चाहिये। यथार्थ में वहां पर शिक्षा का अत्यन्त अभाव है—इसी कारण उन की दशा बहुत शोचनीय है। अज्ञानान्धकार में पड़े रहने के कारण उन लोगों को अपने स्थान से बाहिर जाने में भी दुख मालूम पड़ता है। बल्कि कहावत प्रसिद्ध है–

"सन कातो औ कोदों खाव,
कयको पूत दक्खिने जाव"

इस कहावत से ही उनकी दशा का ज्ञान हो सकता है। इस छात्रावास के प्रधान संचालक पं. मोतीलालजी वर्णी हैं। जहां तक मुझे स्मरण है--उन्हों ने इस विषय का प्रश्न परवार सभा नागपुर की सब्जेक्ट कमेटी में उठाया था।

+ "षोडश संस्कार" नामक पुस्तक में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है जो "जिनवाणी प्रचारक कार्यालय पो० बा० नं० ६७४८ कलकत्ता से ॥) में मिलती है।

परन्तु कुछ ऐसे कारण आ गये थे-कि जिनके कारण परवार सभा ने उस पर उचित रूप से कार्यवाही नहीं की। उसी समय ऐसा भी मालूम हुआ था कि टीकमगढ़ के सज्जनों ने कुछ रुपया पपौरा पाठशाला को वार्षिक सहायता के रूप में दिया था। परन्तु वह रुपया टीकमगढ़ सरकार के खजाने में है और वहां से मिल नहीं रहा है। वह रुपया वहां कैसे पहुंचा और क्यों नहीं मिल रहा है? इस पर टीकमगढ़ की पंचायत को अवश्य ध्यान देना चाहिये।

यहाँ पर महाराजासाहब टीकमगढ से यह निवेदन करना भी अनुचित न होगा कि जब इस समय अन्य बडौदा, निजाम, ग्वालियर आदि रियासतें शिक्षा प्रचार के सम्बन्ध में भरसक प्रयत्न कर रहीं है तब कहीं आपके यहां इसका प्रयत्न न होना बड़े भारी दुख और लाच्छन की बात है।

पपौरा आपकी रियासत में है बल्कि आपके पूर्वजों ने बिना धार्मिक भेदभाव के वहां रथोत्सव भी कराये हैं। अतः इस कीर्ति कौमुदी को स्थिर बनाये रखने के लिये—अपनी प्रजा को शिक्षित बनाने के लिये क्या आप का कर्तव्य वहां की पाठशाला को उचित रूप से चलने देना नहीं है?

मैं यहां पर समग्र जैन समाज का ध्यान भी आकर्षित करना उचित समझता हूं-जो कि आजकल सुधार के लिये सब से आगे बढ़ने को लालायित हो रहो है। किन्तु उसके कार्य सच्ची बढ़ती के परिचायक नहीं हो सके। आवश्यका इस समय इस बात की है कि वह शिक्षा का प्रश्न सब से पहिले हाथ में ले, इसके बिना उसके सारे प्रयास निष्फल और निकम्मे हैं। समाज की इस समय चलती हुई संस्थाओं से अब सन्तोष नहीं हो सकता। हम को इन की संख्या अधिकाधिक बढ़ाना होगी और केवल इस प्रकार की संस्थाओं की संख्या बढ़ाने से भी लाभ नहीं होगा जो हमारे उद्देश्य-जीवन को सफल बनाने के लिये सार्थक नहीं हो सकीं।

हमारी संस्थाओं में एक नहीं अनेक रोग हैं—हमारी आवश्यकाएं भी अधिक हैं—जिन का प्रकाश इस छोटे से नोट में नहीं किन्तु पृथक लेख द्वारा किया जायगा। परन्तु यहां पर हमें केवल इतना ही कहना है कि पपौरा छात्रावास (पाठशाला) की इस शोचनीय दशा पर समाज को अवश्य ध्यान देकर उसका सुधार करना चाहिये। उस को स्थाई और सुचारुरूप से चलाने की अत्यन्त आवश्यका है। वह स्थान अच्छा है। समाज की संख्या अधिक है-और अधिक है वहीं पर अज्ञान का साम्राज्य। अतः शिक्षितों को सुधारने की अपेक्षा यदि इनकी ओर आप का ध्यान गया तो थोड़े से प्रयत्न और व्यय में लाभ की भी अधिक आशा है।

शिक्षा मन्दिर जबलपुर ने अपनी नियमावली में बुंदेलखण्ड की शिक्षा संस्थाओं को सम्बद्ध करने का भी एक नियम रक्खा है। अतः उस के कार्यकर्तागण तथा मंत्री श्रीयुत बाबू कन्छेदीलालजी भी इस प्रश्न को हल करने में पूर्ण प्रयत्न करेंगे। टीकमगढ़ नरेश तथा वहां की पंचायत से लिखा पढ़ी करके यदि सर्वत्र को एक समयानकूल—आवश्यक संस्था वहां स्थापित हो गई तो समाज का सबसे बड़ा कल्याण हो जावेगा।

३-सागर का पत्र ।

सागर से श्रीयुत मास्टर पूरनचन्द्र जो मानकचौकवालों, ने परवार-बन्धु के सम्बध में एक विस्तृत पत्र ता: १७ २-२३ को भेजा था। पढ़ने से मालूम होता है कि वह बड़ी गम्भीरता और हृदय पर चोट लगी हुई लेखनी से लिखा गया है। सागर जिलावालों को आपका परिचय देने को आवश्यकता नहीं है क्योंकि मानकचौक के प्रसिद्ध रहीस और मालगुजार श्रीयुत चौधरी हुकमचंद कन्हैयालाल जी से प्रायः सभी परिचित होंगे। आप उन्हीं वयो वृद्ध चोधरी हुकमचद जो के सुपुत्र हैं। आप बी. ए. के छात्र रह चुके हैं और कुछ दिनों अंग्रेजी मिडिल स्कूल सागर में भी मास्टरी करने के पश्चात् आजकल निजो दूकानमें काम करते हैं।

आप ने लिखा है कि......"अभी तक (परवार, गोलापूर्व, गोलालारे) में सिवाय बेटी व्यवहार के और कोई भी अन्तर नहीं है। अब हमारा खाना, पीना, पूजन, भजन इत्यादि सब एक हैं तो फिर यह (परवार-गोलापूरब आदि) भेद भाव करने की क्या आवश्यकता है? आप सब जैनियों को छोड़कर एक परवारों की उन्नति तथा उद्धार कैसे कर सके हैं सो हमारी समझ में नहीं आता! इसलिये यदि आप परवार-बन्धु के बदले मेरी समझ में उसका नाम "जैन-बन्धु" या "दिगम्बरजैन बन्धु" रखते--तो क्या ही अच्छा होता। ऐसे नाम से समाज में कोई जुदाई नहीं पाई जाती और बन्धु सारी जैन जाति का सच्चा बन्धु बन जाता"।

पत्र का नाम जाति-बोधक रखने से भेद बुद्धि और परस्पर जातियों में ईर्षा उत्पन्न हो गई या हो जाती है यह भाव भी आपके पत्र के एक अंश में है।

विचार करने से यह बात स्पष्ट समझ में आ जाती है कि हाथ, पांव, आंखें, कान, नाक इत्यादि अंगों का समुदाय ही शरीर है। अतएव प्रत्येक अंग की पुष्टि करने से ही सर्वांग बलिष्ट हो सकेगा। और प्रत्येक अंगों को बलिष्ट बनाते समय एक दूसरे से विरोध होने का भी कोई कारण प्रतीत नहीं होता है। इसी प्रकार अनेक जातियों के समुदाय से बनी हुई जैन जाति का सुधार तथा उन्नति भी उन प्रत्येक जातियों-अंगों को अपनी २ कमजोरी दूर करने का सरल उपाय जातीय पत्र तथा सभाओं आदि की स्थापना है। यदि इसके विरुद्ध कोई पत्र तथा सभा की स्थापना होती है तो वह अवश्य उन्नति के उद्देश्य की घोतक हो सकती है। परन्तु इस उद्देश्य को साधक कोई संस्था या सभा, पत्र आदि की उत्पत्ति अभी कहीं नहीं दिखाई देती है।

परवार-बन्धु का नाम एक जाति बोधक होने पर भी यदि आप उसके आदि से अन्त तक के लेखों को उठाकर पढ़ेंगे तो आप को यह भिन्नता रंच मात्र भी दिखाई नहीं देगी। उसके लेखक तथा ग्राहक अभी २ केवल चार मास में जैन जाति की सभी जातियों के ओर जैनेतर भी हुए हैं। फिर भी यदि उसके नाम परिवर्तन में विस्तृत क्षेत्र तथा उद्देश्य के प्रचार में अधिक सहायता मिलती है तो मैं समझता हूं कि प्रबन्धकारिणी कमेटी का भी इसमें कोई विरोध नहीं होगा।

आगे चलकर आप ने लिखा है कि .... "एक तरफ तो संस्कृत शालाओं पर शालाएं खुल रही हैं और पढ़ों को पढ़ा बनाने की निष्फल कोशिश की जा रही है। रुपया पानी की तरह खर्च किया जा रहा है। दूसरी तरफ बेचारे

गरीब हीन-दीन-भोले-भाले ग्रामीण देहाती बच्चे निरक्षर पशु के पशु ही बने रहते हैं। सच पूछो तो जैन समाज की अधिक जन संख्या देहात ही में रहती है फिर भला बिना इनके उद्धार के जैन धर्म का कैसे उद्धार हो सका है?.........ये गरीब भाई हमारी दया के सच्चे पात्र हैं और इनको साक्षर करना हमारा पहिला धर्म होना चाहिये। हम रथों इत्यादि में पानी की तरह रुपया खर्च कर देते हैं। परन्तु समाज चाहे रसातल को चली जावे इनकी कुछ परवाह नहीं करते।.........आजकल हिन्दुस्थान की सब कौमें राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेकर अपना कर्तव्य अदा कर रही हैं। परन्तु जैन समाज गाढ़ निन्द्रा के वशीभूत हो रही है। और इसका नतीजा यह है कि सारे मुल्क की निगाहों में गिरी हुई हो गई है। और लोग इन्हें नफरत की निगाहों से देखने लगे हैं। इसका असर उनके जीवन पर भी बहुत बुरा हुआ है। उनमें न तो जाति प्रेम न बन्धु प्रेम; न देश भक्ति, न धर्म भक्ति शेष दिखाई देती है। कारण स्वार्थत्याग बिना ये गुण आ नहीं सकते और हमारी समाज स्वार्थ की मूर्ति बन रही है! क्या हमारे नेताओं और लीडरों को इस ओर ध्यान देना आवश्यक नहीं है? समाज को सब कौमों के साथ चलाना तथा देश के साथ रखकर उसकी कीर्ति उज्वल रखना उनका धर्म नहीं है? आप देख रहे हैं कि हिन्दू लोग कैसा संगठन का तान ताने हैं। और करके ही रहेंगे।' पर हमारी समाज के नेता तो जबरदस्त निद्रा में खुर्राटे मार रहे हैं। इसका नतीजा यह है कि जब कोई झगड़ा होता है तो सब से पहिले, जैनी उनका शिकार बनते हैं और अपनी इज्जत-अपनी स्त्रियों की इज्जत, अपना सर्वस्व-सम्पत्ति आदि लुटाकर मुंह ताकते रह जाते हैं। अधिक क्या लिखूं--जो आज हमारी दशा है वह सिवाय हमारे दूसरी सब कौमें और सब मुल्क जानता है। हम तो आज तक सिर्फ एक बूढ़े की ही शादी बन्द करने की उलझन में पड़े हैं। हमारी सभाओं में—कमेटियों में—समाज में इसी के रेज्यूलेशन (प्रस्ताव) पास होते दिखाई देते हैं। हमारे पत्रों में-अखबारों में बूढ़े के विवाह की बहार है! अफसोस!!.........और हमारी समाज के लोग जो आज कल विदेशी भाइयों के सच्चे कपूत पूत बन कर हमारे देश की उन्नति में भारी बाधक हो रहे हैं उन्हें अपने देश के कट्टर भक्त और मातृभूमि के सच्चे सपूत बनावेंगे। मेरी प्रभु से यही प्रार्थना है कि आप को ऐसी बुद्धि, साहस, और शक्ति देवे ताकि निर्भयता से अपनी समाज को सुमार्ग पर लावें। अन्त में नम्रतापूर्वक आप से क्षमा प्रार्थी हूं।......"आशा है कि आप हमारे कटु शब्दों को क्षमा करेंगे"।

आप ने इस पत्र में जिन २ बातों पर प्रकाश डाला है वह समाज का सच्चा दिग्दर्शन है। यदि समाज के कम से कम लिखे पढ़े-साक्षर लोग इन बातों पर विचार करके किसी सम्मिलित शक्ति से कार्य करना आरम्भ कर दें-तो कुछ ही समय में हमारी काया पलट हो सकती है। अन्यथा संसार में निर्बलों को नहीं बलवानों को स्थान है। कमजोर के लिये जबरजोर दबा देता है-हड़प जाता है। इस प्रकार संसार की निर्बल जातियां सदैव को इस संसार में विलीन हो गईं, और हो जाती हैं। अतएव यदि आप को अपना, अपनी जाति का, धर्म का कुछ गौरव है, उन्हें बनाये रखना है, तो कर्मक्षेत्र में उतर कर संसार की अन्य जातियों के मुकाबिले युद्ध करके विजय प्राप्त करो-तभी कल्याण होगा।

—निर्भीक हृदय।

विनोदलीला

१—कलकत्ते में एक बी. ए. पास मुसलमान को ३०) रु. माहवार की नौकरी भी न मिली। यही सब आगम सोच कर तो हमारे बुजुर्ग कह गये हैं कि "पढ़ें लिखें कछू न होय, हल जोतें कुठिया भर होय।"

२—हमारी वर्तमान अंग्रेजी शिक्षा भी कितनी अच्छी है कि सिवाय गमाने के कमाने का तो नामोनिशान भी नहीं। ज्यों २ आप पढ़ते जाइये त्यों २ आप को खर्च करने के नये २ साधन मिलते जांयगे। अंग्रेज़ों का यह समझना बिलकुल ठीक है-कि जब तक गमाना न सीखा जावे, तब तक कमाना नहीं आसक्ता। "घर फूंक तमाशा देख" का कैसा उत्तम साधन है।

३—हमारे यहां स्त्रियों की शिक्षाप्रणाली ठीक नहीं-भला कहो तो, पढ़ने लिखने से उन्हें क्या लाभ? उनके भाग्य में तो चक्की से सिर फोड़ना बदा है। पर यूरुपके लोग बड़े बुद्धिमान् हैं। देखो न, वहां स्त्रियां पढ़ लिखकर बहुत सी चीजें पैदा करना सोख जाती हैं। जैसे पैसे पैदा करना, लड़के पैदा करना, पति पैदा करना इत्यादि।

४—लोग कहते हैं कि हमारे बुजुर्गों ने कुछ नहीं पढ़ा, इसलिये वे मूर्ख हैं। हम कहते हैं कि यदि वे पढ़े लिखे होते तो फिर पैसा भी इकट्ठा न कर सके। देखो न, बड़े २ पंडित लोग इन्हीं मूर्खों के पास भीख मांगने आते हैं। "टका माता, टका पिता, टका टक टकायते।"

५—हमारे यहां लड़की पैदा होते ही घर भर की नानी मर जाती है। और लड़के के जन्म में मुहरें लुटाई जाती हैं। पूछो यह क्यों? यदि पैसे का सवाल है तो हमारे कन्या बेचने वाले अच्छे—जो लड़की होने पर खुशी मनाते हैं। सच तो यह है कि लड़कियां पैदा न हों तो लड़के कहां से आवें?

६—लोग कहेंगे कि लड़के गरीबों के यहां पैदा हों और लड़कियां श्रीमानों के यहां। भगवान, ऐसा कभी न हो! बड़े घर की बहू बेटियों का बड़ा ठाठ होना है। बेचारा गरीब ससुर बहू की खरी खोटी सुनते २ बे मौत का मर जायगा।

७—हम कहते हैं कि लड़कियां गरीब के घर में पैदा हों और लड़के श्रीमानों के यहां। परन्तु एक शर्त हो कि शादी के बाद लड़के को लड़की के पिता के यहां रहना पड़े। तब फिर श्रीमानों को आटा दाल का भाव मालूम पड़े। अच्छा हो कि समाज-सुधार के लिये परवार-सभा इस प्रस्ताव को तुरंत पास कर डाले।

८—समाज में विधवाओं का प्रश्न तो हल होने ही न पाया कि रंडुओं ने भी अपना अलाप छेड़ दिया। नागपुरके एक रसिक महाशय चाहते हैं। कि रंडुओं के विवाह-प्रबंध के लिये संगठन किया जाय और परवार-सभा में प्रस्ताव पास कराया जाय, साथ ही साथ प्रतिष्ठित लोग इस कार्य को हाथ में ले लेवें। मेरी राय यह है कि एक रंडुआ-आश्रम खोला जाय जहां पर ये लोग अपना शेष वैधव्य-जीवन व्यतीत कर सकें।

९—यदि कहीं रंडुओं ने जोर पकड़ा तो समाज में बड़ी खलबली मच जायगी। अच्छा हो कि परवार-सभा एक प्रस्ताव पास कर दे कि विधवाओं के समान रंडुओं का भी पुनर्विवाह नहीं किया जाय। कम से कम इससे विधवाओं को तो संतोष होगा-कि पुरुषों के साथ भी वही नियम लागू है जो स्त्रियों के साथ।

१०—हमारे यहां लड़कियां जब छोटी रहती हैं तो स्त्रियां उसे छोटी २ बातों में "अरी रांड़, मरे जा, रांड़ होजाय" कहा करती हैं। परंतु दुर्भाग्य वश यदि विवाह होने के बाद वह रांड़ होजाती है तो फिर फूट २ कर रोती हैं। स्त्रियां कितनी बुद्धिमान हैं कि पहले तो वरदान मांगती हैं लड़की के रांड़ होने का-और यदि ऐसा हो गया तो फिर लड़की के भाग्य पर फूट २ कर रोती हैं।

११—हमारे यहां मातायें भी कितनी बुद्धिमान होती हैं कि पहले तो बहू का मुख देखने के लिये लड़कों को जबरदस्ती बछिया का ताऊ बना देती हैं। परन्तु जब घर में बहुयें आकर रहने लगती हैं तो फिर कोई २ अपने दुर्व्यवहार से अपने भाग्य पर फूट २कर रोती हैं कि "ऐसी डायनें कहां से घर में आईं"

"जो जस करहिं, सो तस फल चाखा"।

१२—इस विज्ञान के जमाने में भी हमारे पण्डित लोग मोक्ष २ चिल्लाया करते हैं। परन्तु आखिरकार उन्हें भी सेठ साहूकारों के दरवाजे आरजू मिन्नतें करना पड़ती हैं-तब कहीं उनका उदर पोषण होता है। पंडित जी महराज! "भूखे भगत न होय गुपाला, जा लो अपनी कंठी माला।"

१३—पंडित लोग बाबुओं पर बड़े क्रुद्ध हैं। क्योंकि ये लोग, जहां देखो तहां, राह में अड़ंगा बन जाते हैं। जहां पंडित जी मोक्ष की तरफ विद्यार्थियों को खींचते हैं, वहां ये बाबू लोग संसार में सार बतला कर उन्हें संसारिक सुमार्ग पर ले आते हैं। पंडित जी महराज! आप पंडित हैं-आप मोक्ष न गये तो बदनामी होगी क्योंकि आप के लिये संसार असार है। हमलोग तो गृहस्थ हैं-जब संसार के सुख भोग लेंगे तब आपका अनुकरण अवश्य करेंगे।

--लक्ष्मीचंद्र जैन बी. ए.।

सूक्ष्म-शब्द-प्रदर्शक यंत्र

दूरबीन यंत्र का नाम तो सब ने सुना होगा, और बहुतों ने तो दूर की हलकी वस्तु, को बड़ी देखने के लिये इसका प्रयोग भी किया होगा। किन्तु अब एक नया अविष्कार हुआ है। जिसके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म शब्दों को बड़ी आवाज में सुन सके हैं। हां, उनकी भाषा समझनेमें कठिनाई होगी। मक्खियां क्या सलाह करती हैं? चिड़ियां आपस में क्या २ बातें करती हैं? यह सब हम सुन सकेंगे। परन्तु इस से भी अधिक आश्चर्य की बात यह है- कि इसके द्वारा हम लोग अपने मस्तिष्क में होने वाले शब्दों को भी सुन सकेंगे।

वेतार के तार से रंगीन-चित्र भेजना।

एक ऐसा यंत्र बनाया गया है- जिस की सहायता से रेडियो द्वारा मामूली रंगीन तैल-चित्र या जल चित्र एक जगह से दूसरी जगह तार के अनुसार भेजे जा सकते हैं। योरोप में ही नहीं, समुद्र पार के देशों में भी इस यंत्र के द्वारा, वेतार के तार की सहायता से, तसवीरें अपने असली रंग में भेजी जा सकती हैं।

मोटरकार में दो नई बातें।

१—मोटरकार के आगे एक एंजिन रहता है। वह बहुत दूर चलते२ जब गरम हो जाता है तो उसमें ड्राइवर पानी भर देता है। किन्तु कुछ समय बाद वह पानी भी खौलने लगता है। इतनी गरमी का बेकार जाना ठीक नहीं—इस लिये

अमेरिका में एक ऐसा चूल्हा बनाया गया है जो मोटर के एंजिन में बैठा दिया जाता है इस पर शाक वगैरह सब उबाली जा सकी है।

२—अब मोटरों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है परन्तु जहां भीड़ अधिक होती है वहां मोटर-ड्राइवर को बड़े सम्हाल कर धीरे२ चलाना पड़ता है। किन्तु अब इस नवीन आविष्कार से मनुष्यों के दब कर मरने का डर मिट जायगा। अर्थात् अमेरिकावालों ने मोटर-कारों के साम्हने एक प्रकार की ऐसी मशीन बनाई है जो किसी मनुष्य या पदार्थ का धक्का लगतेही अपने दो हेंडिलों से (जो धक्का लगाने पर बाहिर निकल आते हे) साम्हने के मनुष्य को मोटर के साथ लगी हुई टाट की एक खाट पर खींच लेगी। इससे मनुष्य के शरीर को किसी भी दशा में कुछ क्षति न पहुंचेगी।

बे पहिए की गाड़ी।

बर्लिन (जर्मनी) के एक वैज्ञानिक ने बे पहिए की गाड़ी का आविष्कार किया है उस में एक ऐसा यंत्र लगाया गया है जो घोड़े के पैरों की तरह उठता और गिरता है। छोटे २ खंदकों को यह आसानी से पार कर सकी है। इस के चलाने को मैला तैल काम में लाया जाता है।

वायुयानों को बेकार करने का अदृश्य-जाल।

जर्मनी नई२ खोजों के लिये प्रसिद्ध है। अब उसने एक ऐसा अदृश्य जाल निर्माण किया है-कि जिस स्थान पर वह बिछा दिया जाता है उसके ऊपर से आने वाले सभी वायुयान बे काम हो जाते हैं। सन १९२३ जनवरी से अबतक उसने ३० फ्रेन्च वायुयानों को बे काम कर दिया है। फ्रान्स और इंग्लैंड वालों को अब चिन्ता का यह नवीन विषय हो गया है।

निर्भीक हृदय।
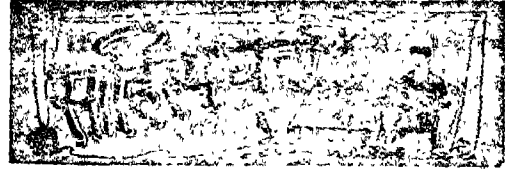
सर्वतन्त्र सिद्धान्त पदार्थ लक्षण संग्रह—

लेखक—भिक्षु गोरीशंकर। मूल्य ॥।=)। प्राप्ति स्थान—देवीमनभरी ग्रामपुट्ठी पोस्ट जमालपुर (हिसार)।

पुस्तक संस्कृतमें है। भारतीय दर्शन शास्त्रों में जो परिभाषिक शब्द आते हैं उनकी अकारादि क्रम से परिभाषा लिखी गयी है। इस प्रकार यह पुस्तक दर्शन का कोष बनगई है आकार भी डायरी बराबर छोटासा है। इसलिये जहाँ चाहे लेजाने में सुभीता है। कहीं कहीं कुछ शब्द, प्रेस की भूल से रहगये हैं जो कि यथा स्थान लिख दिये गये हैं। हां, एक बड़ी भारी कमी यह है कि जैन और बौद्ध दर्शनों के पारिभाषिक शब्द नहीं लिखे गये हैं। आज कल के संस्कृत विद्वान इन दोनों ही दर्शनों से प्रायः अपरिचित रहते हैं। यदि इन दर्शनों के पारिभाषिक शब्दों का समावेश होता तो पुस्तक बहुतही काम की होजाती। "त्वगिन्द्रिय मात्रग्राह्योगुणः स्पर्शः" यह सभी जानते हैं मगर "भयाणाम् धर्माणाम् (विषयेन्द्रिय विज्ञानानाम्) संगतिः स्पर्शः" यह बौद्धों की स्पर्श शब्द की व्याख्या बहुत ही थोड़े विद्वानों को मालूम है। इसलिये पुस्तक के नाम में सर्व शब्द खटकता है। पुस्तक का नाम भी लम्बा और पुनरुक्त शब्दों से भरा है। परिभाषाएँ भी कठिन भाषा में लिखी गई है। इसको समझने के लिये संस्कृतभाषा और दर्शन शास्त्र का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। अगर यह पुस्तक

हिन्दी में सरलता से लिखी जाती तो इसकी उपयोगिता न मालूम कितनी बढ़जाती। फिर भी पुस्तक काम की है। जो लोग सांख्य, वेदान्त न्याय, मीमांसा आदि दर्शन ग्रन्थों के पारिभाषिक शब्द एक ग्रन्थ में देखना चाहते हैं। वे इससे अच्छा लाभ उठा सके हैं। योग्य विद्वानों को यह पुस्तक पोस्टेज खर्च भेजने से मुफ्त मिलती है। मनभरादेवी का—जो कि एक वैश्य महिला हैं—संस्कृत विद्या प्रेम सराहनीय है। आपको भी संस्कृत का ज्ञान है।

मल्लिपुराण।

मूलकर्ता—श्रीमद्भट्टारक सकलकीर्ति जी। अनुवादक—पं० गजाधरलाल जी न्यायतीर्थ। प्रकाशक—दुलीचन्द पन्नालाल जी परवार जिनवाणी प्रचारक कार्यालय ६२ लोअर चितपुर रोड कलकत्ता। मूल्य ४)।

भट्टारक सकलकीर्ति जी का समय वि० सं० १५०० है। ये ईडर की गद्दी के पट्टाधीश थे। इनने अपने को भट्टारक पद्मनन्दि के शिष्य और मूल संघ के अनुयायी बतलाया है। इनने बहुत से जैन ग्रंथों की रचना की है। उनमें से एक रचना यह भी है। आपकी भाषा सरल है। मगर कहीं कहीं पद्यान्त में शब्द का आधा टुकड़ा आने से रचना में भद्दापन आगया है। पढ़ने में कठिनाई मालूम होने लगती है। जैसेः—

विहरन्ति मुनीशा ग-णेशः केवलिनः सदा ॥ १३ ॥
निःसंगस्य गुणःपर्ण--हतः भगवानेव हो ॥ ३८ ॥
पर्णा देवसतां एवा ९--नं स्वि:कीकरणं मिता ॥ ५३ ॥

इन श्लोकों के पढ़ने में "गणेशाः, महतः स्थापनं" इन शब्दों के बुरी तरह टुकड़े हो जाते हैं। ग्रन्थ में तीन साधारण चित्र भी दिये गये हैं। उनके नीचे जो श्लोक हैं-उनमें भी ऐसे ही दोष हैं। फिर भी रचना सरल है। प्रारम्भ में एक जगह मटंब शब्द आया है। जो कि बिल्कुल अप्रचलित है। अनुवादक जी ने भी इसका खुलासा नहीं किया है—मटंब का मटंब ही लिखदिया है। अनुवादक की भाषा अच्छी ही है। भाव समझाने के लिये स्वतन्त्रता से भी कुछ काम लिया है। फिर भी कहीं कहीं अर्थ क्लिष्ट ही बना रहा है। कहीं कहीं संस्कृत के शब्द भी आगये हैं। जैसे "जायमान एवं" इत्यादि। इन स्थानों में "उत्पन्न और" शब्दों का प्रयोग अच्छा होता—खैर, जैन पुराणों में यह एक विशेषता है कि वे कथा के साथ में तत्वज्ञान भी कराते जाते हैं। उनमें सप्ततत्व पुण्य, पाप आदि का अच्छा व्याख्यान रहता है। इस ग्रन्थ में भी इसकी कमी नहीं है। इसके पढ़ने से भगवान मल्लिनाथ का जीवन चरित तो मालुम होता ही है- मगर जैन धर्म से भी अच्छा परिचय हो जाता है। पुराने समय में जब कि लोगों को मनमानी पुस्तकों का मिलना बहुत कठिन था—एकही पुस्तक के द्वारा नाना विषयों का ज्ञान करादेना चतुरता थी। और कथाओं के साथ में यह उपदेश तो इतना अच्छा मालूम होने लगता है जैसे मीठे भोजन के साथ चटनी। पुस्तक स्वाध्याय प्रेमियों के काम की है। छपाई, सफाई आदि भी अच्छी है यह बड़े हर्ष की बात है कि जैन साहित्य दिन दिन प्रकाश में आरहा है। और हिन्दी भाषा भाषी भी उससे लाभ उठा सके हैं।

वीर—यह भा० दि० जैन परिषद का पाक्षिक पत्र है। इसके सम्पादक—जैन धर्म भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, उप सम्पादक-कामताप्रसाद जी तथा प्रकाशक-बाबू राजेन्द्र कुमार जी जैन बिजनौर हैं। वार्षिक मूल्य २॥)।

इस का उद्देश्य वही है जो परिषद् का है। हमारे सामहने ११ वां और १२ वां अंक है। ११ वा अंक महावीर जयन्ती के उपलक्ष्य में सचित्र निकाला गया है। इसमें २ रंगीन तथा ५ सादे चित्र हैं। लेख और कविताओं का संग्रह भी अच्छा हुवा है। "समाजोन्नति का रत्नत्रय" श्रीयुत बाबू ऋषभदास जी बी. ए. का लेख सारगर्भित और महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार 'देव द्रव्य का सदुपयोग' शीर्षक लेखमें श्री जयकुमार देवीदास जी चवरे वकील ने भी सार्वजनिक देव द्रव्य की जिम्मेदारी पर अच्छा प्रकाश डाला है। १२ में अंक में परिषद् के अधिवेशन की कार्यवाही है। हम इस पत्र की उन्नति हृदय से चाहते हैं। और पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे इस पत्र को मंगाकर अवश्य पढ़ें।

कवीन्द्र—यह कविता सम्बन्धी मासिक पत्र स्वामी नारायणानन्द सरस्वती के सम्पादकत्व में कानपुर से निकलने लगा है। सहायक सम्पादक अनूप—शर्मा बी. ए. हैं। वार्षिक मूल्य ३)।

इसके पहिले अंक में भूषण कवि का छत्रपति शिवाजी को बावनी सुनाते हुए वीररस द्योतक अच्छा रंगीन चित्र है। कविता सम्बन्धी लेख, समस्या पूर्तियं सभी पढ़ने योग्य हैं। साहित्य प्रेमियों-कवियों के लिये इस पत्र के प्रकाशित होने से प्रसन्न होना चाहिये यथार्थ में हिन्दी साहित्य में एक ऐसे पत्र की अत्यन्त आवश्यकता थी। सभी काव्य प्रेमियों को इसे अपनाना चाहिये।

जिनवाणी—सम्पादक-पं० पन्नालाल बाकली वाल। उपसम्पादक—हरिसत्य भट्टाचार्य एम. ए, बी. एल. और सुरेन्द्रनाथ श्रावक एम. बी.। मिलने का पता-मंत्री बंग विहार अहिंसा धर्म परिषद् विश्वकोष लेन पो० बागबाजार कलकत्ता। वार्षिक मूल्य ३)।

यह मासिक पत्र बंगला भाषा में अहिंसा धर्म के प्रचार की दृष्टि से निकाला गया है। बंगला जानने वालों को इसे मंगाकर अवश्य पढ़ना चाहिये। हिन्दी वालों को हिन्दी भाषा में भी पोछेसे कुछ सामग्री रक्खी गई है। इससे हिन्दी-भाषा-भाषी भी इसके ग्राहक बनकर लाभ उठा सकते हैं।

समाचार-संग्रह।

—इस वर्ष बाबू लक्ष्मीचन्द जी जबलपुर तथा बाबू प्यारे लाल जो सागर निवासी बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। हम आशा करते हैं कि आप अपना कुछ समय सामाजिक क्षेत्र में अवश्य व्यय करेंगे।

—वर्तमान वैज्ञानिकों का विश्वास है कि किसी निश्चित समय पर मंगल ग्रह, पृथ्वी के बहुत पास आजावेगा। अतएव यूरोप वालों ने करोड़ों का चन्दा इकट्ठा किया है। वे उसका विशेष अन्वेषण करने के लिये खुर्दबीन और दूरबीन से देखेंगे—और विद्युत शक्ति की लहरें वहां भेजने का प्रयत्न करेंगे।

—जैन संस्थाओंका इतिहास लिखने के लिये हमें उनकी प्रारम्भिक अवस्था से अब तक की रिपोर्टों की आवश्यका है। अतः प्रत्येक संस्थाओं के प्रबंधकों से नम्र निवेदन है कि वे "परवार—बन्धु, कार्यालय जबलपुर" के पते पर रिपोर्टें भेज कर हमें इस कार्य में सहायता देंगे। अन्य उन विद्वानों के भी हम आभारी होंगे जो हम को किसी ऐसी संस्था का विशेष परिचय दे सकेंगे जिनका कि उनको अनुभव है।

—बाट कोपार गांव में तपस्वी जैन साधु सुन्दरलाल जी ८१ दिन का उपवास करके भी अच्छी अवस्था में हैं।

—स्कालर्शिपका प्रबन्ध सुचारुरूपसे चलानेके लिये इस बातकी आवश्यकता प्रतीत हुई है, कि छात्रोंकी योग्यता, आर्थिक स्थिति आदिका पता लगाकर द्रव्य व्यय किया जावे—इस कारण अबतक जिन छात्रोंको स्काल० मिल रही है वे, और जो आगामी सहायता चाहते हैं दोनों प्रकार के छात्र अपनी २ दरख्वास्त निम्न लिखित पतेपर अपने पूर्ण विवरण के साथ लिखकर भेजें। क्योंकि अब शुरू साल १ ली जुलाई से उनकी छात्रवृत्ति शुरू की जावेगी। विवरण निम्न प्रकार रहे :—

नाम, पिता का नाम, उमर, निवासस्थान, कितनी और कितने समय में शिक्षा प्राप्त की है? कहां शिक्षा पाई? स्कालर्शिप कहां से और कितनी मिलती रही? अब क्या और कहां पढ़ना चाहते हो? आर्थिक स्थिति, स्काल० की तादाद।

पता:—

कस्तूरचन्द वकील,
मंत्री परवार सभा जबलपुर

—हमको पता लगा है कि सिंगई कोमलचन्द जी (कक्कड़) कामठी निवासी अपनी ४७ या ४८ सालकी उमर में तीसरी शादी करना चाहते हैं। आपके घरमें सिवा आपके और कोई मर्द भी नहीं है, हां, केवल ३-४ विधवाएं अवश्य हैं। ऐसी परिस्थिति में केवल विधवाओं की संख्या बढ़ाने को सिंगई जी का यह कार्य अत्यन्त नीचतम है। और उससे अधिक घृणित कार्य नागपुर के मुन्नालाल बलभद्र सिवनी वालों का है कि जो अपनी होनहार सुकुमार बालिका को बिल्ली की तरह ऊंट के गले में बांधना चाहते हैं। नागपुर और कामठी की पंचायत को इसपर लक्ष्य देना चाहिये। वीर मंडल दमोह को ऐसे स्थान में पहुंचकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहिये। शादी इसी जेष्ठमास में होने के समाचार हैं।

शोक !

श्रीयुत बाबू कस्तूरचंद जी वकील मंत्री परवार सभा के पिता जी का गत २९.५.२५ को अचानक कटनी में हैजा के प्रकोप से परलोकवास हो गया है। हम आप की इस अन्तर्वेदना में क्या कह के सान्त्वना दें! ईश्वर आपको और आपके कुटुम्बियों को इस दुःख के सहन करने का साहस देवे।

विवाह सम्बन्ध हो जाने की सूचना "परवार-बन्धु" कार्यालय, जबलपुर को अवश्य दीजियेगा।

वर का अठसका।

(१)

१—डुही, वासल्लगोत्र

२—मारी मूर
३—रकिया
४—मस्ते
५—छोला
६—छींगा
७—इंगा
८—इंडरी

जन्म सम्वत्—
असाढ़ सुदी ५ सं० १९६४
पता:—
दुलीचंद गंगा परवार
मु० जगदलपुर स्टेट वस्तर
ज़िला रायपुर।

वर का अठसका।

(२)

१—बड़ेमारग, गोहिलगोत्र

२—रकिया
३—दुगायल
४—माऊ
५—विग
६—डागोडिम
७—ओछल
८—डुही

जन्म सम्वत्—
चैत्र सुदी ० सं० १९५७
पता:—
चन्द्रभान मुनीम,
नाभिनंदन जैन पाठशाला
बीना इटावा (सागर)

वर का अठसका।

(३)

१—बोधीकुइम बांझल्लगोत्र

२—लांटामूरी
३—गादूमूरी
४—रामडिम मूरी
५—इंग मूरी
६—डेरिया मूरी
७—ओछल
८—बार मूरी

जन्म सम्वत्—
आश्विन सुदी ११ सं १९५७
पता:—
मास्टर कालूरामजी परवार
सुपरिन्टेन्डेण्ट
मा० पा० दि० जैन बोर्डिंग
रतलाम।

सांकेंभाई रामचन्द चौधरी को।

(४)

१—देदामूर वासल्ल गोत्र

२—रकिया
३—मिछला
४—गांगरे
५—सर्वछोला
६—उजया
७—डेरिया
८—विग

जन्म सम्वत्—
भादों सुदी ६ सं० १९५८
पता:—
बाबू कर्पूरचन्द परवार, रईस
चौधरी बाज़ार
कटक।

अठसका कन्या का।

(१)

१—बड़ेमारग, गोहिल्लगोत्र

२—रकिया
३—दुगायल,
४—माऊ
५—विग
६—डागोडिम
७—ओछल
८—डुही

पता:—
वही जो वर
नं० २ का है।

नोट—वर नं० १—राहतगढ़ (सागर) के रहने वाले हैं। १२ वर्ष से जगदल पुर में किराना और मनहारी की दुकान करते हैं। आमदनी अच्छी है। वर नं० २—अंग्रेजी मिडिल हाई स्कूल शिक्षा प्राप्त और आज कल मुनीमी का कार्य अच्छी योग्यता पूर्वक कर रहे हैं। वर नं० ३—आपको १५०) मासिक के प्राय आमदनी हो जाती है। अन्य बातों का पता इसी से चल जाता है, कि आप रतलाम जैन बोर्डिंग के सुपरि. हैं।

वर नं० ४—इनके सम्बन्ध में इस पते से पत्र व्यवहार करना चाहिये।

कन्या नं० १—बहुत सुयोग्य कक्षा ४ तक पढ़ी हुई और गृहस्थी के काम में भी निपुण है। इसलिये लड़का लिखा-पढ़ा योग्य चाहिये।

शिखर जी के मुकद्दमें का अन्तिम निर्णय ।

दिगाम्बरों और श्वेताम्बरों के शिखर जी वाले मुकद्दमें से समाज अच्छी तरह परिचित होगी—जिसमें कि कई वर्षों से लाखों रुप्या खर्च हो रहा था। प्रसन्नता की बात है, कि अब दिगाम्बरों की पक्ष में अच्छा और अन्तिम फैसला हो चुका है। फैसला इस प्रकार है कि "शिखर जी का पहाड़ देवस्थान है। नष्ट हुए चरण चिन्हों के अतिरिक्त श्वेताम्बरी किसी प्रकार की इमारतें पहाड़ पर नहीं बनवा सकते, चरण चिन्हों पर से केशर वगैरह हटा कर दिगाम्बरी प्रक्षाल कर सकते हैं।"

सी. पी. गवर्मेण्ट के प्रति:—

अभी इसी जून मास में सी. पी. कौंसिल के एक बोर्ड की बैठक होने वाली है। ऐसे अवसर पर हम बोर्ड का ध्यान इस ओर आकर्षित करना हमारा कर्त्तव्य समझते हैं, कि वह उच्च पदों (P. C. S.) की नियुक्ति का निर्णय करते समय जैन जाति की हक रक्षा का भी स्मरण रक्खेगी। क्योंकि इस प्रान्त में जैनियों की संख्या अधिक है। और योग्य विद्वानों की भी कमी नहीं है।

१ गत वर्ष श्रीयुत बाबू जमनाप्रसाद जी एम. ए. पुरातत्व विभाग में पास हुए है। और सन् १९२३ में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की परीक्षा में पास होने वाले छात्रों में से केवल एक आप ही थे। उस समय आप को १००) वार्षिक अन्वेषण कार्य के लिये (रिसर्च) स्कालर्शिप भी मिली थी। इसके साथ ही साथ आप उसी वर्ष एल. एल. बी. की परीक्षा में भी प्रथम नम्बर से उत्तीर्ण हुए थे।

२—आपने इन्डिया टेरिटोरियल फोर्स में रहकर फौजी शिक्षा भी प्राप्त की है। परन्तु समुद्रयात्रा का जातीय बन्धन होने के कारण आप इन्डियन सिविल सर्विस परीक्षा पास नहीं कर सके। इस समय आपकी अवस्था २३ वर्ष से कम है।

३—जैनियोंका पुरातन साहित्य उच्च और विस्तृत है। किंतु अभी अंधकार में पड़ा है। अतएव उसका प्रकाश एक जैन विद्वान् के उच्च पद पर रहने से अच्छी तरह हो सकता है। इसलिये हम आशा करते हैं, कि बोर्ड उच्च पदों की नियुक्ति करते समय इस बात का स्मरण अवश्य रक्खेगा।

—अभी २ मालूम हुआ है कि बाबू मुन्नालाल जी परवार भी आगरा कालेज से बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। आशा है कि आप के द्वारा भी बहुत कुछ सामाजिक कार्य होगा।

प्राप्ति-स्वीकार ।

श्री सत्तर्क सुधातरङ्गिणी जैन पाठशाला सागर

१ श्री कन्छेदीलाल हजारीलाल जी दाना — गेहूं १०) मन
२ ,, सेठ हुकुमचन्द्र जी सुहारी — ,, २॥) मन
३ ,, सि० गनपतराम जी-जलन्धर — ,, २॥) मन
४ ,, कन्हैयालाल हजारीलाल जी नरयावली ,, — २॥) मन
५ ,, चौ० कन्हैयालाल हुकुमचंद्र मानिकचौक ,, — ५) मन
६ ,, ,, भागचन्द जी गमोरिया — ,, २॥) मन
७ ,, जमींदार कुन्दनलाल जी बुढ़िया — ,, २॥) मन
८ ,, कन्हैयालाल सुखसिंह जी नरयावली — ,, २॥) मन
९ ,, मोदी धरमचन्द जी बरोदिया — ,, २॥) मन
१० ,, सि० सुखरलाल जी समाई — ,, २॥) मन
११ ,, सि० गुलाबचन्द्र जी पिडरुवा — ,, ५) मन
१२ ,, सि० परमानन्द जी बीना — ,, ५) मन
१३ ,, बजाज दयाचन्द जी रहली — ,, ५) मन
१४ ,, मास्टर मूलचन्द जी सागर — ,, २॥) मन
१५ ,, सि० गिरधारीलाल पल्टूरामजी सागर ,, — २॥) मन
१६ ,, वैसाखिया भोलानाथ जी गढ़ाकोटा — ,, ५) मन
१७ ,, सेठानी व जवाहिरलाल जी बरौदिया ,, — ७॥) मन
१८ ,, चौ० काशीराम जी परसोन — , ५) मन
१९ ,, सि० हजारीलाल जी महाराजपुर — ,, १९) मन
२० ,, कलरैया हीरालाल पन्नालाल जी सागर ,, — २॥) मन
२१ ,, सि० रामलाल मोहनलालजी पिठोरिया ,, — ५) मन
२२ ,, जमींदार सि० जवाहिरलाल दलपतपुर ,, — ५) मन
२३ ,, मलैयालाल जी गढ़ाकोटा — ,, ५) मन
२४ ,, सि० नन्दकिशोर जी शाहगढ — ,, ५) मन
२५ ,, डेवड़िया मुन्नूलाल जी शाहगढ़ — ,, २॥) मन
२६ ,, सेठ बहोरेलाल जी शाहगढ़ — ,, २॥) मन
२७ ,, सेठ हीरालाल जी ,, — ,, २॥) मन
२८ ,, सि० नन्हूंराम जी ,, — , २॥) मन
२९ ,, सेठ कन्हैयालाल जी , — ,, २॥) मन
३० ,, सि० हरदास पल्टूराम डेवड़िया शाहगढ़ ,, — २॥) मन
३१ , शाह पन्नालाल लालचन्द जी ,, — ,, २॥) मन
३२ ,, रुक्मणी बाई , — ,, २॥) मन
३३ , स० सि० नन्दलाल गनूलक्ष्मणसाह ,, — ,, २॥) मन
३४ ,, शाह मूलचन्द रामचन्द जी ,, — ,, २॥) मन
३५ ,, शाह रामलाल जी दलपतपुर ,, — २॥) मन
३६ ,, शाह किशोरीलाल जी , — ,, २॥) मन
३७ ,, शाह भूरेलाल छोटेलाल जी ,, — ,, ७॥) मन
३८ ,, सि० रामचरण हेमराज जी दलपतपुर — गेहूं २॥) मन
३९ ,, सि० तुलसीराम बालचन्द जी ,, — ,, २॥) मन
४० ,, डेवड़िया नाथूराम दरयादी लण्के ,, — ,, २॥) मन
४१ ,, शाह रज्जूलाल, रज्जूरतन, छोटेलाल, — ,, २॥) मन
४२ ,, मोदी कन्छेदीलाल, पूरणचन्द, लंपूलाल ,, — २॥) मन
४३ ,, लोहिया घासीराम जी — ,, ७॥) मन
४४ ,, शाह परमानन्द जी दामसा लपूलाल — ,, २॥) मन
४५ ,, शाह कन्हैयालाल जी — बंडा ५) मन
४६ ,, शाह जमुनाप्रसाद जी की धर्मपत्नी — ,, २॥) मन
४७ ,, चौ० दामोदरदास जी — बंडा ५) मन
४८ ,, चौ० दौलतराम रामलाल शिवलाल — ,, १०) मन
४९ ,, शाह रज्जीलाल रामलाल जी — ,, २॥) मन
५० ,, भायजी नन्हूंराम मुन्नालाल जी — ,, ५) मन
५१ ,, भायजी नाथूराम फूलचंद जी — ,, १॥) मन
५२ ,, डेवड़िया कन्छेदीलाल जी — करापुर ५) मन
५३ ,, शाह मूलचन्द नन्हाईलाल — ,, १।) मन
५४ ,, सि० मूलचंद कन्छेदीलाल मुरलीधर — ,, १) मन
५५ ,, शाह हल्कूलाल लक्ष्मीचन्द जी — करापुर १।) मन
५६ ,, शाह नाथूराम रज्जूलाल सागरवाले — ,, १।) मन
५७ ,, शाह हीरालाल बुद्धूलाल जी — ,, १।) मन
५८ ,, शाह तुलसीराम नाथूराम बड़ेभइया — ,, १॥) मन
५९ ,, सोहं खुमानीलाल गिरधारीलाल — ,, ॥) मन

कीमत ८३८) का गल्ला प्राप्त—२०९॥) मन

नोट—श्रीमान् पूज्यवर पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी के ता: ११-३-२४ से ३०-४-२४ तक के भ्रमण उपलक्ष्य में छात्रों को आहार दान के लिये अनाज देने वाले दातार महाशयों को कोटिशः धन्यवाद है। आशा है कि इसी तरह से सदैव ही संस्था को दान देकर अपनी उदारता का परिचय देते रहेंगे। एवं समाज के अन्य श्रीमानों को भी आप महानुभावों की इस दान-शीलता का अनुकरण करना चाहिये।

—मंत्री।

"हितकारिणी प्रेस, जबलपुर"

संरक्षक

१—श्रीमान श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी सिवनी
२—श्रीमान सिंगई पन्नालाल जी अमरावती.
३—श्रीमान बाबू कन्हैयालाल जी अमरावती.
४—श्रीमान ठाकुरदास टालचंद जी अमरावती.
५—श्रीमान स.सि.नत्थूमल जी साव जबलपुर.
६—श्रीमान बाबू कस्तूरचंदजी वकील जबलपुर
७—श्रीमान सिंगई कुवरसेन जी सिवनी
८—श्रीमान स सि. चौधरी दीपचंदजी सिवनी
९—श्रीमान फतेचंद हीपचंद जी नागपूर.
१०—श्रीमान सिंगई कोमलचंद जी कामठी.
११—श्रीमान गोपाललाल जी आर्वी
१२—श्रीमान पं० रामचन्द्रजी आर्वी.
१३—श्रीमान खेमचंद जी आर्वी.
१४—श्रीमान सरउलाल भब्बूलाल जी. सिवरा
१५—श्रीमान कन्हैयालाल जी डोंगरगढ़.
१६—श्रीमान सोनेलाल जी नवापारा.
१७—श्रीमान दुलीचंद जी चौरई छिंदवाड़ा
१८—श्रीमान मिट्ठनलाल जी छपारा.

सहायक

१—श्रीमान रामलाल जी साव सिवनी २५)
२—स० सि० लक्ष्मीचंद जी गढ़याना २५)

ग्राहकों को सूचना।

"परवार-बन्धु" दो बार अच्छी तरह जांच कर वहां से भेजा जाता है। जिन ग्राहकों को किसी मास का अंक आगामी मास की १५ ता: तक न मिले उन्हें पहिले अपने डाकघर से पूछना चाहिये। यदि पता न लगे, तो डाकघर का उत्तर हमारे पास भेज कर हमें सूचित करना चाहिये। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जावेगा। ग्राहकों को, पत्र व्यवहार के समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। जो कि पते की चिट पर लिखा रहता।

परवार-बन्धु का प्रथम अंक स्टाक में बिलकुल नहीं है। अत: पाठक गण मंगाने का कष्ट न करें। फाइल न बनाने वाले यदि पहला अंक हमें भेज सकें तो बड़ी कृपा होगी उनकी इच्छानुसार उसका मूल्य उन्हें दे दिया जावेगा।

विज्ञापन दाताओंके पत्रोंका उत्तर।

हमारे पास कई विज्ञापन दाताओंके पत्र आये हैं--उनमें उन्होंने ग्राहक संख्या और रेट के सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर मांगा है। अतएव हमारा उनसे केवल इतना निवेदन है कि यह पत्र किसी एकका नहीं किन्तु समाज का है-इसकी कोई भी बात गुप्त और संशयात्मक नहीं रक्खी जाती है। इसके ग्राहकों की संख्या थोड़ेही समय में सभी जैन पत्रों से अधिक होगई है। वह भी छिपा के नहीं रक्खी जाती--किंतु शुरू से ही प्रत्येक अंक में नाम सहित प्रकाशित की जा रही है। और पृथक भी रिपोर्ट में छपाई जावेगी। जिससे हमारी बातों का पता लग सकता है। सभा, विद्वानों, तीर्थस्थानों, व्यापारियों, पंचायतों, आदि की सेवा में भेजा जाता है। उदारदाताओं और संरक्षकों की सहायता से असमर्थों को मुफ्त में भी भेजा जाता है। जिसमें एक २ अंक सैकड़ों लोगों की दृष्टि में पहुंच जाता है।

छपाई का रेट लागत मात्र नीचे दिया गया है उसमें कुछ भी कमी नहीं होसकेगी--केवल एक वर्ष के विज्ञापन की छपाई पेशगी देने वालों को ᳣) रुपया कम कर दिया जावेगा। पीछे आये हुए विज्ञापन आगामी अंक में छापे जावेंगे।

इस समय विज्ञापन की दर.—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	८)	प्रति मास
आधा पृष्ठ या १ "	" ५)	"
चौथाई,, या आधा कालम	" ३)	"
अष्टमांश पृष्ठ या चौथाई.	" २)	"
कवरके चौथे पृष्ठ की	" १२)	"
" तीसरे "	" १०)	"
पाठ्य विषय के पहिले और पीछे की छपाई	९)	"

नोट:—(१) पूरी छपाई पेशगी ली जावेगी।
(२) एक कालम से कम विज्ञापन छपाने वाले को "बन्धु" बिना मूल्य नहीं भेजा जावेगा।
(३) नमूने की प्रति का मूल्य पांच आने।

पता:—
मास्टर छोटेलाल जैन
परवार-बन्धु, कार्यालय जबलपुर (सी. पी.)

परवार समाज के श्रीमानों से प्रार्थना।

आप को विदित होगा कि 'परवार-बन्धु' के गत अंक मे परवार जाति के असमर्थ छात्रों को स्कालरशिप देने की एक सूचना निकाली गई थी। उक्त सूचना के अनुसार हमारे पास इतनी दरख्वास्तें आई हैं कि उन सब को परवार सभा के फण्ड से छात्रवृत्ति देना असम्भव है। परन्तु कई छात्र उनमें ऐसे होनहार और असमर्थ है कि जिनको आर्थिक सहायता देने से आगामी में अत्यन्त लाभ को सम्भावना है। ऐसी अवस्था में परवार समाज के श्रीमानों से मेरी नम्र प्रार्थना है कि वे

अपनी ओर से एक २ छात्रवृत्ति।

देकर इन होनहार बच्चों के जीवन सुधार में अवश्य सहायक होंगे। श्रीमान बाबू कन्हैयालाल जी अमरावती वालों ने एक छात्रवृत्ति एक वर्ष को १०) मासिक देना स्वीकार कर लिया है। तदर्थ धन्यवाद। और श्रीमान भी कृपया निम्न पते पर शीघ्र छात्रवृत्ति देने की सूचना देवेंगे।

समाज का नम्र सेवक—कस्तूरचंद वकील, मंत्री परवार सभा--जबलपुर।

परवार-बन्धु का आगामी अंक--

अपमान या अत्याचार, दिनों का फेर, भारतोद्धार, जैन धर्म, भगवान महावीर और बुद्धदेव, विज्ञानकला और व्यापार, आदि गम्भीर और गवेषणा पूर्ण लेख तथा कविताओं से सुसज्जित होकर निकलेगा। इसके कुछ लेखक—पंडित जुगलकिशोर जी मुख्तार, बाबू कस्तूरचंद जी वकील, पं० दरबारीलाल जी साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ आदि प्रसिद्ध २ लेखक व कवि रहेंगे।

गोरखधंधा में पाठकों के लिये एक रजत पदक फिर पारितोषक में रक्खा जावेगा। भावपूर्ण चित्र भी रहेगा। शीघ्र ग्राहक बनिये-   पता:—"परवार-बन्धु" कार्यालय, जबलपुर।

" परवार-बन्धु " पर सम्मतियां ।

१-श्रीमान हितकारिणी हाईस्कूलके प्रिन्सपाल और हितकारिणी मासिकपत्र के भूतपूर्व सम्पादक, हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक, राय सा० पं. रघुवरप्रसाद जी द्विवेदी लिखते हैं:—

'परवार-बन्धु' के ४ । ५ अंक मेरे देखने में आये । श्री भा० दि० जैन परवार सभा का मुख पत्र होने से उसमें जातीय लेख और उसके द्वारा दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की सेवा तो होनी ही चाहिये, परन्तु मुझे इस बात से बहुत हर्ष है कि "परवार-बन्धु" में ऐसे भी अनेक लेख रहा करते हैं जो सभीको रोचक होसकते हैं । शिक्षा, साहित्य, विज्ञान, जीवनचरित्र, आदि भिन्न २ विषयों पर अभीतक कईलेख निकल चुके हैं ।

......जिस जबलपुर से किसी समय तीन २ मासिक पत्र एवं पत्रिकाएं निकलती थीं, उसकी लाज आज "परवार-बन्धु" ने रक्खी है । और मातृ-भाषा, मातृ-भूमि, तथा जातिसेवा के मार्ग में अग्रसर हुआ है । मुझ सरीखे पुराने हिन्दी प्रेमी को यह देख हर्ष है ।

पत्र में अब भी कई रोचक लेख निकल चुके हैं और यदि लोगों ने इसे अपनाया तो दिनों दिन निकलेंगे । जबलपुरीय हिन्दी प्रेमियों को इसकी सहायता करनी चाहिये" ।

२-श्रीमान बाबू चम्पतराय जी बैरिस्टर, हरदोई:—

"सचमुच में परवार बन्धु' बहुत ही योग्यता पूर्वक निकाला जा रहा है । यद्यपि मैं पत्रों की बाढ़ के पक्ष में नहीं हूं, तो भी मैं उनके अस्तित्वका कायल हूं । क्यों कि प्रतिद्वन्दता उसी पत्र को जीवित रक्खेगी जो सर्वोत्तम सिद्ध होगा ।

"परवार-बन्धु" का पहिला लेख, जिसमें जैन जाति के एक अत्यन्त महत्व पूर्ण प्रश्न पर विचार किया गया है बहुत ही अच्छा लिखा गया है । परवार बन्धु की छपाई, सफाई के सम्बन्ध में कोई भी त्रुटि नहीं दिखाई देती और इसके लिये आपका प्रयत्न प्रशंसनीय है ।"

३-श्रीमान परवार सभा के उप सभापति, परवार-बन्धु के संरक्षक, सिंगई पन्नालाल जी रहीस अमरावती:—

"बन्धु" को आपने सच्चा हितचिन्तक, सहोदर बन्धु बनादिया । मैं नहीं समझता हूं कि दि० जैनियों के मासिक पत्रों में इस समय कोई इस की बराबरी कर सका हो । यह आशातीत उन्नति करने का सब श्रेय आप ही को है । मैं तो इसकी मंगल कामना के लिये सदैव चिंतित रहता हूं" ।

४-श्रीमान पं० सुखराम जी चौबे "गुणाकर" कवि सोहागपुर रोड:—

"प्रिय 'परवार बन्धु' मिला, परमानन्द हुआ । इसे परवार-बन्धु कहें या परिवार-बन्धु अथवा परिवार-सिन्धु, जो कुछ कहाजाय वही उपयुक्तसा प्रतीत होता है । ऐसे पत्र प्रकाशक एवं सम्पादक योग्य धन्यवाद के पात्र हैं । आशा है कि पत्र का प्रचुर प्रचार होगा ।"

गतअंकों में प्रकाशित सम्मतियों के अतिरिक्त और भी अनेक शुभचिन्तक श्रीमानों-विद्वानों ने सम्मतियां भेजकर हमारी सहायता की है । तदर्थ धन्यवाद । —प्रकाशक ।

विषय-सूची।

वर्ष २ | जून, सन् १९२४ ई० | संख्या १

प्रभात ।

जागो, जागो, प्यारे भारत !
अंधकार-अज्ञान जगत का, क्रमशः हुआ विघात ।
तारागण सब मलिन हुए हैं, प्राची दिशि सरसात ॥ जागो०
पद्माकर में पद्म प्रफुल्लित, पाकर प्रेमी तात ।
कलरव करने लगे विहँग सब, होकर हर्षित गात ॥ जागो०
आलस-शय्या तज दो तुम भी, काहे को पछितात ।
हो करके चैतन्य भली विधि, चेतो ! हुआ प्रभात ॥ जागो०
हृदय-क्षेत्र आशा-किरणों से, [illegible] पूर्ण दरशात ।
ज्ञान-दिवाकर की रेखा से, बीत चुकी अब रात ॥ जागो०

— निर्भीक हृदय ।

शिक्षा-पद्धति-ज्ञान-विहीन शिक्षक।

(लेखक श्रीयुत पं० दुर्गभानु त्रिपाठी, विशारद)

जगत् में शिक्षा का कार्य सबसे अधिक महत्व का और दायित्व पूर्ण है। शिक्षक होना साधारण बात नहीं राष्ट्र की सारी नीव उसका भावी उत्थान या पतन एक मात्र उसके शिक्षकों पर निर्भर है।

संसार के सब जीवों को केवल शरीर रक्षा और उसकी वृद्धि एवं पुष्टि का भोजन आवश्यक होता है। पर मनुष्य एक ऐसा अद्भुत प्राणी है कि उसका निर्वाह केवल उपरोक्त भोजन से होना असम्भव है। उसे एक और भोजन की आवश्यकता होती है। वह भोजन है मानसिक भोजन जिसे सभ्य जगत् शिक्षा के नाम से पुकारता है। यदि शरीर-पुष्टि और वर्द्धन के लिये उत्तमोत्तम नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ आवश्यक हैं तो बौद्धिक भोजन-बुद्धि विकाश की समुचित सामग्री भी अपेक्षित है। इस भोजन का वास्तविक साधन है समुचित सविधि दी गई शिक्षा।

बालकों-राष्ट्र के हीरों को शिक्षा खराद पर चढ़ाये बिना उनका सच्चा मूल्य राष्ट्र को नहीं मिल सकता। शिक्षा पद्धति विशारदों ने बालकों की शिक्षा-प्रणाली पर पूर्ण विचार किया है और ज्ञान तथा अनुभव से शिक्षा विषयक ऐसे सुलभ साधनों का अनुसन्धान किया है जिनके अनुकरण से बालकों को उच्च से उच्च शिक्षा सरलता से दी जासकती और उनका मानसिक विकाश यथोचित रीति से किया जा सकता है।

शिक्षा से मनोविज्ञान-मानस शास्त्र का घनिष्ट सम्बन्ध है। बालक या मनुष्य के मनोविकारों की अभिज्ञता ही मानस शास्त्र है। जब तक शिक्षक को बालकों की स्वाभाविक मनोवृत्तियों का पूर्ण ज्ञान न हो तब तक शिक्षक होने की चेष्टा करना ही पाप है। अनाड़ी माली से लहलहाते हुए-फूलते फलते बाग का नाश ही होगा। वैसे ही बालकों की मनोवृत्ति कोमल हृदय और म[illegible] के विचारों को ठीक ठीक पहिचान हुए बिना उन्हें शिक्षा देना उनकी बढ़ती हुई बुद्धि को नष्ट करना है।

यह तो सर्व विदित बात है कि भारत की वर्तमान शिक्षा राष्ट्रोपयोगी नहीं। उससे भारतीयों-सच्चे नागरिकों की आशा नहीं हो सकती। तोभी सरकारी नार्मल स्कूलों और ट्रेनिंग कालेजों में शिक्षा-पद्धति-शिक्षा के साधनों का ज्ञान कराया जाता है। यद्यपि इन ट्रेनिंगों से भारत राष्ट्र को अभीष्ट सिद्धि नहीं होती तथापि छात्रों का मानसिक बोझ अवश्य कुछ घट जाता है।

संस्कृत साहित्य में शिक्षा पद्धति पर क्या विवेचन किया गया है और कितने ग्रन्थ उस में हैं या नहीं हैं इसका ज्ञान संस्कृतज्ञ पण्डितों को होगा। आज हमारे राष्ट्र में गवर्नमेण्ट द्वारा जो शिक्षा दी जाती है वह सब पाश्चात्य शिक्षा पण्डितों के नियमों के आधार पर। उस प्रणाली को निरर्थक कहना अकृतज्ञता होगी। उक्त

प्रणाली से ही भारतोपयोगी शिक्षा दी जाने पर भारतीय छात्रों का उससे वैसा ही लाभ हो सकता है जैसा पाश्चात्य उन्नत देशों का। दूषण है यहां के पाठ्यक्रम (कोर्स) में।

सौ पीछे ९४ से भी ऊपर शिक्षा से वञ्चित रहने वाले हमारे इस भाग्य हीन देश में शिक्षा के तीन साधन हैं। सरकारी संस्थाएँ, देशी संस्थाएँ और धार्मिक संस्थाएँ। धार्मिक संस्थाओं में केवल ईसाई मिशनरियों के स्कूल हैं। इनका अन्तरङ्ग उद्देश क्या है यह कहने की आवश्यकता नहीं। भारत का प्रत्येक सच्चा पुत्र और पुत्री उससे अवगत है। सरकारी स्कूलों में सरकार, शिक्षा पाये हुए शिक्षकों Trained Teachers का प्रबन्ध करती है। और धीरे धीरे उनकी संख्या बढ़ाती जा रही है। गवर्नमेण्ट राज्य के उद्देश्यों के अनुसार इस ओर पर्याप्त ध्यान देती है।

देशी संस्थाएँ नाम मात्र को देशी हैं अधिकांश इन संस्थाओं पर भी गवर्नमेण्ट की ही देख रेख और हाथ है।

सब से अधिक शोचनीय स्थिति संस्कृत पाठशालाओं की है। न तो वहां के शिक्षक, शिक्षा प्राप्त Trained शिक्षक ही रहते हैं और न पठन पाठन का कोई क्रम ही। मनोविज्ञान-बालकों की मनोवृत्तियों का भी उन्हें किञ्चित् ज्ञान नहीं रहता है। समय-विभाग किस विषय में, कितने समय तक, किस अवस्था के छात्र को, किस क्रम से शिक्षा दी जा सकती है इसका भी यहां के शिक्षकों को पता नहीं। संस्कृत शिक्षा में न कोई ढङ्ग, न कोई क्रम, न कोई प्रणाली न कोई निश्चित समय और न कोई बालकों की वय (अवस्था) का विचार रहता है। विद्यार्थी बेचारे मनुष्य नहीं तोते के बच्चे समझे जाते हैं। तोते के समान शिर हिला हिला बिना समझे विचारे पाठ रटना, शब्दावली कण्ठ करते रहना, बस यही शिक्षा प्रणाली है। और रटने वालों के मुँह की ओर देखते रहना—मुंहका सञ्चालन बन्द न होने देना शिक्षकका कार्य है। जरा धाराप्रवाह पाठ सुनाने में रुकावट हुई और विद्यार्थी पर अपशब्द की वर्षा होगयी। गुरु जी का कोपानल प्रज्वलित हो उठा।

यही नहीं एक आसन से बैठे बैठे वे अपना स्वास्थ्य भी खो बैठते हैं। विचार और तर्क शक्ति की हत्या हो जाती। केवल कण्ठाग्र करने की शक्ति बढ़ती जाती है।

संसार के सामान्य ज्ञान से वे वञ्चित रह जाते। केवल पण्डित जी के आचार, विचार और आदर्श में ढलकर वे किसी काम के नहीं रहते। बाह्य ज्ञान न होने से उनमें अन्ध कूपता समा जाती और वे कूप मण्डूक सङ्कीर्ण हृदय हो दूसरों से घृणा और दूसरी भाषाओंको अनादर की दृष्टि से देखने लगते हैं। देववाणी का इस भांति अध्ययन करते करते वे संसारोपयोगी मनुष्य न बन कर देव-मूर्ति बन जाते हैं। संसार की वर्तमान गति की अवहेलना कर वे पुरानी लीक पीटने में ही अपने पाण्डित्य की इयत्ता कर देते हैं। बुद्धि का ह्रास होता है या विकाश इसे कौन जानता है। न व्यायाम शिक्षा है न व्यावहारिक शिक्षा और न औदार्य भावों का अंकुर है। बस एक ही बात है, ६ घंटे रटना, गुरु जी को पाठ सुनाना और सर्वोच्च अपने को समझकर सबसे घृणा और परहेज करना।

आज भारत हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का मुकुट पहिनाने जा रहा है। उस हिन्दी से संस्कृत के पाठक और छात्र उदासीन बने बैठे

हैं। बात तो यह है कि हिन्दी ठहरी मानव-भाषा और संस्कृतज्ञ ठहरे देव। देवता, मानवी तुच्छ वस्तु को कैसे अंङ्गीकार करें!

मुझे संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं तथापि मेरा अनुमान है कि एक संस्कृतज्ञ हिन्दी भाषा की सेवा जितनी अच्छी तरह से कर सकता है उतनी अन्य भाषा-भाषी और स्वयं केवल हिन्दी-भाषी नहीं। हिन्दी में संस्कृत-शब्दों का बाहुल्य है और वर्तमान में उसका शब्द भाण्डार धारा-प्रवाह संस्कृत शब्दों से भरा जा रहा है। इस प्रकार हमारे संस्कृत शिक्षकों की रीति, नीति एवं आदर्श से राष्ट्र का एक अच्छा अङ्ग हिन्दी की उपेक्षा कर रहा है।

जैसे मैं और तू के विचारोंने हम लोगों की जातीयता को नष्ट कर हमें झूठी कुलीनता का अभिमानी और सङ्कीर्ण हृदय बना दिया, उसी तरह संस्कृतज्ञ पंडितों तथा छात्रों ने देव वाणी की पवित्रता के अभिमान् में डूब माना हिन्दी की उपेक्षा का पाप कमाया। देव वाणी की पवित्रता किसी अन्य भाषा के सीखने से न्यून नहीं हो सकती, यह व्यर्थ का अभिमान झूठी पवित्रता का ढोंग है। मैं तो समझता हूं कि जो जितनी अधिक भाषाओं -वाणियों में अभिज्ञता प्राप्त करेगा उतनी ही अधिक देव वाणी की पवित्रता और उत्कृष्टता का अनुभव कर सकेगा।

कहते दुःख होता और लज्जा आती है कि अमरकोष, कौमुदी और पाणिनि के व्याकरण तथा संस्कृत साहित्य को रटकर पीजानेवाले साधारण हिन्दी का भी ज्ञान नहीं रखते। जब कभी इन देवताओं को देववाणी छोड़ मनुष्य-वाणी हिन्दी में लेखनी उठाने की आवश्यकता पड़ती है तब इनकी हिन्दी का पाण्डित्य देखने योग्य होता है। उस समय इनकी भाषा-रचना का सौष्ठव तथा वाक्य पटुता देखते बनती है। रचना में न तो व्याकरण के नियम दिखते, न उपयुक्त शब्द योजना होती, न वाग्धाराओं-मुहावरों का शुद्ध प्रयोग होता और न वाक्य विन्यास का चातुर्य ही पाया जाता। एक ही वाक्य में हिन्दी उर्दू, अंग्रेज़ी, स्थानीय और एतद्देशीय शब्दों की विचित्र खिचड़ी पकायी जाती है। काव्यतीर्थ, साहित्यशास्त्री, तर्कवाचस्पति, न्यायरत्न, न्यायालंकार धुरन्धर संस्कृतज्ञों की हिन्दी से कभी यह पता नहीं चलता कि इन महानुभावों की मातृभाषा होगी। मैं सब पर यह लाञ्छना-रोप नहीं करता, पर अधिकांश विद्वान् हिन्दी-हित के विचार से इसी कोटि के हैं। विद्वान् क्षमा करें।

शिक्षा—पद्धति और मनोविज्ञान पर सैकड़ों ग्रन्थ लिखे जा सकते और लिखे गये हैं, इस छोटे से प्रबंध में इनका विवेचन असम्भव है। अतएव इन पर दो बातें और कह कर मैं इसे समाप्त करूंगा।

बालकों की रुचि और उनकी मनोवृत्तियों का विचार किये बिना बालकों को शिक्षा देना नहीं किन्तु निरीह आत्माओं का आत्म-हनन करना है। किस समय तक बालक का कोमल मस्तिष्क, किस विषय को, कैसी विधि से, बिना मस्तिष्क पर बोझ डाले—उसे हानि पहुँचाये -ग्रहण कर सकता है। जबतक इसका सच्चा ज्ञान और वास्तविक अनुभव नहीं है तबतक अज्ञानी मनुष्य के हाथ में बहुमूल्य यन्त्र को देकर उसका उपयोग कराने के समान है।

बालक प्रेम का पुजारी है। जबतक सात्विक-दिव्य प्रेम द्वारा बालकों की कठिनाइयों

और अड़चनों को दूर करने का ज्ञान शिक्षक को नहीं हुआ तब तक शिक्षा का दैवी आनन्द न शिक्षक को मिल सकता न विद्यार्थी को ही।

मानवी मस्तिष्क की रचनानुसार वह अधिक समय तक एकही काम में-एकही विषय के अध्ययन में नहीं लगाया जा सकता, इस नियम के विपरीत चलने से शिक्षा से मानसिक विकास के बदले उसका ह्रास होने लगता है जिससे शिक्षा न देना कहीं अधिकतर श्रेय है।

मैं यह मानताहूं कि बाल्यावस्था में बालकों की धारणा शक्ति बहुत प्रबल और स्मरण शक्ति विशेष तीव्र होती है। इसीलिये कण्ठस्थ करने का कार्य इस अवस्था में जितना सुलभ साध्य है उतना अन्यावस्थाओं में नहीं, पर तोता रटन्त रात दिन रटने से इस शक्ति का समुचित उपयोग नहीं हो सकता।

अवश्य ही बालकों को ऐसी बातें कण्ठाग्र कराने की आवश्यकता है जिनसे जीवन के ज्ञानार्जन में साहाय्य मिले और वे विद्वान् पण्डितों के बीच में उदाहरण से मनुष्य की प्रखर बुद्धि की परिचायक और ज्ञान युक्त बातों का निर्णायकाहों पर ये बातें आंख बन्दकर न रटाई जावें, शिक्षक उस विषय के कठिन जाल को अपने विषय ज्ञान के ज्योतिर्मय आलोक से सुलझा देवें। बहुधा शिक्षक, श्रम और सुलभ साधनों के खोज के डर से आराम से बैठ जाते और पोथी खोल कर केवल रटने की पंक्तियों की संख्या गिनकर बता देते हैं। बालक रटने की गोंठली छुरी से मस्तिष्क को घिस घिस कर उसे अस्त व्यस्त कर डालते हैं।

शिक्षा-पद्धति-कौशल और मनोविज्ञान की अभिज्ञता से दुरूह और क्लिष्ट से क्लिष्ट विषय की शिक्षा सुलभता, और प्रेम से दी जा सकती है। जो शिक्षक, श्रम और अड़चनों से भागते हैं उनसे शिक्षा दिलाना राष्ट्रीय रत्नों को गँवाना है।

बाल-बुद्धि बड़ी चञ्चल और चपल होती है। प्रकृति ने उसकी ऐसी रचना, बुद्धि विकास और ज्ञानार्जन के लिये ही की है। बालक में तर्कणाशक्ति भी अपूर्व होती है। यदि बालकों के प्रश्नों का उत्तर विचार पूर्वक और शान्ति तथा गंभीरता के साथ उनकी समझ के—सामर्थ्य के भीतर दिया जाय तो बालकों की शङ्काओं और तर्क वितर्कों का जौहर खुलता है। दुःख है, शिक्षक अज्ञानता वश बालक की इस शक्ति के विकाश का मार्ग उनके प्रश्नों की उपेक्षा कर अवरुद्ध कर देते अथवा इस उगती हुई लहलही लता पर डाँट फटकार के तुषार से उसे बेकाम करदेते हैं।

उत्तम-आदर्शशिक्षा वही है जो बालकों में किसी भी विषय को बिना उसे समझे विचारे आगे बढ़ने से रुकावट डालती है। किसी भी बात के सीखने में जबतक उन सब शङ्काओं को बालक निर्भीकता और स्वच्छन्दतासे-स्वतंत्रता पूर्वक बे खटके निस्संकोच भावसे गुरु के सम्मुख नहीं रख सकता! जो उस विषय पर हो सकती हैं तब तक उसे दी गयी शिक्षा व्यर्थ है।

बालकों की मनोवृत्ति ज्ञातकर उनकी रुचि और विषय-ज्ञान-शक्ति की योग्यतानुसार कोई भी विषय- उन्हें बिना उनके जी उकताए दिया जा सकता है।

बालकों में सदा त्रुटियों की उत्सुकता विषय की अरुचि बरसाती है। मैंने छोटे छोटे

बच्चों में यह बात देखी है कि यदि उचित पद्धति से उन्हें शिक्षा दी जावे तो वे अधिक छुट्टियों से उसी प्रकार ऊब जाते हैं जैसे अरुचिकर, बोझ डालने वाली बेढङ्गी शिक्षा से। किसी किसी मास में अधिक छुट्टियां होने पर कई बार मेरे छात्रों ने स्वच्छन्दता से आवश्यकता और दायित्व प्रदर्शित करते हुए छुट्टी सुनाने पर उसे अस्वीकार कर छुट्टी में पाठशाला लगाने का आग्रह किया। और मुझे प्रेम और लाड़से छुट्टियों में पाठशालाओं के खोल सकने की असमर्थता तथा लाचारी प्रकट करनी पड़ी। ये बातें बिना प्रेम और बिना बालक का हृदय तथा विचार पहिचाने कठिन ही नहीं असम्भव हैं। अपना मानवी प्रेम भाण्डार और हृदय खोलकर बालकों के साम्हने रख देने पर उन्हें ठुकराकर सकना कठिन है।

बालक बहुधा पाठ्य विषय की बात सुनते ही उदास और दुखित होजाते हैं। उनकी यह भावना भी शिक्षक की अयोग्यता का कुफल है। जो शिक्षक बालकों में किसी विषय के आरम्भ करने के पूर्व उनमें सच्ची जिज्ञासा-जानने की इच्छा-उत्पन्न कर सकता है उसके छात्रों में कभी अरुचि का आभास तक नहीं दिखसकता। बालकों में किसी विषय की जिज्ञासा प्रबल कर देने पर मैंने देखा है कि वे अपनी छुट्टी और खेल के प्यारे समय को भी त्याग कर कमरे में बैठे रहे और मुझे बैठे रहकर बताने के लिये बाध्य किया।

दण्ड का उल्लेख किये बिना मैं इस विषय को समाप्त नहीं कर सकता। दण्ड शिक्षा का घातक शत्रु है। वही शिक्षक दैव तुल्य जगत उद्यान की मनोहर कोमल कलिकाओं को दण्ड की कराल उँगलियों से मसल सकता है जिसका मानवी हृदय, प्रेम से शून्य और मानवी दिव्य भावों से रिक्त है।

एक विद्वान ने लिखा है कि अनुसन्धान से जानागया है कि भीषण पाप कर्मों के कारण राज दण्ड से दण्डित व्यक्तियों में अधिक संख्या उनकी पायी गयी है जिन्हें पाठशालाओं में अधिक शारीरिक दण्ड दिया गया है। ऐ दण्ड प्रेमी शिक्षको! यदि बालकों से प्रेम और आत्म संयम न हो तो पेट भरने का कोई अन्य मार्ग देखो। राष्ट्र की जीवनमूल इन पवित्रात्माओं के वध के पाप से अपने को बचालो।

परिताप और लज्जा की बात है कि कई एक विद्वान् शिक्षक भी विद्यार्थियों को शारीरिक दण्ड देकर उनके प्रेम प्यासे हृदय को उससे वंचित रखते हैं। विकार हीन अबोध बालक अपने शिक्षक से एकही आशा का अभिलाषी है, वह है शिक्षक का उसपर सच्चा प्रेम और उसकी प्रसन्नता। यदि बालक अपने असीम गर्वों से गुरु को प्रसन्न कर सको तो संसार में उसे कोई विस्मय बाकी न रही। धन्य बाल हृदय!

बालक जगदीश की पवित्र विभूतियां हैं वे ईश्वर का रूप हैं। राग-द्वेष-मुक्त आत्माएँ हैं। इस ईश्वरीय विभव को पाकर जिन्हें आनन्द नहीं होता—उनके बीच में जो अपने आप को नहीं भूल जाते जिनकी आत्माएँ और स्वार्थ बालकों की आत्माओं और स्वार्थ से मिलकर सच्चे नागरिकों का निर्माण नहीं करते; जिनसे विश्वबंधुत्व के औदार्य और मानव जीवन के आदर्श राष्ट्र और जगत् कल्याण के लिये निर्मित नहीं किये जा सकते उन्हें शिक्षक के इस दायित्वपूर्ण महान् कार्य में अपने अपवित्र हाथ न लगा कर इससे दूर ही रहना चाहिये।

(गतांक से आगे)

विवाह के बाद स्त्री का पुनर्जन्म सा होता है, अब हम उस पुनर्जन्म के जीवन की बातों पर प्रकाश डालते हैं । नववधू के आते ही बड़ा आनन्द मनाया जाने लगता है, वधू के मातृपितृ वियोग को भुलाने की यथेष्ठ चेष्टा की जाने लगती है । मगर कुछ समय के बाद यह सब कुछ नहीं होता और न होने की जरूरत ही है । लेकिन इसी नियम से नई समस्या खड़ी हो जाती है, सास के हृदय में यह विचार पैदा हो जाता है कि पुत्र वधू और पुत्र में इतना घनिष्ट प्रेम न हो जावे जिससे पुत्र मेरी अवहेलना करने लगे, उसकी यह शंका सत्यानाश की जड़ है । वह नाना तरह के दोष मढ़ने पर उतारू हो जाती है और पुत्र से शिकायत करती है । धीरे धीरे उसकी यह चाल असह्य हो जाती है और पुत्र तथा पुत्र वधू दोनों ही उससे घृणा करने लगते हैं। अगर सास नहीं होती है तो ससुर है, या और कोई ऐसे ही काम करने लगता है । मगर कभी कभी इससे उलटा भी मामला देखा गया है। पुत्र, स्त्री प्रेम में इतना निमग्न हो जाता है कि वह अपनी स्त्री को घर का विशेष काम नहीं करने देना चाहता । दिवाली आने वाली है घर की सफाई करना पड़ेगी. बस स्त्री को माँ के घर भेज दिया, काम के समय सिर दर्द का बहाना बनाने को कह दिया, इन सब बातों से भी झगड़ा पैदा होता है और अन्त में घर में द्वेषाग्नि भभक उठती है । यद्यपि ये घटनाएँ तुच्छ हैं, फिर भी वह बीज की तरह बड़ा भारी कलह वृक्ष पैदा करने वाली हैं ।

ऐसी घटनाओं के प्रायः सभी अपराधी हैं । स्त्री को मातृ गृह में शिक्षा नहीं मिली, वहां भी इसी प्रकार कलह मचा रहता था उसका असर उसके ऊपर पड़ा उसके हृदय पर कुछ घटनाओं का ऐसा प्रभाव पड़ा । जिससे वह काम न करने में बड़प्पन समझने लगी । इधर पुत्र की भी शिक्षा ठीक ढंग की नहीं हुई, माता पिता की उपेक्षा ने उद्दंड और मूर्ख बना दिया । इधर सास में भी इतनी योग्यता न थी कि वह पुत्र वधू पर अपना प्रभाव डाल सकती । फिर ऐसी हालत में अगर हमारे घरों में ताण्डव नृत्य होता है तो क्या आश्चर्य है ? एक तो बन्दर फिर शराब पिलादी. इतने पर बिच्छू ने डंक मार दिया अब उसके उछलने का क्या ठिकाना ? यदि स्त्री को परिश्रम का महत्त्व मालूम हो, हृदय में कुछ उदारता हो तो ऐसी घटनायें न होने पावें । इसका उपाय है शिक्षा । यदि मातृ गृह मे उचित शिक्षा मिल जाये और पतिगृह में उसके साधन की अनुकूलता हो तो वह आदर्श महिला बन सकती है। यदि मातृ गृह में शिक्षा न भी मिले तो पतिगृह में भी शिक्षा का श्रीगणेश किया जा सकता है । और किया जा सकता ही नहीं अवश्य करना चाहिये । इस कामकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी पतिके ऊपर ही है ।

यद्यपि परिस्थिति संगति का पूरा असर पड़ता है फिर भी प्रतिकूल परिस्थितिमें भी पति की बातका ज्यादः प्रभाव पड़ता है । पुस्तकों के द्वारा भी शिक्षा दिलायी जासकती है । इससमय पतिको चाहिये कि वह "पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्" (पति ही स्त्रियों का गुरु है) इस वाक्य को

पूरी तौर से काम में लावें। साहित्य परिचय का जीवन के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है, इसलिये उसकी इतनी चेष्टा करना चाहिये जितनी की जा सकती है। पं० आशाधरजी तो स्त्री को पढ़ाने के लिये जोरदार शब्दों में अपील करते हैं :—

> व्युत्पादयेत्तरां पत्नीं धर्मे प्रेम परं नयन्-
> सा हि मुग्धा विरुद्धा वा धर्माद्भ्रंशयते तराम् ॥

प्रेमपूर्वक स्त्री को पढ़ाना चाहिये क्योंकि वह मूर्ख और उल्टी होने से तुम्हें भी धर्म से गिरा देगी।

इस शिक्षा के कार्य में दो बातें बड़ी बाधक हैं। पहिली बात तो यह है कि स्त्रियों ने अपने को मूर्ख समझ रक्खा है, वे समझतीं हैं कि हम पढ़ने लिखने के लिए जन्म से ही नालायक हैं। यदि कोई अपने को लायक भी समझे, तो यह विचार साम्हने आ जाता है कि हमें पढ़ लिख कर करना ही क्या है! कौन परदेश जाना है या व्यापार करना है या नौकरी करना है। ये मूर्खता पूर्ण विचार ही सत्यानाश की जड़ हैं।

इधर पुरुषों ने भी उपेक्षा करने में कमी नहीं की। वे समझते हैं कि स्त्री का काम घर में जुतने के सिवाय कुछ नहीं है। जब पति पत्नी, राजा और मंत्रीके समान है तो उसका (अर्थात्) पत्नी का मन्त्र (सलाह) हर एक कार्यों में लेना चाहिये। आप कहेंगे कि जब स्त्रियाँ कुछ सलाह देने के योग्य ही न हों तब क्या किया जाय? यह ठीक है मगर सलाह देने की योग्यता जन्म से किस में रहती है? वह तो भार आने पर आप से आप उत्पन्न हो जाती है। अगर आप किसी काम में सलाह लें और वह कुछ सलाह न दे सके तो आप उसे उस विषय की कुछ बातें आज समझा दीजिये, दो चार बार उसे समझाने पर उसकी बुद्धि दौड़ने लगेगी, बस आप को एक सहारा हो जायगा। योग्यता न आने तक सलाह न लेने की बात तो ऐसी ही है जैसी कि "जब तक तैरना न जाने तब तक पानी में पैर न रखने की बात"।

जब स्त्रियों को अपनी योग्यता का कुछ २ अनुभव हो जायगा, तब उनका शिक्षा प्रेम आदि बढ़ जायगा। आप स्त्रियों की बातबात में उपेक्षा करते हैं इसीलिये तो दिल से दिल नहीं मिलने पाता। अनुभवी विद्वान पं० आशाधर जी ने इस विषय में क्या ही मार्मिक बात कही है :—

> स्त्री उभम् पत्युरुपेक्षैव परम् वैरस्य कारणम् ।
> तन्नोपेक्षेत जातु स्त्रीं वाञ्छन् लोकद्वये सुखम् ॥

पति के द्वारा स्त्री की उपेक्षा ही बैर का कारण है। इसलिये दोनों लोकों में सुख चाहने वाला स्त्री की उपेक्षा कभी न करे।

इन बातों से स्त्रियाँ अपने गौरव का अनुभव कर सकेंगी- उनमें जो क्षुद्रता या कलह-प्रियता स्वभाव से बतलाई जाती है हट जावेगी।

आपने देखा होगा कि स्त्रियाँ जहाँ भी एकत्रित होती हैं सिवाय खाना, पीना, गहना, कपड़ा आदि के कुछ बात नहीं करतीं। मन्दिरों में शास्त्र बँच रहा है, परदे के पीछे स्त्रियाँ बैठी हैं आप कई बार "चुप रहो, हल्ला न करो" चिल्लाते ही रहते हैं मगर उनका बाजार बन्द नहीं होता। "क्यों बिन्ना, क्यों जिजी, तुम्हारे ये ककना कब बने थे? कितने वजनदार हैं? बनक तो अच्छी है, किससे बनवाये थे? हमें भी बनवाना है, आदि चर्चाएँ जिनवाणी को पास भी नहीं फटकने देतीं।

ऐसा होना आश्चर्यजनक नहीं है। उन्हें जन्म से कभी शिक्षा दी गई है या आज ही देने चले हैं! फिर उन्हें बिठलाने का स्थान भी तो बड़े गजब का होता है। विद्यार्थियों को, व्याख्याता महोदय के पीछे परदा डाल कर बन्द कर दिया जाता है। ऐसे स्थान में तो उनका भी मन लगना कठिन है जो व्याख्यान सुनने की बड़ी रुचि रखते हैं और उसके विषय को अच्छी तरह समझते हैं। फिर भला, उन अशिक्षित नारियों का चित्त न लगे और उनका गहना पुराण अलग बचने लगे तो आश्चर्य ही क्या है! हम लोग भी रूढ़ियों के पक्के गुलाम हैं।

कोई भी प्रथा जो किसी तरह चल पड़ी है अगर वह महा बुरी भी हो, फिर भी बापदादों के नाम पर चलाने में हमें गौरव मालूम होता है।

क्या पुरुषों के हृदय इतने पापी हैं? कि वीतराग देव के मन्दिर में भी अपनी बहू बेटियों को देख कर होश में न रह सकेंगे? यदि यही बात है तो हमें मनुष्यता की कक्षा से नाम कटा लेना चाहिये। हम परदा सिस्टम के ऊपर कुछ नहीं लिखना चाहते, क्योंकि हम जानते हैं कि अभी समाज कमजोर है। वह दूध भी नहीं पचा सकता। रूढ़ियों के आगे सत्य और हितैषिता के खून करने का उसे अभ्यास है। इसीलिये उसके विरुद्ध बोलते ही वह तोबा तोबा करने लगेगा। फिर भी देखते हुए मक्खी नहीं निगली जाती, हमारी जैसी दुर्दशा है उसे देखते हुए चुपचाप बैठा रहना भी बड़ा कठिन मालूम पड़ता है।

संसार में गिरना और उठना सदा लगा हुआ है लेकिन जब कोई जाति अपनी नीच हालत को ही अच्छा समझने लगती है तब समझना चाहिये कि उसका पतन उसे मरणोन्मुख बना रहा है- या उसे पशु की श्रेणी में लिये जा रहा है। दुख है कि जो बातें हमारे लिये कलंक है उन्हें हम प्राणस्वरूप समझ रहे हैं, उसके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं निकाल सकते। स्त्रियों के विषय में यही बात है, वे अपनी अवनत दशा को बहुत महत्त्व देती हैं। उसे अपना कर्त्तव्य समझती हैं। जब वृद्ध आदमी किसी स्त्री की प्रशंसा करते हैं तो उस प्रशंसा में एक मुख्य बात यह रहती है कि उसकी उँगुली एक लड़का तक भी नहीं देख पाता। शास्त्रकार तो स्त्रियोंको यह शिक्षा देते कि; अपने से बड़ी उमर के पुरुष को पिता समान समवयस्क को भाई समान समझो, और छोटी उमर वाले को पुत्र के समान। क्या पुरुष को देखकर स्त्रियों का घूँघट मारना उनके हृदय की ऐसी पवित्रता का सूचक कहा जा सकता है?

अथवा इतना पवित्र भाव रहने पर क्या वे परदा करने को तैयार हो सकती हैं? सच तो यह है कि इस प्रकार से हम उनके हृदय में पाप का स्मरणसा करा देते हैं।

इन कलंकी वचनों को लिखते हुए सचमुच हमारी छाती धड़कती है। हम यह मानते हैं कि प्रायः पुरुषों की ही नियत साफ नहीं रहती और देवियों के सिर पर यह कलंक नहीं मढ़ा जा सकता। सच बात तो यह है कि परदे की प्रथा इसलिये चालू है कि स्त्री जाति पुरुष के आगे तुच्छ समझी जाती है-उसकी इतनी हिम्मत नहीं होना चाहिये कि वह पुरुषों के आगे मुँह निकाल सके। इस दुःप्रथा को अपने यहां "कायदा" कहते हैं इसलिये जब वधू की निन्दा की जाती है तब यह कहा जाता

है कि वह बड़ी ढीठ है, किसी का कायदा भी नहीं करती।

अगर यह प्रथा पुरुष जाति के सम्मानार्थ न होती तो क्या आवश्यकता थी कि ससुर, जेठ आदि का इस प्रकार कायदा किया जाय? क्या वे लोग इतने क्षुद्र हो सकते हैं कि वधू के देखते ही अपना चित्त चलायमान करलें? अच्छा और सब जाने दीजिये किसी दूसरे के साम्हने पति भी आजाय तो भी वही कायदा (!) करना पड़ता है।

इस विषय में हम कुछ न लिखने की प्रतिज्ञा करके भी कुछ लिख ही गये और बहुत कुछ लिखने को बाकी पड़ा है। लेकिन हम यह लिखते हुए कि "इस प्रथा की निरर्थकता जानना चाहो तो दक्षिण प्रान्त को देखो" जहां कि इस प्रथा के न होने पर भी उत्तरीय प्रान्तों की अपेक्षा व्यभिचार बहुत कम है। अपनी लेखनी इस विषयकी ओरसे हटाते हैं।

हमारी मुख्य बात यही है कि मन्दिर में बिचारी स्त्रियों को ज्ञान लाभ बिलकुल नहीं होने पाता, इसलिये उचित उपाय करना चाहिये। शिक्षा प्राप्ति के बहुत से कारणों में यह भी एक मुख्य कारण है।

अन्त में हम एक बात और बताना चाहते हैं कि स्त्रियाँ अब भी पुरुषों की इच्छानुसार काम करती हैं, हम उनकी जिन बातों की प्रशंसा करेंगे वे बिचारी उसे पूर्ण करने मे मर मिटेंगी। अब हमारी रुचि असभ्यों सरीखी है तब वे बिचारी भी वैसे ही काम करती हैं।

कुछ पुराने समय में पुरुषों को भी भूषण पहिनने की इतनी लालसा रहती थी जितनी कि स्त्रियों को। (दुर्भाग्य से हमारे प्रान्त में तो अब भी ऐसे भले मानुष पड़े हुए हैं जो कि शायद दैव को यह चैलेञ्ज देकर आये हैं कि तुम भले ही मर्द बना दो लेकिन भद्दे शृङ्गार में हम औरतों को भी मातकर देंगे)

धीरे धीरे ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ चली है त्यों त्यों यह भद्दी लालसा घट चली है। जातियों को देखने से भी यही मालूम होता है कि असभ्यजातियाँ बहुत भूषण प्रिय होती हैं। कृषक स्त्रियाँ चांद पर एक इन्च लम्बा चौड़ा बूंदा लगाती हैं, जब कि कुछ सभ्यमहिलाएँ छोटीसी पीली तरैया चमकाती हैं। अपने प्रान्त की अपेक्षा गुजरात आदि प्रान्तों में शिक्षा की जितनी अधिकता है उतनी ही भूषण प्रियता कम है। भले ही कोई लाख रुपये की चूड़ी पहिनले मगर चार पैसे की चूड़ियों से भी सुन्दरता बनी रहती है। किन्तु हमारे यहां तो बिना पसेरीक वज़न के कोई चार औरतों में बैठ भी नहीं सकती। सब स्त्रियाँ उस बिचारी को दीन-हीन गरीब समझने लगती हैं, या वह पढ़ी लिखी हुई तो मेमसाहिब-मिसिया से कम पदवी नहीं मिलती। यह सब इसलिये होता है कि हमने समझ रक्खा है कि लदना ही सौंदर्य है। यदि हम अपनी पत्नी को समझा सिखा कर ठीक भी कर लें तो भी मा बाप को समझाना उतना ही कठिन है जितना कि पत्थर का पिघलाना।

इसका फल भी बुरा होता है घर में पुँजी नहीं है, गहनों में दो चार सौ रुपया फँसा रक्खा है मगर हमारे किसी काम का नहीं। अगर लड़ झगड़कर हम वह गहना छुड़ा भी लें तो भी कुछ फायदा नहीं। क्योंकि सब जगह बदनामी होती है, घर की पोल खुल जाती है। और फिर भी किसी दिन पुँजी मिटाकर भूषण बनवाने पड़ते हैं! हम इस बात का अपराध स्त्रियों पर मढ़ते हैं। मगर "समरथ

को नहिं दोष गुसाईं" इस उक्ति के अनुसार हम जो चाहें बक लें, लेकिन सच पूछा जाय तो यह हमारी ही करतूतों का फल है। जब हम जबर्दस्ती असभ्यों सरीखे रहना चाहते है तब कौन क्या कर सकता है!

इन गहनों ने विचारियों के जीवन का लक्ष्य ही बदल दिया है। वे इस जड़ जाल से निकल ही नहीं पातीं। शरीर की सफाई की ओर ध्यान नहीं जाता-चांदी के नीचे लोहे से हाथ हो जाते हैं, फोड़ा फुन्सी हो जाती हैं मगर हिताहित विवेक शून्यता इसकी पर्वाह नहीं करने देती। मुझे डर है कि वही इन रीति विरुद्ध बातों को पढकर हमारे बड़े बूढ़े और उनके शिष्य कोसने न लगें इसलिये इस विषय को भी हम यहीं छोड़ते हैं।

अन्त में जाते जाते निवेदन करते हैं कि अब उपेक्षा करने से काम न चलेगा खरगोश के आंखमीचने से ही शिकारी नहीं भाग जाता, इसीप्रकार हम अगर इन्हें मामूली बातें कहते रहें तो पतन नहीं रुक जायगा। यह क्रान्ति का समय है. अगर आप सत्य को सुनने के लिये तैयार हैं और बुरी बातें, चाहे वे थोड़ी बुरी हों या बहुत, और आज की हों या सात पीढ़ी की छोड़ने को तैयार हैं। तो जीने के योग्य हैं मुँह दिखा सकते हैं।

अगर आप सत्य को कोसते ही रहे तो अपना मुँह बिगाड़िये, चलने वाले चलेंगे। कुटेक पर अड़े रहने वाले अनन्त काल के लिये जाति में विलीन हो जाँयगे।

स्त्रियों की समस्या शीघ्र ही हल कीजिये, कल करना चाहते हों तो आज कीजिये। और आज क्या अभी! यह मत कहिये कि समय नहीं आया है। क्यों कि समय का अर्थ घड़ी घंटा या मिनट नहीं है, समय का अर्थ है परिस्थिति। परिस्थिति पैदा की जाती है आप से आप आकाश से नहीं टपकती। उसका पैदा करना आपके हाथ में है "बर मेरे मुँह में पर" कहने से काम न चलेगा। कुछ करना होगा। रोग एक नहीं अनेक हैं, साधारण नहीं मरणोन्मुख करने वाले हैं। स्त्रियों की दुर्दशा का रोग बहुत बड़ा है जिसके भीतर सैकड़ों रोग हैं। शिक्षा, सभ्यता, प्रेम चतुरता आदि योग्य गुणों का विनाश हो चुका है जो हैं उन्हें बचाने की और बढ़ाने की शीघ्र व्यवस्था कीजिये, अन्यथा अन्त समय के लिये तैयार रहिये।

> जहाँ पर आप बैठे हैं वहीं पर वज्र पड़ता है।
> तनिक आलस्य से सारा सुधरता भी बिगड़ता है॥
> कृपा कर आप उठ बैठें बढ़ें आगे, न घबरावें।
> रुकें, अपमान की चिन्ता न है पर बात बन जावें॥

कर्तव्य।

(लेखक—श्रीयुत पं० रामचरणलाल जी, साहित्यभूषण)

> भाग्य भरोसे बैठे रहना यह वीरों का काम नहीं।
> भोजन की थाली से मुँह में आ सकता क्या ग्रास कहीं?
> ऐसा हो तो फिर शरीर किस लिये तुम्हारा निर्मित है।
> आलस और भीरुता, कायरता से मानो विरचित है॥
> क्या कभी किसीने बिना पराक्रम युद्धक्षेत्र भी जीता है?
> अर्जुनसे वीर प्रसिद्ध हुए अबतक प्रमाण यह मिलता है
> यदि कर्मक्षेत्र में उतरोगे यशवान तुम्हीं कहलाओगे।
> कर्तव्य स्वकीय विचारो तो जगमें अनुपम सुख पाओगे॥

परवार समाज के नवयुवक और नेता ।

संध्या का समय था । गर्मी बेहद होने के कारण घर के भीतर बैठना असम्भव था । अतएव बांदा से निकलने वाला ता: २६ मई का "लोकमान्य" ले, मैं बाहर पढ़ने के लिये बैठा ही था कि मेरा ध्यान "गुण्डों की करतूत" नामक शीर्षक लेख पर पड़ा । उसमें लिखा था, "बांदा शहर इस समय विलासता में लखनऊ शहर को मात कर रहा है । यहां का युवक मण्डल विशेष कर परवार जाति के किशोर इनके मुरीद हो रहे हैं और तन, मन, धन लुटा रहे हैं ।" इत्यादि । इन शब्दों में मेरा ध्यान आकर्षित करने को काफी आकर्षण था । अतः मैं इन्हीं विचारों में मग्न हो गया । धीरे २ मेरा विचार प्रवाह स्थानीय (जबलपुर) परवार-नवयुवकों की ओर आकर्षित हुआ । मैं सोचने लगा कि उक्त कथन में सत्यता हो या न हो पर यह बात निर्विवाद है कि हमारे परवार नवयुवक इस समय अपना अस्तित्व ही खो बैठे हैं । समाज में ऐसे लोगों का अभाव नहीं जो पढ़ना, लिखना न जानते हों—फिर क्या कारण है जो परवार नवयुवक संसार की प्रगति के साथ ही साथ हिलते डुलते तक नहीं । मैं परवार हूं परन्तु मुझे यह लिखते खेद होता है कि ऐसा कोई नहीं जिसे मैं अपना मित्र कह सकूं । इसका कारण स्पष्ट है । मेरी और उनकी विचार सृष्टि में जमीन आसमान का अन्तर है । मुझे जब २ इन लोगों के साथ रहने का मौका पड़ा है कोई भी उपयोगी या सार पूर्ण बात करते हुए नहीं पाया ।

जो वृद्ध या अधिक उमर के हैं वे अपना समय पुरानी चर्चा उखाड़ने या दूसरों की समालोचना करने में, युवक व्यर्थ की बातों में अपना समय बरबाद कर डालते हैं । समस्त दिन रोजगार धन्धे में लगे रहते हैं यदि उन्हें रात्रि के समय अवकाश मिलता भी है तो १०, ५ नवयुवक इकत्र हो व्यर्थ का वितंडावाद रोप देते हैं । खूब कह कहे लगेंगे और चंडू खाने की गप्पें उड़ेंगी । अधिक हुआ तो नाटक तमाशे की सैर को निकल जांयगे । इसके बाद घर जाकर सो रहेंगे और सुबह होते ही फिर वही चक्की चलांयगे । बस इसी प्रकार " सुबह और शाम होती है, उम्र योंही तमाम होती है । "

यदि किसी अन्य मतवाले को परवार-बन्धुओं की गोष्ठी में बैठने का मौका पड़ा हो तो वह दो ही मिनट में घबराकर छुटकारा पाने का अवसर खोजने लगेगा । क्योंकि इस मंडल के वादविवाद का प्रधान विषय होता है रोजमर्रा की थोथी बातें या अश्लील-आपस का बेढंगा मजाक । बस यहीं सब चर्चाओं की इति श्री होजावेगी । संसार में क्या हो रहा है ? वर्तमान राजनैतिक प्रगति किस ओर है ? अमुक नेता का क्या मत है ? और इसका

जनता पर क्या असर होगा ? या व्यापारिक उन्नति किस प्रकार हो सकती है ? अन्य देशों के सामने क्या समस्यायें उपस्थित हैं ? साहित्य में क्या हलचल होरही है ? इन सब विषयों पर चर्चा करने की तो मानो इन लोगों ने कसम ही खाली है। इस पर तुर्रा यह है कि यदि कोई भूलकर यह चर्चा कर भी बैठे तो उसकी जान सांसत में पड़ जाय। खासकर विवाह बरातों में तो इन नवयुवकों की और इनके साथ ही वयस्कों की दशा अत्यन्त करुणाजनक हो जाती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों लाज और हया भी शर्मा कर इन से बिदा ले चुकी है।

हमारी परवार समाज अन्य मतावलम्बियों से मिलना जुलना जानती ही नहीं है। अतएव अन्यमतवालों में हमारे सम्बन्ध में अनेक गलतफेमियां फैली हुई हैं। मौके मौके पर ये परवार समाज पर कटाक्ष किये बिना नहीं रहते हैं। मेरे सुनने में नहीं आया कि किसी परवार नवयुवक ने कभी वीरतापूर्वक आगे बढ़कर इन आक्षेपों का निर्भीकता के साथ खंडन किया हो। हाँ, जब हमारा बहादुर अपने झुंड में आ मिलेगा तो बहादुरी की डींग हाँकने में कदापि न चूकेगा। इस अवसर पर वह अन्यमतवालों के सातपुरखों तक को पानी पिला देगा।

हमारे एक बंगाली मित्र का कथन है कि परवार नवयुवक समझदार हैं, पढ़े लिखे हैं परन्तु उन्हें सत्संग की बड़ी आवश्यका है। सत्संग के बिना वे अपनी सारी शक्तियों का दुरुपयोग कर डालते हैं। मैं अपने मित्र के कथन से पूर्णतया सहमत हूं और बात भी दरअसल यही है। परवार समाज के पास क्या नहीं है ? धन है और साथ ही शिक्षितों की संख्या भी यथेष्ठ है। परन्तु इतना होते हुए भी क्या कारण है जो इनमें न तो कोई मंडल है, न कोई सभा है और न कोई ऐसा साधन ही जिससे सब मिल जुल कर आपस में अपने विचार बदल सकें या कुछ उपयोगी चर्चा ही किया करें।

मुख्य बात तो यह है कि परवार समाज ने अभी शिक्षा का महत्व ही नहीं समझा है। हम यह मान बैठे हैं कि थोड़ा बहुत पढ़ना लिखना जान लेना ही बस है। इसके अतिरिक्त शिक्षा में कुछ नहीं है। ऐसी हालत में हमारी समाज में पढ़े लिखे लोगों की संख्या यथेष्ट होते हुए भी उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की संख्या नहीं के बराबर है। और वही कहावत चरितार्थ होती है कि "घर के रहे न घाट के" अथवा "अधजल गगरी छलकत जाय।"

हमारे नवयुवक भाइयों को तो शिक्षा से चिढ़सी है। 'शिक्षा' इस विषय को सुनते ही नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। जरा इनकी हालत पर भी तो गौर कीजिये। लखपती पिता के पुत्र हैं। घर में मुनीम, कारन्दा वगैरह रोजगार धन्धा देखते हैं। परन्तु हमारे चिरंजीव पैसे की कोई चिन्ता न होते हुए भी पढ़ने से इस्तीफा दे बैठते हैं। तब उनका समय या तो ताश खेलने, या दुकान पर बैठने या अधिकतर अपनी ही उम्र के बे पढ़े लिखे लड़कों के साथ आवारा फिरने में ही व्यतीत होता है। हम ऐसे नवयुवकों से भविष्य में क्या आशा रख सकते हैं ? इनकी हालत पर पूरा २ तरस आता है। हा परवार जाति ! तू यदि अपनी अगली पीढ़ी को उन्नत न बना सकी तो तेरे अस्तित्व का चिराग कुछ ही दिनों में गुल हो जायगा !

मैं अपने परवार—भाइयों से विशेषकर नवयुवकों से अनुरोध करूंगा कि वे अपने जीवन को योंही निरर्थक न गंवा देवें। हमारे जीवन का कोई उद्देश है। हम संसार में केवल खाने, कमाने और मर जाने के लिये ही नहीं आये हैं। प्रत्युत एक उच्चादर्श हम सबों के सामने है जिस तक पहुंचना हमारा कर्तव्य है। यदि हम अपने ध्येय तक नहीं पहुँच सके तो हमारा जन्म लेना ही वृथा हुआ। हमें चाहिये कि हम समाज के—जाति के—और देश के कार्य में आगे आकर हाथ बटावें। अपना जीवन व्यक्तिगत ही न रहने दें, उसमें सामाजिक पुट भी देते रहें। संसार में व्यक्तिगत जीवन का कोई मूल्य नहीं। मूल्य सामाजिक-समष्ठिगत जीवन ही का है।

जब तक हम सत्संग न करेंगे, जातीय और विजातीय विद्वानों से न मिलेंगे जुड़ेंगे, देश और जातिके साहित्य को न टटोलेंगे, समाचार पत्र न पढ़ेंगे तब तक हम समष्ठिगत जीवन की महिमा को नहीं समझ सकेंगे। जिस जाति, राष्ट्र या देश में केवल व्यक्ति गत जीवन ही रह जाता है। उसका नाश अवश्य होता है। जब तक हम अपने भाइयों के दुखों को न समझेंगें पर दुख कातरन बनेंगे-अपनी कमजोरी, त्रुटियां और अवगुणों को न जानेंगें और जब तक हम अपने दुर्गणों को न हटा देवेगें तब तक हमारा संसार में कोई मूल्य नहीं हो सका है। हमारा संसार में कोई अस्तित्व नहीं रह सका है। हमें चाहिये कि हमारा जो समय रोजगार धंधे से बचता है उसका सदुपयोग करें। पठन पाठन और ज्ञान की चर्चा में लगावें। उसे योंही निठल्लेपन, चंडू खाने की गप्पों या गंदी हंसी मजाक में बरबाद न कर डालें।

नवयुवक, समाज के सब से महत्वपूर्ण अंग समझे जाते हैं। नवयुवक क्या नहीं कर सके हैं। अगर उनमें अदम्य उत्साह और कार्य-क्षमता हो तो वे आसमान को जमीन से छुला सके हैं? घोर निद्रा में पड़े हुओं को अपने भैरवनाद से जागृत कर देश में क्रान्ति और विप्लव उत्पन्न कर सके हैं—समाज की काया पलट कर सके हैं। और ऐसा कौनसा काम है जो नवयुवकों के लिये असम्भव हो? क्या इतनी शक्ति रखते हुए भी हमारे परवार नवयुवक न चेतेंगे?

जबलपुर के परवार विद्वानों और खास कर अगुओं और वकीलों से मेरी प्रार्थना है, कि वे लोग समाज के इतने बलिष्ठ अंग को योंही निर्जीव न पड़े रहने दें। बल्कि उनको सुसंगठित कर समाज के आगे उच्चादर्श उपस्थित कर देवें। यदि हमारे नवयुवक पथ भ्रष्ट होगये हैं, तो आप लोगों का कर्तव्य है कि उन्हें मार्ग सुझा देवें। उन्हें संगठित कर उनमें उन्नति का बीज बो देवें। यदि आप अपना कर्तव्य पालन न करेंगे तो जाति के शीघ्र पतन और रसातल में जाने के कारण आप ही समझे जांयगे। क्यों कि भारी अपराध उसीका समझा जाता है जो जानते और समझते हुए भी नहीं करते हैं। और मुझे विश्वास है कि हमारे नवयुवक भी आपके इस प्रयत्न को सफल करने में जी तोड़ परिश्रम करेंगे। फिर आप भी परवार जाति के इन संगठित महावीरों को देख आश्चर्य्य सागर में गोते लगावेंगे। उनके अनोखे कार्य्यों को देख विस्मित हो जांयगे। इस संगठित नवयुवक दल द्वारा जो समाज में जागृति होगी वही सच्ची जागृति होगी। अन्यथा साल में एक बार महासभा के रंगमंच पर आकर तालियां पीट देने ही में उन्नति की आशा रखना केवल माया मरीचिका है।

—अमृतलाल जैन।

पाश्चात्य शिक्षा और उसका प्राच्य शिक्षा पर प्रभाव।

(लेखक—श्रीयुत पं. दीपचन्द जी वर्णी)

वर्तमान समय में प्रायः सभी देशों के लोग शिक्षा के महत्व को समझने लगे हैं। और इसी कारण वे अपने अनुभव और शक्ति के अनुसार ज्ञान प्रचार के उपायों में लगे हुए हैं। अन्य देशों के अनुसार हमारा भारतवर्ष भी बहुत काल से भूली हुई अपनी (पैतृक) ज्ञान सम्पत्ति को पुनः प्रकाशित करने के लिये उत्सुक हो उठा है। और इसी लिये यत्र-तत्र पाठशाला-विद्यालय (स्कूल-कालेज) और उनके साथ छात्रावासों की भी सृष्टि रचना हुई और होती जाती है। इसमें संदेह नहीं कि ज्ञान (जो आत्मा का असाधारण और आत्मभूत लक्षण है) के विकाश होने का सब से श्रेष्ठ और सरल उपाय यही है कि किसी भी भाषा और लिपि का ज्ञान कराकर उस विद्यार्थी को उसकी रुचि और बुद्धि के अनुसार किसी एक विषय का पूर्ण विद्वान बनाया जाय। अर्थात् १ विषय मुख्य करके शेष विषय जो उसके साधक हों, गौण रूप से पढ़ाये जांय। जैसा किसी ने कहा है कि "एक आकण्ठ, शेष जानूं पर्यन्त" अर्थात् एक विषय तो आकण्ठ अर्थात् पूर्ण रूप से और शेष विषय जानूं पर्यन्त अर्थात् घुटने तक पढ़ाये जांय।

तात्पर्य यह कि सभी विद्यार्थी सभी विषयों में पूर्ण निष्णात अर्थात् विद्वान् नहीं हो सकते हैं। कहा भी है:— "एकहि साधे सब सधे सब साधे सब जाय" परन्तु आज कल इसमें सन्देह नहीं है कि छापाकला और भिन्न प्रकार का साहित्य प्रचार होने के कारण यद्यपि बांचने का अभ्यास बहुत अधिक हो गया है। और कोई २ को तो बांचने का व्यसन सा ही हो गया है। वे निरंतर पुस्तकों के कीड़े ही बने रहते हैं। यदि कभी उनको कुछ बांचने को न मिले तो उस समय उनको वही अवस्था होती है, जैसे किसी भंगेड़ी को भंग के न मिलने पर हुवा करती है, इत्यादि। तथापि हमको यहां यह देखना है कि क्या वास्तव में इस प्रकार के नये-निरंतर अनेक विषयों के साहित्य को केवल बांचते—पढ़ते रहने ही से कुछ उन का व समाज या देश का लाभ हो सका है? अथवा किसी एक विषय का भले प्रकार अध्ययन करके उसके द्वारा अपना अपने परिवार का, अपने समाज और देश का लाभ हो सका है?

हमारी समझ में वर्तमान समय में न तो मनुष्यों की इतनी बुद्धि ही है और न उनको इतनी आयु ही है कि जिससे वे बहुत विषयों के धुरन्धर विद्वान् पण्डित बन सकें। क्योंकि एक साथ अनेक विषयों को मस्तिष्क में स्थान देने और मनन करने के लिये, बहुत बुद्धि, धारणा शक्ति, बल और समय की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि

आज कल के बहु संख्यक विद्यार्थी बड़ी २ पदवियां (डिग्रियां) पाकर भी केवल आफिस क्लर्क, मुंसिफ, मुनीम, अध्यापक आदि कार्यों से अधिक उन्नति नहीं कर सकते हैं। इसका कारण केवल वही कोर्स की अधिकता हैं। वे पढ़ते २ इतने निर्बल हो जाते हैं कि भोजन तक पचाना उन्हें कठिन हो जाता है, निरंतर मस्तक, पेट, नेत्र आदि की बीमारियों से ग्रसित रहते हैं। इससे और तो क्या अपना और अपने परिवार का निर्वाह करना कठिन पड़ जाता है। अब आप सोच सकते हैं कि जो आदमी निरंतर अपनी आजीविका की चिंता में ही मग्न रहेगा, क्या उस से कुछ भी समाज व देश की उन्नति की आशा की जा सकी है? कदापि नहीं। अब रहे कुछेक लोग जिन्होंने अपनी पठनावस्था में अपने कोर्स (पठनक्रम) को पूरा करते हुए भी अपना ध्येय कोई एक विषय बना रक्खा है। और प्राणपण से उसही में अपने को अर्पण कर रखा है। वे निःसन्देह किसी २ विषय में प्रवीण होते हैं, परंतु ऐसे पुरुषों को आर्थिक सहायता समुचित रीति से न मिलने के कारण वे कुछ नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार शिक्षा का जो महत्व होना चाहिये वह अप्रकट ही रहता है। परन्तु दूसरे प्रकार के पुरुषों को अपनी विद्या का बल रहता है। और वे समय पाकर अवश्य ही कुछ न कुछ महत्व का कार्य संसार के लिये कर ही जाते हैं।

यद्यपि वर्तमान समय में हमारी जैन समाज में भी अनेकों वकील, बैरिस्टर, बी. ए. एम. ए. एल. टी, प्लीडर, मुख्त्यार, तथा, न्यायतीर्थ, तर्कतीर्थ, काव्यतीर्थ, शास्त्री, न्यायरत्न, न्यायालंकार आदि देखने में आते हैं यह हर्ष का विषय है। परंतु इसी के साथ हम को यह कहते कुछ खेद भी होता है, कि इन में कितने समाज सेवा अथवा देश सेवा के कार्य में अग्रसर हुए हैं। और तो विशेष बात जाने दीजिये किन्तु यही देखिये, कि जब हम को हमारे विद्यालयों के लिये कभी नैयायिक, कवि, या वैयाकरण की आवश्यकता होती है तो हमको अब भी (बीसों वर्षों से विद्यालय चलते हुए भी) जैनेतर विद्वानों ही का आश्रय लेना पड़ता है। अर्थात् हमारी समाज, दो चार भी प्रौढ़ विद्वान् एक २ विषय के तैयार न कर सकी, जिससे हमारी पराधीनता ज्यों की त्यों बनी हुई है।

आश्चर्य इस बात का है कि राजकीय स्कूल कालेज़ तो हमारे आधीन नहीं हैं। हां यदि देश के नेता चाहें तो निःसन्देह इस विषय में सुधार कर सके हैं। अर्थात् पठनक्रम का भार कम करके केवल अन्य भाषा के साहित्य व व्याकरण के शेष समस्त विषयों की शिक्षा मातृ भाषा—हिंदी में दी जाने से हमारा यह प्रश्न हल हो सक्ता है। जो संस्थाएं सामाजिक व राष्ट्रीय हैं। उनमें तो उनकी संचालक समितियां ही यथेष्ट सुधार कर सकी हैं। परंतु वहां उपेक्षा है। यही कारण है कि अब तक हमारी समाज में एक २ विषय के अद्वितीय विद्वान तैयार नहीं हुए, इस विषय में हमारे माननीय पंडितवर्य्य गणेशप्रशाद जी वर्णी सागर, प्रारम्भ ही से यही परामर्श देते आये हैं कि धर्म शिक्षा के साथ किसी एक ही विषय की शिक्षा विद्यार्थियों को देना चाहिये परन्तु समाज ने अब तक इस ओर ध्यान नहीं दिया, आशा है कि अब भी यदि समाज के नेतागण और विद्यार्थी वर्ग इस ओर ध्यान देवें तो निसंदेह यह त्रुटि दूर होकर समाज, प्रौढ़ और अपने विषय के अद्वितीय विद्वान् तैयार कर सकेगी। आप

को शंका होगी कि समाज भले कुछ करे, परन्तु गवर्नमेण्ट के विश्वविद्यालयों में तो बड़े बड़े अनुभवी विद्वान बड़े मनन और विचार पूर्वक कार्य करते हैं, इसलिये उनकी भूल कैसे कही जाय ! तो हम भी कहते हैं कि उन की भूल नहीं है, परन्तु वहां तो राजनीति का ध्यान रखकर कार्य किया जाता है, उनको क्लर्क आदि कर्मचारियों की आवश्यकता राज्य कार्य में सहायता पाने के लिये पड़ती है। इसलिये उसी प्रकार की शिक्षाकी मशीनें तैयार की गई हैं और उनसे उनको यथेष्ट लाभ भी हुवा है। यदि कहो कि हमारे भाई क्यों उन से शिक्षा लेते हैं ? तो कहना पड़ेगा कि केवल आजीविका (नौकरी) की भावना से, क्यों कि देश का व्यापार नष्ट होगया है, आलस्य और विलास-प्रियता अधिक बढ़ गई है। अनुकूल खाद्य, पेय और व्यायाम आदि के अभावमें निर्बलता भी हो गई है। यही कारण है कि कुछ थोड़ा बहुत पढ़ पढ़ा कर, कोई सार्टिफिकेट, या डिग्री प्राप्त कर ली। और कहीं नौकरी करके अपने अल्प और भार रूप जीवन को पूर्ण कर दिया। बस यही संक्षेप है। इसी से शिक्षा का महत्व प्रगट नहीं होता है।

एक बात तो यह हुई अब दूसरी सुनिये, वह यह कि हमारी समाज का बहु भाग इस उन्नति के युग में भी शिक्षाका विरोधी है। वह अपने बालकों को शिक्षा नहीं दिलाना चाहता और स्त्री शिक्षा के नाम से तो उनके शरीर में रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या आपने कभी इस ओर भी विचार किया है कि क्यों यह अवस्था है ? अच्छा हम उन्हीं से इस का प्रश्न करते हैं तो यह उत्तर मिलता है कि :—

(१) पढ़ने से बालक बालिकाएं व स्त्रियां, स्वेच्छाचारी हो जाते हैं, न तो उनको धर्म कर्म का ध्यान रहता है, न कुल-मर्यादा व सदाचार का, विनय-सत्कार आज्ञापालन का तो वहां लेश भी नहीं रहता है, इसका कारण यह है कि वे अपने सन्मुख किसी को विद्वान ही नहीं समझते हैं, तब विनय व आज्ञापालन किस का करें ? धर्माचरण, पूजा, दान, तप, संयम, संध्योपासनादि सब उन के सन्मुख पोपलीला (आडम्बर, ढोंग, ढकोसला) हैं। उन से व्यापार तो होता ही नहीं है, रही नौकरी सो पर ग्राम व नगरों में मिलती है, इस लिये अब हम वृद्ध होते हैं, तब हमारे पुत्र अपनी पत्नी को लेकर नौकरी पर जाते हैं। हम तो निःपुत्री घर पर ठूंठके समान पति पत्नी या केवल अकेले ही रह जाते हैं। हां, केवल इतनी आशा पर जीवित रहते हैं कि हमारा भी पुत्र है, पुत्र वधू है, पोता पोती है इत्यादि। तब हम भी वहां क्यों नहीं चले जाते ? तो इसका कारण यह है कि वहां जाने से हमारी आजीविका का जो थोड़ा बहुत साधन है वह भी नष्ट हो जाय, और जो शुद्ध भोजन पान, वायु आदि यहां मिलता था वह चलाजाय, इसके सिवाय, दर्शन, पूजा दान संयमादि जो कुछ यहां हो जाता है, वह भी जाय इत्यादि। और यदि इन सब पर पर्दा डालकर वहां गये भी, तो उनके विचार भिन्न होने से मेल नहीं बनता, तब धोबी के गधे जैसी हकीकत होती है कि "इनके रहे न उनके, अरु बीच में आये गतके"

(२) यदि मानलो हमारे पुण्य से पुत्र पढ़कर सदाचारी, सुशील, विनयी और आज्ञाकारी भी हुवा, तो वह इतना निर्बल हो जाता है, कि हम को उसकी अल्प ही आयु में या तो

उसका वियोग सहना पड़ता है, या उलटी उस की सेवा टहल करना पड़ती है। इत्यादि अब हम आप से पूछते हैं, कि क्या उन का कहना सर्वथा निर्मूल व मिथ्या प्रलाप मात्र है या इस में कुछ तथ्य है? यदि मिथ्या प्रलाप मात्र है, तो आप सोच सकते हैं, कि कौन माता पिता होंगे, जो अपनी सन्तान का आप ही अपवाद करें और उनका उत्कर्ष न चाहें। अर्थात् सुयोग्य, सदाचारी विद्वान, आज्ञाकारी और निरोग सन्तान को देखकर कौन ऐसा धृष्ट माता पिता होगा जो उन की निंदा करे। व विद्या को दोष लगावे। कोई नहीं।

(३) यदि उनका कहना सत्य है, तो क्या यह विद्या पढ़ने का दोष है? नहीं, विद्या का दोष नहीं है। तब क्या है? शिक्षा प्रणाली है, वह दूषित है। इस प्रणाली में केवल पुस्तकी शिक्षा दी जाती है और वह भी धर्म ज्ञान शून्य। और इतना ही नहीं किन्तु और भी अनेक दूषित बातों से युक्त। जैसे अमुक प्रकार की ड्रेस ही में पढ़ने को आना, अप-टुडेट फैशन में रहना इत्यादि। इस के सिवाय शिक्षक महोदय (जिन के स्वभाव और सदाचार का प्रभाव बहुत कुछ शिष्यों पर पड़ता है) प्रायः जैसे होते हैं सो सभी के अनुभव में है। हम जिस स्कूल में अध्ययन करते थे, उसके दो मास्टर तो पर स्त्री सेवन के कारण जेल गये थे, छुपकर तम्बाखू पीने वाले तो लग भग सभी थे एक मास्टर सा. लड़कों से दवातें पुस्तकें आदि भी चुरवाया करते थे, कई निर्लज्ज गाली बकने वाले थे, कई लड़कों से अनेकों वस्तुएं उनके घरवालों की चोरी से मंगवा लेते थे, कई इनाम आदि मांगा करते थे, यह तो छोटे स्कूलों की बात। अब बड़े स्कूलों व कालेजों को देखिये, तो कुशील रत, स्वधर्म विमुख, अभक्ष—भक्षण करने वाले (जैसे सोडावाटर रम, मीट, बिस्कुट, डबल रोटी आदि) नाटक—थियेटर देखनेवाले, फैशन के वशीभूत प्रायः देखे जाते हैं। कुछेक स्वधर्मरत, सदाचारी, परोपकारी, सादगी से रहनेवाले मिलेंगे। इसके सिवाय शिक्षा विदेशी साहित्य व भाषा के द्वारा दी जाती है इससे उनपर विदेशी सभ्यता ही का प्रभाव पड़ता है। उन्हीं के तत्वविज्ञान को जानते हैं, वही भेष और वही भाषा उनको प्रिय लगती है। इस लिये वे शेक्सपियर के ड्रामा, बर्कले और डार्विन के सिद्धान्त मिष्ट्रीज आफ दी कोर्ट आफ लंडन जैसे उपन्यासों को पढ़कर उसी रंग में रंग जाते हैं। उन बेचारों को भारतीय साहित्य, जैसे ज्ञान सुर्योदय नाटक (जैन) अथवा कालिदास के नाटक, द्रव्यसंग्रह (जैन तत्व ग्रंथ) समयसार (जैन वेदान्त) प्रमेयरत्नमालादि (जैन न्याय लाजिक) अथवा गीता (वेदान्त) हितोपदेश, क्षत्रचूड़ामणि आदि की तो गन्ध भी नहीं लगने पाती है। तब वे विचारे उसी प्रकार हो जाते हैं और अपने गुरुजनों व देश-वासियों को असभ्य आदि पदों से भूषित कर देते हैं। उन को जब शहरों की हवा लग जाती है तो ग्राम्य जीवन, शाक पात का सादा भोजन और कुए बावड़ियों का ताजा पानी, देव दर्शन, जातीयपंचायत, देशी भाषा अंगरखा, पगड़ी, धोती, दुपट्टा, आदि पोशाक असह्य हो उठता है। वहां न कुर्सी, टेबिल, न सोडावाटर लेमनेट, न बिस्कुट डबल रोटी न चाय-काफी के कप, न कोट पेन्ट, वास्केट नेकटाई आदि सीनेवाले दर्जी, न हवाखोरी के योग्य सड़कें, न साथ घूमने वाले मित्र,

और न अंग्रेजी सुनने समझने वाले नई सभ्यता से अभिषिक्त लोग मिलते हैं कि जिससे इन का वहां मन लगे, इसलिये अब कभी इनको मनोरंजन करना हुआ तो मित्रों के साथ अपने योग्य सोप, कोम्ब आइल आदि सामग्रियों सहित एक दो दिन को छुट्टियों में चले जाते हैं और वे बिचारे ग्रामीण जन इतने ही में अपनी सन्तान के शुभ दर्शन से अपनी चिर पिपासा को बुझा लेते हैं।

हा! हमारा प्राचीन जीवन कैसा सरल और सादा था जब हमें पानी के बिना शुद्ध दूध और घी खाने को मिलता था। हाथ की रहिटिया के द्वारा कती हुई और हाथ से ही बुनी हुई, जिस में हिंसा का कुछ भी कारण न था ऐसी शुद्ध खादी के अंगरखे, धोती, पगड़ी, आदि पहिरने को मिलते थे। ग्रामों का स्वास्थ्यवर्धक शुद्ध जल वायु, मिलता था। हम भाई को भाई और पिता को पिता कह कर उनके योग्य विनय, प्रणाम वंदना, नमस्कार आदि करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करते थे। और तो क्या हम जिन को आज नीच और नौकर कह कर घृणा करते हैं। ऐसे शूद्र और सेवकादि से भी काका, दादा, भाई, बहिन, फूफो आदि का सम्बन्ध पालते थे। जो जितना सादगी से रहता वह उतना ही सज्जन समझा जाता था। परंतु हाय! आज हम उनको जंगली कह कर हंसी उड़ाते हैं। पूर्व में जब दवाइयों की प्राय: आवश्यकता ही न होती या कम होती थी, तब आज निरंतर डाक्टरों की जरूरत पड़ती है। जब उस समय मनभर भार लेकर कोसों चले जाते थे, तब आज १ मील स्टेशन तक जाने के लिये तांगा और ५ सेर की पोटली ट्रेन में से उतार कर तांगे तक लाने के लिये कुलीकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। जब हम बिना छतरी जूते कोसों चले जाते थे, तब आज घर से निकलने के लिये पूर्ण ड्रेस की आवश्यकता हो गई। यदि सब कुछ हो और कदाचित् जूते के बंध या मोजे न हों तो भले ट्रेन चूक जावे व कार्य बिगड़ जावे बाबू सा० तो निकल नहीं सके हैं। लोग कहते हैं और हम भी मानते हैं कि शिक्षा से स्वतंत्रता आती है, यह सत्य है। परंतु हम को तो वर्तमान शिक्षा से उल्टी परतंत्रता तथा स्वेच्छाचारिता ही का आदर्श मिला।

यह तो हुई पाश्चात्य विद्याभ्यासियों व उस ढंग से पढ़ने वालों की बात। परंतु हमारे प्राच्य विद्याभ्यासी भी इसी रंग ढंग में रंग गये, वे भी अपनेको न बचासके, उन्होंने भी प्राय: केवल एक भाषा को छोड़ कर शेष आचरण व्यवहार में इन्हीं सभ्यों की नकल करली है। वे भी देशी खादी के अंगरखे, पगड़ी आदि छोड़ कर विदेशी और विदेशी ढंग के कोट, कमीज, जाकेट, टोपी, कम्फर्टर, मोजे, बूट, छाते, आदि पहिनते सोडा वाटर अंग्रेजी दवाएं, साबू, तेल, कंघी उस्तरा आदि का उपयोग करते और पैदल व कुछ भार लेकर चलने में शर्माते हैं। उन्हें भी पढ़ने लिखने के लिये टेबिल कुर्सी, गेस, बिजली या केरोसिन आइल का लेम्प ही चाहिये। उनसे भी अब नीचे आसन, चटाई, दरी आदि पर बैठ कर और चौकी पर रख कर तिल्ली, सरसों आदि के तेल को रोशनी में पढ़ा लिखा नहीं जाता है।

वे अपने सिवाय अन्य को मूर्ख, अधर्मी और भ्रष्ट समझते हैं। और अपनी विद्या के बड़े अहम्मन्य बनते हैं। बात बात में "आओ शास्त्रार्थ करलो" का चैलेञ्ज देते हैं। और फिर अपने साम्हने किसी की नहीं सुनते हैं। पुरानी रूढ़ियों को जोर से दृढ़ करने की तान अलापते

हुए स्वयं विरुद्धाचरण करते हैं। शास्त्रों का अर्थ और चर्चा करते हुए उपदेश देते हैं। परंतु यह मात्र दूसरों ही को सुनाने के लिये, अपने लिये नहीं। उनको उपदेश देते और बांचते व सुनते हुए भी कभी वैराग्य नहीं होता, इसी से प्रायः ये व्रतादि धारण नहीं करते हैं। कदाचित् देश काल की अयोग्यता भी बता देते हैं। परंतु क्या देश काल श्रावक के व्रतों का, आगमानुसार शुद्ध भोजन करने की भी अयोग्यता बताता है? क्या शुद्ध भोजन, कुए आदि का जल, दाल, चांवल, गेहूं, नमक आदि भी भारत में शुद्ध नहीं मिलते हैं? परंतु वे पढ़े लिखे हैं और धर्मशास्त्र व न्याय भी जानते हैं इसलिये उनकी युक्तियों के आगे किसी की नहीं चल सकी है, ठीक है—यहां लाचार हो काल दोष मानना पड़ता है।

तात्पर्य यह है कि जो लोग अब भी-शिक्षा से अरुचि दिखाते हैं। वे वास्तव में शिक्षा से तो अरुचि नहीं दिखाते, परन्तु वर्तमान शिक्षित जनों में से बहु संख्यक लोगों ने अपने आचरण का आदर्श उनके सन्मुख ऐसा रक्खा कि जिससे उनका उलटा प्रभाव पड़ा, और वे विद्या पढ़ाने से डरने लगे हैं। यदि हम चाहते हैं कि ज्ञान का महत्व संसार में फैले और प्रायः सभी लोग शिक्षित होजांय, क्या नर क्या नारी? तो हम को उचित है कि हम ऊपर के लेख पर विचार करके अपना ऐसा आदर्श जनता के सन्मुख उपस्थित करें कि जिससे वे स्वयं पढ़ने व अपने बालक बालिकाएं, भाई, बहिनों, पत्नी, माता आदि को पढ़ाने के लिये लालायित हो उठें। इतनाही नहीं वे विद्या पढ़ना पढ़ाना उतना ही आवश्यक समझने लगें, जितना कि जीवन के लिये शुद्धवायु द्वारा श्वासोच्छ्वास लेना आवश्यक है।

इसके लिये आप को (१) यह ध्यान में रखना होगा कि धर्म शास्त्रों का ज्ञान बढ़ाते हुये किसी एक लौकिक विषय को जो आप की आजीविका का साधन हो, परन्तु कुलाचार तथा धर्म के विरुद्ध न हो। भले प्रकार (पूर्ण रूपेण) पढ़ना चाहिये। शेष विषय यदि आवश्यक हों तो गौण रूपेण पढ़ना चाहिये। ताकि कम से कम एक विषय के प्रौढ़ विद्वान हो सको। और लोग तुम्हारे धर्म ज्ञान तथा सदाचार से प्रसन्न रहें (२) अपना विद्यार्थी जीवन बहुत सादा और मितव्ययी बनाना चाहिये, अर्थात् सादे स्वदेशी (विशेष शुद्ध व मिश्र खादीही के) वस्त्र पहिरना, भोजन में स्वास्थ्यवर्द्धक हलका भक्ष्य पदार्थ) जो कुल और धर्म शास्त्र के विरुद्ध न होवें) ग्रहण करना, देशी औषधि (यदि आवश्यक होवे) लेना, अपना भेष देशी, कुलाचार के अनुसार रखना, तथा मादक पदार्थ, बीड़ी सिगरेट, भंग सोडा, लेमनेट, बिस्कुट आदि पदार्थों से बचना, होटल आदि में न खाना (क्यों कि वहां अपवित्र और रोगोत्पादक भोजन ही मिलता है) (३) नाटक, नाच, सर्कस आदि (धन, धर्म, और तन, मन के चोरों से अछूते रहना (बचना) चाहिये (४) अपने गुरु जनों में विनय और शिशु (छोटों) पर प्रेम रखना, मिष्ट भाषण करना, छोटे से छोटे और नीच से नीच मनुष्यों से भी घृणा नहीं करना, अर्थात् समय पड़ने पर सब को समान रीति से सेवा सहायता करना चाहिये (क्यों कि घृणा घृणित कार्यों से की जाना चाहिये न कि व्यक्ति अर्थात् मनुष्यों से। कारण वे घृणित कार्य (आचरण) छोड़ कर अच्छे बन सके हैं। यदि उन से घृणा की जायगी तो वे कदापि नहीं सुधर सकेंगे) सब से प्रेम पूर्वक बर्ताव

करना चाहिये। (५) अपने धर्म और कुलाचार के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिये और कदाचित् ऐसा हो जाय, तो भूल मानकर उस का प्रायश्चित्त करना चाहिये (६) जैसे काने को काना कहना यद्यपि सत्य है, तोभी वह हृदयवेधक है। इसी प्रकार अपने बड़े स्याने व समाज के लोग भले ही निरक्षर और विवेक शून्य होवें, तोभी उन को मूर्ख आदि मर्मभेदी वचनों में न तो सम्बोधन ही करना चाहिये और न उनसे घृणा व अपमान करना चाहिये। किन्तु यथा योग्य सत्कार ही करना चाहिये। (७) तुम चाहे कितने ही विद्वान्, यशस्वी, माननीय पदप्राप्त और प्रौढ़ावस्था युक्त होगये हो, तो भी अपने माता पिता आदि गुरुजनों के सन्मुख बालक ही हो, अतएव उनके निकट छोटे बालकवत् ही आचरण करना चाहिये, इसमें उनको आनन्द आता है। और यही सदाचरण हमको पाश्चात्य शिक्षा से प्रत्यक्ष शिक्षा पर प्रभाव पड़ने वाले दोष का निराकरण करेगा।

विधवा की आह।

[१]

हृदय के अंतस्तल से उठा दुःखमय कैसा यह चीत्कार!
गगन को चीर रहा क्यों, कहो, दुखी का भीषण हाहाकार!
धधकती ज्वालाओं से अहो जला जाता है क्यों संसार?
वायु मण्डल में हुई अशांति कहां से आया उष्ण प्रवाह?
धूम्र मय क्यों सारा आकाश, काँपता है क्यों यह ब्रह्माण्ड?
टूट कर क्यों तारे गिर रहे प्रलय का है कैसा यह काण्ड!

× × × × ×

हाय! कुछ नहीं, कलपती है वह विधवा बाल।
उसी के मुख से, केवल निकली है एक आह।

[२]

भावना का टूटा वह तार-तार हिल गये हृदय वीणा के।
हा! पूजी नहिं मनुहार, हार, लुट गये भाग दीना के॥
माथे का लुटा सुहाग, भाग, फूटे किस बुरे समय में।
फली नहिं, फूली नहिं वह बेल खेल सी रही बाल विस्मय मे॥

× × × × ×

क्या पूर्व जन्म के पाप से, बाला वह बेहाल है?
या समाज की लाज में मिला एक नव लाल है?

—प्रेमिका।

ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य-जीवन ।

(लेखक-आयुर्वेदाचार्य पं० जगवचन्द्र जी काव्यतीर्थ)

आज कल भारतवर्ष प्रायः अपनी दिव्य ज्योति से रहित हो गया है । जहां देखो वहां हज़ारों तेजोहीन, शुष्क, मलिन बदन नरमुंडों की पंक्ति दिखाई देती है । दूसरे देशों में जिस उम्र में भर पूर जवानी रहती है उस उम्र में बेचारे भारतवासी खटिया पर से मुश्किल में उठ पाते हैं । सो भी ऐसा सौभाग्य सर्व साधारण को सुलभ नहीं है । वे तो बेचारे १०-२० वर्ष की अवस्था में ही, धातु क्षीणता, क्षय -जीर्णज्वर अग्निमांद्य, सुजाक, उपदंश, हैजा, प्लेग. आदि सैकड़ों रोगों द्वारा अति शीघ्र परलोक की तैयारी कर लेते हैं, दिन प्रति दिन सैकड़ों नूतन २ रोगों की सृष्टि हो रही है । प्राचीन और नूतन भारतवर्ष की आयु के तारतम्य पर पूर्ण पर विचार करने से ज्ञात होता है कि अबकी और अबकी आयु में आकाश पाताल का अंतर है ।

प्राचीन काल में १००-१२५ वर्ष तक हृष्ट पुष्ट रह कर जीना बिलकुल मामूली बात थी । परन्तु आज कल तो यह बात स्वप्न में भी दुर्लभ है इसका कारण दीर्घ गवेषणा, और अन्वेषण के बाद यही समझ में आता है कि प्राचीन काल में लोग २५ वर्ष की अवस्था पर्यंत पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने को अपना परम धर्म समझते थे । आयुर्वेद के अद्वितीय प्रतिष्ठापकाचार्य महर्षि सुश्रुत ने तो यहां तक लिखा है कि शरीर में रस, रक्त, आदि धातुओं की परिपूर्णता और परिपक्वता ४८ वर्ष के बाद होती है । अतः—

'अष्ट चत्वारिंशद्वर्षाणि ब्रह्मचर्यं चरेत'

(सुश्रुत संहिता)

४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये । भारतवासी अति प्राचीन काल से ब्रह्मचर्य का महत्व और उसकी उपयोगिता जानते चले आ रहे हैं । उनका यह अटल विश्वास है कि संसार में ऐसा कोई दुष्कर कार्य नहीं है जिसको ब्रह्मचर्य संपादन न कर सके । और न ऐसी कोई अति प्रभावशालिनी शक्ति है जिसकी आभा ब्रह्मचर्य के दिव्य तेज के साम्हने फीकी पड़े । यही कारण है कि अन्य विषयों में मत भेद होने पर भी भारतीय सर्वधर्माचार्यों ने एक स्वर से ब्रह्मचर्य परिपालन करने का उपदेश पद पद पर दिया है ।

भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से वर्णाश्रम धर्म की प्रधानता चली आ रही है । आद्य (पहिला) आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम ही है । इस में प्रवेश करने वाले प्रत्येक मनुष्य को २५ वर्ष तक पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य का परिपालन

करना पड़ता था पश्चात गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर पाता था।

आचार्य वाग्भट ने अपने महत्व पूर्ण ग्रन्थ अष्टांग संग्रह में लिखा है:—

'षोडशवर्षायां पञ्चविंशति वर्षः पुत्रार्थं यतेत'

२५ पचीस वर्ष की आयु वाला पुरुष पूर्ण १६ सोलह वर्ष की आयु वाली स्त्री में गर्भधारण करे। यदि इससे कम उम्र वाली स्त्री में कम उम्र वाला पुरुष गर्भधारण करेगा, तो प्रथम गर्भ रह ही नहीं सकता। यदि रह भी जाय तो उससे उत्पन्न हुई संतान रुग्ण, अल्पायु और अधन्य होगी। इस नियम से यह भी ज्ञात होता है कि भारत वर्ष में अतिप्राचीन काल में भी बालविवाह, वृद्ध विवाह जैसी ब्रह्मचर्य की नींव को जड़ से उखाड़ देने वाली दुष्ट प्रथायें बिलकुल ही प्रचलित नहीं थीं।

यही ब्रह्मचर्याश्रम भावी ब्रह्मचर्य-कल्पद्रुम की जड़ है। जिस को आज कल लोगों ने पूर्ण रूप से खोखला कर दिया है। जब तक इस ब्रह्मचर्याश्रम का पुनरुज्जीवन नहीं किया जायगा तब तक ब्रह्मचर्य। कल्पद्रुम का हरा भरा होना दुराशा मात्र है।

'मूलं नास्ति कुतः शाखा'

जब जड़ ही नहीं है तब शाखायें कहां से पैदा हो सकी हैं। इसके अतिरिक्त उस ब्रह्मचर्य कल्पद्रुम की यावज्जीवन रक्षा करने के लिये—पल्लवित करने के लिये भारतीय महर्षियों ने हज़ारों नियम बनाये हैं जिन पर प्राचीन काल में भारतवासियों को चलना ही अत्यावश्यक नहीं था, किन्तु उन नियमों का पालन न करने वाले भारी २ प्रायश्चित्तों के पात्र होते थे।

भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। अतएव नित्य नैमित्तक क्रियाओं के दिनों (अष्टमी चतुर्दशी आदि) को छोड़ कर भी ऐसे बहुत से पर्व के दिन नियत हैं जिनका यदि लेखा लगाया जाय तो ६ माह से भी अधिक हो जावेंगे। इन पर्व के दिनों में ब्रह्मचर्य के पालन करने का उपदेश अवश्य ही दिया गया है। यदि इन दिनों ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया जाय तो उस व्रत की पूर्ति ही नहीं समझी जाती है। जैसा कि प्रातःस्मरणीय महर्षि समन्तभद्राचार्य जी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में लिखा है:—

पंचानां पापानामलंक्रियारंभगंध पुष्पाणाम्।
स्नानांजननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात् ॥ १०७ ॥

इस पद्य में यह बतलाया गया है कि उपवास में अन्य पापों के त्याग के साथ २ मैथुन और उसकी तरफ झुकानेवाले अलंकार इत्र, फुलेल, फूल, स्नान, अंजन आदि का भी अवश्य त्याग करना चाहिये।

यह तो गौणतया ब्रह्मचर्य का उपदेश है। मुख्यतया भी ब्रह्मचर्य का उपदेश महर्षियों ने पद पद पर दिया है। जैसा कि श्रीमान् आचार्य उमास्वामी जी ने सुप्रसिद्ध तत्वार्थसूत्र में कहा है—

'उत्तम क्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयम
तपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणिधर्माः'।

इस सूत्र में ब्रह्मचर्य को आत्मा का धर्म-स्वभाव-माना है। जिसको प्राप्त किये बिना कोई भी प्राणी सच्चा सुख नहीं प्राप्त कर सकता। इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि भारतीय महर्षियों ने ब्रह्मचर्याश्रम को ब्रह्मचर्य की जड़-मूल बनाकर इस ब्रह्मचर्य के पालन के अवसरों द्वारा उस ब्रह्मचर्य कल्पद्रुम को

पूर्णरूप से हरा भरा-पल्लवित कर दिया है जिससे कि भविष्य में कभी सूखने न पावे।

इस उपर्युक्त विवेचन से पता लगता है कि भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य पालन करने की रीति सर्वत्र अप्रतिहत रूप से प्रचलित थी। प्रत्येक भारतवासी पूर्वोक्त ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करके जब अपनी शारीरिक और मानसिक उन्नति चरमसीमा तक प्राप्त कर लेता था तभी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। ऐसी सुव्यवस्था में क्यों न भारतवासी भूमंडल के शिरोमणि हों। और क्यों न १००—१२५ वर्ष तक पूर्ण स्वास्थ्य रह कर जीवित रहने वाले हों?

ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं?

'ब्रह्मणि आत्मनि चर्यं, ब्रह्म गुरुस्तस्मिन् चर्यं तदनुकूल माचरणं वा ब्रह्मचर्यं, विषय भोगों का परित्याग करके केवल आत्मा में रमण करना या स्वच्छन्द प्रवृत्तियों को रोकने के लिये गुरुकुल (ब्रह्मचर्याश्रम) में २४ ४६ और ४८ वर्ष तक पूर्णरूप से वीर्य रक्षा करते हुए गुरुदेव की आज्ञाओं का पालन करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह आत्मा में लीन होना व आत्मा का कल्याण करना—आत्मा को उच्च और पवित्र बनाना बिना सातवीं धातु शुक्र की पूर्ण रक्षा किये नहीं हो सकता। क्योंकि जब एक बिन्दु मात्र वीर्य का क्षय होता है तब शरीर के सार भूत अंश का कितना नाश होता है इसको विचारिये।

मनुष्य जो कुछ खाता पीता है उससे जठराग्नि-पाचनशक्ति के द्वारा परिपाक होकर रस धातु बनती है। यह रस धातु, स्थूलभाग, सूक्ष्मभाग और समभाग इन तीन भागों में विभक्त होती है। स्थूल भाग पूर्वस्थित रसधातु में मिल जाता है। सूक्ष्म भाग अगाड़ी की धातु रक्तमें मिल में जाता है। और मलभाग शरीरात्मक इस धातु का मल जो कफ है उसमें मिल जाता है। इस तरह से प्रतिक्षण एक धातु से दूसरी धातु का पोषण होता है। आहार से धातु प्रतिदिन तैयार होती रहती है परन्तु अवशिष्ट ६ धातुएँ प्रति ५ दिन और १॥ घड़ी में परिवर्तित होती बनती हैं।

जैसा कि आचार्य सुश्रुतजी ने लिखा है:—

सखलुत्रीणि कला सहस्राणि पंचदशच कला एकैकस्मिन धातौ अवतिष्ठते, एवं मासेन रसः शुक्री भवति स्त्रीणाम् चार्तवम्'

वह रस धातु ३०१५ कला (५ दिन) पर्यन्त एक एक धातु मे रहती है इस तरह से १ महिने में शुक्र धातु बनती है।

पाठको, ज़रा आँखें खोलकर देखिये! जो शुक्र धातु कितनी मिहनत, कितने व्यय और कितने दिनों में बनती है। उसको यों ही अति मैथुन, अनंग मैथुन, मुष्टि मैथुन आदि असत्कर्मों द्वारा बरबाद कर देना कितना आत्मघात, कितनी आत्मशक्ति का ह्रास करना है।

आज कल भारतवर्ष में अनेक नवीन २ रोगों व विशेषतः राजयक्ष्मा का दौर दौरा सब जगह दिखाई देरहा है। इसका कारण वीर्यनाश ब्रह्मचर्य का अभाव के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। महर्षि चरकने राजयक्ष्मा के निदान में जो शुक्र क्षय से राजयक्ष्मा पैदा होता है उसका विशद विवरण करके शुक्र की पूर्ण रूप से रक्षा करने का उपदेश दिया है वह बहुत ही ग्राह्य है। अतः उसका यहां पर उल्लेख किया जाता है—

यदावापुरुषोऽति हर्षणात्प्रसक्त भावः स्त्रीष्वति प्रसंगमारभ्यते तस्यातिमात्र प्रसंगा द्रेतः क्षयमुपैति, इत्यादि। १२

जिस समय मनुष्य मैथुन करने की प्रबल इच्छा से आसक्त होकर स्त्रियों में अति प्रसंग करता है, उस समय अति प्रसंग करने से शुक्रधातु क्षीण हो जाती है । शुक्र धातु के क्षीण होजाने पर भी यदि इसका मन स्त्रियों से विरक्त नहीं होता है, किन्तु अति प्रसंग ही करता है। तो जिस समय मैथुन करने की प्रबल इच्छा से स्त्रियों से रमण करता है। उस समय शुक्रधातु के अतिशय क्षीण हो जाने से जननेन्द्रिय से शुक्र तो नहीं निकलता है परन्तु मैथुन में अतिशय परिश्रम करने से वात दोष प्रकुपित होता है। और जीवनमूल शुद्ध रक्त को बहाने वाली धमनियों में प्रवेश करके उन धमनियों में से खून को गिराता है। बाद में वायु की प्रेरणा से शुक्र के मार्ग से रक्त गिरता है। इस तरह वीर्य के क्षय और खून के गिरने से इसके जोड़ शिथिल हो जाते हैं--शरीर रूखा हो जाता है, और बड़ी भारी दुर्बलता आ जाती है। और वायु दोष अत्यंत प्रकुपित हो करके शुक्र शोणित आदि धातुओं के क्षय हो जाने से शून्य शरीर में चक्कर लगाता हुआ मांस और बाकी बचे हुए खून को सुखाता है, कफ और पित्त को अपने स्थान से गिरा देता है। पार्श्वों में शूल, कंधों में संताप व पीड़ा, स्वर भेद (गला बैठना) आदि रोगों को पैदा करके, शिरके कफ को पतला करके उस कफ से संधियों को भर देता है और संधियों में अत्यंत दर्द पैदा कर देता है। पित्त और कफ के प्रकुपित होने से तथा वायु के प्रतिकूल गमन करने से (वायु) ज्वर, खांसी, श्वास, स्वरभेद, और जुकाम को पैदा कर देता है। बाद में शरीर को सुखाने वाले इन उपद्रवों से पीड़ित होकर मनुष्य धीरे २ सूखता हुआ अंत में अति शीघ्र राजयक्ष्मा (क्षय) रूपी काल का ग्रास हो जाता है. आचार्य अंत में उपदेश देते हैं—

कि बुद्धिमान अपने शरीर की रक्षा चाहता हुआ शुक्र की रक्षा करे क्यों कि यह शुक्रधातु आहार की सर्वोत्कृष्ट संपत्ति है। फिर भी कहते हैं —

" आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ॥ क्षयोह्यस्य बहून रोगान् मरणंवा नियच्छति ॥१३
निदानस्थान ।

शुक्र आहार की सर्वोत्कृष्ट संपत्ति हैं। अतः उसकी सब तरह से रक्षा करनी चाहिये। क्यों कि शुक्रके क्षय हो जानेपर अनेक रोग पैदा हो जाते हैं और अंत में मृत्यु तक हो जाती है।

ब्रह्मचर्य के भेद ।

ब्रम्हचर्य के अणुव्रत और महाव्रत रूप से दो भेद हैं। महाव्रत रूप ब्रम्हचर्य का तो सकल संयमी साधु-महात्मा ही पालन कर सकते हैं। परन्तु अणुव्रत रूप ब्रह्मचर्य का जिसका दूसरा नाम स्वदारसंतोषव्रत भी है। सर्व साधारण जनता भी पालन कर सकती है।

पूर्ण ब्रह्मचर्य के विषय में मत भेद ।

आज कल अनेक विद्या विशारद यह कहते हैं कि स्वस्त्री - परस्त्री को त्यागरूप ब्रम्हचर्य से वीर्याधिक्य होता है और उससे अनेक रोगों के पैदा होने की संभावना है, आदि। परन्तु विचार करने से मालूम पड़ता है कि ये विचार निर्भ्रान्तनहीं हैं। क्योंकि ऐसे अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप मनुष्य अब भी मौजूद हैं, जो पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन करने से पैदा हुई पूर्ण नीरोगता, अभूतपूर्व, शारीरिक और मानसिक शक्ति रखते हैं। प्राचीनकालिक इस विषय के दृष्टान्त

तो पौराणिक ग्रन्थों में सैकड़ों विद्यमान हैं। आधुनिक शिक्षित समाज धार्मिक और पौराणिक ग्रन्थों को अनुभव और वैज्ञानिक दृष्टि से शून्य समझती है। अस्तु, उनके इस भ्रमको निराकरण करने का इस समय अवकाश नहीं है परन्तु पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन करने से शरीर नीरोग नहीं रह सकता इस विचार को प्रमाणात्मक सिद्ध करने के लिये भारतीय और यूरोपीय विद्वानों से सम्मत केवल विज्ञान और अनुभव पर ही जिसकी नींव रक्खी गयी है उस आयुर्वेद शास्त्र का प्रमाण उपस्थित करता हूं। और सत्यासत्य के निर्णय के लिये सुयोग्य पाठकों पर ही भार छोड़ता हूँ महर्षि चरक ने कहा है:—

'ब्रह्मचर्य मायुष्कराणां'

भूमंडल में जितने आयुवर्धक पदार्थ हैं। उनमें ब्रह्मचर्य सर्व श्रेष्ठ है। आचार्य वाग्भट ने कहा है—

धर्म्यं 'यशस्य' मायुष्यं लोकद्वय रसायनम
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्य मेकान्त निर्मलम ॥ ४ ॥

उत्तरस्थान अ० ४०

सर्वथा निर्मल ब्रह्मचर्य धर्म, यश और आयु को बढ़ाता है। इस लोक और परलोकमें रसायन है। उस ब्रह्मचर्य की मैं अनुमोदना करता हूं।

'निवृत्तं मद्य मैथुनात'

च० सं० स्था० अ० ४०

जो मनुष्य मद्य (संपूर्ण मादक पदार्थ) और मैथुन का पूर्ण रूप से त्यागी है वह चिरस्थायी है। अर्थात् उसके पास बुढ़ापा और व्याधियाँ फटकने तक नहीं पावेंगी।

उपर्युक्त शुक्र धातु की पूर्णरूप से मन, वचन काय, के द्वारा रक्षा करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं।

इस प्रतिमारूप* पूर्ण ब्रह्मचर्य को साधारण जनता पालन करने में समर्थ नहीं हो सकती है। क्योंकि किसी अनुभवी महात्मा का कथन है

'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वान्समपि कर्षति'

चाहे जैसा ज्ञानी पुरुष क्यों नहो दुर्जय इंद्रिय गण उसको भी अपने जाल में फँसा लेते हैं। अतः उनकी सुलभता के लिये स्वदार संतोष-ब्रह्मचर्याणुव्रत रक्खा गया है। तात्पर्य-यह है कि इस लोक और परलोक में रसायन तो पूर्ण ब्रह्मचर्य (स्वस्त्री परस्त्री का सर्वथा त्याग) ही है। परन्तु इसका पालना सर्वथा असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य ही है। और यह अटल सिद्धान्त है कि बड़े से बड़े कठिन कार्य अभ्यास में आने से सरलातिसरल हो जाते हैं। इसलिये सबसे पहिले ब्रह्मचर्याणुव्रत द्वारा ही ब्रह्मचर्य का अभ्यास किया जाय। बाद में अभ्यास हो जाने से उसकी ऊपर की कक्षा (ब्रह्मचर्य-प्रतिमा, ब्रह्मचर्य-महाव्रत) में प्रवेश करना चाहिये।

(अपूर्ण)

---

* ब्रह्मचर्य प्रतिमा में जो ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है वह अणुव्रत की अपेक्षा बहुत ऊँचे दर्जे का होता है। क्योंकि अणुव्रती स्वदार संतोषी होता है। ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारी मैथुन का सर्वथा त्यागी होता है। जैसा कि स्वामी समन्तभद्राचार्य जी ने कहा है—

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः॥

(रत्नकरंड श्रावकाचार)

"खादी"

१—छींट, लठा, मरकीन की क्या कहैं ?
    गामठी, जीन, लौंकी दिखे दादी।
मोल की थोड़ी टिकाउ महा,
    हम थे जिसके बहु जन्म से आदी।
जो लौं इसे अपनाय रहे,
    बस तौलौं ही खूब रहो जग-चाँदी।
हाय बड़ी बरबादी हुई!
    हम भूले रहे चिरकाल लौं "खादी"

"छाँटी"

२—ईश को नाम महान वलीं,
    यह मैटत है कलि की परिपाटी।
हेतु कृशानु, सुभानु, मयंक को,
    याके बिना सुर तीनहु माटी।
है जिनके ढिग अंध की लाठी
    सो, पार कराय कुघाट—कुघाटी।
सत्य "गुणाकर" त्यों सुख-आकर
    देश महन्त ने छाँटी है "छाँटो"।

[छाँटी = खादी; चोखा की]

"खद्दर"

३—टोपी, टोपा, पगड़ियाँ, दुपट्टे, कुरते, कोट।
जोड़े, जामें, जाँघिये, हाफ-पेण्ट, लंगोट॥
हाफ़-पेण्ट, लंगोट, कमरपट थैले प्यारे।
गद्दे, तकिए और, बिस्तरे, चद्दरे न्यारे।
पूर्ण स्वदेशी बनो करो मत तोपा-तोपी।
मिलो "गुणाकर" पहिन खद्दरी टोपा, टोपी।

— दुलराम चौबे "गुणाकर"।

समाज और व्यक्ति

(लेखक श्रीयुत पं० कुन्दनलाल जी न्यायतीर्थ)

आज कल हमारी इतनी नाज़ुक परिस्थिति हो गई है, कि उससे भय होता है कि हमारे समस्त अधिकार छिन कर कहीं हम लोग सर्वथा सर्वस्व हीन न हो जाँय। अथवा हम अपना अस्तित्व अपनी उग्रता पर ही न खो बैठें। हम निर्बुद्धि एवं निर्धन तो थे ही। अब निस्तेज एवं निष्प्राण भी धीरे २ होते जाते हैं। अभी तक हमारे प्राण किसी तरह अटके हैं अब वे धीरे २ जाने की फिकर में हैं। क्योंकि गौड़ सा० के बिल में जैनी अस्वतंत्र सिद्ध हुए थोड़े ही दिन हुए थे कि एक जैन सपूत द्वारा ही उन पर पुनः आक्रमण किया गया। उसका भी मौखिक प्रतिवाद किये अभी कुछ भी दिन नहीं गुजर पाये थे, कि हमारी प्रतिमायें हमारे दिये टुकड़ों से ही पलने वालों के द्वारा फोड़ी गईं। इतना सब कुछ हुआ, किन्तु फिर भी हमारी कुम्भकर्णी नहीं, किन्तु मचकुन्दी निद्रा नहीं टूटी। और टूटे भी कैसे जब हम में जान हो तब न? वह तो बिचारी अपनी ख्वारी होने के भय से हमारा साथ पहले ही त्याग गई है।

इन सब खराबियों की जड़ हमारी अविद्या ही है जो हमें समाजत्व एवं व्यक्तित्व का ज्ञान नहीं होने देती। हम लोगों ने अपना व्यक्तित्व तो नाश ही कर दिया है जो भी दूसरी इनी गिनी व्यक्तित्व रखने वाली व्यक्तियां दिखती हैं। उनको भी अपने समान करने की धुन में हैं। उनके व्यक्तित्व के कुचलने में ही हम लोगों ने अपनी समस्त शक्तियां व्यय करदी हैं। अतएव

ऐसा अवसर देखकर ही अन्य लोगों ने हम पर अपना वार (घात) करना शुरू कर दिया है। यह हमारी अति का हो एक मात्र फल है। और इसका सब से बड़ा लाञ्छन मेरी प्यारी परवार समाज! तेरे पर ही है। क्योंकि तेरे घर में और तेरे रहते हुए महान् अनर्थ हुआ है। तेरी वह वार करने की शक्ति कहां गई जिससे घबड़ाकर या जिसका लोहा मान कर "तलवार से बच जाए पर परवार के वार से नहीं बचे" ऐसा लोगों ने कहा था। तूने ही उच्छृंखल बुन्देलों के राज्य में रहते हुए अपने धर्म पर जरा भी वार नहीं आने दिया। और आता भी कैसे तेरा नाम ही कह रहा है कि चारों तरफ है वार जिसका उसे परिवार कहते हैं। परन्तु इस समय तो तू चारों तरफ के वारों का स्थान हो रही है सो क्यों?

यह सब हमारी ही गलती का फल है। और वह गलती है व्यक्तित्व को समाजत्व का विनाशक मानना। अथवा दूसरे शब्दों में ऐसा कहिये कि स्वतंत्र विचारों को समाज एवं धर्म का घातक मानना। इन दोनों का परस्पर दूध पानी कैसा, तिल तैल कैसा घनिष्ट संबंध है। क्योंकि सामान्य के बिना विशेष कुछ नहीं और विशेष के बिना सामान्य भी कुछ नहीं। अथवा समाज के बिना स्वतंत्र व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। और स्वतंत्र व्यक्तियों के अभाव में समाज रसातल को चली जाती है।

अतएव जब तक व्यक्तित्व को कायम रखते हुए समाजत्व की सत्ता सब पर न कायम की जायगी तब तक हम कुछ भी न कर सकेंगे। क्योंकि विचारणीय प्रश्न है कि प्रत्येक आदमी को अपने ऊपर हुकूमत करने की योग्य सीमा कौनसी है? समाज की हुकूमत कहां से प्रारम्भ होती है! अथवा होना चाहिये? मनुष्य को जीवन का कितना हिस्सा समाज के लिये देना चाहिये और कितना अलग २ आदमी को वर्तना चाहिये? जिस हिस्से से समाज का अधिक संबंध हो वह हिस्सा समाज को दिया जाना चाहिये और जिसका व्यक्ति से संबंध है वह व्यक्ति को? प्राय: व्यक्ति उसी हिस्से का हकदार है जिसके हानिलाभ का बहुभाग मनुष्य से संबंध रखता हो। अर्थात् जिसके लाभालाभ का वही स्वयं जिम्मेदार है, समाज से उसका कोई भी ताल्लुक नहीं है। तथा समाज का भी एकान्त कर्तव्य है कि उसके उस संबंध में न बोले? कारण वह उसके अधिकार के बाहर की बात है। जब समाज मनुष्य के व्यक्तित्व को भी अपने अधिकार में करके उसपर अपनी अनुचित आज्ञा चलाती है तो तंग होकर अंत में व्यक्तित्वशाली व्यक्ति को अन्य मार्ग का अवलंबन करना पड़ता है। समाज की दस्तंदाजी उसी सीमा तक ठीक है जहां तक उसके अधिकार में बाधा आती हो अथवा उससे उसको बाधा पहुंचती हो।

परन्तु हम जिस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर अपने भिन्न धर्मी एवं भिन्न जातीय पड़ोसी से भी सहायता के अधिकारी हैं। उसी प्रकार समाज भी प्रति समय भिन्न २ विचार वाले लोगों से सहायता एवं सेवा लेने की अधिकारी है। उनकी सेवा से समाज को वंचित करने का किसी को भी अधिकार नहीं। यदि कोई उनके मार्ग को भ्रम पूर्ण बतला कर-उनके द्वारा बतलाये गये उन्नति के उपायों की गलती बतलाकर उनको सेवा से वंचित करने का साहस करेगा तो समझना चाहिये कि वे समाजका महान् अपकार कर रहे हैं। तथा स्वयं सर्वज्ञ होने का दावा कर रहे हैं। क्योंकि वे दूसरे के मार्ग को भ्रम पूर्ण बतला रहे हैं

तथा अपने मार्ग को निर्दोष बतलाकर दूसरों को उसके मानने के लिये मजबूर करते हैं। उनका ऐसा करना तभी योग्य हो सकता है जब कि वे पूर्ण निश्चय करलें कि हमारा मार्ग सर्वथा निर्भ्रान्त है, और उसमें कभी भी भ्रान्तता नहीं आ सकती। किन्तु सिवाय सर्वज्ञ के कोई ऐसा हो नहीं सकता कि जिसका कहना सर्वथा निर्भ्रान्त हो। अतएव हमको क्या अधिकार है कि अपने कथनानुसार ही सबको चलावें। सम्भव है हमारा ही कथन भ्रान्त हो अथवा दूसरे का कथन सर्वथा भ्रान्त ही हो। परन्तु जब तक आप उसको उसके सिद्धान्त की भ्रान्तता कबूल न करादें तब तक आप उसे समाज सेवा करने से वंचित न करें। अन्यथा आप एक स्वाधीनचेता सेवक से हाथ धो बैठेंगे और उनकी जगह आरम्भशूर एवं गृह शार्दूल बनने वाले जो हजूर लोगों को ही समाज का कर्णधार होते देखेंगे।

इन्ही बातोंके प्रचार ने हमारी संगठित शक्ति का नाश कर हमारे घर में तूं तूं मैं मैं का साम्राज्य खड़ा कर दिया है। अन्यथा हमारी समाज में आज अनेकता का साम्राज्य न होता। अब पुन: प्रार्थना है कि हम लोग अपनी गई हुई कीर्ति को फिर प्राप्त करने की कोशिश करें और उसका एक मात्र उपाय परवार समाज को सच्चा परिवार कुटुम्ब बना देना है।

अहिंसा।

(१)

जीवन के तारन को जारि जारि छार करि;
नूतन उमंगन की सरिता बहावेंगे।
सेना सजावें तोप खगगनि नसावें जाइ,
गिरि ते गिरेंगे नेक हाथ न बढ़ावेंगे॥

(२)

आतम बल दुग्गन को जीति जीति फोरि फेरि,
चण्डी जग बन्डी को न्योता पठावेंगे।
अरि को भगावें नेक रारि न बढ़ावें वीर—
अम्बा-पद चूमि चूमि पय रस पियावेंगे।

(३)

सुन्दर सुबाग बीच मदनलाल वार के
पंचनद देसहु की महिमा दिखावेंगे।
कुन्दन, सरदारी से बाल-वीर भेज दे—
डायर, उडायर से दानव छकावेंगे॥

(४)

रेवा के दक्खिन के नागराज नागदेस,
जेलन में पेलि पेलि गुरुता गहावेंगे।
सारे दिक् मण्डल के वीरन को बोलि के,
छके छुड़ावें लोह हाथ ना लगावेंगे।

(५)

लघुता महीप माँहिं गुरुता गरीबन में
रूस-नाह-बीन-तान धीमी सुनावेंगे।
भूधर, जलीधर हिमीधर में जाइ जहां,
जजिकै जगावें मात, रावरे कहावेंगे।
—प्यारे।

निर्धनता में आनन्द ।
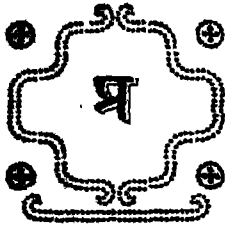
प्रत्येक युग में बड़े २ मनुष्यों ने अपने उच्च अभीष्ट को सिद्ध करने के लिए धन सम्पति का परित्याग करके निर्धनता स्वीकार की है । इसका ज्वलन्त दृष्टांन्त महात्मा गांधीजी हैं। तब क्यों मनुष्य निर्धनता को बुरा समझते हैं ? जिस निर्धनता का महापुरुषों ने स्वागत किया है। उस निर्धनता को साधारण मनुष्य आपत्ति और दुःख क्यों समझते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही सरल और सीधा है। पहिली अवस्था में निर्धनता का विचारों की उत्कृष्टता से सम्बंध है, जिसमें बुराई नाम को भी नहीं पाई जाती। इस प्रकार की निर्धनता उसके गौरव--गरिमा को बढ़ाने वाली होती है ? वह सब को प्रिय लगती है।

जब मनुष्य किसी साधु सन्यासी को निर्धन होने पर भी प्रसन्नचित्त और हर्षित देखते हैं तो हजारों मनुष्य उसके जीवन के समान अपना जीवन व्यतीत करने की कोशिश करते हैं। दूसरी अवस्था में निर्धनता का सम्बन्ध संसार के सब खोटे और घृणित पदार्थों से है। जैसे नशा, दुर्गंधि, दीर्घसूत्रता अन्याय, अपमान इत्यादि । सबबुराई का आदि कारण निर्धनता है अथवा पाप ? इस प्रश्न का उत्तर अकाट्य है और वह पाप है। जब निर्धनता का पाप से तनिक भी सम्बंध नहीं रहेगा तो उसमें से विष जाता रहेगा-उसमें से बुराई जाती रहेगी और फिर उससे अच्छे २ कार्य साधन होने लगेंगे।

महात्मा कानफूसियस ने अपने धनी शिष्यों को अपने एक निर्धन शिष्य यानहुई का त्याग के विषय में दृष्टान्त दिया था। यद्यपि वह इतना निर्धन और दीन था कि उसके पास खाने के लिए सिवाय चांवल और पानी के कुछ नहीं था। सोने के लिए एक कुटी थी, परन्तु अपने आराम के लिए उसने किसी से भी कुछ याचना नहीं की किन्तु उसी में संतोष धारण किया। यदि दूसरा मनुष्य इस प्रकार निर्धन होता तो अवश्य ही दुखी और क्लेशित रहता, परन्तु उसने अपने मन की शांति किसी प्रकार भी भंग न होने दी। निर्धनता से सच्चरित्रता नहीं बिगड़ सकती यानहुई की निर्धनता ने उसके गुणों को और भी दैदीप्यमान बना दिया।

साधारणतया समाज सुधारक लोग निर्धनता को पाप का कारण और धन को दुराचार का कारण बताते हैं। जहां कारण है वहां कार्य का होना संभव है। यदि धन दुराचार का कारण होता और निर्धनता पाप और पतन का कारण होती तो संसार के सब धनी लोग दुराचारी हो जाते और निर्धन मनुष्य नीच और पतित बन जाते।

बुरा मनुष्य बुराई करने से किसी प्रकार भी नहीं रुक सकता चाहे वह धनी हो अथवा निर्धन। भलाई करने वाला मनुष्य भलाई करने से किसी प्रकार भी नहीं चूक सकता। बुरे समय में भले मनुष्य की बुराई दूर करने के लिए सहायक होते हैं। वे बुराई को पैदा नहीं कर सकते।

अपनी आर्थिक अवस्था से असन्तोष प्रगट करना निर्धनता नहीं। बहुत से मनुष्य जिनकी आर्थिक आय हजारों लाखों रुपये है वे भी अपने आप को निर्धन समझते हैं। इस प्रकार का विचार ही उनके दुःख का कारण है। उनका वास्तविक दुःख उनकी लोभ कषाय है। वे निर्धनता के कारण दुखी नहीं हो रहे हैं किन्तु धन की अधिक लालसा ही उनके दुःख का कारण हो रही है। निर्धनता का विचार मन में ही पाया जाता है थैली में नहीं। जब तक मनुष्य धन की इच्छा करता रहता है तब तक वह अपने को दुःखी दरिद्री ही समझता है। क्योंकि लालच मानसिकनिर्धनता है। लोभी मनुष्य चाहे लक्षाधिपति ही क्यों न हो जाए किन्तु वह उतना ही निर्धन है जितना एक द्रव्यहीन मनुष्य।

इसके अतिरिक्त बहुत से मनुष्य निर्धन और पतितावस्था में ही सुख मान रहे हैं। उन की अवस्था बड़ी ही शोचनीय है, जो मलिनता, दुर्व्यवस्था, आलस्य, स्वार्थता, बुरे विचार, और बुरी संगति में पड़े रहते हैं और उसी में सन्तोष और सुख मान रहे हैं। यहां पर गरीबी से मतलब मानसिक अवस्था से है अर्थात् जिनके मन बुरे विचारों में डूबे रहते हैं वे ही निर्धन और गरीब हैं। अतः! प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य और परम कर्तव्य है कि वह अपने मानसिक विकारों को दूर करदे जिससे उसकी मानसिक निर्धनता दूर हो जाए। जब मनुष्य अपने अन्तरंग को साफ कर लेगा तो फिर वह कभी नीच और पतित अवस्था में रहना पसंद नहीं करेगा। जब उसका मन ठीक तौर से काम करने लगेगा तो वह अपने घर को भी व्यवस्थित कर लेगा, उसे और उसके पड़ोसियों को इस बात का पता लग जाएगा कि उसने अपने आप को व्यवस्थित बना लिया-अब वह अपनी बाह्य वस्तुओं को ठीक तौर से चलावेगा तो उसके विशुद्ध हृदय के कारण उसका जीवन सुधर जायगा।

———— नाथूराम सिंघई।

समयानुकूल शिक्षा की आवश्यक्ता।

उन्नतिके लिए शिक्षा परमावश्यक वस्तु है। इसे सभी मानते हैं। किन्तु अभी तक निश्चय नहीं हो पाया कि शिक्षा कैसी होनी चाहिये।

शिक्षा और उन्नति में कार्यकारणभाव होने से यह मानने में कोई आपत्ति नहीं की जा सकी है, कि "जिसको जैसी उन्नति करनी है वह वैसी ही शिक्षा को टटोले"। आध्यात्मिक उन्नति चाहने वाले का काम कामसूत्र और रति रहस्य की शिक्षा से नहीं चलसका और न आर्थिक उन्नति करने वाले को आत्मख्यातिसमयसार तथा गोमट्टसार की शिक्षा सहायता दे सकी है।

सब की आवश्यकताएं और अभिलाषाएं एकसी नहीं होतीं। उनमें देश, काल और

व्यक्ति की अपेक्षा भेद होता है। अतएव यह कहना उपयुक्त नहीं हो सकता है, कि "सब का शिक्षासूत्र एक हो सबको एकसी ही शिक्षा दी जाय"। इतना होने पर भी न जाने क्यों जैन समाज इस बात में चुप्पी साधे है? समाज की ओरसे जितनी शिक्षा संस्थाएं हैं या यों कहिये कि जिस शिक्षाका सम्बन्ध समाज से है उसका प्रायः सर्वत्र एक सा ढर्रा है। दो या तीन दशाब्दियों पहिले जो शिक्षाक्रम तैयार किया गया था वही आज भी प्रचलित है। पहिले जिन आवश्यकताओं और कठिनाइयों को लक्ष्य करके शिक्षा क्रम निश्चित किया था, वे तो प्रायः बदल गईं, किन्तु अभीतक शिक्षाक्रम वही है। इसलिए समाज के कुछ विचारक शिक्षितों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। अब अवसर है कि पूर्ण विचार करके समाज के शिक्षाक्रम को बदलें।

यहां पर यह कहदेना भी अनावश्यक न होगा, कि शिक्षासंस्थाओं के संचालकों की इस शिकायत का उत्तर भी स्पष्ट हो जाता है कि "समाज की संस्थाओं में बड़े आदमी (चाहे वे सेठ हों या जमीदार, वकील हों या ऐसे ही कोई लब्धप्रतिष्ठ) अपने लड़कों को नहीं पढ़ाते" पढ़ावें कैसे और क्यों? उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली शिक्षा तो वहां दी ही नहीं जाती।

यद्यपि किसी भाषा का ज्ञानमात्र शिक्षा नहीं है। तथापि बिना भाषाज्ञान के पूर्ण शिक्षा नहीं हो सकी है। अतः शिक्षा के लिए एक भाषा निश्चित करलेना भी आवश्यक है। आज कल जैसे सरकारी शिक्षा शालाओं में अंग्रेजी भाषा का प्राधान्य है। ठीक वैसे ही जैन समाज की संस्थाओं में संस्कृतभाषा का बोल बाला है।

अंग्रेजी भाषा का पूर्ण आडोलन करने वाले और उसे अच्छी तरह समझने वाले अनेकों विशेषज्ञों का कहना है कि अंग्रेजी भाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करना पहाड़ खोदकर चूहा निकालने से कम परिहास की बात नहीं है। यह शिक्षा जितनी मँहगी और परिश्रम साध्य है, उतना तो क्या शतांश भी फल नहीं देती। यह बात दूसरी है, कि भारत में अंग्रेजों के शासन की नींव जमाने और उनके स्वार्थमय शासन को चलाने वाले भारतीय भी इसी अंग्रेजी भाषा की बदौलत तैयार हुए और हो रहे हैं। किन्तु भारत का हित इससे अपेक्षाकृत तनिक भी नहीं है। ठीक इसी से लगभग मिलती जुलती बात जैन समाज में संस्कृतभाषा की शिक्षा से है। समाज में जितने व्यय और परिश्रम से छात्र तैयार हुए और हो रहे हैं, वास्तव में उतना फल प्राप्त नहीं हुआ। कहीं २ और कतिपय छात्र तो समाज का अधिक खर्च कराके भी उलटे समाज के लिए भारस्वरूप हो रहे हैं। अधिकांश छात्र इस शिक्षा से केवल परावलम्बीमात्र बनाये गये एवं बनाए जा रहे हैं। स्वावलंबन का मार्ग ही इस शिक्षा ने रोक दिया है।

समाज में संस्कृतभाषा द्वारा प्रायः चार विषयों की शिक्षा प्रचलित है। धर्म, न्याय, व्याकरण और साहित्य। इनमें व्याकरण तो केवल साधन या सहायक रूप से पढ़ा और पढ़ाया गया है, इससे अधिक की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि व्याकरण का प्रयोजन भाषा का शुद्ध व्यवहार करना है। किन्तु समाज ने इसे भी एक स्वतंत्र विषय समझ कर अपनाने की कई बार चेष्टा की है, जो कि प्रायः सदा असफल हुई है। किन्तु छात्रों को प्रारम्भ से ही व्याकरण रटाने का क्रम अभी न जाने कब

तक और रहेगा। जहां छात्र ने शिक्षा का नाम लिया कि "अ इ उ ण" आदि सूत्रों की रटन्त शुरू करादीगई। और कुछ दिन रटते रहने का परिणाम यह होता है, कि आगे चलकर प्रत्येक विषय को रटने ही का अभ्यास पड़जाता है। हमें एक ऐसे व्यक्ति का नाम याद है, कि जिन्हें व्याकरण विशारद के प्रथम खण्ड के छात्र होने से न्यायदीपिका का पूर्वार्द्ध भी पढ़ना था। आपने अपनी रटू स्वभाव से (जो कि व्याकरण की कृपा से होगया था) उसे भी रट डाला। परीक्षा के समय समझदारी के सरल प्रश्नों के होने पर भी आप हताश होगये। प्रश्नपत्र पाने के बाद १।। बार कण्ठस्थित न्याय दीपिका का पाठ कर जाने पर भी अन्त में आप को यही कहने के लिए लाचार होना पड़ा, कि "न जाने परीक्षक ने कहां के प्रश्न बनाकर रख दिये हैं न्यायदीपिका का तो एक भी प्रश्न नहीं है"

हम यह नहीं कहते हैं कि व्याकरण पढ़ायाही न जाय, नहीं, आवश्यकतानुसार परिशोधित रूप में पढ़ाये जाने की व्यवस्था हो।

साहित्य, न्याय और धर्मशास्त्र की पठन पाठन शैली संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर ही होती है। क्योंकि प्राकृत और संस्कृतभाषा में ही अधिकांश जैन साहित्य, न्याय और धर्मशास्त्र हैं। इन विषयों के शास्त्रों में जितना रहस्य है, संस्कृतभाषा में शिक्षा होने के कारण उसका चतुर्थांश तो क्या दशमांश भी छात्रों की समझ में नहीं आता। वह समय और था जबकि आजकल की हिन्दी भाषा की तरह संस्कृतभाषा भी मातृभाषा थी। उस समय उन ग्रन्थों के समझने और समझाने में इतनी कठिनाइयां नहीं थीं। मातृभाषा में शिक्षा देना और पाना दोनों अति सरल कार्य हैं। इस विषय में हम यह भी स्मरण दिला देना आवश्यक समझते हैं, कि जबतक देश में प्राकृतभाषा का प्राधान्य रहा बोलचाल में प्राकृतभाषा रही, तब तक हमारे जैनाचार्यों ने प्राकृतभाषा द्वारा उपदेश या शिक्षा देने के लिए, प्राकृतभाषा में ग्रन्थ रचना की थी। किन्तु ज्यों ही संस्कृतभाषा का अधिक प्रचार हुआ—सार्वजनिक व्यवहार में संस्कृतभाषा को स्थान मिला, त्योंही संस्कृतभाषा में वे भी भाव भर दिये गये। श्रीस्वामी कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के उन भावों को, टीकाकार की बुद्धि से, संस्कृतभाषा में ढालने का प्रयत्न किया गया। इसी तरह अब आवश्यकता है, कि जिन भावों को समाज में शिक्षा देना है यदि वे प्राकृत और संस्कृतभाषा में हैं, तो उन्हें इस समय की सार्वजनिक भाषा हिन्दी में ढालना, और फिर वे छात्रों को सिखाना चाहिये।

जिन धर्म, न्याय या साहित्य विषयक ज्ञान के लिए संस्कृतभाषा द्वारा छात्रों को वर्षों सिखाने पर भी यथार्थ परिणाम नहीं हो पाता। उसी को हिन्दी भाषा द्वारा समझाने में कितनी सहूलियत, अल्प समय और शक्ति लगानी होगी? यह बात शिक्षा के तत्त्व को जानने वालों से छिपी नहीं है।

साथही यह बात भी विचारणीय है, कि जब लौकिक और पारलौकिक उन्नतियों के लिए ही शिक्षा की आवश्यकता है। तब यह निर्णय होना ही चाहिये कि इस समय किस उन्नति का अवसर है, और उसके लिए कौनसी शिक्षा उपयोगी है।

समाज की सब शिक्षा संस्थाओं के पठन क्रम देख लीजिये, और उनमें स्वीकृत संस्कृत ग्रन्थों का अवलोकन कर डालिये उन्हें उनमें

लौकिक उन्नति विषयक क्या २ सामग्री-बातें हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में बड़ी निराशा भरी जबान से कहना पड़ता है कि "कुछ भी नहीं और जो हैं भी वे इतनी आवृत हैं कि बड़ी कठिनाई से भी उनसे कोई लाभ नहीं उठाया जा रहा है"। ऐसी दशा में यह बात कह देना भी आपत्तिजनक न होना चाहिये, कि ऐहलौकिक उन्नति के विचार से इनका पठनपाठन करना मृगतृष्णावत् सर्वथा निराशाजनक है। अब रही पारलौकिक या आध्यात्मिक उन्नति इसमें अवश्य ही उपलब्ध संस्कृत जैन ग्रन्थ अचूक साधन हैं, क्रमशः आध्यात्मिक उन्नति का जैसा सरल मार्ग इन शास्त्रों में मिलता है, वैसा प्रामाणीक कथन अन्यान्य शास्त्रों में न उपलब्ध हुआ और न हो सकेगा। किन्तु इस विषय में भी इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि देश काल की अनुकूलता न होने से यह बात भी केवल मात्र विश्वास करने की सामग्री है, कार्य रूप में परिणत होने की नहीं। क्योंकि आज २०। २५ वर्ष का अनुभव सामने है। वह इसबात की साक्षी नहीं दे रही है, कि वर्तमान शैली से इन ग्रन्थों के पठन पाठन का फल कितने व्यक्तियों को लाभप्रद हुआ है। संस्कृत शिक्षालयों से निकले हुए विद्वानों में से १। २ को छोड़ कर किसीने भी आध्यात्मिक उन्नति के लिए आगे क़दम नहीं बढ़ाया। और जिन १। २ के विषय में यह लिखा जा रहा है उनसे अधिक आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रवृत करने वाले हिन्दी भाषा ज्ञानी व्यक्ति मिल रहे हैं। उसका कारण यह है कि देश काल और समाज की परिस्थिति इस योग्य नहीं है जो आध्यात्मिक उन्नति की ओर झुकने दे। किन्तु जहां देखिये वहां लौकिक उन्नति के लिये नाना प्रकार के प्रयत्न होरहे हैं, इसी में तन मन, धन, लगाने के लिए लोग सरपट दौड़ लगा रहे हैं। और अधिकांश में सफलमनोरथ भी होते हैं।

इन सब बातों पर पूर्ण विचार करने से यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकी है, कि अब जैन समाज को अपनी शिक्षा संस्थाओं के शिक्षा क्रम का शीघ्र संशोधन करना चाहिये। संस्कृत ग्रन्थों में जितना २ लौकिक उन्नति का सहायक अंश है, उसे अन्यान्य भाषाओं के ग्रन्थों के सारांशों के साथ हिन्दी भाषा में ढाल लीजिये। यद्यपि यह कार्य परिश्रम सापेक्ष है तथापि फल की ओर दृष्टि देने से परिश्रम से कई गुणा लाभदायक भी है यह बात दूसरी है कि कुछ छात्रों को संस्कृत भाषा का ज्ञान भी कराया जाय, या ऊंची कक्षाओं में इसका प्रबन्ध किया जाय। किन्तु सबके साथ एकसा क्रम काम में लाना किसी प्रकार शुभ फलदाई नहीं हो सका है। अस्तु,

अन्त में हम संस्कृत भाषा की वर्तमान पठन पाठन शैली की अनुपयोगिता के विषय में भी कुछ कहदेना—आवश्यक समझते हैं। आज समाज में इस शिक्षा से दीक्षित व्यक्तियों की संख्या कम नहीं हैं, चाहे वह फीसदी का हिसाब निकालने पर बहुत थोड़ी साबित करदी जा सकी है किन्तु जो भी है वह प्रायः संतोषप्रद है। इन सबको प्रारम्भ से ही धर्मशिक्षा दी जाती है। जिसका देना अनिवार्य और आवश्यक भी है इतना होने पर भी शास्त्रीय कक्षा तक धर्मशास्त्र पढ़े हुए व्यक्तियों का ही नहीं किन्तु वहां तक अनेकों बार पढ़ाने वालों का जीवन भी धर्मशास्त्र की आदरणीय शान्ति की छाया या सुगंधसे आच्छादित एवं सुगन्धित नहीं पाया जाता है। इसका कारण यह है कि पढ़ने और पढ़ाने

वालों का लक्ष्य ही कुछ और होता है; ग्रन्थ समाप्त करना, उत्तीर्ण होना और अन्त में वहीं अध्यापनादि कार्य करने लगजाना ही उद्देश्य समझा जाता है । धार्मिकशिक्षा से अपने जीवन को किसरूप बनाना चाहिये इस बात का प्रायः अन्त तक बोध ही नहीं होता है । नहीं-तो क्या शास्त्रीय कक्षातकका धर्मशास्त्र पढ़ने पढ़ाने वाले एवं शास्त्र सभाओं, व्याख्यानों और लेखों में प्रत्येक गृहस्थ का नैमित्तिक एवं आवश्यक कर्तव्य बताते और सिद्ध करते हुए भी स्वयं आदर्श से विमुख रहते ? पर्व दिवसों तथा विशेष निमित्तों में स्वयं सदा दूर रहने—बचने का प्रयत्न क्यों करते ? उसे केवल अनपढ़ या भोलीभाली जनता के माथे मढ़ देने मात्र में ही अपनी चतुराई समझते हैं । आश्चर्य ! हमारी इस बात से प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति को सहमत होना पड़ेगा कि वर्तमानशिक्षाप्रणाली छात्रों को एक ऐसी मशीन बनाने का उपाय है कि जो मौके पर स्वपठित विषय को जनता के सामने उपस्थित कर दे । इसीलिए कहीं २ कतिपय विद्वानों के भी मुख से सुनाया गया है कि "भाई । हम जोकुछ कहें वह करो, किन्तु हम जो कुछ करें उससे तुम्हें क्या ? "

हम शिक्षा की वास्तविकता और खासकर धार्मिक शिक्षा की वास्तविकता एवं सचाई इसी में समझते हैं कि कहने और करने में अन्तर न रहे । जहां तक कहने और करने में भेद है वहांतक धार्मिक शिक्षा का नाम लेना भी उसे लाञ्छित एवं कलंकित करना है । जैसा कि हो रहा है ।

यह बात अनेकों शिक्षितों के विचार में आई होगी । कि उपन्यास या नाटक पढ़ने और देखने से इतना असर हो जाता है, कि कितने ही समय तक वे मतीत बातें ही दृष्टी के सामने जीती जागती सी घूमती रहती हैं. उनमें की अनेकों बातों का इतना प्रभाव भी देखा गया है, कि लोग स्वय वैसा बनने की चेष्टा करते हैं । सफल मनोरथ या विफल मनोरथ होना साधनादि सामग्रीपर अवलम्बित है । यद्यपि इसके उत्तर में यह कह दिया जाता है कि खोटे कामों में बुद्धि स्वयं ही प्रवृत्त होती है । अच्छे कामों में तो प्रयत्न करने पर भी नहीं लगती । किन्तु हम इस बात के कायल नहीं है और न सूक्ष्म दृष्टि से विचारने पर यह बात सिद्ध ही होती है । किन्तु दर असल बात यह है कि उनमें चरित्र चित्रण इस खूबी और चतुराई से किया जाता है कि वह अपना असर बिना डाले नहीं रहसका है । भर्तृहरि नाटक का स्टेज पर खेलाजाना बन्द किया गया ! और क्यों उनके जीवनचरित्र, शतकों तथा उनसे ही संबंध रखने वाली पुस्तकों के प्रचार में कोई बाधा नहीं डाली गई ? यह बात इतनी स्पष्ट है कि बिना बताए ही प्रत्येक पाठक इस नतीजेतक पहुँच सके हैं कि नाटक पुर असर या प्रभावोत्पादक वस्तु थी—सजीव शिक्षा थी । किन्तु अन्य पुस्तकों में उस बात का नामो निशान तक न था ।

यदि शिक्षा—शिक्षा के वास्तविकरूप में दी जाय तो धर्म के बड़े ग्रन्थों की तो कौन कहे, रत्नकरण्डश्रावकाचार और श्री तत्वार्थ सूत्र ही ऐसे अमूल्यरत्न हैं कि जिनके पठन पाठन से आदर्श धार्मिक जीवन बन सका है ।

क्या हम आशा करें कि समाज में वास्तविक शिक्षा का प्रचार होने का प्रयत्न होगा ? यदि हो तो धर्म न्याय और साहित्यादि सब विषयों को यथार्थता से, न केवल जैन समाज, किन्तु सारे संसार में एक नई बात नज़र आवे और कल्याण हो । "उभिनीषु"

सूखा सरोवर।

निकल गये वे दिन जब जिनमें,
निर्मल जल लहराता था।
उछल उछल कर सदा समीरण,
क्रीड़ा केलि मचाता था॥
कभी नदी का अनघड़ रहता,
कभी नारियाँ आती थीं।
क्रीड़ा करते कभी बाल गण,
कभी लड़कियाँ गाती थीं॥१॥

सावन का त्योहारों ही में,
अमरपुरी बन जाता था।
मेरे ही तट पर मानो,
बड़ा नगर बस जाता था॥

प्यासे होकर पशु-पक्षी भी,
सुख से दौड़े आते थे।
हाथी से चींटी तक प्राणी,
निशि दिन आते जाते थे॥२॥

खिले हुए थे कमल मनोहर,
भौंरे गुन गुन करते थे।
पत्र-पत्र पर सुन्दर पक्षी,
हो स्वच्छन्द विचरते थे॥

हिला हिला पनडुब्बी सिर को,
चक्कर रोज लगाती थी।
कभी डूबकर कभी निकलकर,
जल पर खेल मचाती थी॥३॥

हरे और सुन्दर जल पौधे,
जल पर थे जो खिले हुए।
दीखे स्वच्छ फर्श पर मानो,
हरे पत्र हैं बिछे हुए॥

तट पर लगे वृक्ष या पौधे,
हरे भरे दिखलाते थे।
जगह जगह पर घाट बने थे,
जिनमें लोग नहाते थे॥४॥

कभी हुई थी नहीं देख भी,
तट पर शोभा देती थी।
योगी, यती और अभ्यागत
को भी आश्रय देती थी॥

पथिक जनों को मैं प्यारा था,
प्यासों का जीवन धन था।
ऊँच नीच की नीति नहीं थी,
उपकारी उज्ज्वल मन था॥५॥

तपे हुओं को ठण्डक मिलती,
प्यासों को जल मिलता था।
थके पथिक को आश्रय मिलता,
यों सब का जी खिलता था॥

चहल पहल रहती थी निशिदिन,
द्वार सदा सब आते थे।
पाते थे मन चाहा फल सब,
धन्यवाद दे जाते थे॥६॥

ऐसा था एकान्त एक दिन,
मुझको ऐसा ध्यान हुआ।
करता हूँ उपकार सभी का,
यों मन में अभिमान हुआ॥

सोचा मैंने बहुत बड़ा मैं,
आते हैं को सुख सभी।
निरभिमान के सुख कभी क्या,
हो सकते हैं याचक भी॥७॥

हुआ अप्रचण्ड अपरिमित दुख को,
मैंने तुच्छ जगत् देखा ।
और न घर आने वालों को
आँख उठाकर फिर देखा ॥
इसी वर्ष स्वरूप वर्षा से,
मैं भी जल्दी सूख गया ।
एक मास पानी आने से,
देखा सब जग छूट गया ॥ ८ ॥

पीछे नये पुष्प भी सूखे,
भौंरों की गुंजार नहीं ।
सब जीवों ने छोड़ा मुझ को,
देखा कुछ भी सार नहीं ॥
चली गई है चहल पहल सब,
नीरवता का राज्य रहा ।
शोभा सभी विलीन हुई है,
अब न मुझे ऋतुराज रहा ॥ ९ ॥

त्याग दिया है सबने मुझको,
दुखित अकेला पड़ा हुआ ।
छूटा तन मेरा ही मुझको,
अब जाने को खड़ा हुआ ॥
सोचा था उपकारी हूं मैं,
पर अब सीधा ज्ञान हुआ ।
मैं उपकृत था उपकारी सब
ये अब मुझको भान हुआ ॥ १० ॥

मना रहा हूं एक बार अब,
मुझमें फिर से आजाता ।
उजड़ा हुआ भवन मेरा यह,
एक बार फिर बस जाता ॥
छोटे बड़े द्वारपर आये,
सब को नहि लगाऊंगा ।
ईश्वर कृपा समझ वैभव को,
कभी न अब इतराऊंगा ॥ ११ ॥

—सूर्य्यभानु त्रिपाठी विशारद ।

प्रेम पर बलिदान ।

भारतवर्ष में चित्तौर एक बलिदान की वेदी और उसका दुर्ग वीरपुरुषों और वीरांगनाओं का उज्वल कीर्तिस्तम्भ है। इस समय वृद्धावस्था में वृद्ध वीर की भांति अपने गौरव से इतिहास रसिक और स्वदेशाभिमानी पुरुषों को चित्तौड़ अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। वहां के खण्डहर, महल, बुर्ज और वृक्ष एक से एक बढ़कर अपनी करुणात्मक कहानी कह रहे हैं।

मैं एक सरोवर की जीर्ण सीढ़ी पर बैठकर चित्तौड़ का उदय, अस्त, स्वदेशाभिमान, वहां के राजपूतों की वीरता, उदारता आदि का विचार कर रहा था। इतने में वहां के एक निवासी ने मुझ से कहा "ये स्थान इस समय जिस दशा में दिखाई देता है उस दशा में नहीं था, पहिले यह सुन्दर सरोवर कमलों से शोभायमान रहता था, अनेक गजेन्द्र प्रिया सहित आकर यहां जलक्रीड़ा करते, तो कोई २ रस सुन्दरी पद्मिनी

की स्पर्धा कर अपने युगल चरणों से जल को उछालती मीन को लज्जित करने वाले नयन कटाक्ष को फेंककर देखनेवालों को विमुग्ध कर देती थीं। उपवन अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्प और परिपक्व-मिष्ट फलों से भरा हुआ था। फलाहार से सन्तुष्ट पक्षी अपनी मनोहर और मीठी आवाज से मन को मुग्ध करते थे। भार से लदी हुई वृक्ष और लताएं वायु को सुरभियुक्त कर, उसके दिव्य गान में मिलकर एक समान ताल देती थीं। परन्तु इस समय तो भील कन्याएं और उनकी भैंसों से यह जल मैला हो रहा है। सचमुच में काल की विचित्र गति है!

× × × ×

हम लोग यहीं बैठे हुए हैं; उसी के सामहने थोड़ी दूर, चार पांच वृक्षों के पास एक जीर्ण शीर्ण मकान दिखाई दे रहा है। वहां शूरसिंह नाम का एक क्षत्री सकुटुम्ब रहता था। उसके सुलोचना नाम की एक कन्या थी-इसके अतिरिक्त वीरसिंह नाम का एक युवक भी उसी के साथ रहता था। उसके मा-बाप कौन थे ये कोई नहीं जानता था। एक दिन अंधेरी रात्रि में किसी भाग्य के मारे अनाथ ने आश्रय पाने की आशा से द्वार को खटखटाते हुए दीन आवाज दी-शूरसिंह ने द्वार खोला और आश्चर्य के साथ एक छोटे बालक को देखा! उसके गले में तावीज के साथ एक चिट्ठी बंधी थी। उसमें लिखा था कि "भाग्य का मारा यह अनाथ-गरीब है, इस का रक्षक उस ईश्वर का परमभक्त होगा। इस तावीज को सँभाल कर रखना। क्योंकि यही तावीज इस अनाथ का परिचायक होगा।

× × × ×

इस प्रकार सुख के दिन पूर्ण हुए, इतने में शाहजादा खुर्रम की सरदारी में मुगल सैन्य ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। चित्तौड़ ही भारत की वीर श्री और विजय श्री है अतः इसको पाने के लिये सैकड़ों वर्ष से मुसलमानोंने सतत प्रयत्न किया है। वीर राजपूतों ने अपना सर्वस्व खोया परन्तु वीर श्री और विजय श्री परदेशियों के हाथ में नहीं जाने दी। प्रतापी प्रताप के पुत्र महाराणा अमरसिंह इस समय मेवाड़ के सिंहासन पर थे। उन्होंने सोलह सोलह बार युद्ध कर मुगलों को हराया था। मुगल सम्राट जहांगीर इस समय भारतवर्ष का सम्पूर्ण प्रकारसे स्वामी था। अनेक राजा और महाराजा उसी की कृपा चाहने के लिये अपना सर्वस्व देनेको तैयार थे। इतिहास से विदित है कि भारतवर्ष विदेशियों से नहीं जीता गया है। परस्पर द्वेषईर्षा और रोटी के टुकड़ों की लालचसे अपने हाथों विदेशियों द्वारा भारतवर्ष को परतंत्रता की बेड़ी पहिराई गई है। मुगलों के पास खजाना, लक्ष्मी भरपूर थी। सैन्य और नवीन सामग्री आवश्यकतानुसार मिल सकी थी। केवल स्वदेशाभिमान और पूर्वजों की वीरता का उष्ण रक्त प्रत्येक राजपूतों की रग रग में दौड़ता था। उनको विलास लक्ष्मी अस्त्र और तलवार थी। स्वतंत्रता देवी,राजपूतों की माता समान थी। युद्ध की खबर पाकर प्रत्येक बलवान पुरुष चित्तौड़ में आने लगा। अस्त्र शस्त्र की खड़खड़ाहट और अश्वों की हिनहिनाहट से चित्तौड़ में अपूर्व आभा दिखाई देने लगी। युद्ध विद्या की पुनरावृत्ति शुरू हुई। कोई तलवार से, तो कोई अश्वों पर चढ़कर अस्त्र शस्त्रों से नाना दाव पेंच दिखाकर देखने वालोंको उत्साहित करने लगे। यह देखकर छोटे बालक भी युद्ध में जाने को उत्साहित हुए।

परन्तु वृद्ध पुरुष उनको, युवावस्था ही जाने को कहकर उदास कर देते थे।

युद्धका दिन आया वीरसिंह ने शूरसिंह को प्रणाम किया। वृद्धने समयोचित वीर वचन कह कर आशीर्वाद दिया। सुलोचना ने आकर वीरसिंह को बकुल पुष्प की माला पहिनाकर सजल नेत्रों से कहा कि "वीर विजयमाला पहिनकर जल्दी आना। अपना प्रेम, जैसे बकुल पुष्प वृक्ष से जुदा होने पर भी सुरभित है— किन्तु विशेष सुगन्धित है। उसी प्रकार दोनों के अविच्छिन्न हृदय में वृद्धि रहे।

× × × ×

युद्ध शुरु हुआ-किन्तु आज का दिन मेवाड़ के लिये कहो या समस्त भारत के लिये दुर्भाग्य का द्योतक था। विजय माला मुगल सैन्य के गले में पहिराई गई। महाराणा ने पराधीनता स्वीकार की। पराधीनता नाममात्र की थी। परन्तु कलङ्क छोटा हो या बड़ा हो अन्त में कलंक ही तो है। शाहजादा खुर्रम के सत्कारार्थ-तथा युद्ध में जिन्होंने वीरता बताई उनको योग्य पारितोषक देने के लिये उत्सव किया गया। उत्सव, उत्साहहीन और आत्महीन था। हरेक के हृदय में पराजय की शल्य चुभ रही थी। सभा मंडप में चन्दावत आदि सरदार आये। महाराणा ने शाहजादा खुर्रम के साथ प्रवेश किया। सब अपनी २ जगह बैठे। प्रत्येकको उसकी योग्यता के अनुसार पारितोषक मिला। अन्त में वीरसिंह की बारी आई। महाराणा ने उससे कहा कि "वीर, उस दिन जब कि युद्ध में हमारे प्राण संकट में पड़ गये थे तब तुम्हीं ने हमारी रक्षाकी थी, तथा जिस बुद्धिमत्ता से तुम ने दूत कार्य किया है उसके लिये तुमको २ हजार घुड़सवारों के नायक का पद देकर तुम्हारे भविष्य की रास्ता खुली करते हैं" वीरसिंह की आखों में कृतज्ञता के दो अश्रु बिन्दु टपक पड़े। प्रत्युत्तर में आभार मानते हुए कहा "महाराज, मैंने क्षत्रिय के नाते अपना धर्म पालन किया है। एक क्षत्रिय जन्म भूमि के लिये जो कुछ कर सका है उस से मैंने कुछ भी अधिक नहीं किया है"।

वीरसिंह की बात समाप्त होते ही एक वृद्ध सामने आया। महाराज को नमस्कार कर चन्दावत के पैरों पर गिरकर बोला "महाराज मुझ अभागी को क्षमा करो-यह युवक जो सबका ध्यान खींच रहा है वह अन्य कोई नहीं बाल्यावस्था में खोया हुवा अपना कुमार तेजसिंह है" सभा को आश्चर्य के सागर में डालते हुए वह आगे बोला "महाराज, आपको ध्यान है कि कुमार की छाती पर एक तलवार का चिन्ह तथा स्वामी दुर्गानन्द का ताबीज उसकी रक्षा के लिये बांधा गया था यह सब कुमार को देखने से उसका सम्बन्ध निश्चय कर सकेंगे।

अपना भतीजा दुर्जयसिंह को कुमार कण्टक रूप था। कितने क अनिवार्य कारण और संजोगों को लेकर कुमार को दूर करने के लिये उसकी सहायता करना पड़ी थी। कुमार को बचाने की इच्छासे मैं शूरसिंह नामक क्षत्री के यहां चुपचाप छोड़ आया था। दुर्जयसिंह को युद्ध में बड़ा भारी घाव लगा है। इससे उसके बचने की आशा नहीं दिखाई देती- इसी कारण उसके हृदय में दुख है और अपनी क्षमा प्रार्थना को बुलाया है"। वृद्ध चन्दावत ने सहर्ष खड़े होकर तेजसिंह को छाती से लगा लिया। वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्ति का आनन्द जगत की प्राप्त अन्य वस्तुओं से कहीं विशेष होता है। वह वृद्ध की आखों का तारा और जीवन की डोर के समान है।

× × × ×

तेजसिंह अब निराधार नहीं है। कुल, गुण, कीर्ति, और लक्ष्मी में उसकी स्पर्धा करने वाला कोई नहीं था। राजस्थान में सौंदर्य और गुणों की अमूल्य रत्न के समान मानी हुई महारानी की भानेज विमलादेवी के साथ उसका विवाह निश्चय हुआ। भाग्य की गति न्यारी है। भूत, भविष्यत, वर्तमानकी आशायें, उदय और अस्त इनमें से किस प्रकार विचार आता है इसको विधाता के सिवाय और कोई कल्पना नहीं कर सका। कुमार को यह सम्बन्ध अच्छा न लगा। ठाकुर चंद्रावत ने किशोर कुमार को अपनी अवस्था में अपना हृदय स्नेहमयी सुलोचना को अर्पण करके कितनी भारी भूलकी है-ये बताया-क्योंकि व्यवहार कुशल, अनुभवी पिता को यह अच्छा नहीं लगा। विमलादेवी से सम्बन्ध होनेमें क्या २ लाभ हैं-तथा क्षत्रिय धर्म, कुटुम्ब और देश के लिये स्नेहका उपभोग आवश्यक है-वह कैसे मिलता है? उसके सम्बन्ध में मृदुवाणी में अपने पुत्र को शिक्षा दी। अन्त में ये भी कहा कि महाराज और महारानी के वचन झूठे पड़ते हैं। वृद्ध पिता ने समझा कि अधिक समय हो जाने पर सब भूल जावेंगे। मनुष्य इसमें कैसा ठगा जाता है। अपने भूतकाल का स्मरण और सम्बन्ध ध्यान में रखने से कितने ही अनर्थ होने से बच जाते हैं।

× × × ×

सुलोचना तालाब की एक सीढ़ी पर बैठ, आकाश गंगा और तारागणों के समूह से सुहावनी अमावास्या की रात को जल में देख रही थी। भविष्य के अन्धकार का परदा दूर करने का प्रयत्न करती थी। इतने में "सुलोचने" शब्द सुनकर सहम गई और उठ खड़ी हुई। शब्द परिचित था। तेजसिंह आगे आया और सुलोचना का कर कमल पकड़ कर दोनों सीढ़ियों पर जाकर बैठे। आंखों से आंखें मिलीं, दोनों विचार सागर में डूबे थे। कुछ समय के पश्चात कुमार बोला "सुलोचने, तुमने मेरे विवाह के सम्बन्ध की बातें सुनी होंगी। मेरा भाग्यचक्र बदल गया है परन्तु हृदय तो वही है। भूतकाल का दृश्य आंखों के साम्हने आ जाता है। अरवली की तलैटी में साथ २ चलना, थकावट होने पर अशोक वृक्ष की छाया में बैठना, समीप कर्णप्रिय कलरव करते हुए झिरने में तुम्हारे दोनों पावों का डुबोना, नीचे तुम्हारा प्रतिबिंबित अहहास्य देखना और उसीके साथ ऊपर से कोयल का "कुहू कुहू" करना। आखेट के समय मृग के पीछे दौड़ना, परन्तु तुम्हारी और उसकी दृष्टि का मिलान नेत्र सादृश्य से उत्पन्न हुए तुम्हारे हाथों द्वारा मेरी कलाई का दबाया जाना, दयार्द्र नयनों से उपालम्भ देना। किन्तु मेरा अपनी कठोरता से शरमाकर हाथ पीछे खींच लेना अब भी नेत्रों में झूलता है। पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा का सुधामय ज्योत्स्ना में पहाड़, नदी, झिरना, वृक्षादि का देखना। मानों प्रकृति की गोद में वे दिन गये।

× × × × ×

"ते हि नो दिवसा गताः" ये भगवान रामचन्द्र के शब्द हैं कीर्ति, लक्ष्मी सभा और वैभव की मुझे परवाह नहीं मैं जिसके लिये घबराता हूं सो तुम्हारा हृदय जानता होगा। माता पिता, वैभव, सेवकजन, सब अपरिचित मालूम पड़ते हैं। क्या करूं सो मुझे नहीं समझ पड़ता। दृष्टि बार २ भूतकाल की ओर जाती है"।

सुलोचना बोली "कुमार, भूलकी और दृष्टि न पसारो। वर्तमान और भविष्य का विचार करो। विमलादेवी सब प्रकार से योग्य है

उसको तुम वरो। उससे तुम्हारे वृद्ध माता पिता का हृदय कितना संतोषित होगा? अपना आपस का सुख न देखो। दोनों के हृदय में संतोष होने से दूसरे कितने लोगों का हृदय दुखी होगा? क्षत्रिय का धर्म दूसरे के सुख को अपने आराम की परवाह नहीं करना है। प्रेम अमर्यादित तथा अबाधित है। संयम, स्वात्मार्पण और पवित्रता का वह रूपान्तर है। अनन्त युग चले जाने पर भी हमारा तुम्हारा साथ नहीं छूट सका। तुम ये न समझना कि मैं क्षणिक सम्बन्ध का विचार किये बिना बोल रही हूं। मैं क्या भोग चाहती हूं? तथा दोनों हृदय इससे कितने दुखी हैं, उसका विचार अच्छी तरह से करती हूं। परन्तु उठो, और पिता की आज्ञा का पालन करो। दिशा जुदी २ है, परन्तु केन्द्र एक है। अन्त में हम तुम मिलेंगे" इतना कह सुलोचना तेजसिंह की चरण रज लेकर कुमार से कुछ कहूंगी तो वे अटका लेंगे, इससे पहिले ही झटपट वहां से चली गई।

× × × +

संसारमें हम देखते हैं कि युवावस्था में स्त्री पुरुष बहुधा शारीरिक सौंदर्य पर मुग्ध होकर परस्परमें प्रेम कर लेते हैं। विलास और वैभवकी तृप्ति में प्रेम की इति श्री मानते हैं। लग्न के पीछे विलास और वैभव से जितना सुख भोगते हैं उतना भोग परस्पर कंटक, छिन्द्रान्वेषण, शुरु करता है थोड़े समय के पश्चात परिणाम यह होता है कि उनका संसार विषरूप बन जाता है। कितने तो विवाह के पश्चात संसार के अनुभवी विशेष विचारवान और गम्भीर बन बिगड़ी हुई बाजी को सुधारकर जीवन का बहुतेक अंश सुखमय बना लेते हैं। परन्तु कोई २ तो विवाह को व्यापारिक कार्य समझ परस्पर का सम्बन्ध कर के सुख दुःख और स्वच्छन्दता से अपने दिन ज्यों त्यों पूरे करते हैं। कुमार और सुलोचना का प्रेम गंगा जल के समान पवित्र सतत प्रवाही और अखण्डित था प्रेम भः प्रकृति की प्रेरणा का परिणाम और उभय हृदय के घोर अंधकार को दूर करने वाला पवित्र प्रकाश है।

दूसरे दिन चन्द्रावत सुलोचना से मिले और प्रेम से उसके मस्तक पर हाथ रखकर बोले "बेटी मैं तुम्हारे पास भिक्षा मांगने को आया हूँ अबतक मैं पुत्रहीन था ईश्वर कृपा से पुत्र प्राप्त हुआ। परन्तु वह दुखी है, और उसके दुःख से सब कुटुम्ब दुखी है। तुम्हारी कथा जानने के पहिले ही मैं महारानी को, विमला देवी का सम्बन्ध स्वीकार कर चुका हूं; पुत्री तू जानती है कि राजपूत का बचन कभी वापिस नहीं जाता। मेरी लाज तुम्हारे हाथ में है। ये वृद्ध तुम्हारा आभारी होगा" भोली बाला तुरंत ही बोली, "महाराज, तुम्हारी जो इच्छा हो सो करिये मेरी ओर से रंचमात्र शंका और भय न रखिये। मेरी जैसी एक निर्धन बाला अपने घरको भी प्रकाशित नहीं कर सकी, दीपक तो गृह के लिये है; संसार के लिये तो सूर्य की आवश्यकता है"। इतना कहके दीर्घ श्वास लेकर सुलोचना चली गई। वृद्ध चन्द्रावत का हृदय पिघला परन्तु क्षण मात्र के लिये। स्त्री हृदय की विशालता और पुरुष का भाग्य कौन समझ सका है?

× × × ×

ऊपर की बातों को ५ वर्ष व्यतीत हो गया। महाराजा अमरसिंह पराजय की शल्य से दुखी थे। मुगलों की पराधीनता तो स्वीकारी परन्तु फिर उस सिंहासन पर पैर नहीं रक्खा। युवराज को राजा नियत करके वानप्रस्थ हो गये।

तेजसिंह और विमलदेवी का विवाह हुवा। कुमार एक बालक का पिता हुवा-युवा महाराणा का दहना हाथ था । मेवाड़ का कीर्ति फिर से दिखाई देने लगी । मेवाड़ को पराजित करने वाले खुर्रम ने मेवाड़ का आश्रय लिया-परन्तु पराजय का कलंक चन्द्र के समान हो गया। सुलोचना के माता पिता स्वर्गवासी हुए। वह अनाथ हुई । अब उसके वह लावण्यता, उत्साह, चपलता नहीं है । केवल विषाद और संयम की छाया से उसका मुखमंडल घिरा रहता है जो पहिले अत्यन्त आकर्षक था। चित्तौड़ की अधिष्ठात्री कुलदेवी के मंदिर में अनाथ सुलोचना ने आश्रय लिया । मन्दिर के चौक को साफ करती फूलों को चुनकर वनदेवी के लिये माला तैयार करती, पूजा हो जाने के पश्चात देवी के पाद पद्मों में घंटों तक पड़ा २ प्रार्थना करती रहती । अवकाश के समय छोटे२ बच्चों को धार्मिक तथा चित्तौड़ के वीर पुरुषों की कहानी कह उनके जीवन में उत्साह दिलाती । सधवा, विधवा आदि स्त्री मंडल में सीता, द्रौपदी, सावित्री आदि देवियों की कथा कहती-दुखी और दीन जनों की माता बनकर उनकी परिचर्या करती । दुखी के दुख में जो उमंग से दुखी हो जाता है उसके सुख की कल्पना नहीं की जा सकती ।

× × × ×

आखेट से लौटते समय तेजसिंह को सुलोचना अतृप्त नयनों से देखती । कुमार की दृष्टि उस पर न पड़े इसका उसे विशेष ध्यान रहता था । तेजसिंह प्रत्येक कार्य दक्षतामें करते, परन्तु उनका हृदय शून्य था--विमलदेवी ये सब बातें जानती थी । सुलोचना को वह देवी के समान मानकर कुमारके हृदय में से उसको दूर करने का उसने कभी प्रयत्न नहीं किया। उसने बहुत बार तेजसिंह को सूर्यास्त के समय आकाश, पर्वत और वनप्रान्त पर विह्वल चित्त से दृष्टि उठाते और दीर्घ निश्वास लेते देखा था।

सायंकाल [illegible] था संसार विश्रामकी तैयारी में लग [illegible] था। तब आखेट से लौटते समय कुमार का मस्तक एक शाखा के साथ जोर से लग गया । शाखा कालरूप बनी । बेहोश कुमार पालकी में रखकर घर लाये गये । अनेक उपचार के पीछे, बुझने वाले दीपक की शिखा के समान उसके जीवन की ज्योति धीमी पड़ने लगी । उसने माता पिता से किसी प्रकार अवज्ञा से उत्पन्न हुए दोष की क्षमा मांगी-छोटे बालकके ऊपर प्यार से हाथ फेरकर विमला देवी से कहा " देवी तू मेरे लिये बहुत दुखी हुई है । तेरे हृदयकी उदारता अगाध है मेरी भूल के लिये तू क्षमा करना " । क्षमा शब्द को सुनकर देवी उनके पैरों पर गिर कर बोली " देव मुझे विशेष लज्जित न करो तुम्हारे सुख में मैं अपना सुख मानती आई हूं । इसलिये जो कुछ मैंने किया है वह अपने सुख के लिये " । दीपक बुझ गया विमल देवी सती हुई । शोक का साम्राज्य फैल गया । इच्छित वस्तु के पाने पर जैसा आनन्द होता है, उससे कईगुणा दुख उसके वियोग में होता है ।

× × × ×

निर्जन और नीरव शून्य श्मशान भूमि में शोक विह्वल हृदय-वृद्ध चन्दावत खड़े हैं । निराशा और विषाद के पट से घिरे हुए उनके नेत्र कुमार के अग्निदाह किये हुए स्थान में इकटक लगे हुए थे । कोई स्पर्श हुआ ऐसा समझ चौंककर नीचे देखा, तो मालूम पड़ा, कि म्लानवदना सुलोचना उनके पैरों पर शिर रखकर चुपचाप रोरही है । वृद्ध ने प्यार से उसके मस्तक पर हाथ रक्खा । सुलोचना ने ऊपर

दृष्टि करके कहा "महाराज, यह सब अनर्थ की जड़ मैं हूँ इसलिये क्षमा करो" चन्द्रावत बोले "बेटा, इसमें तेरा दोष नहीं तूने अपनी प्रतिज्ञा बराबर पाली है। आज मालूम पड़ा कि बाह्य उपचारों से हृदय बन्धन नहीं टूटता, जन स्वभाव अपने प्रमादसे नुकसान उठाते और विधि व अन्य के सिर पर उसका दोष मढ़ते हैं इसलिये तू उठ, प्रभुने मेरी भूल का बदला मुझे दिया"।

दूसरे दिन प्रातःकाल हुवा। ऊषा आई और गई। सूर्योदय हुवा, परन्तु मंदिर में न तो घंटों की आवाज न आरती है, और न आंगन में सांथिया हैं। धीरे २ लोग इकट्ठे हुए और मन्दिर में जाकर स्तब्ध हो खड़े रहे। वहां उन्होंने देखा कि माता के पांव को चूंसते २ जिस प्रकार छोटा बालक मीठी निन्द्रा के वशीभूत हो जाता है। उसी प्रकार देवी के पांव के आगे सुलोचना हमेशा के लिये निन्द्रा देवी की गोद में शान्त हो गई है।

इन तीनों के स्नेह--स्मारक के लिये एक मन्दिर बनवाया गया। परन्तु जब इस संसार में प्रति समय अनन्त रचनाएं होतीं और लय होती जातीं हैं। वहां मनुष्य कृत स्मारक चिन्ह नाश हो गया तो इसमें कोई नवीनता नहीं है। केवल स्नेह, वासना और आत्मा का बन्धन अविनाशी है। महाशय, मेरी कथा पूरी हुई। परन्तु इस स्थान का वातावरण ऐसा हो कि मननशील मनुष्य इस बलिदान की वेदी पर होम हुए नर नारियों के साथ इसी प्रकार उत्तरोत्तर चढ़ें। इसी प्रकार अनेक स्नेह, करुणा और वीर रससे ओतप्रोत हुई गाथाएं अहर्निश सुनने में आवें। *

—निर्भीक हृदय।

सम्मिलन।

जब से संध्या हुई तभी से होने लगा अंग शृंगार।
छाया मतवालापन मुझमें भूल गई सारा संसार॥
लगी रही टकटकी द्वारपर आंखों को न मिला अवकाश।
फिर भी आये नहीं प्राणधन नष्ट होगई सारी आश॥१

मुरझा गये हाथ के गजरे सूख गया फूलों का हार।
मैंने भी तब सोच समझ कर मिटा दिया सारा शृंगार॥
बोली, व्यर्थ बनाया मैंने, बाहर का बनावटी वेश।
क्या न हृदय की दशा देख कर रीझेंगे प्यारे प्राणेश॥२

जब कि यही गुनगुना रही थी तब प्रियतम आये चुपचाप।
खड़े खड़े देखा आतुर नयनों से बिखरा केशकलाप॥
हुआ सम्मिलन, हँसकर बोले "क्या दोगी मुझको उपहार"।
दृग से आँसू निकल पड़े मैं बोली "लो मुतियों का हार"॥३

—लाल।

* गुजराती "चमत्कोषक" की एक कहानी का अनुवाद।

समैया सम्बन्ध ।

समैया भाइयों ने परवार महासभा को जो प्रार्थना पत्र भेजा था उसे, और उसके उत्तर को, जो कि परवार भाइयों की ओर से दिया गया था, मैंने अच्छी तरह पढ़ा है। प्रार्थना पत्र साफ़ साफ़ मालूम होता है कि समैया भाई बड़ी ही नम्रता और विनय के साथ परवार भाइयों से मिलने के लिये तैयार हैं। इस मिलन के लिये वे इतने उत्कण्ठित और व्यग्र हैं कि अपने मुख्य सिद्धान्त को भी त्याग करने के लिये तैयार हैं। वे कहते हैं कि "मूर्ति पूजन करना हमारे जैन सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है।" "जिस विरोध पर हम और आप अलग अलग हो गये हैं उसको मिटाकर हम सत्य हृदयसे मूर्तिपूजन स्वीकार करते हैं।" इस प्रार्थना पत्र पर प्रायः सारेही समैया समाज के मुखियों के हस्ताक्षर हैं। हमारे परवार भाइयों को इस पत्र पर बहुत ही उदारता पूर्वक विचार करना चाहिए था और स्थितिकरण की दृष्टि से अपने इन बिछुड़े हुए भाइयों को बिना किसी शर्त के अपने में मिला लेना चाहिये था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। परवार समाज ने जो उत्तर दिया है वह निराशा जनक है और जिन शर्तों को पेश किया है वे बहुत ही कड़ी हैं। धर्म का सौदा इतनी कड़ाई से नहीं हुआ करता। विश्वास और प्रेम ही इसके लिए सबसे बड़ी शर्त है।

परवार समाज की ओर से जो उत्तर दिया गया था, उसको आज ठीक एक वर्ष हो गया। मालूम नहीं, समैया भाइयों ने उस पर क्या विचार किया। परन्तु इस विलम्ब से अनुमान होता है कि उन्हें वे शर्तें स्वीकार नहीं हुई। लाचार होकर चुप हो जाना पड़ा और इस तरह परवार समाज की ओर से एक जो अतिशय महत्त्वपूर्ण और स्मरणीय काम होने वाला था वह होते होते रुक गया।

मेरी समझ में परवार भाइयों को इस प्रश्न पर फिर से विचार करना चाहिये और इसके लिए बनाना चाहिए उन्हें अपने हृदय को जरा उदार और विवेकवान्। नीचे लिखी बातों पर ध्यान देने की प्रार्थना है—

१ समैया भाई और हम सब एकही जाति के हैं। दोनों के मूल गोत्र आदि एकही हैं। भोजन-पान की शुद्धता, रहन-सहन, वेष भूषा आदि सब बातों में भी हम एक हैं। ऐसी दशामें उनके साथ सामाजिक सम्बध करने में हमें कोई ऐतराज न होना चाहिये। धार्मिक विश्वास की थोड़ीसी भिन्नता हमारे सामाजिक सम्बन्ध में बाधक नहीं हो सकती।

२ जैन पुराणों का स्वाध्याय करने वाले जानते हैं कि प्राचीन कालमें एकही वर्ण या जाति में तो क्या एकही घर मे जैन, बौद्ध और ब्राह्मण धर्म मानने वाली जुदी जुदी व्यक्तियाँ होती थीं और यह मत भिन्नता उनके सामाजिक सम्बन्ध में किसी प्रकार बाधक न होती थी। हमारे देश में यह मत सहिष्णुता अब भी सर्वथा दुर्लभ नहीं हो गई है। पाठक अग्रवाल समाज का हाल जानते होंगे। इस जाति में दिगम्बर जैन, श्वेताम्बर जैन, ढूँढ़िया, और वैष्णव ये चार धर्म माने जाते हैं। फिर भी इन में परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार जारी है। पंजाब में सैकड़ों अग्रवाल आर्य समाज के भी अनुयायी हैं। पाठकों ने हूमड़ जातिका नाम सुना होगा। स्वनामधन्य स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द जी इसी जाति के थे। इस जाति में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदाय के मानने वाले हैं (दिगम्बरी अधिक हैं), फिर

भी दोनों में सामाजिक सम्बन्ध जारी है। सुना है मारवाड़ में बहुत से खण्डेलवाल कुटुम्ब ढूँढ़िया सम्प्रदाय के भक्त हैं; फिर भी वे अपने दिगम्बर भाइयों से अलग नहीं हैं। ओसवाल पोरवाड़, श्रीमाली आदि जातियाँ श्वेताम्बर सम्प्रदाय के दोनों पन्थों को मन्दिर मार्गी और साधु मार्गी-मूर्त्तिपूजक और मूर्त्ति विरोधी मतों को मानती हैं, अर्थात् उक्त सब जातियों में दोनों पन्थों को मानने वाले मौजूद हैं और वे सब आपस में रोटी-बेटी का व्यवहार रखते हैं। इस मत भेद के कारण उसमें कोई अन्तर नहीं आता। ऐसी दशा में परवार भाइयों को भी अपने समैया भाइयों के साथ बेटी व्यवहार रखने में कोई ऐतराज नहीं होना चाहिये।

३ दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जितना अन्तर है, मन्दिर मार्गी और ढूँढ़ियों में जितना मत भेद है, जैन और वैष्णवों मे जितनी विभिन्नता है। परवारों और समैयों के मतमें उससे अधिक अन्तर नहीं जँच पड़ता। दोनों में सबसे बड़ा भेद मूर्त्तिपूजा सम्बन्धी है। उचित तो यह था कि इस भेद के कड़े रूपमें होते हुए भी सामाजिक सम्बंध जारी रक्खा जाता; परन्तु अब तो वह कड़ापन भी नहीं है। समैया भाई मूर्तिपूजा के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, वे हमारे तीर्थों की यात्रा करते हैं, हमारे शास्त्रों को श्रद्धापूर्वक पढ़ते हैं जिनमें मूर्तिपूजा की चर्चा जगह जगह की गई है। और सबसे बढ़कर यह कि सैकड़ों समैया भाई हमारे मन्दिरों में आकर दर्शन पूजन भी करने लगे हैं। इस पर भी यदि हम उन्हें अपने में मिलाने के लिए तैयार न हों तो इसे सिवाय दुराग्रह के और क्या कह सकते हैं,

४ यदि हमारा यह विश्वास हो कि समैया भाइयों का पन्थ मिथ्या है वे खोटे रास्ते पर हैं, तो इसके लिए हमारा कर्तव्य यह नहीं है कि हम उन्हें अपने से दूर रक्खें। हमें उन्हें अपना नजदीकी बनाना चाहिये जिससे कि वे हमारे सम्पर्क से अपने खोटे रास्ते को छोड़ दें और हमारे सच्चे मार्ग के अनुयायी हो जावें। तारनपन्थ की अवस्था इतनी शोचनीय है, उसका साहित्य इतना दुर्बल है। गुरुओं और उपदेशकों का उसमें इतना अभाव है कि यदि हम उक्त पन्थ के लोगों को अपने से इतना दूर न रखते, तो हमारी संगति से वे अब से सैकड़ों वर्ष पहले उक्त पन्थ को छोड़कर हम में दूध शक्कर की तरह घुल मिल गये होते। हम उनसे दूर दूर बने रहे, इसी कारण उनके पन्थ का अस्तित्व बना रहा।

५ समैया भाइयों को यदि हमने शीघ्रही अपने में नहीं मिला लिया तो इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। उन्हें विवाह सम्बन्ध करने में बहुत कष्ट हो रहा है। उनकी संख्या बहुत थोड़ी रह गई है। वे बराबर कम होते जा रहे हैं। या तो उन्हें अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए लाचार होकर दूसरी जातियों से सम्बन्ध कर लेना होगा, या यदि किसी मूर्त्ति पूजा के विरोधी उपदेशक की उन पर नजर पड़ गई तो उसकी चुंगल में फँस जाना होगा। ढूँढ़िया सम्प्रदाय के साधु उन्हें बहुत सहज में अपने मार्ग का अनुयायी बना सकते हैं। जो लोग पढ़े लिखे हैं उन पर आर्य-समाज का भी पँजा पड़ सकता है।

६ समैया भाइयों का यह कहना कुछ बुरा नहीं है कि इस समय उनके जो चैत्यालय हैं उनमें केवल शास्त्र ही रहें और वे सरस्वती भंडार के रूप में माने जावें। परवार भाइयों को इस प्रस्ताव का प्रसन्नतापूर्वक अनुमोदन करना

चाहिये। मूर्तियों की और मन्दिरों की हमारे यहाँ कमी नहीं। फिर क्या आवश्यकता है कि हम शास्त्र भंडारों का मूर्ति भंडार बनाने की जिद करते रहें। यदि उनसे मूर्तिपूजा ही कराना है तो हमारे मन्दिर मौजूद हैं, उनमें ही कराइए।

७ परवार भाइयों को देश की वर्तमान अवस्था पर भी ध्यान देना चाहिये। दूसरे धर्मवालों की विचार धारा का प्रवाह किस ओर को है सो भी देखना चाहिये। आज मलकाना राजपूत जो कई सौ वर्ष पहले मुसलमान बना लिये गये थे फिर से हिन्दू बनाये जा रहे हैं। उन्हें आर्यसमाजी और सनातनी हिन्दू शुद्ध करके अपने गले लगा रहे हैं। ईसाई और मुसलमान भी शुद्ध हो कर हिन्दू मिशनरी सोसाइटी की कृपा से हिन्दू बन रहे हैं। सिया और सुन्नी अपने आपसी भेद को भूल कर संयुक्त इस्लाम की शक्ति बढ़ाने में दत्त चित्त हैं। अछूत भाइयों के उद्धार के लिये देश व्यापी आन्दोलन हो रहा है। ऐसे समय में परवार जाति क्या इतनी भी उदारता मतसहिष्णुता और विवेक शीलता नहीं दिखला सकती है। कि-अपने बहुत ही नजदीक के समैया भाइयों को जरा सा सहारा देकर उनकी रक्षा कर सके? मालूम नहीं, परवार जाति सम्यक्त्व के स्थिति-करण अंग का क्या अभिप्राय समझती है।

समैया भाइयों को भी परवार सभा के दिये हुए उत्तर पर-विचार करना चाहिए और उसमें जो शर्तें रद्द बदल करने योग्य हो उनके विषय में सरलता पूर्वक लिखा पढ़ी करनी चाहिये।

—हितैषी।

जातीय बहिष्कार।

(लेखक—श्रीयुत पं० तुलसीराम जी काव्यतीर्थ)

परवार समाज में कुल २७४ स्त्री पुरुष जाति-च्युत हैं। जिनमें १०४ पुरुष और १७० स्त्रियां हैं।

किसी भी आदर्श समाज के लिये अपनी समाज की सत्ता को अक्षुण्ण, निर्दोष, और अबाधित बनाये रखने के लिये यह नितान्त आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है कि वह अपने सामाजिक और सर्वोपरि धार्मिक आदर्श को रक्षित रक्खे इसके बिना कोई भी समाज किसी प्रकार भी आदर्श रूप से रक्षित नहीं रह सकती। अतएव प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे नियमोपनियम होते हैं जिनके द्वारा धार्मिक और सामाजिक आदर्श की रक्षा की जाती है, वास्तव में यह मार्ग शास्त्रानुमोदित, न्यायानुमोदित, लोकसंमत, और शिष्ट जन समर्थित, है। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि यह अनादि पूर्वपरम्परागत मार्ग सामाजिक मर्यादा का रक्षक और सामाजिक अव्यवस्था उच्छृङ्खलता आदि का विरोधक है। इसका होना आवश्यक है और वह तब तक आवश्यक है जब तक कि इस धरातल पर सामाजिक सत्ता विद्यमान है।

सामाजिक नियमों में "जातिच्युत" या "सामाजिक बहिष्कार" भी एक नियम है। समाज में आवश्यकतानुसार उन लोगों पर जो सामाजिक नियमों का उल्लंघन करते हैं, समय समय पर इस नियम का प्रयोग कर उन्हें अपराधानुसार आजीवन या कृतापराध का प्रायश्चित्त कालावधि पर्यंत जातिच्युत, जाति-बहिष्कृत कर देते हैं, ऐसी दशा में ऐसे अपराधी सामाजिक कार्यों में संमिलित नहीं हो सकते, उनके साथ खान पान भी नहीं हो सकता हमारे बुन्देलखंड में जातीय बहिष्कार के साथ साथ प्रायः किसी किसी का मन्दिर भी बन्द कर दिया जाता है। ऐसे मामलों में

अपराध की लघुता और गुरुता के तारतम्य पर भी ध्यान रक्खा जाता है।

लिखते हुए दुःख होता है कि वर्तमान में प्रायः इस नियम का बड़ा दुरुपयोग किया जा रहा है, सामाजिक दंडों में इस दंड का नंबर सब से ऊंचा है, यह तो एक प्रकार की फांसी की सजा है, बहुत आगा पीछा सोचकर इस नियम का प्रयोग होना चाहिये पर अपनी परवार समाज में इस समय जरा जरा से अपराधों पर यह सजा सुनादी जाती है जिसका परिणाम समाज के ऊपर बड़ा ही भयङ्कर होता है। वास्तव में जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह नियम थे उसकी पूर्ति तो प्रायः अब इनसे होती नहीं इनसे नाजायज लाभ उठाया जाता है, हमारी परवार समाज में पंचायतों का वह सुदृढ़सङ्गठन नहीं रहा जो पंचायतें दूध का दूध और पानी का पानी अलग करना अपना कर्त्तव्य समझतीं थी, जो वास्तविक अपराधी को चाहे वह फिर मुखिया लखपति या सरपंच ही क्यों न हो, जातीय, दंड देने में हिचकती नहीं थी, मुंह देखी नहीं करती थीं, सगे सम्बंधियों को, नाते रिश्तेदारों को और यहां तक कि अपने बेटों तक को अपराधी पाकर बराबर उन्हें दंड देती थीं और समाज का शासन करती थीं। आज प्रायः वे पंचायतें मानों स्वप्न हो गईं, वे पंचायतें हैं कहां? पंचायतों का नाम है, आज पंचायतों के नाम पर सबलों के द्वारा निबल दबाये जा रहे हैं धनियों के द्वारा निर्धन पीसे जा रहे हैं, जोरदारों के जरिये कमजोर सताये जा रहे हैं, और अन्यायियों के द्वारा न्यायशील दबाये जारहे हैं, गरीबों पर जुल्म, किये जा रहे हैं उनपर गजब और सितम ढाये जा रहे हैं। वास्तव में प्रायः न कोई पंच है न पंचायत है "जिसकी लाठी उसकी भैंस" या "जबरदस्त का ठेंगा सिर पर" वाली कहावतें चरितार्थ हो रही हैं।

सच बात तो यह है कि जो पंच है, लक्ष्मी-पुत्र हैं अतएव बलवान हैं-न्याय के ठेकेदार हैं। और जोरदार हैं वे और उनका गुट जो करदे वही न्याय, वही इन्साफ और वही धर्म है, किसकी मजाल जो उनके निर्णय को उलट दे, किसके मुंह में दांत हैं जो उनके अन्याय को अन्याय कहने का दुस्साहस कर सके। तलाश करने पर ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं जिनमें एक धनिक जोरदार, या मुखिया आदि अपराधी को सामाजिक अपराध करने पर या तो दंड दिया ही नहीं गया यदि दिया भी गया तो नहीं के बराबर। और यदि कोई दिनों का मारा गरीब हां बिलकुल गरीब चुंगल में फंस गया तो उसका छुटकारा होना मुश्किल, और उसकी जान के लाले पड़ जाते हैं, बेचारा बर्बाद हो जाता है या मर मिटता है।

हमारा यह मतलब कभी नहीं हो सकता कि अपराधियों को दंड नहीं दिया जाना चाहिये, हमारा तो केवल इतना ही कहना है कि न्याय ठीक ठीक होना चाहिये चाहे वह गरीब के लिये हो या अमीर के लिये।

जरा जरा सी बातों में जातिच्युत या जातीय बहिष्कार करने से समाज का बड़ा भयङ्कर अहित हो रहा है, हम दो एक ऐसे दृष्टान्त उपस्थित करेंगे जिनसे इस बात का पता लग जायगा कि अपराध कैसे साधारण और दंड कितना कठोर।

एक गांव में परवार जाति के कुछ अबोध बालकों ने मन्दिर में भगवान की दो एक प्रतिमा उठाईं और खेल खाल कर प्रतिमा जी को ज्यों का त्यों रख दिया। पंचों को इस बात का शक होगई कि प्रतिमा जी खोई गई। बस फिर क्या था पंचों ने एक दम हुक्म सुना

दिया कि बालकों और बालकों के तमाम परिवार के स्त्री पुरुषों का मन्दिर बन्द। कैसा अच्छा न्याय है. बलिहारी !!!

इस कुटम्ब के धर्म भीरु प्राणियों ने इस सम्बध में जो जो कष्ट सहे जो घोर यातनायें भोगी, उन्हें वे ही जानते हैं, बड़ी मुश्किल से पिंड छूटा यह ध्यान में रखने की बात है कि प्रतिमा जी पूरी की पूरी थीं।

दूसरा दृष्टांत लीजिये——

एक जगह एक विधर्मी एक परवार भाई की दुकान पर कुछ सौदा लेने गया वह विधर्मी अपनी धोती में अंडा लिये था सौदा लेकर वह बिना दाम दिये वापिस जाने लगा दुकानदार ने उसे पकड कर कहा सौदे के दाम तो देता जा, उस विधर्मी ने जान बूझ कर अपने अंडे जमीन पर छोड़ दिये वे फूट गये, बस लोगों की दृष्टि में परवार भाई हत्यारा होगया आम तौर से विवाह शादियों मे उसका आना जाना बन्द होगया। और मजे की बात लीजिये—

दो भाइयों में आपस में लड़ाई हुई मामला पंचायत में पेश हुआ पंचायत ने एक भाई को अपराधी पाया, उस पंचायत के सरपञ्च एक बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति ने फैसला दिया कि इसका मन्दिर बन्द कर दिया जाय। गनीमत इतनी हुई कि पंचायत ने इस फैसले को कबूल नहीं किया। और सुनिये-

हीरालाल मोदी ने रघुनन्दन चौबे को अपनी एक गाय बेची चौबे जी ने मातादीन शुक्ल को बेच दी मातादीन ने लक्खू अहीर को और लक्खू अहीर ने अब्दुल्ला कसाई को वह गाय बेच दी. पंचों को मालूम हुआ कि हीरा मोदी की गाय कसाई को बिकी बस मोदी जी की तबाही आये बिना रही नहीं सकती।

तलाश करने पर ऐसे अनेक उदाहरण मिल जावेंगे ऐसी बातोंसे समाज की शक्ति क्षीण होती है-वह अकर्मण्य हो जाती है। यह बहुत सम्भव है कि ऊपर जो जातिच्युत स्त्री पुरुषों की संख्या दी गई है उनमें बहुत से स्त्री पुरुष साधारण अपराधों में ही जातिच्युत किये गये हों मेरी तो यह धारणा है और वह बहुत अंशों में सत्य होगी कि यही हमारे जातिच्युत भाई आगे चलकर बिनेकैयों की संख्या वृद्धि करने में सहायक होते हैं। क्योंकि जब इन्हें जाति पतित हुए बहुत दिन हो जाते हैं और समाज से किसी प्रकार की सहानुभूति प्राप्त होने की आशा नहीं रहती तब वे निराधार और सब तरह से निराश्रय हो जाते हैं तब लाचार हो विनेकैया भाइयों से जा मिलते हैं।

इधर कुछ दिनों से विनकैयों में कुछ जन संख्या की वृद्धि हुई है उनकी वृद्धि के कारणों में एक कारण यह भी कहा जा सकता है।

यह कारण ऐसे हैं जिनसे हमारी परवार जाति क्षीण होती चली जा रही है, अब हमारी परवार जाति में कुछ जागृति के चिह्न दिखाई देते हैं उसे इधर भी अपने दृष्टि कोण को फेरना चाहिये।

हमारी परवार जातीय पंचायतों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे अपने रूप को सुव्यवस्थित, सुसङ्गठित, और न्याय प्रधान बनावें। यह संभव है कि कुछ पंचायत सुव्यवस्थित हों और उनके कार्य भी सन्तोष जनक हों पर अधिकतर तो वैसी ही हैं जैसा कि ऊपर वर्णित है।

एक बात और है जिसके ऊपर अपनी परवार समाज के नेता श्रीमान् और विद्वानों के ध्यान को विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहता हूं। वह विषय है जातीय बहिष्कार के साथ धार्मिक बहिष्कार, अर्थात् मंदिर का बंद किया जाना, जहां तक मुझे अनुभव है हमारी पंचायतों ने अभी तक उन अपराधोंको नियमित, निर्धारित

और निश्चय नहीं किया कि किन किन अपराधों में अपराधी का मन्दिर बंद किया जाय और किन किन में नहीं। मेरी समझ में अपनी परवार सभा का यह परम कर्तव्य होना चाहिये कि इस विषय का परवार जातीय विद्वानों तथा अन्य अन्य जैन विद्वानों के परामर्श से निर्णय करा कर ऐसे अपराधों की एक तालिका बनाई जावे और अपनी सामाजिक पंचायतों से इस बात का सविनय अनुरोध किया जाय कि वे पचायतें ऐसे ऐसे अपराधों में इस मन्दिर बंद के दंड का प्रयोग करें। क्योंकि चाहे जिस मामले में मन्दिर बंद कर देने से बुरे परिणाम की संभावना है। मैंने एक बार अपनी परवार जाति के एक अनुभवी, वयोवृद्ध, श्रीमान् से पूछा था कि अपने परवारों में मन्दिर बंद करने का ऐसा सुगम तरीका कैसे चला? तब उन्होंने मुझे बतलाया था कि किसी भी अपराधी को जल्दी सीधा करने में यह प्रयोग रामबाण था। अब से कुछ पुराने जमाने में धार्मिक भावों की जैसी उच्चता थी प्रायः अब वैसी नहीं रही-यही कारण था कि जहाँ किसी का मन्दिर बंद किया नहीं कि वह अपने अपराध का प्रायश्चित करने को तय्यार हुआ। लेकिन अब वह बात नहीं रही, अब तो लोग मंदिर बंद होने पर प्रायः वर्षों तक मंदिर का नाम भी नहीं लेते ऐसी दशा में इसके अनिष्ट परिणाम होने की संभावना है। जिस पर हमें मनन करने की बड़ी भारी आवश्यकता है।

दूसरी बात यह है कि किसी जातिच्युत व्यक्ति ने अपने कृतापराध का पंचायत के आदेशानुर प्रायश्चित्त कर लिया मंदिर भी उसका खुल गया और "मिलौनी" (जातीय भोज्य देकर जाति में संमिलित होना) भी हो गया, व जाति बिरादरी के लोग उसके यहाँ जीम भी आये पर मजे की बात यह है कि उस बिचारे का "चलन" (विवाह इत्यादि में शामिल होना) फिर भी बंद ही रहा, गजब! मंदिर जी का "दण्ड" भी दे लिया और उसने बिरादरी की ज्योनारें भी करदीं और सब लोग मिलजुल कर उसके यहाँ जीम भी आये, न्यायी पंचों की दृष्टि में उसकी पापकालिमा अब भी बाकी है, पाप के छींटे अब भी उसे लगे ही है। प्रायश्चित्त ले लेने से वह जाति में मिल अवश्य गया, उसे बिरादरी में आने जाने का हक होगया, मगर उसे कोई बुलावे जभी ना? दर असल मामला यह है कि वह शुद्ध तो हो गया पर पहले पहल उसे जो कोई बुलालेगा उसका चलन बंद हो जायगा, इसका खुलासा इस प्रकार है। मान लो पन्नालाल जातिच्युत हैं, वे प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होगये। धर्मदास ने अपनी लड़की की शादी में पन्नालाल को बुला लिया, बस पन्नालाल तो बरी हो गये अब धर्मदास धरे रहे। कुछ दिनों बाद कन्हैयालाल की लड़की की शादी हुई उन्हों ने धर्मदास को उसमें शामिल कर लिया बस धर्मदास तो बरी कन्हैयालाल का चलन बंद। इसी तरह "कुत्ते की छूत बिलैया" वाली कहावत चरितार्थ होना रहती है। इस अनवस्था का कहीं अन्त भी नहीं, वास्तव में ऐसी ऐसी बातों से हमारी परवार समाज बड़ी दुःखी हो रही है।

ऐसी बातें चाहे और कहीं न भी होती हों पर हमारे बुन्देलखण्ड में और विशेष कर ललितपुर और उसके आस पास तो निरन्तर होती रहती हैं। दुःखकी बात है कि इन बातों पर समाज के नेताओं का अभी तक ध्यान ही नहीं गया। वास्तव में ऐसी बातों का सुधार तो अवश्य और बहुत शीघ्र ही होना चाहिये।

विविध विषय ।

महात्मा जी के विचार ।

आजकल भारत हृदय सम्राट महात्मा गांधी जी सामाजिक बातों पर अच्छा प्रकाश डाल रहे हैं। वह प्रकाश हमारी समाज के लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। अतएव हिन्दी नव जीवन से हम उनके कुछ नोट उद्धृत करते हैं। आशा है कि पाठकगण उनपर पूर्ण विचार करेंगे।

जाति भोजन ।

यह शादियों का महीना है। विवाह के सिलसिले में जातिभोजन आदि में बहुत खर्च किया जाता है। यह कहना कि जिनके पास रुपया है वे जातिभोजन आदि में खर्च न करें, कुछ ज्यादती होगी। पर ऐसे भोज अनिवार्य हो गये हैं और इससे गरीब लोगों पर उसका बोझ असह्य होगया है। ऐसे भोज ऐच्छिक होना चाहिये। नहीं, खुद धनी लोगोंको मित व्ययसे काम लेकर गरीबोंके साम्हने मिशाल पेश करना चाहिये। इससे जो बचत हो वह यदि शिक्षा प्रचार अथवा दूसरे समाज या जाति के अच्छे कामों में लगाई जाय तो इस से जाति को तथा सारे देश को लाभ हो।

विवाह के समय जाति-भोजन की प्रथा बंद करना केवल वांछनीय है-इष्ट है; परन्तु मरण के बाद होनेवाला जातिभोजन बन्द करना बिलकुल आवश्यक है। मृत्यु के बाद होने वाले जातिभोजन को तो मैं पापरूप मानता हूं। मुझे इस भोज में कुछ भी रहस्य नहीं दिखाई देता। भोजन एक आनन्द का प्रसंग है। मरण शोक का अवसर है, समझ में नहीं आता ऐसे समय भोज किस प्रकार दिये जा सकते हैं। सर चिनू भाई के स्वर्गवास के उपलक्ष्य में जो भोज हुआ था उसमें मैं उनके सन्मान के खातिर उपस्थित हुआ था। उस समय का दृश्य, उस समय जुदी जुदी जातियों में होने वाले झगड़े, और भोजन करने वालों का स्वेच्छाचार आज भी मेरी आखों के साम्हने घूमता फिरता नजर आता है। उसमें मैंने कहीं भी मृत-व्यक्ति के प्रति आदर भाव नहीं देखा। शोक के लिये तो वहां जगह कहां से हो? इसके सुधारके लिये अभी समय दरकार है। यह रूढ़ि का बल, हमारी शिथिलता सूचित करता है। यदि जाति के मुखिया ऐसे सुधार न करें तो व्यक्ति कर सकते हैं मुखियों की वर्तमान अवस्था दया जनक है। वे बहुत बार सुधार करना चाहते हैं परन्तु डरते हैं। अतएव साहसी लोग आगे बढ़कर सुधार करने की इच्छा रखने वाले मुखियों को बल दें और सुधार का दरवाजा खोलें।

रोटी बेटी ।

जाति भोज की रोक करने से भी शायद अधिक जरूरी सवाल है भिन्न भिन्न जातियों में रोटी बेटी व्यवहार को उत्तेजना देने का। वर्णाश्रम आवश्यक है; परन्तु अनेक उपजातियाँ हानिकारक हैं। जहां रोटी व्यवहार है वहां बेटी व्यवहार के सम्बन्ध में दो मत न होंगे। यह भी देखते हैं कि ऐसे विवाह ठीक तादाद में हो भी चुके हैं। अब इस सुधार को नहीं रोक सकते। अतएव यह बहुत आवश्यक है कि समझदार मुखिया ऐसे सुधार को उत्तेजना दें। समय की रुचि के प्रतिकूल यदि मुखिया लोग ज्यादह सख्ती करेंगे तो उनका मान-

भंग होने की सम्भावना है। सुधारकों के लिये शोभनीय बात यह है कि यदि उन्हें ऐसा सुधार मुखियों के खिलाफ होकर करना पड़े तो विनय से काम लें। ऐसे सुधारक भी देखे जाते हैं जो मुखियों को तुच्छ मानकर उन्हें चुनौती देते हैं कि तुमसे जो होसके सो करलो। ऐसी अहालत करने से सुधार रुकता है। और यदि मुखिया बिलकुल निर्बल हो गया हो और इसलिये दण्ड देने से अशक्त होगया तो सुधारक एक तरह का स्वेच्छाचारी होजाता है। स्वेच्छाचार सुधार नहीं है। उससे समाज ऊंचा नहीं उठता नीचे गिरता है। ”

(हिन्दी नवजीवन)

गहोई वैश्यों का सम्बन्ध ।

हमारे पाठक गहोई वैश्यों से अवश्य परिचित होंगे। ये बुन्देलखण्डी और पलोहिया अथवा गढ़ावारे इन दो फिरकों में विभक्त हो रहे थे। गाडरवारे के निकट पलोहा नामक ग्राम में अधिक बस्ती होने के कारण दूसरे फिरके के लोग पलोहिया कहलाते हैं। यह नाम आधुनिक है। पुराना नाम 'गढ़ावारे' है। क्योंकि जिस प्रान्त में इस फिरके के लोगों की बस्ती है, वह गढ़ा कहलाता है। गढ़ावारों के सब मिला कर कोई ३०० घर हैं, इस कारण इनको विवाह सम्बन्ध करने में बड़ा कष्ट होने लगा था। ये चाहते थे कि हमारा बुन्देलखण्डी भाइयों से सम्बन्ध होने लगे। खुशी की बात है कि 'गहोई महासभा' ने इनकी प्रार्थना पर ध्यान देकर यह प्रस्ताव पास कर दिया है कि बुन्देलखण्डी और गढ़ावारों में विवाह सम्बंध अवश्य होना चाहिये। क्योंकि वास्तव में ये दोनों एकही जाति की दो शाखायें हैं जो किसी समय देश भेद के कारण पृथक हो गई थीं। हम देखते हैं कि देश भर में एकता की भावना प्रबल होती जाती है और वह इस समय अधिक नहीं तो इतनी समर्थ अवश्य हो गई है कि हरएक जाति के बिखरे हुए अंशोंको एकत्र करलें। हमें आशा करनी चाहिये कि आगे यह भावना और भी प्रबल होकर दस हजार जातियों के भेदों में बँटे हुए इस दुर्बल देश को बहुत कुछ बलवान् बना सकेगी।

परवार डिरैक्टरी ।

डिरैक्टरी के सम्बंध में श्रीमान् विद्वद्वर्य नाथूराम जी प्रेमी ने एक सम्मति हमारे पास भेजी है। हम उसे पाठकों के अवलोकनार्थ यहां ज्यों की त्यों प्रकाशित करते हैं:—

“श्रीमान सिंघई पन्नालालजी अमरावती वालों ने परवार डिरैक्टरी तैयार कराके बड़े ही पुण्य का कार्य किया है। हमें उनके सदुद्योग और अर्थव्यय की कदर करनी चाहिये। डिरैक्टरी छपकर तैयार हो चुकी है। उसकी कुल एक हजार प्रतियाँ छपाई गई हैं। हम समझते हैं कि वे बहुत जल्द हाथों हाथ बिक जायँगी और हमारी जाति के विचार शील तथा सुशिक्षित पुरुष उससे काफी लाभ उठायँगे। जहाँ तक हम जानते हैं इस कार्य में सिंघईजी के लगभग छह हजार रुपये खर्च हुए हैं और इस हिसाब से डिरैक्टरी की प्रत्येक प्रतिका मूल्य छः रुपया होना चाहिये था। परन्तु सिंघईजी ने अपनी स्वाभाविक उदारता से उसे एक या डेढ़ रुपये में ही बेचना चाहा है और इस बिक्रीसे जो रकम वसूल होगी उसे भी वे परवार समाज की सेवा में ही खर्च करने का संकल्प कर चुके हैं। आशा है कि इन सब बातों का खयाल करके परवार बन्धु के पाठक आजही डिरैक्टरी की एक एक प्रति वी० पी० से मँगालेने की कृपा करेंगे। ”

विनोद लीला ।

एक श्रद्धालु सज्जन कोई पुस्तक पढ़ रहे थे, उस में एक जगह निकला "काबुल के घोड़े अच्छे होते हैं" आप ने इसे रटकर कंठस्थ कर लिया। एक दिन की बात है कि, एक धोबी गधे पर चढ़ा जाता था। आपने उससे पूछा "तुम गधे पर सवारी क्यों करते हो? उसने कहा "इसकी सात पीढ़ियां हमारे ही वंश में बीत गई हैं और इसकी पहिली पीढ़ी काबुल से आई थी" यह सुनकर सज्जन बोले "अरे, ठीक है काबुल के घोड़े अच्छे होते हैं वहां गधों का क्या काम? जरूर यह घोड़ा होगा। क्षमा करना भाई मेरी आंखें ही कुछ खराब हो गई हैं"

× × × ×

एक महाशय खटिया पर पड़े २ करवटें बदल रहे थे। हमने कहा "क्यों तड़फ रहे हो?" बोले "क्या करें खटमलों के मारे नाकोंदम है" हमें बड़ी हंसी आई हमने कहा "तो यह खटिया बदल कर दूसरी पर लेट जाइये" बिचारे बड़े कष्ट के साथ बोले "कैसे बदल डालें, बाप दादों के जमाने से तो यही खटिया चली आई है।"

× × × ×

एकबार एक महतरानी रोटियां मांगकर, आगे २ सड़क सींचती हुई घर चली जाती थी, किसीने उससे पूछा कि "यह सड़क क्यों सींचती है तुम से नीच कौन होगा?" उसने विनय से कहा "सरकार आपही लोगों में ऐसे बहुत से नीच हैं जो लड़कियां बेचते हैं और बहूबेटियों से व्यभिचार करते हैं फिर इसी सड़क से निकल जाते हैं। भला उन से छुई हुई सड़क पर की रोटियां मैं कैसे खा सकती हूं?

× × × ×

पं० नन्दनलाल जी जैनवैद्य समाज के वयोवृद्ध प्रतिष्ठित पत्र जैन गजट के बड़े धुरंधर और मुख्य लेखक हैं। जब से आपने जैन गजट में बेरिस्टर चंपतराय जी की "अंग्रेजी शिक्षा से लाभ" पर दिये गये व्याख्यान पर समालोचना लिखी है तब से यूरोप के विज्ञान विशारद उनके मस्तिष्कके ज्ञान तन्तुओंकी विचित्रता देखनेके लिये जी तोड़ परिश्रम कर रहे हैं।

× × × ×

"खंडेलवाल हितेच्छु" में किसी महाशय ने खंडेलवाल कुलभूषण पं० धन्नालाल जी से अपने भतीजे के अरबस्थान जाने के विषय में कौकियत तलब करके बड़ी धृष्टता की है! हम समझते हैं कि पंडित जी ऐसी छोटी २ बातों पर ध्यान ही न देंगे। ऐसे छोटे लोगों को तलबी का यदि उत्तर देने लगेंगे तो दफ्तर खोल कर एक नई बला सिरपर लेना पड़ेगी।

× × × ×

शैलानी को एक स्पेशल बेतार के तार द्वारा खबर मिली है कि पं० जयचन्द्र जी का "जैन जाति के बढ़ाने के उपाय" जैन गजट में प्रकाशित लेख को अजमेर की निबन्ध परीक्षक समिति ने इकदम सब से प्रथम पास कर दिया है। अतः अन्य निबन्ध लेखक मेडल पाने की आशा न करें।

—एक शैलानी।

पूछ ताछ।

सूचना—प्रतिमाह "परवार-बन्धु" में पाठकोंके प्रश्नोंका उत्तर, विद्वानों की सम्मति, विशेष विचार और खोजके साथ दिया जावेगा। किसी प्रश्नोत्तरों का उत्तरदायित्व हम नहीं लेसके।हां, उचित उत्तर देने का यत्न किया जावेगा। प्रश्न कर्त्ताओंके नाम और पते गुप्त रक्खे जाते हैं। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस से लाभ उठावें। पूछताछ सम्बन्धीपत्र इस पतेपर भेजे जावें। पताः—'परवार-बन्धु' पूछताछ वि० जबलपुर।

१—"" ""से एक महाशय लिखते हैं कि:—" मडावरा (झांसी) के ...... जिनकी उमर ४० वर्ष से ऊपर है,........ हाल मडावरा की ९ वर्ष की लड़की के साथ शादी करने वाले है।"

परवार-सभा के जबलपुर अधिवेशन मे लड़की की ११ वर्ष और लड़के की १५ वर्ष से कम उमर में शादी करने वालों को पंचायत द्वारा दण्ड देने का प्रस्ताव पास होचुका है। अतः स्थानीय दोनों जगहोंकी पंचायतों को यह अनमेल, नियम विरुद्ध शादी वर कन्या के वारिसों से कहकर रुकवा देना चाहिये। इतने परभी यदि दोनों पक्षवाले हट करें तो किसीभी व्यक्तिको शादी में शामिल न होकर पंचायत को दण्ड का निर्णय कर देना चाहिये। इस में भारतवर्षीय परवार सभा भी साथ देगी।

२—"""""से एक महाशय लिखते हैं:—" कि.....मौजा वारी इलाका चंदेरी (ग्वालियर) की लड़की केवल ६ वर्ष की है। किन्तु ललितपुर के .... ने अपने लड़के के साथ उसका सम्बन्ध करना निश्चित कर लिया है और शादी भी आगामी वर्ष होने वाली है।"

महाशय! ललतपुर पंचायत के समक्ष वर पक्ष वालों ने अब तक इस सम्बन्ध का होना अस्वीकृत किया है। अतः इस समय कुछ कहने की जरूरत नहीं है।

३—बांचरपाटो के सज्जन अपने मित्र द्वारा पूछते हैं कि:—हम अपने लड़के को हिन्दी चौथी कक्षा पास करा चुके हैं अब उसे पढ़ाने का आगे क्या प्रबन्ध करें?

पहिले आप अपनी गार्हस्थ अवस्था, लड़के की रुचि और योग्यता देखिये फिर उसके पढ़ाने का प्रबंध यदि आप संस्कृत, अंग्रेजी हिन्दी और महाजनी पढ़ाना चाहते हों तो शिक्षा मन्दिर जबलपुर के मंत्री महोदय को शीघ्र प्रार्थना पत्र भेजिये।

४—""""के एक सज्जन—आप स्टेशनरी का थोकमाल "एम. एम. कादरजी एन्ड सन्स अब्दुल रहमान स्ट्रीट-बम्बई" से और रबर की मुहरें तथा पानी की तस्वीरें "लोकमान्य पुस्तक भंडार जबलपुर" से मंगाइये।

९—""""" के एक सज्जन—यदि आप के पास धार्मिक द्रव्य गोलमाल में पड़ने का प्रबल प्रमाण है। तो आप पहिले उसे स्थानीय पंचायत में स्पष्ट रूप से कहिये। यदि पंचायत उसका उचित प्रबंध न कर सके तो भारतवर्षीय परवार-सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित कराइये। क्योंकि उसने धार्मिक द्रव्य का हिसाब प्रकट करने तथा उसे अन्य सार्वजनिक संस्थाओं में भी व्यय करने का एक प्रस्ताव नागपुर में पास किया था। वह इस पर अवश्य ध्यान देगी।

८—नागपुर के महाशय! ललतपुर अधिवेशन का हिसाब तथा रिपोर्ट भूतपूर्व मंत्री महोदय को अब तक प्रकाशित न करने का कारण उनका प्रमाद है अब वह प्रायः बरसातमें छप जावेगा। रहा नागपुर अधिवेशन तक का हिसाब तथा रिपोर्ट, वह एक कापी में वर्तमान मंत्री महोदय के पास सिवनी से ता: १५-५-२४ को भेज दिया गया है। अतः वह शीघ्रही आप लोगों की सेवामें पहुंचा दिया जावेगा।

बिजली से बचने का उपाय।

बिजली की भयंकर आवाज सुनकर घबड़ा न जाना चाहिये। बिजली चमकने के जितनी देर बाद उसकी घड़घड़ाहट सुनाई पड़े, समझ लेना चाहिये वह उतनी ही दूर है। जो बिजली पास में गिरने वाली होती है उसकी चमक के साथ २ घड़घड़ाहट होती है। प्रति ५ सेकंड पीछे १ मील की दूरी का प्रमाण माना गया है। अर्थात बिजली की चमक दिखने के १५ सेकंड बाद घड़घड़ाहट हो तो बिजली गिरने की सम्भावना ३ मील के करीब होगी।

जब मालूम पड़े कि बिजली गिरने का अंदेशा है तो वृक्ष या ऊंची जगहों से दूर रहना चाहिये। झाड़ी, लोहे की छड़ या लोहे का दरवाजा, मकान की खिड़की और दरवाजों से बचना चाहिये। सब से सुरक्षित स्थान कमरे का मध्य है।

दूध की सरल परीक्षा।

मामूली गलाबन्द सीने की चिकनी सुई को दूध में डुबाओ और निकालकर देखो। यदि उस में कुछ दूध लगा रह जावे और धीरे २ कुछ समय बाद बूंद के रूप में टपक पड़े तो समझ लो कि दूध में पानी नहीं मिलाया गया है। यदि सुई में दूध न लगे तो उसे पानी मिला हुआ समझ लेना चाहिये।

संसार में सबसे छोटी रेलगाड़ी।

अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने यात्रियों के बैठने योग्य सबसे छोटी रेलगाड़ी बनाई है। इसके एंजिन का वजन प्रायः ७॥ मन है, चकों का व्रत १० इंच का, धुआं निकलने का पोंगा पांतों से २ फुट ऊंचा है। यह एंजिन, बैठनेवालों सहित २ मोटर गाड़ी उठा लेता है। और प्रायः २ टन का बोझा ढो सकता है। पांत की चौड़ाई १२॥ इंच है। लम्बाई प्रायः ½ मील है।

नमक का हिसाब।

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने अन्वेषण करने के उपरान्त यह निर्णय किया है कि संसार के समस्त समुद्रों में ६०,०००,०००,०००,०००,०००, टन नमक है। यदि यह सब नमक जमीन पर फैलाया जावे तो १००० फुट ऊंची सतह जम जावे।

सच झूठ की परीक्षा।

अपराधी या कोई भी मनुष्य सच या झूठ बोल रहा है इसकी परीक्षा के लिये एक यंत्र का आविष्कार हुआ है। प्रश्नकर्ता जिस समय अपराधी से प्रश्न पूछता है उस समय उस यंत्र की छाया अपराधी की आंखों पर डाली जाती है—यदि वह झूंठ बोलता है तो वह छाया अपने स्थान से भिन्न दशा में हो जाती है। इस सिद्धांत की पुष्टि १० वर्ष की परीक्षा-द्वारा हो चुकी है।

शोक समाचार।

अमरावती के सिंघई मूलचन्द्र जी का गत अक्षय तृतीया को चौसठ वर्ष की उमर में स्वर्गवास होगया है। आप बहुत ही सरल सत्यप्रिय आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा में दक्ष थे। स्वरोदय विज्ञान तथा अध्यात्म वेत्ता थे। आपके सुपुत्र गुलाबचन्द्र जी वैद्य से हमारे पाठक परिचित होंगे हम आपके इस पितृवियोग के दुख में समवेदना प्रगट करते हैं।

श्री शान्तिनाथ चरित्र।

अनुवादक पंडित लालाराम जी। प्रकाशक बाबू दुलीचंद्र पन्नालाल सिंगई ६३ लोअर चितपुर रोड़ कलकत्ता। मूल्य छः रुपया

यह ग्रन्थ श्रीमद्भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत काव्य का अनुवाद है। इस पुस्तक में सिर्फ अनुवाद ही किया गया है। संस्कृत श्लोक छोड़ दिये हैं। यदि संस्कृत श्लोक देदिये जाते तो और भी अच्छा होता हिन्दी अनुवादके साथ ही संस्कृत ग्रन्थों का उद्धार हो पाता है। मूल ग्रन्थ देखे बिना अनुवाद की आलोचना करना कठिन है फिरभी अनुवाद अच्छा ही है।

सत्ताइसवें पृष्ठ में अभ्वाजीव के विषय में कहा गया है कि उसकी आयु अधिक है यहां आयु शब्द की जगह उमर लिखा जाता तो अच्छा होता मूल ग्रन्थ में इस जगह वयस् शब्द होगा जिसका ठीक अनुवाद उमर ही है आयु और वयस शब्द के अर्थ में बहुत अन्तर है। प्रारम्भ में वहां श्रोताका लक्षण बहुत अच्छी तरह से बताया है। इसी तरह बारहभावना आदि का कथन भी अच्छी तरह किया गया है। कथा रोचक और लम्बी है। भगवान शान्तिनाथ के कई एक पूर्वभवों से चरित्र लिखा गया है। भगवानके पूर्वभवोंसे क्या शिक्षा मिली है इस का विवेचन भी किया हैं।

सब से अन्त में पं० लालाराम जी की प्रशस्ति है हमारी समझ में आजकल ऐसी प्रशस्तियाँ अच्छी नहीं मालूम होतीं। प्रशस्तिमें पचीस दोहे हैं। छटवें सातवें में छन्दोभंग दोष आगया है। ग्रन्थ में जन्म कल्याणक के नियम का एक चित्र भी है। ग्रन्थ उपादेय है।

मोक्षमार्ग की सची कहानियां।

प्रकाशक-पं० बुद्धिलाल जी श्रावक। प्रेषक-भारत पुस्तक भंडार, जबलपुर। मूल्य ।≈)

इस पुस्तक में छोटी २ दो तीन कथाएं हैं। जो जैन कथा ग्रन्थों में से चुन २ कर जैन कथा सुमनावली नाम की मराठी पुस्तक के सहारे लिखी गई है। रत्नकरण्डश्रावकाचार में जिन २ कथाओं का प्रकरण आया है वे प्रायः सब आ चुकी हैं। विद्यार्थियों तथा धर्म प्रेमियों के काम की है।

मौनव्रत कथा।

अनुवादक-पं० नन्हूनलाल शास्त्री। प्रकाशक-जैन ग्रंथ कार्यालय देवरी (सागर) मूल्य।=)

मौनव्रत का महत्व एक कथा के रूप में दिया गया है। बीच २ में धार्मिक प्रसंग भी आया है। मौनव्रत का पालन कषायों की मन्दता के लिये अत्यन्त आवश्यक है-अतः यह व्रतसर्व साधारणोपयोगी है। पुस्तक में इसका विवेचना मूलग्रंथ संस्कृतकी टीका परसे किया गया है। कागज, छपाई, सफाई सभी अच्छी है।

गोलापूर्व जैन।

(मासिकपत्र) सम्पादक-पं० मुन्नालाल जी रांधेलीय न्यायतीर्थ। प्रकाशक—मलैया शोभाराम जी सागर। वार्षिक मूल्य १॥) है।

यह गोलापूर्व सभा के चौथे वर्ष का १ ला अंक है। बीच मेंकई बाधक कारणों से बन्द रहा परंतु अब जेठ सुदी ५ से फिर नये रूपमें निकलने लगा है। जिन परस्पर व्यवहारों के कारण इसे बीचमें बंद हो जाना पड़ा था-अब हमें आशा है कि उसके सम्पादक तथा संचालक गण उन बातों से दूर रहकर ही गोलपूर्व जैन की उन्नति में पूर्ण यत्न करेंगे। लेखों को यथास्थान रखने से पत्र की शोभा तथा लेखोंका सिलसिला ठीक रहता है। गोलापूर्व जैन इस बात पर अवश्य लक्ष्य देगा।

गोरखधंधा

[नोट—" परवार-बन्धु " के प्रेमी पाठकों की प्रतिस्पर्धा के लिये हमने प्रत्येक अंक में गोरखधंधा, पहेली और भिन्न २ विषयों पर " रजतपदक " या नगद रुपया तथा कुछ अन्य साहित्य देने का प्रबंध किया है। स्थानीय विद्वानों की सम्मति से पारितोषक की सूचना परवार-बन्धु के आगामी अंकों में निकलती रहेगी। अन्य महाशय भी अपनी पहेली आदि कम से कम ५) नगद या उतने ही मूल्य की अन्य सामग्री उत्तर देने वालों को उपहार में देने पर परवार-बन्धु में प्रकाशित करा सकेंगे। यदि उत्तम विषय के निर्णय का, जिस में उपहार की आवश्यकता है। और वे उपहार नहीं दे सकते हैं तो उनका प्रश्न आने पर हम उपहार देने का प्रबंध करेंगे। बिना लेखक की आज्ञा व इच्छा के उनका कोई भी विषय प्रतिस्पर्धा में पारितोषक के लिये नहीं रक्खा जावेगा। अतः बन्धु की उन्नति चाहने वाले प्रेमी पाठकों से प्रार्थना है कि वे बंधु पर ज्यों की त्यों कृपा रक्खेंगे। [इस सम्बन्धी पत्र व्यवहार का पता—" परवार-बन्धु " कार्यालय-गोरखधंधा विभाग, जबलपुर (म० प्र०)

सभी साहित्य प्रेमियों को सूचना

एक वाक्य बनाकर भेजने वालों में से प्रथम को " रजतपदक " या ५) नगद, शेष २५ को १२॥) मूल्य की २५ पुस्तकें पारितोषिक में दी जावेंगी-जो २४ जुलाई तक

" परवार " इस शब्द के प्रत्येक अक्षर से शुरू होने वाले एक २ शब्द को मिलाकर उत्तम वाक्य बनाकर भेजेंगे। वाक्य का एक उदाहरण इस प्रकार है।

परन्तु रमेश बाबू रहेंगे

इसका उत्तर हर एक महाशय ३ वाक्यों तक में भेज सकते हैं। पारितोषकका निर्णय श्रीमान राय सा. पं. रघुवरप्रसाद जी द्विवेदी बी. ए. और बाबू कस्तूरचंदजी वकीलकी सम्मितसे होगा।

समाचार संग्रह।

प्रस्तावों की अमली कार्यवाही।

मंदिर के द्रव्य का उपयोग और हिसाब।

—परवार सभा के नागपुर वाले अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास हुआ था, कि मंदिरों का रुपया अन्य उपयोगी धार्मिक कार्यों में खर्च किया जावे तथा उसका हिसाब भी प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जावे। हर्ष की बात है कि जबलपुर पंचायत ने पुरानी बजाजी के दि० जै० म० को जो कई वर्षों से अधूरा पड़ा था। स्थानीय मंदिरों के फंड से रुपया देकर इसी वर्ष बनवाना निश्चित कर दिया है। काम शुरू होने वाला है।

इसी प्रकार सिवनी के श्रीमान रायबहादुर श्रीमन्तसेठ पूरनसाह जी के सिवनी में ३ जबलपुर में एक तथा शिखरजी में एक मन्दिर है। आप ने इन सब मन्दिरों का तथा सिवनी के एक पंचायती मन्दिर का कातक बदी १५ सं० ८० तक का हिसाब प्रकाशित कराने को हमारे पास भेजा है। हिसाब में लेनदेन के आसामियों तथा मंदिर की प्रतिमाओं तक का वर्णन कर दिया है। अतः हिसाब की स्पष्टता इसी से पाठक समझ सके हैं। नागपुर की सभा में अन्य सज्जनों ने भी हिसाब प्रकाशित कराने की घोषणा की थी। उन्हें तथा अन्य मंदिर-संरक्षकों को भी इस पर ध्यान देना चाहिए।

—समस्त सभैया दिगम्बर जैन महासभा की बैठक ता० १२, १३, १४, जुलाई को संगठन तथा जातीय, धार्मिक विषयों के विचारार्थ हुशंगाबाद में श्रीमान सेठ पन्नालाल जी मिर्जापुर वालों की अध्यक्षता में होगी।

हिन्दी प्रेमी मात्र को यह जानकर दुख होगा। कि जबलपुर के प्रसिद्ध हिन्दी प्रेमी, साहित्य भूषण पं० विनायकराव जी, कविनायक का जेष्ठ शुक्ल १० ता: १२-६-२४ को ६८ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया है।

—विशारद परीक्षा पास और शास्त्रसभा से जानकार एक धर्माध्यापक, उर्दू अंग्रेजी मिडिल, हिन्दी ट्रेनिंग पास और धर्म प्रवेशिका की योग्यता वाला एक अध्यापक तथा जैन प्रवेशिका के लिये दो अध्यापकों की जिनको जरूरत हो वे नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें। पता:-जैन धर्मभूषण पं० जिनेश्वरदास, वैद्यशास्त्री, गोहाना (रोहतक) पंजाब।

—मैट्रिक तक अंग्रेजी पढ़ने वाले छात्र सेठ माणिकचन्द्र पानाचंद्र दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस के सुपरि० बाबू कालूराम जी परवार मन्त्रालय से लिखा पढ़ी करें। उनका बोर्डिंग में रहने तथा स्कालरशिप का प्रबंध हो सकता है। यात्रियों, त्यागियों आदि को भी धर्मशाला का प्रबंध है।

—दिगम्बर जैन शिक्षा मन्दिर जबलपुर की बैठक ता: ७ जुलाई को होगी, सभासदों से आने की प्रार्थना है।

प्राप्ति स्वीकार।

सत्तर्क सुधा तरङ्गिणी जैन पाठशाला सागर।

श्रीमान् माननीय पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी सागर के उद्योग से निम्न महानुभावों ने आहारदान में निम्नलिखित गेहूं प्रदान किये हैं। उनके लिये कोटिशः धन्यवाद। अन्य महाशय भी आपका अनुकरण कर पुण्य का भण्डार भरेंगे।

श्रीमान् मोदी पुन्नीलाल जी	पटना	२॥)
,, प्यारेलाल जी	,,	२॥ऽ
,, मन्नूलाल जी		२॥ऽ
,, कन्हैयालाल जी	,,	२॥ऽ
श्रीमती लक्ष्मीबाई	,,	२॥ऽ
श्रीमान मोदी मूलचन्द रामलाल जी	,,	२॥ऽ
,, अमान कन्हैया लाल जी	,,	१॥ऽ
,, चौधरी नाथूराम जी हाना	(सागर)	१।ऽ
,, सकल पंचान—हली	,,	२५ऽ
,, कथा प्यारेलाल जी पड़रिया	(सागर)	२॥ऽ
,, सराफ हजारीलाल जी—शाहपुर	(सागर)	२॥ऽ
,, सेठ रतनचन्द पूरणचन्द्र जी रायसेन	(भोपाल)	५ऽ
श्रीमती बिन्दू बाई रायसेन	(भोपाल)	५ऽ
श्रीमान् सेठ तेजराम जी रायसेन	(भोपाल).	२॥ऽ
,, सेठ नाथूरामजी चुन्नीलालजी लंबरदार बंडा	सागर	५ऽ
,, मास्टर चुन्नीलाल जी—पिठौरिया	(सागर)	२॥ऽ
,, सकलपंचान—चिद्वासन	,,	२॥ऽ
,, मोदी मिट्टूराम जी—हैदुरबाग	,	२॥ऽ
,, सकलपंचान धीपरा	,,	५ऽ
,, बजाज कन्हैयालाल जी हजारीलाल जी हाना		२॥ऽ
,, सिंघई रामलाल मोहनलाल जी पिठौरिया	,,	१०ऽ
,, चौधरी कन्हैयालाल हुकमचन्द्रजी मानिकचौक	,	१५ऽ

१०७ मन

नोट—अन्त के तीन महाशयों ने पहिले भी क्रमशः ५ऽ, ५ऽ, तथा १०ऽ गेहूं दिये थे। वे आपलोगों ने दुबारा दिया है। तदर्थ धन्यवाद

भवदीय—

मंत्री कन्हैयालाल सराफ।

श्री दिगम्बर जैन पंचायती सभा ललितपुर की नियमावली।

—श्रुतपञ्चमी को ललितपुर में ठाकुर ब्रजरतन जी के सभापतित्व में बाबू कन्हैयालाल जी वकील जबलपुर का "समाज संगठन" पर ओजस्वी भाषण हुआ था, अतः उसी समय "श्री दिगम्बर जैन पंचायती सभा" की स्थापना हुई। उसमें ५ महाशयों का नियमावली निर्माण करने का निश्चय हुआ। पश्चात् सभा से नियमावली स्वीकृत होने पर ३५ सज्जनों की प्रबंधकारिणी सभा बनाई गई। और सभा के खर्च को सिंगई भगवानदास जी की सम्मति से यह प्रस्ताव पास हुआ कि "प्रत्येक थोक दूकानदार अपने माल की आमद पर प्रति सैकड़ा एक पैसा, चांदी की सिलपर एक आना, और सोने चांदी की पार्सल पर आधा आना देवें"। यह प्रस्ताव कार्य रूप में परिणत हो गया है। एक आदमी प्रतिदिन वसूली करने को ८) मासिक पर रक्खा गया है। इसके मंत्री बाबू सुखलाल जी टड़ैया और उपमंत्री बाबू नाथूराम जी सिंगई चुने गये हैं।

उद्देश्य।

१-स्थानीय जैनियों में एकता बढ़ाना।
२-जातीय झगड़ों का निबटारा करना।
[३-जा]त्योन्नति के उपाय सोचना तथा उनको कार्य में लाना।
४-धार्मिक संस्थाओं का प्रबंध करना।

नियम

१-इस सभा के सभासद् ३५ होंगे।
२-२१ वर्ष से कम उम्रवाला व्यक्ति सभा का सभासद नहीं हो सकता।
३-इस सभा का कोरम १५ सभासदों की उपस्थितिपर ही माना जायगा।
४-हर एक विषय का निपटारा कसरत राय पर होगा।
५-समान सम्मति होने पर सभापति को कास्टिङ्ग वोट देने का अधिकार होगा।
६-सभा का कोरम होने पर उपस्थित सभासदों में से ही सभापति चुना जायगा
७-सभा की कार्यवाही लिखित होगी।
८-इस सभा की बैठक प्रति पूर्णमासी को श्री बड़े मन्दिर में होगी।
९-विशेष आवश्यकता होने पर और पांच सभासदों की सही आने पर मंत्री को अधिकार होगा कि जहां तक जल्दी हो सके सभा की बैठक करें।
१०-सभासदों तथा कार्यकर्ताओं का चुनाव प्रति वर्ष होगा और सभा का वर्ष श्रुतपंचमी से माना जायगा।
११-यदि किसी व्यक्ति को सभा के न्याय से सन्तोष न हो तो उसको अधिकार होगा कि वह जनरल सभा को बुलाकर अपील करे।
१२-सभासदी फीस ॥) साल होगी
१३-इस सभा को दिगम्बर जैन महासभा, परवार सभा तथा गोलालारीय आदि सभाओं में स्वीकृत प्रस्तावों को जो जिसके लिए लागू हों मानना पड़ेगा। तथा यथा शक्ति अमल में लाना पड़ेगा।
१४ अगर कोई सभासद बिलामाकूल वजह लिख लाए उपस्थित न हो तो सभा को अधिकार होगा कि उसका नाम पृथक कर देवे और उसकी जगह वर्ष के अन्त तक के लिए दूसरा मेम्बर चुन लेवे।
१५-जबतक कोई महाशय इस सभा से अपना न्याय न करालें तब तक वह जनरल सभा से अपना न्याय नहीं करा सकता।
१६-इन नियमों में न्यूनाधिक करने का अधिकार जनरल सभा को होगा।

—पत्र छपते २ समाचार मिला है कि जो हमने गत अंक में समाचार प्रकाशित कराया था कि "४८ वर्ष की उमर में श्रीमान् सिंगई कोमलचंद जी कामठी, नागपुर के श्रीमान् मुन्नालालबलभद्र जी की ९ वर्षीय कन्या के साथ शादी करना चाहते हैं" अब यह जानकर हमको परम प्रसन्नता हुई कि यह सम्बन्ध निश्चित नहीं हुआ। यथार्थ में हमको आप से जैसी आशा होनी चाहिये थी वही हुई। क्योंकि आप परवारबंधुके संरक्षक तथा श्रीमान हैं।

विवाह सम्बन्ध हो जाने की सूचना 'परवार-बन्धु' कार्यालय जबलपुर को अवश्य दीजियेगा।

वर के अठसका।

(१)

१—वारू, गोहिल्लगोत्र।

२—वाला
३—भारू
४—रामांडम
५—भना
६—डेरिया
७—रकिया
८—बहुरिया

जन्म सम्वतः—
आश्विन सुदी ११ सं. १९५२
पताः—
सिंगई किशोरीलाल उमराव
हांडीगंज झांसी।

नोट—झांसी के रहने वाले हैं, घर मे भाई, भौजाई, मां हैं। और ६०० साल की आय है। मुनीमी करते हैं।

(२)

१—वैशाखिया, गोहिलगोत्र।

२—रकिया
३—छीवर
४—भना
५—कुआ
६—वामे
७—गोदू
८—वारू

जन्म सम्वतः १९६१
दीपचन्द भैयालाल जैन
नरसिंहपुर।

नोट—मिडिल क्लास तक शिक्षा प्राप्त, किराने की दुकान है। ५०५) के करीब आय है।

(३)

१—वार, गोहिलगोत्र।

२—डुही
३—लाले
४—डंग
५—कुआ
६—रकिया
७—उजरा
८—वैशाखिया

जन्म सम्वत्:—
जेठ सुदी ६ सं. १९५७
पताः—
मुन्शी मोतीलाल जैन
होशंगाबाद (मध्यप्रदेश)

नोट—६ वीं कक्षा तक अंग्रेजी पढ़ा हुआ तथा कुटुम्ब वाले हैं। रूप भी सुन्दर है घर की स्थिति अच्छी है।

(४)

१—रामांडम, बासल्लगोत्र।

२—किरकिनमूर
३—सर्व छोला
४—गांगरे
५—बीबीकुट्टम
६—भारू
७—देदामूर
८—गोरिया

जन्म सम्वत्:
फागुन बदी १३ सं. १९५६
सुन्दरलाल बड़कुर जैन
पताः—
जूनी बस्ती बदनेरा
अमरावती.

नोट—इनके बाबत पचौरीलालजी बदनेरा या श्री रतनचन्द जी सिवनी वालों से पूछ ताछ कीजिये।

कन्या के अठसका

(१)

१—वार, गोहिलु गोत्र।

२—डुही
३—लाले
४—डंग
५—कुआ
६—रकिया
७—उजरा
८—वैशाखिया

जन्म सम्वत्—
कुंवार बदी ८ सं. १९७०
पताः
वही जो वर नं० ३ का है।

नोट—वर शिक्षित १८, २० वर्ष का तथा कुटुम्ब वाला चाहिये।

(२)

१—डेरिया, वामल्ल गोत्र

२—छिनरा
३—भीया
४—भारू
५—बहुरिया
६—बड़ेमारग
७—वैशाखिया
८—मिडला

जन्म सम्वतः—
प्र. सावन बदी ४ सं. १९६६
पताः
सेठ दीपचन्द पन्नालाल प०
सिवनी (म० प्र०)

नोट—कन्या लिखी पढ़ी और इन्दौर की परीक्षाएँ पास है।

संरक्षक

१—श्रीमान श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी सिवनी
२—श्रीमान सिंगई पन्नालाल जी अमरावती.
३—श्रीमान बाबू कन्हैयालाल जी अमरावती.
४—श्रीमान ठाकुरदास दालचंद जी अमरावती.
५—श्रीमान स.सि.नत्थूमल जी साव जबलपुर.
६ श्रीमान बाबू कस्तूरचंदजी वकील जबलपुर
७—श्रीमान सिंगई कुंवरसेन जी सिवनी
८—श्रीमान स सि. चौधरी दीपचंदजी सिवनी.
९—श्रीमान फतेचंद दीपचंद जी नागपुर.
१०—श्रीमान सिंगई कोमलचंद जी कामठी.
११—श्रीमान गोपाललाल जी आर्वी
१२—श्रीमान पं० रामचन्द्रजी आर्वी.
१३—श्रीमान खेमचंद जी आर्वी.
१४—श्रीमान सरउलाल झब्बूलाल जी. निवरा
१५—श्रीमान कन्हैयालाल जी डोंगरगढ़.
१६—श्रीमान सोनेलाल जी नवापारा.
१७—श्रीमान दुलीचंद जी चौरई. छिंदवाड़ा
१८—श्रीमान मिट्ठनलाल जी छपारा.

सहायक

१ - श्रीमान रामलाल जी साव सिवनी २५)
२—स० सि० लक्ष्मीचंद जी गढ़याना २५)

ग्राहकों को सूचना।

'परवार-बन्धु' दो बार अच्छी तरह जांच कर यहां से भेजा जाता है। जिन ग्राहकों को किसी मास का अंक आगामी मास की १५ ताः तक न मिले उन्हें पहिले अपने डाकघर से पूछना चाहिये। यदि पता न लगे, तो डाकघर का उत्तर हमारे पास भेज कर हमें सूचित करना चाहिये। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जावेगा। ग्राहकों को, पत्र व्यवहार के समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। जो कि पते की चिट पर लिखा रहता।

परवार-बन्धु का प्रथम और द्वितीय अंक स्टाकमें बिलकुल नहीं है। अतः पाठक गण मँगानेका कष्ट न करें। फाइल न बनाने वाले यदि पहला और दूसरा अंक हमें भेज सकें तो बड़ी कृपा होगी उनकी इच्छानुसार उसका मूल्य उन्हें दे दिया जावेगा।

विज्ञापन दाताओंके पत्रोंका उत्तर।

हमारे पास कई विज्ञापन दाताओंके पत्र आये हैं--उनमें उन्होंने ग्राहक संख्या और रेट के सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर मांगा है। अतएव हमारा उनसे केवल इतना निवेदन है कि यह पत्र किसी एकका नहीं किन्तु समाज का है-इसकी कोई भी बात गुप्त और संशयात्मक नहीं रक्खी जाती है। इसके ग्राहकों की संख्या थोड़ेही समय में सभी जैन पत्रों से अधिक होगई है। वह भी छिपा के नहीं रक्खी जाती--किंतु शुरू से ही प्रत्येक अंक में नाम सहित प्रकाशित की जा रही है। और पृथक भी रिपोर्ट में छपाई जावेगी। जिससे हमारी बातों का पता लग सकता है। सभा, विद्वानों, तीर्थस्थानों, व्यापारियों, पंचायतों आदि की सेवा में भेजा जाता है। उदारदाताओं और संरक्षकों की सहायता से असमर्थों को मुफ्त में भी भेजा जाता है। जिससे एक २ अंक सैकड़ों लोगों की दृष्टि में पहुंच जाता है।

छपाई का रेट लागत मात्र नीचे दिया गया है उसमें कुछ भी कमी नहीं होसकेगी--केवल एक वर्ष के विज्ञापन की छपाई पेशगी देने वालों को ≈) रुपया कम कर दिया जावेगा। पीछे आये हुए विज्ञापन आगामी अंक मे छापे जावेंगे।

इस समय विज्ञापन की दर.—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	८)	प्रति मास
आधा पृष्ठ या १ "	" ५)	"
चौथाई,, या आधा कालम	" ३)	"
अष्टमांश पृष्ठ या चौथाई,	" २)	"
कवरके चौथे पृष्ठ की	" १२)	"
" तीसरे "	" १०)	"
पाठ्य विषय के पहिले और पीछे की छपाई	९)	"

नोट:—(१ पूरी छपाई पेशगी ली जावेगी।
(२, एक कालम से कम विज्ञापन छपाने वाले को "बन्धु" बिना मूल्य नहीं भेजा जावेगा।
(३) नमूने की प्रति का मूल्य पांच आने।

पता:—
मास्टर छोटेलाल जैन
परवार-बन्धु कार्यालय, जबलपुर (सी. पी.)

परवार-बन्धु पर सम्मतियाँ।

१ "प्रणवीर" नागपुर ता० २० जून १६२४

"परवार-बन्धु" यह श्री भा० दि० जैन परवार सभा का मुख पत्र है। इसका मई सन् १६२४ का अंक हमारे सामने है। इसमें साहित्य, शिक्षा और समाजिक विषयों पर कई उत्तम [illegible] प्रकाशित हुई हैं। श्रीयुत बाबूलाल गुलझारीलाल जैन का 'शिक्षा कैसी [illegible]' लेख [illegible] पूर्ण है। [illegible] और छोटे [illegible] द्वारा अंक में मनोरंजन की सामग्री भी रखी गई है। [illegible] मूल्य २) है। मिलने का पता- "परवार-बन्धु" कार्यालय जबलपुर (म० प्र०)

२ श्रीयुत सैय्यद अमीरअली (मीर)

"परवार-बन्धु" के दर्शन से चित्त प्रसन्न हुआ है। जबलपुर से 'शारदा' का समकक्ष [illegible] और मासिक पत्र हिन्दी तथा मध्यप्रान्त का गौरव बढ़ाने वाला निकला-यह हम मध्यप्रान्त-[illegible] के लिये [illegible] की बात है परमेश्वर उसे लोकप्रिय तथा चिरजीवी करे।

३ श्रीयुत कुँवरलाल जी जैन न्यायतीर्थ।

"परवार-बन्धु" का वर्त्तमान रंगढंग अत्यन्त सुन्दर, आदरणीय और आशाजनक है। यदि शान्तिप्रिय सम्पादक और उत्साही प्रकाशक महोदय इसी भाँति प्रयत्नशील रहे तो बन्धु परवार जाति का ही नहीं किन्तु समस्त जैन समाज का वास्तविक "बन्धु" बन जायगा। हम हृदय से इसकी उन्नति चाहते हैं।

४ श्रीयुत मास्टर भैयालाल जी म्युनिसिपल कमिश्नर।

"परवार-बन्धु" को इतनी अच्छी स्थिति में देखकर मन बहुत प्रसन्न हुआ, आशा है [illegible] के हाथों में रहकर इसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती जावेगी। [illegible] करना "परवार सभा" के लिये बड़े गौरव की बात है।

५ श्रीयुत दशरथलाल जी जैन।

हिन्दी जैन साहित्य के [illegible] में जिस सर्वांग सुन्दर मासिक पत्रिका के अभाव की असह्य वेदना हिन्दी साहित्य मर्मज्ञों को थी हर्ष है कि "परवार-बन्धु" ने उनको सन्तुष्ट करने का आशातीत प्रयत्न किया है। और शीघ्रही वह अपने को जैन साहित्य के भाग्याकाश का एक चमकता हुआ तारा सिद्ध करेगा।

पत्रिका में धर्म, साहित्य, समाज, इतिहास, विज्ञान, उद्योग और कला सम्बन्धी प्रायः सब लेख मौलिक और परिमार्जित भाषा में निकलते हैं जो कि अवश्य पठनीय हैं। विविध विषय बहुत विचार पूर्वक-स्पष्ट, मार्मिक, स्वतंत्र और निर्भयता पूर्वक लिखा जाता है। प्रकाशक तथा सम्पादक दोनों का प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है।

विषय-सूची।

क्षमावणी के कार्ड

।।।) सैकड़ा सुन्दर और बहुत सस्ते तथा कम से कम १०० कार्डों तक मंगाने वालों का नाम भी उसमें छापा जा सकेगा-जो ता: २४ अगस्त तक मूल्य सहित अपना नाम भेज देवेंगे।

अगामी अंक—

"परवार-बन्धु" का दशलाक्षणी पर्व के ले पाठकों के पास पहुँच जावेगा।

प्रकाशक:—मास्टर छोटेलाल जैन,
जा. परवार-बन्धु कार्यालय जबलपुर.

परवार सभा की ओर से प्रचारक

श्रीयुत मास्टर हरिश्चन्द्र जी माह अगस्त सन् २४ से मुगावली, पिपरई, पछार आदि गुना लाइन में भ्रमण शुरू करेंगे। प्रत्येक जगह की पंचायतों को चाहिये कि वे अपना अस्तित्व कायम रखने के लिये अपना सामाजिक संगठन और प्रस्तावों की अमली कार्यवाही में अपना हाथ बढ़ावें। दशलाक्षणी पर्व के पहिले २ दिन के पास मन्दिरों का द्रव्य आदि हो उसका हिसाब तैयार करके

'परवार-बन्धु'

में प्रकाशनार्थ भेजें। तथा दशलाक्षणी पर्व में अपनी पंचायत के समक्ष भी रख कर सार्वजनिक द्रव्य की जिम्मेदारी व रक्षा का प्रबंध करें। परवार सभा के लिये जो दान द्रव्य में प्रदान किया जावेगा। उसका सदुपयोग

असमर्थ छात्रों को छात्रवृत्तियाँ

देकर किया जाता है। इस वर्ष १ जुलाई से निम्न लिखित छात्रों की छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत कीगई है:—

नाम	वास स्थान	पता	किस लिये	ओर से	तादाद
१—हरिप्रसाद जैन	महरानी		कामर्स लखनऊ	परवारसभा	१०) मा०
२—नन्हेंलाल चोधरी	सागर	C/o ह एफ. फरगुसन एंड को० चार्टेड अकाउन्टेंट बोनाली रोड करांची	अकाउटेन्सी अप्रेंटरी	,,	१०) मासिक
३—बाबूलाल जैन	गौरझामर	तिलोकचंद हाई स्कूल इंदौर	मैट्रिक	,,	५) मासिक
४—दुलीचंद जैन	महावारा	जैनपाठशाला ललितपुर	विशारद द्वि०खंड	,,	२) मासिक

अनाथों को सहायता

१—रामरानी— ललितपुर—मारफत सेठ पन्नालाल की टडैया—अनाथ — परवारसभा १०) एक मुश्त

२—गंगा बाई— सिवनी— मारफत सिंघई कुंवरसेन जी— ,, ,, २) मासिक

संगठन के लिये डेपुटेशन का भ्रमण

ता: १० अगस्त सन २४ से शुरू होगा जो भोपाल, बासोदा, बामोरा आदि स्थानों में होता हुआ अपना कार्य करेगा।

जीर्णोद्धार

के लिये कई स्थानों से पत्र आये हैं। परन्तु यथोचित द्रव्याभाव के कारण परवार सभा इस समय इस कार्य के करने में असमर्थ है। दानी महाशयों से नम्र निवेदन है कि वे अपने दान की रकम भेजकर इस पुण्य कार्य में भाग लेवें। और जिन महानुभावों ने सोनागिर जबलपुर, नागपुर अधिवेशनों में रुपया देना स्वीकार किया था वे अपना बकाया रुपया तथा नवीन दान देकर धर्म कार्य की पूर्ति करें।

समाज का नम्र सेवक—कस्तूरचंद वकील—मंत्री परवारसभा, जबलपुर।

अपमान या अत्याचार ?

(ले०—श्रीयुत पं० जुगलकिशोरजी, मुख्तार।)

कल शुक्रवार को, कोई पहर रात गये, खुली छत के मध्य में शय्या पर लेटा हुआ, मैं स्त्रियों की पराधीनता और उनके साथ पुरुष जाति ने जो अब तक सलूक किया है उसका कुछ गहरा विचार कर रहा था। एकाएक शीतल मन्द-सुगन्ध पवन के झोकों ने मुझे निद्रा-देवी की गोद में पहुँचा दिया और इस तरह मेरा वह सूक्ष्म विचार--चक्र कुछ देर के लिये बंद हो गया।

निद्रा-देवी के आश्रम में पहुँचते ही अच्छे अच्छे सुन्दर और सुमनोहर स्वप्नों ने मुझे आ घेरा। उस स्वप्नावस्था में मैं क्या देखता हूँ कि, एक प्रौढ़ा स्त्री, जिसके चेहरे से तेज छिटक रहा है और अपने रंग रूप, वेष-भूषा तथा बोल-चाल से यह प्रकट कर रही है कि वह 'अखिल भारतीय महिला महासभा' के आसन पर आसीन होकर आरही है। अपनी कुछ सखियों के साथ मुझसे मिलने के लिये आई। अभी कुशल प्रश्न भी पूरी तौर से समाप्त नहीं हो पाया था कि उस महिला रत्न ने एकदम बड़ी ही सतर्क भाषा में मुझसे यह प्रश्न किया कि, **'आप लोग स्त्रियों से जो घूंघट निकलवाते हो–उन्हें पर्दा करने के लिये मजबूर करते हो–इसका क्या कारण है ?**

मैं इस विलक्षण प्रश्न को सुन कर कुछ चौंक उठा और उत्तर सोचना ही चाहता था कि वह विदुषी स्त्री स्वतः ही बोल उठी—

'या तो यह कहिये कि आप लोगों का स्त्रियों पर विश्वास नहीं है। आप यह समझते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों को देख कर काम--बाण से विकल हो जाती हैं—उनके मन में विकार आ जाता है—और व्यभिचार की ओर उनकी प्रवृत्ति होने लगती है। उसीकी रोक थाम के लिये यह घूंघट की प्रथा जारी की गई है। यदि ऐसा है तो **यह स्त्री जाति का घोर अपमान है।** स्त्रियाँ स्वभाव से ही पाप-भीरु तथा लज्जाशील होती हैं; उनमें धार्मिक--निष्ठा पुरुषों से प्रायः अधिक पाई जाती है, चित्त भी उनका सहज ही में विकृत होने वाला नहीं होता। उन्हें व्यभिचारादि कुमार्गों की ओर यदि कोई प्रवृत्त करता है तो वह प्रायः पुरुषों की स्वार्थ पूर्ण चेष्टाएँ–विवेकशून्य क्रियाएँ–और उनकी निरंकुश प्रवृत्तियाँ ही हैं, जिससे किसी भी विचारशील तथा न्यायप्रिय व्यक्ति को इनकार नहीं हो सकता। और अब तो प्रायः सभी विवेकी तथा निष्पक्ष विद्वान् इस सत्य को स्वीकार करते जाते हैं। ऐसी हालत में स्त्रियों पर उपर्युक्त कलंक का लगाया जाना बिलकुल ही निर्मूल प्रतीत होता है; और वह निर्मूलता और भी अधिकता के साथ दृढ तथा सुस्पष्ट हो जाती है जब कि भारत तथा भारत से बाहर की उन दक्षिणी, गुजराती, पारसी तथा जापानी आदि उच्च जातियों के उदाहरणों को सामने रक्खा जाता है जिनमें घूँघट की प्रथा नहीं है, और जिनकी स्त्रियों के चरित्र बहुत कुछ उज्वल तथा उदात्त पाये जाते हैं।

आपको भी नित्य ही ऐसी कितनी ही स्त्रियों से साक्षात्कार होता है और वे खुले मुँह आपको देखती हैं। बतलाइये उनमें से आजतक कितनी स्त्रियां आप पर अनुरक्त हुईं और उन्हों ने आप से प्रेमभिक्षा की याचना की? उत्तर 'कोई नहीं' के सिवाय और कुछ भी न होगा। आपने स्वतः ही दृष्टिपात के अवसर पर, इस बात का अनुभव किया होगा कि, उनमें कितना संकोच और कितनी लज्जा शीलता होती है। विकार की रेखा तक उनके चेहरे पर नहीं आती। पर्दा उनकी आँखों में ही समाया रहता है, जिसपर उन्हें स्वतंत्रता के साथ अधिकार होता है और वे यथेष्ट रीति से उस अधिकार का प्रयोग करती हैं। उन्हें कृत्रिम पर्दे की—उस बनावटी पर्दे की जिसमें लालसा भरी रहती है और जो चित्त को उद्विग्न तथा शंकातुर करने वाला है ज़रूरत ही नहीं रहती। और इसलिये यह कहना कि पुरुषों को देखकर स्त्रियों का मन स्वभाव से ही विकृत हो जाता है-वे दुराचार की ओर प्रवृत्त करने लगती हैं--कोरी कल्पना और स्त्री जाति की निरी अवहेलना के सिवाय और कुछ भी नहीं है। इस प्रकार की बातों से स्त्री-जाति के शील पर नितान्त मिथ्या आरोप होता है और उससे उसके अपमान की कोई सीमा नहीं रहती। साथ ही, इस बात की भी कोई गारंटी नहीं है कि जो स्त्रियां पर्दे में रहती हैं+वे सभी उज्वल चरित्रवाली होती हैं। अतः घूँघट की प्रथा को जारी रखने के लिये उक्त हेतु में कुछ भी सार अथवा दम नज़र नहीं आता।

ज़रासी देर रुक कर और मेरे मुख की ओर कुछ प्रतीक्षा दृष्टि से देख कर यह उदार चरिता फिर बोली।

'यदि आप ऐसा कहना नहीं चाहते और न उक्त हेतु का प्रयोग करना ही आप को इष्ट मालूम होता है तो क्या फिर आप यह कहना चाहते हैं कि- पुरुषों का मन स्त्रियों को देख कर द्रवीभूत हो जाता है' पुरुष नवनीत के समान और स्त्रियां अंगार के सदृश हैं—

"अंगार सदृशी नारी नवनीतसमा नराः"

अंगारों के समीप जिस प्रकार घी पिघल जाता है उसी प्रकार स्त्रियों के दर्शन से पुरुषों का मन चलायमान हो जाता है-विकृत हो उठता है। उसी मनोविकार को रोकने के लिये- उसे उत्पन्न होने का अवसर न देने के लिये ही यह घूँघट निकलवाया जाता है अथवा पर्दा कराया जाता है? यदि ऐसा है तो यह स्त्रियों पर घोर अत्याचार हैं।

स्त्रियों को देख कर पुरुषों की यदि सच-मुच ही लार टपक जाती है, उनमें इतना ही नैतिक बल है और वे इतने ही पुरुषार्थ के घना हैं कि अपनी प्रकृति को स्थिर भी नहीं रख सकते तो यह उन्हीं का दोष है। उन्हें उसका परिमार्जन अपने ही मुँह पर बुर्क़ा डाल कर अथवा घूँघट निकाल कर क्यों न करना चाहिये? यह कहाँ का न्याय है कि अपराध तो करें पुरुष और सज़ा उसकी दी जाय स्त्रियों को? यह तो 'अंधेर नगरी और चौपट राजा' वाली कहावत हुई। एक मोटा अपराधी यदि फाँसी की रस्सी में नहीं आता तो किसी दुबले पतले निरपराधी को ही फाँसी पर लटका दिया जाय! कैसा विलक्षण न्याय है!! क्या स्त्रियों को अबला और कमज़ोर समझ कर ही उनके साथ यह सलूक (न्याय) किया जाता है? और क्या न्याय सत्ता पाने का यही उपयोग है? और यही मनुष्यों का मनुष्यत्व है? मैं तो इसे मानव जाति और उस संस्कृति के लिये महान् कलंक समझती हूँ।'

'स्त्रियाँ पर्दे में रहने की वजह से अपने स्वास्थ्य, अपनी जानकारी, अपनी आत्मरक्षा वगैरह की कितनी हानियाँ उठाती हैं, क्या इसका आपने कभी अनुभव नहीं किया? मैंने तो ऐसी सैकड़ों स्त्रियों को देखा है जो घूँघट निकाले हुए अंधों की तरह से चलती हैं। मार्ग में घोड़ा, गाड़ी, टट्टू, आदमी तथा दर-दीवार और वृक्ष से टकरा जाती हैं; ईंट पत्थर लकड़ी से ठोकर खा जाती हैं, मार्ग भूल कर इधर उधर भटकने लगती हैं, किसी आक्रमण कारी से अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं, और इस तरह पर बहुत कुछ दुःख उठाती हुई अपने उस घूँघट की प्रथा पर खेद प्रकट करती हैं। उन्हें यह भी मालूम नहीं होता कि संसार में क्या हो रहा है और देश तथा राष्ट्र के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है? वे प्रायः मकान की चार दीवारी में बंद रह कर उच्च संस्कारों के विकास के अवसर से वंचित रह जाती हैं। इतना ही नहीं बल्कि अपने स्वास्थ्य को भी खो बैठती हैं। ऐसी स्त्रियाँ अपनी संतान का यथेष्ट रीति से पालन पोषण भी नहीं कर सकतीं और न उन्हें ठीक तौर से आजन्म शिक्षित ही बना सकती हैं। मैं तो जेलखाने के एक आजन्म क़ैदी की और उनकी हालत में कुछ भी अन्तर नहीं देखती! यह सब कितना अत्याचार है! विना अपराध के स्त्रियाँ ये सब दुःख, कष्ट तथा हानियां उठाती हैं। और अपने मनुष्योचित अधिकारों तथा लाभों से वंचित रक्खी जाती हैं, इस अन्याय और अन्धेर का भी कहीं कुछ ठिकाना है!!'

'अब बतलाइये दोनों में से आप अपनी इस मनहूस प्रथा का कौनसा कारण ठहराते हैं? पहला कारण बतला कर व्यर्थ ही स्त्री जाति का अपमान करना चाहते हैं या दूसरे कारण को मान कर स्त्रियों पर अपने अत्याचार को स्वीकार करते हैं? दोनों में से कोई एक कारण ज़रूर मानना और बतलाना पड़ेगा अथवा दोनों को ही स्वीकार करना होगा। परंतु वह कारण चाहे कोई हो, पुरुषों के लिये यह बात कलंक की, लज्जा की और सभ्य संसार में उनके गौरव को घटाने वाली ज़रूर है कि, उन्हें मनुज प्रकृति तथा न्याय-नियमों के विरुद्ध अपनी स्त्रियों को पर्दे में रखना पड़ता है।'

मैं उस वीरांगना के इस दिव्य भाषण को सुन कर दंग रह गया और मुझसे उस वक्त यही कहते बना कि, ज़रा सोच कर, आपके प्रश्न का समुचित उत्तर फिर निवेदन करूंगा।

मेरा इतना कहना ही था कि, आकाश में मेघों की गर्जना और वर्षा की कुछ बूँदों ने मेरा वह स्वप्न भंग कर दिया और मैं अपने को पूर्ववत् शय्या पर लेटा हुआ ही अनुभव करने लगा। परंतु अभी कुछ मिनट पहले जो अद्भुत दृश्य देखा था और जो दिव्य भाषण सुना था उसकी याद चित्त को बेचैन किये देती थी। उस विदुषी रत्न का वह प्रश्न बार बार सामने आता था और उत्तर में घूँघट की प्रथा की उपयुक्तता को सिद्ध करने वाला कोई भी समर्थ कारण समझ में नहीं बैठता था। हृदय से यही ध्वनि निकलती थी कि या तो इसे 'स्त्री जाति का अपमान' कहना चाहिये और या यह कहना चाहिये कि वह 'स्त्रियों पर पुरुषों का अत्याचार' है। अथवा यों कहना होगा कि उसमें दोनों का ही अपमान और अत्याचार का-संमिश्रण है। विचारों की इसी उधेड़ बुन में सबेरा हो गया और मैं अपना स्वप्न समाचार दूसरों को सुनाने लगा।

संभव है कि पाठकों में से भी कुछ महानुभाव उस दिव्य स्त्री के प्रश्न का अच्छा विचार कर सकें और उत्तर में तीसरे ही किसी निर्दोष हेतु का विधान कर सकें। इसीलिये स्वप्न की

यह संपूर्ण घटना आज पाठकों के सामने रक्खी जाती है। विद्वानों को चाहिये कि वे इस पर गहरा विचार करके अपने अपने विचार फल को युक्ति के साथ प्रकट करें। और यदि उन्हें भी उक्त प्रथा की उपयुक्तता मालूम न दे और वे उसको ज़ारी रखने में पुरुषों का ही दोष अनुभव करें तो उनका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे पुरुष जाति को इस कलंक तथा पाप से मुक्त कराने का भरसक यत्न करें।

रक्षाबंधन

(लेखक श्रीयुत ब्रा० भु० पं० मुन्नालाल जैन, विशारद)

प्रिय जैन बंधु सुन लो आया है पर्व प्यारा।
हरएक ने हृदय में रक्षा का सूत्र धारा॥
लेकर मिठाई मेवे थालों में निज शिरों पर।
भगिनी तो जारही हैं, निज भ्रातृ के घरों पर॥
हर एक के घरों में आनंद होरहा है।
धनिकों का गृह तो भाई बस स्वर्ग हो रहा है।
आकर अनेक ब्राह्मण राखी हैं बाँध जाते।
औ सैकड़ों ही याचक भर पेट अन्न पाते॥
इत्यादि विधि से सब नर, हर्षित ही होरहे हैं।
पर वे मनुज तो अबभी किसमत को रो रहे हैं॥
जो सत्पुरुष मही पर निज पेट को न माँगें।
इस मांगने से उत्तम मरना सदैव जानें॥
क्या जैन बंधु! अपना कर्त्तव्य यह नहीं है?
इन कर्म प्रेरितों की रक्षा उचित नहीं है?
वे धर्म बंधु आखिर हैं दीन तो हुआ क्या?
कर्मों का फल हमें औ तुमको नहीं मिला क्या?
संसार की ये हालत ऐसी थी, है, रहेगी।
जब तक ज़मीं है आसमाँ तब तक नहीं टलेगी॥
अतएव जैनबंधु, जैनत्व कुछ निभालो।
इन दीन बंधुओं को अब भी गले लगा लो॥

(गतांक से आगे)

तृतीय दृश्य।

(स्थान मोहनसिंह का विलास-भवन)

(मोहनसिंह, झक्कीलाल और बक्कीलाल बैठे हैं)

मोहनसिंह—झक्कीलाल! सुनाओ, कुछ इधर-उधर के समाचार सुनाओ।

झक्कीलाल—हुजूर! क्या सुनावें? नित्य नई नई बातें पैदा होती रहती हैं कभी स्वदेशी प्रचार, कभी हिन्दू मुस्लिम एकता, और भी न मालूम क्या क्या बातें रोज उठा करती हैं।

मोहनसिंह—अब लोग बातूनी बहुत हो चले हैं। मानों चिंटियों के पर ऊगे हैं मगर ये लोग चिल्लाते चिल्लाते ही रह जाँयगे होना जाना कुछ भी नहीं है।

बक्कीलाल—कुछ नहीं सरकार! भला ये लोग क्या कर सक्ते हैं?

मोहनसिंह—करने को तो बहुत कुछ कर सक्ते हैं मगर सच बात यह है कि इनको काम करने की इच्छा ही नहीं है। चाहते तो हैं कि हिन्दू-मुसलमानों में एकता हो मगर एकता क्या इस तरह भीख माँगने से मिलती है?

बक्कीलाल—इसमें क्या शक? आप सच कहते हैं।

मोहनसिंह—मेल और प्रेम दोनों ओर से होता है और बराबरी वालों में ही सफलता पूर्वक इसका निर्वाह है। हिन्दुओं में न तो

एकता है और न पारस्परिक सहानुभूति । यदि आज किसी हिन्दू पुरुष या स्त्री पर कोई विपदा आजावे तो कितने लोग हाथ देंगे ? इस पर कुछ कहना वृथा है। एक हिन्दू को किसी बदमाश द्वारा पिटते देखकर दूसरे हिन्दुओं का हँसना तो मामूली बात है। दूसरों की ठोकरें खाना इनने अपना धर्म बना रक्खा है। भला ऐसी हालत मे प्रेम कैसे हो सका है ?

झक्कीलाल—आप बिलकुल ठीक फ़रमाते हैं।

मोहनसिंह--मेरी समझ में तो जब तक हिन्दू दबे रहेंगे और मार खाते रहेंगे तभी तक यह बनावटी एकता दिखती रहेगी। जिस दिन हिन्दुओं ने बराबरी का दावा किया उसी दिन सब सत्यानाश हो जायगा ।

बक्कीलाल—बेशक ! बेशक ! !

मोहनसिंह—शताब्दियों से न मालूम कितने हिन्दू ज़बर्दस्ती छल-कपट आदि से मुसलमान बनाये गये होंगे। यदि ऐसे बने हुए मुसलमानों को हिन्दू फिर अपनी समाज में मिलालें तो देखना मुसलमान किस तरह आकाश-पाताल एक करते हैं ।

बक्कीलाल—अजी खून हो जायगा।

मोहनसिंह—बस ! तब हिन्दू मुसलमानों की एकता कैसी? एक हिन्दू मसजिद के साम्हने बाजे नहीं बजा सकता, मगर एक मुसल्मान मंदिर के साम्हने हर तरह के सुकर्म, कुकर्म कर सका है ! क्या यही एकता है? मैं तो इस एकता के बनावटी वेष को देखते देखते घबड़ा गया हूं।

झक्कीलाल—घबड़ाने की बात ही है ?

बक्कीलाल—क्यों न घबड़ायेंगे ? घबड़ायेंगे नहीं तो क्या करेंगे घबड़ाना ही पड़ेगा।

मोहनसिंह—स्वदेशी का भी कुछ ऐसा ही रगड़ा है। गीत तो गाते हैं चरखे का, मगर घर की औरतों को इतने महीन कपड़े पहिनाते हैं जिनके पहिरने पर नंगी से किसी तरह कम न मालूम पड़ें। जिस विलायती कपड़े के दाम चार रुपया होते हैं उससे भद्दे स्वदेशी के लिये आठ रुपये देना पड़ते हैं अब सोचो स्वदेशी का प्रचार कैसे हो सका है ?

झक्कीलाल—कभी नहीं; स्वदेशी का प्रचार होना बड़ा मुश्किल है।

मोहनसिंह—इसी लिये तो सोचता हूं कि मैं दोनों ओर से हाथ क्यों धोऊँ ? आनन्द से जीवन क्यों न बिताऊँ ? बस, जब संसार स्वार्थमय है तो मैं अपने स्वार्थ से क्यों चूकूँ ।

बक्कीलाल—आपका विचार बहुत दुरुस्त है।

मोहनसिंह—आज इन्हीं बातों को सोचते सोचते मेरी तबियत बिगड़ सी गई है। अच्छा हुआ जो मौक़े पर तुम लोग आगये अच्छा अब ऐसा काम करो जिससे कुछ तबियत बहले ।

झक्कीलाल—आपका क्या हुक्म है।

मोहनसिंह—इस समय तो कोई बढ़िया तवायफ बुलाई जाय तो चैन पड़े !

झक्कीलाल—इसमें क्या पूछना ?

मोहनसिंह—तो कोई तलाश में है।

बक्कीलाल—यों तो तलाश में सैकड़ों हैं मगर अभी काशी से विमलाजान आई है। आह ! क्या कमाल सूरत है, देखने ही से दिल मचल जाता है ।

झक्कीलाल—बिलकुल परीजात है।

बक्कीलाल—वाह ! ऐसा कौन है जो उसके हुश्न से दीवाना न हो जावे ?

झक्कीलाल—जो सच्चा मर्द होगा वह तो उसके ख्याल से दीवाना हो जावेगा।

मोहनसिंह—छुनकीली! (दासी का प्रवेश)

दासी—जी हुजूर, हुक्म।

मोहनसिंह—ज़रा जाओ तो, धोकल से कहदो कि वह विमलाजान को बुला लावे।

दासी—अच्छा! जाती हूं।

मोहनसिंह—लेकिन देखो ज्याद: छनक-छनक कर मत जाना नहीं तो विचारा धोकल तुम्हारे जाल में ढुलक जावेगा।

(दासी हँसकर जाती है)

मोहनसिंह—कहो जी अब तो तुम्हारे मन की बात हो गई। तवायफ़ के नामसे तो तुम्हारे मुँह में पानी आजाता है।

झक्कीलाल—क्या करें?

जिनके कुकर्मों से हरे बिगड़ा धरम का रंग है।
संसार उसपर मर रहा यह तो अनोखा ढंग है॥

बक्कीलाल—(झक्की के मुँह पर थप्पड़ मार कर) चुप चुप किसी भोंदू कवि का पद क्यों पढ़ता है ऐसा कह—

जिन के न दिल पर रंडियों के प्रेम का कुछ रंग है।
वेभी मनुष्यों में रहें यह तो अनोखा ढंग है॥

(दासी का प्रवेश)

दासी—सरकार! वे आगई।

मोहनसिंह—आगई? तो यहाँ क्यों खड़ी है। जल्दी जा, उन्हें भीतर आने दे।

(दो बजानेवालों के साथ वेश्या का प्रवेश)

मोहनसिंह—विमला जान अब कोई अच्छा गाना गाओ और चटक मटक भी दिखलाओ, हमारे दोस्त तो तुम्हरी बहुत प्रशंसा करते हैं।

विमला—यह सब आप लोगों की मिहरबानी है जो कि एक ना चीज़ बाँदी की ऐसी प्रशंसा हो रही है।

(आवाज़ खींचती है और कुछ नृत्य भी करती है)

झक्की और बक्की—वाह! वाह! क्या कहना है!

विमला—(गायन)

सैंया मैं तुम पर बार बार बलि जाऊँ।
बार बार बलि जाऊँ तुमको छतियों से न छुड़ाऊँ॥ सैंयाँ
झूला बाँध कदम के नीचे, झूलूँ और झुलाऊँ।
प्रेम डोर में ऐसा जकड़ूँ सारा भेद भुलाऊँ॥ सैंयाँ
प्रेम नाम की माला फेरूं तुम्हरे ही गुण गाऊँ।
जैसे रीझो तुम्हें रिझाऊँ हिय का हार बनाऊँ॥ सैंयाँ
चुनचुन लाऊँ कुसुमकी कलियाँ कोमल सेज बिछाऊँ।
तुमको प्यारे गले लगा कर सोऊँ तुम्हें सुलाऊँ॥ सैंयाँ
कोयल बोले कुहू कुहू यमुना में नौ चलवाऊँ।
मैं भी बैठूं तुम्हें बिठाऊँ मन की मौज उड़ाऊँ॥ सैंयाँ
दोनों रँग एकही रँग में पिचकारी लै आऊँ।
मैं तुम पर छोड़ूँ, तुमसे मैं अपने पर छुड़वाऊँ॥ सैंयाँ
फुलवारी में सेज बिछाऊँ हँस हँस गाना गाऊँ।
रिझा रिझा कर तुम्हें पिया मैं कोयलको शरमाऊँ॥ सैंयाँ

मोहन—वाह! वाह! गज़ब किया! गज़ब किया।

बक्की—अजी मेरा तो दिल छीन लिया-दिल छीन लिया!

झक्की—मैंने अमृत घूंट पिया—भाई घूंट पिया!

मोहन—प्यारी तुम्हारे इस गायन ने मेरी जान की प्यास दूनी करदी (कुछ देता है।)

बक्की—अजी इस गायन ने तो मेरी जेबही सूनी कर दी!

(विमला को एक पैसा देता है)

मोहन— अब एकाध और भी सुनाओ! मैं तो बिलकुल बेचैन हो गया हूँ वाहवा! प्रेम भी क्या मज़े की चीज़ है।

भकोलाल—अजी दुनियाँ भर के सुख का बीज है।

विमला—सरकार मर्जी चाहिये बांदी को क्या उज्र है।

मोहनसिंह—आह! लोग वेश्याओं को व्यर्थ बदनाम करते हैं।

विमला—यह तो सब आप ही समझ सके हैं। बांदी इस पर क्या कह सकी है?

मोहनसिंह—अजी सब समझता हूँ। ऐसी पाक परीजात औरत को नापाक कहने वाले खुद नापाक होते हैं। अच्छा छनकीली ज़रा शराब तो लाओ (शराब पीता है)

बकीलाल—वाह! शराब पी लेने से मज़ा डेवढ़ा हो जाता है, क्यों न यार भकी?

भकोलाल—हां यार बकी। (दोनों हाथ ठोकते हैं)

मोहनसिंह—अच्छा तो अब चलने दो।

(गायन)

मोरो उमगोरे जोबनवाँ मोपै भार सहो ना जाय।
मोपै भार सहो ना जाय, अकेलो कहूं रहोना जाय॥मोरो

कब लगूँ पियो की छतियाँ,
कह दूँ सब मन की बतियाँ,
"तुम बिन कटती नहिं रतियाँ,
यह दुःख सहो न जाय"॥ मोरो०
वह मन का बड़ा रँगीला,
देखन में छैल छबीला,
बातों का बड़ा रसीला,
बाको विरह सहोना जाय॥ मोरो०
हा! चुभगी गई सुरतिया,
वह मन-मोहनी मुरतिया,
दिन कटे, कटे नहिं रतिया,
मोपै दुःख कहो ना जाय॥ मोरो०
कब ताजे फूल मँगाऊँ,
गजरा अनमोल गुथाऊँ,
इन हाथों से पहिनाऊँ,
मोरो हिया जुड़ा सो जाय॥ मोरो०
मैं तन मन उस पर वारूँ,
खाना पीना सभी भुलाऊँ,
दिल भर आरती उतारूँ,
जब एक हिया हो जाय॥ मोरो०

बकी—वाह! वाह! उमगोरे जोबनवाँ!

भकी—मोपे भार सहोना जाय, मोपे भार सहोना जाय!

(नौकर का प्रवेश)

नौकर—हुजूर! बाहर बहुत से किसान खड़े हुए हैं और उनके बाल बच्चे भी साथ में हैं।

मोहन—अरे तो यहां क्यों आगया है। वे कौन हैं? यहां किसलिये आये हैं? जा! जा!! जल्दी धक्का मार कर निकाल दे।

नौकर—हुजूर हम लोगों ने बहुत कहा कि इस समय मालिकजी से मुलाक़ात नहीं हो सकी तुम लोग फिर कभी आना परन्तु वे उल्लू के बच्चे टस से मस नहीं होते।

मोहन—अरे तो उनके सिर पर जूते क्यों न लगाये? इन बदज़ातों की इतनी हिम्मत कि भगाने पर भी न भागें!

नौकर—हुजूर हम लोगों ने एक तरफ़ से लगा कर सबको खूब गालियाँ दी, खूब ठोका, किसीको गाली, किसी को जूता, किसीको लात, किसीको घूंसे खूब लगाये। मगर वे लोग ऐसे शैतान के बच्चे हैं कि इतना सह कर भी नहीं हटते और धीरे धीरे यही कहते हैं कि हम तो एक बार मालिक के दर्शन करके जाँयगे।

मोहन—कैसे शैतान के बच्चे हैं! अच्छा, उनके हाथ में कुछ लकड़ी वगैरह तो नहीं है?

नौकर—नहीं सरकार! सब ख़ाली हाथ हैं।

मोहन—अच्छा तो उन्हें भीतर आने दो ये गँवार यों सीधे न मानेंगे लातों की देवी बातों से नहीं मानती। (नौकर जाता है—मोहन, छनकीली की ओर देखकर) छनकीली! मेरा हन्टर और तलवार ला।

छनकीली—जो हुक्म, (जाती है)।

विमला—अच्छा तो मैं इस वक्त जाती हूँ। लेकिन इस बांदी को न भूलियेगा।

मोहन—हाय! तुम जाती क्या हो मेरे प्रा[illegible] लिये जाती हो। लेकिन इन गँवारों ने [illegible] रंग में भंग कर दिया जिसका कुछ ठिका[illegible] नहीं। ख़ैर! अभी तो जाओ।

(चली भेंट करता है। विमला वगैरह का प्रस्थान। छनकीली आकर तलवार और हन्टर देती है इतने में दूसरी ओर से किसान अपने की बच्चों के साथ आते हैं।)

मोहन—क्योंरे सुअर के बच्चो! तुम लोग क्यों जान खाये जाते हो क्या तुम से किसीने फिर आने को नहीं कहा था?

एक आदमी—ग़रीबपरवर! जब कभी हम लोग आते हैं तभी हमें यह उत्तर मिलता है। (आँसू भरकर) हुज़ूर, आप हमारे माई-बाप हैं। फिर भी हुज़ूर के नौकरों के हाथ से हमें डंडे, जूते, लात, घूंसे खाना पड़ते हैं। देखिये, एक नौकर ने हमारी पीठ पर .... (पीठ बताता है)

मोहन—बस बस चुप रह बदमाश! क्या हम तेरे नौकर हैं जो तेरी इज़्ज़त करते रहें जा! निकल जा यहां से।

दूसरा—सरकार! ऐसे किसके मुँह में दांत हैं जो हुज़ूर से नौकर कह सके। फिर भी हुज़ूर हमारे माई-बाप हैं।

जब माता मारे बच्चे को तब किससे वह फर्याद करे।
जब राजा ही अन्याय करे तब परजा किसकी याद करे॥

मोहन—हां! हां! माई बाप हैं सिर काटने के लिये न कि मदद करने के लिये।

दूसरा—ग़रीबपरवर! हम तुम्हारी कौन सी सेवा नहीं करते तुम्हारी सेवा करते करते ही तो हमारी ज़िन्दगी पूरी हुई जाती है।

मोहन—अबे बढ़ बढ़ के बातें करता है। कौन ऐसी करतूत कर देता है, जिससे बढ़ बढ़ कर बातें बनाता है?

दूसरा—सरकार! घर का काम-काज छोड़ कर तुम्हारा काम करते हैं। छोटे से लेकर बड़े तक सभी काम हम लोगों के सिर पर आते हैं फिर भी हम लोगों की ऐसी आफ़त है, जिससे नाकों दम है। सरकार के लिये ही हम इस महँगाई के ज़माने में रुपये का सवा सेर घी देते हैं, अपना पेट काट कर तुम्हारे सामने हाज़िर करते हैं। यहां तक तो सब सहा परन्तु अब ऐसे काम होने लगे हैं जो मुँह से नहीं निकाले जाते। हा भगवान्? जान पड़ता है, दुनिया से धर्म बिलकुल उठ गया (आँसू पोंछता है।)

मोहन—कह डाल कह डाल बदमाश! और क्या कहना है मैं तेरी झूठी बातों का मज़ा अभी चखाता हूं।

तीसरा आदमी—(कठोर स्वर से—) महाराज मैं कहता हूं, बात यह है कि तुम्हारे ये गुंडे नौकर गाँव की बहू-बेटियों पर भी बुरी नज़र डालने लगे हैं। रास्ते चलते चलते बहू-

बेटियों से हँसी करना उनका हाथ पकड़ना तो मामूली बात है।

मोहन—समझा! समझा! तुम लोग मुझे भुलाना चाहते हो। झूठी बातें बनाकर उन्हें दबाना चहाते हो लेकिन क्या वे तुम्हारे बाप के नौकर हैं जो तुम से दबें जाओ जाओ, यहां से जल्दी निकल जाओ अपना काला मुँह करो नहीं तो जीते न रहोगे—बदमाश कहीं के।

एक किसान—गरीबपरवर, देखो हम गरीबों पर रहम करो।

दूसरा—सरकार हमारे दुख को दुख ही नहीं समझते। यदि सरकार की बहू-बेटियों के ऊपर कोई बुरी नज़र डाले तो सरकार को कैसा लगे!

मोहनसिंह—(किसान को मारते हुए) क्यों रे उल्लू के बच्चे छोटे मुँह बड़ी बात।

(एक स्त्री बीच में आती है)

स्त्री—हुजूर! हुजूर! बचाओ, हम गरीब वैसे ही मरे हैं। हमें मारने से क्या फ़ायदा!

मोहन-चल! चल! हरामजादी दूर हो यहां से। (स्त्री को धक्का देता है वह गिर पड़ती है बच्चे रोते हैं)

एक किसान—देखो सरकार! औरतों को तो गाली न दो।

अबलाओं की आह को सुनता है भगवान।
जग बहरा, तो क्या हुआ सुनते प्रभु के कान॥

मोहनसिंह—मारो इस बदमाश को (काफी और बाकी मिलकर मारते हैं, कहने वाला घायल होकर गिर पड़ता है)

किसान—देखो! गरीबों को इतना न सताओ। ईश्वर के नाम पर रहम खाओ। नारियों की दुख भरी आहें न निकलने दो।

नारी के अपमान से मिटे हज़ारों लोग।
कौरव कुल में क्या बचा लगा मौत का रोग॥

मोहनसिंह—अरे मौत का रोग लगाने वाले गँवार! मैं तुझे अभी मौत का रोग लगाये देता हूं। (मारता है स्त्रियाँ बीच में पड़ती हैं और धक्के देकर गिरा दी जाती हैं), मारो इन गँवारों को एक को भी जीता न छोड़ो। (काफी आदि सबको मारते हैं बच्चे रोते हैं)

बच्चे—बचाओ बचाओ, मेरी अम्मा को मत मारो (स्त्रियों से लिपट जाते हैं)

नौकर-चलो हटो रे बदमाश के बच्चो, काला मुँह करो (ज़बरदस्ती खींचकर अलग पटक देता है)

किसान—मार डालो, स्त्रियों और बच्चों की जान निकाल लो, तुम्हारी बड़ाई इसी में है। मगर याद रखना, इस बादशाहत के ऊपर भी कोई बादशाहत है। ऊपर उँगली दिखाता है (मोहन क्रोध से तलवार उठाकर मारने को तैयार होता है, लक्ष्मी देवी झपटती हुई आकर हाथ पकड़ लेती है सब लक्ष्मी के पैरों पर झुक कर कहते हैं—"धन्य माता जी!")

(पटाक्षेप)

अबला-जैन-समाज ।

(लेखक-श्रीयुत उपदेशक पं० पीताम्बरदासजी परवार)

अबला जैन समाज को चाहिये कि वह अबलाओं के शिक्षण का प्रबन्ध कर सभ्य संसार के सम्मुख जैन समाज को सबला बना देवे ।

कुछ काल से मध्यप्रान्त के जैनियों में धार्मिक शिक्षण का प्रेम हो रहा है और इस प्रान्त के अगुओं ने अपने तन, मन, धन को भी इस ओर लगाया है पर उनका शिक्षण प्रेम, पुरुष और स्त्री जाति के इकट्ठे भेद-भावों से भरा हुआ मालूम होता है ।

अपने मनोबल लगाने में पूज्य ब्र० पं० गणेशप्रशादजी से समाज भलीभाँति परिचित है । जिन्होंने सागर के जैन समाज का हृदय पलटाया और सत्तर्क सुधातरङ्गिणी-शाला की स्थापना कराई । इसीके भविष्य को निर्णय कर सेठ नाथूराम श्री नन्दनलालजी ने बीना में नाभिनन्दन जैन शाला की स्थायी स्थापना की प्रयत्नशील टड़ैया मथरादासजी ललितपुर और सिंगई कन्हैयालाल गिरधारीलाल जी कटनी ने छात्राश्रम सहित शालाओं की स्थापना में धन के दान से जो योग पहुंचाया है उसके लिये मध्यप्रान्त का जैन समाज उनका चिरकृतज्ञ है ।

जगत्प्रसिद्ध सेठ माणिकचंदजी ने सबसे पहिले जबलपुरवासी सेठों को जागृत किया था और अँग्रेज़ी शिक्षण के साथ साथ धार्मिक शिक्षण से जैन समाज को जीवित रखने के लिये जबलपुर में जैनबोर्डिंग की स्थापना कराई । सेठ नारायणदासजी ने उक्त सेठ जी की कृतज्ञता स्वीकार की और इस बोर्डिंग को अपने दान-धन से हमेशा के लिये अमर कर दिया ।

पूज्य ब्र० गोकुलप्रसादजी ने भी त्यागियों और उदासीनों का आश्रयदाता कुण्डलपुर में एक उदासीनाश्रम खुलवाया था । किन्तु इतना कर चुकने पर भी मध्यप्रान्त का जैन समाज अबला-शिक्षण के बिना अबला ही रहा है ।

मध्यप्रान्त के जैन समाज का बड़ा भारी अंग परवार समाज है । परवार समाज पं० गणेशप्रसादजी को अपनाता है । पंडितजी के हृदय में समाज-सुधार के अनन्त भाव मौजूद रहते हैं । इसलिये उक्त पंडितजी ने ललितपुर परवार सभा में यह ठहराव स्वीकृत कराया था कि 'मध्यप्रान्त में ऐसा शिक्षा-मंदिर हो जो कि बाल-शिक्षा के साथ ही अबलाओं के शिक्षण में समर्थ हो सके ।

अबलाओं का शिक्षण-कार्य सिर्फ प्रथमतः अबला ही करें और प्रबन्ध का कार्य शिक्षा-मंदिर की कमेटी करती रहे ।'

इससे मालूम होता था कि मध्यप्रान्त की अबलाओं के सुधार की सुध भी इस प्रान्त के नेताओं के हृदय में मौजूद है, पर आज वह शिक्षा-मंदिर चालू हो चुका है किन्तु उसमें श्राविकाशिक्षा क्या—स्त्री-शिक्षा का नाम भी सुनाई नहीं पड़ता ।

भाग्यहीना अबलायें इस प्रान्त के घर घर में रो रही हैं । बहुतेरी आशायुक्त विधवायें निराश हो संकट से अपने कुटुम्ब की भार-भूत होती हुई काल काटती हैं । इन अबलाओं की दुर्दशा से ग्राम ग्राम का कुटुम्ब भलीभाँति परिचित है । तब भी इस प्रान्त के दानवीर नेता स्त्री शिक्षा की ओर से लापरवाह ही हैं

बल्कि प्रमाणित की हुई स्त्री शिक्षा व विधवा शिक्षा का भी गलाघोंट देते हैं।

पशु जगत में स्त्री जाति का कभी अनादर नहीं होता। हत्यारे शिकारी भी हिरण पर ही वार करते हैं, पर हिरणी पर वे वार नहीं करते ! सम्पूर्ण जगत् में गाय आदर से पूजी और पाली जाती है, इसी तरह भैंसे की अपेक्षा भैंस का कहीं अधिक सन्मान है। बकरे को लोग बलि कर देते हैं पर बकरी को नहीं मार सके, तोता की अवाज़ से मैना की अवाज कहीं अधिक आदरणीय है।

पर सबला मानव समाज में बिचारी अबलायें ही मारी, पीटी जाती हैं। उनके अधिकार और प्रतिष्ठा पर हमेशा के लिये पानी फेर दिया जाता है।

जैन धर्मात्मा तो द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा को चारित्र के तराजू पर हमेशा रखता ही रहता है, पर जैन समाज निरोपयोगिनी विधवा (अबलाओं) बहिनों को कौटुम्बिक यातनाओं के साथ रुलाता ही रहे, इस तरह की संकुचितता व पशुता से भी नीच व्यवहार इतने दर्जे बढ़े हुए अहिंसकों को कहां तक अपने कर्तव्य पथ पर आरूढ रख सकता है !

हम मध्यप्रान्त के सम्पूर्ण श्रीमान व श्रीमतियों का ध्यान इस ओर खींचते हैं कि वे इन अनाथनी विधवाओं के शिक्षणार्थ मध्य-प्रान्त में एक श्राविकाश्रम का जन्म अवश्य देवें।

मध्यप्रान्त की बहुतेरी श्रीमतियाँ दान देकर अपनी अबला जाति का उपकार कर सकती हैं। पर वे सबला मानव समाज के भय से व समाज-नामी श्रीमानों की प्रतिष्ठा के सामने स्वयं अपने कर्तव्य का अदेखापना भास होने से वे कुछ नहीं कर सकती हैं।

हम आज फिर भी दानवीर सेठ माणिक-चंदजी की सुपुत्री श्रीमती मगन बहिन को भूल नहीं सकते जिन्हों ने प्रेरणा पूर्वक इस देश के जैनसमाज में कई श्राविकाश्रम खुलवाकर इस प्रान्त की बहुतेरी विधवा बहिनों को शिक्षक बनाया है। आशा है कि श्री. मगन बहिन अपने पिता की भाँति इस प्रान्त के श्रीमान् व श्रीमतियों को सावधान कर मध्य प्रान्त में भी एक श्राविकाश्रम चालू करा देवेंगी और उनके इस पुण्य कार्य में विशेष करके मध्यप्रान्तीय श्रीमान् व श्रीमतियाँ व सम्पूर्ण जैन संसार भले प्रकार योग्य देगा। ताकि इस प्रान्त के जैन समाज में अबला शिक्षण का बल आजावे।

बगुला–अन्योक्ति।

[१]

रे ! बक तेरी चाल चाल कैसी छुटेगी।
तन उजला किन्तु भाव न अहो ! तेरी कुटेगी॥
सरिता तट पर बैठ, टकटकी खूब लगाता।
मीन दीन को देख, शीघ्र भक्षण कर जाता॥

[२]

हंस मण्डली मध्य विचुर कर शोभा पाले।
मन की अपनी हवस, भले ही आज बुझाले॥
पर तू समता नहीं हंस की कर सका है।
क्षीर नीर का न्याय, हंस क्या तज सका है ?

[३]

ऊपर उज्ज्वल भेष, भाव भीतर हैं थोते।
मन तो हुआ न शुद्ध, दम्भ के खा खा गोते॥
मान सरोवर मध्य, हंस ही शोभा देगा।
वह तेरा प्रतिकार, न्याय से ही भेंटेगा॥

--परमानन्द चाँन्देलीय।

ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य जीवन।

(गतांक से आगे)

ब्रह्मचर्याणुव्रत।

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसंतोषनामापि॥

पाप के भय से दूसरों की स्त्रियों के पास न स्वयं जाता है और न दूसरों को भेजता है इस तरह से जो पर स्त्री का सर्वथा त्याग करके केवल निज स्त्री का ही संतोष पूर्वक सेवन करता है वह ब्रह्मचर्याणुव्रती होता है।

इसमें जो संतोष शब्द पड़ा हुआ है वह बतलाता है कि यदि स्वस्त्री का संतोष पूर्वक सेवन नहीं करोगे अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को उचितता, अनुचितता पर ध्यान न रखते हुए अत्यन्त आसक्त होकर सेवन-संभोग करोगे तो भी ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन नहीं हो सका। अतः अणुव्रती ब्रह्मचारी को स्वस्त्री का भी संतोष पूर्वक सेवन करना चाहिए। जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन करता है उसके वीर्य की बड़ी भारी रक्षा होती है क्यों कि जो इस व्रत को नहीं धारण करने वाले व्यभिचारी हैं उनको इसकी अरक्षा हजारों अवसर ऐसे मिलते हैं कि जिन अवसरों में वीर्य जैसी अमूल्य वस्तुका सत्यानाश होता रहता है।

स्वस्त्री का संतोष पूर्वक सेवन—

इसका अभिप्राय यह है कि मानव, संसार के सर्व प्राणियों में सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। प्रकृति ने इसको पूर्ण रूप से सोचने विचारने की अपूर्व शक्ति प्रदान की है। मनुष्य जाति ने इसका सदुपयोग भी किया है 'अहिंसा परमो धर्मः'

'सम्पद्विपत्स्वेकमनाः हेतावीर्ष्येत् फले न तु,
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकाम्।

सर्वोत्कृष्ट धर्म अहिंसा ही है. संपत्ति में हर्ष और विपत्ति में विषाद नहीं करना चाहिये अर्थात् सुख दुःख में मन की वृत्ति एकसी रखनी चाहिये। हेतु में ईर्षा करना चाहिये, फल में ईर्षा नहीं करना चाहिये। हमेशा अपनी तरह कीड़ा और चिऊँटी को भी देखना चाहिये। इत्यादि, महामान्य सिद्धान्त इसी के फल हैं। परन्तु साथ २ में उस दुर्दमनीय अपूर्व शक्ति का दुरुपयोग अनेक कार्यों में किया गया है और आज कल तो अधिकतर यही होता दिखाई देता है। क्योंकि जो दुर्व्यवहार अज्ञानी पशुओं तक में भी नहीं पाये जाते हैं वही दुर्व्यवहार इस ज्ञानवैभवशालिनी मनुष्य जाति में दिनों दिन उन्नति पा रहे हैं। ऋतु 'गर्भ धारण काल, में मैथुन करना चाहिये। इस नियम को अज्ञानी पशु तो पालते हैं और ज्ञानी मनुष्य इसी नियम को प्रति दिन पददलित करते रहते हैं. वास्तव में प्रकृतिसिद्ध मैथुन काल ऋतु (गर्भाधान) काल ही है, अन्य काल नहीं। यदि मानव जाति ऋतु गामिनी हो जाय तो उसको आज कल जैसे, दुर्दिन भी देखने को न मिलेंगे। क्यों कि 'जिसकी लाठी उसकी

भैंस, यह कहावत चिरकाल से चरितार्थ होती चली आ रही है। और वीर्य ही जब शरीर में जीवन प्रद सर्व श्रेष्ठ वस्तु है तब उसी वीर्य रूपी लाठी के अभाव में सुखसंपत्ति रूपी भैंस हमारे हाथ में रहेगी यह सर्वथा असंभव है। तुरन्त लाठी वाला दूसरा छीन ले जावेगा। आचार्य चरक जीने लिखा है—

' मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ,

वीर्य के एक बिन्दु का क्षय मरणोन्मुख करता है, और एक बिन्दु वीर्य की रक्षा जीवन प्रदान करती है। जो मनुष्य ऋतुगामी न होकर वर्ष के ३६५ दिनों में वीर्य को पानी की तरह बहाया करते हैं उनमें कितनी जीवनी शक्ति रहती है और कितनी जीवनी शक्ति अपनी संतान को प्रदान कर जाते हैं? पश्चात्य कीटाणु वादियों ने यह वैज्ञानिक सिद्धान्त आविष्कृत किया है कि जो ऋतुगामी न होकर अनाप शनाप वीर्य को बहाया करते हैं उनके वीर्य में गर्भ जनन शक्ति प्रदान करने वाले कीटाणु नष्ट होजाते हैं बाद में ऐसे पुरुषों से कभी भी गर्भ नहीं रह सक्ता। आज से हजारों वर्ष पहिले आचार्यों ने भी इसी श्रेयो मार्ग का प्रदर्शन किया था कि केवल मात्र संतानोत्पादन के लिये ही संभोग (मैथुन) कियाजाय, इसके सैकड़ों उदाहरण प्राचीन इतिहास में विद्यमान हैं. कविकुलचूड़ामणि कालिदासजीने रघुवंशीय राजाओं का परिचय कराते हुए लिखा है:—

' प्रजायैगृह मेधिनाम् ॥ ७ ॥ प्रथम सर्ग

रघुवंशीय नरेश जो 'गृहैर्दारैर्मेधन्ते संगच्छन्ते इति गृहमेधिनः औरतों के साथ समागम-संभोग करते थे वह केवल संतान उत्पन्न करने के लिये ही करते थे न कि अपनी काम वासनाओं की पूर्तिके लिये।

विज्ञानाचार्य सुश्रुतजी नेभी यही उपदेश दिया है—

मासं ब्रह्मचारी पुमान् मासं ब्रह्मचारिणी नारी मुपेयाद्ब्राह्मौ, अतः परं मासादुपेयात् पुष्पदर्शनेनाऽगर्भलाभ निश्चयः एव, लब्धगर्भायु नैव। अथग्गिमनंतु गर्भद्वार विघट्टनेन स्थितमपि गर्भं च्यावयति।

संतान की कामना रखने वाला भावी पिता गर्भाधान के एक मास पहिले से ब्रह्मचारी रहे, वीर्य की पूर्णरूप से रक्षा करे। इसी तरह से भावी जननी को भी १ मास पहिले से ब्रह्मचर्य की पूर्णरूप से रक्षाकरनी चाहिये बाद में रात्रिको गर्भाधान करे। आगामी भी गर्भाधान के दिवस से लगाकर १ महिने तक मैथुन बिलकुल नहीं करे। क्योंकि यदि महीने से पहिले विषय लंपट होकर मैथुन करेगा तो गर्भ द्वार में धक्का पहुंचने से रहा हुआ भी गर्भ गिरजावेगा। इसलिये १ महीना के अनन्तर फिर रजोदर्शन होने से गर्भ नहीं रहा ऐसा पूर्णरूप से निश्चय हो जाय तब उचित समय पर पुनः गर्भाधान करे। इसके अतिरिक्त गर्भ गिर जाने के भय से बालक के जन्म लेने के बाद भी जब तक गर्भणी की समागम योग्य अवस्था न होजाय तब तक मैथुन का सर्वथा परित्यागरूप पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करे।

इससे पता लगता है कि पूर्व काल के संयमी जितेन्द्रिय पुरुष ऋतु में पुत्रोत्पादन के लिये ही समागम-मैथुन करते थे। परंतु आजकल ऐसे मनुष्य अत्यधिक संख्या में मिलेंगे जो इस नियम की अवहेलना ही किया करते हैं। और न दिन न रात न पर्व, न स्त्री की हालत न अपनी हालत किसी की भी पर्वाह न करके ब्रह्मचर्य का भंग किया करते हैं। उन पुरुषों को इस कुटेव से बचने के लिये-उनकी प्राण रक्षा करने के लिये किस ऋतु में कितने

बार गमन (मैथुन) करना, कितने दिन तक ब्रह्मचर्य धारण करना और मैथुन करने से जो शारीरिक और मानसिक क्षति होती है उसकी पूर्ति किस तरह से होती है। इनके बारे में यहां पर लिखा जाता है:—

एक वर्ष में ६ ऋतुएँ होती हैं इन ऋतुओं के सब समय शरीर के अनुकूल--शरीर को समान रूप से स्वस्थ्य रखने वाले नहीं होते हैं जैसा आचार्य वाग्भट ने लिखा है।

'शीतेऽग्र्यं वृष्टि घर्मेऽल्पबलं मध्यं तु शेषयोः,

(अष्टांगहृदय सूत्रस्थान अ-३ श्लोक ७।)

हेमन्त और शिशिर ऋतु में प्राणियों में सब कालों-ऋतुओं की अपेक्षा अधिक बल रहता है, वर्षा और ग्रीष्मऋतु में जघन्य दर्जे का बल रहता है और बाकी की शरद, बसन्त ऋतुओं में मध्यम दर्जे का बल होता है। विशेषत: इस कालकृत शारीरिक बल के ऊपर ही पूर्वाचार्यों ने संभोग किया का नियम बाँधा है।

सेवेत कामतःकामं तृप्तो वाजीकृतां हिमे।
त्र्यहाद् वसन्तशरदोः पक्षाद्वर्षा निदाघयोः ॥ अ. ७ ॥

(अष्टांग हृदय श्लो. ७३ ॥)

पूर्व में यह बतला चुके हैं कि जो गृहस्थ अपना और अपनी संतान का कल्यान चाहते हैं-उनको सर्वगुणसंपन्न देखना चाहते हैं तो उनकोयही उचित है कि ऋतु समय पर ही संतानोत्पादन के लिये संभोग करें। परन्तु जो इसनियम के पालने में सर्वथा असमर्थ विषयलंपट हैं उनको उचित है कि वे इस सीमा को कभी भी उल्लंघन नहीं करें 'हेमन्त ऋतु में वाजीकरण (पौष्टिक वीर्यवर्धक) द्रव्यों का सेवन करने वाला यथेच्छ (ज्यादा से ज्यादा प्रति तीसरे दिन) समागम करे इससे पहिले कभी नहीं करे। बसन्त और शरद ऋतु में तीन दिन के बाद (चौथे, पांचवें, छटवें आदि दिनों में) संभोग करे। वर्षा और ग्रीष्म ऋतु में पन्द्रह दिन के बाद संभोग करे और बाकी के दिनों में ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य की रक्षा करे।'

अभिप्राय यह है कि मैथुन जितना ही कम किया जाय उतना ही अच्छा और अनेक शारीरिक और मानसिक सुखों को देने वाला है जैसा कि अचार्य वाग्भट जी कहते हैं—

स्मृतिः मेधायुरारोग्यपुष्टीन्द्रिययशोबलैः।
अधिकाः मन्दजरसो भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥१४

संभोग करते समय निम्न लिखित शिक्षाओं पर विशेष ध्यान रखना परमावश्यक है

वीर्य ग्रहण करते समय स्त्री को सीधा चित्त लेटना चाहिये क्योंकि अष्टांग संग्रह नाम की संहिता में आचार्य वाग्भट ने लिखा है—

न चाधा पर्वस्तिष्ठेत्। तथाहि स्त्रीवेगः पुमान् जायते पुरुषेहा वा स्त्रीच। न च न्युब्जां पार्श्वगतां वा सेवेत। न्युब्जायाः वातो बलवान् स योनिं पीडयति। दक्षिण पार्श्वगाया श्लेष्मा पीडित स च्युतो बदधाति गर्भाशयं। वामपार्श्वगायास्तद् पित्तं विदहति रक्तशुक्रे तस्मादुत्ताना बीजं गृह्णीयात्,

पुरुष विपरीत रति द्वारा गर्भाधान नहीं करे क्योंकि ऐसा करने से यदि बालक पैदा होगा तो उसकी चेष्टायें स्त्री की तरह होंगी। यदि लड़की पैदा होगी तो उसकी चेष्टाएं पुरुष की तरह होंगी। वक्र (टेढ़ी) अथवा बगल में लेटी हुई स्त्री का सेवन नहीं करे क्योंकि ऐसा करने से वायु प्रकुपित होकर जननेन्द्रिय को विकृत कर देती है। दहने बगल में सोई हुई स्त्री का संभोग करने से कफ दोष प्रकुपित होकर गर्भाशय को बंद कर देता और

बायीं बगल में सोई हुई स्त्री का सेवन करने से पित्त प्रकुपित होकर रक्त और वीर्यको विकृत कर देता है इसलिये यही उचित है कि स्त्री चित्त लेट कर ही बीज को ग्रहण करे।

बहुतसे पाठक महाशय इसको व ऐसे अन्य प्रकरणों को विषयान्तर समझ कर अरुचि [illegible] करेंगे परन्तु उनकी अरुचिके दूर करनेवाला ये.ग (समाधान) यह है कि आजकल अनेक आधुनिक मिथ्या कोकशास्त्रों-कामशास्त्रों की कृपा व प्रतिदिन बढ़ती हुई विलासिता के प्रबल प्रवाह से ऐसी अनेक कुरीतियाँ प्रचलित हो गयी हैं जिनमें से कुछ का दिग्दर्शन मैंने ऊपर करा दिया है और आगे भी कराऊंगा। ये कुरीतियाँ मनुष्य को अत्यधिक विलासी बना देती हैं, कामवासना को अधिक जागृत कर देती हैं, दंपत्तियों के उन २ अंगों में अनेक असाध्य रोग पैदा कर देती हैं। इत्यादि कारणों से दंपत्ति और भावी संतान के ब्रह्मचर्य आदि गुणों का मटियामेट हो जाता है।

रजस्वला स्त्री से संभोग नहीं करे। क्योंकि आचार्य सुश्रुत ने लिखा है कि पहिले दिन ऋतुमती के साथ समागम करने से मनुष्यों की आयु का ह्रास होता है और गर्भ भी नहीं रहता है और यदि कदाचित् गर्भ रह भी जाय तो होते ही मर जाता है इसी तरह से बाकी के ऋतुदिनों में समागम करने से हानियाँ होती हैं।

जो स्त्री अपने को प्यारी नहीं लगे, जिसके आचार विचार अपने को प्रिय न हों, जिसकी जननेन्द्रिय में उपदंश, सुजाक आदि संक्रामक रोग हों, जो स्त्री बिलकुल दुबली व बहुत मोटी हो, प्रसूता हो, गर्भिणी हो, बहुत छोटी हो, दूसरे की औरत हो, वेश्या हो ऐसी स्त्री के साथ कभी भी समागम नहीं करना चाहिये।

अन्य योनि (बकरी आदि) में भी संभोग नहीं करे। विद्यालय, देवालय और राजभवन में संभोग नहीं करे। चैत्य (अर्थात् व भूत प्रेत आदिका निवासस्थान पीपल आदिका वृक्ष) में, श्मशान में, वधस्थान में, आँगन (खुले स्थान) में, जल में, चौराहेपर, पर्व (अष्टमी चतुर्दशी आदि) दिन में, मैथुन नहीं करे।

शिर और छाती को ताड़ित करके मैथुन न करे। अनंग क्रीड़ा नहीं करे। बहुत भोजन करके अथवा कुछ भी नहीं खाकर के, अंगों को वक्र (टेड़ा) करके, मैथुन नहीं करे। शोकातुर, चिंतातुर, प्यासा, बालक, वृद्ध, रोगी, वात, मूत्र, पैखाना आदि के वेग वाला भी मैथुन नहीं करे। अर्थात् ऐसे मौकों पर ब्रह्मचर्य का पूर्णरूप से रक्षा करे। ऐसा नहीं करने से-इन नियमों के विरुद्ध चलने से अनेक हानियाँ उठानी पड़ती हैं जैसा कि आचार्य वाग्भट ने लिखा है—

भ्रमक्लमोरु दौर्बल्यबलधात्विन्द्रियक्षयः ।
। अपर्वमरणं च स्यादन्यथा गच्छतः स्त्रियम् ॥ ५३ ॥ अ० ७॥

इन नियमों से विरुद्ध चलकर जो स्त्रियों का सेवन करते हैं उन पुरुषों को भ्रम (चक्कर आना) थकावट, जंघाओं में दुर्बलता, कमजोरी, धातुदौर्बल्य इन्द्रिय में कमजोरी (नपुंसकता) आदि बीमारियाँ और अकाल मरण होता है।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी, व साधारण ब्रह्मचारी को इन नीचे लिखे हुए मैथुन के आठ अंगों का

१ व्यभिचारियों को इस उपदेश से अवश्य ही शिक्षा लेना चाहिये. आजकल इन रोगों से पीड़ित १०० में ९० व इससे भी अधिक मिलेंगे। इसका कारण बढ़ती हुई वेश्याओं और दुश्चरित्रा व्यभिचारिणियों की संख्या ही है। ये बीमारीं भी ऐसी खराब हैं जो जन्म भर तक उनका और उनकी संतान परंपरा का भी संबंध नहीं छोड़ती हैं।

पूर्ण रूप से परित्याग अवश्य ही करना चाहिये।

> स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं।
> संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥
> एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।
> विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥

स्मरण (अनुभूत स्त्री की याद करना) कीर्तन (अनुभूत स्त्री, विषय आदि को वचनों द्वारा कहना) क्रीड़ा (जिससे मैथुन करने की वासना जागृत हो ऐसे खेल) प्रेक्षण, (कामिनियों के मनोहर, अंगों का अवलोकन करना) गुह्य भाषण (अपना छिपा हुआ मैथुन संबन्धी रहस्य प्रकट करना) संकल्प (आगामी भोग भोगने के लिये विचार करना) अध्यवसाय (संभोग-समागम की सिद्धि के लिये उद्योग करना) क्रिया निर्वृत्ति (मैथुन क्रिया में अतिशय आनंद मानना) ये मैथुन के ८ अंग-साधक हैं अतः ब्रह्मचारी इन प्रत्येक अंगों को ब्रह्मचर्य के विपरीत—शत्रु बाधक समझे। और इन आठों अंगों पर पूर्ण विजय प्राप्त करने पर ही अपने को ब्रह्मचारी समझें।

ब्रह्मचर्य के साधन—

संसार में और सब विषयों की शिक्षा दी जाती है तथा उसके लिये प्रचुर धन व्यय और प्रचुर परिश्रम भी किया जाता है। परन्तु काम संभोग आदि पंचेन्द्रिय विषयों की शिक्षा कहीं भी नहीं दी जाती है। फिर भी इसमें मनुष्यों ही को क्या पशु पक्षियों तक को अति शीघ्र पूर्ण दक्षता प्राप्त हो जाती है। इसका कारण कुसंस्कार चक्र ही है इसलिये सब से पहिले कुसंस्कारों का नाश करने के लिये दंपतियों में ऐसे संस्कारों का आधान किया जाय जिससे कि उनसे पैदा हुई संतान सर्वथा व एक देश ब्रह्मचर्य के पालन करने में अवश्य समर्थ होवे। क्योंकि माता पिताओं के क्या शारीरिक क्या मानसिक सभी भावों का प्रतिबिंब (फोटू) बालक में पूर्णरूप से उतर आता है। अतः यदि माता पिता नीरोग, दृढ़ शरीर, उच्च आदर्श वाले, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि नीच भावों से रहित पवित्र हृदय वाले होंगे तो ऐसे दंपतियों से पैदा हुई संतान भी अवश्य इन गुणों से विभूषित होगी।

कभी २ सद्गुणी नियमित ब्रह्मचर्य को पालन करने वाले दंपतियों की संतान बिलकुल विपरीत गुणवाली होती है। इसका कारण यह है कि श्रेष्ठ भूमि में समय पर बोया हुआ बीज अंकुरित तो अवश्य होता है। परन्तु उस अंकुरित बीज (धान्य) को बाड़ आदि लगाकर उचित रखवाली नहीं की जाय तो वह अकाल में ही नाना तरह के दुराचारियों के मुख का ग्रास हो जाता है व सूख जाता है। उसी तरह से गर्भाधानावस्था में रक्षित भी बालक रूपी अंकुर नाना तरह की कुसंगतियों में फंस कर अनेक आपत्तियों का शिकार बन जाता है इन सब अनर्थ परंपरा के कारण वही माता पिता हैं जो बाल्यावस्था में अपनी संतान की संपूर्ण शिक्षाओं पर ध्यान न देकर संतान को केवल मनोविनोद की एक गुड़िया ही समझते रहे हैं। वास्तव में ऐसे माता पिता कभी भी माता पिता होने के लायक नहीं हैं।

किसी भी शिक्षा का बालक के कोमल हृदय में बीज वन कर देने से वह शिक्षा उस हृदय भूमि में आजीवन लहलहाया करती है अतः यदि ब्रह्मचर्य रूपी बीज के बोने का यदि कोई सर्वोत्कृष्ट समय है तो वह बाल्यावस्था ही है। बाल्यावस्था में प्राणियों का हृदय गंदे विचार रूपी वायु मंडल का स्पर्श न होने से

मोम की तरह अतिशय स्वच्छ और मृदु रहना है। ऐसे हृदयों में उत्तम २ भावों की मूर्तियों का आविर्भाव और तिरोभाव अत्यन्त शीघ्रता से चिरकाल तक के लिये हो जाता है। आज कल देश में विलासिता का प्रवाह प्रबल रूप से बह रहा है। खाने को चाहे खाना न हो परन्तु ऐय्याशी की पूर्ति अवश्य की जाती है। बेचारे अनुकरणशील बालक भी बहुत ही छोटी अवस्था में उसी प्रवाह में बह जाते हैं। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये और भी जो उपदेश आचार्यों ने दिये हैं वे अत्यंत उपयोगी होने से लिखे जाते हैं।

दिन में नहीं सोना चाहिये, क्रोध और झूठ का त्याग करना चाहिये, गाना-बजाना, नृत्य आदि नहीं करना चाहिये। इत्र, फुलैल और अंजन का त्याग करना चाहिये। अत्यंत स्नान, अत्यंत निद्रा और अति भोजन का सर्वथा त्याग करना चाहिये। प्रति दिन रात के पिछले पहर में उठ कर शौच आदि से निवृत्त होकर ईश्वर की आराधना अवश्य करना चाहिये। मांस और मदिरा का सर्वथा त्याग करना चाहिये। बैल, घोड़ा, हाथी, ऊँट आदि पर सवारी नहीं करे। अत्यंत खट्टे, चिरपरे, कसैले, खारे और दस्तावर चीजों को नहीं खाना चाहिये। हमेशा ही उचित आहार विहार करना चाहिये।

परवार-डिरैक्टरी।

(गत ५ वें अंक से आगे)

(२)

समैया भाइयों की संख्या १९८६ है। इन में और हममें कोई फर्क नहीं है। ये हमारे ही भाई हैं और मूर तथा गोत्रों की परम्परा हमारे समान इनमें भी चली आती है। तारनपन्थ के अनुयायी हो जाने के कारण ही ये हमसे जुदे हो गये हैं। तारनपन्थ अब कोई जीता जागता धर्म या पन्थ नहीं है। इसके साहित्य में ऐसी कोई जीवनी शक्ति नहीं दिखलाई देती जिसके कारण यह फलता फूलता रहे। अतएव हमें इससे डरने का कोई कारण नहीं दिखलाई देता। इस समय सैकड़ों समैया भाई हमारे मन्दिरों में आते जाते हैं। हमारे शास्त्र पढ़ते सुनते हैं और मूर्तिपूजा तक करते हैं। अतएव यदि हम इन्हें अपने में शामिल कर लेंगे तो इसका फल यही होगा कि इन पर हमारा प्रभाव पड़ेगा और ये हमही जैसे हो जावेंगे। यह हरगिज नहीं हो सकता कि इनके निर्जीव पन्थ का प्रभाव हम पर पड़े और हम इन जैसे हो जाँय। इसके सिवाय धर्म सम्बन्धी थोड़े से विश्वास भेद के कारण यह जरूरत नहीं है कि हम उनसे सामाजिक सम्बन्ध भी न रक्खें। सुना है कि प्रायः प्रति वर्ष ही चुपचाप दो चार विवाह समैया और परवारों के बीच हो जाया करते हैं। अच्छा हो यदि ये खुले आम होने लगें और समाज इनके साथ पूरी सहानुभूति प्रकाशित करे।

× × × ×

चौसखे और समैया भाइयों के मिला लेने से हमारी संख्या (१३००+१९८६ =) ३०८६ बढ़ जायगी और यह संख्या सर्वथा

नगण्य नहीं कही जा सकती। इस से हमारा वरकन्याओं के चुनाव का क्षेत्र बढ़ जायगा और यह निश्चित सिद्धान्त है कि चुनाव का क्षेत्र जितना विस्तृत होगा अनमेल और बेजोड़ विवाह उतने ही कम होंगे। अभी जहाँ हम सौ घरों में सुयोग्य वर कन्याओं की तलाश कर सकते हैं वहाँ एक सौ दस घरों में कर सकेंगे और तब अब की अपेक्षा अधिक योग्य सम्बन्ध हमारी जाति में होने लगेंगे।

× × × ×

परवारों की कुल जन संख्या--जिस में चौसके, समैया, विनैकया आदि भी शामिल हैं—४८२४० है। इनमें से २५४८४ पुरुष और २२७५६ स्त्रियाँ हैं। अर्थात् पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या पौने तीन हजार के लगभग यों ही कम है। दूसरे शब्दों में सौ पुरुषों के पीछे ८९ के लगभग स्त्रियाँ हैं, या प्रतिशत ११ के लगभग स्त्रियाँ कम हैं। मालूम नहीं और और जातियों में पुरुष और स्त्रियों की संख्या में इतना अन्तर है या नहीं। जहाँ तक हमारा ख़याल है, समग्र भारत के स्त्री पुरुषों की संख्या में इतना अधिक अन्तर नही है। इस विषय पर खास तौर से विचार करने की जरूरत है कि हमारे यहाँ ही स्त्रियों की इतनी कमी क्यों है।

× × × ×

२५४८४ पुरुषों में से १०३५४ पुरुषों और २२७५६ स्त्रियों में से १०३२४ स्त्रियाँ विवाहित है। इनमें से १६ वर्ष तक के ३८१ लड़के और ११ वर्ष तक की २६८ लड़कियाँ विवाहित हैं। बाल्य विवाह अब भी हमारी जाति में घर किये हुए हैं। १० वर्ष की उम्र में ही ३० लड़कों और १२७ लड़कियों के कन्धों पर कठिन गृहस्थाश्रम का बोझा रख दिया गया है। इस बाल्यविवाह के पाप का ही तो यह फल है जो १३ वर्ष से नीचे की उम्र की ३० विधवायें मौजूद हैं।

\+ + + +

२५४८४ पुरुषों में से १२६६२ कुँवारे और २२७५६ स्त्रियों में से ६७०२ कुँवारी लड़कियाँ हैं। कुँवारे पुरुषों में से ६८६३ सोलह वर्ष से नीचे की उम्र के, २६७६ सोलह और ४० वर्ष के बीच के और ३८३ चालीस वर्ष से ऊपर की उम्र के हैं। इसी तरह कुँवारी स्त्रियों में से ६४५४ ग्यारह वर्ष की उम्र तक की और २४८ बारह से २५ वर्ष की उम्र तक की हैं। इस तरह ४० से ऊपर के अविवाहित पुरुषों को छोड़ देने पर भी कुँआरे पुरुषों की संख्या १२५३९ रह जाती है जब कि कुँवारी लड़कियों की संख्या सिर्फ ६७०२ है और इन पुरुषों में यदि वे विधुर या रँडुए पुरुष और भी शामिल कर लिये जायँ जिनकी उम्र ४० वर्ष से अधिक नहीं है और जो विवाह के लिए इसी सारङ्ग में उम्मेदवार हैं तथा जिन की संख्या ८७१ है तो कुल विवाह योग्य पुरुष १३४१० हो जाते है जो कुँआरी कन्याओं से लगभग दूने हैं। अर्थात् सारी ६७०२ कन्याओं के ब्याह दिये जाने पर भी ६७०८ पुरुष अवश्य कुँआरे रह जावेंगे। उनका विवाह किसी तरह भी नहीं हो सकेगा और उनमें से इने गिनों को छोड़कर शेष सब को पापमय जीवन बिताने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। वे केवल खुद ही नष्ट न होंगे अपने साथ समाज को और समाज की बहू बेटियों को भी नष्ट करेंगे। परवार जाति के आगे यह एक बड़ी ही कठिन समस्या उपस्थित है।

× × × ×

एक दीर्घदर्शी समाज शास्त्रज्ञ का कथन है कि इस देश की उच्च जातियों में कन्या की उम्रसे वर की उम्र अधिक होती है और यह अधिकता औसत दर्जे ५ वर्ष के लगभग गिनी जा सकती है। ऐसी दशा में हमें विवाह योग्य पुरुषों की संख्या में से ५ वर्ष की उम्र तक के लड़कों की।संख्या घटा देनी चाहिये। क्योंकि इन लड़कों का विवाह ५ वर्ष तक की उम्र की वर्तमान लड़कियों के साथ न होकर उनके साथ होगा जो आगामी ५ वर्षों में उत्पन्न होंगी। समाज शास्त्री महाशय के इस सिद्धान्त के अनुसार विवाह योग्य पुरुषों की संख्या में से ३४३० (पाँच वर्ष की उम्र तक के लड़कों की संख्या) घटा देनेसे विवाह योग्य पुरुष (१३४१०—३४३० =) ९९८० रह जाते हैं जब कि विवाह योग्य कन्याओं की संख्या ६७०२ ही है। अर्थात् पूर्वोक्त सिद्धान्त के मान लेने पर भी ३२७८ पुरुष किसी भी हालत में नहीं ब्याहे जाँयगे।

\+ + + +

एक तो स्त्रियों की संख्या पुरुषों से यों ही कम है और दूसरे असमय में गर्भ धारण आदि कारणों से उन की मृत्यु भी अधिक होती है, अतः बहुसंख्यक पुरुषों को कुँआरा रहना ही पड़ेगा; हाँ यदि समाज चाहे तो इनकी (अविवाहित पुरुषों की) संख्या में कमी अवश्य हो सकती है। डिरैक्टरी से मालूम होता है कि विवाहित पुरुषों में से २२९ पुरुष हैं जिनके तीन तीन और चार चार विवाह हुए हैं और १५०० ऐसे हैं जिनके दो दो विवाह हुए हैं! यदि इन लोगों को दुबारा विवाह करने की आज्ञा न होती तो लगभग दो हजार कन्यायें कुँआरे पुरुषों के लिए बच सकती थीं। परन्तु स्त्रियों को अपने पैरों की जूती समझने वाले पुरुष क्या अपने दुबारा तिबारा विवाह करने के हक़ को छोड़ सकते हैं?

\+ + + +

२५४८४ पुरुषों में से २३०८ पुरुष विधुर या रँडुए हैं। इन मे से १२ से ४० वर्ष तक के ८३५ और ४० से ऊपर के १४७३ हैं। इसी तरह २२७५६ स्त्रियों में से १०३२४ विवाहिता और ५७३० विधवायें हैं। अर्थात् जितनी विवाहिता हैं उनसे आधी से भी अधिक विधवायें हैं। प्रत्येक सौ स्त्री में २५ से भी ज्यादा विधवायें हैं। इनमें से ६ से १४ वर्ष तक की ५०, १५ से २० तक की ३०१, २१ से २५ वर्ष तक की ३३९ और २६ से ३० तक की ५०१ विधवायें हैं। पाठक देखेंगे कि यह विधवाओं की संख्या कितनी भयंकर है! जहाँ रँडुओं की संख्या प्रतिशत ९ के लगभग है वहाँ विधवाओं की प्रतिशत २५ से भी अधिक है! क्या यह संख्या किसी तरह कम की जा सकती है? समाज के कर्णधारों को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

—हितैषी।

दिनों का फेर ।

(लेखक-श्रीयुत बाबू कस्तूरचन्दजी, बी. ए. एल. एल. बी)

पूरनचन्द की अकाल मृत्यु से उसके कका काकी को बहुत दुख हुआ । किन्तु उसकी अभागिनी विधवा घसीटी को तो संसार ही अंधकार मय दिखाई देने लगा। उसे न किसी की आशा थी और न किसी प्रकार का सुख था घसीटी इस महान दुख से इकदम सहम गई। उसे न रोते आता था न कलपने, वह इस वज्र दुःख को खून के घूंटों पीगई। घसीटी का सुंदर और सुकोमल शरीर मन के चूर चूर होने से सूख गया। इस विधि के विधान में किसका वश था।

पूरनचंद के काका सिंगई छैकोड़ीलाल जी औसत दरजे के आदमी थे छैकोड़ लाल के बड़े भाई फत्तीलाल जी का स्वर्गवास २० साल हुए हैजे के प्रकोप से हो गया । उस समय पूरनचंद की उमर ५ वर्ष की थी। इसके २ वर्ष बाद ही पूरनचंद की माता का भी देहांत प्लेग से हो गया था। बालक पूरनचंद को छैकोड़ीलाल जी व उनकी स्त्री ने बड़े प्रेम से पालन किया था। छैकोड़ीलाल जी पुराने ढंग के आदमी थे आप के पिता के हाथ की छोड़ी हुई करीब १५०००) की जायदाद थी। आपको लोगों के कहने सुनने से और देखा देखी से रथ चलवाने की बड़ी लालसा थी। आपने फत्तीलाल के मरने के ५ वर्ष बाद १००००) के खर्चे से गजरथ प्रतिष्ठा कराई । व इसके ३ वर्ष बाद छैकोड़ीलाल जी ने अपनी पत्नी के जोर देने पर ५ या ६ हजार रुपये खर्च कर नाम के लोभ में अपनी १० वर्ष की कन्या विमला का विवाह एक रईस के यहां बड़ी धूमधाम से किया। फल यह हुआ कि लोगों ने दस पांच दिन छैकोड़ीलाल की दिल खोलकर विवाह करने की व लड्डुओं की तारीफ की, पर दुर्भाग्य से विमला अढ़ाई वर्ष बाद विधवा हो गई।

प्यारसे पाली हुई विमला काम काज तो कुछ सीखी न थी, सास से एक घड़ी भी न बनी और आकर छैकोड़ीलालके घर बराबर रहनेलगी। यहाँ पूरनचंद को छैकोड़ीलाल जी ने एफ. ए. तक पढ़ाया था पूरनचंद को पढ़ाने में छैकोड़ीलाल को कोई अधिक खर्च नहीं पड़ा था। पूरनचंद को पहली अंगरेजी से लेकर एफ. ए. तक बराबर स्कालर्शिप मिलती रही थी तो भी जब छैकोड़ीलाल जी कर्ज और उसके ब्याज से दब गये तब बात २ में कह उठते मैं तो पूरन के पढ़ाने में बरबाद हो गया। यहां तक कि पूरन से भी जब कभी कह उठते अरे 'तेरे ही पढ़ाने में घर बरबाद हो गया, तुम तो अभी ५०) पाने लगे हो'। इस झूठे लांछन को सुनकर पूरन अपना सिर नीचा कर लेता पर काका को कभी जबाब न देता था। पूरनचंद के मरते ही अब तो छैकौड़ीलाल इस पढ़ाई में बरबादी का जिक्र जहां तहां बड़े जोरों से करने लगे। व बिचारी घसीटी को तो दिन में दस बीस दफे उलहना देने लगे और कहते 'पूरन हमारा भतीजा नहीं पूर्व जन्म का वैरी था हमें मार गया व दो कौड़ी का न रक्खा अगर उसकी पढ़ाई में हम बरबाद न हुए होते तो आज यह दशा न होती।'

[२]

छैकोड़ीलाल जी उनकी स्त्री व बाल विधवा लड़की विमला वैसेही पूरन की जिंदगी में भी घसीटी को तंग किया करती थीं पर।

पूरन के मरने के बाद तो इन लोगों ने गालियों की मात्रा बढ़ा दी और उसको कोसना और चिढ़ाना तो वे अपना धर्म समझ दिन रात विमला को मानसिक दुख देने लगीं। घसीटी-अबला यह सब साहस पूर्वक सह लेती और कभी उफ तक न करती थी। विमला चौथी हिंदी तक तो पढ़ी थी और पति के पास अच्छी तरह लिखना पढ़ना भी सीख गई थी। इसलिये एक दिन जब बहुत खिन्न हुई तो जाकर अलमारी में से एक पुस्तक निकाल कर चटाई पर बैठकर पढ़ने लगी। इतने में उसकी ननद वहां आ गई और देखकर आग बबूला हो गई। अपनी मां को चिल्ला कर बोली "देखो बऊ लाटसाहिबा पढ़ रही हैं वखत न गैर वखत" विमला की आवाज सुनकर छैकौड़ीलाल जी की स्त्री आ धमकी और बोली "देखो रांड को, यही पढ़ लिखकर तो पूरन को खा गई और अब क्या हम लोगों को चाटेगी, भगवान इस डायन से कब पिंड छूटता है"

इतने पर छैकौड़ीलाल जी भी मौके पर पहुँच डपट कर बोले "हाय भगवान कैसी सत्यानाशी औरत है खसम को तो खागई अब हम लोगों पर बारी लगाये है कहीं जाती भी नहीं है रांड। हम कहां तक खवाएँ"।

पाठक समझलें कि इन बातों से घसीटी को कितना दुख हुआ होगा। वह वहां से उठ अपने कमरेमेंजाकर बिना खाए पिये जमीन पर सोगई उसने स्वप्न में अपने प्राणेश्वर का दर्शन किया। और यह भी आदेश सुना कि प्रिये इस जीवन को साहस के साथ अपने अवलम्ब पर बिताओ मैं स्वर्ग में तुम्हारी बाट जोहता रहूंगा।

[३]

एक दो दिन के बाद घसीटी ने अपनी सास से कहा कि काकी मुझे थोड़े दिनों के लिये मायके भेज दो। इस प्रस्ताव को सुनकर छैकौड़ीलाल की स्त्री बड़ी प्रसन्न हुई और छैकौड़ीलाल को राजी करके घसीटी के भाई मन्नूलाल से चिट्ठी लिखवाई। तीसरे दिन मन्नूलाल अपनी बहन को अपने घर ले गये। जाते समय छैकौड़ीलाल की स्त्री ने कपट से-स्त्री सुलभ स्वभाव से दो बूंद आंसू गिराकर बहू से कहा कि बहू जल्दी आइयो हम लोगोंकी खबर न भूलना। लेकिन मन में बड़ी प्रसन्न हुई कि अच्छी बलाय टली और बड़े सस्ते में, अब कौन आता है और कौन बुलाता है।

[४]

मन्नूलाल जी के घर में उनकी स्त्री व गरीबी की दौलत दो लड़कियें और ४ लड़के थे। घर में आटे दाल की दुकान; दोनों थी लड़के लड़कियां मारे मारे फिरते थे न पढ़ने का इंतजाम थां न ठीक तरह से खाने पहरने का। घसीटी के पहुंचते ही मन्नू की बड़ी लड़की सीने का काम घसीटी से सीखने लगी दूसरे लड़के पढ़ने लिखने लगे। घसीटी अपनी सिलाई से रुपया रोज कमाने लगी। अब मन्नूलाल के घर की स्थिति बदलने लगी, खाने पीने पहरने सभी में परिवर्तन हुआ मन्नूलाल की स्त्री घसीटी को देवी मानती थी और कोई काम बिना उसकी आज्ञा के न करती थी।

चार महीने बाद घसीटी उसी शहर की एक कन्या पाठशाला में २५) मासिक वेतन पर नौकर हो गई और दो वर्ष में उसे ५०) महीने मिलने लगे। और वह वहां की हेड पाठिका हो गई। स्कूल कमेटी अब स्कूल का काम उसी की सम्मति से करने लगी।

कन्या पाठशाला में एक चपरासी की जगह खाली होने पर आठ आदमियों की दरख्वास्तें

थी व आज आठों आदमी हेड पाठिका के सामने पेश होने वाले थे और वही एक को चपरासी मुक़र्रर करनेवाली थी। पहला आदमी जो घसीटी बाई के सामने पेश हुआ उसे देख कर घसीटी बाई दंग और लज्जित होगई लेकिन लज्जाको छिपाकर पूछने लगी "तुम्हारा नाम ?"

"मेरा नाम सिंघई छैकौड़ी लाल"

"इतनी दूर नौकरी को क्यों आए ?"

"कर्जे में जायदाद बिक गई"

"कर्जा क्यों किया था ?"

"भतीजे के पढ़ाने में......"

घसीटी ने बात काट कर कहा।

"या रथ चलाने में-लड़की का विवाह धूम धाम से करने में"

"हां बाई बात तो सच है भतीजे के पढ़ाने में सिर्फ पौने दो सो खरच हुए थे ब्याह में चौपट हो गये लड़की भी रांड हो गई।

छैकौड़ीलाल को हुक्म हुआ कि तुम जाओ, दूसरे आदमी की मुकर्ररी चपरासी के पद पर होगई है। छैकौड़ीलाल जी को एक ढीमरन हेडपाठिका के पास से क्वार्टर पर (रहने की जगह पर) लेगई वहां छैकौड़ीलालने देखा कि उनका स्वागत एक महमान के समान हो रहा है, वे दंग हो गये।

घसीटी ने आकर पूछा आप मुझे पहचानते हैं ? छैकौड़ीलाल ने कहा "मां आप यहां की हेडपाठिका हैं" छिकौड़ीलाल ने अपनी बहू का मुंह तो कभी देखा न था इससे बेचारे बहू को कैसे पहिचाने !

घसीटीने अपना परिचय दिया और प्रार्थना करके अपनी ककिया सास और नंद को भी बुलाकर अपने यहां आजन्म बड़े मान से रखा।

वर्षा ।

आई वर्षा ऋतु आई,
वसुन्धरा पर नयन मोहनी क्या हरियाली छाई ॥ आई—
पृथ्वी पर दादुर टर्राये,
मेघों ने वादित्र बजाये,
गिरने लगी धरा पर निशदिन शीतल जल की धार।
मानों प्रकृति, महोत्सव रचकर जतलाती है प्यार॥
तौभी मिटा न मनस्ताप,
होते रहे धरा पर पाप,
भीषण अन्यायों की ज्वाला गई न हाय बुझाई,
आई वर्षा ऋतु आई—

२

आई वर्षा ऋतु आई,
क्षुद्र मनुष्यों के समान अब क्षुद्र नदी चढ़ आई।
जोश जवानी का दिखलाने,
मानो सारा जगत बहाने,
मर्यादा को तोड़ नग्न सी नचती है उद्वेल।
उसको क्या मालूम कि दुनियाँ है क्षण भर का खेल॥
क्षणिक है सारा यह संसार,
न मद में भूले कभी गंवार,
वर्षा के वश इसी दृश्य ने कैसी सीख सिखाई?
आई वर्षा ऋतु आई—

३

आई वर्षा ऋतु आई,
ग्रीषम की मिट गई दुपहरी जिसने धरा जलाई।
तपन देख कर बादल रोये,
अँसुओं से वन-नगर भिंगोये,
उन पवित्र अँसुओं से सारा मिटा जगत का ताप।
हम भी यदि टपकाते सच्ची बूँदे अपने आप॥
मिट जाता जनता का क्लेश,
भारत होता अनुपम वेश,
विश्व प्रेम की मनोहारिणी देती छटा दिखाई,
आई वर्षा ऋतु आई—

—लाल।

दांत क्यों जल्दी गिर जाते हैं ?

सभ्य देशों में आजकल जितना अधिक ज़ोर दांतों की खराबी का है उतना और किसी का नहीं ! डाक्टरों का कहना है कि स्कूल के लड़कों में यह रोग ९५ फी सदी पाया जाता है। नौजवान आदमी भी इस रोग से ग्रसित पाए जाते हैं।

शारीरिक यंत्र में कुछ नसें ऐसी हैं कि जिनका सम्बन्ध दांतों और दिमाग दोनों से है। यदि दांतों पर मनुष्य पूरा २ ध्यान रक्खे तो फिर दिमाग की कमज़ोरी गर्मी आदि रोग कभी भी न होने पावें।

खराबी का प्रारम्भ ।

अधिक खटाई या खट्टी चीज के अधिक प्रयोग से दांतों की जड़ें कमज़ोर पड़ जाती हैं। परन्तु डाक्टर जे. आर. मिचल का कहना है :— कि दांत "फास्फेट आफ कैलसियम" (Phosphate of Calcium) से बने हुए हैं। ये दांत तेजसे तेज आइगनिक एसिडसे भी नहीं घुल सकते; किन्तु थूक में जो खराब एसिड मिश्रित होता है उससे दांतों को बड़ा भारी धक्का लगता है। बहुतों का ख्याल है कि खून की खराबी से दांतों में खराबी पैदा होजाती है। यही सब रोगों की जड़ है। दांतों की खराबी के वैसे तो कई एक कारण बतलाए जाते हैं परन्तु मुख्य दो हैं :—

१-चूने की कमी।

२-भोजन को अच्छी तरह चबा २ कर न खाना।

भोजन में चूने की काफी मात्रा होनी चाहिए कारण कि यह नर-देह सोलह खनिज पदार्थ से परिपुष्ट होती रहती है, उन सब में चूना मुख्य है दांतों और हड्डी को चूना ही बनाता है। यदि भोजन में चूने की मात्रा कम हो तो हड्डी और दांत कभी मज़बूत नहीं होसकते। चूने से केवल दांत और हाड़ को ही सहायता नहीं मिलती किन्तु पुट्ठे भी मजबूत होजाते हैं और रगें हरकत करने लगती हैं। रक्त संचालन में बहुत सहायता मिलती है।

जानवरों और वनस्पति का भी जीवन चूना और फास्फोरस पर स्थित है।

शरीर-शास्त्र इस बात को भली प्रकार बतलाता है कि शरीर के सारे अवयव रक्त से ही बने हैं। यदि रक्त में चूना और फास्फोरस न पाया जाता हो तो जिस हिस्से में यह रक्त अपना काम करेगा वह भली प्रकार मजबूत न होगा। इसके अतिरिक्त नसें, पुट्ठे, रगें आदि पहले से ही बहुत सा चूना और फास्फोरस जमा रखती हैं। जब रक्त को शारीरिक यंत्र चलाने के लिए चूने और फास्फोरस की कमी पड़जाती है तो यह अपनी कमी को दांत और हाड़ से ही पूरी करता है।

भोजन के साथ चूना और फास्फोरस हमारे रक्त को मिलता है। अतः हमें केवल वही भोजन करना चाहिए कि जिसमें चूना और फास्फोरस की मात्रा अधिक हो

अजीर्ण, गर्मी आदि रोग चूने को बहुत खर्च कर डालते हैं। इन गन्दे रोगों के कारण दांतों की खराबी बहुत जल्दी शुरू होजाती है।

जिस समय स्त्री गर्भवती होती है उस समय उसके भोजनमें चूनेकी मात्राकी कमी पड़जाती है। इससे उसके दांत हिलजाते हैं और प्रायः कुछ स्त्रियों के दांत तो गिर भी पड़ते हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए यदि चूना मिला हुआ भोजन दिया जाय तो उससे गर्भ-स्थित

बालक पर बहुत बुरा असर पड़ने का डर है। अतः गर्भवती स्त्री के लिए फलाहार ही उत्तम चीज है।

भोजन को अच्छी तरह चबा २ कर न खाने से भी दांत नष्ट होजाते हैं प्रकृति ने सब दांतों को कड़े पदार्थ खाने के लिए बनाए हैं। इस लिए प्रकृति-विरुद्ध कार्य करने से बड़ी हानि देखी जाती है।

हम लोगों में आजकल इतनी कमजोरी आगई है कि भोजन को जहां तक नरम और मुलायम करते बनता है, बनाते हैं जिससे चबाने में कोई तकलीफ न हो परन्तु ऐसा करना दांतों को हानि पहुंचाना है। चबाने के लिए फल का प्रयोग करना अच्छा है। इससे दांत मजबूत और साफ बने रहते हैं। मूली और सेव सर्वोत्तम फल हैं।

भोजन में यदि शक्कर की जरूरत पड़े तो वह कम होनी चाहिए अधिक शक्कर खाने से दांत खराब हो जाते हैं। इसी प्रकार यदि भोजन अच्छी तरह पका हुआ हो तो फिर नमक की कोई जरूरत नहीं

भोजन में फल का प्रयोग करना अच्छा है। कच्चे, पक्के दोनों प्रकार के फलों का खाना अच्छा है। दांतों का साफ रखना जरूरी है। और कच्चा सेव खाने से दांत बहुत अच्छी तरह साफ हो जाते हैं परन्तु यदि कच्चे सेव न मिल सकें तो फिर ब्रुस से दांत साफ करना चाहिए।

—नाथूराम सिंगई।

जैन धर्म पर एक अजैन के प्रश्नों का उत्तर।

(लेखक — श्रीयुत बाबू गुलाबचन्द्र जी वैद्य)

जिन दिनों राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन गया में होने वाला था, मुझे एकाएकी आर्डर हुआ कि कल दिन के ८॥ बजे कलकत्ता होते हुए गया जाना पड़ेगा। मालिककी आज्ञा भला कब भङ्ग की जा सकती है? जाने की तयारी में लग गया। धोबी से कपड़े एक दिनमें धुलवा लिये। और "गुरु जी" के साथ दूसरे दिन कलकत्ता जाने के लिये मकान से टांगा करके रवाना हो गया। स्टेशन पर मेल आचुकी थी। उस दिन जैसी भीड़ ट्रेन में मैंने कभी नहीं देखी। गोंदिया तक खड़े २ जाना पड़ा। आगे भी इसी तरह तीसरे दर्जे में खड़े२ कलकत्ते तक जाना होगा इस कल्पनासे चित्त बहुत बेचैन हुआ। साथीतो फौरन ड्यौढ़े दर्जे के डिब्बेमें जा बैठे और मुझसे कहा तुम वहीं बैठो। मैं कब मानने वाला था, मैं भी झट उन्हीं के पास जा बैठा। वे हँसने लगे और कहा "खैर बैठ जाइए" आगे वहां वापिस चले जाना। चाहिए तो उन्हें था, कि उस दिन की भीड़ को देखते हुए मेरे बदले में भी अधिक किराया देकर पास कटा लेते। परन्तु मनुष्य कितना ही उदार देश-सेवी और स्वार्थ-त्यागी क्यों न हो अपने आत्म-गौरव या शान्तिके सामने उसे दूसरों के कष्टों का तनिक भी भाव नहीं रहता। रास्ते में बड़ी २ स्टेशनों पर कई बार उतर कर देखा पर पैर रखने तक को तीसरे दर्जे में कहीं जगह नहीं थी। तब

लाचार होकर उसी कमरे में आना पड़ा। इस कमरेमें चार पाँचसे ज्यादह मनुष्य नथे। रात्रि का समय होने से वे सब खुर्राटे ले रहे थे, किन्तु मुझे अभी तक नींद न आई। मैं रोशनी के निकट लेट कर किताब पढ़ने लगा।

उतने में एक सज्जन जो कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में गया जाने वाले थे। हमारे कमरे का दरवाजा खोल कर भीतर आ बैठे। उनका सब लिवास हाथ के कते हुए सूत की खादी का था। मेरी पुस्तक को अपने हाथो में लेते हुए हिन्दी में कहा "क्या आप मराठी पढ़ना जानते हैं? मैंने उत्तर दिया 'जी हाँ' उन्होंने हँसते हुए कहा "बड़ी खुशी की बात है, कि आप की मातृ भाषा हिन्दी होने हुए भी आप मराठी अच्छी तरह पढ़ लिख और बोल सक्ते हैं। पर हमें तो देखिए, कि मराठी हमारी मातृभाषा होकर भी हमें आप के बराबर भी उसमें बोलने की योग्यता नहीं है। मैंने कहा इसमें कोई बड़ी बात नहीं है। मैं उसी प्रांत का रहने वाला हूँ जहां पर अब तक हिन्दी भाषियों के लिये मातृ भाषा में प्राथमिक शिक्षा मिलने का प्रबन्ध नहीं है। हिन्दी स्कूल खुलवाने की चेष्टा तो करदी गई है संभव है आगे खुल जाँय। हिन्दी में पढ़ने का कोई प्रबन्ध न होने से मैं क्या सभी हिन्दी भाषियों की संतानों को बचपन मे मराठी स्कूलों में ही पढ़ना होता है। उन्होंने कहा—"तब तो आप के लिये मराठी का ज्ञान स्वाभाविक है। मराठी में साहित्य भी अच्छा है, पर मुझे तो हिन्दी से ही विशेष प्रेम है क्योंकि वह राष्ट्रभाषा है, इस पर मातृभाषा से भी अधिक प्रेम करना प्रत्येक प्रांत के व्यक्तियों का धर्म है।" मैं अपने मन ही मन मुस्कराया और कहा—"यदि आप जैसे उदार विचार सब प्रांत के अन्य भाषा भाषी सज्जनों के हो जाँय तो फिर देखना ही क्या है? कल ही भाषा दृष्टि में देश स्वतंत्र हो जाय।"

इसके बाद राजनैतिक क्षेत्र की बातें हुई। वे बात २ पर महात्मा जी के अहिंसात्मक असहयोग की प्रशंसा करते रहे। उनके सब विचार मेरे विचारों के अनुकूल थे, मैं भी अपनी अनुकूल सम्मति प्रगट करता गया। बात चीत करते २ अंत में उन्होंने पूछा "आप किस धर्म के मानने वाले हैं?"

मैंने कहा—"मैं स्वधर्म को मानने वाला हूँ?"

उन्होंने कहा—"मैं कब समझता हूँ कि आप पर धर्म को मानने वाले हैं। मैं तो सिर्फ यही जानना चाहता हूँ कि आप का स्वधर्म क्या है और उसको प्रचलित भाषा में किस नाम से पुकारते हैं?"

मैंने उत्तर दिया—"भाई साहब, स्वधर्म तो वही है जो वस्तु का सर्वाङ्गिक और स्वभाव हो। जैसे कि अग्नि में उष्णता उसका स्वाभाविक धर्म है। उसी प्रकार जीवात्मा का जो असली और सर्वाङ्गिक स्वरूप है वही मेरा धर्म है। असली का मतलब है जिस पदार्थ का वह धर्म हो उस पदार्थ में वह सदैव विद्यमान रहे चाहे वह पदार्थ किसी हालत में क्यों न हो। सर्वाङ्गिक का मतलब है पदार्थ के अनेक धर्मों से, अर्थात् किसी भी पदार्थ में उसके विशेष धर्म के अतिरिक्त सामान्य रूप से अनंत धर्म विद्यमान रहते हैं यह नहीं कि वह केवल विशिष्ट धर्म से ही संयुक्त और शेष धर्मों का उसमें अभाव हो। आत्मा अनंत गुणों का केन्द्र है। उसमें अनंत धर्म विद्यमान हैं ऐसी परिस्थिति में भिन्न २ दृष्टियों से अपने सर्वाङ्गिक स्वरूप का श्रद्धान

और ज्ञान प्राप्त करके स्वरूप के पूर्ण विकाश में लग जाना ही स्वधर्म है। जो मेरा स्वधर्म है वही जीव मात्र का स्वधर्म है। एक जीवका स्वधर्म कुछ हो और दूसरे का स्वधर्म कुछ हो तब तो वे स्वधर्म ही नहीं है। स्वधर्म तो एक जाति के बहुसंख्यक पदार्थमात्र में विद्यमान है। आत्मेतर जड़ पदार्थों के धर्मों में आसक्त न होकर आत्मा अपने आत्म स्वभाव से सर्व दृष्टि से परिचित हो अपने स्वाभाविक विकाशमें लग जाय यही स्वधर्म है। स्वधर्मके सर्वाङ्गिक ज्ञान और पूर्ण विकाश का जो विज्ञान है, उसी को आजकल जैन धर्म कहते हैं। अतः आप मुझे जैन धर्मावलम्बी ही समझिए।"

उन्होंने कहा—ओ, हो, तबतो बड़ी खुशी की बात है कि आप जैनी हैं मुझे जैन धर्म के समझने की बड़ी उत्कंठा है क्या आप मेरा समाधान कर सकेंगे?

मैंने कहा—भाई साहब मैं तो कोई बड़ा विद्वान तत्वज्ञानी या दार्शनिक पंडित नहीं हूँ। संभव है कि मैं आपकी बहुतसी बातों का समाधान कर सकूँ? कहीं मेरे समझने में ही गलती रह जाय तो आप उसे किसी दूसरे विद्वान से मिलकर सुधार लेवें।

इसके बाद वे प्रश्न करते गये और मैं उत्तर देता रहा।

प्रश्न—जैन धर्म के मूल प्रवर्तक कौन हैं?

उत्तर—जैन धर्म के मूल प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव हैं। श्री ऋषभदेव नाभिराजा के पुत्र थे। उनकी माता का नाम मरुदेवी था। श्री ऋषभ देव के प्रथम पुत्र भरत चक्रवर्ती सम्राट थे। ऋषभदेव का जैन ग्रंथों में विशद चरित्र है। ऋषभदेव जिस समय में हुए थे, वह बहुत ही प्राचीन समय है, जिसका अन्वेषण अभीतक इतिहासज्ञ नहीं कर सके। ऋषभदेव का कुछ २ उल्लेख वैदिक धर्म ग्रंथों में भी पाया जाता है। ऋग्वेद और भागवत में अच्छा जिक्र है। जैनधर्मानुयायी यद्यपि भागवत इत्यादि के ऋषभदेव विषयक वर्णन को वास्तविक नहीं मानते और न वैदिक धर्मानुयायियों का जैन ग्रन्थों के कथनानुकूल ही विश्वास हो सका है। तथापि दोनों धर्मानुयायियों के ग्रन्थों से यह सिद्ध अवश्य होता है कि ऋषभ नामके कोई महापुरुष अवश्य हुए हैं और वे अपने जीवन के उत्तर समय में नग्न (दिगम्बर) अवस्था में घोर तपश्चरण भी करते रहे हैं। इसी तप के प्रभाव से उनके हृदय में अलौकिक ज्ञान का चरम विकाश हुआ। तब उन्होंने लोक हित के लिये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (तत्कालीन परिस्थिति) के अनुकूल मोक्ष-मार्ग का उपदेश दिया।

इसके बाद क्रम से २३ महापुरुष और भी मोक्ष-मार्ग के प्रवर्त्तक हुए। उनमें २३ वें पार्श्व-नाथ और २४ वें महावीर ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। श्री महावीर का ऐतिहासिक समय ईसा के पूर्व ५२७ वर्ष है। महावीर के २५० वर्ष पूर्व पार्श्वनाथ हुए ऐसा इतिहासज्ञ मानते हैं। इन २४ महापुरुषों ने अपने २ समय की परिस्थिति के अनुकूल मोक्ष-मार्ग का उपदेश किया था। वर्तमान में व्याख्यान के स्थल को जिस प्रकार सभा और किसी समिति के अधिवेशन को सम्मेलन, परिषद या अधिवेशन कहते हैं। इसी प्रकार उपरोक्त २४ महापुरुष की उपदेश रूप वाणी को दिव्यध्वनि और ऐसा स्थल को (जहाँ असंख्य श्रोतृ समुदाय एकत्रित होता था) समवशरण कहने की प्रथा है उक्त चौबीस महापुरुष अपने २ समय के आदि धर्म प्रवर्तक होने के कारण तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर

उस महामान्य को कहते हैं। जिसके ज्ञान का सम्पूर्ण विकाश होगया है, जिसने विश्व के गूढ़ तम और सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों का अपने दिव्य--आलोक-ज्ञान से पता लगा लिया है और जो सम्पूर्ण प्राणियों को समरूप मानकर और द्वन्द भाव (राग द्वेषादि) छोड़कर स्वार्थत्याग की चरम सीमा तक पहुँच चुका है। अर्थात् जो परम वीतरागी, सर्वज्ञ और विश्वबन्धु हो वही तीर्थंकर और मोक्षमार्ग का प्रवतक कहा जाता है।

उपरोक्त क्रमानुसार तीर्थंकर महावीर जैन धर्म के वर्तमान प्रवर्तक माने जाते हैं।

प्रश्न—जैन दर्शन (धर्म) का मुख्य और जैनियों के लिये प्रमाण ग्रन्थ कौनसा है?

उत्तर—जैन धर्म में या जैनियों के लिये अन्य धर्मानुयायियों के वेद कुरान, बाइबिल, ग्रन्थसाहब इत्यादि के समान कोई एक खास ग्रन्थ नहीं है। जैन श्रुतज्ञान महावीर के समय से अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु तक सम्पूर्ण रूप से रहा। किन्तु लिपि बद्ध नहीं हुआ। सम्पूर्ण श्रुतज्ञान १२ अंगों में विभक्त था। (१) आचाराङ्ग, (२) सूत्रकृताङ्ग, (३) स्थानाङ्ग (४) समवायाङ्ग, (५) व्याख्या प्रज्ञप्त्यंग, (६) ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, (७) उपासकाध्ययनाङ्ग (८) अन्तकृद्दशाङ्ग (९) अनुत्तरोपपादिकाङ्ग (१०) प्रश्न व्याकरणाङ्ग, (११) विपाक सूत्राङ्ग, और (१२) दृष्टिप्रवाद अङ्ग,

१२ वें अंग के परिकर्म सूत्र, पूर्वाङ्ग, प्रथमानुयोग और चूलिका पांच भेद हैं इनसे संयुक्त, द्वादशाङ्ग करोड़ों श्रुतज्ञान पदों में विस्तृत था यह अगाध द्वादशाङ्ग श्रुतज्ञान भगवानमहावीर की दिव्यध्वनि से प्रगट होकर भद्रबाहुश्रुतकेवली (द्वादशाङ्ग के पूर्ण ज्ञाता) के पश्चात् कुछ शताब्दियों तक लुप्त होता गया और अन्त में एकाध अङ्ग के ज्ञाताओं का भी अभाव होकर किसी २ अंग और पूर्व के अंश मात्र ज्ञाता रह गये। तब जिन वाणी के सर्वथा लोप हो जाने की आशङ्का से रहे सहे ज्ञान को लिपि बद्ध करना उस समय के आचार्यों ने प्रारम्भ किया। अब वर्तमान में जो कुछ साहित्य उपलब्ध है वह चार अनुयोगों में विभक्त किया जाता है।

(१) द्रव्यानुयोग (Philosophy तत्वज्ञान)
(२) चरणानुयोग (Ethics--आचार)
(३) करणानुयोग (त्रिलोक वर्णन)
(४) प्रथमानुयोग (पौराणिक या कथा ग्रन्थ)

उपरोक्त चारों अनुयोग के प्रमुख २ आचार्य लिखित सभी ग्रन्थों को जैन धर्मानुयायी आप्त ग्रन्थ मानते हैं। क्योंकि उक्त ग्रन्थों में संचित विषय भगवान महावीर की शिष्य परम्परा से पूर्वा पर विरोध रहित संकलित है।

दूसरी बात यह है, कि जैन दर्शन मुख्यता ज्ञान को ही प्रमाण मानता है। ज्ञान मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय और केवल इस रूप से पाँच प्रकार का है। और प्रमाण दो प्रकार का है? एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। जो ज्ञान किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता, अर्थात् इन्द्रिय, मन और आलोक आदि के बिना ही केवल आत्मा से प्रस्फुटित होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है और जो ज्ञान इन्द्रियादिकों की सहायता से होता है वह परोक्ष ज्ञान है।

"अथ तद्द्विधा प्रमाणं ज्ञानं प्रत्यक्षमथ परोक्षम्।
असहायं प्रत्यक्षं भवति परोक्षं सहायसापेक्षम्॥

(पंचाध्यायी)

"इन्द्रिय या अन्य किसी की सहायता से होने वाला सापेक्ष ज्ञान अपूर्ण-परोक्ष है और इन्द्रियातीत—अपेक्षा रहित ज्ञान पूर्ण और प्रत्यक्ष है।" ऐसा पश्चिमी विद्वान् प्रो० इस्टर्न्सका भी मत है। ज्ञान ही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

"सर्वास्विवा कथञ्चित्ज्ञानदन्यत्र न प्रमाणत्वम्।"

अर्थात् किसी भी प्रकार ज्ञान को छोड़कर अन्य किसी पदार्थ में प्रमाणता नहीं आ सकती। ऐसा जैन धर्म का अभिप्राय प्रमाण के विषय में है।

प्रश्न—जैन दर्शन के अनुसार मुक्ति का मार्ग क्या है?

उत्तर—जैन दर्शन के अनुसार सम्यक-दर्शन सम्यक-ज्ञान और सम्यक चरित्र ही मोक्ष का मार्ग है।

"सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः।"

(मोक्षशास्त्र-तत्वार्थ सूत्र। १॥)

सद्दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वराः विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति॥"

(स्वामी समन्तभद्र-रत्नकरण्ड श्रावकाचार।)

"सधर्मः सम्यग्दृग्ज्ञप्तिः चारित्रत्रितयात्मकः।"

(पंचाध्यायी)

सम्यक-दर्शन, सम्यक-ज्ञान और सम्यक-चारित्र इन तीनों की युगपत एकता से ही धर्म का उद्देश सफल होता है। धर्म का उद्देश है—

'संसार दुःखतः सत्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे।"

(रत्नकरण्ड)

"धर्मो नीचैः पदादुच्चैः पदे धरति धार्मिकम्।
तत्राजवञ्जवो नीचैः पद मुच्चैस्तदत्ययः॥"

(पंचाध्यायी)

वत्थु सहाओ धम्मो (वस्तु का स्वभाव ही धर्म है)

जो संसार के दुःख से (नीच स्थान से) धर्मात्मा को उठाकर अत्युत्तम सुख (उच्च-स्थान में) मोक्ष में धरे। इसके लिये सर्वोत्तम मार्ग उपरोक्त कहा गया है। यह व्यवहार दृष्टि से कथन है। निश्चय दृष्टि से सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र अभेद रूप है। और यह आत्माका स्वाभाविक गुण-धर्म है। अर्थात् सम्यक-दर्शन-ज्ञान-चारित्र मय आत्मा है। आत्मा में जब इन गुणों का सर्वथा विकाश हो जाता है, तब वही आत्मा मुक्त या परमात्मा कहलाता है।

अतएव उभय दृष्टि से सम्यक-दर्शन-ज्ञान-चारित्र की युगपत साधना वास्तविक मोक्ष मार्ग है। निश्चय और व्यवहार दृष्टि साध्य साधन रूप है।

प्रश्न—सम्यक-दर्शन, सम्यक ज्ञान क्या है?

उत्तर—"सम्यक" वास्तव में आत्मा का अत्यंत सूक्ष्म निर्विकल्पक गुण है और वह मति ज्ञान और श्रुतिज्ञान के अगोचर है।

"अस्यात्मनो गुणः कश्चित् सम्यक्त्वं निर्विकल्पकम्।"

(पंचाध्यायी)

"नगोचर मतिज्ञान श्रुतज्ञान द्वयोर्मनाक्।"

(पंचाध्यायी)

आत्मा का यह "सम्यक" गुण अनादि काल से मोहरूपी आवरण के सबब मिथ्यात्व में परिणत हो रहा है। मोहजनित मिथ्यात्व के कारण जीवात्मा को उसके वास्तविक शुद्ध स्वरूपका ज्ञान न होकर पर पदार्थों में आत्म-बुद्धि (अहंकार) रखता हुआ संसार में जन्म मरण करता रहता है और अनेक प्रकार के दुःख उठाता है।

मिथ्यात्व के ५ भेद हैं। एकांत, संशय, विपरीत, अज्ञान और विनय इत्यादि जो वस्तु जैसी है उसको उस रूप न मान कर वस्तु के किसी एक अंश या गुण को स्वीकार कर लेना या वस्तु के सर्वांश को या अनेक परस्पर विरोधी भिन्न २ गुणों को पूर्ण रूप से न मानकर उसके कुछ अंश या गुणों को ग्रहण करना एकांत मिथ्यात्व है। किसी वस्तुके परस्पर विरोधी गुणों के अस्तित्व में संशय रखना संशय मिथ्यात्व है। और किसी वस्तु का जो वास्तविक स्वरूप है उसके बिलकुल विरुद्ध रूप ग्रहण करना विपरीत मिथ्यात्व है। इत्यादि,

इसी मिथ्यात्व के कारण मनुष्य को तत्व का यथार्थ श्रद्धान और ज्ञान नहीं होने पाता।

वह मिथ्याश्रद्धा, भक्ति और ज्ञान को ही मुक्ति का कारण मानकर मिथ्या आचरण (चारित्र) में प्रवृत्त होकर नूतन कर्म बन्धन (आवरण) में अपनी आत्मा को बद्ध करता रहता है। अतएव सम्यक्त्व की उपलब्धि ही मुक्ति का मूल और प्रधान कारण है। इसलिये जैन दर्शन ज्ञान और चारित्र [श्रद्धा, विधान, ज्ञान और कर्म (क्रिया या आचरण)] को ही सिर्फ मोक्षमार्ग नहीं मानता, किन्तु सम्यक्त्व सहित तीनों बातें हों तो वह मोक्ष-मार्ग है, अन्यथा उपरोक्त तीनों बातें मिथ्या--विश्वास (श्रद्धा) मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण में गर्भित हो जाती हैं। अतएव मिथ्यात्व (आवरण) के कम होने पर ही सम्यक्त्व का उदय आत्मा में होता हैं। वह सम्यक्त्व आत्मा के प्रदेशों को शुद्ध करने वाला और सब प्रकार के कर्म बन्धन को नाश करने वाला है। ऐसे सम्यक्त्व की उपलब्धि हो जाना ही सम्यक् दर्शन है। सम्यकदर्शन जिसको हो जाता है वही सम्यग्दृष्टि है। सम्यकदर्शन निर्विकल्पक और अनिर्वचनीय है।

-"सम्यक्त्वं वस्तुतः सूक्ष्ममस्ति वाचामगोचरम् ।"

तथापि सम्यग्दर्शन जानने के लिये स्वानुभूति ही एक सर्वोत्कृष्ट हेतु है। वह आत्मानुभूति (स्वानुभूति) आत्मा का ज्ञान विशेष है और वह ज्ञान विशेष सम्यग्दर्शन के साथ सर्वथा अविनाभाव (सहभाव) रखता है।

"स्वानुभूत्यावक हेतुश्च तस्मात्तत्परमं पदम् ।"
"तत्राप्यात्मानुभूतिः सा विशिष्टं ज्ञानमात्मनः ।
सम्यक्त्वेनाविनाभूतिमान्वयाद् व्यतिरेकतः ॥"

अतएव निश्चयात्मक शुद्ध स्वानुभूति ही सम्यग्दर्शन है और वही सम्यकज्ञान है आत्मा का अपने (दर्शन और ज्ञान रूप) स्वभाव में ही स्थित होना सम्यक् चारित्र है।

(अपूर्ण)

जाति का अनूठा रत्न ।

बालपन से मन लगाकर, सीखता जो ज्ञान है।
बड़े होने का नहीं जिसको तनिक अभिमान है ॥
बड़े या छोटे सभी से, बोलता जो प्रेम से
नित्यप्रति जगदीश का जो, ध्यान करता नेम से ॥
सद्गुणों को ग्रहण कर जो, दुर्गुणों से दूर है।
दुखित के दुख दूर करने में सदा जो शूर है ॥
माँगना है पाप जिसको, दान करना इष्ट है।
मान देने में बड़ों को जो चतुर है शिष्ट है ॥
जो न कहता स्वप्न में भी, दूसरों को नीच है।
सुख तथा दुख में सभी के, बैठता जो बीच है ॥
धन, विभव, यश, रूपका, जिसको न होता मान है ॥
भूलता जिसको नहीं निज, भाइयों का ध्यान है ॥
प्रेम कर सत्कर्म से जो भागता दुष्कर्म से।
प्राण देकर भी न डिगता, जो सदा निज धर्म से ॥
व्यग्र रहता रात-दिन जो जाति के हित के लिए।
जानता, जो जन्म का उद्देश्य, सेवा के लिये ॥
लोक-हित के काम मे जो जी चुराता है नहीं।
किसी का अन्याय सहना है जिसे भाता नहीं ॥
हाथ में शुभ कर्म ले जो पूर्ण करना जानता।
सत्य कहता, सत्य, करता, सत्य ही को मानता ॥
सज्जनों का जो सहायक, दीन-जन आधार है।
शत्रु का भी हो न जिससे, भूल कर अपकार है ॥
यश मिले जिससे पिता को, भाग्य माता का बढ़े।
गर्व हो सम्बन्धियों को, मातृ-भू गौरव बढ़े ॥
देश की हो चाल जिसकी, जाति का अभिमान हो।
जीव पर उपकार करना, जिस हृदय की बान हो ॥
राज पाने दीन होने पर, रहे जो एक सा।
दुख तथा सुख में रहे, जिस, वीर का मन एकसा ॥
इष्ट अपने मार्ग से जो, हिल न सकता है कभी।
सामने जिसके प्रलोभन, टिक न सकते हैं कभी ॥
जन्म से जो मृत्यु तक करता सदा शुभ यत्न है।
जाति का प्यारा प्रकाशित वह अनूठा रत्न है ॥

सूर्य्यभानु त्रिपाठी "विशारद"।

भगवान महावीर और बुद्धदेव।

(गत ५ वें अंक से आगे)
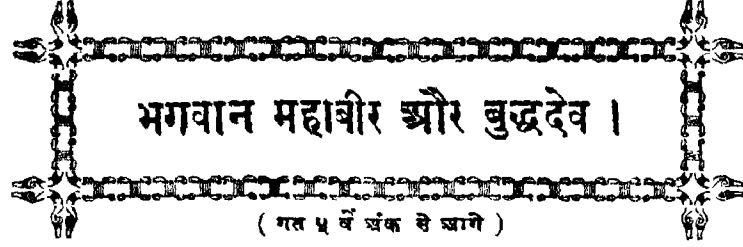
(लेखक—श्रीयुत पं० फूलचंद जी शास्त्री)

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक शाक्यवंशीय गौतम बुद्ध का जन्म ईसा से ५५७ वर्ष पूर्व महाराजा शुद्धोधन की स्त्री मायादेवी से लुंबनी कानन में हुआ था। इनकी सात दिन की अवस्था में ही मायादेवी का देहान्त हो गया था। इसलिये आप के पालन पोषण का भार विमाता रानी प्रजावती और मौसी के ऊपर ही निर्भर रहा। आप कुमार अवस्था से ही विरक्त रहते थे, आप को एकान्त अच्छा मालूम पड़ता था। धीरे धीरे १८ वर्ष व्यतीत हो जाने पर देवदह के महाराज दण्डपाणि की पुत्री यशोधरा के साथ आप का विवाह हो गया। विवाह के अनन्तर भी आप का चित्त सर्वदा उदासीन रहता था, शुद्धोधन ने सांसारिक कार्यों में आप को फँसाने के लिये अनेक उपाय किये पर वे सब निष्फल हुए फिर भी आप ११ वर्ष तक और भी गृही रहे। अन्त में २६ वर्ष की अवस्था में आप के एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। उसी दिन आप अर्धरात्रि के समय नवशिशु को लिये, सोती हुई अपनी स्त्री यशोधरा को तथा राज्य परिवार को छोड़ घर से चले गये। यद्यपि उस समय पुत्र को देख कर इन्हें मोह हो आया। इस कारण बच्चेको गोद में ले प्रेम चुम्बन की उत्कट इच्छा हुई। परन्तु ऐसा करने में माता के जाग उठने और अपने सिद्धान्त से च्युत होने का भय था, इसलिये ज्यों त्यों अपने मन के आवेग को रोक उस हृदय-वेधी दृश्य को वहीं छोड़ दुःख और उदासीनता से आगे बढ़ना पड़ा। गृह छोड़ महात्मा बुद्ध पहिले राजगृह गये। और वहां उनने विद्या का और भी अध्ययन किया। परन्तु पढ़ने से उन्हें संतोष न हुआ। वहां से चल कर बुद्ध गया के पास, उरुविल्व में ६ वर्ष घोर तपस्या करने पर भी वे सफल प्रयत्न न हुए, और अन्त में क्षुधा से व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े। सुध आने पर इन ने निश्चय किया कि तपस्या करने से कोई लाभ न होगा। इसलिये तपस्या छोड़ देह पुष्टि के लिये भोजनादि में दत्तचित हुए। यह देख उनके ५ साथी, बुद्धदेव को कायर समझ, छोड़ कर काशी चले गये। एक दिन निरंजना नदी को पार करके एक वट वृक्ष के नीचे बैठ कर गौतम बुद्ध प्रज्ञालाभ का विचार करने लगे। आषाढ़ी पूर्णमा की रात्रि में उरुविल्व के निकट महाबोधि वृक्ष के नीचे आप को बोधि प्राप्ति हुई। इसी से महात्मा बुद्ध जातिस्मर हुए। अर्थात् अपने पूर्व भव के कुछ वृत्तान्तों का स्मरण हो आया। यहीं से इन्होंने अपने को बुद्धदेव के नाम से प्रख्यात किया।

यहां से चल कर वे काशी गये और अपने पुराने पंचवर्गीय से मिल कर उन्हें बौद्धधर्म का उपदेश दिया। आप के उपदेश का सारांश यह है, कि "संसार के समस्त पदार्थ क्षणिक हैं, जितनी भी दृश्य वस्तुएं हमारे सामने देखने

में आती हैं वह हमारे ज्ञान का भ्रम है किन्तु वर्णादि परमाणुओं के समुदाय रूप अतीन्द्रिय रूप परमाणु ही समुदित होकर इन्द्रिय ग्राह्यता और घटादि कार्यता को प्राप्त होते हैं। वस्तुतः वे घटादि कार्य, कारण रूप द्रव्य को छोड़ कर और कुछ भी नहीं है। इसलिये इन पदार्थों में से नित्य, सात्मक, पवित्र और सुखरूप बुद्धि को हटाकर अनित्य, अनात्मक, अपवित्र और दुःख रूप बुद्धि को करना चाहिये। यही मोक्ष का प्रधान कारण है, मोक्ष के लिये तपश्चर्या की कोई आवश्यकता नहीं है। रूप, वेदना, विज्ञान संज्ञा और संस्कार के अभाव को मोक्ष कहते हैं। इन्ही पांचों को स्कंध कहते हैं जो कि संसारी प्राणियों को दुःख रूप हैं, अतएव इन पांचों के अभाव स्वरूप और सर्व संस्कार क्षणिक हैं इस वासना रूप मार्ग को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष के अभिलाषी परिव्राजक को काम तथा शारीरिक संक्लेश छोड़ कर मध्यमा-प्रतिपदा ग्रहण करनी चाहिये, इसी प्रतिपदा को अष्टांगिक मार्ग भी कहते हैं। वे ये हैं सत्यकर्म, सत्य आजीविका, सत्य विश्वास, सत्यविचार, सत्यवाक्य, सत्य पुरुषार्थ, सत्यस्मृति और सत्यध्यान। विज्ञान का प्रतिपक्षी अविद्या संसार का कारण है, जो अनित्य में नित्य, दुख में सुख, अशुचि में पवित्र और अनात्मक में सात्मक बुद्धि करने से होती है। इस अविद्या से संस्कार होते हैं (यद्यपि बौद्धों ने आत्मा और शरीर को अनित्य स्वीकार किया है। परन्तु पूर्व आत्मा और शरीर के नष्ट हो जाने पर उत्तर क्षण में पूर्व जीवधारी के संस्कारानुसार दूसरा प्राणी पैदा होता है, ऐसा वे स्वीकार करते हैं) इसी संस्कार से उत्तरोत्तर विज्ञान, महाभूत, इन्द्रियां (षडायतन) स्पर्शकाय, वेदना, तृष्णा, उपादान, कर्म, जातिस्कन्धपरिपाक और अन्त में मरण होता है। इनमें पिछले, पिछले, अगले, अगले के लिये कारण पड़ते हैं। यदि अविद्या का समूल उच्छेद कर दिया जावे तो उत्तर ११ कारणों का भी नाश हो जावेगा, और अविद्या के नाश से मुक्त हो जावेगा; जिसको दीपक के निर्वाण सदृश ये लोग मानते हैं।

बुद्ध देव जाति पांति का व्यवहार नहीं रखते थे। उनका कहना था कि नीच से लेकर ऊंच तक सभी निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। अर्जित पुण्य संरक्षण, अलब्धपुण्योपार्जन, अर्जितपाप परित्याग और अलब्धपापानुत्पत्ति इन चार सत्य प्रहाण पूर्वक अष्टांगिक मार्ग के सेवन करने की प्रत्येक आत्मा में शक्ति विद्यमान है। जो विज्ञान के प्रधान कारण गिने जाते है, और विज्ञान मोक्ष का प्रधान कारण है। हिंसा, झूठ, चोरी और कुशील का भी निषेध करते थे मगर मृत शरीर के मांस खाने में कोई दोष नहीं बतलाया। बुद्धदेव का सिद्धान्त था कि जहां जिस पदार्थ के व्यवहार करने की रीति हो वहां वह पदार्थ आनन्द से व्यवहार मे लावें, और तृष्णा का दमन करें। इस तरह जगह जगह उपदेश देने से बुद्धदेव ने ५ मास में अपने ६० शिष्य और बना लिये। इनको चारों ओर अपने सिद्धान्त के प्रचार करने के लिये भेजा। अपना पहिला उपदेश काशीमें दिया। अनन्तर वहां से उरुविल्व और राजगृह गये। ईस्वी से ५२१ वर्ष पूर्व आप अपने पिता की इच्छा से कपिलवस्तु भी गये। वहां इनके उपदेश से पिता पुत्र तथा अन्य कुटुम्ब परिवार ने बौद्ध धर्म स्वीकार-कर लिया। कहते हैं कि राजभवन में भोजनोपरान्त जब इन्होंने धर्मोपदेश दिया, उस समय वहां उनकी स्त्री उपस्थित न थी। यह देख महात्मा बुद्ध पिता की आज्ञा लेकर दो सन्यासियों के साथ में

उनके पास गये। दो सन्यासियों के साथ सन्यास वेश में बुद्धदेव को आता देख यशोधरा विह्वल हो गई। शोक शान्त होने पर बुद्धदेव ने स्त्री को भी धर्मोपदेश दे अपने धर्म में मिला लिया। बुद्धदेव के उपदेश से आप का लघु भ्राता नन्द और राहुल नामक पुत्र सन्यासी होगया। जिससे शुद्धोधन के हृदय में बहुत भारी धक्का पहुंचा। और उसने गौतम बुद्ध से दूसरे दिन घोषणा प्रचारित करा दी, कि माता पिता की बिना आज्ञा के कोई भी बालक सन्यासी न हो सकेगा। ईसा से ५१७ वर्ष पूर्व शुद्धोधन की मृत्यु हो गई, और बुद्धदेव ने अपने हाथ से उसका दाह संस्कार किया। उस समय अन्य सहेलियों के साथ आप की विमाता ने भिक्षुणी बनने की इच्छा प्रगट की। यद्यपि पहिले बुद्धदेव ने टालना चाहा परन्तु उसकी विशेष प्रेरणा करने पर भिक्षुणी बना लिया।

महात्मा बुद्ध ने बौद्धधर्म का प्रचार बहुतायत से बिहार प्रान्त में ही किया। अन्त समय पावा ग्राम में चुन्द नाम के कर्मकार ने बुद्धदेव को अपना अतिथि बनाया। भोजन के समय उस ने चांवल और सूअर का मांस परोसा। बुद्धदेव ने उसे बिना किसी रुकावट के खालिया। यह देख देवदत्त ने प्रार्थना भी की कि आप अपने धर्म से मांस खाने की प्रथा उठा दीजिये। पर बुद्धदेव ने इसे अस्वीकार किया, और कहा कि हमारे मतावलम्बी अपनी रीति रिवाज के अनुसार हर एक पदार्थ का सेवन कर सकते हैं। एक तो बुद्धदेव का शरीर पहिले से ही रुग्ण था परन्तु मांस और चांवल ने शरीर में और भी विकार पैदा कर दिया, जिस से उन का आगे इस संसार में रहना दुःसाध्य हो गया और कपिलवस्तु से पूर्व ८० मीलकी दूरी पर कुशीनार (?) ग्राममें उनका शरीरान्त हो गया।

इन दोनों महात्माओं ने प्रायः एक ही उमर में गृह त्याग किया था। दोनों महात्माओं के जीवन काल सम्बन्धी घटना चक्र के मिलान करने पर भगवान् महावीर सिद्धान्त में दृढ़ मालूम पड़ते हैं। दीक्षा काल तक इन दोनों महात्माओं की कोई बात उल्लेखनीय नहीं है। हां भगवान् महावीर का यावज्जीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा विवाह के लिये दूसरों के प्रार्थित होने पर भी उसे स्वीकार न करना स्पृहणीय है। विवाह हो जाने के बाद हम बुद्धदेव की प्रशंसा किये बिना न रहेंगे, कि वे हृदय मनोहारिणी स्त्री, पुत्रस्नेह राजसी ठाठके रहने पर भी सर्वदा उदास रहे। और पुत्रस्नेह का हृदय द्रावक दृश्य देखते हुए भी गृह-त्याग किया।

बुद्धदेव ने साधु वेश में भी वस्त्र का त्याग नहीं किया था, केश मुण्डन भी कराते थे, एक दिन में एक बार आहार का नियम था। इसी अभिप्राय को लेकर इन्होंने बौद्ध भिक्षुओं के नियम बांधे थे।

कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं, चीरं पूर्वाण्हभोजनं।
संघोरक्ताम्बरत्वं च शिश्रिये बौद्ध भिक्षुभिः।

इसके अनुसार मालूम पड़ता है कि बौद्ध भिक्षु चमड़ा भी रख सकते हैं। यद्यपि बुद्धदेव के जीवन काल में स्वयं उनके पास चर्मादिक का आसन या उसके पास में रखने का कोई भी उल्लेख नहीं आता। परन्तु धार्मिक नियम में बुद्धदेव ने चर्म को किस तरह स्थान दिया यह बात समझ में नहीं आती। संभव है या तो बुद्धदेव के अनन्तर बौद्ध संप्रदायवालोंने शिथिलाचार के कारण धार्मिक नियम में इसको स्थान दिया होगा, या स्वयं जिस बुद्धदेव ने

अपने धर्म में मांस जैसी निकृष्ट वस्तु के सेवन करने में भी दोष नहीं बताया, उसके यहां नियम रूप से धर्म को स्थान पाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है !

परंतु भगवान्महावीर में इससे सर्वथा विपर्यय ही देखने में आता था। साधुवृत्ति स्वीकार करने पर जिनके पास वस्त्रका नामोनिशानभी न था, जो केशमुंडन की जगह केशोत्पाटन करते थे, जो मास, पक्ष या प्रतिदिन ईर्यापथ से गमन कर पाणिपुट में ही धर्मसाधनार्थ शरीर की स्थिति के लिये अधिक से अधिक ३२ ग्रास तक आहार लेते थे। यदि भोजन भगवान् के निमित्त से ही तैयार किया जाता था तो उसे वे ग्रहण न करते थे। जिन भगवान् के दाता, दान और देय की शुद्धि आवश्यक थी। जो अपने निमित्त से किये गये थोड़े से भी आडम्बर का दोष समझते थे, और ऐसे दोष के हो जाने पर उस दिन वे भोजन त्याग देते थे। यही धार्मिक प्रवृत्ति महावीर स्वामी के पूर्वकाल में भी थी, और भगवान् के मोक्ष चले जाने के अनन्तर जैनसाधुओं में अब भी पाई जाती है। भारत के सुप्रसिद्ध लेखक लाला लाजपतराय भी अपने "भारत वर्ष का इतिहास" नामक पुस्तक के पृष्ठ नं० १३० में लिखते हैं कि--"बौद्धधर्म की तुलना में जैनसाधु बहुत अधिक त्यागी हैं"

साधुवृत्ति स्वीकार करने पर दोनों महात्मा तप में प्रवृत्त हुये। महात्मा बुद्धदेव ने ६ वर्ष और भगवान् महावीर ने १२ वर्ष घोर तपस्या की। भगवान् महावीर ने सम्यक्श्रद्धान पहिले ही प्राप्त कर लिया था। परन्तु अभी तक पूर्ण सत्यज्ञान का उदय न था, अत: सम्यक्श्रद्धान केवल १२ वर्ष की तपश्चर्या से पूर्णज्ञान को भी प्राप्त करलिया। बुद्धदेव का ६ वर्षकी तपश्चर्या से कोई भी मतलब न सधा और अन्त में उन्हें उससे हताश होना पड़ा; साथियों ने छोड़ दिया। इन्द्रियां शिथिल पड़ गईं। अब इनके लिये कोई मार्ग न था। ये 'इतोभ्रष्ट ततोभ्रष्ट' होगये थे। लेकिन थे ये महात्मा, असफलता इनका पतन नहीं कर सकती थी। इनका उद्देश दृढ था इसलिये इनका पतन न हो सका। और अन्त में ये ज्ञानिश्वर हुए जिनका कि बौद्धों के यहां जीवन्मुक्त रूप से उल्लेख आता है।

कपड़ों की काट छांट।

(लेखक--वैद्यभूषण मथुराप्रसाद जी)

वर्तमान सभ्यता के अनुरोध से हमारे शरीर के वस्त्रों का जो रूप हो रहा है वह स्वास्थ्य की दृष्टि से किसी प्रकार अनुकूल नहीं है। यद्यपि देश, समय और व्यक्तिगत शारीरिक स्थिति के अनुसार वस्त्रों की पृथक पृथक व्यवस्था होनी चाहिये। परन्तु सभ्यता के कारण, सब को प्रचलित नियमानुसार ही वस्त्र तैयार कराने पड़ते हैं; मानों हम वैसा करने के लिए लाचार होकर शारीरिक कष्ट सहने को तैयार हैं। भारतवर्ष के कुछ पुराने मनुष्यों के सिवाय सभी लोग विदेशी ढंग के कपड़े पहिनते हैं। अशिक्षित समाज अर्थात् कृषक और मजदूर लोग दरिद्रता के कारण ही देशी कपड़ा पहिनते हैं वरन् ये लोग भी नये फेशन पर इस बात का विचार करेंगे, कि वर्तमान की हवा से न बच सकते। जो हो, हम यहां

समय की वस्त्र व्यवस्था, स्वास्थ्य को दृष्टि से शरीर पर कैसा प्रभाव डालती है, आज कल चाहे जाड़ा हो या गर्मी, दिन हो या रात, प्रातःकाल हो अथवा मध्यान्ह एक पूरे सूट की आवश्यकता प्रत्येक समय है। मोजा, बनियान पैजामा (पतलून) वास्कोट, कोट, कालर और टोपी इत्यादि, इतने वस्त्र एक सूट की परिभाषा के अंतर्गत हैं।

इस अस्वाभाविक सूट के अभ्यास ने हम लोगों को प्राकृतिक सर्दी, गर्मी और वर्षा से अनुभव शून्य बना दिया है। इन वस्त्रों से हमारे शरीर में खून का संचालन स्वाभाविक रीति से नहीं हो सकता, और भोजन की तथा पेशाब की क्रिया भी ठीक ठीक नहीं होती। इन कपड़ों से उन नसों पर दबाव पड़ता है कि जिन पर बिलकुल दबाव न पड़ना चाहिये।

बूट-जूता—इस जूते से पैर उतने आराम से नहीं रहता कि जैसे रहने की आवश्यकता है। मार्ग में चलते समय सब जगह एड़ी और पंजे को पैर की प्रत्येक उंगली पर दबाव पड़ता है जिससे कि उनमें ठें ठें पड़ जाती हैं। इसके सिवाय पैर की सारी नसों पर भी अनुचित दबाव रहता है।

मोजा—मोजे के कारण बिचारे पैर की और भी दुर्दशा हो जाती है। विशेष कर गर्मी के दिनों में पैरों को मोज़ों द्वारा गर्म रखना अत्यन्त हानिकारक है। पैरों की कुछ नसें मस्तिष्क की नसों से ऐसा सम्बन्ध रखती हैं कि जिससे वे अपना सारा प्रभाव मस्तिष्क तक शीघ्र पहुँचा देती हैं। गर्मी के दिनों में मस्तिष्क को गर्म रखना चित्त विकृति नामक रोग पैदा करना है।

पैजामा (पतलून)—मुसलमानी पाजामे से तो कुछ आराम भी मिलता है परन्तु अंग्रेजी हाजामे (पतलून) अत्यन्त दुःखदायी हैं। इनको पहिन कर कमर सीधी रखनी पड़ती है। चाहे खड़े हूजिये, मार्ग चलिए या कुर्सी पर बैठिये सर्वदा कमर सीधी रखनी होगी। सीधी कमर रखने से एक लाभ भी है लेकिन सर्वदा सीधी कमर रखना उचित नहीं इससे नसें, खिंचा करती हैं। उनमें अस्वाभाविक लम्बाई आजाती है। हमेशा नसों का खिंचा रहना कई प्रकार के रोगों का उत्पादक है। इसके अलावा सीधी कमर पाचन क्रिया में भी व्याघात पहुंचाती है।

पेटी—हर समय पेटी को कसे रहना अजीर्ण उत्पन्न करना और उसे स्थायी रखना है। पीठ की बड़ी नाली कि जिसे मेरुदण्ड कहते हैं और जिसमें एक ऐसी नस होती है कि जो मनुष्य को विवेक शक्ति सजीव एवम् सचेत रखती है। और भ्रान्ति को दबाती है पेटी के कारण दब जाती है और अपना कार्य ठीक ठीक नहीं कर पाती है। उपरोक्त मेरुदण्ड में एक नसों का चक्र ऐसा होता है कि जिससे आध्यात्मिक विचारों का उद्गार निकला करता है पेटी की कसावट से यह चक्र भी भलीभांति नहीं घूम सकता।

कमीज़—गर्मी के दिनों में कमीज़ का व्यवहार कितना हानिकारक है इसे भारत वर्ष के अधिकांश लोग नहीं समझते। यूरोप ठंडा प्रदेश है। कमीज़ वहीं का उपयुक्त वस्त्र हो सकता है। पर भारत जैसे गर्म देशवासियों के वास्ते कभी ठीक नहीं हो सकता। यदि शरीर का पसीना किसी तरह पुनः शरीर के भीतर चला जाय तो वह एक विषैले हवा की भांति हानिकारक साबित होता है यह डाक्टरों का कहना है। कमीज़ में छाती और पीठ पर चुनाव होता है, यदि गर्मी के दिनों में छाती का पसीना पुनः छाती में पहुंचाया जाय तो वर्ष भर की आयु वाला मनुष्य तो महीने के

बाद ही समाप्त हो जाय यह भी एक विज्ञानी का कथन है। यदि हाथों का कफ़ कड़ा हो या धुलने पर कड़ा हो जाय तो शरीर की मुख्य नाड़ियों पर जोर पड़ता है। गले की कड़ाई गले की नसों को दबाती है।

बनियान—यह तो महा भयानक और बिलकुल व्यर्थ वस्त्र है। शरीर के प्रत्येक रूप में इस वस्त्र की आवश्यकता या तो वृद्धावस्था के योग्य समझी जा सकती है। या रुग्णावस्था में अगर आरोग्य मनुष्य इसे पहिना करे तो वह साल में कम से कम दो मर्तबा अवश्य बीमार पड़ने लगे। इस वस्त्र के द्वारा कई प्रकार के प्रमेह रोग हो जाते हैं।

वेस्टकोट—यह भी कड़ा और अनावश्यक वस्त्र है। हृदय को दबाना ही इस कपड़े का काम है। सर्दी के दिनों में हृदय को सर्दी से बचाने के लिये इस कपड़े की उत्पत्ति की गई है भारतवर्ष में गर्मी के दिनों में इस कपड़े का पहिनना (चाहे वह कितना ही हलका क्यों न हो) हानिकारक है।

कोट—गर्मीमें इस कपड़ेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है। सभ्यों की सभा में या बड़े आदमियों की मुलाकात में गर्मी के दिनों में एक ढीला कुरता ही पहिन कर जाना चाहिये। इस स्थान पर हमारी सभ्यता स्वाभाविक अवस्था से बेतरह घबड़ा उठती है।

कालर—बूढ़ों और बीमारों को और खास कर गले की बीमारी वालों के लिये इसकी उपज एक डाक्टर द्वारा हुई है। दिखावट के कारण इसे भी आवश्यक वस्त्रों में शामिल कर लोग व्यर्थ हानि उठाया करते हैं। गले का पसीना महाविष तुल्य है।

इसके सिवाय यह सारे वस्त्र एक साथ पहिरना किसी तरह ठीक नहीं। सर्दी के दिनों में ही प्रातःकाल सारा सूट पहिना जा सकता है। और यदि शाम को सर्दी अधिक हो तो शाम को भी सारा सूट सह्य हो सकता है। पर गरमी के दिनों में पहिरने वाले बतलावें कि वे कितनी बार अनिच्छापूर्वक सूट को धारण करते हैं? इससे प्रथम मानसिक और शारीरिक हानि पहुंचा करती है क्योंकि पहिनते समय पहिले घृणा, अनिच्छा और अप्रियता उत्पन्न होती है और दूसरे पसीना, अनावश्यक गर्मी और नसों की रुकावट शारीरिक हानि के कारण बनते हैं।

यद्यपि देश, काल और शारीरिक अवस्था के अनुसार वस्त्रों की व्यवस्था व्यक्ति जाति के अनुसार हुआ करती है।

तो भी जिस वस्त्र से स्वयं प्रेम न हो उसे अस्वाभाविक वस्त्र समझना चाहिये।

समय के वर्तमान प्रवाह ने एक ऐसा विचार भी पैदा कर दिया है, राजनैतिक उलट-फेर के साथ ही इस सभ्यता में भी कुछ उलट फेर होगा। होना ही चाहिये सभी दृष्टियों से यह सभ्यता दूषित है।

पशु-पक्षियों को कभी किसी वस्त्र की आवश्यकता नहीं पड़ती? ये भी इस संसार के वासी हैं और हम भी। हम लोगों में विवेक होता है, और विवेक के द्वारा सामाजिक नियम की उत्पत्ति होती है। यह नियम एक प्रकार से स्वाभाविक कहा जा सकता है, इस कारण बिलकुल नंगे रहने की आवश्यकता नहीं। कपड़ों का व्यवहार मनुष्य के लिए पशु-पक्षियों की योनि की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। यह बात साधारण है। इस कारण समय के जिस भाग में जिस द्वारा जिस कपड़े की आवश्यकता मालूम हो, उसे उसी समय स्वाभाविक वस्त्र समझकर धारण करना चाहिये।

सन्ध्या

(लेखक—चौधरी कन्हैयालाल जी मास्टर)

[१]

सूर्य-अस्त का समय देख कर, हृदयानन्द उमड़ आता ;
रवि-मण्डल का घेरा देखो ! कैसा यह बढ़ता जाता।
कैसा अरुण और यह सुन्दर, मानो अग्नी का गोला ;
किन्तु, इसे देख कर शीतल, हो जाता सब का चोला॥

[२]

मन्द सुगन्ध पवन बह बह कर, पुष्प-कली विकसाती है ;
पल्लव और लताओं को भी, हिला हिला हरषाती है।
देखो ! देखो !! और सभी का, हृदय शान्त शीतल करती ;
मिटा थकावट दिन की सारी, मन को हरा भरा रखती॥

[३]

सुन्दर प्रभा प्रभाकर की यह, कैसी अद्भुत छाई है ;
कैसा मनहर दृश्य अनोखा, प्रकृति-छटा-प्रकटाई है।
करके रवि ने दिवस-यात्रा, रजनी यहाँ बुला ली है ;
यह सम्मेलन दिवस-रात्रि का, कैसा शोभा-शाली है॥

[४]

मार्तण्ड अब लुप्त हुआ है, चौपाये बन से लौटे ;
उद्यानों-खेतों में देखो, खेल रहे बालक छोटे।
इस अवसर में पक्षी गण भी, मार्ग बसेरा का लेते ;
नभ-मण्डल में उड़ उड़ कर वे, शिक्षा हमको यह देते :—

[५]

'धन्धे का अध्याय पूर्ण कर, अब उद्यानों में आओ ;
मिटा थकावट दिन भर की सब, शान्त चित्त तुम होजाओ।
सन्धा समय श्रेष्ठ पा करके, सामायिक में चित्त धरो;
धर्म ध्यान उर धारण करके, अपना शुभ कल्याण करो॥"

समैया सभा।

हर्ष की बात है कि जैन जाति यत्र तत्र अपनी २ सभायें करके उन्नति के साधनों की खोज तथा संयोजना करने के लिये अग्रसर होने लगी है। अथवा यों कहिये कि अब हानि सहते २ कुछ चेत हुआ है या समय की परिस्थिति ने उन्हें ऐसा करने के लिये लाचार किया है। जो हो लक्षण अच्छे हैं। किंतु उन्नति का मार्ग और उन्नति चाहने वालों का हृदय अत्यन्त विशाल होना चाहिये। यद्यपि अभी जैन समाज और उसमें भी बुन्देलखंडीय दि० जैन जातियों (परवार, गोलापूरब, गोलालारे, समैया परवार आदि) को उन्नति के मैदान में आने का यह सबेरा ही है। तथापि "पूत के लक्षण पालने में ही दिखने लगते हैं" इस युक्ति के अनुसार जब विचार करते हैं, तो न तो कुछ उन्नति की आशा ही होती है और न यह परितोष ही होता है कि भविष्य में भी अवनति का द्वार बंद रहेगा। उद्यम करना कर्तव्य है और होनी, होनी पर निर्भर है, ऐसा सोचकर ही अपने पागल मन को समझा लिया जाता है।

सब से पहिले परवार सभा ने ही इन (बुंदेलखंड तथा मध्य) प्रांतों में श्री रामटेक अतिशयक्षेत्र पर जन्म लिया इस लिये सब से ज्येष्ठा है, इस के पश्चात् श्री रेसिंदीगिर जी पर गोलापूर्व और पवाजी पर गोलालारीय सभावों का जन्मोत्सव मनाया गया। इनको स्वप्न में हाथी पर चढ़े देख कर इस साल बैशाख सुदी में हरदुवा के रथोत्सव पर विनैकया भाइयों ने भी झट से अपनी एक सभा कर डाली। अब रह गये चौसके और समैया परवार तथा पल्लीवार (गूजर) भाई सो वे अपने सगे किन्तु न्यारे (बिछुड़े हुए) परवार भाइयों तथा पार्श्ववर्ती गोलापूर्व व गोलालारे जातियों की ओर बड़ी इच्छुकता और आशा से टकटकी लगाकर क्रमशः देखने लगीं और कान लगाकर ध्यानपूर्वक उस परितोष-कारक शब्द के सुनने को उत्सुक हो बैठीं, कि उक्त महानदियां हमको अपने पेट में लेकर समुद्र तक पहुंचा देंगीं, इस प्रकार सच्चे तरण तारण की उपाधि से भूषित हो जांयगीं।

परंतु जब पांच छः वर्ष इसी प्रकार आशा में ही बीत गई और उक्त तीनों बहिनों ने एकसी ही चाल पकड़कर न तो अपनी जातियों का ही संगठन किया, और न अपने तथा अपने पार्श्ववती बिछुड़ी हुई जातियों के संरक्षण का ही कुछ उपाय किया, तब वे भी क्षोभित हो उठीं और येनकेन प्रकारेण अपनी रक्षा का साधन खोजने लगीं।

अभी हमारे भाई चौसके परवार तो गंभीरता धारण किये बैठे हैं। परंतु समैया भाई अधिक समय न ठहर सके और उन्होंने अपनी रक्षा भविष्य में कैसे रहे? इसी प्रश्न पर विचार करने के लिये ता: ११, १२, १३ जुलाई को अपनी सभा कर डाली। इस समय प्राय: ३०, ३५ ग्रामों के १५० से कुछ कम बढ़ प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। शुभोदय से इस समय श्रीमान पंडित गणेशप्रशाद वर्णी, मैं (दीपचन्द वर्णी) स० सि० पन्नालाल जी अमरावती, सि० कन्छेदीलाल जी वकील, मा. छोटेलाल जी प्रकाशक परवार बन्धु भी वहां पधारे थे। दो तीन दिन विषय निर्धारिणी सभावों की बैठकें हुईं। और उनमें अनेक प्रस्तावों के साथ २ मुख्य प्रस्ताव जाति संरक्षण व उत्थान पर ही विशेष वादाविवाद होता रहा। बहुमत परवार समाज में मिलजाने की ओर दिखाई देता था, कुछ लोग चरणागरे आदि अन्य पांच

तारन संघों में और कुछ दोसकों में मिल जाने को कहते थे।

परवार समाज में मिल जाने का बहुमत ठीक ही था क्योंकि ये लोग उन्हीं में से संवत् १५७२. में तारन स्वामी के उपदेश से निकले थे। इसलिये जल और कुल के मिलने में आश्चर्य ही क्या? क्योंकि इन के (परवारों तथा समैयों) मूर गौत्र एक ही हैं, दोनों शुद्ध जातियां हैं, बहुत से व्यवहार समान ही हैं। परंतु यदि अन्तर है तो केवल धार्मिक बातों का, अर्थात् समैया भाई दिग० जैन प्रतिमा को नहीं पूजते, वे केवल १४ शास्त्र (तारणस्वामी कृत) पर श्रद्धान रखकर पठन पाठन सब इन्हीं प्रचलित दिगम्बर जैनाचार्यों कृत ग्रन्थों ही का करते हैं। कारण कि तारणस्वामी कृत जो माला जी, बाणी जी आदि १४ शास्त्र हैं, उनकी न तो कोई क्रम बद्ध सार्थक भाषा है और न उन का कुछ अर्थ ही प्रतीत होता है। वे तो श्रद्धान मात्र को हैं अथवा पाँड़ों के द्वारा जो कुछ असम्बद्ध व असंभव कथन सुना दिया जाता है वही गुरु वाणी समझा जाता है। ये पाँड़े पढ़े लिखे कम हैं, शुद्ध बांचने तक का बोध नहीं है, न वे स्वयं समझते, न समझा सके हैं। अस्तु,

समैयों में यदि कोई भारी अंतर है तो वही प्रतिमा पूजन करने न करने का। इसलिये अब परवारों में मिलने का प्रश्न यहां ही अटक गया, कुछ समय पहिले ललितपुर के रथों में समैया भाइयोंने परवार सभामें एक निवेदन पत्र बहुतसे भाइयोंका हस्ताक्षर करा के दिया था जिसमें, उन्हों ने मूर्ति पूजन करना, तीर्थ जाना, प्रसाद न खाना व चढ़ाना, और वर्तमान चैत्यालयों को सरस्वती भवन के स्वरूप में मानना स्वीकार किया था। जब परवार सभा से ठीक १२ शर्तों वाला उत्तर मिला तो वे चुप बैठ रहे। अब इस समय पुनः विचार हुआ कि परवार सभा की शर्तों में उक्त दो ही बातें मुख्य हैं; अतएव पुनः एक बार परवार सभा से मिलने का प्रयत्न किया जाय, इस पर बहुमत भी हुए। परंतु कुछ मत पत्रोजनों (जिनकी संख्या ५-७ ही है और उनमें भी विशेष कर पांड़े लोग (जिनकी आजीविका समैया समाज के चैत्यालयों से चलती है) और चैत्यालयों के प्रबन्धक कोषाध्यक्ष आदि महाशय थे) के कारण हाल में यह बात स्थगित कर दीगई, कुछ ऐसे ही लोगों का मत ५ संघों में मिलने था। वे कहते थे जाति भ्रष्ट होना, पर धर्म (मत) भ्रष्ट न होना,

जो हो आगामी अधिवेशन में इसका निबटेरा ही समझिये। हमारी समझ से तो बात यह है कि ऐसे विषयों में न तो कभी सर्व सम्मति हुई और न हो ही सकी है। अतएव समैया भाइयों को हम यह उचित सम्मति देते हैं कि वे मूर्ति पूजादि शर्तों को जो परवार भाई चाहते हैं स्वीकार करते हुये जिनका जहाँ सम्बन्ध बने वहां अपने पुत्रपुत्रियों का सम्बन्ध परवार भाइयों के यहां करने लगें। और उनमें अनन्यभाव से मिल जावें। तथा परवार भाइयों को भी चाहिये कि वे अपने बिछड़े हुए भाइयों को आशंका रहित भाव से उनके मूर्ति पूजादि स्वीकार करने पर सम्मिलित कर लेवें जैसा कि हमारे गोलालारे भाइयों ने अपने तारनपंथी गोलालारे भाइयों को अपने अनुरूप कर लिया है। इस प्रकार दोनों भाइयों के अभेद भाव से समैया भाइयों को भी विस्तीर्ण क्षेत्र मिल जावेगा, और परवार भाई अपने २००० समैया भाइयों का स्थितिकरण करके यश व पुण्य के भागी होकर भी अपनी जातीय संख्या में २००० जन संख्या की वृद्धि करेंगे।

इस प्रकार इनके मिलने पर चौसके भाइयों के लिये तो कुछ कहना भी नहीं है। क्योंकि वहां तो मूर्ति पूजादि का भी भेद नहीं है। अब रही सांकें सो ये परवार अठसकों में भी बहुत लोग चार ही सांकों में सम्बन्ध कर रहे हैं। अतएव ये तो एक हैं ही। इस प्रकार तीनों के मिलने से परवार जाति का कुछ क्षेत्र बढ़ जायगा और अपने आसन्न मृत्यु जातियों की रक्षा का श्रेय भी मिलेगा, आम के आम गुठली के दाम। वास्तव में दोनों हाथ लड्डू रहेंगे। ऐसा समझकर अब न तो समैया भाइयों को संकोच करना चाहिये और न परवार समाज को इन्हें छोड़ना चाहिये।

अब रही पल्लीवाल जाति, जिसके ४० घर माडरवाड़े में रहे हैं और शुद्ध जाति है, उसे गोलालारे भाई अपना लेवें। क्योंकि ये दोनों जातियां भिंड भदावर स्थानों की हैं। जब कि जैनाचार्य परस्पर विवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य) का सम्बन्ध होना तथा स्पर्श शूद्रादि की कन्या उच्चवर्ण वालों को ग्रहण करने में कोई विरोध नहीं बताते हैं-सवर्ण में केवल स्वगोत्र टालकर सम्बन्ध करने की आज्ञा देते हैं। तब समझ में नहीं आता कि सवर्ण और सधर्मीजनों को परस्पर भोजन तथा बेटी व्यवहार करने में क्यों संकोच होता है? संभव है इसका कारण शास्त्र ज्ञान शून्यता हो। यही सोचकर हमारे दूर-दर्शी समैया भाइयों ने एक विद्यालय इुशंगाबाद में खोलना निश्चित कर लिया है जिसके लिये लगभग पचास हजार रुपयों के लागत की जायदाद चैत्यालयों से देना स्वीकार कर लिया है, जिसकी मासिक आय ३००) रु० के लगभग होगी, यह कार्य इन्होंने सराहणीय किया है प्रभु इनके बालकों को सद्बोध और इनको सुमति देवे तथा अपने उत्थान व कल्याण के मार्ग में लगावे। —दीपचन्द वर्णी।

स्थितिकरण।

(लेखक--श्रीमान न्या. का. पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी)

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते॥

यह कलिकाल धर्मरक्षक श्री समन्त--भद्राचार्य का वाक्य है कि, जो दर्शन अथवा चारित्र से विचलित हो गये हों उनको धर्म वत्सल मनस्वी पुरुषों द्वारा फिर से उसी में स्थिर कर देना स्थितिकरण अंग है।

यहां पर दर्शन और चारित्र करणानुयोग की अपेक्षा से ग्रहण नहीं किया गया है। क्योंकि इस अनुयोग की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त में एकादश गुणस्थान से प्रथम और प्रथम गुण स्थान से चतुर्दश गुणस्थान तक हो सकते हैं। परिणामों की निर्मलता अनन्त महिमा युक्त है। उसी के बल से यह जीव नित्यनिगोद से निर्गत होकर मनुष्य पर्याय की प्राप्तिकर तद्भव परम सुखास्पद मोक्ष पा सका है।

चरणानुयोग मुख्यतः वाह्य आचरण की अपेक्षा करता है। अतएव उक्त श्लोक का यही आशय है कि जो जीव चरणानुयोग के दर्शन और चारित्र से कारण पाकर भ्रष्ट हो गये हों उनको उसी पद में स्थापन करना धर्मवत्सलों का कर्त्तव्य है। जो इस गुण का पालन नहीं करते वे निर्दोष सम्यक्दर्शन के पात्र नहीं हो सके।

इस लेख से मेरा आशय समैया और परवार भाइयों से है जो हमारे सरल हृदय समैया भाई विक्रम सम्वत् १५०० के लगभग श्री तारणतरण गुरु के उपदेश से दिगम्बर आम्नाय के अनुकूल मूर्तिपूजा, के निषेधक हो गये हैं। यद्यपि यह समाज दिगम्बर सम्प्रदाय

ग्रन्थों का स्वाध्याय करती है और आज तक उन्हीं के अनुकूल अपना आचरण बनाने में भी यथाशक्ति चेष्टा कर रही है परन्तु फिर भी इसके आभ्यन्तर-हृदय में तारणतरण गुरु द्वारा रचे गये चतुर्दश ग्रन्थों का अवक्तव्य श्रद्धान है।

किन्तु अब यह परवार जाति का एक अंग लौकिक अड़चनों के कारण फिर से अंट्ठी-परवार भाइयों में मिलने की चेष्टा कर रहा है। और साथ २ यह भी प्रतिज्ञा करता है कि "हम पूर्ववत् मूर्ति पूजन करेंगे, आप हमें अपनाइये।" यद्यपि इनमें अब भी ऐसे सरल हृदय पुरुष रत्न मिलेंगे कि जो कहते हैं कि "चाहे हम निःशेष क्यों न हो जावें किन्तु गुरु उपदेश की अवहेलना कर दस से मस का पाठ न पढ़ेंगे"। तथापि इनमें बहु भाग अब अपनी सरलदशा में की हुई भूल को समझने लगा है तथा इस बात को प्रकाश में भी लाने लगा है कि "व्यवहार पथ में शास्त्र की तरह मूर्ति की भी आवश्यकता है"।

मैं यह कल्पित कथा नहीं लिख रहा हूँ। किन्तु जो होशंगाबाद में ता. ११, १२, १३ जुलाई को समस्त समैयों के प्रमुख पुरुषों का सम्मेलन हुआ था उसमें इस व्यक्ति को भी समैया समाज ने निमंत्रित कर सम्मेलन अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त कराया था। इतने समय में उनके सहवास से जो अनुभव प्राप्त हुआ है वह इस प्रकार हैं:—

"यह समाज अज्ञानता से पूर्ण है इसी कारण वह तीन दिन के सम्मेलन में अपने भविष्य कल्याण का पथ न खोज सकी। हां, अधिकांश समैया परवारों की, मूर्तिपूजन तथा परवारों में मिलजाने की दृढ़तम धारणा थी। कुछ ऐसे भी दुराग्रही थे कि जो चरणागरे आदि पञ्च संघों में मिलजाना श्रेयस्कर समझते हैं।" अस्तु

इस समय इनकी नौका मझधार में है। कोई खेवटिया नहीं है। परवार समाज को इस समय उचित है कि इनको जिस प्रकार हो सके अपने में मिलाकर इनके दर्शन और चारित्र की शुद्धि करें।

यह जाति लाखों रुपये समय के अनुकूल धार्मिक कृत्यों में व्यय करती है। किन्तु जिससे जाति और धर्म की रक्षा है उसमें अपना नाम तक नहीं लिखाना चाहती है। दर्शन आदि से विचलित समैया भाइयों की प्रत्यवस्थापना न करना यह उन से कम न्यूनता नहीं है और यदि समाज उनके मिलाने की चेष्टा न करेगी तो कुछ काल में इसकी भी वही दशा होगी जो आज समैया परवारों की है।

"केवल तात्विक चर्चा से ही कल्याण पद प्राप्त नहीं होता जबतक कि वह यथायोग्य प्रवृत्ति में न लाई जावे"।

इस समय समैया भाई प्रयाग सङ्गम में जमुनावत् मिलकर परवार गंगा की बृहद्धारा करना चाहते हैं। अतः यह अवसर हाथ से न जाने देना चाहिये। अन्यथा आपत्ति काल में इसका सुचारु परिणाम न होगा।

इसी प्रकार समैया परवारों के प्रति भी हमारा नम्र निवेदन है कि वे इस उन्नति के समय में अपनी सरल हटको त्यागकर अवक्तव्य वाणी के मोह-पाश से मुक्त होने की चेष्टा करें। तथा अपने परिवार में मिलकर सत्य मार्ग के अनुयायी होवें।

विज्ञापन कला द्वारा व्यापार वृद्धि

हम लोग यह मान बैठे हैं कि विज्ञापन बाज़ी में रुपये खर्च करना व्यर्थ है। पहले तो भारतवर्ष में कला कौशल का नाम ही रह गया है, जहाँ देखिये वहीं विदेशी माल से भरी हुई दुकानें नज़र आती हैं, दूसरे जो इने गिने धन्धे हमारे हाथ में रह गये हैं उनको किस प्रकार जीवित रखना यह जानते भी नहीं हैं—और न जानने का प्रयत्न ही करते हैं। हम अपनी आखों से नित्य प्रति देखते हैं कि प्रायः सिगरेट, साबुन और तरह २ के सामान बेचने वाले विदेशी व्यवसायी विज्ञापन की भरमार कर हमारे घरों को अपने माल से भरते जाते हैं और हम अपने माल का विज्ञापन देना तो दूर रहा, ठीक हालत में, बाजार तक पहुंचाने की कोशिश भी नहीं करते हैं।

इग्लैन्ड, अमेरिका इत्यादि देशोंमें विज्ञापन बाज़ी में जितना रुपया खर्च किया जाता है इसका विचार करने पर मालूम पड़ेगा कि वे इसे व्यापार के लिये कितना आवश्यक समझते हैं। अमेरिका मे प्रतिवर्ष करीब ७० करोड़ डालर अर्थात् २ अरब २५ करोड़ रुपये विज्ञापन के लिये खर्च किये जाते हैं! इंग्लैन्ड के कुछ पत्रों की ग्राहक संख्या २५ और ३० लाख तक है, जिनके एक बार के पूरे पृष्ठ के विज्ञापन का रेट बीस हजार रुपया तक है! स्त्रियों के लिये निकलने वाले एक अमेरिकन पत्र के पूरे पृष्ठ के विज्ञापन का रेट १५ हजार रुपया है।

अमेरिका के कई व्यापारी अपने मूलधन का तृतीयांश तक विज्ञापन में खर्च कर डालते हैं और प्रति माह १ लाख रुपया विज्ञापनबाजी में खर्च करने वालों के तो सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं।

मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि हम लोग भी इतने रुपये विज्ञापनबाजी में खर्च करने लग जाँय परन्तु केवल इतना ही है कि विज्ञापन से होने वाले लाभ को हम लोग उपेक्षा की दृष्टिसे न देखें।

अभी भारतवर्ष में अधिकतर लोग यह भी नहीं जानते कि विज्ञापन क्या चीज़ है! और उससे व्यापार वृद्धि कैसे हो सकी है। अच्छे २ दूकानदार जिनके यहाँ लाखों का कारबार होता है और जो इस कला के उपयोगसे करोड़ों तक काम बढ़ा सके हैं, कभी इस बात के समझने का कष्ट तक नहीं उठाते।

परन्तु यह बात नही है कि विज्ञापन कला कोई आजकलका नया आविष्कार हो। जब से सृष्टि में वाणिज्य व्यवसाय का प्रारम्भ हुआ तभीसे इस कलाका प्रादुर्भाव हुआ है। विज्ञापन के माने हैं—ज़ाहिरी करना। हम में से कोई भी जब दुकान खोलने का इरादा करता है तब दुकान के वास्ते उपयुक्त स्थान खोजने के लिये वह कितना परिश्रम करता है। इसका क्या कारण है? वह क्यों नहीं गांव या शहर की कोई तंग गली के भीतर दुकान खोल कर बैठ जाता है! क्योंकि वह जानता है कि ग्राहकों को वहां पहुंच नहीं है। वह अपनी दूकान और माल की ज़ाहिरी वहां से नहीं कर सक्ता है। कुछ व्यापारी ऐसे हैं जो अपनी दूकानों को खूब सजाकर ग्राहकों को आकर्षित करते और उनके साथ खूब शिष्ट व्यवहार करते हैं। वे जानते हैं कि ऐसा करने से उनके माल की अधिक ज़ाहिरी होगी और ज्यादा बिकेगा। ये सभी विज्ञापन—कला के अंग हैं। परन्तु अब इतने ही से काम न चलेगा। इस कला में जो लोगों को नये २ तजरुबे हुये हैं-जो नये २ अविष्कार हुये हैं उनको जानना

और उनको व्यवहार में लाने का जोरदार प्रयत्न करना पड़ेगा।

खेद का विषय है कि अब तक हिन्दी-साहित्य में इस विषय पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थों का अभावसा है, जब कि इसी विषय पर अंग्रेजी भाषा में प्रचुर साहित्य है और सैकड़ों विद्वानों के लिखे हुये एक से एक बढ़ कर ग्रन्थ मौजूद हैं। हम इन्हीं पुस्तकों की सहायता से इस लेख में विज्ञापनकला सम्बन्धी तत्त्वों की विवेचना करने का प्रयत्न करेंगे और यदि हमारे इस तुच्छ प्रयास से किसी को कुछ लाभ हुआ तो हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे।

विज्ञापन से होने वाले लाभ।

व्यापारी माल की अधिक खप कर सका है इसके अतिरिक्त विज्ञापन से होने वाले लाभ अनेक हैं। विज्ञापन माल-निर्माता और खरीद्-दार को एक दूसरे से मिला देता है। बीच के दलाल, कमीशन एजेन्ट इत्यादि का टंटा ही दूर हो जाता है। नये २ आविष्कारों को उत्तेजना देता है। यदि विज्ञापन देकर लोगों को नये आविष्कारों की जानकारी न कराई जावे तो इनका निकलना ही बन्द हो जावे। विज्ञापन माल की दर सस्ती कर देता है, क्योंकि जितनी ज्यादा खप होगी, उतना ही सस्ता पड़ता व्यापारी को उसके तैय्यार करने में पड़ेगा और उतनी ही कम नफा लेकर अधिक माल बेंच सकेगा।

विज्ञापन से फायदा न होने का कारण।

किसी भी समाचार पत्र को उठा कर देख लीजिये, उसके विज्ञापन ऐसी २ असंभव बातों से भरे हुये मिलेंगे कि आप को उनपर जरा भी विश्वास न होगा। "मुर्दा जिन्दा हो गया" अथवा "बुड्ढा जवान हो गया" ऐसी कपोल कल्पित बातों से विज्ञापन को भरकर लाभ की आशा करना वृथा है। कई लोग "अपने माल को मुफ्त लुटा देंगे" इत्यादि ऊटपटांग बातों से अपने विज्ञापनों को सजाकर जनता को धोके में डालकर अपना काम बनाना चाहते हैं। और आश्चर्य की बात है कि भोली जनता इनकी दमपट्टियों में आजाती है। परन्तु यह बात निश्चित है कि ऐसे विज्ञापन दाताओं पर से लोगों का विश्वास उठ जाता है और अन्त में उन्हें सिवाय हानिके लाभ नहीं होता है। इसी प्रकार कई लोग विज्ञापन देते ही यह सोचने लगते हैं कि अब आर्डरों की भरमार होने लगेगी। उनका ऐसा ख्याल करना भूल है। कुछ बार विज्ञापन देकर कोई लाभ नहीं उठा सका है। कई लोग जिनका माल बहुत अच्छा होता है या तो विज्ञापन नहीं देते हैं और यदि देते हैं तो गलत तौर से, जिससे उन्हें लाभ नहीं होता है।

यदि व्यापारी विज्ञापन देकर लाभ उठाना चाहता है तो उसे पहले इस विषय को भलीभांति समझ लेने की कोशिश करना चाहिये। कि जिस माल का विज्ञापन देना हो उसकी खूबियों को भली भाँति समझ ले। यदि किसी प्रतिद्वन्दी का सामना आ पड़े तो उसका साहस और धैर्य के साथ सामना करने की क्षमता भी उसमें होनी चाहिये। छपाई कैसे होती है? भिन्न २ प्रकारके टाइपोंका किस २ प्रकार व्यवहार होता है? चित्र कैसे बनाये जाते हैं और कैसे छापे जाते है? इत्यादि बातें तो अवश्यही जानना चाहिये। इसके अतिरिक्त ग्राहकों के स्वभाव

उनकी रुचि और देश में निकलने वाले पत्रों का भी उसे पूरा ज्ञान होना चाहिये। किस पत्र की क्या नीति है? उसकी ग्राहक संख्या कितनी है? उसके ग्राहक किस श्रेणी के लोग हैं—इत्यादि बातों के जाने बिना विज्ञापन देकर सिवाय नुकसानी के कोई फायदा नहीं उठा सका है।

मजमून (प्रति)

विज्ञापन का दारमदार उसके मजमून के ऊपर अवलम्बित है इसलिये मजमून लिखते समय खूब सतर्कता और बुद्धि से काम लेना चाहिये। नीचे लिखी बातों का पूरा पूरा ध्यान रखना आवश्यक है:—

१. अवधान (Attention)
२. समाधान (Suggestion)
३. स्मृति (Memory)
४ मानव इच्छा (Human-instinct)

अब हम प्रत्येक विषयों पर अलग २ विचार करेंगे।

अवधान—यह बात प्रत्यक्ष है कि यदि मजमून में और सब बातें ठीक हों परन्तु ध्यान आकर्षित करने की शक्ति न हो तो ऐसे विज्ञापन से कोई लाभ नहीं हो सकता है। अतएव मजमून बनाने समय यह विचार लेना चाहिये कि उसमें दर्शक के चित्त को आकर्षित करने की पूरी सामग्री मौजूद है या नहीं।

अच्छे २ विज्ञापन इस बात के अभाव से बिगड़ जाते हैं और विज्ञापन दाताओं के सैकड़ों रुपये बरबाद जाते हैं। आजकल प्रत्येक को इतना अवकाश कहां कि वह पत्र लेकर उसकी एक २ बात को खूब ध्यान से पढ़े। इसलिये चतुर विज्ञापनदाता अपना मजमून इस ढंग से लिखता है कि जिससे पढ़ने वालों का ध्यान उस ओर खिच जाता है।

विज्ञापन में चित्र देने से वह चित्ताकर्षक हो जाता है। चित्र देते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि चित्र का विज्ञापित वस्तु से क्या सम्बन्ध है। माधुरी में निकलने वाले 'गंगा-पुस्तक-माला' वालों ने अपनी पुस्तकों के विज्ञापन में एक जगह छैला-गुंडे का चित्र दिया है। इस प्रकार बेढंगे चित्र द्वारा ग्राहक का चित्त आकर्षित करने से कोई लाभ नहीं होगा। ऐसे विज्ञापन के साथ जो चित्र दिया जाता है उसमें यदि एक शिक्षित युवक चारों ओर पुस्तकों से सुसज्जित कमरे में पुस्तक पढ़ते हुये दिखलाया जाता तो कहीं अच्छा होता। 'डोंगरे के बालामृत' का वह विज्ञापन जिसमें एक स्त्री अपने हाथ में तराजू लिये कुछ कमजोर बच्चे एक ओर, और बालामृत सेवन कराया गया बच्चा दूसरी ओर तुलता हुआ दर्शाया गया है, चित्र चुनाव का बढ़िया नमूना है।

रंगीन विज्ञापन भी खूब चित्ताकर्षक होते हैं। रंगों के व्यवहार करते समय निम्न लिखित बातों पर भी ध्यान रखना चाहिये।

लाल, पीला और हरा प्रधान रंग समझे जाते हैं यदि ये काले या सफेद रंगों के साथ व्यवहार में लाये जांय तो बहुत ही भले मालूम पड़ते हैं।

—अपूर्ण। —अमृतलाल जैन।

विविध विषय

१ पंचों की भूल।

बारासिवनी के एक महाशय ने लिखा है कि "यहां के पंचों ने एक परवार भाई को परस्त्री गमन के अपराध में प्रायः १ वर्ष से जाति और देव दर्शन से बहिष्कृत कर दिया है। कई बार पंचायतें की गईं किन्तु कुछ फल न हुआ। अन्त में ता: २६-६-२४ को पंचों ने फैसला दिया कि १५) जुर्माना, रामटेक यात्रा, विधान कराना और समाज को भोज देना। पहिले दो कार्य तो उसने कर डाले किन्तु विधान के लिये जब मन्दिर में जाने लगा तो एक महाशय ने ताला लगा दिया और कहा कि मन्दिर पंचों का नहीं मेरा है, मैं हीं न जाने दूंगा। उसके यहां भोजन के लिये भी कोई नहीं आया इस कारण सब सामग्री व्यर्थ गई।"

यदि इस समाचार में कुछ भी सत्य का अँश है तो कहना होगा कि पंचों ने बडी भूल की है। फिसले को धक्का देने से कुछ लाभ नहीं। जिस प्रकार पंचों ने प्रायश्चित देकर उसे मिलाने का फैसला दिया था उसी प्रकार उस का साथ देना चाहिये था। किन्तु फैसला देकर उसका पालन उसे स्वयं न करने देना बड़ा अन्याय है। हम आशा करते हैं कि वहां के पंच बुद्धिमानी से काम लेंगे। अन्यथा समाज का जीवित रहना कठिन होगा। यदि ऐसी बातों पर पंचायत ने उपेक्षा की तो यह प्रश्न समाज में काफी आन्दोलन उत्पन्न करेगा। हां, यदि यह समाचार असत्य हो तो वहां के पंच वास्तविक बात लिखने की कृपा करें।

२ पपोरा पाठशालाके प्रति महाराजा सा० टीकमगढ़ का न्याय।

"परवार-बन्धु" के पांचवें अंक में हमने पपोरा पाठशाला" की अकाल मृत्यु पर" एक नोट लिखा था, पाठशाला का असमय में इस प्रकार द्रव्याभाव से बन्द हो जाना जैन समाज के लिये एक दुःख की बात थी और विशेष करके उस दशा में जब कि उस के स्थाई कोष का रुप्या जो कि टीकमगढ़ के पंचों ने इकट्ठा किया था किन्तु किसी कारण से वह रुप्या श्रीमान महाराजा टीकमगढ़ के खजाने में रक्खा था और अधिकारियों द्वारा मांगा जाने पर भी प्राप्त नहीं होता था। और उसके न मिलने से पपोरा पाठशाला सदा के लिये बुंदेलखण्ड के मध्य स्थान से बन्द हुई जाती थी। अब हमें यह जान कर परम प्रसन्नता हुई कि महाराजा सा० टीकमगढ़ ने अपनी गोल्डिन जुबली के अवसर पर यह सब रुप्या पाठशाला को देने की आज्ञा प्रदान करदी है।

फिर भी हम महाराजा सा० से सानुनय प्रार्थना करेंगे कि वे अपने राज्य में स्थापित एक धार्मिक शिक्षण देने वाली संस्था को सदैव स्थिर बनाये रखने के लिये राज्य कोष से भी सहायता प्रदान करके अपनी कीर्ति उज्वल और हम लोगों को आभारी करेंगे।

३ समैया सभा की कार्यवाही।

इसी अंक में प्रकाशित दो लेखों में समैया सभा की कार्यवाही पर प्रकाश डाला गया है। प्रकाश डालने वाले दोनों सभाओं के शुभचिन्तक—निष्पक्ष तथा, त्यागी श्रीमान पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी और श्रीमान पं० दीपचन्द जी वर्णी हैं। अतएव किसी भी व्यक्ति को उनकी निष्पक्ष लिखी हुई कार्यवाही पर सन्देह नहीं हो सका है। यहां पर मैं केवल उन महाशयों का जो केवल परवार समाज को दोषी समझकर समैया भाइयों का दम भरने वाले हैं, ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। मैं भी ऐसे ही व्यक्तियों में था परन्तु मेरा विचार होशंगाबाद में हुई समैया सभा की कार्यवाही

को प्रयत्न देख कर इकदम पलट गया। जिस बात को मैं सरल और स्वच्छ हृदय से निकली हुई समझता था वह उतनी ही गुथी हुई तथा कपटपूर्ण दिखलाई पड़ी।

३ दिन होने वाली बैठकों में से हम लोगों को केवल एक बैठक में शामिल होने का मौका मिला था। वह भी जैन धर्म की उन्नति चाहने वाले समैया समाज के सच्चे शुभचिन्तक, ऐसे अवसर पर मानापमान का ध्यान न रखने वाले श्रीमान पं० गणेशप्रसादजी वर्णी की स्वयं प्रेरणा से। बैठक क्या थी, अपने स्वार्थके कारण समाज को रसातल में पहुँचाने वाले कुछ श्रीमानों का अपने मन के मुताबिक नकेल पकड़कर घुमाने का तमाशा था-बहुमत का अनादर और अपने मत की जबरदस्ती थी, आँख के रोग में कमर पर पट्टी लगाई जाने का दृश्य था।

हम ही नहीं किन्तु बहुतेरे समाजिक कठिनाइयों से दुःखी समैया भाइयों का भी ख्याल था कि इस बैठकमें जो रुपया और समय खर्च किया जा रहा है उससे समैया समाज की अड़चनों के हल करने का विचार किया जावेगा ललतपुर में परवार सभा के अधिवेशन पर समैया समाज के हस्ताक्षरों की एक दरख्वास्त पर परवार सभा ने जबलपुर में कुछ शर्तें रक्खी थीं, उन शर्तों का समैया समाज की ओर से कुछ उत्तर नहीं दिया गया था अब उनका उत्तर दिया जावेगा? ऐसी हम को आशा थी। परन्तु उसकी उपेक्षा की गई।

ये बात मैं मानता हूं कि शर्तें कड़ी थी परन्तु उसका यह आशय नहीं है कि शर्तें कड़ी होने से उनकी इकदम उपेक्षा की जावे। इस समय समैया समाज में अत्यन्त कमजोरी पैदा हो गई है। किन्तु वह कमजोरी परवार समाज के साथ सम्बन्ध करने में दूर हो सकी है। और जब इस तरह मार्ग विस्तृत होता है तो जिनको हृदय से परवारों का सम्बन्ध करना इष्ट है उन्हें कोई भी शर्तें कठिन नहीं मालूम पड़ सकी हैं। किन्तु दोनों बाजुओं पर खेलने वाले व्यक्तियों को सरल से सरल नियम में भी शंका, उद्विग्नता और चिन्ता हो सकी है। कोई भी सामाजिक दशा से जानकार विद्वान उन शर्तों को आत्म गौरव की घात पहुंचाने वाली कहकर, उस की ओट में इस प्रकार से ठुकराने के लिये तैयार न होगा।

फिर भी समय है। कार्तिक सुदी १२, १३ को बांदा में होने वाली आगामी बैठक में आप लोग इस पर विचार करें। और जिन शर्तों को आप अनुचित समझते हों उनको पृथक करके नई शर्तों के साथ-किन्तु स्वच्छ और निष्कपट हृदय से-अपने बिछड़े हुए कुटुम्ब में आने का विचार करें। हम लोग खुले हृदय से आप का साथ देने के लिये तैयार हैं।

श्रीमान पूज्यवर पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी के शब्दों में हमारा भी परवार समाज से सानुनय निवेदन है कि "वे इनको जैसे बने वैसे अपने में मिलाकर इनके दर्शन और चारित्र की शुद्धि करें।"

निम्नलिखित आशय के प्रस्ताव समैया सभा होशंगाबाद में पास हुए हैं।

(१) बिना कारण किसी भाई को पंचायत से पृथक न किया जावे। प्रत्येक का न्याय तुरन्त होना चाहिये। पंच कूटे की ओर ध्यान देवें।

(२) सगाई वगैरह बिना कुंडली मिलाये की जावे।

(३) हर जगह चैत्यालय की आमदनी व खर्च का हिसाब जांचने को कमेटी नियुक्त की जावे। और उसे उचित अधिकार दिया जावे।

(४) हुकमचंद हुशंगाबाद वालों को

चैत्यालय के चौकमें से दर्शन करने की इजाजत दी गई ।

(५) समाज की ओर से एक उपदेशक धर्मोपदेश और अनाथालय को चंदा करने के लिये नियुक्त किया जावे ।

(६) समाजोन्नति के लिये एक तारनपंथ दि० जैन समैया महाविद्यालय ५० हजार के फंड से खोला जावे। जिसका खर्चा ३००) मासिक हो।

(७) इसका नैमित्तिक अधिवेशन भी होना चाहिये।

(८) जिन्होंने असेठी, चरणागरों में विवाह किया है उनका सम्बन्ध हमारे समान ही रहेगा। बरात में साथ जाने वालों को आयन्दा दण्ड दिया जावे।

(९) जो भाई बहुत दिनों से बिनेकावार पड़े थे उनको मन्दिर से बाहिर दर्शन करने की इजाजत दी गई।

(१०) परवार-समैया सम्मेलन का प्रस्ताव ४ माह को स्थगत किया जावे।

४ लुहरीसेन दि० जैन सभा की कार्यवाही।

मिती वैशाख वदी ४, १५ को स्थान हरदुवा—रथोत्सव में लुहरीसेन (विनैकयों) की सभा का संगठन हो गया है। यह जाति प्रायः बुंदेलखण्ड के अतिरिक्त अन्य स्थान में नहीं है। और होगी भी कैसे क्योंकि इसकी उत्पत्ति भी तो बुंदेलखण्ड की परवार, गोलापूर्व गोलालारी आदि जातियों के मेल से ही हुई है। और दिन प्रति बेचारे नवयुवक वैवाहिक बन्धनों के कष्ट से लाचार होकर इस जाति का सहारा ले रहे हैं। इस जाति में कई घराने ऐसे भी हैं कि जो कई पीढ़ियों पहिले किये हुए कुटुम्बी जनों के दोष का स्वयं प्रायश्चित ले रहे हैं।

ये कहीं २ मन्दिरमें दर्शन करनेसे भी विमुख किये जाते हैं। इसलिये कई स्थानोंमें तो इन्होंने अपने आप दर्शन पूजनका प्रबन्ध कर लिया है। किन्तु जहां इनके स्वयं मन्दिर नहीं है वहां पर ये लोग दिगम्बर जैनियों का मन्दिर रहते हुए भी धर्म कार्य से वंचित रक्खे जाते हैं। मैं समझता हूं कि परवार सभा तथा अन्य सभाओं को भी इस विषय पर विचार करके एकमत होकर अपना निर्णय देना अत्यन्त आवश्यक है।

× × × ×

टड़ा, रमपुरा में होने वाले आगामी अधिवेशन में यह सभा शिक्षा के प्रश्न पर अवश्य विचार करेगी। हरदुवा अधिवेशन में निम्न आशय के प्रस्ताव पास हुए थे।

१—विवाह आदि शुभ अवसरों पर सभा को दान दिया जावे।

२—सभासदों की वार्षिक फीस १) साल होगी।

३—जहां मंदिरों में पूजन वगैरह का प्रबंध न हो वहां सभा प्रबंध करे। तथा हर वर्ष भादों सुदी १५ को हिसाब लिखकर मंत्री के पास भेजें।

४—विवाह आदि में आतिशबाजी बिलकुल बंद की जावे।

५—वेश्या नृत्य भी बन्द किया जावे।

६—विवाह आदि में अश्लील गान बंद हों।

७—बाल विवाह बन्द करने को पंच लोग पूर्ण प्रयत्न करें।

८—वृद्ध विवाह ४० वर्ष से ऊपर न किया जावे।

९—बिना कारण सगाई न छोड़ी जाय इस ओर पंचों को पूरा ध्यान देना चाहिये।

इसके सभापति श्री० चौधरी नन्हूलाल जी टड़ा। मंत्री-श्री० कपूरचंद जी, केवलारी। उपमंत्री—श्री बाबू गुलझारीलाल जी मलैया-खुरई हैं।

—निर्भीक हृदय।

विनोद लीला ।

—समैया सभा की बैठक होशंगाबाद में आखिर सानन्द ही समाप्त हो गई। तीन दिन खूब लड्डुओं पर हाथ साफ किये गये। बहुसंख्यक समैया भाइयों ने परवार समाज में मिलने के लिये उछल कूद तो मचाई थी। परंतु शाबास है श्री जवाहरलाल जी समैया सागर वालों को कि जिन्होंने अपने सभापतित्व में खूब मनमानी घर जानी की। मेरी समझ में तो आपने परवारों से मिलने का प्रस्ताव रोककर अच्छा ही किया क्योंकि ऐसा न करने से आप के पास रक्खी हुई सागर चैत्यालय की हजारों की जायदाद हाय! अनाथ हो जाती!

× × × × ×

—समैया भाइयों के कुछ मुखियों ने छिपे २ सुधारक समैया भाइयों को समझाने के लिये दो तीन बैठकें तो कर डाली थीं। परन्तु धन्य है पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी को जो 'मान न मान मैं तेरा महमान' की कहावत चरितार्थ करते हुए एक बैठक में जा ही धमके और साथमें आगत सभी सज्जनोंको भी लेगये। परंतु वहां जा कर मिला क्या? आखिर हाथ रगड़ते अपना सा मुँह लेकर बीच ही में सभी को आना पड़ा। श्री जवाहरलाल जी सभापति समैया सभा की यही चतुराई तो कमाल करने वाली थी।

× × × × ×

—लुहरीसेन सभा का संगठन भी हरदुवा रथोत्सव के समय सानन्द समाप्त हो गया है। परवार गोलापूर्व, गोलालारी, समैया आदि सभाएं जो अब तक कुछ नहीं कर सकीं उसे लुहरीसेन-सभा-थोड़े ही समय में करके दिखावेगी भाई, अभी तक सम्हल जाइये सभी सभाओं के कार्यकर्त्ता! अन्यथा एक ही पूर में स्वाहा हो जावेगा !!

× × × × ×

—वर और कन्या पक्ष का जबलपुर पंचायत के प्रति प्रार्थी होने पर पंचायत ने कई कारणों से विवाह की आज्ञा दी थी। अतः स० सि० भोलानाथ जी के सुपुत्र का विवाह प्रायः २२ हजार रुपया लगाकर हुआ और हुआ उसमें रंडियोंका नाच, किन्तु बताई गई मिश्र की लेडियां.—

× × × × ×

—इस जातीय नियम विरुद्ध नाच को देख कर जबलपुर की परवार नवयुवक मंडली भड़की इस लिये उसने उसका फैसला करने की पंचायत में दरख्वास्त दी, पंचों ने सिंगई मौजीलाल जी को दोषी करार कर उनका ११) दण्ड किया। ठीक है, सिंगई मौजीलाल जी भी सोचते होंगे कि जहां नाच में १७५) के करीब खर्च हुए वहां ११) और सही-झगड़ा समाप्त।

× × × × —

—परवार सभा ने मन्दिरों का हिसाब प्रकट करने वाला प्रस्ताव पास करके बेचारे कोई २ मन्दिर के धन की रक्षा करने वालों का दिवाला खोलने की तजवीज की है। इस से उन को जान सांसत में पड़ रही है। जिस पर अब परवार सभा उपदेशक रख कर जगह २ इसकी मांग करके घबड़ाहट पैदा करना चाहती है भाई दूसरों के जी को दुखाना पाप है अतः इस पाप से बचाने के लिये परवार सभा को शीघ्र यह प्रस्ताव वापिस ले लेना चाहिये। ठीक है न, मन्दिर के धन रक्षक महाशय?

———

पूछताछ ।

सूचना—प्रतिमास "परवार-बन्धु" में पाठकों के प्रश्नों का उत्तर, विद्वानों की सम्मति, विशेष विचार और खोज के साथ दिया जावेगा। फिरभी प्रश्नोत्तरों का उत्तरदायित्व हम नहीं ले सकते। हां, उचित उत्तर देने का प्रयत्न किया जावेगा। प्रश्नकर्त्ताओं के नाम और पते गुप्त रक्खे जाते हैं। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस से लाभ उठावें [पूछताछ सम्बन्धीपत्र इस पते पर भेजे जावें पता:—'परवार-बन्धु' पूछताछ वि० जबलपुर]

१—कानपुर के महाशय—आप की पहेली अस्पष्ट और छन्दोभंग है। कृपया उसे सुबोध और स्पष्ट लिखिये। क्या आप गोरखधंधा के नियमानुसार पुरुष्कार देंगे?

२—.....एक सज्जन—यदि परवार सभा के कोषाध्यक्ष महाशय बिना मंत्री और सभापति की आज्ञा के अनधिकार व्यय करते हैं तो यह परवार सभा की नियमावली नं. ३१ के अनुसार नियम विरुद्ध है। मैं समझता हूं कि कोषाध्यक्ष महाशय परवार सभा के शुभचिन्तक समझदार तथा नियमों के जानकार हैं। इस लिये ऐसा नहीं होना होगा। किन्तु यदि आप के पास इसका प्रबल प्रमाण है तो पहिले वे स्वयं इस खर्च के उत्तरदाता हैं। दूसरे आप सभा के सभापति श्रीमान् सेठ पन्नालाल जी टड़ैया ललतपुर और मंत्री बाबू कस्तूरचन्द जी वकील जबलपुर को लिखिये। यदि इतने पर भी ये नियम विरुद्ध कार्यवाही होती रहे तो फिर आप परवार सभा की प्रबंधकारिणी कमेटी में निर्भयता से इस प्रश्न को प्रस्ताव रूप में रखिये।

३—......सज्जन:—सिंघई भोलानाथ जी के चिरंजीव जबलपुर वालों की शादी परवार सभा के नियम विरुद्ध होनेके कारण पहिले बाबू कस्तूरचन्द जी वकील मंत्री परवार सभा के उद्योग से बन्द हो गई थी। परन्तु फिर वर पक्ष के उद्योग से दूसरी मिती में होने वाली थी, इस कारण मंत्री परवार सभा ने प्रबन्धकारिणी कमेटी की बैठक में इस को रखना उचित समझा था किन्तु जब स्थानीय पंचायत ने कई अनिवार्य कारणों के उपस्थित होने पर शादी की स्वीकारता देदी तो फिर मंत्री महोदय ने प्रबन्धकारिणी कमेटी की बैठक करना स्थगत करदी। बैठक स्थगत करने का कारण यही है।

४—एक महाशय—आप कांच पर कलई चढ़ाने की तरकीब पूछते हैं वह इस प्रकार है:—

अ—नाइट्रेट आफसिलवर	१७५ ग्रेन
स्वच्छ पानी	१० औंस
ब—नाइट्रेट आफ एमोनियम	२६२ ग्रेन
स्वच्छ पानी	१० औंस
स—असली काष्टिक पुटास	१ औंस
स्वच्छ पानी	१० औंस
द—शुद्ध मिश्री	½ औंस
पानी	५ औंस

मिश्री और पानी को मिलाकर उस में ५० ग्रेन टार्ट्रिक एसिड मिलाकर १० मिनट आग पर तपाओ। ठंडा होने पर एक औंस अलकोहल मिलाकर इतना पानी मिलाओ जिसमें सब मिलकर १० औंस हो जावे।

नोट—पहिले अ ब स द सब को अलग २ कांच या चीनी के बर्तन में तैयार कर लो। इसके बाद अ और ब को बराबर २ भागों में मिलाओ इसीप्रकार स और द को मिलाओफिर इनदोनों मिले हुए हिस्सों को बराबर २ लेकर एक बनालो।

पश्चात उस मसाले पर कांच को औंधा रक्खो और उसी प्रकार ४ या ५ घंटे रक्खा रहने दो। [illegible] कांच को पकड़ लेगा। फिर मसाला सुखाकर उस पर सेंधुर चढ़ा दो। बस आयना तैयार हो जावगा।
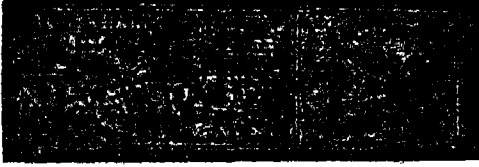
जल और थल की गाड़ी ।

इंगलेण्ड में स्कारबरो नामक एक नगर समुद्रके किनारे है। वहां मेण्डकके आकार की एक गाड़ी जमीन पर चलती है। परन्तु ज्योंही जल के समीप पहुंचती है तो उसमें घस जाती है। उसको चलती हुई देखकर स्टीमर और उसमें कुछ भेद नहीं दिखाई देता है। जमीन पर चलने के समय उसका लीवर पहिये के साथ काम करता है परन्तु जल में घुसते ही पानी काटने वाले डैने के साथ उसका सम्बन्ध हो जाता है।

संसार में सब से बड़ी घड़ी

अभी तक संसार की सब से बड़ी घड़ी को किसी ने नहीं देखा है। जिस शहर के एक बड़े मकान में वह बन रही है उसके आकार का इसी से पता लगाया जा सक्ता है कि उस का एक कांटा बीस फुट ८ इंच लम्बा है और इसे उठाने के लिये सहस्र मनुष्यों की आवश्यका होती है।

घर बैठे समाचार लिखना

एक सज्जन ने पेन्सिल में रेडियो का सेट लगाकर कमाल कर दिया है जो दैनिक या साप्ताहिक समाचार पत्रों में काम करते हैं पाश्चात्य देशों में उनके पास एक पेन्सिल ऐसी अवश्य रहती है। इस की सहायता से वे १० से २० मील भीतर के सभी समाचार पा [illegible]करते हैं। यदि कहीं व्याख्यान आदि होता हो तो वहां सभा भवन में रिपोर्टरों के जाने की आवश्यका नहीं वे घर बैठे नोट ले सकते हैं। रेडियो द्वारा उन्हें आसपास के सभी समाचार मिलते रहते हैं रेडियो युक्त पेन्सिल कमसे कम अखबार वालों के बड़े काम की चीज है।

चन्द्रलोक की यात्रा।

अब वैज्ञानिक विश्वास करने लगे हैं कि चन्द्रमा में भी वायुमण्डल और इतर श्रेणी के जीव रहते हैं। प्रो० पिकरिङ्ग ने बहुत से फोटो लेकर यह प्रमाणित किया है कि चन्द्रमा की खाड़ियों में बहुत से छोटे २ पोधे जमते हैं। वहां वायुमण्डल का रहना अवश्य है इसलिये यदि मनुष्य कभी चंद्रमा तक पहुंच सका तो वहां कुछदेर तक बचा रहना उसके लिये असम्भव नहीं है।

हरमोवर्थ नामक वैज्ञानिक एक ऐसा वायुयान बना रहे हैं जो बिना मनुष्यों के वह चन्द्रमा तक पहुंच सकेगा। और उस में ऐसी बारूद भरी रहेगी कि चन्द्रमा से टकराकर इक दम भभक उठेगी उसी समय यहां पर उसकी फोटो ली जावेगी।

पक्षीनुमा हवाई जहाज ।

अमेरिका में अभी २ एक हवाई जहाज तैयार हुआ है उसकी लम्बाई ६८० फीट और व्यास ७८ फीट है। चालक ईंधन तथा अन्यान्य सामग्रियों के साथ उसका वजन प्रायः ६३० मन होजाता है। उसके बनाने में ४५ लाख रुपया खर्च हुए हैं उसका आकार पक्षी से मिलता जुलता है। वह शीघ्र उत्तर ध्रुव की यात्रा को निकलने वाला है।

दो मनुष्यों की साईकिल ।

जर्मनी में इसका आविष्कार हुआ है—इस पर पास २ दो आदमी बैठकर दोनों चलाते हैं इस कारण इसकी चाल भी बहुत तेज होती है और मेहनत भी अधिक नहीं पड़ती है।
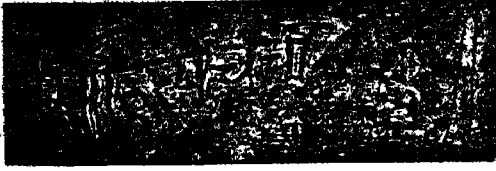
प्रवचनसार टीका।

सम्पादक-ब्र० शीतलप्रसाद जी। प्रकाशक-मूलचन्द्र किसनदास कापडिया। आकार मझोला पृष्ठ संख्या पौने चार सौ। मूल्य १॥)

जैनाचार्यों में भगवान कुन्दकुन्द का नाम सब से पहिले लिया जाता है। ये विक्रम की पहिली शताब्दी के हैं। इनके ग्रन्थ प्राकृत में अध्यात्म विषय के हैं। उन में से प्रवचन सार भी एक ग्रन्थ है। इसके उपर दो टीकाएँ हैं। एक श्री अमृतचन्द्राचार्य कृत दूसरी जय सेनाचार्य कृत। पहिली का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होगया है। यह दूसरी का हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद अच्छा और सरल हुआ है। गाथाओं के नीचे सामान्य अर्थ दिया है इसके नीचे अन्वय सहित विशेष अर्थ फिर भावार्थ है, इस लिये विषय खूब पिस गया है अनुवाद खूब बढ़ाकर किया गया है। ग्रन्थान्तरों से भी लाकर बहुत सा विषय मिला दिया है। यों तो पुस्तक सभी के काम की है किन्तु जो लोग संस्कृत नहीं जानते और अध्यात्म शास्त्र का ज्ञान करना चाहते हैं। उनको अवश्य देखना चाहिये। यह प्रथम खंड है द्वितीय खंड भी प्रकाशित होगा। इसके अन्त में भाषाकार का परिचय, छन्दो भङ्ग पूर्ण दोहों में दिया गया है।

गौओं का पालन और उससे लाभ।

लेखक-पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री। प्रकाशक-मंत्री गो वध निवारक सभा सागर। (म० प्र०) और मूल्य दो पैसा

यह पुस्तक किसानों के लिये लिखी गई है, और अच्छी लिखी गई है। वास्तव में यह पुस्तक ग्रामों में बाँटने लायक है यदि शिक्षित समाज ऐसी पुस्तकें किसानों को पढ़ पढ़ कर सुनाने लगे तो इससे बड़ा लाभ हो सकता है। धनवानों को ऐसी पुस्तकें खरीद कर अवश्य बाँटना चाहिये।

मनोरमा।

सम्पादक—महावीरप्रसाद मालवीय "वीर" गिरजादत्त शुक्ल "गिरीश" बी. ए.। प्रकाशक—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग। वार्षिक मूल्य ५)

हमारे साम्हने वर्ष १ की संख्या दूसरी है। इसमें मुखपृष्ठ पर एक तथा भीतर भी २ तिरंगे चित्र हैं। सादे चित्र १३, १४ हैं। सभी चित्र प्रायः भाव पूर्ण और मनोरमा के नामानुकूल चित्ताकर्षक हैं। इतिहास, उपन्यास, यात्रा, विज्ञान, गल्प, जीवनचरित्र आदि विविध विषयों पर गम्भीर तथा मौलिक लेख लिखे गये हैं। सारगर्भित कविताओं से यह अंक सुसज्जित है। पृष्ठ संख्या ९६ कागज तथा छपाई सफाई सभी उत्तम है।

हिन्दी साहित्य का गौरव बढ़ाने वाली सरस्वती और माधुरी के जोड़ की इस मासिक पत्रिका की हम दिनों दिन उन्नति के इच्छुक हैं। हिन्दी प्रेमियों को इस के ग्राहक होना चाहिये।

गोरखधंधा—पुरुष्कार ।

[नोट—" परवार-बन्धु " के प्रेमी पाठकों की प्रतिस्पर्धा के लिये हमने प्रत्येक अंक में गोरखधंधा, पहेली और मिश्र २ विषयों पर " रजत पदक " या नगद रुपया तथा कुछ अन्य साहित्य देने का प्रबंध किया है। प्रशंसनीय विद्वानों की सम्मति से पारितोषक की सूचना परवार-बन्धु के आगामी अंकों में निकलती रहेगी]

[इस सम्बन्धी पत्र व्यवहार का पता—" परवार बन्धु " कार्यालय-गोरखधन्धा विभाग, जबलपुर] (म० प्र०)

गत माह के पुरुष्कार की सूचना

रजत पदक या नकद् पांच रुपया

श्रीयुत पं० सूर्यभानु जी त्रिपाठी, विशारद को ।

नाम महाशय	—	पुरुष्कार पुस्तक ।
१ श्री पं० लोकमणि जी,	गोटेगांव	—स्वाधीन बनो
२ ,, गैंदाबाई,	जबलपुर	—अंजनादेवी
३ ,, सतीषचन्द्र जी गुप्त—	कलकत्ता,	—मायावी.
४ ,, परमलाल जी	गोटेगांव	—उद्भ्रान्तप्रेम
५ ,, गुलाबचन्द्र जी,	अमरावती	—राजयत्ना.
६ ,, बाबू पन्नालाल जी,	सिवनी	—चितरंजनदास
७ ,, प्रेमचंद जी मा० सा,	सिलहरी	—स्वाधीन बनो
८ ,, मुन्नालाल जी,	गढ़ाकोटा	—भारतीय जैल
९ ,, पं० मुन्नालाल जी,	भोपाल	—जागृति विजय
१० ,, बालचन्द्र जी जैन	खुरई	—लाल लाजपतराय
११ ,, दशरथलाल जी,	सिवनी	—अकाली सत्याग्रह
१२ ,, हरिश्चन्द्र जी जैन,	बीनाइटावा	—स्वाधीन बनो

नाम महाशय		पुरुष्कार पुस्तक ।
१३ श्री सि० कन्हैयालाल जी,	पथरिया	—अंजना देवी
१४ ,, कुंजीलाल जैन,	पथरिया	—असहयोग क्यों करें
१५ ,, सत्यरंजनराव जी,	जबलपुर	—गांधी सिद्धांत
१६ ,, लक्ष्मीचंद जैन को आ.	नागपुर	—मनुष्य के अधिकार
१७ ,, सुमचन्द्र जी जैन,	जबलपुर	—गांधी सिद्धांत
१८ ,, मा० बालकृष्ण जी मार्तंड,	सिवनी	—मनुष्य के अ०
१९ ,, पं० हजारीलाल जी जैन,	सागर	—जागृति विजय
२० ,, पं० राजधर जी,	ललितपुर	—अरविंदघोष
२१ ,, किशोरीलाल जैन	सि० चं०	—गांधी गुण दर्पण
२२ ,, लक्ष्मीचन्द जैन	सि० चं०	—अंजनादेवी
२३ ,, परमानंद जैन	सि० चं०	—मायावी
२४ ,, मंगलप्रसाद जैन	सि० चं०	—मनुष्य के अधिकार

२५ सिखरचंद जैन सि० चं०—मायावी

नोट—१ कई महाशयों की रचनाएं नियत तिथि के पश्चात आईं थीं इस कारण जांच में शामिल नहीं हो सकीं।

२ एक आना का पोस्टेज स्टाम्प आनेपर उपहार की पुस्तकें रवाना की जावेंगी। अतः उपर्युक्त महाशय शीघ्र पोस्टेज भेजकर पुस्तकें मंगा लेवें।

आगामी के लिये पुरुष्कार की सूचना—

प्रथम को रजत पदक या पांच रुपया नकद्

और दो को २) रुपया मूल्य की पुस्तकें पुरुष्कार में दी जावेंगी जो ता: २४ अगस्त तक

भगवान महावीर

इन शब्दों के प्रत्येक अक्षर से शुरु करते हुए एक २ शब्द बनाकर क्रमानुसार मिलते हुए सुन्दर वाक्य बनाकर भेजेंगे। उदाहरण गत अंक के अनुसार ही रहेगा।

नोट—वाक्य बनाते समय शब्दों के बीच में अपने मन से विभक्ति या क्रिया न मिलाई जावे।

समाचार संग्रह

—ता: २७-६-२४ को देहली में लाला देवीसहाय जी फ़ीरोज़पुर, बाबू चम्पतराय जी बेरिस्टर, और बाबू अजितप्रसाद जी वकील को मान पत्र दिया गया है। सम्मेदशिखर जी के मामले में आप लोगों ने बड़ी भारी सेवा की है।

—"स्वाधीन" लिखता है कि झांसी के सेठ राजमल्ल जी व मुन्तज़िम मन्दिर सिंगई हजारीलाल जी क्या बोले:—"कोई भी व्यक्ति जो चाहे जितना रुप्या आज मंदिर को कबूल दे यानी देना कह दे फिर वह न दे उसकी तबियत की बात, उस पर पंचों का कोई दावा नहीं" धन्य है मंदिर के मुन्तज़िम जी।

—जैन सिद्धांत प्रेस के मुद्रक श्रीलाल जैन और २ कम्पोज़ीटरों पर "विमलनाथ पुराण का हिन्दीअनुवाद जो कि जिनवाणी प्रचारक कार्यालय हनुमान प्रेस में छपवा रहे थे। उसको चुराकर स्वयं छपने का अभियोग चीफप्रेसी-डेंसी कलकत्ता की अदालत में चल रहा है। (दैनिक भारत मित्र) धर्म की ओट में पाप करनेवालों की न करें सो थोड़ा है।

—श्रीमान लाला देवीसहाय जी फीरोजपुर नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर चाहते हैं। धर्मप्रेमी महाशयों को इस का उत्तर प्रयत्न करके भेजना चाहिये।

(१) पूजन प्रक्षाल कहां २ नहीं होती?
(२) पूजन कहां नहीं होती (प्रक्षाल ही होता है?)
(३) प्रक्षाल पूजन न होने का कारण क्या है?
(४) जहां पर जीर्ण मन्दिर जी हैं उनकी संख्या?
(५) कम से कम कितनी लागत में ठीक हो सकते हैं?
(६) जहां पर श्रीपूज्य प्रतिमाओं का अविनय हो रहा है उसका पूरा २ पता?
(७) इस गांव के निकट ऐसा कौनसा शहर है जहां पर विराजमान करने से विनय हो सकती है?

—समैया सभा की दूसरी बैठक बांदा में मिती कार्तिक सुदी ११,१२,१३ को सेठ पन्नालाल जी मिर्ज़ापुर वालों के सभापतित्व में होना निश्चय हुआ है।

—मिती बैसाख बदी १३,१४ को हरदुआ रथोत्सव के समय लुहरीसेन सभा भी स्थापित हो गई है। गत वर्ष ललतपुर में इसकी एक बैठक हो चुकी थी।

—"परवार बन्धु" के इस अंक के साथ बाबू पन्नालाल जी सिवनी वालों तथा श्राविका श्रम बम्बई का विज्ञापन वितरण किया गया है।

—श्री दिगम्बर जैन शिक्षा मन्दिर का वार्षिकोत्सव कुंवार बदी में होगा सभापति के निश्चय को स्वीकारता आने पर ठीक २ तारीख प्रकाशित की जावेगी!

—परवार बन्धु के गत ५ वें अंक में गोला पूर्व जैन की समालोचना में प्रकाशक शिवप्रसाद मलैया की जगह शोभाराम छप गया है तथा मास्टर पूरनचंद जी श्रीयुत कन्हैलालजी के पुत्र हैं। पाठक गण कृपया इस प्रकार सुधार लें।

आवश्यक्ता।

हमें शिखरचंद जैन पाठशाला सिवनी के लिये १५ ऐसे अनपेड छात्रों की आवश्यका है जो हिन्दी मिडिल पास हों और पाठशाला में रह कर संस्कृत तथा धार्मिक शिक्षा प्राप्त करें उनके रहने और भोजनादि का प्रबंध संस्था से किया जावेगा। आने वाले छात्रों को शीघ्र ही प्रार्थना पत्र निम्न पते पर भेजना चाहिये।

निवेदक—
चैनसुख छावड़ा—मंत्री
श्री शिखरचंद जैन पाठशाला—सिवनी, सी. पी.

विवाह सम्बन्ध होजाने की सूचना "परवार-बन्धु" कार्यालय, जबलपुर को अवश्य दीजियेगा।

वर के अठसका।

(१)

१—सोला, गोहिल्लगोत्र।

२—देदा
३—रकिया
४—खोना
५—घना
६—ईडरी
७—डेरिया
८—बैशाखिया

जन्मसम्वत्:—
मार्गशीर्ष २ सं० १९६५
पताः—
स.सि.पं.बाबूलाल वैद्य भूषण
नं. ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता।

(२)

१—देदा, वासल्लगोत्र।

२—सर्व छोला
३—बैशाखिया
४—ईडरी
५—रकिया
६—उजरा
७—बहुरिया
८—मस्ते

पताः—
कन्छेदीलाल फदालीलाल
कटरा बाजार
सागर।

नोटः—उक्त घर, गोत्र के २०, २३, २५, ३२, वर्ष के क्रमशः ४ वर हैं और वे सब दुकान तथा नौकरी करते हैं।

(३)

१—उजरा, वाछल्लगोत्र।

२—छोवर
३—डडिया
४—बीबीकुहम
५—बैशाखिया
६—देदा
७—भारू
८—सेतनागर

जन्म सम्वत्:—
चैत बदी ३ सं० १९५७
पताः—
सिंघई गोकललाल
पुरानी बस्ती
कटनी।

(४)

१—बहुरिया, कोछल्लगोत्र।

२—घिया
३—सदा
४—गाहे
५—बैशाखिया
६—दिवाकर
७—डेरिया
८—नांद

जन्म सम्वत्:—
असाड सुदी ६ सं० १९६४
पताः—
पूरनचन्द गेंदालाल
मु० खापडी
पो० सिवनी।

नोट—लड़का बहुत योग्य लिखा पढ़ा-शिक्षित और कुटुम्ब सहित है।

कन्या के अठसका।

(१)

१—लाल्हू, वाकल्लगोत्र।

२—मिड्लिा
३—गाहे
४—भारू
५—रावत(ईडरी)
६—कुही
७—देदा
८—छोवर

जन्मः—
माह कृष्ण १ सं०६९
पताः—
बाबू पन्नालाल जैन
गांधी चौक
सिवनी।

नोट—कन्या सुशिक्षित है—इंदौर की परीक्षायें पास हैं।

(२)

१—बहुरिया, कोछल्लगोत्र।

२—घिया
३—सदा
४—गाहे
५—बैशाखिया
६—दिवाकर
७—डेरिया
८—नांद

पताः—
वही जो वर नं० ४ का है।

नोट—कन्या लिखी पढ़ी है—शिक्षित कुटुम्ब सहित है।

Reg. No. N 315

आश्विन, वीर निर्वाण सं० २४५०.

[वर्ष २] सितम्बर, सन् १९२४ [अंक ९]

श्री भा. दि. जैन परवार सभा का मुख पत्र—

वार्षिक मूल्य ३)]

परवार-बन्धु

[एक प्रतिका ।=)

श्री सत्तर्क सुधा तरङ्गिणी जैन पाठशाला सागर

सम्पादक
पं० दरबारीलाल साहित्यरत्न न्यायतीर्थ।

प्रकाशक
मास्टर छोटेलाल जैन।

संरक्षक

१– श्रीमान श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी सिवनी
२—श्रीमान सिंगई पन्नालाल जी अमरावती.
३—श्रीमान बाबू कन्हैयालाल जी अमरावती.
४—श्रीमान ठाकुरदास टालचंद जी अमरावती.
५—श्रीमान स.सि नत्थूमल जी साव जबलपुर.
६– श्रीमान बाबू कस्तूरचंदजी वकील जबलपुर.
७—श्रीमान सिंगई कुंवरसेन जी सिवनी
८—श्रीमान स सि. चौधरी दीपचंदजी सिवनी.
९—श्रीमान फतेचंद हीपचंद जी नागपूर
१०—श्रीमान सिंगई कोमलचंद जी कामठी.
११—श्रीमान गोपाललाल जी आर्वी
१२—श्रीमान पं० रामचन्द्रजी आर्वी.
१३—श्रीमान खेमचंद जी आर्वी.
१४—श्रीमान सरउलाल झब्बूलाल जी. निवरा
१५—श्रीमान कन्हैयालाल जी डोंगरगढ़.
१६—श्रीमान सोनेलाल जी नवापारा
१७—श्रीमान दुलीचंद जी चौरई छिंदवाड़ा
१८—श्रीमान मिट्ठनलाल जी छपारा.

सहायक

१– श्रीमान रामलाल जी साव सिवनी २५)
२—स० सि० लक्ष्मीचंद जी गढ़ाना २५)

ग्राहकों को सूचना।

"परवार-बन्धु" दो बार अच्छी तरह जांच कर यहां से भेजा जाता है। जिन ग्राहकों को किसी मास का अंक आगामी मास की १५ ताः तक न मिले उन्हें पहिले अपने डाकघर से पूछना चाहिये। यदि पता न लगे, तो डाकघर का उत्तर हमारे पास भेज कर हमें सूचित करना चाहिये। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जावेगा। ग्राहकों को, पत्र व्यवहार के समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। जो कि पते की चिट पर लिखा रहता।

परवार-बन्धु का प्रथम और द्वितीय अंक स्टाकमें बिलकुल नहीं है। अतः पाठक गण मँगानेका कष्ट न करें। फाइल न बनाने वाले यदि पहला और दूसरा अंक हमें भेज सकें तो बड़ी कृपा होगी उनकी इच्छानुसार उसका मूल्य उन्हें दे दिया जावेगा।

विज्ञापन दाताओंके पत्रोंका उत्तर।

हमारे पास कई विज्ञापन दाताओंके पत्र आये हैं—उनमें उन्होंने ग्राहक संख्या और रेट के सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर मांगा है। अतएव हमारा उनसे केवल इतना निवेदन है कि यह पत्र किसी एकका नहीं किन्तु समाज का है—इसकी कोई भी बात गुप्त और संशयात्मक नही रक्खी जाती है। इसके ग्राहकों की संख्या थोड़ेही समय में सभी जैन पत्रों से अधिक होगई है। वह भी छिपा के नहीं रक्खी जाती—किंतु शुरू से ही प्रत्येक अंक में नाम सहित प्रकाशित की जा रही है। और पृथक भी रिपोर्ट में छपाई जावेगी। जिससे हमारी बातों का पता लग सकता है। सभा, विद्वानों, तीर्थस्थानों, व्यापारियों, पंचायतों, आदि की सेवा में भेजा जाता है। उदारदाताओं और संरक्षकों की सहायता से असमर्थों को मुफ्त में भी भेजा जाता है। जिससे एक २ अंक सैकड़ों लोगों की दृष्टि में पहुंच जाता है।

छपाई का रेट लागत मात्र नीचे दिया गया है उसमें कुछ भी कमी नहीं होसकेगी—केवल एक वर्ष के विज्ञापन की छपाई पेशगी देने वालों को ≈) रुपया कम कर दिया जावेगा। पीछे आये हुए विज्ञापन आगामी अंक मे छापे जावेंगे।

इस समय विज्ञापन की दर.—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	८)	प्रति	मास
आधा पृष्ठ या १ "	" ५)		"
चौथाई,, या आधा कालम	" ३)		"
अष्टमांस पृष्ठ या चौथाई,,	" २)		"
कवरके चौथे पृष्ठ की	" १२)		"
" तीसरे "	" १०)		"
पाठ्य विषय के पहिले और पीछे की छपाई	९)		"

नोट:—(१) पूरी छपाई पेशगी ली जावेगी।
(२) एक कालम से कम विज्ञापन छपाने वाले को "बन्धु" बिना मूल्य नहीं भेजा जावेगा।
(३) नमूने की प्रति का मूल्य पांच आने।

पता:—
मास्टर छोटेलाल जैन
परवार-बन्धु कार्यालय, जबलपुर (सी. पी.)

विषय-सूची।

परवार-बन्धु पर सम्मतियां और सहायता

१-श्रीमती प्यारीबाई (धर्मपत्नी स्व० सेठ परमसावजी)-बालाघाट

'परवार-बन्धु' अंक ८ में प्रकाशित जड़ाऊ कर्णफूल नामक कहानी को शिक्षाप्रद ज्ञातकर आगामी ऐसी ही उपयोगी बातों के प्रचारार्थ १५) सहर्ष बन्धु को सहायतार्थ भेजे हैं।

२-श्रीमान पन्नालाल मोतीलाल जी-बेहाड़ (नागपुर)

अंक ८ में प्रकाशित जड़ाऊ कर्णफूल को पढ़ कर सभी लोगों ने प्रशंसा की है। अतः ५) उपहार दशलाक्षणी पर्व के उपलक्ष्य में 'परवार-बन्धु' को प्रेषित करता हूं। हमेशा इसी प्रकार की गल्पें प्रकाशित होती रहने से बहुत लाभ की सम्भावना है। १०) घाटापूर्ति में दूंगा।

३—श्रीमान चौधरी दौलतरामजी, उपमंत्री बा० दि० जैन प्रान्तिक सभा-खनियाधाना

जड़ाऊ करनफूल गल्प अति उत्तम है। यदि प्रत्येक अंक में ऐसी गल्प निकला करे तो समाज को अत्यन्त लाभ पहुंचे। स्त्री समाज को तो जो लाभ पहुंचेगा—मैं उसे अपनी लेखनी से लिखने को असमर्थ हूं। अतः प्रत्येक अंक में उक्त गल्प की भांति गल्पें रहना आधुनिक समय के लिये अत्यन्त उपयोगी होंगी। हमारे यहां वह गल्प पंचायत में भी पढ़ी गई जो बहुत रुचिकर हुई। अतः मैं और यहां की जैन समाज उक्त गल्प की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। और भविष्य मे ऐसी ही गल्पें बन्धु के प्रत्येक अंक में निकला करेगीं ऐसी आशा करते हैं।

४—श्रीमान फतेचन्द दीपचन्दजी नागपुर-संरक्षक "परवार-बन्धु"

जड़ाऊ करनफूल के समान उपदेश रूप और शिक्षाप्रद कहानी 'परवार-बन्धु' के प्रत्येक अंक में अवश्य दी जावे। इस में मेरी पूर्ण अनुमति है। परवार-बन्धु के पढ़ने में इस वक्त जो कुछ आनन्द आता है। वह वचन अगोचर है।

५-श्रीमान सोनीलालजी—नवापारा; संरक्षक परवार-बन्धु लिखते हैं:—

'परवार-बन्धु' का अंक ८ वां मिला। उस में "जड़ाऊ करनफूल' वाली गल्प हम ने मंदिर जी में सब को पढ़कर सुनाई—जिसको सुनकर जनता पर अच्छा असर पड़ा। सबों ने कहा कि बुरा काम का फल बुरा होता हैं। इसी तरह की चेतावना उदाहरण रूप (गल्प) आप आगामी अंकों में जरूर निकालिये।

६-श्रीमान पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री जैन—कटनी

"परवार-बन्धु" ने इस वर्ष आशातीत उन्नति की है। उसके रूप को देखकर मेरे हृदय में आनन्द होता है। परवार-बन्धु न केवल परवार समाज का बल्कि हिन्दी भाषामात्र के प्रेमी सज्जनों का प्रिय पात्र बन रहा है! अंक ८ में "जड़ाऊ करनफूल" शीर्षक गल्प पढ़ी। जब से ८ वां अंक यहां आया है, मैं देखता हूं कि स्त्री समाज में उसकी बड़ी चर्चा है—जिस विषय की चर्चा उस गल्प में बताई गई है वह प्राय: हमारी समाज में पाई जाती है—इस कारण उस गल्प का स्त्री समाज में अच्छा असर पड़ा है। मेरी सम्मति है कि बन्धु में ऐसी शिक्षाप्रद, समाजिक गल्पें अवश्य रक्खी जावें। बन्धु की दिनों दिन उन्नति हो ऐसी मेरी हार्दिक भावना है।

७-श्रीमान सेठ धरमदास जी—अमरावती

बन्धु की उन्नति को देखकर चित्त प्रसन्न होता है। जड़ाऊ करनफूल अंक ८ में प्रकाशित गल्प बहुत सुन्दर तथा उपदेशप्रद है। ऐसी ही गल्पें यदि हरेक अंकों में प्रकाशित होंगी तो परवार समाज का बड़ा कल्याण होगा।

८-श्रीमान दीवान मूलचन्दजी—स्टेट मकड़ाई

परवार-बन्धु के अंक ८ वां प्रकाशित लटकारी वाली जड़ाऊ करनफूल की गल्प वास्तव में उचित शिक्षाप्रद है। यदि इसी धारा की दो एक गल्पें निकलती रहें तो बहुत उपयोगी होंगी। अपनी समाज में बहुतसी त्रुटियां प्रचिलित हैं यदि धीरे २ सब को लेकर निकालते रहें तो अच्छा हो। दूसरे पेपरों की अपेक्षा मैं बन्धु को आद्योपान्त पढ़ता हूं। स्थानीय समाचार विशेष आवें तो अच्छा हो।

९-श्रीमान सिंगई श्रीनन्दनलालजी—बीना इटावा

लेखों की अपेक्षा गल्प बहुत मनोरंजक होती है। और इसका प्रभाव भी अच्छा पड़ता है। इस लिये जहां तक हो हर प्रकार की कुरीतियों को जड़ाऊ करनफूल जैसी गल्पों द्वारा लिखा जावे—तो बहुत लाभ होगा। धार्मिक विषय भी गल्प या उपन्यास द्वारा लिखे जाने पर लोग रुचि से पढ़ेंगे।

१०-श्रीमान सिंघई नाथूरामजी—ललतपुर

यह बात देखकर मुझे अति हर्ष है कि बन्धु की कलेवर वृद्धि होते हुए यह सुचारु रीति से बड़े सजधज के साथ निकल रहा है। इस का कारण मुझे केवल ···· की योग्यता तथा उनका अदम्य उत्साह ही जान पड़ता है। विषय निर्वाचनशैली बहुत ही उत्तम तथा प्रशंसनीय है। अंक ८ मे प्रकाशित जड़ाऊ करनफूल गल्प सामाजिक-शिक्षा की दृष्टि से बहुत अच्छी लिखी गई है। समाज में घर २ यही हाल देखने में आ रहा है। गृहवधू अपने पतियों की आर्थिक दशा न पहिचानते हुए उन्हें सब प्रकार से जेवर को मजबूर करती हैं। यदि उनके गृहस्वामी विवश होकर नीच कृत्य न करें तो और क्या हो! कैसे उनकी मनोकामना पूरी हो। यदि स्त्री समाज में शिक्षा का खूब प्रचार हो तो फिर लोग इस प्रकार तंग न किये जावें। अस्तु

११—श्रीमान सिंघई खेमचन्द जी बी. एस. सी.

परवार-बन्धु के आठवें अंक को और अंकों की अपेक्षा महत्वपूर्ण देख कर अत्यन्त आनन्द हुआ। पाठकों को रुचि प्रायः गल्पों की ओर पहिले जाती है-इसी कारण सब से प्रथम वही पढ़ी जाती है—यदि "जड़ाऊ कर्णफूल" सदृश शिक्षाप्रद-समयोपयोगी (विशेषकर स्त्री समाज के लिये) गल्पें प्रत्येक अंक में प्रकाशित होती रहें। तो मेरी समझ में उस से विशेष लाभ होगा। इस गल्प में अनुभवी चतुर लेखक ने दिखलाया है कि:—

(१) भूषणों के लालच से पति का दुष्परिणाम (२) स्त्रियों की अज्ञानता से धर्म-स्थानों में विकथाओं की चर्चा (३) मरण तथा विवाह में शक्ति से अधिक व्यय करने का परिणाम आदि। इसी प्रकार जातीय अनेक कुरीतियों पर रोचक गल्पें लिखते रहने से दिन पर दिन परवार-बन्धु सर्व प्रिय तथा अधिक समाजोपयोगी सिद्ध होगा।

१२—श्रीमान सिंघई गुलाबचंद्र जी वैद्य—अमरावती

परवार-बन्धु का सम्पादन और प्रकाशन श्रीयुत.......................अपने जिम्मे न लेते तो यह पहिले ही वर्ष में सूख २ कर मुर्झाया हुआ सुखारोग्रस्त बच्चा की तरह शीघ्र ही काल का गाल बनजाता। परन्तु धन्यवाद है उपरोक्त महाशयों को कि जिन्हों ने उसके सुखी रोगपर ऐसा टोना मारा कि वह अब उत्तरोत्तर हृष्ट पुष्ट हो रहा है।

बन्धु के अबतक ८ अंक निकल चुके हैं। और वे सब हैं भी एक से एक बढ़िया सामग्री और सुन्दर मुख पृष्ठों से सुशोभित। जैन समाज के वर्तमान सभी पत्रों में बन्धु इतने अल्प समय में सब से आगे बढ़गया है। उसमें अबतक प्रायः सभी विषयों पर समयानुकूल उत्तमोत्तम लेख, कविताएं, नाटक, गल्प, आदि विविध भांति का साहित्य प्रकट हुआ है। उसके हृदयगंम करने से पाठकों को धार्मिक ज्ञान, समाजिक परिस्थिति, शिक्षा का यथेष्ट परिचय, विनोद इत्यादि होताहै।......"जड़ाऊ कर्ण फूल" नामक गल्प संख्या ८ में प्रकाशित है। वह शिक्षा प्रद होने से अवश्य प्रशंसनीय है। घटना पर विचार किया जावे तो ऐसी घटनाएं इस अविद्या ग्रस्त परवार जाति के लिये अस्वाभाविक नहीं है। बल्कि इससे भी भीषण घटनाएं लोभ प्रवृत्ति के कारण निरन्तर हुवा करती हैं।

बन्धु के गोरखधंधा पुरष्कार, पूछ पांछ, विविध विषय, विनोदलीला, वैज्ञानिक नोट, साहित्य चर्चा, समाचार संग्रह और वर कन्या के अडलका प्रसिद्ध करना तथा ऐसे और भी अंग हैं जो उपयुक्त होने से बन्धु की शोभाबढ़ाते हैं।

१३—श्रीमान चौधरी झब्बूलाल जी, संरक्षक परवार-बन्धु—निवराबाजार

जबलपुर से प्रकाशित होने वाले परवार--बंधु ने परवार जाति में अपनी अल्पायु में ही जो हलचल मचा दी है-उसे देखते हुए अनुमान होता है कि कुछ दिनों में "बन्धु" समस्त जैन समाज में आदरणीय होगा। इसके मुख पृष्ट पर हरमाह अलग २ सुन्दर, उपदेशप्रद चित्र रहते हैं। यों तो सभी अंक सर्वाङ्ग सुन्दर है परन्तु ८ वें अंक में प्रकाशित जड़ाऊ कर्णफूल वाली गल्प उस अंक की विशेष शोभा वृद्धि कर रही है। उसकी लेखन शैली इतनी सरल है कि साधारण श्रेणी तक के स्त्री पुरुषों की समाजमें बिना परिश्रम के ही समझमें आसकी है। हमारी अधिकांश अशिक्षित समाज ऐसे सरल उदाहरणों द्वारा ही ठीक रास्ते पर आ सकी है अतः मैं आशा करता हूँ कि समय २ पर इसी प्रकार सुललित गल्पों लेखों से पूर्ण परवार-बन्धु के द्वारा समाज का हित होता रहेगा।

१४–श्रीमान पं० बाबूलाल गुलझारीलालजी–कटनी

पूर्व अंकों से कुछ न कुछ विशेषता को लेकर निकलते हुए परवार-बन्धु के ८ अंक हमने पढ़े हैं। हमें यह लिखते परम हर्ष होता है। कि यदि यह भविष्य में इसी प्रकार शिक्षा, धर्म, सामाजिक सुधार आदि सर्व साधारणोपयोगी विविध विषय के सारगर्भित लेखों से भरा हुआ निकलता रहा तो परवार जाति का ही नहीं किन्तु हिन्दी संसार का प्रिय पात्र बनेगा। अच्छा होगा यदि इस अंक में प्रकाशित जड़ाऊ करनफूल सरीखी कहानियाँ प्रतिमास में प्रकाशित हों—क्यों कि सर्वसाधारण को इन से बहुत शिक्षा मिलती है। और समाज में फैली हुई कुरीतियां घटती हैं। आजकल देखादेखी करके शक्ति से बाहिर व्यय साध्य वेष भूषा की दास बनी साधारण स्थिति वाली परवार स्त्री समाज की भूल से बिचारे गृहस्थों को बड़ी २ आपत्तियों का सामहना करना पड़ता है। लेखक ने देखा देखी करने वाले साधारण गृहस्थों पर बीतने वाली दुर्घटना का अच्छी रीति से दिग्दर्शन कराया है।

मेरी समझ में शील कथा में वर्णित धनपाल सेठ के कुकृत्य और उनसे मिले दण्ड के पढ़ने से मिलने वाले उपदेश के समान इससे भी सर्व साधारण को बहुत कुछ उपदेश मिलेगा। हमें आशा है कि बन्धु के प्रयत्नशील कार्यकर्त्ता उसका नाम सार्थक करने में दिनों दिन नवीन उत्साह से कार्यक्षेत्र में पदार्पण करते रहेंगे।

१५–पं० हीरालालजी—बालाघाट

परवार-बन्धु के अंक ८ में जड़ाऊ करनफूल वाली गल्प स्त्री समाज में मितव्ययता का प्रचार बढ़ाने—सादगी और सरलता से जीवन बिताने, फैशन का प्रभाव दिन प्रति घटाने, तथा धर्मस्थानों में विकथाओं का त्याग कराने की दृष्टि से लिखी गई समयानुकूल और समयोपयोगी है। इस प्रकार की शिक्षाप्रद गल्पें यदि स्त्री समाज के उपकारार्थ निकला करें तो स्त्री समाज को भी कुछ शिक्षा मिलेगी।

१६ श्रीमान पंडित पीताम्बरदासजी उपदेशक—

वर्तमान जैन समाज के पत्रों में जैन व अजैनों को बन्धुत्व भाव से अपनाने व उन्हें सुपथ पर लानेवाला प्यारा "परवार-बन्धु" ही है। अंक ८ में जड़ाऊ करनफूल वाला गल्प सामयिक, शिक्षाप्रद तथा अत्यन्त उपयोगी प्रकाशित की गई है।

१७—श्रीयुत पं० ठाकुरप्रसादजी—टीकमगढ़

मुझे यह जानते हुए हर्ष होता है कि परवार-बंधु ने थोड़े समय में प्रशंसनीय उन्नति की है। मैं उसके उद्देश्य का समर्थक हूं। उसमें जैन धर्म के विलक्षण सैद्धान्तिक रहस्य वर्तमान वैज्ञानिक शैलीके सांचेमें ढलेहुए प्रकाशित किये जाते हैं। अंक ८ में प्रकाशित 'जड़ाऊ कर्णफूल' शीर्षक गल्प शिक्षाप्रद है।

—बाबू पन्नालाल जी जैन परवार हाल मुरेना वालों ने सूचित किया है कि जो महाशय बंधु के ५, ७, १०, ग्राहक बनाकर प्रबन्धक की मार्फत अपना नाम दिवाली तक हमारे पास भेजेंगे। उन्हें क्रमश. १), २), ३) नकद या उतने के ग्रंथ पारितोषक में दिये जावेंगे।

परवार-सभा के सप्तम अधिवेशन का निर्णय—

परवार-सभा के सप्तम अधिवेशन को सागर, भोपाल और भेलसा से निमंत्रण पत्र आये थे। अतः परवार सभा की नियमावली नं० ७ के अनुसार स्थान, समय, और सभापति की स्वीकारता के लिये प्रबंध कारिणी के परोक्ष अधिवेशन के द्वारा सम्मति संग्रह की गई थी। जिसका निष्कर्ष निम्न प्रकार है:—

स्थान	वोट	समय —	वोट	सभापति	वोट
सागर	६४	अगहन बदी-५६, अगहन सुदी-५,		रा. ब. श्री. से. पूरनशाहजी	३७
भोपाल	४	माह सुदी-३, दिसम्बर की		सेठ मूलचंदजी सराफ	३३
भेलसा	१	तारीख २, कातक सुदी-१, माह		राय सा० गोकुलचंदजी	२६
		बदी-१, फागुन-१,		१६ श्रीमानों को पृथक २	२६

परवार सभा के नियम नं० ८ के अनुसार सभापति के लिये श्रीमान रा० ब० श्रीमन्त सेठ पूरनशाह जी, सेठ मूलचन्दजी, तथा राय सा० गोकुलचन्दजी के नाम सागर की स्वागत कारिणी कमेटी को भेज दिये गये हैं। सागर स्वा० का० कमेटी की सम्मति के अनुसार अधिवेशन का समय अगहन बदी ३, ४, ५ ता: १४, १५, १६ नवम्बर २४ ही निश्चित रक्खा गया है।

आशा है कि सागर की पंचायत स्वागतकारिणी कमेटी इस अधिवेशन को महत्वपूर्ण बनाने के लिये भरसक प्रयत्न करेगी।—प्रबन्धकारिणी की प्रत्यक्षबैठक-अधिवेशन शुरू होने के पहिले अगहन बदी ३ को वक्त दो पहर सागर में निश्चित कीगई है। अतः प्रबन्धका० कमेटी के सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे उक्त समयपर अवश्य पधारनेकी कृपा करेंगे। विषय वार्षिक रिपोर्ट की स्वीकारता, आगामी सालके बजटपर विचार तथा और जो प्रस्ताव उपस्थित किये जावें।

अनाथों को सहायता—

१—४) कन्हैयालाल, ४) मथुरादास, ४) दमड़ीलाल इस प्रकार १२) मासिक जबलपुर से श्री रतनचन्द लक्ष्मीचन्द जी—कोषाध्यक्ष परवार सभा देते रहे थे। परन्तु भादों मास से उन्होंने अपनी जिम्मेदारी पर देना बंद करके परवार सभा की ओर से देने के लिये हमारे पास सिफारिश भेजी थी अतः इन तीनों को भादों माससे दीगई है। आगामी के लिये प्रबन्धकारिणी कमेटी इस विषय पर विचार करेगी। २—सिवनीसे सोनाबाई बेवा—की एक द० सहायताके लिये आई थी परन्तु रा० ब० श्रीमन्तसेठ पूरनशाहजी ने अपनी ओरसे उसको सहायता देना स्वीकृत कर लिया—तदर्थ धन्यवाद। इसके लिये सेठ वृद्धिचन्द जी-उपमंत्री पर० सभा का भी प्रयत्न प्रशंसनीय है। ३—परवार सभाकी ओरसे जिन छात्रों व अनाथोंको सहायता देना स्वीकार किया है उन के नाम-परवार-बन्धु के अंक ७ में प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु जिनको नहीं दी गई है उनमें से बहुतेरे छात्र शिकायत पर शिकायत लिख रहे हैं अतः निम्न लिखित छात्रों के नाम भी प्रकाशित किये जाते हैं, जिनको विवश होकर छात्रवृत्ति देना अस्वीकृत किया गया है।

सुन्दरलाल शास्त्री इंदौर, धरमचन्द जैन बनारस, हजारीलाल परवार सागर, फूलचन्द इन्दौर, कस्तूरचन्द इंदौर, खेमचन्द प्रेमचन्द कटनी, हजारीलाल ललतपुर, मुन्नालाल जैन, बरुआ-सागर, कन्हैयालाल बनारस, क्षेमंधर इंदौर, रघुनन्दन प्रसाद ललतपुर, उदयचन्द केवलारी दयाचन्द बालाघाट।

निवेदक—कस्तूरचन्द वकील, मंत्री परवार-सभा जबलपुर।

"परवार सभा के दातारों से निवेदन"

समाज को भलीभांति मालूम है कि इस सभा में जो द्रव्य है वह समाज के ही उद्धार में व्यय किया जाता है-इसी लक्ष्य से गत अधिवेशनों में समाज के दातारों ने अपनी उदारता से ही चंदा लिखवाया था। जिस चंदेकी लिखावट में अनेक दातारों ने अपनो संकलित द्रव्यको दे दिया है। परंतु अनेक दातारोंने अभी तक दान द्रव्य नहीं दिया है। इस द्रव्यका बकाया अधिकतर जबलपुर के श्रीमानों पर है जिसके लिये मैंने पहले अनेक बार प्रार्थना को परन्तु उक्त दातारो ने दान द्रव्य का त्याग अब तक नहीं किया है। मालूम नहीं कि इन दातारो को इस द्रव्य से क्यों मोह है। देने में एक दूसरे का हीला-बहाना करते हैं। इस द्रव्य के प्राप्त न होने से सभा को सैंकड़ों रुपये के व्याज का घाटा उठाना पड़ता है व द्रव्याभाव से सभा के योग्य कार्य होने से रुक गये हैं। इसलिये सम्पूर्ण दातारों से विशेषकर जबलपुर के दातारो से निवेदन है कि जो आप ने सभा के लिये दान द्रव्य लिखाई है उसको आप शीघ्र दे देव व्यर्थ दान द्रव्य घर मे रखना योग्य नहीं। यह द्रव्य मंत्री तथा कोषाध्यक्ष सभा के पास भेज देवें।

मंत्री परवार सभा से भी निवेदन है कि आप इस बकाया को जैसे हो वसूल करें।

निवेदक—

कुंवरसैन उप० सभापति-परवार सभा

जबलपुर के ग्राहकों से निवेदन

स्थानीय ग्राहकोंमें से कई महाशयों ने बन्धु का मूल्य केवल ३) देने की अब तक कृपा नही की। अतः इस माह में जिन ग्राहकों का रुप्या नही आवेगा उनके नाम मुझे विवश होकर आगामी होने वाले सप्तम परवार सभा के अधिवेशन में परवार-बन्धु की रिपोर्ट के साथ प्रकट करना पड़ेंगे।

संचालक—परवार-बन्धु, जबलपुर।

" कामठी निवासी संघी कोमलचंद के विवाह की झूठी खबर "

(प्रेरितपत्र)

पहिले परवार बन्धु में जो एक समाचार संघी कोमलचन्द जी कामठी के विवाह करने के विषय मे छपा था वह बिलकुल मिथ्या था किसी धूर्त ने यह मिथ्या समाचार मंत्री परवार सभा को दे दिये थे जिस पर से मंत्री महोदय ने १ तार संघी कोमलचंद को व एक तार मुझे दिया था " कि यह विवाह प्रस्ताव विरुद्ध है नहीं होना चाहिये "

संघी कोमलचंद जी यदि उस तार का स्पष्ट उत्तर मंत्री जी को दे देते तो समाचार पत्र में न छपता। मैंने संघी कोमलचन्दजी को पत्र दिया था कि दर असल में सत्य क्या है? जिसका उत्तर संघीजी ने संतोषजनक दिया था, जिसका सार यह है —

" उनका विचार विवाह करने का बिल्कुल नहीं है कुछ धूर्तों ने ही उन्हें विवाह कर लेने को बहकाया था, परन्तु संघीजी ने स्वीकार नहीं किया। "

समाचार देने वाले ने केवल द्वेष के कारण यह समाचार मंत्रीजी के पास भेज दिये थे। संघीजी को इस मिथ्या समाचार पर घोर दुःख और अपवाद हुवा। इसलिये उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मिथ्या समाचार देने वाले पर मुकद्दमा चलावें। परन्तु मैंने संघीजी को ऐसा करने से रोक दिया है। और कहा है कि वे इस मामले को अदालत में न लेजाकर उसके बदले परवार सभा से न्याय प्राप्त होने के लिये १ दरखास्त मंत्री परवार सभा के पास भेज देवें-जिससे योग्य न्याय होजावेगा।

उक्त समाचार देनेवाले महाशय से भी निवेदन है कि वे स्वयं माफी मांग लेवें। और भविष्य में ऐसी खबर देने से अपनी वृत्ति को रोकें, नहीं तो किसी समय लेने के देने होंगे

कुंवरसेन-सिवनी.

वर्ष २ | सितम्बर, सन् १९२४ ई० | संख्या १

हृदय की तान ।

(लेखक—श्रीयुत पं० राजधरजी जैनाध्यापक)

हृदय में गुञ्जित हो यह तान ।
प्रभो ! हो कैसे अभ्युत्थान ?

तितर-बितर हो रहे बन्धु सब, नहीं एकता लेश ।
लड़ लड़ कर, कर रहे शक्ति निज टूक टूक निःशेष ॥
संगठन कैसे हो भगवान ॥ हृदय० ॥ १

खाद रहे बल बाल-ब्याह सब, युवक हुए बल-हीन ।
कुटिल मृत्यु से बचे कहीं तो पड़े पलँग पर दीन ॥
युवक तब कैसे हों बलवान ॥ हृदय० ॥ २

जिसमें बल है नहीं, जाति वह उन्नति शिखरासीन—
हो सकती है नहीं जगत् में, तथा कभी स्वाधीन ॥
इसी से होते पतित निदान ॥ हृदय० ॥ ३

बाल-ब्याह के साथ यहाँ है वृद्ध-ब्याह का खेल ।
यहाँ न होती पुष्पित विकसित; कहीं न विधवा बेल ॥
प्रभो ! अब हो कैसे उत्थान ॥ हृदय० ॥ ४

विधवाओं की वृद्धि-मात्र से पतित जाति है आज ।
फिर भी रक्षा शिक्षा को भी करता नहीं समाज ॥
जाति का कैसे हो कल्याण ॥ हृदय० ॥ ५

कितने दीन, अनाथ बाल्य गण हो करके असहाय ।
जाति-धर्म को छोड़, आज बन रहे विधर्मी; हाय !
नहीं रक्षा करते धनवान् ॥ हृदय० ॥ ६

धन फिजूल-खर्ची करने में करते खूब कमाल ।
चाहे बनें अंत में भी वे सेठों से कंगाल ॥
चेतते नहीं हाय ! श्रीमान ॥ हृदय० ॥ ७

इस प्रकार की ये कुरीतियाँ करें जाति को हीन ।
सब कैसे हो प्रभो ! जाति यह उन्नति शिखरासीन ॥
तुम्हीं हो रक्षक दयानिधान ॥ हृदय० ॥ ८

प्रिय परवार जाति के सेवक यह प्रण करलें आज—
" यह सब करके कुरीतियाँ उजड़ करें समाज " ॥
ऐसी दो बुद्धि उन्हें भगवान ! ॥ हृदय० ॥ ९

सारभूत-शिक्षा ।

अपने ३॥ साढ़े तीन हाथ के शरीर के लिये ३॥ हाथ का ही घर बनाने से काम नहीं चलता, यदि उसमें स्वाधीनता पूर्वक चलने फिरने के लिये जगह न रक्खी जावे तो सुख और स्वास्थ्य में बाधा पड़े बिना न रहेगी। इसी प्रकार शालाओं में विद्यार्थियों को केवल कुछ विषय पढ़ा कर उनका मन संकुचित रखने से वे बड़े होजाने पर भी बालक बने रहते हैं। हमारी जैन शालाओं में इने गिने दो चार विषयों की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनके पढ़ाने की रीति ऐसी विलक्षण है कि सिवाय इसके कि बालक यहां वहां देखे बिना घुड़दौड़ के घोड़ों के समान दौड़ते—केवल पाठ कंठ करने में पीछे न रह जांय और किसी बात के समझने के लिये उन्हें समय ही नहीं मिलता न पाठक भी पुस्तक में लिखे शब्दों के सिवाय अन्य बाहिरी शब्दों द्वारा विषय को समझाने की आवश्यकता समझते हैं। यही सबब है कि हमारे विद्यालयों के पाठकों को पुस्तकालयों का अभाव कुछ भी नहीं खटकता।

इसे हम पंचमकाल का प्रकोप कहें या अपने बालकों का दुर्दैव? जब हम अपने यहां के बूढ़ों के मुंह से ये बातें सुनते हैं कि बेटा! जिस अवस्था में तुम्हें प्रति दिन पांच २ छह २ घंटा पालथी मारे या बेंच पर बैठे २ बिताने पड़ते—नीची नजर किये एक स्वर से पाठ रटना पड़ता। पाठक की डांट डपट के भय से भयभीत रहना पड़ता है। उस अवस्था में हम स्वच्छंदता पूर्वक खेलते और गन्ना चूसते रहे हैं। जब तुम बगल में पोथियों की गठरी दाबकर अपने मुरझाये मुख से चौथी या पांचवी कक्षा में आकर बैठते या संस्कृत प्रवेशिका कक्षा में प्रवेश करते हो तब कहीं हमारा पाठारम्भ हुआ था। उस समय तक खेल कूद में लगे रहने से हमारा शरीर भी हृष्ट पुष्ट और सुडौल था और पाठ याद करने की चिंता तथा गुरुजी की ताड़ना से मुक्त रहने के कारण मन भी प्रसन्न था ऐसे पुष्ट शरीर और प्रसन्न मन को लेकर हमने शाला में प्रवेश किया था। हमारे गुरु जी हमें सब विद्यार्थियों सहित कभी बगीचे में लेजाते, कभी नदी की शोभा दिखाने और कभी मेलों में ले जाकर प्राकृतिक और कृत्रिम, दृश्य दिखाकर पदार्थों का ज्ञान कराते उन से होने वाले लाभ—हानि को समझाते और समयानुकूल नाना प्रकार की नीति तथा शरीर सम्बन्धी शिक्षा देते थे जिससे हमारे मन की शक्तियां विकशित होती और थोड़े ही परिश्रम से बहुतसा ज्ञान प्राप्त कर लेतीं थीं। इत्यादि, तब हमें बड़ा दुःख होता है।

आजकल की शिक्षा प्रणाली ठीक इससे विपरीत होगई है आजकल शालाओं में पढ़ते २ बालक शारीरिक और मानसिक ऐसे दोनों प्रकार के खाद्य पदार्थों को हजम करने वाली अपनी शक्ति को ही हजम कर जाते हैं अर्थात् नष्ट कर देते हैं मनमाने खेल कूद और हितकारी आहार विहार के अभाव से जिस प्रकार उनका शरीर निर्बल हो जाता है उसी प्रकार उनके मानसिक पाक यन्त्र में परिपक्व विचार रूपी रस बनाने की शक्ति नहीं रहती इस यन्त्र की दुर्बलता का यह फल होता है कि शास्त्रीय परीक्षा पास कर लेने पर भी यथेष्ट और बलिष्ठ बुद्धि वाले नहीं होते न तो ये किसी पाठक को

भली भांति समझा सकते न किसी विषय की आदि से अंत तक उत्तम रचना ही कर सकते हैं यही कारण है कि अपने विचारों के कच्चेपन को ये सदैव अत्युक्ति-आडम्बर और उछल कूद द्वारा ढंकने की चेष्टा किया करते हैं

सरकारी शालाओं की सार हीन शिक्षा से दुखी होकर देश व जाति हितैषी परिणामदर्शी विद्वानों ने जो अपनी शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की थी वह इस लिये नहीं की थी कि देश के-जाति के गौरव के लिये हमारे यहां भी निजी अनेक संस्थाएं हो जावेंगी किन्तु इस लिये की थी कि इनमें हमारे होनहार बालक सरकारी शालाओं की सार हीन और धर्म रहित शिक्षा से बचकर उत्तम शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे इस पवित्र उद्देश को लेकर जारी की गई शालाओं व विद्यालयों में आज कल वे ही पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं जिन्हें हमारा नवीन पंडित दल अच्छी कहता है। घटती हुई जैन समाज और डूबते हुए जैन धर्म की रक्षा के लिये हमारा यह पंडित मंडल संस्कृत भाषा द्वारा धर्म, व्याकरण, न्याय और काव्य ग्रंथों को ही रटाना परमावश्यक समझता है।

यद्यपि जठराग्नि भोजन को पचाती है परंतु जो कुछ भी खाया जायगा वह सब को पचा देवेगी यदि ऐसा सोचकर बालक को दुष्पक भोजन दे दिया जाय तो सिवाय जठराग्नि को धीमा करने और पेट में पीड़ा पैदा करने के और क्या होगा ? ठीक इसी प्रकार भोजन कितना ही हलका क्यों न होवे। जब तक वह दांतों द्वारा भली भांति पीसा न जायगा तब तक सरलता पूर्वक न तो हजम हो सकेगा न लाभ पहुंचा सकेगा। इस लिये बालकों के शरीर को निरोगी रखने और बलवान बनाने के लिये उचित है कि उन्हें आसानी से जल्दी हजम होने वाले पदार्थ खाने को दिये जावें और जो कुछ वे खावें वह उनसे दांतों द्वारा भली भांति पिसवा कर निगलवाया जावे इसी तरह उन के मन को प्रसन्न रखने और उस की शक्तियों को बलवती बनाने के लिये आवश्यकता पाठ्यक्रम में ऐसी शिक्षा पुस्तकों को रखने की है, कि जिन्हें बालकों की कोमल मानसिक पाकस्थली सहजमें पचासके-सहज में समझ सके और उन पुस्तकों का विषय रूपी भोजन निगलने के-कंठ करने के पूर्व उन्हें खूब पिसवा दिया जावे अर्थात् समझा दिया जावे ताकि वे उसे सरलता पूर्वक समझ सकें और अपनी अवलोकन, कल्पना, विवेक, स्मरण आदि मानसिक शक्तियों को विकसित कर बलवान् बना सकें यह तब ही हो सकेगा जब हम निःसंकोच भाव से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जानने वाले अनुभवी शिक्षित वर्ग के हाथ में अपनी शिक्षा संस्थाओं के प्रबंध का भार सौंप देवेंगे और यह शिक्षित वर्ग शिक्षा तत्वज्ञों से हमारे बालकों के लिये हितकारी धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा का पाठ्य क्रम बनवा कर सदाचारी—शिक्षा कार्य में निपुण पाठकों द्वारा शालाओं में शिक्षा दिलावेगा !

प्रायः देखागया है कि विद्यालयों में जो शिक्षक नियत किये जाते हैं उनमें इने गिने ही ऐसे होते हैं जिन्होंने सम्यक् रीति से भाषा भाव,आचार-व्यवहार और साहित्य का परिचय किया है विद्यालयों में नाम लिखाने वाले विद्यार्थी मातृभाषा में सामान्य बोध प्राप्त किये हुए ही आते हैं इनको पढ़ाने का कार्य प्रायः ऐसे पाठकों को सौंपा जाता है जिन्हों ने किसी विद्यालय से प्रवेशिका या विशारद परीक्षा पास तो करली है परंतु

पठित विषय को समझाने की कौन कहे स्वयं नहीं समझ सके हैं। समाज की ओर से चलने वाले एक दो नहीं किंतु अनेक महाविद्यालय-विद्यालय हैं जिन से प्रति वर्ष दस २ बीस २ विद्यार्थी परीक्षोत्तीर्ण होकर निकलते और विद्वान् मंडली की वृद्धि करते हैं। इतना होते हुए भी अभीतक समाजने ऐसी एक भी संस्था नहीं खोली है जिसमें ग्रंथ के ग्रंथ रटे हुए इन विद्वानों को शिक्षा देने की पद्धति तथा शाला प्रबंध की शिक्षा दी जाती हो। अथवा जहां शिक्षा पद्धति के ज्ञाता पाठकों को छात्र वृत्ति देकर धर्मशास्त्र, संस्कृत, भाषा, साहित्य, न्याय, व्यपारिक शिक्षा, का बोध कराया जाता हो। स्वयं समझ लेने या रटलेने की अपेक्षा दूसरे को समझा देना तथा कालांतर में स्मृति बनी रहे ऐसी धारणा करादेना कितना कठिन काम है यह बात किसी से छिपी नहीं है। क्या कारण है ? कि हमारी इन शिक्षा संस्थाओं में वर्षों अध्ययन करके निकले हुए विद्वान् केवल उतना ही कर सकते हैं जितना कि उन्हों ने पुस्तकों में पढ़ा है या गुरु मुख से सुना है। जब कभी वे किसी विषय के प्रतिपादन को बैठते हैं तब उन की बुद्धि रेलगाड़ी के एंजिन के समान दोनों पालों के (पाठ्य ग्रंथ और गुरु मुखोपदेश) बीच में ही कभी मंद और कभी तीव्र गति से दौड़ती है इसका कारण शिक्षा पद्धित से अपरिचित पाठकों द्वारा शिक्षा दिलाना है अब इस त्रुटि को दूर करने की आवश्यकता है। इस कमी की पूर्ति करने के लिये आज लगभग पांच वर्ष हुए होवेंगे कटनी जैन पाठशाला की प्रबंधक सभाने अपने यहां नार्मल स्कूल में शिक्षा पाये पाठकों को भरती करके उन्हें संस्कृत, साहित्य, धर्म तथा महाजनी शिक्षा देने का प्रस्ताव पास किया था। खेद है कि वह कार्य रूप में परिणत नहीं हो सका।

आज कई वर्ष हुए एक ऐसे जैन विद्वान् महाशय से जिन्हों ने सरकारी शिक्षा विभाग में माननीयपद पर रह कर शिक्षक का भी कार्य किया है। उन से जैन शालाओं की पाठ्य प्रणाली के विषय में चर्चा करने पर मुझे यह उत्तर मिला था "कि हमारी समाज के उदार धनी और विद्वान् सज्जन अपनी इन शालाओं में अधिक नहीं थे केवल मातृभाषा द्वारा धर्म तथा साहित्य के साथ कुछ व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था कर के यदि योग्य शिक्षक नियत कर देते तो खेल २ कर गला घूंटने वाले बिचारे बालक सरलता पूर्वक पार्श्वपुराणादि धर्मग्रंथों को पढ़ने, समझने और निर्वाह के धंधों में सहायक होने वाले गणित आदि विषयों की योग्यता तो प्राप्त कर सकते ऐसा तो न होता जैसा कि वर्षों व्याकरण के सूत्र रटकर घर आने पर आजकल व्यवसायज्ञान बिना बालकों का हाल हो रहा है। यदि ये कुछ भी न सीखते तो खेलने का ही आनंद पाते, पेड़ों पर चढ़कर, पानी में तैर कर, फूलफल तोड़ कर प्रकृति माता के साथ सैकड़ों उपद्रव करके शरीर की पुष्टता मन की प्रसन्नता और शिशु स्वभाव की परितृप्ति तो प्राप्त कर सकते। परन्तु इन शिक्षा संस्थाओं में जाने से न तो वे सीख सके न प्रकृति का सच्चा सुख प्राप्त कर सके। हमारे भीतर और बाहिर दो उदार भूमियां हैं हम इन दोनों भूमियों से जीवन बल और स्वास्थ संचय करते हैं। इन्हीं स्थानों से नाना वर्ण, गंध, विचित्र गति, रीति प्रीति, और प्रफुल्लताएं सदा कल्लोलित होकर हमें सर्वांग सचेतन और सर्वथा विकसित करने की चेष्टा किया करती हैं परंतु प्रति वर्ष हज़ारों रुपया नहीं किंतु लाखों रुपया खर्च करके हमारे हतभाग्य बालक इन दोनों प्रकार की मातृभूमियों से हटाये जाते हैं" आदि।

इन वाक्यों के सुनने से पहिले आश्चर्य हुआ परन्तु ज्यों ही अपनी शिक्षा संस्थाओं के पाठयक्रम की नीरस पुस्तकों और रटाने वाली शिक्षा पद्धति का विचार किया त्योंही इस कथन की सत्यता समझ में आगई-इनके इन मूल्यवान वाक्यों का हमारे हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और शिक्षा विषयक असावधानी को देख बड़ा दुख हुआ। दुख होना ही चाहिये जो बालक आकार में छोटे होने पर भी सम्पूर्ण घर की शून्यता को पूर्ण करदेते हैं उन्हें केवल ऐसी पाठय पुस्तकें रटवाना जिन में न तो आनन्द है न जीवन में सहायता पहुंचाने वाली बातें हैं न नवीनता है और न बुद्धि को हिलाने डुलाने के लिये तिल भर भी जगह है। जिन्हें केवल गुरुमुख से निकले तथा पुस्तक में लिखे शब्दों को रट लेने में ही संतोष मानना पड़ता है। क्या इस प्रकार की रसविहीन कठोर शिक्षा से कभी बालकों की मानसिक शक्तियों का विकाश तथा पुष्टि हो सकती है? क्या वे शरीर की दुर्बलता और रोगों की झपेट से बच सकते हैं? क्या उनकी बुद्धि नवीन बातों के खोजने योग्य हो सकती है? कदापि नहीं. वे तो विचारे जितनी बातें रटेंगे उतनी ही कह सकेंगे। (अपूर्ण)

—बाबूलाल गुलझारीलाल।

कर्त्तव्य-क्षेत्र।

(१)

निद्रा की लम्बी चादर में, ढका हुआ था मुख मेरा।
जान सका मैं नहीं देर तक, है किस ने मुझ को घेरा॥
स्वप्न सैन्य की प्रबल प्रेरणा से देखा उसका डेरा।
चित्त न चाहा फिर आने का, भूल गया मेरा तेरा॥

(२)

निशा-छोर की कर्कशता ने, पीडित है कर दिया मुझे।
देख रहा था जिसका देश, पथ-विस्मृत कर दिया मुझे॥
मुख पर फेरा हाथ, उठा, वह चादर फैंकी, दूर गई।
अखिल विश्व के कोने २, बिछी लालिमा नई हुई॥

(३)

लेकर साहस-दण्ड हाथ में, (टूटी खटिया छूट चुकी!
पर, विद्या, सम्पत्ति हमारी, लूट चुकी! हा लूट चुकी)!!
हुवा मुझे कर्त्तव्य-ज्ञान, बस कमर कसी आगे दौड़ा।
अमित हर्ष भी हुवा, पड़ा है नव-कर्त्तव्य क्षेत्र चौड़ा॥

—भुवनेन्द्र।

सौ दण्डी एक बुन्देलखंडी ।

हम उक्त कहावत वर्षों से सुनते आते हैं, और इसका अर्थ भी कुछ विपरीत सुनने में आता है। प्रायः लोग दण्डी शब्द का प्रयोग चुगलखोर अर्थ में लेते हैं, मैंने बहुत कुछ विचार किया, कोष में भी देखा परन्तु कहीं भी दण्डी शब्द का अर्थ चुगलखोर (लड़ाने भिड़ाने वाला) न पाया, बड़े विस्मय में पड़ा— कि क्यों कर उक्त कहावत चली?

क्या वास्तव में बुंदेलखण्डी चुगलखोर लड़ाने भिड़ाने वाले जघन्य प्रकृति के पुरुष होते हैं? उत्तर बार २ यही मिलता था, नहीं कभी नहीं! जहां छत्रसाल जैसे वीर क्षत्री हुए, जहां झांसी की महारानी जैसी वीर नारियां हुईं। जहां के मनुष्य सरल, सीधे शांतस्वभावी-सदाचारी होते हैं। वहां के लोगों पर यह लाच्छन कैसा?

परन्तु एक दिन अचानक ही मैंने एक माता को अपने पुत्र के लिये वीर शब्द का प्रयोग करते सुना और उसी से तुरंत ही उक्त सूत्र का अर्थ लग गया, मैंने सोचा कि जब यह माता स्वपुत्र को इस शैशव काल में वीर कह कर सम्बोधन करती है उसे वीरत्व भाव प्रदान करती है, जब ये बालक बाल्यकाल से वीर भाव को प्राप्त करके आगे युवावस्था में पदार्पण करते हैं, तब निःसन्देह वे अपने आत्मबल व शरीर बल के कारण निर्भय हो सिंह के समान विचरते हैं। उनको चोर व डाकुओं का भय इतना नहीं रहता, अवसर आने पर वे अनेकों मनुष्यों का साम्हना करके अपनी रक्षा कर सके हैं, इत्यादि कारणों से ही "सौ दण्डी एक बुंदेलखण्डी" की कहावत प्रसिद्ध हुई है।

वास्तव में यह कहावत हमारे गौरव को बढ़ाने वाली है, अर्थात् सौ (१००) दंड धारी मनुष्यों के बराबर एक बुंदेलखण्डी मनुष्य होता है। इस विषय में बहुत सी दंत कथाएँ व कहानियें प्रसिद्ध हैं। हम लोग जब बैठ कर उन कथाओं को कहते सुनते हैं तब मानके पहाड़ पर चढ़ कर हर्षोन्मत्त हो जाते हैं। परंतु इन का हर्षोन्मत्त होना, उन पागलों के समान है जो कहते हैं, हमारे पिता बड़े वैद्य थे। धन्वंतरी का साम्हना करते थे, जब किसी ने पूछा और आप— तब बोले मेरे पास उनके ग्रन्थ रक्खे हैं। भला सोचो, इस पागल को उन ग्रन्थों से सिवाय जगह रोकने के और क्या लाभ हो सका है। भले ही गधे पर सोना लदा हो, परन्तु उस बेचारे को क्या स्वाद आ सक्ता है? बस ठीक यही दशा हमारी है, हम उन कहावतों को कहते, कहानियां सुनते, सुनाते हैं। परन्तु क्या कभी हम लोग भी कभी उनके जैसे आत्मबल या काय बल, वचन बल आदि बनाने का प्रयत्न करते हैं? कभी नहीं, कहीं नहीं!

देखिये जब आपके पूर्वज जिनके लिये उक्त कहावत पड़ी है, सिंह की गर्जना सुन कर उस के सन्मुख जाकर ललकार मारते, तब आप लोग रात्रि को कमरे के भीतर पड़े हुए यदि चूहे की खड़ खड़ाहट सुनते हैं, तो चौंक उठते हैं सशंकित होकर यत्र तत्र देखने लगते हैं। मारे डर के सारी रात नींद नहीं ले सके हैं। यदि पेशाब को उठना पड़े, तो स्त्री या नौकर को जगाते हैं। जब कि आप के पूर्वज नित्य शौचादि क्रियाओं से निवृत्त होने को २ दो ढाई ढाई मील जाकर आते थे, जिससे

व्यायाम होता, जंगल की शुद्ध वायु मिलती, जो नेत्रों व मस्तक को बलप्रद और रक्त को शुद्ध करती थी। बाहर शौच करने से नगर की वायु दूषित न होकर अनेकों प्लेग, हैजा, मरी, मलेरियादि रोग नहीं होने पाते थे। तब आप लोग घरके भीतर पाखानों में भी किसी के द्वारा-सहारे से जाना चाहते हैं। मैं ने इलाहाबाद बोर्डिंग मे आये हुवे ? मेहमान को देखा था कि उनका नौकर पाखाने में लोटा रख आता था और बाबू जी जब टट्टी फिर लेते तो लोटा उठा लाता था। इससे आप को आध पाव घंटा या कुछ निकट उस गंदी प्रकाश और पवन शून्य जगह में बैठना पड़ता है, गंदी वायु श्वास मे लेकर मस्तक, नेत्र व रक्त को हानि पहुँचाई जाती है, इन शहरों की टट्टियों से वायु बिगड़ कर शहरों में अनेकों प्राण नाशक रोग हो जाते हैं, फिर मल के टोकरे तथा गाड़ियां और गटर (पर नाला) के द्वारा और भी वायु दूषित होती है। जब कि आप के पूर्वज ग्राम में रहना जहां स्वभाव से स्वच्छ जल वायु व खाद्य पेय मिलता था रहना पसन्द करते थे, तब आप लोग शहरों की घनी बस्ती और गंदी गलियों में ही रहने में अपना अहोभाग्य समझते है। जहां आप के पूर्वज मन दो मन बोझ लेकर दशों कोस सहज सहज चले जाते थे, तहां आप को अपने शरीर पर के वस्त्र भारी लगते हैं, ट्रेन में से सामान भी बिना कुली नहीं उतार सके, पांच सेर की पोटली भी तांगे या तांगे से ट्रेन तक कुली ही ले जाता है, शहर से स्टेशन भले ही आधा मील क्यों न हो, परंतु बिन तांगे, (टांगो पर) नहीं जा सके हैं, आप के पूर्वज जब ज्येष्ठ की कड़ी धूप में भी मरुस्थलों को पार करने में न हिचकते थे तब,आप माह के महिनेमें सबेरे नव बजेभी बिना छतरी व सवारी के शहरों की सड़कों पर भी नहीं चल सके हैं। जब आप के पूर्वज भोजन कर चुकने पर भी पाव डेढ़ पाव मिठाई कुछ न गिनते थे, ५ पांच सेर दूध, आध आध सेर घी सहज में पचा जाते थे। तब आपको १ ग्रास में अजीर्ण होता है, घी दूध प्रथम तो मिलता ही नहीं, और मिले तो पचता नहीं अब कुछ वर्ष पूर्व, अंग्रेजी दवाखाने तो थे ही नहीं और देशी वैद्य भी कहीं बड़े नगरों मे राज्याश्रित रहते थे, तब आज नगर २ ग्राम २ गली २ मे अनेकों, अंग्रेजी और हिन्दुस्थानी वैद्य हकीमों की निजी और राज्य की ओर से दवाखाने खुल रहे हैं।

पूर्व पुरुष सामान्य शीत उष्णादि को कुछ गिनते नहीं थे, परंतु आज तो थोड़ी गर्मी में लेमनेड सोडावाटर, सिर्प, शरबत, बर्फ आदि और सर्दी मे, चाय, काफी, कोको आदि गरमर चाहिये, गर्मी में तजेब और जाड़े में ऊनी स्वेटर, कम्फर्टर, नाइटकेप, ग्लोव्ज, स्टाकिंगस आदि बिना काम नहीं चलता। वर्षा में रबर का जूता, चोगा, आदि अवश्य चाहिये, इन दिनों ग्रामों में रहना तो मानो आप को शुभ नाम ही है, परन्तु आपके पूर्वज इन दिनों प्रकृति के हरे भरे मनोहारी खेतों व बागों को देखकर प्रसन्न होते थे।

जब आप के पूर्वज घंटों तथा पहरों भी एकासन से बैठकर जप तप, अध्ययन अध्यापन करते थे, तब आप मिनटों में सीट (बैठक) बदलते हैं, जब कि वे किसी पाठ को १ बार में सुन कर सीख लेते और यावज्जीवन नहीं भूलते थे, तब आपको रटे २ भी याद नहीं होता, स्मरण शक्ति की बात भी यह है कि जरा२ सी बात में नोट किये बिना नहीं चलता, और इतने पर भी नोट किया है, कि नहीं, यह भी भूल जाते हैं। जब कि वे पहरों तक एकाग्र चित्त हो कर पाठ पढ़ते थे, मनन करते थे, तब आपको

१० मिनट में चक्कर आजाता है, चित्त चंचल हो जाता है।

आपके पूर्वज जब बीस बीस पच्चीस २ वर्ष तक सिवाय इसके कि स्त्रियां केवल गृह कार्य (भोजन बनाना, रक्षा करना) के ही उपयोगी होती हैं, और कुछ नहीं जानते थे, कि इन में परस्पर और भी कोई सम्बन्ध ऐंद्रिक (काल्पनिक) सुख साधन का भी है इत्यादि। तब आप १२ या १४ वर्ष की अवस्था में यदि कारण कूट न मिलने से व्याह न हुवा, तो विकल हो उठते हैं, चिंतातुर होजाते हैं, जबकि आप के पूर्वज अनेक विद्याओं के निधान होकरके भी काम शास्त्र से अनभिज्ञ (पूर्ण वय प्राप्त होने तक) रहते थे, तब आपको इस बाल्यावस्था मे ही नाविलों (उपन्यासों) के पढ़ने का रोग हो जाता है। जिसके कारण आप पाणिग्रहीत सीधी साधी, पुरातन चाल चलने वाली, सुशीला, पतिव्रता, कुलीन और आप की छाया (आज्ञा) में चलने वाली सच्ची हितैषणा धर्मपत्नी से विरक्त होकर झूठी, नखरेवाज, बाजारू (उपन्यासी) स्त्रियों के चंगुल में फँस कर धर्म धन और तन का नाश करके कुल का भी क्षय कर डालते हैं। आपकी समझ मे आप के पूर्वज जंगली थे, आप की घर की देवियां जंगली हैं, क्योंकि आप पर तो उपन्यासों का भूत चढा है। आपके पूर्वज नियमानुसार विषय भोग कर जो बलिष्ठ और दीर्घ जीवी सन्तान बहु संख्या में उत्पन्न करते थे, तब आप और आप में से विशेषकर श्रीमान (धनिक) महाशय बहु संख्या में ऐसे निकलेंगे, कि या तो उन्होंने सन्तान का मुखावलोकन ही नहीं किया न कर सक्ते हैं, और कितने ऐसे होंगे व हैं, कि उनकी पत्नियां बेचारी गर्भ का भार ढोते २ और प्रसूति की वेदना सहते २ तरुण वय में ही बुढ़ियां हो गई हैं, परंतु फिर भी उन के आगे पीछे कोई नहीं दीखता है, और कदाचित् मरते मरते कोई बचे भी, तो दिन रात वैद्य हकीम और डाकृरों के मारे घर की देहरी फूटी जाती है। तात्पर्य जिससे वृद्धावस्था में सन्तान हमारी सेवा करेगी, उससे हमारे वंश की रक्षा होगी, इत्यादि आशायें की जाती थीं, सो उसका फल विपरीत ही होता है, अर्थात् आप स्वयं सेवा कराने के बदले सेवक बने रहते हैं और कहीं भाग्य ने पल्टा खाया, तो वृद्धावस्था में सन्तान वियोग का असह्य वेदना से व्याकुल होना पड़ता है, तब आँसू नहीं पुछता दिन रात "हाय घने जल गये और भुजाई भी लग गई" कह कह कर आराधना मरण के बदले आर्त और रौद्र परणामों से मरण करके यथा योग्य गति को चले जाते हैं। इत्यादि व्यवस्था होती है।

जब कि आपके पूर्वज स्वभाव से सुन्दर सुडौल और दृढ़ शरीरी होते थे, तब आपको अपनी सुन्दरता बढ़ाने और शरीर की दृढ़ता दिखाने के लिये, बहुत से वस्त्राभूषणों अलंकारों से सजाने की, बाल रखाने—कघी लगाने की काट, बूट, शूट, हेट, जाकेट कमीज, श्वेटर, बनियान, ग्लोव्ज, स्टाकिंग, वेन्डेज, ब्रिजिश, कालर केम्फर्टर नेकटाई मफलर, करचीफ, वाच, केन, अम्ब्रेला, अथवा अंगा, चपकन, कुरता फतूई, अचकन, फेंटा पगड़ी, जरीदार टोपी, या फेल्टकेप, दुशाला, खेस आदि बहुत २ आडंबर बढ़ाना पड़ते हैं।

आप अपने पूर्वजों या ग्रामीण मनुष्यों के शरीर के रंग को देख हंसते हैं--उन्हें काले भुसुंड कहकर हंसी करते हैं और अपने को गोरे व सुन्दर मानकर प्रसन्न होते हैं— अपने निर्बल और पीलेपन को सौभाग्य समझते हैं इत्यादि २।

आपके पूर्वज जिन्हें आप जंगली कहते हैं, कंजूसादि की उपाधियों से विभूषित करते हैं, वे करोड़ों अर्बों रुपया कमाते और उसी प्रकार व्यय (दानादि) भी करते थे। आबू के मंदिर, देवगढ़ के मंदिर व प्रतिमाएं, बूढ़ी (शिशुपाल राजा की) चन्देरी के मंदिर व प्रतिमाएं, थोवन, चन्देरी, पपौरा, खजराहा, पवा, सोनागिरि, दोणागिरि, नैनागिरि आदि क्षेत्रों तथा सागर, जबलपुर, ललितपुर, झांसी, सिवनी, नागपुर, नरसिंहपुर, दमोह, मिरजापुर, रीवां, सतना, भेलसा, भोपाल आदि नगरों तथा ग्रामों के मंदिर उनके पुरुषार्थ के चिन्ह हैं। हां, यह बात अवश्य है कि वे अपने द्रव्य का व्यय बाह्य शरीर के आडंबर में नहीं करते थे, वे खूब (मन भर) खाते थे, खिलाते थे, और समयोचित धर्म कार्यों में धन को लगाते थे, वे पहिरना नहीं जानते थे, यह बात नहीं है। परन्तु राज्यों के परस्पर लड़ाई झगड़ों व लूट पाट के कारण भी उन्हें संकोच करना पड़ता था, तो भी यदि देखा जाय, तो किसी २ गृहस्थ के यहां अब भी कोई २ पुराने वस्त्र, आभूषण तथा बर्तन आदि शेष हैं। उनके मूल्य सजावट, बनावट और मजबूती को देखकर आपको दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है।

उनका विचार बहुत अच्छा था, वे कहते थे मुर्दे को सजाने से शोभा नहीं होती–अर्थात् निर्बल शरीर बनाकर उसको अलंकार पहिराने से क्या लाभ! अलंकारों से पुरुषार्थ तो न बढ़ जायगा। पुरुषार्थ बढ़ाने के लिये शुक्रोदय (वीर्य परिपक्व होने अर्थात् तरुणावस्था के प्रारंभ होने तक) अखंड ब्रह्मचर्य रखकर, खूब शरीर से व्यायाम (परिश्रम) करना और अमृतोपम-गोरसादि युक्त भोजन करना, पश्चात् शुक्रास्त होनेपर (वीर्य शक्ति घटने अर्थात् तरुणावस्था के अंत में) नियम से विषय भोगों का त्याग कर वाणप्रस्थ व सन्यासी होकर शेष जीवन में पारलौकिक हित साधन करते थे। यही कारण है उनका शरीर बिना आडंबर के भी सुन्दर सुडौल व दृढ़ दिखाई देता था, वे पुरुष सिंह जैसे कर्म शूर होते वैसे धर्म शूर भी होते थे। वे कमाना भी जानते थे और खर्च करना भी जानते थे, परंतु आज आप न कमाना जानते हैं न खर्च करना ही जानते हैं, परंतु लोकों में यह बताने की चेष्टा अवश्य ही करना सीख गये हैं कि हम बड़े उदार हैं-हमारे नव लाभ और निरह खर्च लगे ही रहते हैं, हम जोड़ के नहीं रखते, इत्यादि। परन्तु भाई सोचो तो तुम्हारे है ही क्या जो बचावो, आप का पुरुषार्थ तो वर्तमान गृह कार्य चलाने के योग्य भोजन और वस्त्रादि ही की पूर्ति नहीं कर सक्ता है, तब बचाने की क्या बात है! आप पेटभर खाही नहीं सक्ते या खाने को नहीं पाते, तब खिलावेंगे क्या! यही कारण है कि आप नित्य नये प्रस्ताव करते हैं, यह जीमन बंद करो; वह पकान कम करदो क्यों कि पास में है नहीं और (कर्ज लेकर) करना पड़ता ही है। यहां पेट भर न खाने से शरीर की स्थिति का पता तब लगता है जब वस्त्र उतरवा दिये जांय, तो अस्थिमात्र युक्त (सुदामा जी जैसा) तन पंजर दिखाई देता है, आपका मुख पके और चूसे हुवे आम के सदृश फीका, मुरझाया हुवा, और निस्तेज दिखता है। जसे घुने बांस पर वार्निश पोतने से उसकी शोभा नहीं बढ़ती और न मजबूती आती है किंतु उससे लोग धोखा खाकर अवश्य जोखम में पड़जाते हैं। उसी प्रकार यह आपका निस्तेज-सार हीन मुख व शरीर, तेल, पाउडर, साबुन, कंघी, केश, व वस्त्रादि से

सजाने पर दृढ़ नहीं होता न शोभा ही होती है, परन्तु अवश्य ही कोई चिड़िया आपके जाल में फंस जाती है, और वह बेचारी आप के रहते, न रहते, वैधव्य अवस्था को यावज्जीव अनुभव किया करती है। उसका पिता व संरक्षक उसका हाथ आपको पकड़ा कर अपने कर्तव्य से छुट्टी पाता है। और आपके पितादि भी आपके चार हाथ कर कृतकृत्य हो जाते हैं। यहां आपका ब्याह हुवा नहीं, कि कमाने की चिंता आपपर सवार हुई बस मरे को मारें शाह मदार, पहिले ही जीवन भार था और अब तो दिन कटता है, तो रात्रि नहीं और रात्रि कटी तो दिन नहीं कटता ठीक है,

"दोपद से चौपद भये, पुनिरपि षट पद होय।
पुनि अष्टापद होयकर, जीवन डारो खोय ॥

अर्थात दुपद नर पक्षी (स्वतंत्र जलथल और नभ में विचरने वाला) ब्याह कर चौपद (पशु) होगया, फिर जब सन्तान हुई तो बालक के मुख कमल पर भ्रमण करने वाला षट् पद (भ्रमर) होजाता है, और ज्योंही बालक आठ १० वर्ष का हुवा, कि उसका ब्याह कर के अष्टापद (मकडी) हो चिंतावों का जालपूरकर, उसी में फंसे २ प्राण खो बैठता है। वास्तव में आपकी अवस्था, ऐसी है, जैसी श्री तुलसीदासजी ने भरतजी के मुख से वशिष्ट जी (जो उन्हें राम बनवास के काल में राज्य करने को कह रहे थे) के प्रति कह लाया है।

"गृह गृहीत पुन बात बश तिहि पुनि बीछी मार,
ताहि पियाइय वारुणी कहो कवन उपचार ॥"

अर्थात् प्रथम ही निर्बल माता पिता द्वारा उत्पत्ति हुई, फिर संरक्षण व पोषण पालन में द्रव्याभाव से कमी रही, इस पर खाने पीने को यथेष्ट न मिला और ऊपर से कच्ची वय में ही (शुक्रोदय हुवे बिना ही) ब्याह हो गया, स्त्री के आते ही पिता माता व दादा दादी आदि बनने की सूझी और ज्यों त्यों कर भाग्य चेत गया, बस खाने खेलने के दिनों में, खिलाने पिलाने वाले बन गये, घर गृहस्थी का भार लद गया, एक पर एक चिन्ताओं के बादल उमड़ उमड़ कर आने लगे बस अकाल में ही काल वश हो गये।

दाहोद वाले दिग० जै० प्रा० स० बम्बई और मालवा के संयुक्त अधिवेशन के समय, हीराचन्द मलूकचंद काका शोलापुर ने व्यायाम विषय पर व्याख्यान देते हुवे कहा था कि "आप की स्त्रियां इसलिये शीघ्र विधवा हो जाती हैं कि आप शीघ्र मर जाते हैं, और आप शीघ्र इसलिये मर जाते हैं कि आप निर्बल हैं, भूखे मरते हैं, और तिस पर भी चिन्ताओं के भार से दब रहे हैं इत्यादि "बात बड़ी सीधी और सरल परन्तु गंभीर है। कुछ ही वर्ष पूर्व हमारे देश में इतनी विधवाओं की चिल्लाहट सुनाई नहीं देती थी, जितनी आज सुनाई देती है, कोई कहता है विधवाश्रम खोलो, कोई कहता है, विधवाओं के ब्याह का प्रबन्ध करो, तब कोई कहते हैं देखो ऐसा पाप मई वचन मत निकालो अर्थात् वे उसका खंडन करते हैं। तात्पर्य आज कल यह चर्चा बहुत जोर पकड़ रही है, परंतु हम पूछते हैं, यह चर्चा क्यों होती है? तब उत्तर होता है, कि क्या करें? विधवाएँ बढ़ गई हैं, अनेकों गुप्त पाप होने लगे हैं इत्यादि। हम कहते हैं भाई पहिले क्या होता था? क्या विधवाएँ पहिले नहीं थी? उत्तर थीं, पर थोड़ी। प्रश्न? अब क्यों अधिक हो गईं, तो वही उपर्युक्त काका वाला उत्तर, इससे मालूम होता है कि पहिले योग्य अवस्था हो जाने पर ही ब्याह होता था और तरुणावस्था

के अंत में व्याह करना तो दूर रहे, किन्तु प्रस्तुत स्त्री का भी परित्याग कर दिया जाता था। इस लिये विधवाएँ थोड़ी होती थीं और जो कर्मयोग से हो भी जाती थीं, तो उनके सन्मुख, अनेकों साधु त्यागी ब्रह्मचारी केवल वृद्ध व वृद्धाएँ ही नहीं किन्तु तरुण व कुमार वयस्क नर, नारियां आदर्श रूप जीवन (संयम-व्रत पूर्वक) सार्थक करते दृष्टि गत होते थे, जिनको देखकर व उन के चरित्रों को सुनकर विषय कषायें दूर भाग जाती थीं, वैराग्य की साक्षात मूर्ति सन्मुख आ जाती थी, इसलिये विधवा विलाप तथा पुकार लिखने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि पुकार था ही नहीं, सुनाई कहां से देवे?

पुकार की न आवश्यकता ही थी, न पुकार ही होती थी। परन्तु आज शिशुओं के ब्याह होते हैं और आसन्न मृत्यु वृद्ध भी तीव्र काम से प्रेरित होकर बेचारी अबोध बालिका पर अत्याचार करते हैं, इसलिये एक ओर तो विधवाएँ बढ़ रही हैं और दूसरी ओर उनके सन्मुख बुरा आदर्श आरहा है, जिस घर में १५ वर्ष की बाल विधवा बैठी है, उसी घर में ५५ वर्ष का दूल्हा मौर बांध कर ब्याहने जाता है धिक्कार है, इस पापी को जो साक्षात् पाप मूर्तिवत बेचारी बाला को दुखी करता है। भाई आप कहते होंगे कि बलवान मनुष्य ही अधिक विषय भोग सकता है, परन्तु यह भूल है, अधिक विषय भोग की इच्छा निर्बलों को ही होती है, उनकी कभी तृप्त नहीं होती है क्योंकि वे इच्छानुसार भोग नहीं कर सकते हैं, यह सिद्धान्त है। जैसे चिड़ियाँ आदि तुच्छ प्राणी अधिक विषय सेवन करके भी अतृप्त रहते हैं उससे हजारवां भाग भी सिंहादिक पशु विषय नहीं भोगते हैं और वे जब विषय भोगते हैं, तब नियम से गर्भ स्थिति हो जाती है, अधिक विषय भोगने की इच्छा होना, तथा पीलापन ये निर्बलता के ही चिन्ह हैं अब एक बड़ी आश्चर्य की बात और यह है, कि आप जब निर्बल और अल्प-वय भोगने वाले हुवे तो आप स्त्रियों को बलवान रहना भी नहीं देख सकते। इसलिये आपने उनको निर्बल बनाने के लिये उनका व्यायाम (घरू काम काज, जैसे कूटना, पीसना, दलना, भोजन बनाना, झाड़ना बुहारना, पानी भरना, बासन मांजना, शोधना, बीनना, लीपना पोतना, रहटा कातना, सीना बुनना आदि) छुड़ा दिया है। इससे प्रथम तो उन्हें घरमें भीतर सर्व अंग पर आवरण डालकर गंदी हवा में रहना, और फिर बैठे रहना, तब फिर भोजन कैसे पचे? इससे वे शुद्ध वायु और व्यायाम के अभाव में पीली पीली हो जाती हैं, जिन्हें आप गोरी व सुन्दर समझने लगते हैं, फल यह होता है कि वे समय से पहिले ही गर्भवती होकर अकाल में ही अपने जीवन को खो बैठती हैं, अथवा बुढ़िया बनकर जीवन बिताती हैं। पहिले स्त्रियां अनेक पुत्र जन कर भी जितनी बलवान रहती थीं, आजकल आपकी पत्नियाँ १ ही बालक को जन्म देकर बुढ़िया बन जाती हैं, उनसे उठते बैठते नहीं बनता है। आपके पूर्वज पति पत्नी धर्म को जानते थे, और वे एक दूसरे को केवल सांसारिक विषय भोगों ही में नहीं किन्तु उभय लोक हितकारी कार्यों में भी परस्पर सहायक होते थे, यहां तक कि स्त्री पुरुषों की समाज, देश व राज्यादि कार्यों में भी सहायता देती थीं उनको धर्म मार्ग में स्थिर रखने का भी पूर्ण प्रबन्ध करती थीं, और इसी प्रकार पुरुष भी उनको केवल विषय भोगों व बच्चे पैदा करने का

मशीन ही नहीं समझते थे, किन्तु उन के भरण पोषण के सिवाय सम्यक्त्व मार्ग में लगाकर जिस प्रकार वे स्त्री पर्याय से छूट पुरुष पर्याय प्राप्त कर मोक्ष मार्ग में लग सकें, ऐसा उपाय करते थे। वे उन्हें पढ़ाते थे, शास्त्र सुनाते थे, समाज, देश आदि की परिस्थिति बताकर उपदेश देते थे, व्रत संयम आप पालते और उन से पलवाते थे। तब आप तो व्रत संयम जानते ही नहीं और उन बेचारियों के व्रत उपवासों की निन्दा करके हंसी उड़ाते हैं, उपदेश कौन देवे? कब देवे? कौन और कब पढ़ावे? यहां तो केवल घर आये, और ठिठोली हुई। या तो बिलकुल उन से विरक्त हो बाजार की हवा खाना, या अतिशय प्रसन्न होकर दीवानी जवानी में कामान्ध हो आंखों के तारे (झूठा प्रेम बनाकर) बना लेना बस यही सभ्यता शेष रहगई है, इत्यादि व्यवस्था जब आपके समाजकी होगई है, तभी आपने सौ दण्डी का अर्थ सौ दण्डधारी न करके सौ दण्डी (अर्थात् चुगलखोर कर दिया है)। क्योंकि दण्डी का अर्थ दण्डधारी करें, और जब अपनी ओर देखें तो लज्जा आवे. इसलिये ऐसा करना युक्त ही था। परंतु प्यारे भाइयो आप दृष्टि देवें और पूर्वजों के बल पराक्रम और कर्तव्यों पर विचार करें, तो आप को उक्त शीर्षक का वास्तविक अर्थ समझ में आजावेगा। याद रखिये बलवान नर ही इस लोक व परलोक में अपना व पर का हित साधन कर सक्ता है। निर्बल नहीं। इस लिये उक्त कहावत को स्मरण रख कर आप सच्चे कर्म और धर्म वीर बनियेगा।

—दीपचन्द्र वर्णी।

भारतोद्धार।
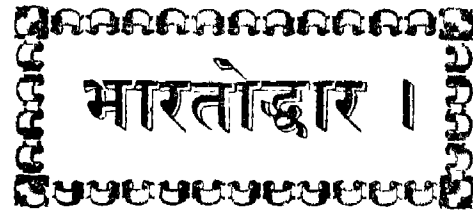
(गतांक से आगे)

छटवां दृश्य

(स्थान—मोहनसिंह का उपवन-लक्ष्मी देवी सखियों के साथ घूमती है)

एक सखी-बूढ़ा शिशिर हटाके बालक वसन्त आया।
आमों पै मौर दिलमें आनन्द कैसा लाया॥ बूढ़ा

दूसरी— है केतकी कहीं पर फूली कहीं चमेली
इसने चमन में कैसा रंग ढंग है जमाया॥ बूढ़ा

तीसरी—पाया वसन्त सा है मन्मित्र इस मदन ने
कैसी मरोर मारी क्या रंग है जमाया॥ बूढ़ा

एक सखी—सखी! यह ऋतु कितनी सुन्दर होती है। कोयल कूक रही हैं, आमों पर मौर आ रहा है न ठण्ड है न गरमी, पांचों ही इन्द्रियाँ रीझ रहीं हैं।

दूसरी—लेकिन अपनी सखी से भी तो पूछो उन्हें कैसी मालूम होती है।

लक्ष्मीदेवी—सचमुच आजकी शोभा कुछ अनोखी ही मालूम होती है इस फुलवाडी में फूले हुए फूल कितने सुन्दर मालूम होते हैं आखों को जबरदस्ती अपनी ओर खींच रहे हैं उस पुष्करिणी में (नेपथ्य की ओर उँगली से इशारा करके) फूले हुए कमल नोली चुनरिया पर लाल फूलों की तरह हृदय को अपनी ओर खींच रहे हैं, मन्द मन्द वायु के झोंकों से हिलते हुए ऐसे मालूम होते हैं मानों पानी पर नृत्य करते हों। यह कोयल भी कैसे मीठे स्वर से

(इस समय नेपथ्य में कोयल की आवाज होना चाहिये)

बोल रही है जिसको सुनकर जी मचल मचल जाता है।

एक सखी—अरररररर बेचारी मामूली चीजों को भी कितना बढ़ा दिया। हम लोग उनकी प्रशंसा करते तो ठीक भी था, लेकिन आपको उनकी इतनी प्रशंसा करना बिलकुल नहीं सोहता। क्योंकि मेरी समझ में तो यह सारी शोभा आपके दर्शनों के लिये आई है।

दूसरी सखी—नहीं जी! संसार की सब सुन्दर वस्तुएँ हमारी सखी को गुरु बनाने आई हैं। देखो न! यह कोयल हमारी सखी से बोलना सीखना चाहती है।

तीसरी—नहीं जी! सभी वस्तुएँ गुरु बनाने नहीं आई हैं। कोई कोई तो लड़ने के लिये आई हैं इन कमलों को देखो न, सखी की आंखों से लड़ने आये थे लेकिन हार गये तो जी जल गया उसी जलन को बुझाने के लिये तो पानी मे घुस गये हैं।

चौथी—हां! और मछलियों को क्यों छोड़ देती हो वे तो ऐसी शरमिन्दा हुई कि विचारी पानी के बाहर मुँह भी नहीं निकालतीं।

लक्ष्मीदेवी—चलो! चलो! अब रहने भी दोगी! तुम लोग तो आज कालिदास को भी मातकर रहीं हो।

एक सखी—हां सखी! अब रहने दो नहीं तो हमारी सखी के कोमल हृदय में (लक्ष्मीदेवी की छाती पर उँगली की हलकीसी ठोकर लगाकर) चोट आ जायगी।

दूसरी—और यह खिली हुई कली (लक्ष्मी के मुँह पर हाथ फेरकर) मुरझा जायगी।

लक्ष्मी—अरी तुम लोगों ने भंग चढ़ाली क्या? आज तो बुरी तरह से मेरे पीछे पड़ी हो। अगर मेरा दिल इतना कमजोर होता तो (लज्जित हो जाती है)

सखी—हां! हां! कह डालो न! कि दिन भर के विरह में फट न जाता।

लक्ष्मी—अच्छा! अब ज्यादः तंग मत करो तुम जीती और मैं हारी।

मोहनसिंह—(प्रवेशकर) तो मैं आ गया प्यारी!

(सखियां चौंककर मुसकराने लगती हैं लक्ष्मी लज्जित हो जाती है)

मोहनसिंह—आज यह कैसा रगड़ा झगड़ा मचाया है।

सखी—नहीं सर्कार! श्रीमतीजी को मनाया है।

लक्ष्मी—तुम लोग बातें बनाने में तो एकही हो।

सखी—नहीं सरकार! चार तो अभी दिख रहीं हैं।

लक्ष्मी—तुम लोग आज बात भी न करने दोगी।

एक सखी—(अन्य सखियों से) चलो जी! अब सखी को बात करने दो।

(सब को खींचती है। मोहनसिंह हँसता है लक्ष्मी बनावटी बरजाई से कहती है—)

लक्ष्मी देवी—विधाता ने न जाने इनके पेट में कितनी बातें भर दी हैं।

(एक सखी लक्ष्मी की बातें अनसुनी करके सब को आगे खींच लाती है और रासड़ा[1] बनाकर नाचने लगती हैं और वसन्त का गीत गाती हैं—)

---

[1] गोलचक्करबनाकर। तालियाँ बजाते हुए नाचना, रासड़ा गुजराती शब्द है।

सखियाँ—सखीरी आया आज वसन्त !

अब न शीत का नाम कहीं है हुआ शिशिर का अन्त। स०
लगे आम में मौर-हुएँ अब पुष्पित सभी दिशायें
अनुपम भूषण मिले प्रकृति को मिले प्रेमजी कन्त[2]। स०
नीरस हृदय सरस बन बैठे मुरझे मन भी फूले
डूबे राग उदधि में रागी डूबे सारे सन्त। स०
भौंरों के गुंजार शब्द से सारा उपवन गूंजा
रसिकों को मिल गई[3] रसिकता रस मय हुआ दिगन्त

(सखियों का प्रस्थान)

मोहनसिंह—प्यारी ! सब ऋतुओं में बसन्त ऋतु सबसे प्यारी मालूम होती है।

लक्ष्मी—नाथ ! यद्यपि यह बात सत्य है फिर भी जैसे बीमार आदमी को नाना तरह का स्वादिष्ट भोजन भी सुखकर नहीं होता उसी प्रकार (कुछ मुस्किराकर) जिसको विरह की बीमारी है उसको यह बसन्त ऋतु आनन्द देने वाली के स्थान में जी जलाने वाली हो जाती है।

मोहनसिंह—इसमें क्या शक ! विरह ऐसा ही होता है परन्तु क्या करूं बड़े आदमी को जितना आनन्द रहता है उतनी झंझटें भी रहती है।

लक्ष्मी—सो तो मैं जानती हूं परन्तु यह हृदय इतना कमजोर है कि आप के जाते ही आपके दर्शनों का प्यासा हो जाता है।

मोहन—धन्य है ! सती नारियों के ये ही लक्षण हैं ऐसी पत्नी को पाकर मैं अपने को परम सौभाग्यवान् मानता हूं।

लक्ष्मी—यह आप क्या कहते हैं ? मैं तो आप की दासी हूं मैंने ऐसा किया ही क्या है जिससे मेरी इतनी प्रशंसा होरही है।

मोहन—प्यारी तुम कुछ न करके भी बहुत करती हो, जब मैं बाहरी रगड़ों झगड़ों से दुखी हो जाता हूं तब एक तुम्हीं हो जो मुझे स्वर्गीय सुख का अनुभव करा देती हो, नहीं तो जमीदारी में इतने झगड़े हैं कि दिनरात नाकों दम रहता है आखिर देखो न ! वह झगड़ा हो ही गया।

लक्ष्मी—हां ! उस झगड़े का क्या कारण था ? उस किसान ने आपके साथ कैसा बर्ताव किया था जिससे कि आप तलवार निकालकर मारने को तैयार हो गये थे।

मोहन—क्या कहूं ? ये नीच ऐसे बदमाश हैं कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। मैं बहुत चाहता हूं कि कोई झगड़ा न हो लेकिन ये नीच अपनी नीचता नहीं छोड़ते।

लक्ष्मी—आखिर इसका कुछ कारण भी ?

मोहन—कारण क्या ? ये लोग झूठी शिकायतें ले लेकर आ जाते हैं कोई कहता है उस नौकर ने मेरी बहिन की ओर बुरी नजर से देखा, कोई कहता है धक्का दे दिया, आखिर इनकी बातों का कुछ ठिकाना भी है ?

लक्ष्मी—अपने नौकर ऐसा करते होंगे—

मोहन—कभी नहीं ! ऐसा हो ही नहीं सकता।

लक्ष्मी—तो क्या ये लोग व्यर्थ ही अपनी बदनामी कराते हैं ? दुनियाँ तो ऐसी बदनामी को छिपा जाती है। फिर क्या ऐसा कोई हो सकता है जो अपनी बदनामी करावे ? वे गरीब हैं क्या इसलिये झूठे कहलाने लायक हैं आप एक बार खोज तो कराते ?

मोहन—क्या खोज कराना है जमीदारी में तो ऐसा चलता ही रहता है।

लक्ष्मी—(कुछ रंज से) तो क्या जमीदारी नरक का सब से सीधा रास्ता है ?

---

२ "मिले प्रेमजीकन्त" कहते हुए लक्ष्मी और मोहन की ओर इशारा करती हैं।

३ 'रसिकों को मिल गई रसिकता" कहते समय दोनों की ओर देखती है।

मोहन—नहीं लक्ष्मी! अभी तुमने दुनियां देखी नहीं है। जमींदारी में जैसे के साथ तैसा बर्ताव करना पड़ता है और ऐसा करना नरक का रास्ता नहीं है।

लक्ष्मी—यदि ऐसा है तब उन गरीबों के साथ आपको बहुत ही कोमल बर्ताव करना चाहिये मैंने जो उस समय दृश्य देखा था वह तो मेरी आंखों में अब भी झूल रहा है स्वामी जी! माफ कीजिये मेरी समझ में नहीं आता कि उन दोनों ने कुछ बदमाशी की होगी।

(दासी का प्रवेश)

दासी—सरकार! बाहर एक साधू खड़ा है और आप से मिलना चाहता है।

मोहन—अरे तो यहां साधुओं का क्या काम?

लक्ष्मी—स्वामी जी! उनकी दो बातें सुनने में क्या हर्ज है देखें क्या कहते हैं?

मोहन—जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं अभी बुलवाता हूं (दासी से):—अच्छा साधू को यहीं भेजदो (लक्ष्मी से):—प्यारी! आजकल बहुत ढोंगी साधु फिरने लगे हैं कहां तक इनसे मिला जाय ये तो टिड्डी दल से उमड़े हैं।

लक्ष्मी—यदि ढोंगी होगा तो अपना क्या कर लेगा सम्भव है कोई सच्चा साधू हो क्योंकि ढोंगियों को आप से मिलने की हिम्मत ही नहीं पड़ती।

मोहन—खैर आने दो देखा जायगा (महात्मा आते हैं लक्ष्मी खड़ी होती है पीछे से मोहन भी खड़ा हो जाता है)

महात्मा—(कोमल स्वर से) क्यों मोहनसिंह आज तुमने उन गरीबों को क्यों सताया? यदि सौभाग्य से तुम मालिक हुए हो तो क्या गरीबों के साथ इस प्रकार निर्दयता पूर्ण व्यवहार करोगे। बड़प्पन क्या है इस बात को जानते हुए भी ऐसा अत्याचार करना कहांतक ठीक है?

मोहन—साधू जी महाराज! हम आपका अपमान नहीं करना चाहते फिर भी हमारे रियासती मामलों में दस्तंदाजी करना मुनासिब नहीं है, आपका वकालत करना वृथा है।

महात्मा—सचमुच साधू को सांसारिक रगड़ों झगड़ोंसे निर्मुक्त रहना चाहिये। लेकिन जब कि गरीबों के ऊपर अन्याय और अत्याचार की दिन दहाड़े वर्षा होती हो उस समय उनकी रक्षा करना एक साधु का परम कर्तव्य है

मोहन—(कुछ घृणापूर्ण सा मुँह बनाकर) उँह! मुझे आपकी ये बातें बिलकुल पसन्द नहीं। आपको जो अपने मतलब की बात कहना हो कह डालिये मैं एकबार कहचुका हूं कि आप साधू होकर दुनियाँ के झगड़ों झगड़ों में मत फँसो।

महात्मा—क्या परोपकार करना दुनियाँ के रगड़ों झगड़ों में फँसना है? साधु क्या तुम्हारे दरवाजे भीख माँगने आवेगा? स्मरण रक्खो जो पर का कार्य साधता है वही साधु कहलाता है उसे किसी के रुपये पैसों से कोई मतलब नहीं रहता।

मोहन—अच्छा आप सच्चे साधु ही सही मुझे आपकी बातें सुनना मंजूर नहीं है।

महात्मा—मोहनसिंह! इस चार दिन की जिंदगी पर इतना न इतराओ, दीन गरीबों को सताकर नरक के रास्ते मत जाओ, धन और शक्ति पाकर गरीबों की रक्षा करो, अबलाओं के आंसू पोंछो? धन से ही कोई बड़ा आदमी नहीं बनता—

बड़ा है एक वह जगमें गरीबों को बताता है।
गरीबों के लिये जीवन तथा तन मन लगाता है।
बड़ा अधिकार पाने से बड़ा कोई न होता है।
करे जो स्वार्थ की हत्या अन्त में आप रोता है।

मोहन—महाराज। आपकी बातें बुरी नहीं हैं फिर भी मैं विवशहूं।

महात्मा—क्या पापमय जीवन बिताने के लिये तुम विवश हो, यह कैसी छल पूर्ण बात है! क्या हिंदू होकर भी तुम यही समझते हो कि यह सब सम्पत्ति तुम्हारे पीछे चली जायगी? यदि नहीं तो इसके पीछे अपना जीवन क्यों बरबाद करते हो?

संसार में, भला या बुरा, मनुष्य का नाम ही रह जाता है अब न राम हैं, न रावण, लेकिन संसार एक के नाम पर सिर झुकाता है और एक के नाम पर थूकता है।

मोहनसिंह— तो मैं ने ऐसा क्या पाप किया है।

महात्मा—क्या तुमने गरीबों को नहीं सताया! अबलाओं और बच्चोंके साथ निर्दयता का व्यवहार नहीं किया? लेकिन सोचो! इससे तुम्हें क्या मिला? यदि तुमने नारियों को मा, बहिन समान समझा होता— अपने बदमाश नौकरों के कामों को रोका होता, गरीबों को अपने भाई, और बच्चों को पुत्र समान पाला होता तो तुम्हारा क्या घट जाता? हां! तुम रावण न बनकर राम बन जाते। अब अपने दिलसे ही पूँछो कि तुम क्या हो!

लक्ष्मी—(मोहन से) प्राणनाथ! ये महात्मा के वाक्य नहीं हैं किन्तु ईश्वर की प्रेरणा है।

(मोहन सिर झुकाये सोचता ही रहता है)

महात्मा—मोहनसिंह! सोचलो! अच्छी तरह सोचलो!! नरक और स्वर्ग, दोनों की कुंजी तुम्हारे हाथ में हैं। जिसका चाहो उसी का द्वार खोल सकते हो।

धन-वैभव सभी नाश होने वाला है बिजली की चमक के समान चपल है। शरीर छूटने पर यहां तुम्हारा कुछ न रह जायगा तब इन तुच्छ चीजों से स्थायी यश क्यों नहीं पैदा करते?

लक्ष्मी—स्वामी जी! कुछ ध्यान दीजिये।

मोहन—(आंसू ढलका कर) महात्मा, आपके पवित्र उपदेश से मेरी आंखें खुलगईं सचमुच मैं बड़ा पापी हूं—मैं ने शक्ति का पूरा दुरुपयोग किया, सदा स्वार्थी बना रहा, मेरे पाप न मालूम मुझे कहां ले जायंगे मुझे तो चारों ओर नरक ही नरक दिख रहा है!

महात्मा—पश्चात्ताप करो! शेष जीवन को सुधारो सुधा जीवन बनाओ सब आपत्तियाँ दूर होजावेंगी।

मोहन—नहीं! मेरे पाप बहुत हैं आपको नहीं मालूम कि मेरे हाथ खून से रंगे हैं। (लक्ष्मी और महात्मा दोनों चौंकते हैं) ओह! (चारों ओर देखकर) सचमुच मेरे चारों ओर नरक है महात्मा जी बचाइये।

(महात्मा के चरणों पर गिर पड़ता है)

पटाक्षेप

———

नरसिंहपुर निवासी वैशाखिया बंशीधर जी.

Hitkarini press Jubbulpore.

नरसिंहपुर निवासी वैसाखिया बंशीधर जी।

यों तो संसार में नित्य प्रति सैकड़ों मनुष्य जन्म लेते और मरते हैं परन्तु जीवन उन्हीं का सार्थक होता है जो संसार के लिये कुछ कर जाते हैं। संसार मे ऐसे ही महापुरुषों की स्मृति बनी रहती है। इन्हीं महानपुरुषों में से हमारे चरित्र नायक स्वनामधन्य श्रीयुत बंशीधर जी वैसाखिया भी हैं।

आपका जन्म सम्वत् १९३५ में नरसिंहपुर में हुआ था। आपके पूज्य पिता स्वर्गवासी परमेश्वरदास जी वैसाखिया साधारण गृहस्थ थे जिन्हें एक बड़े कुटुम्ब का पालन पोषण करना पड़ता था। उस समय धंधा सिर्फ घी का करते थे। हमारे चरित्रनायक भी योग्य पिता की छत्रछाया में विद्याध्ययन करने लगे। उस समय ४ क्लास अंग्रेजी की पढ़लेना भी बहुत समझा जाता था अतएव वे इससे अधिक विद्यालाभ न कर सके। स्थानीय स्कूल में १ वर्ष शिक्षक का काम करने के पश्चात् आप बस्तर स्टेट पुलिस विभाग में भरती होकर चले गये। वहां आप अपनी योग्यता और कुशलता के कारण बहुत ही अल्प समय में सिपाही के पद से सबइन्सपेक्टर हो गये। कुछ समय पश्चात् वहां बलवा होने के कारण हमारे चरित्रनायक जन्म भूमि लौट आये क्योंकि एक महान कार्य्य आपके द्वारा सम्पन्न होने वाला था। आप तीर्थ-क्षेत्र कमेटी की तरफ से श्री मंदारगिरिजी के उद्धार के लिये रवाना होगये और आपने बड़ी ही योग्यता के साथ उस क्षेत्र को अपने अधिकार में किया और सदैव के लिए दिगम्बरियों के कब्जे में करा दिया। इससे पहिले यह तीर्थ लुप्तप्राय सा था और एक पाखंडी साधु उस पर अधिकार जमाये हुये था, तथा यात्रियों को बहुत ही तंग किया करता था। श्री वासपूज्य स्वामी का मोक्षस्थान चम्पापुर माना जाता है परन्तु यथार्थ में शास्त्रों में उल्लेख मंदारगिरि का ही आता है।

इस कार्य्य को समाप्त करने के पश्चात् आप श्री सम्मेदशिखर जी की तेरापंथी कोठी का कार्य्य भार जो उस समय तक बड़ी दुरवस्था में था। सम्भालने चले गये। यहां का प्रबन्ध आपने पूरी २ योग्यता और दक्षता के साथ चलाया। आपने वहां की धर्मशालाओं और मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया। कोठी की कितनी ही जमीन पर, ठीक इंतजाम न होने की वजह से, श्वेताम्बरियों ने अपना कब्जा जमा लिया था। आपने श्वेताम्बरियों की ओर से होने वाली फौजदारी और मारपीटकी कुछभी परवा न करते हुये उस जमीन पर दिगम्बरियों का पुनः अधिकार स्थापित किया और उस जगह को चारों ओर पक्के अहाते से घिरवा दी। कोठी की आर्थिक दशा में भी बहुत कुछ सुधार किया।

आपका अपनी धर्मपत्नी पर अत्यधिक स्नेह था। मधुवन में उनका अचानक देहांत होजाने के कारण आपका मन फिर वहां नहीं लगा और आप नरसिंहपुर वापिस चले आये। आपके इस समय दो सन्तान हैं। एक पुत्री है और एक पुत्र जो इस समय विद्याध्ययन करता है। आप यदि चाहते तो दूसरी शादी करसके थे परन्तु आपने ऐसे विचार को मनमें स्थान भी नहीं दिया।

आप चुपचाप बैठने वाले न थे और आपका ध्यान शीघ्रही विश्वव्यापी असहयोग आन्दोलन की तरफ आकर्षित हुआ। आपने इस आन्दोलन में जोरों के साथ भाग लेना शुरू करदिया। आप भारत सरकार की मेहमानी भी नागपुर

सत्याग्रह के अवसर पर कर आये हैं। आपको १ वर्ष की कड़ी कैद हुई थी और अनेक प्रलोभनों के देने पर भी आपका ध्यान जरा विचलित न हुआ। सरकारने आपको कुछ माह ही जेल में रख छोड़ दिया। परन्तु आपने शहरमें पुनः आन्दोलन उठाया। और जेलसे बाहर आने के पश्चात भी आप जेल जैसे भोजन करते रहे। आप कहा करते थे कि, यदि सरकार ने हमें छोड़ दिया है तो क्या जब हम इस काम पर तुले हुये है तो फिर भी जेल जाना पड़ेगा।" और इसीलिये रूखी जुआर की रोटी का ही भोजन करते रहे

सरकार ने पुनः आप को ६ माह की स त कैद दी जिसे आपने सहर्ष हँसते २ स्वीकार किया। गत माह में ही आप जेल से मुक्त होकर वापिस आगये हैं।

हम अपने चरित्र नायक का वृतान्त समाप्त कर चुके। उनके सारे कामों की आलोचना करने पर उनके चरित्र में हम तीन बातें पाते हैं। पहले आप दृढ निश्चयी हैं। जिस कार्य में हाथ डाला, उसमें सैकड़ों विघ्न आनेपर भी अंत तक पूरा किया। दूसरे आपकी व्यवस्था शैली बहुत अच्छी और गम्भीर है। अव्यवस्थित काम को हाथमें लेकर उसे ठीक सिलसिले पर लादेना आपके बांये हाथका खेल है। तीसरे आपकी निर्भयता और स्पष्टता अनुकरणीय है। आप जब जिस बात को उचित समझते उसे निर्भयता पूर्वक कहने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं।

आपका स्वभाव बड़ाही मृदुल और हंसमुख है। आप बच्चों से बड़ा स्नेह रखते हैं और अभिमान तो आपको छू तक नहीं गया है। हम परमात्मासे आपकी दीर्घायु की प्रार्थना करते हुए इस संक्षिप्त जीवन वृतान्त को समाप्त करते हैं। —मौजीलाल डेवड़िया।

पर्दा

हम रूढ़ियों के इतने अन्ध भक्त और दास हो गये हैं कि उनसे प्रत्यक्ष भीषण हानि देख और अनुभव करके भी उनसे मुक्त होने का साहस हमें नहीं होता। रूढ़ियां, जाति रूपी शरीर में असाध्य रोग के समान हैं जिसका निदान जाति हितैषी वैद्यों के प्रयत्न-चिकित्सा शास्त्र में नहीं है। हम लोगों में विशेषकर उत्तर भारत में रहने वाले लोगों के यहां स्त्रियों को पर्दे में रखने की बड़ी कड़ी प्रथा है। इस भाग की बेचारी स्त्रियां पर्दे के कठघरे में सदा बन्द रक्खी जाती हैं। कठघरे में तो सींकचों के बीच से वायु और प्रकाश पहुंचता रहता है, पर पर्दे के कठघरे में यह भी सुविधा नहीं।

पर्दे का वास्तविक हेतु क्या है? यही न कि स्त्रियां पुरुषों की दृष्टि से बची रहें। और यदि यही अर्थ है तो समाज की अपवित्रता का दोषी स्त्री और पुरुष समाज में से कोई एक अवश्य है। मैं समझता हूं कि यह बात विज्ञ-जनानुमोदित और समर्थित है कि दुराचार के कारण पूर्ण नहीं तो अधिकांश पुरुष हैं स्त्रियां नहीं। स्त्री पुरुषों के नैसर्गिक गुणों से भी यह बात सिद्ध है। तब फिर पर्दे में बेचारी देवियां क्यों बन्द हों? पर्देमें रहें पुरुष, जिनसे सामाजिक पवित्रता नष्ट होती है। इस बात को एक अशिक्षित व्यक्ति भी समझ सकता है और नित्य की घटनाओं से अनुभव कर सकता है कि अनाचार का कारण पुरुष वर्ग ही है बेचारी स्त्रियां नहीं। अपराध तो पुरुषवर्ग का और दण्डित की जांय अबला समाज, क्या ही अमानुषिककाण्ड और भीषण न्याय है! पर्दे को एक कठोर दण्ड के अतिरिक्त और क्या

कहा जा सकता है। यह बात ही और है कि स्त्री समाज शताब्दियों से इस दण्ड के भोगते रहने से अभ्यस्त और इतनी आदी होगई है कि इसे वह अपने जीवन की प्रतिष्ठा का एक अङ्ग मानने लगी है। यह आदत का दोष है।

जो तोता या पक्षी पहले पहल पिंजड़े में बन्द किये जाने पर भूख-प्यास भूलकर मरणान्त कष्ट का अनुभव करता है वही धीरे धीरे उसमें रहने का आदी हो जाता है। पिंजड़े का द्वार खुला रहने पर भी वह उड़कर नहीं भाग जाता यहां तक कि यदि कोई उसे बाहर निकाल भी दे तो दौड़कर पिंजड़े के भीतर स्वयं बन्द हो जाता है। एक अपराधी को वर्षों कारागार में कांटों की शय्या पर सुलाये जाने से वह कारागार से मुक्त होकर भी घर में कांटों की शय्या बनवाकर सोता था। साधारण खाट और बिस्तर पर उसे चैन नहीं पड़ती थी। ठीक यही अवस्था वर्तमान में स्त्री समाज की हो रही है। पर्दे जैसे कारागार-बन्धन में रहकर वह सुख और प्रतिष्ठा का अनुभव करती है। धन्य विडम्बना!

प्रत्येक समाज आत्म-गौरव रहते हुए अनुचित दबाव सहन नहीं कर सकती। जब कोई समाज ऐसे कठोर बन्धन और कष्ट-सहन करने की आदी होजाती है और बन्धन से अपमान और कष्ट के बदले मान और सुख का अनुभव करने लगती है तब जानना चाहिये कि उस समाज से मनुष्यत्व और आत्म-गौरव का लोप हो गया। जो समाज अपने मानवी अधिकारों से वञ्चित रहकर उनकी प्राप्ति के लिये उछल कूद और आन्दोलन नहीं मचाती-उनके लिये आत्मोत्सर्ग करने की क्षमता नहीं रखती-उसे मृतक ही समझना चाहिये। हमारे यहां की नारी समाज प्रायः इसी अवस्था में है। वह पर्दे जैसे अन्ध-कूपता के गर्त में पड़ी हुई चेष्टा विहीन है। उसे पर्दे की मांद में ही आनन्द है!

दुःख है कि साक्षर-पठित समाज—भी इस प्रथा का पोषक और समर्थक बना हुआ है। समाज के आधे अंश को पिंजड़े में बन्द रखकर निकम्मा करके लोग उन्नति उन्नति गला फाड़ फाड़ कर चिल्ला रहे हैं। राष्ट्र में सन्तान रत्न प्रसव करने वाली और शिक्षा-खराद पर चढ़ाकर उसे वास्तविक मूल्य का कर बनाने वाली स्त्री समाज को पर्दे के अन्ध-कूप में रखकर हम चाहते हैं कि हमें कर्मवीर, विचारशील, दूरदर्शी सन्तान प्राप्त हो। अँधेरी मांद में रहने वाली माता की सन्तति कभी निसर्ग के रहस्य और चमत्कार को जान सकती है?

किञ्चित् विचार तो कीजिये भारत के दुःख पर-जननी जन्म-भूमि की दासत्व अवस्था पर-आँसू बहाने वाली तथा आत्म समर्पण तथा आत्मोत्सर्ग करने के लिये तत्पर पुरुष आत्माओं की अपेक्षा स्त्री आत्माओं की संख्या कितनी न्यून है। आज यदि बेचारियों को कम से कम वही अधिकार और शिक्षा उन्हें भी मिली होती जो अधिकार और शिक्षा पुरुषों को मिली है तो आज जो संख्या देशोद्धार में सर्वस्व न्योछावर कर रही है उससे दूनी संख्या भारत हितैषियों की होती और दूनी शक्ति से भारत का बेड़ा उन्नति सागर में आगे बढ़ता। हमने अशिक्षा की बेड़ियां स्त्री समाज को पहनाकर उसे पर्दे की चहार दीवारी के भीतर बन्दकर उसके मानवी स्वत्व और गुणों को पांवों तले रौंद डाला। इस समाज को मानवी पवित्र कक्षा का स्तर पशुओं से भी निकृष्टतम

बनाकर हमें सन्तोष हुआ । स्त्री जाति को हमने आमोद प्रमोद की गुड़िया बना लिया । हाय ! आज नृशंस नरपिशाचों के बीच में नारी जाति की जो विडम्बना हो रही है उसे देख जी यही कहता है कि विधाता इतर योनियों में चाहे जन्म दे देना पर इन पाषाण हृदय पुरुषों के यहां स्त्री बनाकर न भेजना ।

भारतमाता की पुत्रियों को कलङ्क सागर में डूबने से बचानेवालीं श्रीमती सरोजिनी नायडू, वासन्ती देवी (दास महाशय की धर्म पत्नी) श्रीमती कस्तूरी बाई (महात्मा जी की सहधर्मिणी) श्रीमती बी. अम्मा (अलीबन्धुओं की माता) श्रीमती सरला देवी प्रभृति नारी-रत्न महात्माओं ने भारत में जन्म न लिया होता तो भारतीय स्त्री समाज को निकम्मा और अज्ञान सम्पन्ना कहने की धृष्टता करने से कौन हिचकता ।

अब विचारणीय बात यह है कि यदि इन प्रतिभा सम्पन्ना वीरात्माओं को भी अशिक्षा के गर्त से निकलने और पर्दे के कारागार से मुक्त होने का अवसर न मिलता तो आज इनकी भी क्या वही दशा न होती जो पर्दे में छिपी रहनेवाली अनेक आत्माओं की स्त्री समाज में अभी है । जिन्हें कोई जानता भी नहीं ।

श्रीमती सरोजिनी नायडू से बढ़कर हमारे मातृ वर्ग में भारत माता की विपत्ति पर आंसू बहानेवाली और उसी के लिये जीनेवाली कोई दूसरी विदुषी नहीं है । राजनैतिक कार्यों में धीरता पूर्वक योग देते हुए जिस प्रकार इन्होंने उच्च और गहन राजनीतिज्ञान की अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है और सहस्रों कोस समुद्रपार जाकर दक्षिण आफ्रिका के भारतीय प्रवासियों की कांग्रेस की सभा नेत्री होकर प्रकाण्ड राजनीतिविद् अंग्रेज पण्डितों से भारतीय राजनैतिक अवस्था के सम्बन्ध में जिस योग्यता से वाद विवाद किया है वह नारी जाति की अप्रतिम राजनीति की अभिज्ञता का परिचायक है और स्त्री समाज के इतिहास में युगान्तर उपस्थित करनेवाला है । स्मरण रहे इस विदुषी के विचारशील पिता ने पर्दे की प्रथा को पद दलित कर अपनी द्वादशवर्षीया बालिका (श्रीमती सरोजिनी को) शिक्षा और ज्ञान रत्न प्राप्ति के हेतु इंग्लैण्ड (विलायत) भेज दिया था । भारत का परम सौभाग्य था कि जिसने इस महात्मा को पर्दे के अंधभक्तों के गृह में जन्म लेने से बचाकर उसे संसार में सम्मानास्पद होने का अवसर दिया ।

हमारी पुरानी प्रथाओं के अन्धभक्त कभी इन हानिप्रद प्रथाओं से मुक्त न हो सकते और न दूसरों को मुक्त होने देंगे । तब पठित और शिक्षित समाज को उचित है कि वह स्त्री समाज में शिक्षा-प्रचार और पर्दा बहिष्कार को धीरे २ आगे बढ़ाती चले जिससे स्त्री समाज में मानवी स्वत्व, अधिकार और कर्त्तव्य की जागृति हो और वह अपने को केवल पुरुष जाति की आमोद प्रमोद का खिलौना न समझ अपने मानवी जीवन के महत्व, गौरव और उद्देश्य को समझने में समर्थ हो ।

सबसे कठिन समस्या तो यह है कि किसी सामाजिक प्रथा पर विचार करने वाले पर ही रूढ़िभक्तों का प्रचण्ड कोपानल भभक उठता है । यद्यपि ऐसा करना मूढ़ाभिमान और अदूरदर्शिता के अतिरिक्त और कुछ नहीं । जीवित समाज वही है जो कुप्रथाओं और प्रचलित रूढ़ियों को दूर करने की क्षमता और सामाजिक जीवन के साधनों की आवश्यकताओं को समझ कर उसे उच्चे रास्ते पर लाने में नहीं हिचकती ।

अनेक प्राचीनग्रन्थों से यह सिद्ध है कि हमारे देश में पर्दे की प्रथा प्राचीन नहीं। इसके प्रचलित होने का अनेक दन्त कथाएं हैं। वे झूठ हों या सच; पर इतना निःसन्देह कहा जा सकता है कि पहले कभी सम्भव है पर्दे की आवश्यकता रही हो; पर अब बिलकुल नहीं है। आवश्यकता से विवश होकर समय विशेष में कोई प्रथा लाभ कारी होने पर भी आवश्यकता निकल जाने पर उस प्रथा से सामाजिक हानिका प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए केवल इस कारण उसका समर्थन करना कि यह पुरानी प्रथा है निरो कूपमण्डूकता और अन्ध भक्ति तथा रूढ़िप्रियता की पराकाष्ठा प्रदर्शक है।

सच तो यह है कि पुरुषों ने अपनी अनुचित वासनाओं की तृप्ति के लिये बेचारी अबलाओं को पर्दे के भीतर बन्दकर अपने दोष और अनाचारों पर पर्दा डालने का यत्न किया है। कई लोगों का निराधार तर्क है कि समाज को व्यभिचार जैसे पाप कर्म से बचाने के लिये पर्दे का चलन हुआ है। व्यर्थ का ढकोसला है बचत की आड़ है। दक्षिण में पर्दे की प्रथा न होने पर भी हम लोगों की अपेक्षा सामाजिक पवित्रता वहां की चढ़ी बढ़ी है। स्मरण रहे व्यभिचार का रोकनेवाला पर्दा नहीं; प्रत्युत ज्ञानालोक और सदाचार से उत्पन्न हुई हृदय की पवित्रता है। गन्दी भावनाएं पर्दे की आड़ में नहीं; किम्बहुना अशिक्षित और अज्ञानी हृदय की आड़ में रहा करती हैं। व्यभिचार को पर्दे की आड़ से रोकने का प्रयत्न वैसा ही है जैसा अग्नि को वस्त्र में बांध कर छिपाना। बेचारी स्त्रियों के नेत्रों में-निसर्ग वाटिका में पट्टी बांधिये। उन्हें भी ज्ञानेन्द्रियों से विश्व रहस्य समझने और जानने का अवसर दीजिये। उनके ज्ञान सामर्थ्य को कुचलकर, उनकी मानवी शक्तियों को पद दलित कर उनके वे स्वत्व-वे प्रकृति दत्त, अधिकार न छीनिये जिनसे मनुष्य मनुष्य होसकता है। स्त्रियां, मानवी उन सब गुणों से विभूषिता हैं जिन्हें प्रकृति ने पुरुषों को दिया है। तब प्रकृति की देनगियों द्वारा मानवी दिव्यानन्द से उन्हें वञ्चित करदेना महान्पाप है।

आशा है विद्वान् समाज शास्त्रज्ञ इस विषय पर अधिक प्रकाश डालकर समाज को लाभान्वित करने की कृपा करेंगे।

—सूर्य्यभानु त्रिपाठी 'विशारद'।

बन्धु सम्बोधन !

बन्धुवर ? बन्धु बन्धु अपनाओ (टेक)
यह बन्धु तो गोत्रहि बन्धु, बन्धु दशा ही भावो।
यह बन्धु है सर्व सुखकर ज्ञान ज्योति प्रगटाओ (१) बन्धुवर०
तम अज्ञान मिटाकर सारा उभय ज्ञान चमकाओ।
आत्मोन्नति औ समाज सेवा, धर्म्म कर्म्म शुभ पाओ (२) बन्धुवर०
नीति, न्याय अरु वैद्यक शिक्षा, विज्ञानी बन जाओ।
उपन्यास और गोरख धन्धे कविता मनहर पाओ (३) बन्धुवर०
हे परवार-बन्धु ? तुम प्यारे यही चित्त में लाओ।
तब कुछ दिन फिर अनुभव करके सर्व सुखी हो जाओ (४) बन्धुवर०

—जानकी बाई (अमरा निवासी)।

जैन धर्म पर एक अजैन के प्रश्नों का उत्तर।

(गतांक से आगे)

(लेखक—श्रीयुत गुलाबचंद जी मैया)

प्रश्न—जैन धर्म के सम्बन्ध में सब बातों को जानते हुए मुझे तो मोक्ष का वास्तविक मार्ग ठीक ऐसा ही जान पड़ता है। परन्तु एक शंका है कि जैन धर्म की बहुतसी बातें हिन्दू धर्म के साथ मिलतीं हैं इसलिये जैन धर्म में ऐसी क्या विशेषता है, कि जो हिन्दू धर्म में नहीं है ?

उत्तर—जैन धर्म में एक नहीं कई विशेषतायें हैं, जिनसे अन्यान्य, धर्म और दर्शनों की अपेक्षा जैन धर्म का स्वतंत्र अस्तित्व विशाल व्यापकता और प्रभुत्व प्रगट होता है।

१—सब से महत्व पूर्ण विशेषता यह है, कि संसार के जितने भी धर्म, दर्शन और मत मतान्तर हैं वे सब एकान्त वादी हैं और जैन धर्म अनेकांत वादी है। एकांत वाद में सत्य की मात्रा बहुत कम रहती है। क्योंकि वे किसी बात का एकाङ्गी स्वरूप निश्चित करके उसी को सर्वाङ्गिक या पूर्ण सत्य कराने का प्रयत्न करते रहते हैं। परन्तु जैन धर्म किसी भी बात का सर्वाङ्गिक स्वरूप निश्चित करके सर्वाङ्गिक स्वरूप को ही पूर्ण सत्य और एकाङ्गी सत्य को आंशिक सत्य के रूप में स्वीकार करता है। अतएव इस विशेषता के कारण सिर्फ एक जैन धर्म का अनुयायी संसार के सम्पूर्ण भिन्न २ धर्म-दर्शन और मत मतान्तरों का अंश रूप में माननेवाला सिद्ध होता है इस प्रकार दूसरे धर्म का अनुयायी अपने लिये ऐसा कहने का दावा नहीं कर सकता।

२—हिन्दू धर्म में अनेक दर्शन, वाद, मत, पंथ इत्यादि गर्भित हैं परन्तु उनके सामञ्जस्य का कोई निश्चित विधान नहीं होने से उसके सिद्धांत क्या हैं यह निश्चित नहीं किया जा सकता। हिन्दू धर्म में मुक्ति का भी कोई निश्चित मार्ग नहीं। सब मन माना कारोबार। परन्तु जैन धर्म में यह विशेषता है कि उसमें परस्पर विरोधी बातों के सामञ्जस्य का दुर्भेद्य और अखण्ड विधान होने के कारण उसके सिद्धांतों में तथा मार्ग में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं है।

३—जिन बातों को सर्वोत्कृष्ट मानकर सूक्ष्म और विशद रूप से प्रगट करने में हिन्दू धर्म असमर्थ है वे ही जैन धर्म में बहुत खोलकर विस्तृत रूप में कही गई हैं। उदाहरण के लिये कर्मतत्व का निरूपण ही पर्याप्त है। कर्म तत्व की जो सूक्ष्म बातें जैन धर्म में हैं उनका अवलोकन करने पर यह कथन अवश्य ही स्वीकृत होगा। यही बात संन्यासियों के आचरण के विषय में भी प्रगट है। हिन्दू धर्म का अवलम्बन करने वाला संन्यासी और जैन धर्म का अवलम्बन करनेवाला मुनि, सीप और मोती के समान कहा जा सका है।

४—जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो व्यक्ति मात्र को ईश्वरत्व प्राप्त कराने का दावा रखता है। जब कि दूसरे धर्म एक ईश्वर को सृष्टि कर्त्ता मानते हुए दूसरे किसी को उस स्थिति तक पहुँचना असंभव मानते हैं। या

सर्वेश्वर वाद को महत्व देकर सत्तामात्र को ईश्वर कल्पित करते हैं। या ईश्वर के अस्तित्व को ही नहीं मानते। यहां जैन धर्म अत्यंत प्राचीन अनेक ईश्वर वाद के सिद्धांत को प्रकृत रूप में स्वीकार करता हुआ न तो अनीश्वर वादी ही हैं और न एक व्यक्ति पर ही सृष्टि का कर्तृत्व, संचालकत्व और हर्तृत्व भार सौंपने का कायल है। जैन धर्म के प्रकृत अनेक ईश्वर वाद की ही विकृति प्राचीन समय के वैदिक और खाल्डिया, ईजिप्त इत्यादि पुरातन देशों के धर्मों में विद्यमान थी। अनेक देवी देवताओं की उपासना अब भी हिन्दू धर्म में विद्यमान है, वह अत्यंत प्राचीन अविकृत अनेक ईश्वरवाद के सिद्धांतों का ही विकृति है।

प्रश्न—जैन धर्म में वर्ण और जाति भेद के विषय में क्या व्यवस्था है ?

उत्तर—जैन धर्म में वर्ण और जाति भेद को बिलकुल महत्व नहीं दिया गया है। वह तो मोक्ष का अत्यंत प्राचीन और वैज्ञानिक मार्ग है। चार प्रकार के (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) पुरुषार्थों में मोक्ष के पुरुषार्थ का सर्वोत्कृष्ट साधन है, वही जैन धर्म है। अतएव उसमें मोक्ष पुरुषार्थ से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान विज्ञान और क्रिया काण्डकी मुख्यता रहना और मोक्ष पुरुषार्थ की साधना में अन्य पुरुषार्थों की जो बातें बाधक नहीं हो सकतीं उनका गौण रूप में रहना स्वाभाविक है। जैन धर्म में मोक्ष पुरुषार्थियों के दो भेद किये गये हैं। (१) जो व्यक्ति अन्य सब पुरुषार्थों का त्याग करके अपनी सब शक्ति मोक्ष पुरुषार्थ के सार्वदेशिक साधन में लगा रहा हो (२) और जो व्यक्ति अन्य पुरुषार्थों के साथ में मोक्ष पुरुषार्थ में भी कुछ शक्ति लगा रहा हो। पहला व्यक्ति मुनिसाधु-अनगार कहलाता है। दूसरा व्यक्ति श्रावक-सागार-गृहस्थ कहलाता है। सिर्फ ये ही मुख्य भेद जैन धर्म में हैं। फिर इनके और उपभेद या श्रेणियाँ हैं। श्रावकों की ११ प्रतिमायें (श्रेणियाँ) हैं। मुनियों के भी कई उपभेद हैं। श्रावक और मुनियों में सभी प्रकार के वर्ण और जाति भेद का प्रश्न है, वह केवल हिन्दू-धर्मानुयायियों के संसर्ग का फल है। जैन ग्रन्थों में जो वर्ण भेदों का कहीं २ जिकर है, उसका कारण यह है कि लौकिक व्यवसाय के रूप में वर्ण भेद बहुत प्राचीन काल से आर्यों में प्रचलित है, जैन धर्म प्रवर्तक तथा उसके अनुयायी आर्य होने के कारण चारों प्रकार के वर्णों के व्यक्तियों का जैन धर्म में समावेश रहना स्वाभाविक है। लौकिक व्यवसाय के कारण जो वर्ण भेद चला आ रहा था वह श्रावकों में बिलकुल नाम शेष नहीं हुआ। सिर्फ ब्राह्मण वर्ण का जो वैदिक धर्म में अनावश्यक सर्वस्व था वह श्रावकों में नहीं रहा। श्रावकों में जो वर्ण भेद प्रचलित था वह केवल व्यवसायिक दृष्टि से था। जो श्रावक जिस प्रकार के व्यवसाय के द्वारा अपने कुटुम्बियों की आजीविका परंपरा से चलाते आरहे थे। उसी प्रकार के व्यवसाय से आजीविका चलाते रहने के कारण श्राविकों में भी वर्ण भेद कायम रहा। किन्तु वह केवल व्यवसायिक भेदों का द्योतक था, यह नहीं कि वर्ण व्यवसाय मोक्षमार्ग का कोई कर्तव्य हो लौकिक वर्ण व्यवस्था श्रावकों के मोक्षपुरुषार्थ में साधक-बाधक न होने के कारण मोक्षमार्ग प्रचारकों ने उसके स्पष्ट रूप से खण्डन-मण्डन की चेष्टा नहीं की। मोक्षमार्ग में उच्चता नीचता आजिविका के निमित्त होने वाले वर्ण भेदों पर निर्भर नहीं थी और न है। यह आत्मा की तुला श्रावक-मुनियों के भेदोपभेद के अनुसार आचरण करने पर अवलम्बित थी।

जो जितने अंश में मोक्षपुर्षार्थ करता था वह उतने ही अंश में उच्च समझा जाता था।

प्रश्न—वर्तमान में मुनि धर्म पालन करने वाले कितने व्यक्ति हैं!

उत्तर—वर्तमान में मुनि धर्म पालन करना तो दूर रहा श्रावक धर्म का भी उच्च श्रेणी तक पालन करने में लोग असमर्थ हो रहे हैं। इने गिने दो चार व्यक्ति श्रावक धर्म की १०-११ वीं उच्च श्रेणी का पालन कर रहे हैं, परन्तु उन्हें कभी २ सैकड़ों जैनियों के घर विद्यमान होते हुए भी शुद्ध आहार मिलना कठिन हो जाता है। उनके आहार के लिये लोगों को खास इन्तजाम करना पड़ता है जब कि उनके भोजन का यह नियम रहता है कि उनके निमित्त से कोई विशेष रूप से भोजन न बनाया जाय। और तो और ७ श्रेणी की ब्रह्मचर्य प्रतिमा पालन करने वाले ब्रह्मचारी श्रावकों को भी खास तौर पर शुद्ध भोजन बनवाने की व्यवस्था करना पड़ती है। इससे आप समझ सक्ते हैं, कि हम जैनी कहलाने वाले लोग अपना खान पान भी इतना शुद्ध रखने में प्रमादी हो चुके हैं कि अपने लिये जैसा भोजन रोज बनाया जाता है उसको ब्रह्मचारी या क्षुल्लक अशुद्धता की दृष्टि से ग्रहण नहीं कर सक्ते। ऐसी परिस्थिति में मुनि कैसे हो सक्ते हैं?

प्रश्न—भला आपकी जैन समाज की मर्दुम शुमारी का क्या हाल है?

उत्तर—मर्दुमशुमारी की भी कुछ न पूछिये। दिन पर दिन जैनियों की संख्या घटती जा रही है। पहले जैनियों की संख्या १४ लाख से ऊपर समझी जाती थी बाद में क्रमशः १३½ १२½ और अब ११$\frac{3}{4}$ लाख का अन्दाजा है। इसी प्रकार प्रति दस वर्षों में ह्रास होता रहा तो आगामी सन २०५० तक एक भी जैन कहलाने वाला पृथ्वी पर खोजने से नहीं मिलेगा।

प्रश्न—क्या किसी ब्राह्मण ने भी कभी जैन धर्म के प्रचार में अपनी शक्ति लगाई है?

उत्तर—हाँ क्यों नहीं भगवान महावीर के प्रधान शिष्य दो दिग्गज पंडित इन्द्रभूति (गौतम) और वायुभूति ब्राह्मण ही तो थे। ये दोनों भाई पहले वैदिक धर्म के अभिमानी और प्रचारक थे। ये सब शास्त्रों के पारगामी और अगाध पंडित थे। परन्तु एक दिन किसी वृद्ध पुरुष ने आकर एक श्लोक का विस्तृत और सूक्ष्म रहस्य समझना चाहा किन्तु वे दोनों भाई उस वृद्ध का समाधान नहीं कर सके तब उन्होंने कहा चल, तेरा गुरु कौन है, उसे बता। हम उसी के साथ शास्त्रार्थ करेंगे।" और वे दोनों भाई महावीर के पास गये। उनकी धर्म सभा के मानस्तंभ के पास आते ही उनका अभिमान दूर हो गया और वे भगवान महावीर के पट्ट शिष्य या प्रधान गणधर हुए। महावीर स्वामी के साथ में उनकी दिव्य वाणी का वे श्रोताओं में अच्छी तरह प्रचार करते रहे। भगवान महावीर का कार्तिक बदी अमावस्या के प्रातःकाल निर्वाण होने के उपरान्त उसी दिन संध्या को गौतम स्वामी में भगवान महावीर के समान केवलज्ञान का अविर्भाव हुआ था। इनके पश्चात् जैन ग्रन्थ प्रणेता कई आचार्य पहले वैदिक धर्मानुयायी और ब्राह्मण वर्ण के थे जिन्होंने बाद में जैन धर्म स्वीकार करके अपूर्व ग्रन्थों की रचना की है। स्वामी विद्यानंदि आदि ऐसे ही महा व्यक्तियों में से हैं जो पहले वैदिक धर्मानुयायी थे बाद में जैनाचार्य हुए।

प्रश्न—क्या जैन धर्म में पहले कोई परिवर्तन भी हुए हैं? और होना आवश्यक है?

उत्तर--जैन धर्म का अन्तरङ्ग स्वरूप सदैव ध्रौव्य रूप में रहा है। अगर कोई परिवर्तन भी हुआ है तो उसके बाह्य स्वरूप में होना संभव है। क्योंकि आचरण एक ऐसी बात है, कि जिसके सूक्ष्म नियम सार्वदेशिक और त्रिकालाबाधित नहीं रह सके। उन नियमों पर देश काल की परिस्थिति और रूढ़ि का भी बहुत कुछ प्रभाव पड़ता रहता है। मुनियों के भिन्न २ संघों का अस्तित्व, श्रावकों की भिन्न २ आम्नाय और पंथों का आविर्भाव आचार विषयक परिवर्तन का ही द्योतक है। जैन हितैषी में प्रकाशित शासन भेद चर्चा को पढ़कर आप इस बात को अच्छी तरह समझ सके हैं। जैन धर्म का प्रत्येक आचरण विषयक नियम वीतरागता और अहिंसात्मक नीति के आधार पर है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार उक्त नीति की पूर्ति में अनावश्यक जँचने वाले नियमों में परिवर्तन हुए हों और होना आवश्यक है। इसके बिना धर्म का स्थिति नहीं रह सकती। जैन धर्म को जब हम अनादि निधन मानते हैं तो हमें उसके ध्रौव्यत्व के साथ उत्पाद व्यय भी मानना आवश्यक है। जैन धर्म का अन्तरङ्ग स्वरूप सदा ध्रौव्यमय है उसके बाह्य स्वरूप में ही परिवर्तन होना स्वाभाविक है परन्तु बाह्य स्वरूप में भी परिवर्तन होता है वह ध्रौव्यत्व को छोड़कर नहीं। वीतरागता और अहिंसा की सर्वाङ्गिक पूर्ति ही आचरण की जड़ है। बाकी सर्व आचरण विषयक नियमोपनियम उसकी शाखा प्रशाखाएँ और पत्र पुष्पादिक हैं। पत्र पुष्पादिक तो हमेशाह झड़ते और लगते रहते हैं और कभी २ कोई शाखा भी अलग कर देने का मौका आता है जब कि उसके रहने में वृक्ष के समूल नष्ट हो जाने की संभावना रहती है। इसी तरह पत्रादि के समान जो आचरण विषयक सूक्ष्म नियम हैं वे सदा देश और काल भेदानुसार पद २ पर बदलते रहते हैं। किन्तु ऐसे स्थूल नियमों में भी परिवर्तन किये जा सके हैं जो उस समय में मूल के लिये विघातक हों और जिनसे समूचे धर्म वृक्ष के नष्ट हो जाने की संभावना हो। देश काल की परिस्थिति का पूरा विचार करके उसके धर्म-वृक्ष की जड़ को धक्का न लगाते हुए उसके अनुपयोगी और जड़ में आघात पहुंचने की संभावना वाले अंश को दूर करके धर्म वृक्ष को भविष्यत के लिये अधिक चिरस्थायी और उन्नत करने की जो चेष्टा करते हैं ? वे ही संसार में महात्मा और अवतारों के नाम से विख्यात होते हैं।

प्रश्न—जैन धर्मानुयायी धर्मानुकूल आचार विचारों से विमुख हो रहे हैं। उनकी संख्या दिन-ब-दिन घट रही है। ऐसी परिस्थिति में क्या जैन समाज खुर्राटे ले रही है? उसको तो चाहिये कि अपने धर्म प्रवर्तकों से कृतघ्न न होकर जैन धर्मके साहित्य का संसार की सब भाषाओं में प्रचार करें। देश काल की परिस्थिति के अनुसार जैन धर्म और उसके अनुयायी "जैन" की अत्यंत सरल और सामान्य व्याख्या सर्व सम्मति से निश्चित करके जैनेतर अन्य व्यक्तियों के जैन बनाने की कोशिस करें। अपनी सामाजिक रूढ़ियों को जिनका धर्म से कोई ताल्लुक नहीं छोड़कर अपने धर्म पथ पर आरूढ़ होवें। देखो तो महात्मा गान्धी जी जो कि हिन्दू धर्मावलम्बी हैं, पर अहिंसा को समयानुकूल राजनैतिक वेश में परिणत करके उसका कितना प्रचार कर रहे हैं! जहां देखो वहां अहिंसात्मक असहयोग की ध्वनि सुनाई दे रही है। पर जैन समाज के इने गिने व्यक्तियों को छोड़कर समाज चुप्पी साधे रही। और सुना जाता है, कि जैन समाज ने महात्मा

भगवानदीन जी सरीखे असहयोगी कार्यकर्त्ताओं को समाज च्युत भी कर दिया है। ऐसी परिस्थिति में जैन धर्म और समाज का भविष्य बड़ा संकटमय प्रतीत हो रहा है वह अपने साथ जैन धर्म का भी नाम शेष कर देगी?

उत्तर—साई साहब, आप को इस प्रश्नका मैं अकेला क्या उत्तर दूँ? इसका उत्तर समाज ही दे सकता है। इतना अवश्य है कि अब वह घोर निद्रा से करवट बदल रहा है। अब कि सारा संसार जाग कर आगे बढ़ चुका है। ग्रन्थों का भी यथा तथा प्रकाशन हो रहा है किन्तु वह अधिकांश में व्यवसायी प्रकाशकों के द्वारा। ऐसी कोई भी संस्था अब तक स्थापित नहीं है, जो लाख दो लाख के भी ध्रौव्य फण्डसे खोली जाकर लागत के मूल्य मे प्रकाशित ग्रन्थ वितरित करती हो या अन्यान्य भाषाओं में ग्रन्थ लिखाकर प्रकाशित करती हो। साहित्य प्रचार में अभी उसकी इतनी अभिरुचि नहीं है, वह तो नये मंदिर निर्माण, पूजा, प्रतिष्ठा गजरथ चलाने इत्यादि कामों में ही रूपया खर्च करना धर्म की प्रभावना समझती है। जिस समाज में कई हस्त लिखित ग्रंथ चूहों और दीमकों के भक्ष्य हो चुके और हो रहे हों, पर उनके व्यवस्थापक अपने शास्त्र भण्डार को अपनी समाज के अन्य साहित्य सेवी तथा साहित्य रक्षकों को देखने तक नहीं देते और न आप ही उनकी कुछ सम्हाल करते हैं। उस समाज के द्वारा जैन साहित्य के प्रकाशन और प्रचार का कार्य कितना हो सकता है इसका आप अंदाजा लगा सके हैं। जो समाज अपने जातिच्युत भाइयों का मंदिर में आना तक मना कर देती है, जो समाज, पंथ-आम्नाय के भेदों के कारण एक दूसरे से वमनस्य रखती हुई परस्पर धार्मिक कार्यों में या मंदिरों तक में जाना पाप समझती है, जो पक्की लकीर की फकीर बनी हुई है, सामाजिक बातों में भी जिसने रूढ़ियों को ही धर्मसे अधिक महत्व दे रखा हो, जिसका अन्यजातियों में परस्पर खान पान न हो, जो भिन्न धर्म के व्यक्तियों का मुँह देखना भी अधर्म समझती हो, उस समाज में अन्य लोगों को जैन बनाने की कितनी क्षमता है उसे आप सोच सके हैं। महात्माजी के विषय में आपने कहा, उनकी गणना भविष्यत में अवतारी पुरुषों में होगी। यों तो सभी धर्म वाले आज ही उनकी ओर ऊँगली उठाकर कह रहे हैं, कि हमारे धर्म का आदर्श व्यक्ति ऐसा ही हो सका है। ईसाई उनकी ईसामसीह के तुल्य उपासना करने लगे यदि वे अपने को ईसाई प्रगट करें। मुसलमान आज ही उसको अपना खलीफा मान बैठें यदि वे अपने को इस्लामका उपासक प्रगट कर दें। बौद्ध धर्मानुयायी उन्हें साक्षात बुद्ध समझ बैठें यदि वे बौद्ध धर्मी होना प्रगट करें। परन्तु वे सनातन धर्मी हिन्दू (प्राचीन आर्य जाति के वंशज) हैं। उनके सनातन धर्म और हिन्दुत्व की व्याख्या जो उनके आचरण विचारों में है उसके साथ संकुचित हृदय के सनातन हिन्दू नामधारी व्यक्ति बिलकुल असहमत हैं। ऐसी परिस्थिति में उनके आचार विचारों पर दृष्टि डालते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि उनके आचार विचारों में अहिंसात्मक प्रवृति और वीतरागता की जितनी झलक पाई जाती है, उतनी जैन धर्म की अधिकांश में अवलम्बन किये बिना नहीं आ सकती। वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए उन्होंने अपने को सनातन हिन्दू कहलाकर जो कुछ कार्य किया है उतना शायद ही है, कि वे अपने को जैनीकहलाकर कार्य कर

सके। महात्मा जी का महत्व इसी में है कि वे संसार के सभी धर्मों के उच्च विचारों को अपने हृदय में समान रूप से स्थान देकर विश्वव्यापी धार्मिक एकत्व प्रस्थापित कर रहे हैं। ऐसे समय में वीतराग विज्ञान और अहिंसामय आचरण के प्रचार की जरूरत तो बड़ी है। पर जैन समाज से इसकी आशा करना व्यर्थ है। जब कि अपना तन, मन सब कुछ न्योछावर करने वाले कार्यकर्ता व्यक्ति धार्मिक बातों में कुछ मत भेद रखने और अनुचित जातीय रूढ़ियों को भङ्ग करने के अपराध में बहिष्कृत कर दिये जाते हैं या वे ही समाज से विरक्त हो जाते हैं। आप जैसे पर धर्मी व्यक्तियों को जब जैन धर्म और जैन समाज की शोचनीय अवस्था पर तरस आता है, तब हमारी समाज के विचारशील उन्नति प्रिय व्यक्तियों की स्थिति का क्या ठिकाना ?

प्रश्न कर्ता—भाई साहब ? आज से आप मुझे परधर्मी न समझें। यों तो मैं बहुत दिनों से जैन शास्त्रों का अच्छी तरह अवलोकन करता चला आ रहा हूं और पहले में अनेक जैन पंडितों से भी मिला। पर उनके साथ वार्तालाप करने में इतना संतोष मुझे नहीं हुआ जितना कि आज हो रहा है। उन्होंने जैन धर्म की पुष्टि में अन्य धर्म और दर्शनों की इतनी निन्दा की, जिसे सुनते २ मेरी नाकों दम हो गया। उनका तात्विक विवेचन तो बड़ा बढ़िया रहता था पर अन्य धर्म और दर्शनों की निंदा से ऐसा प्रतीत होने लगा था कि वे ही सर्वज्ञ बन बैठे हों इस प्रकार के बर्ताव से सारे कथन पर सुनने वाला पानी फेर देता है और उसकी दुबारा मिलने की उत्कंठा ही नहीं रहती। खैर, आज से मैं अपने को जैन कहलाना चाहता हूं, वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल मुझे जैनत्व की सरल से सरल और सामान्य व्याख्या बतलाइये जिसके आश्रय से मामूली से मामूली व्यक्ति भी जैन होने का पात्र समझा जाय ?

उत्तर—बड़े सौभाग्य की बात है कि आप पहले से ही जैन शास्त्रों को देखते आ रहे हैं। इससे भी बढ़िया बात यह है कि आप स्वयं जैन कहलाना चाहते हैं। मुझसे वार्तालाप में संतोष व्यक्त करना आप की उदारता, सौजन्यता के सिवा क्या हो सकी है ! यह दास तो विद्या, बुद्धि और सद्गुणों से शून्य है कि जिसका कोई पारावार नहीं। अभी तक तो अजैनों को जैन बनाने की कोई अत्यंत सरल और सर्वमान्य व्याख्या जैन समाज ने निश्चित नहीं की है। तथापि एक व्याख्या सोचकर जैन पत्र में विचारार्थ भेजी गई थी, पर किसी ने अनुकूल प्रतिकूल सम्मति प्रगट नहीं की। संभव है विद्वानों की नजर उस पर न पड़ी हो। अगर नजर जाती तो अवश्य ही अनुकूल प्रतिकूल सम्मतियां प्रगट होतीं। ऐसा भी हो सकता है, कि मौन सम्मति या उस विषय में उदासीनता का सूचक हो। खैर, जो कुछ भी हो वह इस प्रकार है आप चाहें तो इस पर जैन विद्वानों की सम्मति ले सकते हैं—

(१) जो अपनी आत्मा में परमात्मा होने का विश्वास करता हो।

(२) जिसे अनेकांत नय-सर्वाङ्गिक-ज्ञान ही पूर्ण सत्य के रूप में स्वीकृत हो। और

(३) जो साम्यभाव और अहिंसात्मक आचरण को यथा शक्ति अमल में लाकर आत्म विकाश का प्रयत्न करता हो, वह जैन है।

प्रश्न कर्ता—यह व्याख्या भी मुझे बहुत पसंद है। अब आप जैन धर्म के प्रचार की चिंता न करें। यह शरीर अब इसके प्रचार के लिये ही न्योछावर समझिए।

इतने में उस कमरे के एक गुजराती सेठ जो कि आँख मूँदे उपरोक्त सब बातें सुन रहे थे। झट उठ पडे और हमारे पास आकर उन्होंने अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की और अजैनों में जैन धर्म का प्रचार सबसे पहले भारत में अस्पृश्य जातियों में किया जाय और विदेश में वैज्ञानिक लोगों में किया जाय ऐसी सलाह दी। इस विषय में घण्टों बातचीत होते २ अंत में सवेरा हो गया। हावड़ा अब एक घण्टे का रास्ता था। सेठजी ने अपना विशेष परिचय नहीं दिया उन्होंने सिर्फ यही बतलाया था कि वे श्वेताम्बर हैं कलकत्ते और रंगून में उनका कारोबार है। प्रश्नकर्त्ता महाशय ने भी अपना परिचय नहीं दिया और मैंने अधिक परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा प्रगट नहीं की। मैं रात भर का जगा था नींद आ गई स्वप्न में मुझे मालूम हुआ, कि किसी श्वेताम्बरी श्रीमान् ने अपनी लगभग १ करोड़ की सम्पत्ति देश विदेश की मुख्य २ भाषाओं में प्राचीन और आधुनिक ढंग से लिखे जाने वाले जैन साहित्य के प्रकाशन और देश के अस्पृश्य और विदेश के वैज्ञानिक समुदाय में जैन धर्म के प्रचार कार्य में लगा देने का संकल्प किया है। और एक मुनि अमेरिका के हरेक नगरों में व्याख्यान देते हुए भ्रमण कर रहे हैं। यह सुनकर मेरे हर्ष की कोई सीमाही नहीं रही। मैने जोर से चिल्ला कर कहा-"ये वेही दो आदमी हैं जो मेरे......" नींद में इतना कहने ही न पाया कि टिकिट कलेक्टर ने "ए क्या बकते हो, तुमारा टिकीट दिखलाओ" कहकर मुझे हिलाया। आँख खोल कर देखता हूं तो अभी रात बाकी है रेल जोर से चल रही है टिकिट कलेक्टर टिकिट माँग रहा है और किनारे पैर रखने के स्थान पर विश्राम ले रही है।

ब्रह्मचर्य का महत्व ।

(लेखक—श्रीयुत राजेन्द्रकुमार, भोपाल)

प्रिय वाचक वृन्दो ! वर्तमान में जब मैं सम वयस्क नवयुवकों को देखता हूं और मिलता हूं तो अधिकांश नवयुवक जिनपर जैन धर्म और जैन जातिकी भावी उन्नति निर्भर है—जिन पर देशके नेताओं की आशा भरी दृष्टि गिर रही है, वे नवयुवक प्रमेह, सुजाक, उपदंश, बहुमूत्रादि, भयंकर रोगों में से किसी न किसी रोग की शिकार में फँसे हुए दिखलाई देते हैं। यही कारण है कि वर्तमान नवयुवकों में न उत्साह है न उनमे स्मरण शक्ति है, निर्वीर्य—निस्तेज चहरे आप को यत्र तत्र दिखलाई देंगे—जरा सा कोई परिश्रम किया कि उनमे थकावट और पसीना आगया, उनके दिमाग में चक्कर आने लगा, आखो मे अँधेरा छागई, हृदय से हाफणी चलने लगी—जिस काम को वृद्ध जन सहज में कर डालते हैं वही आप हमारे नवयुवकों से नहीं हो सका है। वृद्ध जन कई मील टहलने चले जाते हैं लेकिन हमारे नवयुवकों को १ मील भी चलना असह्य हो जाता है जिस काम को हमारे वृद्ध जन बिना चश्मे के रात को कर जाते हैं वही काम करने के लिये हमारे नवयुवकों को दिन में चश्मे की आवश्यकता पड़ती है—जिस काम को वृद्ध जन अपनी शक्ति से बिना किसी एलेक्ट्रिक लाईट के वा सहारे के विना गद्दी तकियों के कर डालते हैं वही काम हमारे नवयुवकों से लाईट, मेज, टेबिल, बिजली के पंखे होने पर भी पूरा नहीं होता है और बहुत जल्दी घबराजाते हैं। इसका कारण क्या है ? वही वीर्य हीनता। अर्थात् वीर्य की रक्षा न करना—शोक है कि हमारे भाई इसकी रक्षा के महत्व को नहीं समझे, नहीं तो इतनी पतितावस्था कभी नहीं

हो सकी थी—आज अनेक नवयुवक इसके महत्व को न समझ अनेक प्रकार के लौक और परलोक बिगाड़ने वाली अनेक कुचेष्टाओं में फंस कर इस अमूल्य वीर्य को बात की बात में खो बैठते हैं और निर्धन बन कर जीवन पर्यन्त चिन्ता से भी भयंकर चिन्ता में फंस कर अनेक कुऔषधियाँ सेवन करके काल के गाल में चले जाते हैं— वे नहीं समझते कि हमारे जीवन भर साथ देने वाला यही वीर्य ही है—

जीवो वसति सर्वस्मिन् देहे यत्र विशेषतः ।
रक्ते वीर्ये मले यस्मिन् क्षीणे यान्ति क्षयं क्षणात् ॥

वीर्य रक्षा से ही मन आदि इन्द्रियां तेज और बलवान रहती हैं प्रिय भाइयो ! इसी वीर्य रक्षा का कारण है, जो आज आप के धर्म में गोमट्टसार, प्रमेयकमलमार्तण्ड, राजवार्तिक आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ दिखाई दे रहे हैं। जिनके निर्माता बड़े २ आचार्य हुए हैं, जिनके शरीर की प्रभा देखते ही बड़े २ राजा महाराजा जिनके चरणों में मस्तक झुका देते थे—जिनके सन्मुख मनुष्य की तो बात ही क्या है देव देवी भी नहीं ठहरते थे—उनके वचनों में सिद्धि सिद्धी थी, जिस दिशा में उनका शुभागमन हो जाता था उधर ही पृथ्वी निरुपद्रव हो जाती थी, नर नारी उनके पवित्र दिव्यतेज के दर्शन करते २ तृप्त नहीं होते थे, उनको मालूम था कि भगवान् ऋषभदेव महावीर स्वामी ने अहिंसादि व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने का उपदेश दिया है, दशलक्षणधर्म में भी ब्रह्मचर्य धर्म पालन करने का उपदेश दिया है वे धार्मिक थे-उनमें धर्म था, वे भगवान महावीर स्वामी के वचनों में सच्ची श्रद्धा रखते थे उनके बताये हुए धर्म का पालन करते थे—परन्तु आज हमारा समाज किस पतितावस्था को पहुँच गया है कि आज उन्हीं महावीर स्वामी का उपासक होकर भी कोई महावीर-तेजस्वी नहीं है! मुझे शोक के साथ लिखना पड़ता है कि समाज में आज भी ५०।६० वर्ष के वृद्ध ब्रह्मचर्य को नष्ट करने वाली गंदी गालियाँ उन देवियों से गवाते हैं और हम अल्पावस्था वालों से निर्लज्ज २ हँसी हंसते हैं—मातृवत् परदारेषु के पवित्र सिद्धान्त को भूलकर दुष्ट दृष्टि से स्त्रियों को घूरते हैं, बाल विवाह, वृद्धविवाहादि खुशी से कराते हैं और श्रावक बने हुए हैं। हमारे आराध्य देव भगवान महावीर स्वामी ने ८ वर्ष की अवस्था से लेकर १६ वर्ष की अवस्था तक अखंड ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक विद्याभ्यास करने का उपदेश दिया है पश्चात् यदि वह ब्रह्मचर्य का पालन न कर सके तो फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना बताया है, उसमें हमारे वीर प्रभुने उपदेश दिया है कि अपनी विवाहिता स्त्री के साथ ही योग्य काल में पुत्ररत्न्या सन्तान उत्पत्ति के लिये ही संभोग करने की आज्ञा है। अर्थात् हमें हर तरह से वीर्य रक्षा करने का उपदेश दिया है—परन्तु हम नास्तिक बने हुए उस पवित्र मार्ग को भूल रहे हैं।

समाज की स्थिति देखते हुए मैं यह लिख सका हूं कि इसमें अपराध उन नवयुवकों का नहीं है। अपराधी हैं उनके माता पिता जो-बाल्यावस्था से सुसंगति में उन नवयुवकों को न रख उनको सुशिक्षा दिलाने का प्रबंध नहीं करते हैं! बुरी संगतिमें देखकर भी कुछ परवाह नहीं करते हैं। आज हमारा समाज ५ वर्ष की अवस्थामें ही निर्लज्ज २ शब्दोंकी शिक्षा अपने २ बच्चों को दे चुकता है, और दूसरों से दिलाता है। जब और कुछ बालक बड़ा हुआ तो किसी भी स्कूल में जहां मास्टर, सिवाय रटाने के और

कोई हितकारी उपदेश जानते हो नहीं। पढ़ने भेज देते हैं उन्हीं स्कूलों में नीच प्रकृति के अनाचारी दुष्ट दरिद्री बालक भी पढ़ने आते हैं, वहीं पर वे दुष्ट राक्षस उन भोले भाले बच्चों को मीठी २ बातों में उलझाकर बाल्यावस्था से ही उनके कोमल हृदय में ऐसे घृणित विचार उत्पन्न कर देते हैं कि जब वे बड़े होते हैं तो न वे महावीर स्वामी के उपदेशों को पढ़ते हैं न माता पिता की आज्ञा मानते न फिर वे स्वयं सुधरते न दूसरों से सुधरते हैं—वे दिन प्रति दिन पतित होते जाते हैं –

यौवन अवस्था का प्रारम्भ मनुष्य के लिये बड़ा भयङ्कर होता है और यही अवस्था हमारे नवयुवकों को सम्हालने की है इस अवस्था रूपी महानदी को सदाचार रूपी नौका में बैठकर यदि पार होगया तो वही वीरात्मा नियम से संसार रूपी समुद्र से भी पार हो जाता है। यदि सदाचार रूपी नौका दुःसंगति या दुर्विचार रूपी आंधी से उलट गई तो फिर सर्वनाश हुए बिना भी नहीं रह सक्ता है। प्यारे नवयुवको! यह सदाचार रूपी नौका सत्संगति के बिना कभी भी प्राप्त नहीं हो सकी है। अतः दुष्टों के संग से सदैव सावधान रहकर सदैव सतसंगति में रहकर अपने वीर्य की रक्षा करो अपने इस चंचल मनको वश में करो, कभी भी कामोत्पादक वार्तायें न करो, न काम विकार उत्पन्न करने वाली हँसी, न किस्से कहानी सुनो न पर स्त्रियों की तरफ दृष्टी डालो उनको माता बहिन की दृष्टि से देखो, न इन वृद्ध मुखियाओं के रोब में आकर वेश्याओं के नृत्य में बैठकर इनका हावभाव देखो, और प्रभु की आज्ञानुसार अपनी ही स्त्री में संतोष रक्खो, न हृदय में दुष्ट चिंता उत्पन्न होने दो, न ऐसी चिन्ता रक्खो - व्यसनों से सदा के लिये अपने को बचाते रहो—यदि हमारे समाज के नवयुवक सच्चे महावीर स्वामी के उपासक हैं तो वीर्य रक्षा करके महावीर बनें। जिस देश में हमारे महावीर स्वामी ने जन्म लिया जहां कभी रत्न वृष्टि हुई है उस प्रिय स्वदेश की रक्षा के लिये कटिबद्ध हो जाओ। क्योंकि बिना ब्रह्मचर्य के प्राणप्रिय स्वदेश की तुम कभी भी रक्षा नहीं कर सके हो।

परवार जाति के इतिहास की कुछ बातें।

१—परवारों में भी पाँड़े।

बन्धु के हरएक पाठक जानते होंगे कि कुछ समय से 'जैन मित्र' और 'जैन गजट' में यह चर्चा चल रही है कि 'पद्मावती पुरवार' जाति में जो बहुत से 'पाँड़े' हैं वे पहले 'गौड़ ब्राह्मण' थे और पद्मावती पुरवारों के विवाहादि संस्कार कराया करते थे। पीछे जिस समय वे अपनी जाति वालों के द्वारा इस बात के लिये मजबूर किये गये कि तुम पद्मावती पुरवारों की पुरोहिती का कार्य छोड़ दो, क्योंकि प० पु० जैन हैं—वेद बाह्य हैं, उस समय पद्मावती पुरवारों को सहानुभूति, उदारता और स्थितिकरणपरायणता के कारण उक्त गौड़ ब्राह्मण पद्मावती पुरवार जाति में मिला लिये गये और दोनों का परस्पर रोटी बेटी व्यवहार होने लगा। उक्त गौड़

ब्राह्मणों की सन्तान ही वर्तमान के पाँड़े हैं। मालूम नहीं यह बात कहाँ तक ठीक है और इसके लिए और कोई ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं या नहीं। परन्तु यह बात ऐसी नहीं है कि इस पर विश्वास नहीं किया जा सके। अथवा ऐसा होना संभव न हो। जब जैन जातियों में विवाहादिसंस्कार बहुत समय से होते आये हैं और मिथ्या देवों तथा मिथ्या मंत्रों पर उनका विश्वास नहीं है तब स्वाभाविक है कि वे अपने संस्कार जैन विधि और जैन मंत्रों से ही कराना पसन्द करेंगे; इसी प्रकार वेदानुयायी ब्राह्मणों के लिए भी यह स्वाभाविक है कि वे अपनी जाति के कुछ लोगों को अवैदिक विधि से संस्कार कराते देखकर अप्रसन्न होंगे और उन्हें वैसा न करने देने के लिए लाचार करेंगे। फल यह होगा कि जीविका की रक्षा के लिए कुछ लोग 'पाँड़े' बनने को भी तैयार हो जावेंगे।

पद्मावती पुरवार जाति के इन 'पाँड़े' भाइयों की चर्चा पढ़कर यह खयाल होता है कि अन्य जैन जातियों में जो पाँड़े हैं वे भी शायद इसी ढंग से ब्राह्मणों में से अलग किये जाकर किसी समय मिला लिये गये हैं और अनेक जैन जातियों में ऐसे पाँड़े मौजूद हैं। दो चार जातियों के पाँड़े हमें मालूम हैं यह प्रकाशित होना चाहिए कि कौन २ जातियों में ऐसे पाँड़े हैं और उनके विषय में तो ऐसी ही कोई किम्वदन्ती या दन्तकथा प्रचलित नहीं है। इस से इस प्रश्न के हल करने में बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

हमारे अधिकांश परवार भाइयों को शायद यह मालूम नहीं है कि परवार जाति में भी 'पाँड़े' हैं—यद्यपि उनके विषय में मैंने कोई ऐसी दन्तकथा नहीं सुनी है। बीना (अतिशयक्षेत्र) जिला सागर का एक विशाल मन्दिर पाँड़े जयचन्द जी का बनवाया हुआ है। सोनागिरि की एक पूजा में दो मन्दिरों का जिकर आता है जिनमें से एक 'पाँड़े बालकिशुन' का बनवाया हुआ है। एक मित्र महाशय से मालूम हुआ कि पनागर जबलपुर में कुछ वर्ष पहले एक 'पाँड़े कुटुम्ब' था। देवरी (सागर) में पाँड़े वंश के तीन चार घर अब भी मौजूद हैं। पता लगाने से अन्यत्र भी 'पाँड़े' लोगों के घर मिल सकते हैं। बन्धु के जिन जिन पाठकों को मालूम हो, वे उनका परिचय प्रकाशित कराने की कृपा करें। उन के मूर गोत्रादि भी प्रकाशित होना चाहिये।

२—परवार और पद्मावती पुरवार।

'बुद्धिप्रकाश' नामक एक 'छन्दबद्ध' भाषा ग्रन्थ १०—१२ वर्ष पहिले मैंने देखा था। वह बार्शी (सोलापुर) के एक सेतवाल सज्जन के पास था। उसमें लिखा है कि 'पद्मावती पुरवार' परवारों की ही एक शाखा है जिस तरह कि चौसखे, दोसखे आदि हैं। पद्मावती पुरवारों में मूर गोत्रोंका अभाव है। जिस तरह अठसखे, चौसखे, दोसखे हैं उसी तरह संभव है कि एक भेद 'बिना सखे' भी हो और वही पद्मावती पुरवार हो। इन पद्मावती पुरवारों के पाँड़े जब गौड़ ब्राह्मण बतलाये जाते हैं तब बहुत संभव है कि अठसखे परवारों के पाँड़े भी ब्राह्मण ही हों।

भिलसा के पास के 'नरवर' का पुराना नाम पद्मावती नगरी या पद्मावतीपुर है। इसी पद्मावतीपुर के सम्बन्ध से इस जाति का नाम 'पद्मावती पुरवाल' पड़ा होगा, ऐसा जान पड़ता है। सुना है कि वहीं कहीं 'परा' नाम का स्थान है जिसके कारण हमारी जाति का नाम 'परवाल' या 'परवार' पड़ा है।

३—पोरवाड़ और परवार।

पुराने शिलालेखों में 'पोरवाड़' जाति का उल्लेख 'पौरपाटान्वय' नाम से मिलता है। आबू के सुप्रसिद्ध मन्दिरों के बनवाने वाले वस्तुपाल तेजपाल मंत्री को 'पौरपाटान्वय' ही लिखा गया है। और भी सैकड़ों शिलालेखों और ग्रंथों में पोरवाड़ों को पौरपाटान्वय या पौरपाट वंशोद्भव लिखा है * परन्तु अभी अभी देवगढ़ (झाँसी) के मन्दिर में जो शिलालेख है उसमें मैंने देखा कि एक परवार कुटुम्ब को भी 'पौरपाटान्वय' लिखा है। यह शिलालेख जैन मन्दिर नं० १२ की आधुनिक दीवाल पर लगा हुआ है जिसका साइज़ २०॥ × ११॥ है। उसकी नकल नीचे की जाती है--

† "संवत् १४९३ शाके १३५८ वर्षे वैशाख विदि ५ गुरे दिने मूल नक्षत्रे श्रीमूलसंघे बलात्कार गणे सरस्वती गच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्रीप्रभाचंद्र देवान् तच्छिष्य वाद वादींद्र भट्टारक श्रीपद्मनन्दि देवान् तच्छिष्य श्रीदेवेन्द्र कीर्तिदेवान् पौरपाटान्वये अष्टसाखे आहारदान द नेश्वर संघई लषमणा तस्य भार्या श्री अखइ सिरि तस्य कुक्षि समुत्पन्न संघई अर्जुन भार्या खेमा तस्य भ्रात खिउंराजा भार्या खिउं सिरि संघाधिपति अर्जुन तत्पुत्र संघाधिपति जुगराजु तस्य भार्या गुणसिरि सुबांधव घोपति भार्या पद्मासिरि तथा बंधव रामदेवा भार्या कौंलसिरि चतुर्थ भ्राता संघई मना भार्या वागसिरि सा खिउंराज तस्य पुत्र भिउं राज भार्या भिउंसिरि सा धनपति पुत्र कौड़े (?) भार्या धेनुसिरि श्रीशांतिनाथ चैत्यालय सकल कला प्रवीण पं० दंम तस्य भार्या पुणसिरि तस्य पुत्र पं० नेनसिंह तेन प्रतिष्ठितं संघाधिपति जुगराजु तेन कर्मक्षय निमित्तेन मंडप कारापित नित्यं प्रणमंति सूत्रधार जैतसी पुत्र कर्मचंद्र।

सा गणपति तस्य पुत्र जिणा तस्य पुत्र संघई ··· ······ कारापिता नित्यं प्रणमंति पौरपाटान्वये।"

एक तो देवगढ़ के आसपास परवारों की ही अधिक आबादी है, दूसरे पौरपाटान्वय के लिये जो 'अष्ट शाखे' विशेषण दिया गया है वह अठसखे का ही पर्यायवाची है। अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि उक्त शिलालेख के पौरपाटान्वय से परवार जाति ही अभिप्रेत है। तब क्या पोरवाड़ और परवार किसी समय एक ही थे? क्या कोई सज्जन इस विषय पर अधिक प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

४—गहोई और परवार।

परवारों के अनेक गोत्र गहोई भाइयों के गोत्रों से मिलते हैं। गहोई वैश्य महासभा की ओर से गहोई जाति की 'गोत्रावली' प्रकाशित हुई है। उसके अनुसार गहोइयों के नीचे लिखे हुए ११ गोत्र हैं। गोत्र प्रवर्तक ऋषियों के नाम भी साथ में दिये गये हैं। इन गोत्रों के साथ परवार जाति के जिन जिन गोत्रों की एकता या समानता मालूम होती है उन्हें भी साथ ही दिये देते हैं इससे पाठकों को मिलान करने में सुभीता होगा।

---

* देखो श्रीयुत मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित 'प्राचीन जैन लेख संग्रह'।

† इसके प्रारंभ में तीन संस्कृत पद्य मंगलाचरण के रूप में और भी हैं जिन्हें मैं जल्दी के कारण अच्छी तरह पढ़ न सका। प्रकाश की कमी और ऊँचाई के कारण उसकी नकल फुरसत से नहीं हो सकती थी।

गहोई गोत्र	ऋषि	परवार गोत्र
१ वासर	वत्सार(वत्सल ?)	वाछल्ल और वासल्ल
२ गोल	गोभिल्य	गोइल्ल
३ वाचिल	वशिष्ठ (?)	वांझल्ल
४ कासव	काश्य (?)	कासल्ल
५ गांगल	गर्ग (?)	गोहिल्ल
६ भाल	भार	भारिल्ल
७ जैनल	जैमिव (?)	...
८ वादिल	...	...
६ कौछल	कुत्स	कोछल्ल
१० कोइल	...	कोइल्ल
११ कोहिक	कुशिक (?)	...

इससे मालूम होता है कि हमारी और गहोई गोत्रावली में बहुत कुछ समानता है। हमारे यहाँ जिस तरह एक एक गोत्र के बारह बारह मूर हैं उसी तरह गहोईयों के भी एक एक गोत्रके अनेक अनेक भेद हैं जो प्राय: ग्रामों के नामों पर से पड़े हुए जान पड़ते हैं। जैसे श्रीपुर के श्रीपुरिया, पटेरा के पटेरहा, बमोरीके बमोरहा, टिकरी के टिकरया आदि। इन नामों में से सरावगी मउ के (बासरगोत्री) और सरावगी मोहानी के (गोलगोत्री) ये दो नाम हमारा ध्यान खास तौर से आकर्षित करते हैं। यह बतलाने की जरूरत नहीं कि सरावगी, श्रावगी और श्रावक एक ही शब्द के रूपान्तर हैं और यह श्रावक शब्द जैन धर्म के उपासकोंके लिएही व्यवहृत होता है। राजपूताने और मालवे में सरावगी शब्द खास तौर से खंडेलवाल श्रावकों के लिए व्यवहृत होता है। कहीं कहीं अग्रवाल आदि जैन जातियों के लिए भी सरावगी शब्द का इस्तेमाल होता है। बंगाल के पुराने जैनी 'सराक' कहलाते हैं जो श्रावक शब्द का ही अपभ्रंश है। अएतव पूर्वोक्त गोत्रों की एकतासे और सरावगी 'अल्ल' से यह पूछने की इच्छा होती है कि क्या पहले गहोई और परवार एक थे। सरावगी अल्ल के धारण करने वाले गहोई तो कभी न कभी अवश्य जैन धर्म के उपासक रहे होंगे।

४—गोत्र और मूर।

हमें इस बात का पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए कि ये गोत्र और मूर क्या हैं? गोत्र तो अनेक जातियों में सुने जाते हैं; परन्तु ये मूर क्या हैं? परवारों को छोड़कर जहाँ तक हम जानते हैं और कोई भी वैश्य जाति ऐसी नहीं है जिसमें इस तरह के मूर पाये जाते हों। प्राय: सभी वैश्य जातियों में गोत्रों को ही बचाकर करके विवाह सम्बन्ध होते हैं; परन्तु परवारों में अकेले गोत्रों से काम नहीं चलता, गोत्रों के मूर भी बचाना पड़ते हैं। ब्राह्मणों में गोत्र और प्रवर होते हैं। जान पड़ता है कि इन प्रवरों के ही स्थानापन्न परवारों में 'मूर' हैं। जिस तरह हमारे यहाँ मूरों के एकता होने से विवाह नहीं होता उसी तरह ब्राह्मणों में भी प्रवरों की एकता में विवाह करना निषिद्ध है।—समानगोत्रत्वं समानप्रवरत्वं च पृथक् पृथक् विवाह प्रतिबन्धकम्। (धर्मसिन्धु पृ० ३७७)

वैदिक धर्म शास्त्रोंमें गोत्र का लक्षण इस प्रकार किया है—

> विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः।
> अत्रिर्वशिष्ठः कश्यप इत्येते सप्तऋषयः॥
> सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टमानांयदपत्यंतद्गोत्रमित्युच्यते

अर्थात् विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप और अगस्त्य इन आठ ऋषियों की जो सन्तान हैं उसे गोत्र कहते हैं। यद्यपि गोत्र अनन्त हैं तथापि ४६ ही

गोत्र भेद हैं:— यद्यपि गोत्राणि अनंतानि तथाप्यूनपंचाशद्देवगोत्र भेदाः।

प्रवरों का लक्षण करते हुए धर्मसिन्धु में लिखा है—प्रवर लक्षणं तु गोत्रवंश प्रवर्तक ऋषीणां व्यावर्तका ऋषिविशेषाः प्रवरा इत्येव संक्षेपतो ज्ञेयम्। अर्थात् गोत्र वंश प्रवर्तक ऋषियों के जो व्यावर्तक ऋषि विशेष हैं संक्षेपतः वही प्रवर हैं।

हमारी गोत्रावली के पाठ सैकड़ों वर्षों की अज्ञानता के कारण इतने अशुद्ध और अपभ्रष्ट हो गये हैं कि उन पर से प्रत्येक गोत्र के प्रवर्तक ऋषि का पता लगाना बहुत ही कठिन हो गया है; फिर भी गोइल, वाछल, कोछल जैसे कुछ गोत्रों में से उनके प्रवर्तकों के नाम गोभिल, कुत्स आदि बहुत कुछ स्पष्ट ध्वनित होते हैं और इससे यह अनुमान होता है कि संभवतः हमारी यह गोत्रावली उसी गोत्र परम्परा में चली आरही है जो ब्राह्मणादिकों में अब तक अविछिन्न रूप से प्रवाहित है।

मूरों के विषय में अभी तक हम कुछ भी निश्चय नहीं कर सके हैं कि ये क्या हैं। मूरों की नामावली इतनी अपभ्रष्ट और अद्भुत सी हो गई है कि न तो गहोइयों के समान यही मालूम होता है कि खेड़ों या ग्रामों के नाम के साथ उनका कुछ सम्बन्ध है और न प्रवरों के समान उनमें ऋषियों के ही नाम की कोई झलक दिखती है।

परवार महासभा को चाहिये कि वह सब से पहले मूर और गोत्रों की नामावली का एक शुद्ध पाठ तैयार कराके प्रकाशित करे। परवार बन्धु के द्वारा बहुत सुभीते के साथ यह कार्य हो सकता है। पहले बन्धु में गोत्र और मूरों की सूची प्रकाशित की जाय और पाठकों से प्रार्थना की जाय कि वे उक्त सूची को ध्यान से पढ़ें और उनके यहाँ जिन जिन गोत्रों और मूरों का पाठ भेद प्रचलित हो या किसी बही में लिखा हो उसकी सूचना बन्धु में प्रकाशित करा देवें। इन सब सूचनाओं पर से बहुत कुछ शुद्ध और प्रामाणिक मूर गोत्रावली तैयार हो सकती है। इस कार्य में पंडियों से भी सहायता लेनी चाहिये। सुनते हैं परवारों के पंडियों के यहाँ अब भी इतिहास सम्बन्धी बहुत कुछ मसाला मिल सकता है।

हमारी गोत्रावली के गोइल्ल और गोहिल्ल बाछल्ल और वासल्ल आदि दो दो नाम बिलकुल एक से हैं। ये बहुत खटकते हैं।

सौ दो सौ वर्ष पहले के अथवा इससे भी प्राचीन लिखे हुए 'सखेसरा' (मूर गोत्रावली) तलाश करना चाहिये। उनके पाठ बहुत कुछ शुद्ध होंगे।

प्राचीन प्रतिमाओं और मन्दिरों के लेखों से भी मूर और गोत्रों पर बहुत अच्छा प्रकाश पड़ सकता है। इस सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। ३०-८-२४

—हितैषी।

हमारी जाति की वर्तमान अवस्था ।

(लेखक—श्रीयुत चतुर्भुज जैन, उपमंत्री—स्या० मा० सभा बनारस)

खेद से लिखना पड़ता है ! कि अज्ञानान्धकार के कारण हमारी जाति में जाति भाइयों के प्रति जाति भाइयों की परस्पर द्वेष बुद्धि रखने का ही यह फल है कि आज हमारी शुद्ध जाति दिनों दिन कमती आ रही है। आज हमारी जाति का अस्तित्व दिनों दिन घटता आ रहा है।

जाति भाइयों को अपनी जाति में मान-धन स्थापन करना ही धर्म है-उनको अपना समय जाति भाइयों के नवीन २ अपराधों की खोज में ही बिताना पड़ता है। मनुष्यों के अपराध न होने पर भी कोई २ दुष्ट प्रकृति के जाति भाई तो अपने जाति भाइयों के कल्पित अपराध तक बना करके अनेक उपद्रव किया करते हैं। नारकियों के सदृश उनको इसी में आनन्द आता है। आपस में फिसाद-फूट पैदा करना ही उनका उद्योग है-प्रकृति है। इस प्रकार नीच प्रकृति के पुरुष जहां एक दो ही उत्पन्न हुए वहां का सामाजिक जीवन बड़ा ही विरोधी तथा कपट पूर्ण कार्यों से छिन्न भिन्न विषैला हो जाता है। कहीं २ तो ये विषैले जीव समाज को ऐसा धोखा देते हैं कि जिससे जाति बहिष्कृत तक का अवसर आजाता है-यह रोग हमारी समाजमें विशेषकरके बुन्देलखण्ड निवासी परवार गोलालारी गोलापूर्वादि जातियों में है इसलिये ये जाति बहिष्कृत करनेमें बहुत बढ़ी चढ़ी हुई हैं।

हमारे जाति भाइयों को गरीब आदमियों की जायदाद बिक जाने पर भी मंदिर का जुर्माना लेने में दुःख नहीं होता। प्यारी बहूसे झाड़ते समय चिड़िया का अंडा बुहारी लगने से फूट गया! प्यारी बहू को प्रायश्चित्त करना होगा। प्यारी बहू रॉंड है उसके ११ वर्ष की अविवाहता लड़की है। लड़की के ऊपर बहुत से काग (बुड्ढे) १०००) की थैली बतलाकर चोंचें मार रहे! पर प्यारीबहू धर्मात्मा है वह लड़की की शादी हष्ट पुष्ट योग्य वरके साथ करना चाहती है वह लड़की की शादी में एक पैसा भी नहीं लेना चाहती। परन्तु दलाल आते और जाते हैं।

पंचों ने प्यारीबहू के ऊपर १५) जुर्माना कर दिया। साथ ही मंदिर भी बंद कर दिया जुर्माना दाखिल होने पर मंदिर में प्रवेश होगा। मैंने उससे पूँछा—तू अगर जुर्माना न दे तो तुझे डर काहे का है! आसुओं से भरे अभिमान की लड़ाई में जब प्यारीबहू सूर्यास्त की दिगन्त रेखा में एक जल भरे अग्नि पूर्ण कालमेघ की तरह चुपचाप खड़ी रही। तब मैंने उससे फिर पूँछा तू अगर जुर्माना न दे तो तुझे डर काहे का है।

उसने थके हुये बैल की तरह अपने धैर्य भाव पूर्ण नेत्रों को उठाकर कहा! लड़की अविवाहता है! मैं भी जिनेन्द्र देव के दर्शन बिना उपवास कर रही हूँ!

मैंने कहा—अगर अपराध ही हुआ तो इतने दिनों से इसका प्रायश्चित्त भी तो कम नहीं हुआ।

उसने कहा जी, कम कैसा—जो कुछ जमीन (मकान रहने का) थी वह तो पति की दवाई कराने में गयी 'बहू की बहू गई तौलबाप के बांट भी ले गई' इसी के अनुसार पतिदेव गये, मकान दवाई कराने में बिक गया-बची खुची जायदाद पति की अन्त्येष्ट

क्रिया (तेरई) में गई। प्यारी बहू बड़ी बिटिया के यहां आगई है—ग्राम के बाहिर ठहरी हैं! अपना बचा खुचा डेरा साथ में लिये है! दमाद अपने घर लिवा लेगया, प्यारीबहू बड़ी बिटिया के यहां रहती हैं! बड़ी बिटिया के मैयासुसर आये हैं। प्यारीबहू ने अन्दर बुला कर कहा! साहु जू गहना रखलो १५) उधार दे दो। साहुजू ने एक थाली, नार २, लोटा १ कांखिया १, सन् चालीसा रुपयों की टकसार १, पुलघर ककना बिना ही लिखे पढ़े १५) में गहने रख लिये। प्यारी बहू ने मन्दिर का जुर्माना का देकर सबके साथ मन्दिर में प्रवेश किया।

अब प्यारी बहू ने छोटी लड़की की शादी करदी है और छोटी लड़की के यहां ही रहने लगी हैं।

कुछ दिनों में दामाद से लड़ाई होने लगी। प्यारी बहू घर जाना चाहती है। प्यारी बहू ने दमाद से ४०) मांगे कहा कि, मैं ४०) में अपना मकान और भोजनादि के बर्तन उठालूंगी! पर उसने लड़की की शादी में ग्राम के पंचों को नहीं बुलाया था! इसीलिये वह डरती है कि कोई किसी प्रकार का दोषारोपण करके जाति से बहिष्कृत न करदे? कोई मेरी सहायता नहीं करेगा-मुझे उचित है कि पहिले पंचों को बस में करलूं! अब हमें अपने जाति भाइयों के ऊपर दृष्टि डालना है! देखिये साहूकारी के लिये आपने रांड रड़ी का तमाम सामान १५) में बिना ही लिखे पढ़े गहने रख लिया। फल यह हुआ कि आज प्यारी बहू को पूरा गहना नहीं मिल रहा! खेद!! हमारे पंच भी पंचायत करते समय कैसे स्वार्थी-पक्षपाती होजाते हैं। उनको पंचायत करते समय हेयाहेय का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता है! पंचों में परमेश्वर आता है इस उक्ति को सर्वथा भूल जाते हैं। यदि प्यारीबहू दलालों के कहने को मान लेती तो कभी प्यारी बहू की बची खुची जायदाद न जाती। हजारों रुपया आजाते। परन्तु प्यारी बहू भूखों मरने पर भी बुड्ढे के साथ लड़की की शादी न करेगी। धन्य हैं! हमारे दलाल महाशयों को कि जिन के द्वारा हमारी जाति रसातल को पहुंच रही है। आज यदि हमारी जाति में अज्ञानान्धकार नहीं होता तो हमारी जाति में हेयाहेय का ज्ञान नहीं रखने वाले दलालों की टोलियाँ भी न होतीं। आज पार्टी-पटियाँ, तड़ होजाने से जो हमारी समाज को क्षति पहुंच रही है। वह क्षति समाज से छिपी नहीं है। एक पटी दोनों आदमी को दंड देना चाहती है पर उसकी पटी पक्ष वाले दंड नहीं देना चाहते। इसी के कारण आज हमारी समाज में विरोध ने अपना पंजा जमा लिया है तथा विरोध होने से धार्मिक कार्यों में बाधा पहुंचती है। परन्तु यह सब धन कमाने के लिये ही किया जाता है।

यदि नहीं मानते हैं तो झाँसी मण्डलान्तर्गत......... के पंचों को देखिये! सम्पूर्ण .... के पंच विरोधी होने पर भी......... ... . ने अपनी ९ वर्ष की लड़की की शादी ४२ वर्ष के बुड्ढे के साथ कर दी। लड़का और लड़की वाले की पटी को छोड़कर सम्पूर्ण पंच के विरोधी होने पर भी लड़के तथा लड़की वाले पंचों ने कुछ भी दंड नहीं दिया। यदि लड़की तथा लड़के वाले पंच चाहते तो कभी भी शादी नहीं हो सकती थी पर वह विरोध करते भी किस तरह। वह तो कई दफे विवाह शादियों में दोनों घरानों को

खिलाये बैठे हैं उनको तो किसी भी तरह अपना बदला लेना था। जब तक वह पट्टियों को मोड़कर सब की एक पट्टी नहीं होगी तब तक हानि ही हानि है—फायदा कुछ नहीं है।

विद्या-प्रचार की खातिर, दिया जाता नहीं पैसा—
खुदाके ब्वाह शादी में तरक्की हो तो कैसेहो॥
धर्म औ जाति निर्भर है हमारी नारियों पर ही—
नहीं होती उन्हें शिक्षा, तरक्की हो तो कैसे हो॥

अश्रुधारा।

(लेखक -साहित्य भूषण पं० रामचरणलालजी शास्त्री)

अहो! अश्रु बिन्दुओं की प्रतिमा को क्या हम तप्त लोह पिंड की चिनगारियां कहें, या आंतरिक हृदय को नोचनेवाली करौंती की कटीली तीक्ष्ण धारा कठोर मानसी! क्या उसी आत्मा से प्रेरित हो नेत्रोंकी कालिमा के ससर्ग से उसी को संतप्त करने पर सहसा कमर बांधो है? क्या विस्मरण हो गई अखड दंडायमान क्रांति उस आत्म ज्योति की जिसके यत्किञ्चिद्गुण तुझ मे अब विद्यमान हैं। ध्यान को एकाग्र करने वाला तेरा वह स्वभाव अभीतक दिख रहा है। वह शांति मय संसार को असार बनाने वाला अनुपम उपदेश पीयूष तेरे भीतर अभीतक छिपा हुआ है। जब मैं तेरी आराधना में तल्लीन हो जाता हूं तब संसार की तुच्छता का अनुभव चित्तैकाग्रता का आदर्श मेरे नेत्रों के साम्हने झलकने लगता है। कौन से सरोवर का यह मंजुल सलिल है जो एक२ बिन्दु हो विचारों से मिश्रित हो कर टपकता है। क्या इसे तपस्योपार्जित अमृत बिन्दु कहें, अथवा उसी कल्पतरु का टपकता हुआ रस कहें; जिसे पाने के लिये योगाभ्यास करने वाले भस्मीभूत देह को धूप में सुखाने वाले महात्मा लोग शून्यारण्य में बैठे हुए तरसते हैं।

तेरी व्यापकता चिर प्रसिद्ध है। तेरी दीन दयालुता प्रत्यक्ष की जा चुकी है। तू दीन दुखियों की साथी है। किसान चाहे मंदिर में हों या पहाड़ों से झिरती हुई झरणों की सलिल धारा के पास, तू नितान्त उसकी खबर लेने को आखों के साम्हने विद्यमान रहती है।

आकाश के सितारे तेरे स्पर्धी क्यों न रहें परंतु उनमें वह भाव कहां। वह रस कहां। वह औपम्य कहां। वह आदर्श कहां! स्त्री पुत्रादि का मरण सुनकर तू प्रत्येक भारतवासी के समीप आश्वासन देने जा पहुंचती है। वियोगियों की तू सहकारिणी है। वे तेरी रातदिन आराधना करते हुए भी थकित नहीं होते। भगवान रामचन्द्र, सीता, दशरथ आदि से तेरा पूर्ण परिचय है। न हम तुझे आधुनिक कह सके हैं और न अनित्य। हम तो नित्य वस्तु बल्कि नीरस नहीं सरस एवं दुर्लभ वस्तु कहेंगे।

मानिनी! भारत में तेरा पूर्ण साम्राज्य है, इस पर मत अभिमान कर। दुर्दिनों का आगमन तेरी शान क्षण भर में मिट्टी में मिला देगा। तेरे भाग्य में तभी तक सुख है, जबतक कि भारत के भाग्य रूपी ग्रह का उदय नहीं हुआ।

अठसका छपाने वाले ध्यान देवें ।

(लेखक—श्रीयुत पंचमलाल जी जैन तहसीलदार)

'परवार—बन्धु' मुख्यतः जाति का पत्र होने से, अठसकों का छपना बहुत ही समयानुकूल कार्य है । नजदीक में जब अठसका मिलाये जाते हैं तो संबंध कठिनाई से मिलता है और इसी ख्याल से समय समय पर चार सांकों की दुहाई दी जाती है; जिनका प्रचलित होना सिर्फ अनावश्यक ही नहीं, बल्कि हानि कर होगा । सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जावे तो नाम मात्र ही को आठ सांकें हैं । मिलान की विधि स्वयं ही चार को अनावश्यक बना देती है । यह बात सही है कि निज मूर आठों ही में दखल रखता है । लेकिन ऐसा होना स्वाभाविक ही कहा जायगा कारण लड़का या लड़की के जन्म दाता उनके माता पिता और इसी तरह इनके जन्म दाता उनके माता पिता जिनके विश्लेषण से स्वयं मेव आठ साकें बन जाती हैं और इनको कोई भी निष्पक्ष जन दूर की नहीं कह सका कि मूर की सांक इन्हें अमान्य न ठहरावे । यह बात सभी के अनुभव में होगी कि अठसका दूर जगह मिलाने से अक्सर जल्दी मिला करते हैं । इस मिलान का अभीतक कोई साधन न था लेकिन 'परवार-बन्धु' के जरिये उसकी पूर्ति बहुत अच्छी तरह व आसानी से हो सकी है । यदि इनकी फाइलें बना ली जावें तो बहुत समय तक इनका उपयोग हो सका है । बंधु ने स्वयं ही स्यात् इसी कारण से अठसकों को अखीर में अलग पृष्ट पर छापना आरंभ किया है । कम से कम एक एक फाइल हर जगह पर जहाँ मंदिर जी हैं, रखने का प्रयत्न होना चाहिये । विषय की उपयोगिता पर लक्ष्य करते हुए छपाने वालों का ध्यान निम्न त्रुटियों पर विशेष कर दिलाया जाता है । इनके मिटने पर दूरवालों को संबंध निश्चित करने में ज्यादा सुभीता होगा । वरवालों को चाहिये कि नोट देवें । लड़का कुंवारा है या द्विजवर, तिजवर आदि । कुंवारों के संबंध में उनके पठन पाठन का नोट और द्विजवरादि के लिये संतानादि पहिली स्त्री से होने का नोट दिया जावे । जन्म तिथि व संवत के साथ साथ राशि नाम तथा जन्म की राशि व नक्षत्र दिया जावे । इससे बिनाकिसी पत्रव्यवहार के हर व्यक्ति अठसका व कुंडली दोनों का मिलान स्वयं कर सका है । और वह इस तरह कि, चंडू पञ्चांग के अखीर में वह कन्या मेलन पत्र नक्षत्र के मान से लगा रहता है । उससे मिलान का हाल बिना पंडित की मदद से मोटे तौर पर मालूम हो जाता है । सुभीता इस मिलान से यह होगा कि पत्र व्यवहार, वर दिखाई आदि उन्हीं में करने की जरूरत रह जावेगी, जिन में दोनों का मेल होता होगा । शुभस्य शीघ्रम् । क्या समाज ध्यान देवेगी ?

विविध विषय

हिन्दू और मुसलमान

अभागे भारत को अपनी पुरानी करतूतों का फल बहुत दिनों से मिल रहा है लेकिन अभी तक उसके पर्य्यवसान का कोई चिह्न दृष्टि गत नहीं होता। हिन्दुओं की आपसी फूट ने उन्हें खा लिया—हिन्दुओं का हिन्दुस्थान संसार की ससुराल बन गया। मुसलमान आये उनने इन्हें लूटा, मारा पीटा, मंदिर गिराये, देव मूर्तियाँ तोड़ी, स्त्रियां छीनलीं लेकिन इसके विरोध में समूची हिन्दू जाति में कभी हलचल न मची। खैर यह कहलाई हिन्दुओं की उदारता! लेकिन निर्बल बनकर उदारता दिखलाने का दूसरा नाम कायरता है। हिन्दुओं ने जो उदारता दिखलाई उसका कुछ भी फल न हुआ।

खिलाफत को अपना ही मसला समझा। पूरी धन की सहायता दी। लेकिन इसका फल कुछ न हुआ मसजिद के आगे बाजे न बजाने का नियम जैसा का तैसा अटल रहा। कोहाट, लखनऊ, हैदराबाद राज्य में होने वाली मुसलमानों की बर्बरता, दिल्ली, सहारनपुर आदि में किये गये अत्याचार, न रुक सके। हां! उनकी मांगे बढ़ गईं वे चाहते हैं कि हम कितने ही अयोग्य क्यों न हों हमें फी सदी मस्सो नौकरियाँ दे दो, शुद्धि न करो हमारे किसी कार्य में आड़े न आओ ये मित्रता करने के ढंग हैं! पर असल यह सब हिन्दुओं की कमजोरी के फल हैं। एक जगह ताजियों के रास्ते में वट वृक्ष मिलता था, मुसलमान चाहते थे कि इसे काटकर हिन्दुओं को चिढ़ायें—इसलिये और साल की अपेक्षा बड़ा ताजिया बनाया गया। बिचारे हिन्दू पहिले से ही सम्हल गये, उनने वृक्ष की डालियाँ ऊपर को बांध दीं, इस पर भी ताजिया निकलने में अड़चन की सम्भावना रही। तब उनने नीचे की जमीन खोद दी—ताजिया अच्छी तरह निकल गया। इसी से मालूम पड़ता है कि हिन्दू कितने शान्त हैं और मुसलमान अपनी बर्बरता पर कितने तुले हुए हैं।

लेकिन मुसलमानों की इन करतूतों से हिन्दू सजग हो रहे हैं मुसलमानों को इसका कटुक फल शीघ्र भोगना पड़ेगा असंगठित हिन्दू जाति संगठन हो जायगी। फिर भी इन झगड़ों का दुष्परिणाम दोनों को भोगना पड़ेगा स्वराज्य में भारी बाधा पड़ेगी। स्वराज्य हिन्दुओं के लिये ही नहीं है, मुसलमानों के लिये भी है। मुसलमानों को चाहिये कि वे ख्वाजाहसन निजामी सरीखे मतान्धों की बातों में न पड़ें, हिन्दुओं से मिलकर रहें अगर वे संसार भर को मुसलमान बनाना चाहते हैं तो हिन्दू उन्हें कभी न रोकेंगे। हां, वैध उपायों का ही अवलम्बन होना चाहिये। जो अधिकार वे दूसरों से चाहते हैं वे दूसरों को देना पड़ेंगे। इधर हिन्दुओं को भी चाहिये कि वे संगठित बनें निर्बल की उदारता कायरता है। हां, उस संगठन में परपीड़न का भाव न रखकर आत्मरक्षा का भाव रखा जावे।

× × × ×

१ मार स्वरूप है।

नवजात शिशु का मुखावलोकन करके माता प्रसवकाल की सब पीड़ा भूल जाती है। उसे अतृप्त नयनों से देखती है और भविष्य की आशाओं पर उस का लालन पालन बड़े प्यार के साथ करती है—उसके अपराधों को

क्षमा करती है—आये दिन परस्पर में होनेवाली बालक्रीड़ा से उत्पन्न हुए उलझनों को बच्चे के प्रेम में सहलेती है—यदि वह किसी खिलौने के लिये मचल जाता है तो तुरंत अनुपयोगी और अनावश्यक रहने पर भी केवल बालक की इच्छा तृप्ति के लिये खरीदकर दिया जाता है। क्योंकि वह स्वय एक खिलौने के समान खेलता रहता है।

किन्तु यह अवस्था उसकी अधिक दिन नहीं रहती, । ज्यों २ वह बड़ा होता जाता है त्यों २ शिक्षित संरक्षक खेलों में ही शिक्षा देकर उस की मानसिक शक्तियों के विकाश का प्रयत्न करता रहता है। जिस को कभी पिता बनने का सौभाग्य ही नहीं हुवा या जो बालक के भविष्य जीवन को अन्धकार में से बचाने की क्षमता नहीं रखता—उसे उसका स्मरण तक ही नहीं आता—ऐसे पिता का बालक, यदि अपने जीवन को नष्ट भ्रष्ट और सामयिक संसार की प्रगति में बराबरी कर सकने के लायक न बना सके तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

आश्चर्य और खेद तो तब होता है कि जब बालक स्वयं यह जानकर भी कि अबतक मैं जिनकी आशा पर खेल रहा था उनको मेरी भावी उन्नति का ज़रा भी स्मरण नहीं है किन्तु प्रसवकाल में सहायता करने का कोरा अभिमान—दुरभिमान अवश्य है और इसी कारण मुझे उनकी झिड़कियां मिलती हैं। अनुचित और अनधिकार चेष्टा की जाती है। यह सब अज्ञात अवस्था में सह लिया जाता है किन्तु वयस्क होने पर—ज्ञात अवस्था में भी जो इन सब कुठाराघातों को सहता जाता है। वह आत्म घात करता है। आत्म घात महापाप है—उससे आत्मा अत्यंत पतित हो जाती है। अतः इस पाप मल को धोने के लिये सब से अच्छा उपाय तो यही है कि वह उसको सत्पथ पर लाने की चेष्टा करे—यदि वह उस चेष्टा में विफल हो तो वह स्वयं उन का साथ छोड़कर अपनी प्रगति में ज़रा भी आगापीछा न करे। यदि उस में स्वावलम्ब की शक्ति नहीं है अपने पैरों पर खड़े होने का साहस नहीं है—अन्यायियों और अनुचित आक्रमण करने वालों का साथ छोड़ने को तैयार नहीं है- तो समझा जाता है कि वह सत्य का अनुगामी नहीं और ऐसे अन्यायियों का साथ देने से—उनका अवलम्ब रखने से इस संसार का कुछ भी भला नहीं होता—इस कारण उसका जीवित रहना भी संसार को भार स्वरूप है।

× × × ×

२ परवार सभा के सप्तम अधिवेशन की सागर में तैयारी।

अब की बार परवार सभा का सप्तम अधिवेशन कराने को सागर, भोपाल भेलसा इन तीनों स्थानों से निमंत्रण पत्र आये थे—केवल निमंत्रण पत्र ही आकर नहीं रहे थे किन्तु उत्तर पाने को मंत्री महोदय के पास तार पर तार भी आये। तीनों स्थानों की पंचायतों का आग्रह अपने यहां अधिवेशन कराने का था। भोपाल की नवीन स्थापित नवयुवक मंडल की ओर से उत्साह पूर्ण निमंत्रण था।

उसका फैसला प्रबंधकारिणी कमेटी ने कर दिया है। और ठीक ही किया है।

क्योंकि अब तक एक प्रकार से देखा जावे तो उसका जीवन दक्षिण प्रान्त ही में व्यतीत हुआ है। किन्तु सागर परवारों का एक ऐसा

केन्द्र है। कि जहाँ पर इकट्ठे होने के लिये सभी लोगों को सुभीता है। तथा सागर जिला, परवारों को मनुष्य संख्या में भी सब से पहिले नम्बर है—श्रीमान पूज्यवर पंडित गणेशप्रसाद जी का निवास स्थान तथा वहां से रेसिंदीगिर, कुंडलपुर आदि स्थानों की यात्रा का भी सुभीता है।

सागर की परवार जनता में इस अधिवेशन को विस्तृत रूप में सार्थक करने के लिये अदम्य उत्साह दिखाई देता है। श्रीमान पूज्यवर पं० गणेशप्रसाद जी को तो इस अधिवेशन की सफलता के लिये-बल्कि कहना चाहिये कि परवार सभा का सच्चा और कार्यवाहक रूप देखने के लिये बड़ी चिन्ता है।

सागर में अधिवेशन की स्वीकारता मिलने के पहिले से ही उत्सुकता दिखाई देती थी—मालूम पड़ता है कि जिस तरह से उसके आत्म विश्वास रूपी आकर्षण ने परवार सभा को खींच लिया है। उसी तरह से उस की सफलता भी निर्विघ्नता से होगी। और वह परिपाटी को लिये हुए नहीं किन्तु एक विस्तृत क्षेत्र में पदार्पण करती हुई दिखाई देगी। उसका कार्य दिखाऊ या कोरे कागज में लिखे रहने के लिये नहीं होगा—किन्तु एक सच्ची सत्तात्मक सृष्टि की उत्पत्ति इस अधिवेशन में होने की सम्भावना है।

समारोह होगा और अच्छा होगा। मुझे तो कई स्थानों के बहु संख्यक लोगों ने सागर में आने का संदेशा दिया है। और ऐसे समय में दिया है कि जब सागर में अधिवेशन होने का निर्णय भविष्य के गर्भ में था। इस समारोह से परवार समाज के मन्तव्य प्रकाशित होंगे तथा सागर जैसे स्थान में अपनी धांधली करने तथा बहुमत के निरादर का अवसर ही न आने पावेगा। सब इस अधिवेशन को सफल बनाने के लिये सभी परवार गृहस्थों-विद्वानों को आकर पूर्ण चेष्टा करनी चाहिये।

आगामी कार्यक्रम पर विचार।

जो जन समाज तथा देश भावी कठिनाइयों के विचार मात्र से भय भीत होकर विचलित हो जाता है—आगे बढ़ने से रुक जाता है। संसार में उसका अस्तित्व तक नहीं रहता। क्यों कि यह बात तो निश्चित है कि जब २ किसी देश, समाज या धर्म ने अपनी उन्नति की है तब २ उसे अनेक कठिनाइयों का सामहना करना पड़ा है। विरोधियों ने उसमें रोड़ा अटकाने के लिये भरसक प्रयत्न किया किन्तु अन्त में सत्य की विजय हुई।

अन्यायियों का सदैव पतन ही होता है। राजा वसु ने न्यायासन पर बैठकर सत्यप्रिय नारद को नीचा दिखाने के लिये पापी पर्वत का पक्ष लिया। क्यों कि ऐसा करने के लिये उसकी गुरु पत्नीने उसे वाध्य किया था। परन्तु उसका परिणाम अन्त में वही हुआ जो होना चाहिये—असत्य का—पाप का पक्षपात देखकर न्याय का सिंहासन हिलगया—दूसरी बार फिर भी वही पक्षपात के शब्द पापी राजा वसु ने उच्चारण किये, तब क्या था इस नराधम को सिंहासन सहित सदैव के लिये इस वसुंधरा में लीन होना पड़ा। नारद की-सत्य की विजय हुई। सारी सभाने प्रशंसा की।

परवार सभा का जीवन सार्थक बनाने के लिये उसका अस्तित्व कायम रखने के लिये हमें सम्मिलित शक्ति से कुछ करना होगा। केवल प्रस्तावों को ही पास करते रहने से हमारी शक्ति नहीं बढ़ सकी। अभी करने के लिये हमें बहुत काम बकाया है—उनमें सबसे

मुख्य कार्य तो यही है—कि जिस शक्ति को लेकर हम काम करना चाहते हैं उसमें स्वयं ऐसी संजीवनी शक्ति—सत्ता उत्पन्न करें कि जिसे देखकर एकाएक दूसरों को उसके विरुद्ध करने का साहस न हो—सहानुभूति हो।

ये मैं जानता हूं कि समाज में अब भी १६ वीं शताब्दी के स्वप्न देखने वाले उपस्थित हैं। जो सभाओं को-नियमों को—केवल ढकोसला कहकर अपनी ही मर्यादा बनाये रखना चाहते हैं। अपनी सम्मति के समक्ष समाज की तथा बहुमत की उपेक्षा करते हैं। उनको उचित और न्याय मार्ग पर लाना होगा। और बतलाना होगा कि सभा की आवाज़ किसी एक की आवाज़ नहीं किन्तु समष्टिगत है—उसका ध्येय जैन आगम के अनुसार मर्यादित, सामाजिक सुधार तथा धर्म प्रचार है।

तब परवार सभा की आवाज को घर २ पहुंचानेके लिये घोर प्रयत्न करना होगा। और यह तभी होगा जब कि इसका सुसंगठन हो संगठन के बाबत परवार सभा के प्रथम अधिवेशन में ही कुछ प्रकाश डाला गया था—बल्कि एक प्रस्ताव पास होकर उसकी नियमावली निर्माण करने को एक कमेटी भी बनाई गई थी। जिसको आदेश दिया गया था कि, वह आगामी अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट और समूची कार्यवाही का ब्यौरा सभा में पेश करें। परन्तु उसने अपना सन्तोषप्रद कार्य नहीं किया। इसलिये वह प्रस्ताव केवल रिपोर्ट ही में लिखा रह गया।

प्रत्येक अधिवेशन के अध्यक्ष महोदयों ने जिस प्रकार बाल विवाह, वृद्धविवाह, शिक्षा प्रचार, आदि परम्परागत बातों पर लक्ष दिया है। उस प्रकार संगठन की योजना को अपने भाषण में स्थान नहीं दिया हां, उल्लेख अवश्य किया है। मैं समझता हूं कि आगामी होने वाले अधिवेशन में इस समस्या को हल करने के लिये पूर्ण शक्ति लगाई जावेगी।

(१) सबसे प्रथम सभाकी नियमावली ही में जहां २ परवारों की संख्या काफी तादाद में हैं उनको जिला सभा निर्णीत करके उसकी कार्यवाही को प्रतिष्ठित उत्साही सज्जनों के हाथमें देने से कुछ कार्य सम्पन्न होने की आशा है। अभी जिलेकी सीमा वही निर्दिष्टकी जावे जो सरकारी हद्द नक्शे में दी गई हो-पश्चात् जो ग्राम जिलसे लगता हो-उसकी रिपोर्ट आने पर उसे उसमें शामिल कर दिया जावे। फिर कार्यकर्ताओं को उस ज़िले के केन्द्र में एक निश्चित तारीख पर पहुंचकर उसके आसपास के ग्रामों को निमंत्रित करके सभा का कार्य समुचित रीति से कराने की आवश्यकता है। जब तक ऐसा न किया जावेगा तब तक ग्रामों में उस ज़िले से सम्बन्ध होने की सूचना नहीं हो सकी। वही समुदाय फिर अपने २ स्थानों में पहुंचकर ग्राम संगठन करेगा—

(२) बहुत स्थान ऐसे हैं कि जहां पर आपसी विरोध होने का कारण मंदिरों आदि की जायदाद का अव्यवस्थित होना है। अतः जब तक इस सार्वजनिक या धर्म द्रव्य की व्यवस्था न की जावेगी तब तक आपसी विरोध दूर करना कठिन है-बिना उसके दूर किये स्थानीय सभा सुसंगठित नहीं हो सकी—अतः इस कार्य को उक्त सभाएं सबसे पहिले अपने हाथमें लेवें।

(३) प्रत्येक ग्राम, जिला तथा भारतवर्षीय परवार सभा के महत्वपूर्ण प्रस्तावों को अमल कराने तथा कुरीतियों को शान्तिपूर्ण उपायों के द्वारा रोकने के लिये एक परवार स्वयंसेवक दल का संगठन किया जावे। उस संगठन तथा स्वयंसेवकों, मुखियों आदि के लिये एक नियमावली निर्माण करने के

लिये ३ महाशयों की कमेटी बनाई जावे जो परवार सभा की प्रबंधकारिणी कमेटी से शीघ्र पास कराके अमल में लाई जावे।

मैं समझता हूं कि ये कार्य श्रीयुत बाबू गोकलचन्दजी वकील के द्वारा अच्छी तरह से सम्पन्न हो सका है।

(४) परवार डिरैक्टरी में द्रव्य व्यय करके सिंघई पन्नालालजी ने इस जातिका महत्व पूर्ण उपकार किया है। और यह भी प्रण किया है कि उन पुस्तकों की विक्री से जो आय होगी वह किसी समाजिक कार्य ही में व्यय की आवेगी। अत: भारत व० परवार सभा तथा वे स्वयं इस बात की आवश्यका समझते है कि परवार जाति का इतिहास लिखा जावे। अतः इस कार्य के लिये श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी से प्रार्थना की जावे। क्योंकि वे इसका सम्पादन बहुत योग्य रीति से कर सकेंगे। आशा है कि वे इसे अवश्य स्वीकृत करेंगे।

(५) भा० व० परवार सभा की ओर से जातीय झगड़ों को दूर करने के लिये ७ सज्जनों की एक न्याय सभा बनाई जावे। वह माह में एकबार किसी निश्चित स्थान में उन झगड़ों पर विचार करके निर्णय देवे। जो नियमानुसार ग्राम तथा जिला सेतय होकर इस सभा में उपस्थित किये जावें। इस सभा को भा० व० परवार सभा की ओर से सब अधिकार दिये जावें। तथा भा० व० परवार सभा उन्हीं झगड़ों पर विचार कर सकेगी जो न्याय सभा द्वारा निर्णीत हो चुके होंगे।

न्याय सभा की नियमावली निर्माण करने को ३ सज्जनों की एक कमेटी बनाई जावे।

(६) संगठन की दृष्टि से वर्तमान परवार सभा की नियमावली में संशोधन करने की आवश्यका है। सभासदों से कुछ शुल्क लेना भी आवश्यक है।

आगामी अधिवेशन में विचार करने योग्य कुछ बातों का दिग्दर्शन मात्र हमने ऊपर किया है। समाज ने यदि उन्हें उपयोगी समझा तो प्रस्तावरूप में विशेष विवेचन के साथ प्रस्तुत किये जा सकेंगे।

सभापति का निर्णय।

वर्तमान जिन प्रश्नों को हल करने की जरूरत है उस दृष्टि से रा० ब० श्रीमन्त सेठ पूरनशाह जी आ० म०, राय सा० गोकुलचन्द जी, तथा सेठ मूलचन्द जी सराफ के नाम उल्लेख योग्य हैं। क्योंकि इस अधिवेशन की सम्पूर्ण कार्यवाही में इन्हीं महानुभावों की तत्परता से बहुत कुछ सफलता की सम्भावना की जा सकी है। स्वयंसेवक दल का संगठन करनेमें राय सा० गोकुलचन्दजी सिद्ध हस्त हैं।

मन्दिरों के हिसाब प्रकट करने का प्रस्ताव नागपुर अधिवेशन में पास हुवा था—उसके कुछ दिनों पश्चात ही श्रीमान् रा० ब० श्रीमन्त सेठ पूरनशाह जी ने अपने जबलपुर के, सोनागिर के, तथा सिवनी के मंदिरों का सम्पूर्ण हिसाब हमारे पास प्रकाशित करने को भेज दिया था। दान में कबूल की हुई रकमों को देने के लिये आप को आगा पीछा नहीं करना पड़ता है—जैसा कि प्रायः बहुतों को देखा गया है। सिवनी की पाठशाला आप की उदारता से ही चल रही हैं। इसी प्रकार अनेक जगहों को भी आपने दान दिया है। कई भाषाओं के जानकार, अनुभवी तथा विद्वान हैं। ऐसे कर्तव्यशाली सभापति को पाकर परवार सभा इस वर्ष कुछ विशेष कार्य करके दिखावेगी। आशा है कि समाज–सेठ जी के सभापतित्व को अवश्य स्वीकार करेगी। तथा आगामी कार्यक्रम पर पूर्ण विचार करके अपना अस्तित्व कायम करने में सफलता प्राप्त करेगी। —निर्भीक हृदय।

वैज्ञानिक नोट ।

१—यह बहुत कम लोगों को विदित है कि पृथ्वी पर सूर्य के सिवाय तारागणों से भी गर्मी पहुँचती है। किन्तु सब से नजदीक के तारे से भी अपने पास तक इतनी गर्मी आती है कि उसको १० छटाक पानी उबालने के लिये १,०००,०००,०००,००० वर्ष लगेंगे।

अगर अपने से ५३ मील दूर एक मोमबत्ती जलाई जावे तो जितनी आंच अपने लिये उस मोमबत्ती की लगेगी उतनी ही आंच उस तारे की गर्मी से मालूम होगी। तारागणों की गर्मी एक ऐसे यंत्र से नापी जाती है जिसमें दो तार वृत्ताकार में जुड़े हुए रहते हैं। ये तार भिन्न २ धातुओं के बने रहते हैं। उनमें से एक तार फूल धातु (Bismuth) का बना रहता है और दूसरा फूल धातु और किसी एक दूसरी धातु के मिश्रण का। इस यंत्र को अंग्रेजी में थरमो कपुल (Thermocouple) कहते हैं।

जिस तारे की गर्मी नापना होती है उसके प्रकाश को एक बड़ी दूर्बीन (telescope) में से हो करके थरमोकपुल के तारों के किसी एक जोड़ के ऊपर डालते हैं। इस गर्मी से विद्युतीय प्रवाह (Electric Current) पैदा होता है जो कि एक विद्युत प्रवाह दर्शक यंत्र के द्वारा जाना जाता है। इस यंत्र को अंग्रेजी में गैलवनामीटर (Galvanometer) कहते हैं।

२—एनडोविन (Eindhoven)में विद्युत का एक बहुत ही मशहूर कारखाना है। उसमें रासायनिक यंत्र बनाने के काम में करीब ४ हजार आदमी लगे हुए हैं। अभी हाल में वहां पर एक नवीन एक्स-रे यंत्र (x-ray tube) का आविष्कार हुआ है और उसको देखने के लिये हालेंड से लन्दन को देखने वालों के झुंड के झुंड आ रहे हैं। यह एक आश्चर्य जनक यंत्र है, क्योंकि जिस तरह से खोज प्रकाश (Search-light) से प्रकाश की किरणें निकलती हैं उसी तरह वे उस यंत्र (x-ray tube) में से निकलती हैं। और वे किरणें किसी भी दिशा में मोड़ी जा सकी हैं। इस लिये उन किरणों से हानि की कोई संभावना नहीं है। उस यंत्र को बिना किसी भय के हाथ में भी ले सके और उससे बहुत सुभीते के साथ काम कर सके हैं।

३—यह बहुत संतोष की बात है कि अब आर्थिक शिक्षा (Industrial Education) की तरफ भी भारतीय संस्थाओं का लक्ष्य जा रहा है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय बहुत शीघ्र एक ऐसा विभाग खोलने वाली है जिसमें खदान संबंधी (mining) व धातु संबंधी (metallurgy) शिक्षा दी जावेगी। इसका पठन क्रम बहुत ही ऊँचे दर्जे का रहेगा और उसमें उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को बी. एस.-सी. (B. Sc.) की उपाधि दी जावेगी। इस प्रकार की शिक्षा का भारत में यह पहला ही अवसर होगा। खदान संबंधी पठनक्रम में सर्व प्रकार की खदानों के काम की शिक्षा दी जावेगी। किन्तु कोयले की खदान के ऊपर विशेष ध्यान दिया जावेगा। धातु संबंधी पठन क्रम में प्रायः सब धातुओं के विषय में शिक्षा दी जावेगी लेकिन लोहा और फौलाद के ऊपर विशेष ध्यान आकर्षित किया जावेगा। यह शिक्षा कोई भी गृहण कर सका है। किसी प्रकार का जाति या धर्म संबंधी भेद नहीं रहेगा। इन कलाओं में सिर्फ वे ही छात्र भर्ती किये जावेंगे जिन्होंने एफ. ए. की परीक्षा को भौतिक शास्त्र (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry) गणित शास्त्र (Mathematics) में उत्तीर्ण किया है।

—खेमचंद सिंघई बी. एस. सी.।

विनोद लीला।

१—माधो—१ घंटे में कितने मिनट होते हैं?

ऊधो—देशी या अंग्रेजी?

माधो—देशी या अंग्रेजी इसके क्या मायने?

ऊधो—बहुत कुछ है। जब हमारे देशी भाई कहते हैं-कि अभी एक घंटे में आता हूं। तब इन्हें और कुछ नहीं तो ९० मिनट जरूर लगते हैं। परन्तु जब वही बात कोई अंग्रेज कहता है। तो उसे पूरे ६० मिनट लगते हैं।

२—न्यायाधीश—(कैदी से)—मैं समझता हूं कि तुझे बार २ अदालत में आने से जरूर शर्म मालूम पड़ती होगी?

कैदी—क्यों नहीं! परन्तु मैं समझता हूं कि हुजूर को अपेक्षा मुझे बहुत कमजोर आने का मौका पड़ा होगा।

३—एक धनी मुकद्दमेबाज अपने मामले का फैसला सुनने के पहिले ही घर चले आये। कुछ समय बाद वकील का तार आया "सत्य की विजय हुई" उसने उसी समय जवाब दिया "तुरन्त अपील दायर करिये"।

४—सुनते हैं कुछ श्रीमान लोग लार्ड साहिब की कौंसिल में एक प्रस्ताव रखने वाले हैं कि:—"गवर्मेंएट ने रेलगाड़ी का हर जगह प्रबन्ध करके भारत को बड़ा आभारी बनाया है—परन्तु अब हमारी प्रार्थना है कि उसकी एक लाइन परलोक को भी अवश्य निकाली जावे ताकि हमलोग अन्त समय में अपनी जायदाद लगेज के डिब्बे में रख सकें।"

नीतिकार का वचन है:—"दानं भोगो नाशः तिस्रोगतयो भवन्ति वित्तस्य" कहीं ये लोग मिलकर इस वाक्य पर हरताल न फेर दें।

५—कन्या एक प्रकार की गाय है, जो उसे दुहते हैं—उन्हें दूध देती है। जो नहीं दुहते वे गौ दान के समान कन्या दान करके पुन्य लूटते हैं। जब किसी बूढ़े ब्राह्मण को देने से गौ दान निष्फल नहीं होता तब कन्या दान ही क्यों निष्फल होगा? भला सोचो तो!

६—परन्तु एक बात है—दाता और दान कर्त्ता एक ही बात है। कर्त्ता जो चाहे करे उसे रोकने का किसी को अधिकार नहीं है। क्योंकि कर्त्ता स्वतंत्र होता है। विश्वास न हो तो वैयाकरणों से पूछ लीजिये—वे तुरन्त कह देंगे "स्वतंत्रः कर्त्ता"

७—खद्दर बड़ी पवित्र वस्तु है। इसी लिये आजकल बहुत से लोग उसे सिर पर धारण करते हैं। भला उस की धोती और कोट बनाकर अविनय क्यों करें? विदेशी के सिर स्वदेशी रहे। इसीसे स्वदेशी की भक्ति मालूम पड़ती है। अक्लमंदी इसी का नाम है!

८—परवार-बन्धु ने घर २ की पोलों का पता लगाकर सुधार की दृष्टि से समय २ पर उन्हें प्रकाशित करने का पूर्ण प्रबंध कर लिया है—अतः इस को सुनकर कुछ लोगों के चित्त में बड़ी चिन्ता हुई—इस लिये उन्हों ने अभी से परवार-बन्धु के साथ कार्य कर्त्ताओं को भी अनधिकार अपनाने की चेष्टा की है। अच्छा है, देखें अब किस करवट ऊँट बैठता है।

पूछताछ

सूचना—प्रतिमास "परवार-बन्धु" में पाठकों के प्रश्नों का उत्तर, विद्वानों की सम्मति, विशेष विचार, और खोज के साथ दिया जावेगा। किन्हीं प्रश्नोत्तरों का उत्तरदायित्व हम नहीं ले सकते। हां, उचित उत्तर देने का प्रयत्न किया जावेगा। प्रश्नकर्त्ताओं के नाम और पते गुप्त रक्खे जाते हैं। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस से लाभ उठावें [पूछताछ सम्बन्धीपत्र इस पते पर भेजे जावें पता:—'परवार-बन्धु' पूछताछ वि० जबलपुर]

१—एक महाशय........क्या परवार-बन्धु में छापने योग्य जाति सम्बन्धी समाचार सारी परवार समाज में हैं ही नहीं? या कि जनता "अपनी आंख उघारिये आपहि करिये साफ" को करती है? संसार में जगह २ फूट फैली है। जहां जहां मन्दिरों के, प्रतिष्ठादि के हिसाब अव्यवस्थित पड़े हैं! उनकी तरफ परवार-बंधु का लक्ष क्यों नहीं जाता? क्या "बातियां मेरा बनाओ और दिखाओ" के कारण हमारे भाइयों को दूसरों की ठोकरें से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं है?

बन्धुवर! जाति सम्बन्धी समाचारों को प्रकाशित करने के लिये परवार-बन्धु सदैव प्रस्तुत रहता है और रहेगा। सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये-उसका प्रकाश सब जगह पहुंचाने के लिये ही इसका जन्म हुआ है। यदि जनता को साफ मालूम पड़ती है तो उसको परवार-बन्धु हर तरह से दूर करेगा। ऐसा करने से उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा-और करना पड़ा है। परन्तु वह बढ़कर आगे बढ़ेगा। आप जानते हैं कि जिस समाज के लाभ की दृष्टि से यह पत्र प्रकाशित किया जाता है, वह पत्रों के महत्व और उस में प्रकाशित विषयों तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले कार्य कर्ताओं के अधिकारों को कहां तक जानती है? फिर भी मन्दिरों आदि के हिसाब को साफ करने के लिये, भविष्य की कुछ आशा पर बन्धु का प्रयत्न जारी है। वर्तमान में अनेक जगहों के हिसाब जांची चुके हैं। उसकी तथा आप की आशा एक दिन और शीघ्र अवश्य सफल होगी।

२—एक महाशय पूछते हैं कि:— .... सं० [illegible] में [illegible] [illegible] और जिसके लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उतर, न साफ न हावभाव के समक्ष किया गया था। उसका हिसाब न तो किसी पत्र में छापा गया है और न मेवाओं ही को बतलाया है? क्या इस पर आप प्रकाश डालेंगे?

महाशय! यह हिसाब व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध रखने वाला है-और जब तक उक्त मेवायें ही इस प्रश्न को सामाजिक रूप न देवें तब तक इस पर प्रकाश डालना व्यर्थ है। यदि आप हिसाब देखना चाहते हों तो ट्रस्टियों से मिल कर या पत्र व्यवहार करके देख सके हैं।

३—प्रश्न.........जबलपुर जाति में पंचान तथा कोई स० सिं० के दरम्यान किसी जाति तथा धर्म सम्बन्धी झगड़े के कारण अदालत चली थी? अदालत का परिणाम क्या हुआ? उसको प्रकाशित करने से समाज को विशेष लाभ होगा? तथा भविष्य में ऐसे झगड़े अदालत में जाने से किस तरह रोके जा सकते हैं?

उत्तर—मन्दिर सम्बन्धी मामलात के लिये अदालत में दो मुकदमे चल रहे थे। परन्तु उसका फैसला होचुका है। फैसले की नकल मिलने पर सामाजिक लाभ की दृष्टि से प्रकाशित करने का अवश्य प्रयत्न किया जावेगा।

जब तक मन्दिरों तथा सार्वजनिक द्रव्य की जिम्मेदारी व्यक्ति विशेष से हटाकर किसी सभा-कमेटी आदि के ऊपर न रक्खी जावेगी। तब तक ऐसे झगड़े होते ही रहेंगे। यदि परवार सभा-कुछ विद्वानों-श्रीमानों को सम्मिलित कर न्याय सभा की स्थापना कर दे-और उस की बैठक नियम से प्रतिमास और आवश्यकतानुसार किसी निश्चित स्थान और तारीखों में होती रहे-तो भी आशा की जा सकती है कि ऐसे मामले अदालत में जाने से रुक जावें।

साहित्य परिचय

अञ्जना—(नाटक) लेखक-श्रीयुत सुदर्शन प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय हीरा बाग पो. गिरगांव बम्बई। मूल्य १=) एक रुपया दो आने

प्रातः स्मरणीया सती अञ्जना के चरित्र से प्रायः सभी जैन लोग परिचित हैं उनकी कथा इतनी, प्रेम और करुणासे भरी हुई है कि जिसके सुनने से पत्थर का हृदय भी पसीज जाता है आंखों से दो बूंदें अवश्य टपक पड़ती हैं। इतने पर भी वह ऐसा अलौकिक नहीं है कि अनुकरणीय न हो सके। पद्मपुराण में विद्युत्प्रभ को संसार से उदासीन बतलाया है इसलिये अञ्जना की शादी उससे नहीं की गई। इससे विद्युत्प्रभ की योग्यता पवनञ्जय से अधिक मालूम होती है। सुदर्शन जी ने विद्युत्प्रभ को अत्यन्त नीच स्वभाव का चित्रित किया है। इससे नायक की श्रेष्ठता जाहिर हुई है। साथ ही नाटक में घटना वैचित्र्यभी आगया है। ऐसे मौकों पर पौराणिक पात्रों के चरित्र चित्रण में विपर्यास कर देना अनुचित नहीं समझा जाता महाभारत के दुष्यन्त और अभिज्ञान शकुन्तला के दुष्यन्त में बहुत अन्तर है।

सती अञ्जना का चरित्र तो यौंहीं पवित्र और उनकी महत्ता का सूचक है; फिर भी सुदर्शनजी ने मौके मौके उनकी महत्ता दिखलाने के लिये अच्छी चेष्टा की है। हम आशा करते हैं कि हिन्दी प्रेमी इसे अवश्य अपनावेंगे।

विवाह समुद्देश्य—लेखक—जुगलकिशोर जी मुख्तार। प्रकाशक-साहु मुकुन्दीलाल जी जैन नजीबाबाद जि. बिजनौर

इस छोटी सी पुस्तक में विवाह के विषय में पूरी विवेचना की गई है। "पतिपत्नी समान स्वभाव के होनाचाहिये वर्ण बन्धन आवश्यक नहीं है" इस बात को इसमें युक्ति, और जैनागमसे सिद्ध किया है। यद्यपि इस प्रकार के विचारों से एकदम सहमत नहीं है। लेकिन पुस्तकमें इस की पुष्टि में जो प्रमाण दिये हैं वे काफी मजबूत हैं।

बाह्य दृष्टि से विचार करते समय इस नियम बताये गये हैं। जिनका पालन करना प्रत्येक स्त्री पुरुष को आवश्यक है। पुस्तक उपादेय है विचार पूर्वक लिखी गई है। ऐसी पुस्तकों की बड़ी जरूरत हैं। प्रत्येक विचारक को एक बार अवश्य देखना चाहिये। सहमत होना या न होना दूसरी बात है।

स्वरविज्ञान प्रवेशिका—लेखक सरस्वती सहोदर। प्रकाशक गुलाबचन्द्र जी वैद्य सार्व मंडल कार्यालय अमरावती (बरार) मूल्य १)

मूल्य कुछ अधिक है। लेकिन प्रकाशक महाशय ने दिवाली तक परवार बन्धु के ग्राहकों को ॥।) में देने का निश्चय किया है और साथ में 'पंचमंगल' 'बाईस परिषह' 'दृष्टान्त पचीसी' ये तीन पुस्तकें भी बिना मूल्य मिलेंगी जो ये तीन पुस्तकें न लेना चाहें वे 'वैश्य कौम की हालत का फोटो' नामक पुस्तक ले सकते हैं।

पुस्तक नाकसे निकलने वाले स्वर से फलाफल जानने के विषय में लिखी गई है। स्वर क्या है? कहां से पैदा होता है? कितने तरह का होता है? किस समय कौनसा चलने से फल देता है? इन बातों का पूरा विवेचन किया गया है। साथ में प्राणायाम आदि का भी जिकर है। यात्रा, दूत आदि के शुभाशुभ पर भी प्रकाश डाला गया है। जो यात्रादिके समय ज्यो-तिष से काम किया करते हैं उनको यह पुस्तक अवश्य देखना चाहिये। पुस्तक अपने विषय में अच्छी है।

शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण—लेखक जुगलकिशोरजी मुख्तार। प्रकाशक जौहरीमल जैनी सर्राफ दरीबाकलाँ देहली।

यह एक छोटा सा ट्रेक्ट है। इसमें जैन पुराणों के उदाहरण दिये गये हैं और उनसे निष्कर्ष निकाला गया है "कि पुराने समय में समाज के नियम इतने कड़े न थे जितने आज हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि सामाजिक व्यवस्था बिलकुल न रहे लेकिन आपका मतलब यही है कि वह इतनी कठोर न हो जिससे मनुष्य की उन्नति ही रुकजाय और गिरे को सम्हलने का मौका ही न मिले। समाज को चाहिये कि सुव्यवस्था रखते हुए व्यक्ति को पूरी स्वतन्त्रता दे" पुस्तक का यही भाव है। पुस्तक पठनीय है।

विधवा विलाप—लेखक पं० मुन्नालाल जैन, प्रकाशक मनोहर मुरली भवन भोपाल। की० एक आना, विषय नाम से ही स्पष्ट है।

भगवान महावीर—लेखक कामताप्रसाद जी जैन प्रकाशक--मूलचन्द किसनदास कापड़िया चन्दावाड़ी सूरत-मूल्य एक रुपया बारह आना।

अभी तक हिन्दीमें भगवान महावीर का कोई ऐसा जीवन चरित्र प्रकाशित नहीं हुआ था जो ऐतिहासिक दृष्टि से लिखा गया हो। यद्यपि लेखक महाशय भगवान महावीर के परम भक्त हैं। फिर भी लिखने में पर्याप्त निष्पक्षता से काम लिया गया है। पुस्तक हिन्दी, अंग्रेजी संस्कृत, प्राकृत की बाईस पुस्तकों के और कई भाषाओं की पत्र पत्रिकाओं के आधार पर लिखी गई है। पुस्तक पैंतीस अध्यायों में पूरी हुई है। भगवान महावीर से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी बातों का उल्लेख हो गया है।

अभी तक लोगों को यह भ्रम बना हुआ है कि भगवान महावीर जैन धर्म के संस्थापक हैं लेकिन इस पुस्तक से साफ मालूम होता है कि जैन धर्म इस अवसर्पिणी काल में भगवान ऋषभदेव के द्वारा चलाया गया है। यह बात जैन ग्रन्थों के आधार पर नहीं, किन्तु वैदिक ग्रन्थों के आधार पर कही गई है।

इस पुस्तक से यह भी मालूम पड़ता है कि भारतवर्ष में पहिले प्रजातन्त्र और संयुक्तराज्य (गणराज्य) थे। इन्हीं गणराज्यों में से एकराज्य में भगवान महावीर ने जन्म लिया था। गर्भ से लेकर निर्वाण तक जितनी बातें लिखी गई हैं वे प्रायः जैन ग्रन्थों के आधार पर ही वर्णित हैं। इसलिये अन्य लोगों को उन पर कम विश्वास हो सकता है फिर भी कुछ ऐसी घटनाएँ हैं जिन पर किसी को भी सन्देह न होगा और भगवान महावीर की महत्ता की छाप हृदय पर लगा देंगी।

भगवान के समकालीन, इन्द्रभूति गौतम सुधर्माचार्यादि शिष्यगण, महिलारत्न सती चन्दना, वारिषेण मुनि, महाराज जीवन्धर, सम्राट् श्रेणिक (बिम्बसार) और चेटक, अभय कुमारादि राजपुत्र, आदि का वर्णन एक एक अध्याय में हुआ है। इन चरित्रों में अजैन ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है। विशेषतः श्रेणिक और चेटक के विषय में बहुतसी ऐतिहासिक पुस्तकों से प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। भगवान महावीर और म० बुद्ध शीर्षक अध्याय में यह बात उल्लेखनीय है। कि भगवान महावीर का प्रभाव महात्मा बुद्ध के ऊपर पड़ चुका था यह बात बुद्धदेव ने अपने शिष्यों से प्रगट की है।

इनके समकालीन मक्खाली गोशाल और पूरण काश्यप के चरित पर भी प्रकाश डाला गया है।

हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है इसके लिये हम लेखक को बधाई देते हैं। आशा है कि प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति इस पुस्तक को एक बार देखने की चेष्टा अवश्य करेगा।

समाचार संग्रह

सामाजिक

--सागर में श्रीयुत रज्जीलाल जी कमरया द्वारा निर्मापित छात्रालय का उद्घाटन आश्विन सुदी १० को समारोह के साथ होगा। इसमें ३० छात्रों की आवश्यकता है। ४ क्लास तक हिन्दी की योग्यता वाले छात्रों को चाहिये कि वे अपना प्रार्थनापत्र प्रमाणपत्र सहित नीचे लिखे पते पर भेजें:—

स० सु० त० जैन पाठशाला सागर को देवीसहाय जी रहीस फीरोजपुर वालों ने जुलाई मास से ५५), लाला पद्मकुमार जी रहीस सहारनपुर वालों ने सितम्बर मास से ३०), तथा सेठ माणिकचन्द्र ट्रष्ट फंड बम्बई ने अगस्त मास से १०) तथा पहिले ५) मिलाकर १५) मासिक देना प्रारम्भ कर दिया है। आशा है कि अन्य दानी महाशय भी इस संस्था को सहायता देकर पुण्य संचय करेंगे।

पूरनचंद बजाज

मंत्री जैन पाठशाला-सागर (म. प्र.)

--बेहाड़ से पन्नालाल मोतीलाल जी सूचित करते हैं, कि हमारे यहां के मंदिर जी को नागपुर के श्रीमान् फतेचन्द दीपचन्द जी ने ४०० फुट फरसी कर देने का वचन दिया है। तथा अंजनसिंगी (अमरावती) निवासी गणपतराव वर्धनराव जी सोहनराव सेतवाल ने बेदी के लिये ५०) प्रदान किये हैं।

—झांसी की दि० जैन पंचान ने दशलक्षणी पर्व में नीचे लिखी संस्थाओं को दान भेजा है। महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजा १०), श्री दिगम्बर जैन शिक्षा मंदिर जयपुर १०), जैन बालाविश्रम धनुपुरा ५), श्री गोपाल दि० जैन विद्यालय मुरैना १०), ब्रह्मचर्याश्रम जयपुर १०), दि० जैन महा० ब्यावर १०), सतर्क सुधा तर० जैन पाठ० सागर ५), जैन अनाथालय और औषधालय बड़नगर १०), मंत्री परीक्षालय विभाग-सोलापुर १०)—लि० गबडूलाल रामचरणलाल बजाज।

—सिवनी में पं० वंशीधर जी सिद्धांत शास्त्रीके पदार्पणसे पर्यूषण पर्वमें अच्छा आनन्द रहा। नित्य शास्त्र में दोनों वक्त अत्यन्त आनन्द आता था। और अन्य समय में भी तात्विक प्रश्नोत्तर हुआ करते थे। चैनसुख, महामंत्री।

—श्री दानवीर रा० ब० सर सेठ स्वरूपचंद जी हुकुमचन्द जी इन्दौर ने अपनी दि० जैन पारमर्थिक संस्थाओं को ५ लाख रुपया प्रदान किये थे। इन पांच लाख साढ़े आठ हजार रुपये के टाटा आयर्न एंड स्टील कम्पनी के शेयर्स लिये गये थे। परन्तु भाव गिर जाने से संस्थाओं को २॥ लाखका घाटा था। यह घाटा विद्याप्रेमी उदार सेठ जी सा० ने ता: १८-६-२४ की कमेटी में पूराकर दिया है। अर्थात् वे कुल शेयर्स अपने घरू कर लिये और संस्थाओं को पांच लाख साढ़े आठ हजार रुपये दे दिये हैं। अतः आप की इस परम उदारता के लिये संस्थाओं की मैनेजिंग कमेटी आप को हार्दिक धन्यवाद देती हैं। - मंत्री पारमर्थिक संस्थाएँ इन्दौर।

—जौनपुर, भामाचक मुहल्ले के खेत में एक किसान को अपने खेत में हल चलाते समय ७ संगमरमर की मूर्तियां जमीन में से मिली हैं। "आज" के सम्वाददाता ने लिखा है कि ये मूर्तियां बौद्ध के समय की हैं। एक मूर्ति में तो सम्वत् १५११ खुदा हुआ है। ये मूर्तियां मन्दिर में रक्खी गई हैं। कुछ लोगों का कहना है कि मूर्तियां जैनियों की हैं।

—जबलपुर में गत १० वर्षों में प्लेग से मौत हुए मनुष्यों की संख्या ११११० है।

गत वर्ष ११६८ मनुष्य अकाल काल के गाल में गये थे ।

—इस वर्ष भोपाल में दशलाक्षणी पर्व बड़ी शान्ति के साथ पूर्ण हुआ है। परन्तु दैनिक "वर्तमान" ने जो ११ आदमियोंके घायल होने की बात लिखी है-यह सर्वथा मिथ्या है। नवीन स्थापित नवयुवक सभा अपने कार्यक्रम के अनुसार शान्तिपूर्वक धर्मसाधन करती रही इसका श्रेय श्री चौधरी मोतीलाल जी मंत्री, तथा श्री सुन्दरलाल जी को है। यही कारण है कि इसके मेम्बरों की संख्या बढ़ रही है तथा सत्य और धर्म प्रेमियों का उस से दिन पर दिन अनुराग होता जाता है। आशा है कि उसके कार्यकर्ता इसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञा और सत्य पर आप विश्वास रखते हुए कार्य करते चले जावेंगे।

—'आज' ने लिखा है कि राली ब्रादर्श ने नकली घी विलायत से मंगाकर ३८) मन बाजार में बेचा था। पहिले शक था कि यह किसी घास का रस है। पर डाक्टरी परीक्षा से मालूम हुआ कि इसमें १४ आने चर्बी है। मालूम पड़ता है कि घी खाना भी बन्द करना पड़ेगा। लोग सावधानी से घी खरीदें।

तीर्थक्षेत्र कमेटी सम्बन्धी

तीर्थरक्षा फण्ड—फी घर पीछे १) चन्दा जहां वसूल हो चुका हो वे भेज देवेंगे। और जहां न हुआ हो वे इकट्ठा करके तीर्थरक्षा कार्य में अवश्य सहायता करें। पं० शोभाराम जैन इसकी वसूली को नियत हुए हैं। और म० प्र० में भ्रमण कर रहे हैं। पंचायतें उन्हें चन्दा देवेंगी।

राजगृह क्षेत्र पर श्वेताम्बरों का दावा—पटना हाईकोर्ट में श्वेताम्बरों की ओर से राजगृही क्षेत्र पर एक दीवानी दावा किया गया है कि "उक्त क्षेत्र श्वेताम्बर समाज का है दिगम्बर समाजका कोई हक्क नहीं है" इसलिये दिगम्बर समाज को साक्षी देकर उक्त क्षेत्र की रक्षा करना चाहिये। जो महाशय आज से १८, २० वर्ष पहिले यात्रा को गये हों और गवाही दे सकें। उनके नाम पूरे पते सहित "तीर्थक्षेत्र कमेटी-हीराबाग-बम्बई नं० ४" को अवश्य भेज देवें।

धर्मादे द्रव्य का सदुपयोग—कमेटी ने एक "मंदिर जीर्णोद्धार फंड" खोला है। उस में प्रत्येक मंदिर को जिसकी आय दो हजार या उससे ज्यादा है-सौ २ दो २ सौ रुपया वार्षिक देकर सहायता करना चाहिये। बम्बई के भूलेश्वर मुहल्ले के चन्द्रप्रभु मंदिर की पंचायत और गुलालवाड़ी मंदिर की पंचायत ने दो २ सौ रुपया वार्षिक देना स्वीकार कर लिया है। प्रत्येक पंचायतों को इस पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

जम्बू स्वामी क्षेत्र—चौरासी मथुरा के मंदिर का प्रबन्ध ठीक नहीं है। तीर्थ क्षेत्र कमेटी का विचार उस का प्रबन्ध कार्यकर्ता बदल कर कराने का है। देखें वहां की स्थानीय कमेटी उसकी होने वाली १६ सितम्बर की बैठक में इसे स्वीकार करती है या नहीं?

देश।

—महात्मा गांधी जी ने देश में जो हिन्दू मुसलमानों के बीच में दुर्घटनायें हो रही हैं उसके प्रायश्चित्त और प्रार्थना रूप हिन्दू मुसलमानों में एका कराने के हेतु से २१ दिनका अनशन व्रत लिया है। वह ८ अक्टूबर को पूरा होगा। देश के सभी नेता इस खबर को सुन कर दुखित हुए हैं। इसलिए सभी दल के नेताओं की एक बैठक दिल्ली में होने वाली है। एक सप्ताह में आप का ७ पौंड वजन घट चुका है। कौन जाने भविष्य में क्या होगा?

भोपाल में दि० जैन नवयुवक सभा की स्थापना ।

सज्जनो,

हम नवयुवकों के परम सौभाग्य से एकाएक हमारी जातियों के मुकुट, परवार सभा के प्रमुख श्रीमान सेठ पन्नालालजी टड़ैया, परवार सभा के मंत्री बाबू कस्तूरचन्दजी वकील, दि० जैन शिक्षा मंदिर जबलपुर के मंत्री बाबू कन्छेदीलालजी तथा परवार बन्धु के प्रकाशक मास्टर छोटेलालजी आदि सज्जनों का एक डेपुटेशन ता ६ ८ २४ को भोपाल में आया था । अत: आप महाशयों ने सकल पंचान भोपाल के समक्ष एक नवयुवक सभा की स्थापना की थी । तथा उसी समय इसके नियमादि भी निर्णीत कर दिये थे । उसके अनुसार यह सभा अपना कार्य शान्तिपूर्वक कर रही है । प्रभु से प्रार्थना है कि हम लोग आपके बोये हुए बीज को वृक्षरूप में परिणत करने के लिये दृढ़व्रती रहकर सफल होवें ।

निवेदक—

मोतीलाल चौधरी—मंत्री

राजकुमार जैन सहा० मंत्री

दिगम्बर जैन नवयुवक सभा भोपाल

नियमावली

उद्देश्य (अ) स्थानीय धर्म विरुद्ध, सामाजिक कुरीतियों तथा फूट को मिटाना ।

(ब) मन्दिर तथा धार्मिक संस्थाओं के द्रव्यकी रक्षा व सदुपयोग करना ।

(स) समाज में शिक्षा तथा व्यायाम के द्वारा स्वास्थ्य रक्षाका प्रचार करना ।

स्थान—(१) इस सभा का मुख्य स्थान भोपाल रहेगा ।

नाम—(२) इसका नाम श्री दिगम्बर जैन नवयुवक सभा भोपाल रहेगा ।

इसके अन्तर्गत (१) साधारण सभा और (२) प्रबन्धकारिणी सभा रहेगी ।

(३) साधारण सभा के सभासद १२ वर्ष से ऊपर की उमर के हो सकेंगे । परन्तु प्रबन्ध कारिणी सभा के सभासद १८ वर्ष से कम उमर के न हो सकेंगे ।

(४) इसकी बैठक प्रति सप्ताह हुआ करेगी परन्तु बिना किसी अजेंडे के प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी की रात्रि को ८ बजे श्री दि० जैन मंदिर में होगी । नैमित्तिक बैठक के लिये अजेंडा निकाला जावेगा ।

(५) प्रत्येक सभासद को सभा का खर्च चलाने के लिये ‐) माहवारी चन्दा सभासद होने की तारीख से देना होगा । अधिक खर्च के लिये आवश्यक चन्दा भी समय २ पर इकट्ठा किया जावेगा । परन्तु सभा से पृथक होने वालों को दिया हुआ द्रव्य वापिस नहीं किया जावेगा ।

(६) प्रबन्धकारिणी के सदस्य बिना कारण तथा सूचना दिये बिना, ४ बैठकों में शामिल न होंगे तो सभा को अधिकार होगा कि वे उन्हें पृथक करके उनकी जगह किसी अन्य व्यक्ति को साधारण अधिवेशन तक के लिये चुन लेवें ।

(७) इस सभा के द्वारा फैसला करानेवालों या सहायता चाहने वालों को लिखित अर्जी मंत्री को देना होगी ।

(८) प्रबन्धकारिणी में कम से कम १५ सदस्य रहेंगे । तथा कोरम ६ मेम्बरों का होगा । हरेक बात का निबटारा बहुमत राय से होगा ।

(९) समान सम्मति होने पर सभापति की २ रायें मानी जावेंगी । और प्रत्येक कोरम की उपस्थिति में ही उस सभा का सभापति चुन लिया जावेगा ।

(१०) इस सभा की कार्यवाही लिखित होगी। विशेष आवश्यकता होने पर ३ सभासदों की सही आने पर मंत्री को अधिकार होगा कि वह बैठक करे।

(११) सभा को दिगम्बर जैन—परवार पोरवाल, खंडेलवाल, गोलालारी आदि जातीय सभाएं तथा महासभा, जैन परिषद् आदि में स्वीकृत प्रस्तावों को जो जिसके लिये लागू हों—मानना पड़ेगा तथा यथाशक्ति उसका पालन करना होगा।

(१२) यदि सभा में ऐसी कोई दरख्वास्त आवे कि जिसका सम्बन्ध स्थानीय दि० जैन पंचायत से होवे तो मंत्री उसको एक हस्त लिखित सूचना मंदिर में लगा देगा। और यदि उस पर स्थानीय पंचायत मुकर्रर की हुई म्याद के अंदर सन्तोषजनक फैसला न करे तो यह सभा कसरत राय से फैसला कर देगी और वह फैसला अन्तिम फैसला होगा।

(१३) यदि कोई इस सभा के फैसले की अपील करना चाहे तो १ मास के अंदर अपनी २ जातीय सभा में कर सकेंगे। परन्तु जबतक जातीय सभा फैसला न देवे तबतक इस सभा का फैसला अमल में लाया जावेगा।

(१४) जबतक कोई महाशय इस सभा से न्याय न करालेंगे। तबतक वह जनरल सभा से याने परवार आदि सभाओं से न्याय नहीं करा सकेंगे।

(१५) नियमों का परिवर्तन करने का अधिकार मेम्बरों को रहेगा।

(१६) इस सभा के निम्न लिखित कार्य-कर्त्ता होंगे जो जनरल सभा में चुने जावेंगे।

सभापति १ उपसभापति २ मंत्री १ सहायकमंत्री १ कोषाध्यक्ष १ निरीक्षक, १ सन १९२४ में प्रबन्धकारिणी सभा का चुनाव:—

सभापति श्रीमान जवाहरलाल जी।

उपसभापति	,,	सरदारमल जी।
मंत्री	,,	चौधरी मोतीलालजी।
सहा० मंत्री	,,	राजकुमार जी।
सभासद	,,	मोतीलालजी गुटके वाले
	,,	धन्नालाल जी
	,,	सुन्दरलाल जी
	,,	घासीराम जी
	,,	कुन्दनलाल जी
	,,	मोतीलाल जी

इनके अतिरिक्त साधारण सभा के सदस्यों की नामावली स्थानाभाव के कारण नहीं दी जा सकी। —मोतीलाल चौधरी, मंत्री।

१७ श्री दिगम्बर जैन नवयुवक सभा—भोपाल का सभासदी फार्म

श्रीमान मंत्रीजी दि० जैन नवयुवक सभा कार्यालय-भोपाल

सादर जुहार! अपरंच मैं इस सभा की नियमावली आदि से अंततक अच्छी तरह पढ़ व सुन चुका हूं। अतः अब मैं अपनी ही इच्छा से इस का सभासद होना स्वीकार करता हूं। और इस नियमावली के अनुसार चलने का वचन देता हूं। कृपया मेरा नाम सभासदों के रजिस्टर में लिख लीजिये। सभासदी फीस जबतक कि मैं स्तीफा न दूं तबतक दाखिल करता रहूंगा। मिती.................... सं० ता० माह सन

हस्ताक्षर..............................

पूर्णपता..............................

पिता का नाम..............................

जाति....................आयु....................

स्थान....................

विवाह सम्बन्ध होजाने की सूचना "परवार–बन्धु" कार्यालय जबलपुर को अवश्य दीजिये ।

वर के अठसका ।

(१)

१—डुही, बाछल गोत्र ।
२—गाई
३—नायक
४—बहुरिया
५—सोला
६—सवंछोला
७ उजया
८—महारमडिम

जन्म सम्वत १९६०
पता:—
मास्टर दमरूलाल जैन
सराफी मुहल्ला
सागर

नोट—वर न्यायतीर्थ परीक्षा पास व्याकरण की उच्च परीक्षा देने को प्रयत्नशील, सुशील सद्गृहस्थ तथा विद्वान हैं। वर्तमान में स० मु० जैन पाठ० में सुपरि० के पद पर कार्य्य करते हैं।

(२)

१ भारू भारल गोत्र ।
२—वार
३ मिडला
४—ईडरी
५ रखिया
६ डुही
७ गोद्
८ बहुरिया

जन्म सम्वत १९६१
पता:—
बाबूलाल गुमास्ता
द्वि. सेठ गोपालदास दी० ब० बल्लभदास
सागर

नोट—वर सुशील, सद्गृहस्थ तथा सुन्दर है।

(३)

१—रकिया, वाछल गोत्र ।
२ डार्वाडिम
३ पंचरतन
४—बाला
५ डेरिया
६—दिवाकर
७—चन्दाडिम
८—गाहे

जन्म सम्वत १९६१
पता:—
रामचन्द्र कस्तूरचन्द्र जैन
लालवर्रा
जिला—बालाघाट

कन्या के अठसका ।

(१)

१ भारू, भारल गोत्र ।
२—बहुरिया
३ बैशाखिया
४ बाला
५—गाहे
६ मस्ते
७—देदा
८—खोना

जन्म सम्वत १९६६
पता:—
बालचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र चौधरी
दमोह

नोट:—कन्या गृहकार्य में चतुर, बा० बो० चारों भाग पूर्ण करके तत्वार्थसूत्र और र० क० का अभ्यास करती है। समस्त सम्पति की वही मालिक है। अतः ऐसे वर की जरूरत है जो आध्यात्मिक विषय में ऊंचा अथवा मैट्रिक पास हो। यदि वर उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहे तो छात्रवृत्ति के रूप में सहायता भी दी जा सक्ती है।

(२)

१ लालू, वाछल गोत्र ।
२—मिडिला
३ गाहे
४ बारू
५—ईडरा (रावत)
६—डुही
७ देदा
८ छोवर

जन्म सम्वत १९६१
पता:—
बाबू पन्नालाल जैन
जिला सिवनी
(म० प्र०)

नोट—कन्या सुशिक्षित, रूपवती, और गृहकार्य में कुशल है।

(३)

१—बहुरिया, कोछल गोत्र ।
२—सागरे
३—लोटा
४—बीबीकुट्टम
५ नगाडिम
६ छोवर
७—ममला
८—इन्द्री

जन्म सम्वत १९७०
पता:—
स० सि० मोतीलाल जैन
क्लाथ मर्चेन्ट
सतना

नोट:—पत्र लिखते समय वर की आर्थिक स्थिति, शिक्षा और स्वास्थ्य अवश्य लिखें।

कार्तिक, श्रीवीर निर्वाण सं० २४५०,

[वर्ष २] अक्टूबर, सन् १९२४ [अंक १०]

श्री भा. दि. जैन परवार सभा का मुख पत्र—

परवार-बन्धु

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका ।-)
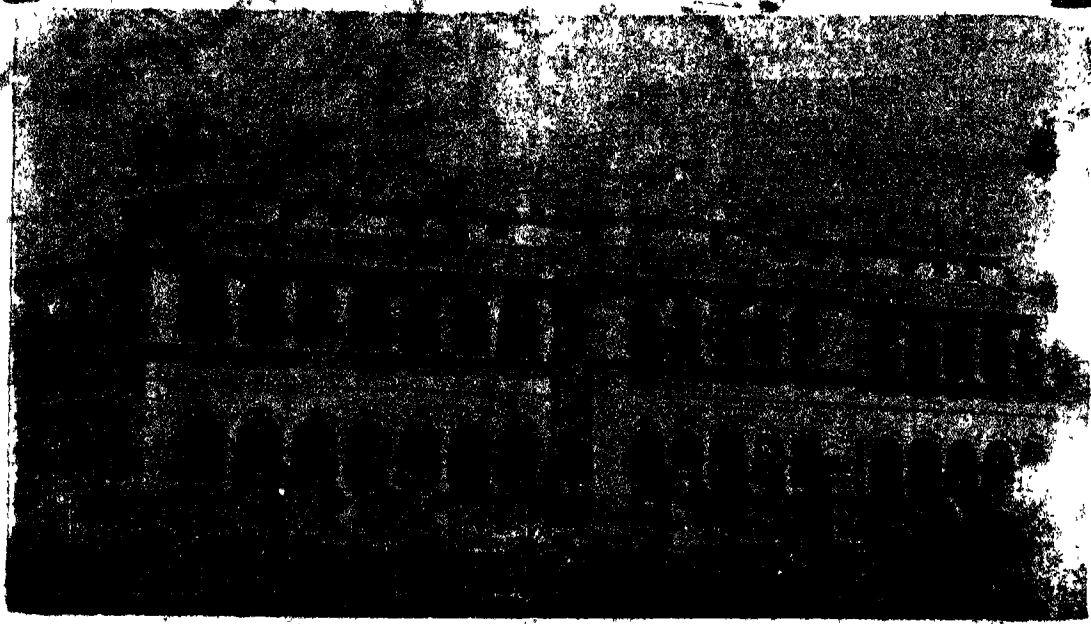
(दालचन्द नारायणदास जैन बोर्डिंग हाउस जबलपुर)

श्री बुँदेलखण्ड म० प्रा० दिगम्बर जैन शिक्षा मन्दिर जबलपुर

सम्पादक—

पं० दरबारीलाल साहित्यरत्न [illegible]र्थ ।

प्रकाशक—

मास्टर छोटेलाल जैन ।

संरक्षक

१—श्रीमान श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी सिवनी
२—श्रीमान सिंगई पन्नालाल जी अमरावती.
३—श्रीमान बाबू कन्हैयालाल जी अमरावती.
४—श्रीमान ठाकुरदास टालचंद जी अमरावती.
५—श्रीमान स.सि. नत्थूमल जी सांव जबलपुर.
६ श्रीमान बाबू कस्तूरचंदजी वकील जबलपुर
७—श्रीमान सिंगई कुंवरसेन जी सिवनी
८—श्रीमान स.सि. चौधरी दीपचंदजी सिवनी.
९—श्रीमान फतेचंद हीपचंद जी नागपुर.
१०—श्रीमान सिंगई कोमलचंद जी कामठी.
११—श्रीमान गोपाललाल जी आर्वी
१२—श्रीमान पं० रामचन्द्रजी आर्वी.
१३—श्रीमान खेमचंद जी आर्वी.
१४—श्रीमान सरउलाल झब्बूलाल जी. निवरा
१५—श्रीमान कन्हैयालाल जी डोंगरगढ़.
१६—श्रीमान सोनेलाल जी नवापारा.
१७—श्रीमान दुलीचंद जी चौधरी. छिंदवाड़ा
१८—श्रीमान मिट्ठनलाल जी छपारा.

सहायक

१—श्रीमान रामलाल जी साव सिवनी २५)
२—स० सि० लक्ष्मीचंद जी गढ़याना २५)

ग्राहकों को सूचना।

"परवार-बन्धु" दो बार अच्छी तरह जांच कर यहां से भेजा जाता है। जिन ग्राहकों को किसी मास का अंक आगामी मास की १५ ता: तक न मिले उन्हें पहिले अपने डाकघर से पूछना चाहिये। यदि पता न लगे, तो डाकघर का उत्तर हमारे पास भेज कर हमें सूचित करना चाहिये। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जावेगा। ग्राहकों को, पत्र व्यवहार के समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। जो कि पते की चिट पर लिखा रहता।

परवार-बन्धु का प्रथम और द्वितीय अंक स्टाक में बिलकुल नहीं है। अत: पाठक गण मँगानेका कष्ट न करें। फाइल न बनाने वाले यदि पहला और दूसरा अंक हमें भेज सकें तो बड़ी कृपा होगी उनकी इच्छानुसार उसका मूल्य उन्हें दे दिया जावेगा।

विज्ञापन दाताओंके पत्रोंका उत्तर।

हमारे पास कई विज्ञापन दाताओंके पत्र आये हैं--उनमें उन्होंने ग्राहक संख्या और रेट के सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर मांगा है। अतएव हमारा उनसे केवल इतना निवेदन है कि यह पत्र किसी एकका नहीं किन्तु समाज का है-इसकी कोई भी बात गुप्त और संशयात्मक नहीं रक्खी जाती है। इसके ग्राहकों की संख्या थोड़ेही समय में सभी जैन पत्रों से अधिक होगई है। वह भी छिपा के नहीं रक्खी जाती--किंतु शुरू से ही प्रत्येक अंक में नाम सहित प्रकाशित की जा रही है। और पृथक भी रिपोर्ट में छपाई जावेगी। जिससे हमारी बातों का पता लग सकता है। सभा, विद्वानों, तीर्थस्थानों, व्यापारियों, पंचायतों, आदि की सेवा में भेजा जाता है। उदारदाताओं और संरक्षकों की सहायता से असमर्थों को मुफ्त में भी भेजा जाता है। जिससे एक २ अंक सैकड़ों लोगों की दृष्टि में पहुंच जाता है।

छपाई का रेट लागत मात्र नीचे दिया गया है उसमें कुछ भी कमी नहीं होसकेगी--केवल एक वर्ष के विज्ञापन की छपाई पेशगी देने वालों को ≠) रुपया कम कर दिया जावेगा। पीछे आये हुए विज्ञापन आगामी अंक में छापे जावेंगे।

इस समय विज्ञापन की दर:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	८)	प्रत माह
आधा पृष्ठ या १ "	" ५)	"
चौथाई,, या आधा कालम	" ३)	"
अष्टमांश पृष्ठ या चौथाई,,	" २)	"
कवरके चौथे पृष्ठ की	" १२)	"
" तीसरे "	" १०)	"
पाठ्य विषय के पहले और पीछे की छपाई	९)	"

नोट—१) पूरी छपाई पेशगी ली जावेगी।
कालम से कम विज्ञापन छपाने वाले को
बिना मूल्य नहीं भेजा जावेगा।
[illegible]ने की प्रति का मूल्य पांच आने।

पता:—
मास्टर छोटेलाल जैन
परवार-बंधु कार्यालय, जबलपुर (सी. पी.)

लेख-सूची।

परवार-बन्धु पर सम्मतियां और सहायता।

"परवार-बंधु" की सहायतार्थ श्रीमान रा. ब. श्रीमन्त सेठ पूरनशाहजी मालरेपी प्रति, सिवनी ने ५) तथा श्रीमान शिवलाल मोतीलालजी नागपुर से २) भेजे हैं। तदर्थ धन्यवाद

१—श्रीमान सेठ लालचन्द जी—दमोह

"परवार-बन्धु" का अगस्त का अंक पढ़ा अत्यानन्द हुआ। सितम्बर मास के अंक में 'जड़ाऊ कर्णफूल' जैसी शिक्षाप्रद गल्प न होने के कारण यथेष्ट लाभ न होसका। हृदय कितना प्रफुल्लित होगा जब कि इसी प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धितायुक्त शिक्षाप्रद गल्पें परवार-बन्धु को सुशोभित करता रहें। आशा है कि आगामी अक्टूबर मास में इस प्रकार की गल्प अवश्यमेव पढ़ने को मिलेगी। 'जड़ाऊ कर्णफूल' गल्प में स्त्रियों की देखा देखी गहनों की चाह, और उसी दुराग्रह से पुरुषों का संकट में पड़ना, मन्दिर में निरन्तर गहना पुराण की चरचा होना, मरण भोज और विवाहादि कार्यों में शक्ति से बाहिर व्यय करने के दुष्परिणाम का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। अतः आप ऐसी गल्पों का अवश्यमेव संग्रह करें। सम्भव है कि कुछ पुराने लोग अपने दूषण दिखाने में जाति की हीनता समझते हों। परन्तु यह उनकी भूल है—महाभूल है। बगैर पूरी २ दशा का दिग्दर्शन कराये उसका परिणाम देखकर भलाई का मार्ग ग्रहण नहीं कर सके। जो असर कई बार के व्याख्यानों से होसका है उससे कई गुना लाभ ऐसी शिक्षाप्रद गल्पों व ओजस्विनी कविताओं से होता है।

२—श्रीमान बाबा भागीरथजी वर्णी, पं० दीपचन्द जी वर्णी, उदासीन सेठ हुकमचन्दजी:—

'परवार-बन्धु' अच्छे रूप में निकल रहा है। 'जड़ाऊ कर्णफूल' जैसी गल्पें निकलना आवश्यक है। क्योंकि सभी प्रकार की रुचि के मनुष्य रहते हैं। और सर्व साधारण को ऐसी गल्पों से अच्छी शिक्षा मिल सकी है।

३—श्रीमान बाबू पन्नालाल जी—सिवनी

'परवार-बन्धु' के अंक ८ में जो 'जड़ाऊ कर्णफूल' नामक गल्प प्रकाशित हुई है वह समाज के लिये अत्यन्त लाभप्रद और हितकारी है। जिन्होंने हिन्दी संसार के समाचार पत्र और पुस्तकों को उठा करके देखा भी नहीं और न देखते हैं। सम्भव है कि, इसके महत्व को न समझें परन्तु मेरी राय तो यह है कि गुड़बेल से ज्वर जाता है गुड़ से नहीं सदैव ऐसी गल्पें छपना चाहिये।

४—श्रीमान चैनसुख जी छावड़ा महामंत्री भारतवर्षीय महासभा—सिवनी

इसमें सन्देह नहीं कि 'जड़ाऊ कर्णफूल' गल्प उपयोगी और शिक्षाप्रद है।

५—श्रीमान सिंघई कपूरचन्द जैन। केवलारी

बन्धु का ८वां अंक उपलब्ध हुआ 'जड़ाऊ कर्णफूल' गल्प विचारपूर्ण, सत्युत्तम शिक्षाप्रद है। ऐसी गल्प या लेखों से स्त्री समाज के साथ २ पुरुष समाज को भी अच्छी शिक्षा मिलती है।

इसके अतिरिक्त और सज्जनों ने भी बन्धु पर निष्पक्ष, उचित सम्मति देने की कृपा की है। अतः हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

१— श्रीमान पं० लक्ष्मीनारायण जी शास्त्री ईसरपंडित
२—पं० सत्यंधर जी काव्यतीर्थ, वैद्य
३—सि० हीरालाल जी बडेरा
४—श्रीमान कन्हैयालाल जी [illegible] सं०
५— ,, मिट्ठनलाल जी छापरा
६— ,, क्षेमंकर जी न्यायतीर्थ

परवार-बन्धु।

वर्ष [illegible] | अक्टूबर, सन् १९२९ ई०
कार्तिक श्री वीर निर्वाण सम्वत् २४५६ | संख्या १०

नव वर्ष !

[लेखक—श्रीयुत पं० [illegible] जी [illegible]]

पधारो करने को उत्कर्ष ! तुम्हें स्वागत है नूतन वर्ष !
नया ही हुआ हृदय का भाव, नया यह साज नया यह चाव,
नया सौन्दर्य नया अनुभाव, नया ही आया प्रिय सद्भाव,
मिटाया जिसने सब अपकर्ष । पधारो ०

नये तुम आये हो हे वर्ष, चित्त में लाये हो नव हर्ष,
नया सुख पावे भारत वर्ष, नया ही लावे रक्त सहर्ष,
नया ही लाओ अब उत्कर्ष । पधारो ०

यहाँ की भू थी स्वर्ग समान, मनुज थे देवों सम गुणवान,
नहीं थे कहीं व्यक्ति अज्ञान, सभी थे पण्डित विद्वान्,
पुनः लौटाओ वह उत्कर्ष । पधारो ०

यहाँ थे धनी कुबेर समान, दान थे करते कर्ण समान,
दीन जन पाते थे परित्राण, धर्म था जीवन का कल्याण,
सभी का अनुपम था आदर्श । पधारो ०

कर्मवीरों के मन उत्साह, बढ़ाओ, यही हमारी चाह,
मिटाओ कलुषित अन्तर्दाह, दिखाओ भूलों को सत राह,
जाति का हो जिससे उत्कर्ष । पधारो ०

मिटे वात्सल्य, मिटे कटु त्रास, दिखाओ नवल विमल उल्लास,
सफलता पावें विफल प्रयास, दिव्य हो उन्नति का आवास,
दिव्य हो जीवन में संघर्ष । पधारो ०

बढ़ाओ दिव्य शान्तिमय क्रान्ति, [illegible] चिरजीवित हो [illegible],
मिटाओ [illegible] दूर [illegible] भ्रान्ति, [illegible] हो [illegible] परिश्रान्ति,
[illegible] यह [illegible] । पधारो ०

[illegible]
[illegible]
[illegible] । पधारो ०

सारभूत-शिक्षा !

(गतांक से आगे)

जीवन यात्रा में विचार और कल्पना शक्ति परम सहायक हैं और हमारी शिक्षा प्रणाली में इन दोनों की गति बिलकुल बंद है। हमारे विद्यार्थी प्रतिदिन नवीन पाठ पढ़ते तो अवश्य हैं परन्तु उसके साथ विचार नहीं करते। प्रायः देखाजाता है कि बाल्य प्रकृति के कारण बालकों के मनमें उठी हुई पाठ्य विषय से सम्बंध रखने वाली बातों को जानने की उत्कंठा को पाठक यह कहकर पानी की लहरों के समान जहां की तहां बैठा देते हैं कि जब सामान पास में होगा तब कार्य करने में क्या कठिनता होगी। इस लिये अभी रट रट कर पाठ को गले उतारते जाओ फिर तो आप ही समझ जाओगे। न तो ये बालकों को पाठ के समझने का अवकाश देते न काम में लाने का ढंग बतलाते। फल इसका यह होता है कि शाला छोड़ते ही थोड़े दिनों में बालक पठित विषयको भूल जाते हैं। इनका रटा हुआ पुस्तक ज्ञान अपने बदले में मान और आडम्बर का मद पैदा करके विदा हो जाता है।

एक दिन की बात है कि एक प्रतिष्ठित जैन विद्यालय की विशारद कक्षा में व्याकरण पढ़े अभी हाल में ही निकले एक पंडित महाशय से समास विषयकी चर्चा होनेपर हमें यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि, आप सूत्र और वृत्ति के साथ उदाहरण भी भुला चुके हैं। विद्यालय की शिक्षा पद्धति के अनुसार आपने भी अपनी इस अनभिज्ञता को छिपाने के लिये वितंडावाद प्रारम्भ किया था परंतु भाग्यवशात् उस समय हम दोनों व्यक्ति ही वहां थे इस लिये वह शीघ्र समाप्त हो गया और इन्होंने अपनी अनभिज्ञता पर खेद प्रगट किया। जिस समय ये पढ़ रहे थे यदि इनके गुरु जी इन्हें बाहिरी उदाहरणों द्वारा शब्द रचना, समास की आवश्यकता तथा उससे होने वाले लाभको भली भांति समझा देते तो इनका कितना हित होता। पठित विषयको भूल जाने में पंडित जी के प्रमादका उतना दोष नहीं है जितना कि उस विद्यालय की पठन प्रणाली का, जिस में इन्होंने शिक्षा पाई है। लिखने का तात्पर्य यह है कि बालकों को कुछ पढ़ाया जावे वह उदाहरणों द्वारा सरलता पूर्वक खूब समझा दिया जावे और साथ ही साथ उससे लाभ उठाने की रीति भी बतला दी जावे।

यदि बालकों को मनुष्य बनाना है तो बालपन से ही उन्हें मनुष्य बनाने का प्रयत्न करो। अच्छी उपज के लिये खेत को कमाने और परिमित खात पानी देने तथा यथेष्ट हवा की आवश्यकता होती है। इसी तरह बालकों को सद्गृहस्थ बनाने के लिये उनकी कल्पना, विचार, स्मरण, अवलोकन, धारणा आदि मानसिक शक्तियों को विकशित करके बलिष्ठ करने तथा शरीर को बलवान बनाने को आवश्यकता है ऐसी खाद्य सामग्री की (शिक्षा और खान पान आदि की) जो उन्हें रुचिकर होवे और उनकी वृद्धि में सहायता पहुंचावे। केवल पौधों को पानी सींचते जाने से बाग तैयार नहीं हो सका—उसकी तैयारी चतुर माली के चतुराई पूर्ण परिश्रम से ही होती है। हम भी अपने बालकों को कर्तव्य शील तब ही

बना सकते हैं अब अपने यहां शिक्षा तत्वज्ञ अनुभवी पाठकों को नियत कर ऐसी पुस्तकों के पढ़ाने का प्रयत्न करें कि जिनमें धार्मिक तथा जीवनोपयोगी लौकिक विषयों का वर्णन सरल भाषा में लिखा हो और विषय वही हो जो हमारी जीवन यात्रा में सहायता पहुँचा सकें। परवार-बन्धु के मई सन् १९२७ वाले अंक में प्रकाशित "शिक्षा कैसी होनी चाहिये" लेख में पाठ्य विषयों का भली भांति विवेचन किया जा चुका है।

विद्यालयों में हमारे बालक नीरस शिक्षा की रटी रटाई बातों का बोझा खींचते हुए किशोर और किशोरावस्था से यौवन में प्रवेश करते हैं सच पूछा जावे तो सरस्वती देवी के विस्तृत राज्य में ये केवल मजदूरी करके मरते हैं। अर्थात् रटते २ इनकी कमर झुकजाती है परंतु इनके पुरुषत्व का विकाश नहीं हो पाता। विद्यालय से बाहिर आते ही जब इनके ऊपर गृहस्थी का भार पड़ता है तब उनकी बड़ी दुर्दशा होती है। इनका मन कुटुम्ब पालन की उलझन में उलझकर रटे हुए व्याकरण, न्याय आदि को भुलाने लगता है और व्यवहारिक ज्ञान शून्य होने से व्यवसाय करने में अपने को असमर्थ देख चिन्ता के भंवर में गोते खाने लगता है। इस समय इनकी बुद्धि न तो घर की रहती न घाट की अर्थात् वह न तो पढ़े हुए पाठों को विचार सकती और न बिना पढ़ी बातों की खोज में अग्रसर हो सकती है। इस दशा में ये पढ़ाते समय गुरु जी द्वारा की गई विषय समझने की उपेक्षा का स्मरण करते और मन मसोस कर रह जाते हैं।

हमें उचित है कि बालकों को भाषा शिक्षा के साथ भाव शिक्षा देवें। अर्थात् पुस्तक में लिखे वाक्यों के भावों को भलीभांति समझा २ कर उनका प्रभाव जीवनचर्या पर डालते जावें। पुस्तकें ऐसी होवें जिनमें जीवनचर्या के उपयोगी भावों की रचना की गई होवे। अब हम विचार करके देखेंगे "कि हमें जिस भाव या जिस ढंग से जीवन निर्वाह करना है उसके अनुकूल हमारी शिक्षा नहीं है। हमें जिस घर में मरण पर्यंत रहना है उसका उन्नत चित्र हमारी पाठ्य पुस्तकों में नहीं है। जिस समाजमें जीवन बिताना है उसका कोई भी उच्च आदर्श हमारे पठनीय साहित्य में नहीं है—हमारे भाई बहिनों के व्यवहार का नाम भी नहीं है—हमारी पाठ्य पुस्तकों में जीवन लीला में पग २ पर काम आने वाली, गृहस्थावस्था में स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा की रक्षा करने वाली लक्ष्मी को प्राप्त करने के उपायों को तथा प्राप्त करके उसको सदुपयोग में लाने की गंध भी नहीं है" तब समझ सकेंगे कि हमारी शिक्षा के साथ हमारे जीवन के साधनों के मिश्रण की कोई सम्भावना नहीं है। यद्यपि हमारी शालाओंमें काव्य विषयक पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं। इनमें पारस्परिक व्यवहार तथा जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन रहता है, ये काव्य ग्रंथ हमारी भाषा को रसीली भले ही बना सकें परन्तु हमें आदर्श पुरुष बनानेमें समर्थ नहीं हो सकते हैं। क्योंकि इन में जिन व्यक्तियों का चरित्र चित्रण किया गया है। उनकी जीवनचर्या का वह अत्यल्प अंश है। तो भी अत्युक्ति के साथ ऐसी आलंकारिक भाषा में हैं जिसके समझने में बालक की बुद्धि थकित होती है यदि कोई मर्मज्ञ हम से इसके विषय में प्रश्न करें कि इन काव्य ग्रन्थों में जितना चरित्र लिखा गया है क्या वह पर्याप्त है? जिस ढंग से लिखा गया है क्या उससे बालक अपनी जीवनचर्या सुधार सकता है? ये ग्रंथ जिस रीति से पढ़ाये जाते हैं वे बालक के आचरण पर प्रभाव डाल

सकते और भविष्य में सदाचारी बनाने में सहायक हो सकते हैं? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में वे "कदापि नहीं" यही उत्तर पावेंगे।

हमारी शालाओं में धार्मिक ग्रंथ भी पढ़ाये जाते हैं परंतु क्या उनकी उपयोगिता भी बालकों को सिखाई जाती है? इन ग्रंथों में अमित पदार्थ विज्ञान भरा है अगर इस ओर ध्यान दिया जावे और प्रत्येक विषय को भली भांति हृदयंगम कराने के लिये आचार्यों के लिखे सरल प्रयोगों का उपयोग किया जावे तो कितना लाभ होवे। जीव की चैतन्य शक्ति कड़आवंती, कमल आदि द्वारा, आस्रव तत्व को नौका के छिद्र द्वारा, बंध तत्व को लोहे के उष्ण गोले द्वारा समझाना कितना सरल और लाभदायक ढंग है। जल छानने की आवश्यकता खुर्दबीन यंत्र द्वारा सहज में समझाई जा सकती है इसी तरह चरणानुयोग की शिक्षा उदाहरण द्वारा समझाने व उससे होने वाले लाभों को बतलाने से वह बालक की जीवनचर्या पर पूरा प्रभाव डाल सकती है।

कितने दुख की बात है कि हम लोग न तो शिक्षा की उपयोगिता समझते हैं न कभी इस बात का ही विचार करते हैं कि बालकों को क्या पढ़ाना चाहिये। शिक्षा कार्य के लिये हमारे यहां अनेक दाता तो पुण्य समझकर और अनेक सामाजिक अपमान से डर कर दान देते हैं और गांवकी शोभा बनाये रखनेके लिये शाला स्थापित करके उसकी रक्षा करते रहते हैं। शालामें क्या पढ़ाया जाता है? बालक पढ़ने को जाते हैं या नहीं, पंडित जी शाला में समय पर पहुंचते हैं या नहीं, पढ़ाने का ढंग क्या है। आदि बातों से ये महाशय कुछ भी सरोकार नहीं रखते। जब संस्थापकों और प्रबंधकों का ये हाल है तब इन शालाओं में काम करने वाले पंडित महाशयों का क्या कहना है। इनके पठनक्रम कभी २ महीना पूरा होने के पहिले ही बदल जाते हैं, कभी चार २ छै २ वर्ष तक ज्यों के त्यों तख्ती पर लिखे रहते हैं, पढ़ाई का ढंग भी बेढब रहता है-पाठ रटाना ही इनका कार्य रहता है, न तो शालाओं में पूरे रजिस्टर रखते न समय विभाग चक्र न कक्षाबंदी की जाती हैं, न क्रमानुसार पढ़ाई ही होती है। सब काम मन माने ढंगका होता है। इनका तो यही लक्ष्य रहता है कि और होवे चाहे न होवे शाला प्रबंधकों में जिसकी पूंछ ज्यादा होती है उसकी कृपा अवश्य बनी रहे क्योंकि ये जानते हैं कि शाला दुकान तो है नहीं कि ये प्रबंधक महाशय अपने अन्य कर्मचारियों के माल के निकालने खरीदने और सम्हालकर रखने संबंधी योग्यता की जांच करने के समान हमारी पढ़ाई सम्बन्धी योग्यता को जांच सकेंगे। इनके सामहने तो केवल "हां हजूरी" का पाठ पढ़ते रहने से ही अपनी जीविका व पंडिताई दोनों बनी रह सकती हैं।

विचारने की बात है कि शिक्षा संस्थाओं के चलने में समाज का लाखों रुपया खर्च हो चुका है और हो रहा है उसमें उसके कोमल शरीर, सरल चित्त, जीवनाधार बालकोंको ऐसी शिक्षा दी जाय जो नीरस हो कठिन हो और तरुणावस्था में उनके व्यावहारिक जीवन में सहायता न दे सके। तथा उनके बाल्यकाल को जीवनोपयोगी दूसरे विषयों की शिक्षा से वंचित रखती हो तो हमारे उद्धार का उपाय क्या है? इसलिये आजकल हमारे सामहने सब से अधिक विचारणीय और महत्व का विषय यही है कि हमारी शिक्षा संस्थाओं में हमारी शिक्षा के साथ हमारे जीवन का सम्बन्ध कैसे हो?

इसके लिये हमें अपने पाठ्य क्रम में प्रथम मातृभाषा के साहित्य को स्थान देना पड़ेगा। और उन सम्पूर्ण व्यावहारिक विषयों का समावेश करना पड़ेगा जो जीवन में उपयोगी हैं। हमें प्रत्येक बात को उदाहरण तथा प्रयोगों द्वारा इस प्रकार बतानी होगी कि जिससे बालक उसे सरलता पूर्वक समझ सकें और हृदय में उसकी धारणा रख सकें, पश्चात् हमें तुलनात्मक पद्धति से संस्कृत भाषा का तथा उसमें रचे आर्ष ग्रन्थों का ज्ञान कराना पड़ेगा। इसी प्रकार राज्य कार्य तथा व्यापारिक कार्य में सहायक होने वाली अंग्रेजी भाषा के साहित्य का बोध कराना पड़ेगा। क्योंकि जब तक हम ऐसा न करेंगे हमारा अर्थव्यय, परिश्रम व्यर्थ जायगा। यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि मातृभाषा के साहित्य द्वारा जब तक बालककी मानसिक शक्तियाँ पुष्ट न हो जायँगी—उनमें गहन विषयके ग्रहण करनेकी शक्ति न आ जायगी तब तक वे संस्कृत भाषा सरीखी क्लिष्ट और अप्रचलित भाषाके साहित्यको समझनेमें सर्वथा असमर्थ रहेंगे। हमें मातृभाषा साहित्य की समुचित शिक्षा देने के पश्चात् संस्कृत भाषा का ज्ञान कराना भी आवश्यक है। क्यों कि ऐसा न करने से हमारे बालक अतीतकाल के आचार विचार व्यवहार आदि के ज्ञान के सिवाय पूज्य आचार्यों-ऋषियों की उन खोजों तथा निश्चित किये पुनीत सिद्धांतों से वंचित रहेंगे जिन्हें उन्होंने गृहादि परिग्रह त्याग वीतराग अवस्था में अपने दिव्य ज्ञान द्वारा अर्जन कर संस्कृत भाषा में प्रगट किया था जो कि आति का [illegible] [illegible] है।

बालकों का छोटा सा सुकुमार मन या मस्तिष्क हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी भाषाओं के अभ्यास तथा अनेक विषयों के ज्ञान का भारी बोझ कैसे सम्हाल सकेगा? अनेक लोगों के मन में ऐसी कल्पना हुए बिना न रहेगी क्योंकि अपनी संस्थाओं की आज कल की शिक्षा प्रणाली ही ऐसी है जो उन की कल्पना का पूर्णतया समर्थन कर रही है किंतु यदि प्राकृतिक नियमानुकूल सावधानतापूर्वक प्रबन्ध किया जावे तो थोड़े समय में सरलता पूर्वक बालकों को हंसाते खिलाते हुए अनेक भाषाओं द्वारा जीवनोपयोगी सब विषय पढ़ाये जा सकते हैं, ये बाल्य काल में तरुणावस्था में काम आने योग्य प्रायः सब बातों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, और आगे चल कर सद्गृहस्थ बन अपना व पराया उपकार करने में समर्थ हो सकते हैं (इस विषय का विवेचन आगामी किसी लेख में किया जायगा)

समाज के श्रद्धाभाजन नेता, शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्ध-कर्त्ता! हमारी प्रार्थना पर भी ध्यान दीजिये और अपनी इन सम्पूर्ण संस्थाओं को परस्पर में सम्बन्धित कर अपने इस नवजात दि० जैन शिक्षा मंदिर को विश्व विद्यालय बनाइये। तथा अपनी २ ढपली अपना २ राग " इसे विदा कर द्रव्य, क्षेत्र, काल भावानुकूल शिक्षा पर विचार कर पाठ्य क्रम तैयार कराइये पाठ्य पुस्तकों का संग्रह कीजिये जो पुस्तकें तैयार न हों उनकी रचना कराइये और इन संस्थाओं के निरीक्षण, का बालकों की परीक्षा का प्रबंध कर योग्य व्यवस्था कीजियेगा फिर देखिये कितना काम होता है. ऐसा करने से खर्च में कमी होवेगी. योग्य शिक्षा का प्रचार होगा और समाज को ही नहीं राष्ट्र को भी सुख होगा।

—बाबूलाल गुलजारीलाल,

भारतोद्धार।

(क्रमागत)

द्वितीयांक

प्रथम दृश्य

(स्थान-मोहनसिंह का घर।)

मोहन—

हृदय मन्दिर में आओ नाथ
मैं अनाथ हूं भक्त बनाओ सेवक को अनुरक्त बनाओ
शुचि को सत्पथ दिखलाओ पकड़ो मेरा हाथ—हृदय०
असत्पथ पथ से मुझे बचाओ सदाचार सन्मार्ग पढ़ाओ
ज्ञानी आओ मन सरसाओ है चरणों में माथ। हृदय०

जीवन बड़ी विकट समस्या है। सच्चा रास्ता ढूंढना कठिन ही नहीं असम्भव है। जब मैं सीधे मनुष्यों की दुर्गति देखता हूं तब जी चाहता है कि सीधापन और परोपकार को ठोकर मार दूं। लेकिन इस पथ में भी शान्ति नहीं मिलती हा! क्या करूं किस रास्ते चलूं।

कल तो जी चाहता था कि साधु हो जाऊं, घरबार छोड़ दूं लेकिन अब सोचता हूं कि इससे क्या फायदा है? जब संसार स्वार्थी है तो इस स्वार्थी संसार के लिये अपना स्वार्थ क्यों नष्ट करूं?

ईसा और सुकरात की क्या गति हुई, क्या महात्माओं की ऐसी ही दशा होना चाहिये? मैं ऐसे पथ पर नहीं चल सकता। माना कि यश होता है, लेकिन कितनों का? लाखों में दो चार ही यश के भागी होते हैं, मैं इतना मँहगा यश नहीं चाहता। फिर क्या करूं?

[सोचने लगता है]

(बक्की झक्की का प्रवेश)

बक्की—कहिये! किस विचार में मशगूल हैं?

मोहन—आओ भाई! अच्छे मौके पर आये, आज चित्त बहुत उदास है ऐसा मालूम पड़ता है कि जमींदारी एक पाप कार्य है इसमें दिन रात गरीबों को सताने के सिवाय कुछ भी नहीं है।

बक्की—आप का मतलब क्या है?

मोहन—यही कि इस कार्य से हाथ समेटूं-चार दिन दुनियाँ की भलाई ही करूं जिससे कुछ नाम भी हो।

बक्की—तो अभी आप क्या बुराई कर रहे हैं। फिर भी अगर आप कुछ और करना चाहते हैं तो इसी हालत में तो कर सकते हैं बिना धन के धरम नहीं होता।

झक्की—आप धर्म के पीछे व्यर्थ पड़े हैं दुनियाँ धर्म करती है लेकिन किसलिये? सिर्फ बहिश्त के लिये। बहिश्त में क्या है? हूरों का नाच और अमृत। यह सब आप को यहीं मिल सकता है।

बक्की—बस ठीक है। रही यश कमाने की बात। उसके लिये जरा ढंग बदलने की जरूरत है। सब के साम्हने आंख मूंद मूंद कर पूजा करना, मौके मौके पर किसानों को दो चार मीठी बातें सुना देना, कुछ चन्दा दे देना और कहना कि मैं तो 'देश और धर्म के लिये मरने के लिये तैयार हूं' बस! यही तो यश के उपाय हैं।

मोहन—तुम्हारा कहना ठीक तो मालूम होता है।

बक्की—अजी ! मालूम होता है नहीं, दर असल सच है आप को मालूम नहीं है कि बड़े बड़े लीडरों के भी भीतरी जीवन कैसे होते हैं !

मोहन—होते होंगे अपन को उनके भीतरी जीवन से क्या मतलब ?

बक्की—न सही, लेकिन इस के लिये आप साधू होना क्यों पसन्द करते हैं ? आप को तो मालूम ही है कि साधुओं को भी परोपकार के लिये धन की जरूरत पड़ती है और वे मांगते फिरते हैं। जब आप के पास यों ही सम्पत्ति है तब मांगने के लिये साधू बनने से क्या फायदा ? इसीसे परोपकार कीजिये।

झक्की—और मेरी भी एक अर्ज है परोपकार सरीखे सूखे काम करने वालों को कुछ विश्राम की भी जरूरत है। यदि दिन रात वे लोग इसी चिंता में रहें तो पागल हो जांय। आप तो परोपकार भी कर सकते हैं और स्वर्ग का मजा भी लूट सकते हैं। आप के तो दोनों हाथ लड्डू हैं।

मोहन—अच्छा तो यही सही आज ही पांच हजार रुपये निकाल देता हूं इससे गरीबों की मदद की जायगी।

बक्की—बस ठीक है अब आप चिन्ता छोड़िये और चलिये कहीं घूम आवें एक जगह बैठे रहने से तो मगज़ सड़ जाता है।

मोहन—हां, यह भी ठीक है अच्छा तो कहां चलना चाहिये।

बक्की—हैं ! आप क्या कहते हैं ? आप को तो सैंकड़ों जानती हैं जहां आप की इच्छा हो वहीं हम चलने को तैयार हैं।

मोहन—अच्छा, यह घूमना है। तो साफ कहो न !

अच्छा विमला कैसी है ?

झक्की—अजी क्या पूछना ! क्या कहना है ? ऐसी शरीफ़ज़ात औरत तो मिलना मुश्किल है। बस उसी के यहां चलना चाहिये।

मोहन—हां ! वहीं चलना ठीक है पर बुलाने में तो बदनामी होती है और अब जरा बदनामी से डरने की जरूरत है।

बक्की—अच्छा चलिये

मोहन—चलो

(जब जाने को तैयार होते हैं कि लक्ष्मी आ जाती है)

लक्ष्मी प्राणनाथ ! इस समय आप कहां जारहे हैं ?

मोहन—(घबराकर) कहीं नहीं, कहीं नहीं, जरा योंही घूमने जा रहा था।

लक्ष्मी—प्राणेश्वर ! आप असत्य बोल कर मुझे क्यों भुलाना चाहते हैं ? मैंने आप की सब बातें सुनी हैं। अब तो इस दुःसङ्गति को छोड़ दीजिये।

मोहन—लक्ष्मी ! तुम समझदार हो फिर इस तरह दूसरे का अपमान क्यों करती हो।

बक्की—नहीं सरकार ! हम लोग आते हैं आप के प्रेम से आते हैं लेकिन अब इतना अपमान होने लगा तब आने से क्या फायदा ?

मोहन—जरा ठहरो जी। स्त्रियों की बात पर ध्यान देना ठीक नहीं। (लक्ष्मी से) लक्ष्मी ! आगन्तुकों का इस तरह अपमान करके तुमने अच्छा नहीं किया।

लक्ष्मी—क्षमा कीजिये मुझ से भूल हुई। लेकिन मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिये।

मोहन—(झक्की बक्की से) अच्छा ! अब बाहर घूमने जाना ठीक नहीं, इस समय घर ही बैठें।

चक्की—जो आप को अच्छा लगे कीजिये। लेकिन इस प्रकार स्त्रियों के वश में रहना तो मर्दों को शोभा नहीं देता आप ने तो सुना होगा कि कैकेयी के वश में पड़ने से दशरथ की क्या गति हुई थी?

मोहन—अच्छा! तुम लोग चलो मैं अभी पांच मिनिट में आता हूं।

(दोनों का प्रस्थान)

मोहन—तुम्हें समय असमय देख कर बात करना चाहिये। हर बात में रोक टोक करना अच्छा नहीं मालूम होता अगर मैं कहीं बाहर जाता हूं तो तुम्हें इस बात से क्या मतलब?

लक्ष्मी—स्वामी जी मतलब क्यों न हो जिसमें आप का कल्याण है उसी में मेरा। जब आप कुमार्ग पर जारहे हैं तब यह दासी चुप चाप कैसे रह सकती है (घुटने टेक कर) प्राणनाथ! देखो मान जाओ आखिर मैं भी आप की कोई हूं।

मोहन—(कठोर स्वर से) कौन कहता है? कि तुम मेरी नहीं हो लेकिन मेरे कामों में आड़े क्यों आती हो, अगर मैं न जाऊँ तो दो आदमी मुझे कितना बुद्धू समझेंगे। जाओ इस समय मैं तुम्हारी एक भी बात नहीं सुनना चाहता।

(झटका से हाथ छुड़ाकर चला जाता है लक्ष्मी देखती रह जाती है और चुपचाप आंसू पोंछने लगती है)

लक्ष्मी—गये! जाल में फँसने गये, शिकारियों ने जाल में शेर फँसालिया। मैं अपने स्वामी को देवता न बना सकी- आगे सफलता होगी वैसी आशा नहीं है फिर मेरे जीने से क्या फायदा! बाँध टूट चुका है अब उसका बाँधना असम्भव है।

(फिर से हाथ लगा कर सोच करती है)

बस! अब सोच विचार का क्या काम? व्यर्थ ही इस जीवन के मोह में पड़ी हूँ।

(आंसु बरसाती हुई कटारी लाती है)

बस इस अभागिनी का दुनियां में कुछ काम नहीं। स्वर्ग के देवताओ! सूर्य देव! पृथ्वी माता! आज तुम्हारे देखते देखते यह अभागिनी तुम्हारी गोद में आती है।

(हिचकियां लेती हुई रोती है)

यह बलिदान स्वीकार करो इसके बदले में मेरे स्वामी को सुबुद्धि दो।

हैं! हृदय में यह दुविधा क्यों? प्रेम कहता है 'न मर' कर्तव्य कहता है "मर जा" किसका कहना करूं (कुछ सोच कर) बस! अब हृदय को डुलाने की जरूरत नहीं है। सुधार, बलिदान चाहता है और ऐसा वैसा बलिदान नहीं, किन्तु उच्च बलिदान, इसलिये मैं अपना ही बलिदान करूंगी।

(छुरी मारने को तैयार होती है कि महात्मा का प्रवेश)

महात्मा—ठहरो देवि! ठहरो, अपने इस मनुष्यावतार को सफल करो इस तरह जीवन न गमाकर संसार की नारियों को अपने समान सती बनाओ।

लक्ष्मी—(रुंधे गले से) गुरुवर्य क्षमा कीजिये। इस अभागिनी को अपने बलिदान के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने दीजिये सुधार एक बलि चाहता है।

महात्मा—देवि! मैं कब कहता हूं कि तुम अपने जीवन का बलिदान न करो। जिस समय आप सरीखीं दस पांच पतिव्रता देवियाँ आत्म बलिदान करने को तैयार हो जावेंगी उस समय संसार का कल्याण हो जावेगा—पिशाचों का तांडव मिट जायगा। परन्तु उस बलिदान को

लिये मरने की क्या जरूरत ? सच्चा बलिदान तो अपने सुखों को लात मार कर संसार की भलाई करने में है ।

लक्ष्मी—परन्तु गुरुवर्य्य ! जो अपने घर सुधार नहीं कर सकी वह संसार का सुधार कैसे कर सकती है। और मुझ अकेली से क्या हो सकता है।

महात्मा—नही ! संसार में तुम्हारे समान एक भी सती हो तो भी बहुत है। एक सीता से ही भारतीय नारियों का मुख ऊंचा है। रही मोहन सिंह की बात, सो मोहनसिंह को सुधार ने की जितनी चिंता तुम्हें है उससे ज्यादः मुझे है। तुम विशेष चिंता न करो मेरी सम्मति के अनुसार काम करती चलो, विश्वास रक्खो। जो स्वार्थ को लात मारकर सच्चे मन से सेवा करते हैं उनकी सेवा व्यर्थ नहीं जाती है

लक्ष्मी—महात्मा जी। मुझे विश्वास नहीं होता कि मेरे बलिदान बिना उनकी बुद्धि पलट जायगी मेरी मौत से उनमें अवश्यक परिवर्तन होगा।

महात्मा—परिवर्तन अवश्य होगा—पैर में जो रस्सी बँधी है वह टूट जायगी और उच्छृंखलता बढ़ जायगी।

लक्ष्मी—ऐसी आशा नहीं है

महात्मा—संसार के कार्य हमारी तुम्हारी इच्छा के अनुसार नहीं होते ।

लक्ष्मी—लेकिन उस समय आप तो उन्हें सत्पथ दिखलायेंगे

महात्मा—तुम्हारी सहायता बिना मैं क्या कर सकता हूं ? स्त्री जाति के बिना पुरुष जाति निकम्मी है। बलिदान करने का जो ढंग तुमने सोचा है यदि वही ठीक है तो पहिले मुझे ही वैसा बलिदान करना चाहिये (लक्ष्मी के हाथ से कटारी छीनने की चेष्टा करते हैं)

लक्ष्मी—नहीं ! नहीं ! मैं आपकी आज्ञा सिरपर रखती हूं

महात्मा—बस तो सिद्धि अपने हाथमें है सच्चा बलिदान ही सच्ची सफलता का उपाय है—

> हैं आत्मघाती सैकड़ों उनसे न कुछ होता कभी ।
> होता उन्हीं से जो कि सहते आपदाएं हैं सभी ॥
> निष्कामना से विश्व सेवा के लिये वह काम है ।
> जीवन मरण की हो नहीं-चिन्ता, वही बलिदान है ॥

(पटाक्षेप)

द्वितीयांक

द्वितीय दृश्य ।

(पंडित जी का प्रवेश)

पंडित जी—चलो, जो कुछ मिला वही बहुत है किसी तरह पेट भरना चाहिये। अगर इसी तरह सूखे चने वगैरह ही मिलते रहें तो भी भला है फिर कुछ चिन्ता नहीं

रमादेवी—(प्रवेशकर) हां अहर कुछ चिन्ता नहीं आज यदि किसी तरह सूखे चने मिलगये तो सब चिन्ता ही मिटगई। अब जल पान करलिया है तो आओ कुछ शाम का ठिकाना लगा लाओ।

पंडितजी—अरे मैं ऐसा समझता तो जलपान ही न करता।

रमादेवी—तो इस प्रकार भूखे रहकर कितने दिन चलता।

पंडितजी—हां ! इसीलिये तो करलिया है

रमादेवी—करलिया है तो जाओ कुछ ठिकाना लगाओ नहीं तो वैसा जलपान हर दिन कहांसे आवेगा ?

पंडितजी—(बड़े दुखसे) अच्छा जाता हूं कहीं दुर्गा पाठ वगैरह का मौका लगेगा तो दो चार दिन का काम बन जावेगा (मुँह बनाकर) क्या करूं, लोग तो कुछ समझते ही नहीं इसीलिये बहुत कमदेते हैं और उतने में ही मुँह बिगाड़ते हैं ।

रमा देवी—तो समझें क्या । तुम्हारी बातें समझने के लिये दस पंद्रह वर्ष संस्कृत पढ़ना चाहिये । जो दस पंद्रह वर्ष सँस्कृत पढ़ेगा वह तुम्हारी पूजा पाठ सुनने क्यों आवेगा ! तुम्हारे व्याख्यान में स्वर-स्वाद कुछ भी तो नहीं है ।

पंडितजी—अरी ! तो क्या हिन्दी में कहने लगूं ? बड़ी पंडताई छाँटती है, हिन्दी में ही कहना होता तो ऋषि महर्षि संस्कृत में क्यों लिख जाते ?

रमादेवी--उस समय हिन्दी भाषा न होगी। और होगी तो इसका इतना प्रचार न होगा संस्कृत बहुत लोग जानते होंगे ।

पंडितजी—हां, जरूर जानते होंगे! अरी, जो जब नहीं था वह आज कहां से आसकता है ' नास तुत्पत्तिः नसतो विनाशः ' *

रमादेवी—मैं आपकी संस्कृत नहीं समझती फिर भी इतना कहती हूं कि शास्त्रों की बातें अगर ऐसी भाषा में कहीं जाँय जिससे सब समझें तो इसमें क्या हानि है ।

पंडितजी—(जोरसे) कुछभी नहीं । पागलों सरीखो बातें करती है अरी, अपनी विद्या का रहस्य दूसरों को कैसे बतादें

(महात्मा का प्रवेश)

महात्मा--परन्तु पंडितजी महाराज ! संसार को आज उसी की आवश्यकता है! संसार गीता का रहस्य और भगवान महावीर महात्मा बुद्ध के पवित्र संदेशों को सुनना चाहता है। आज इस ठग विद्या ने पालसी (नीति) नाम रखकर संसार को तबाह कर दिया है। भीतर ही भीतर दुनियाँ के लोग इस से घृणा करते हैं फिर भी उसी में फँसे हुए हैं क्यों कि उनको दूसरा शान्तिमय स्थान नहीं मिलता। क्या आप इन भारतीय संदेशों को सुनाने का भार अपने ऊपर नहीं ले सकते ?

पंडितजी— (आश्चर्य के साथ) अरे, इधर तो पेट भरने की दो दो पड़ी है आप दुनियां भर का भार देने की बात कर रहे हैं

महात्मा— हाय विप्रों के हृदय हैं कौन कीचड़ में फँसे ।
विश्व सेवा छोड़कर हैं रोटियों में आ फँसे ।

महाशय ! अब इन तुच्छ बातों को छोड़ो-चलता घोड़ा दाना आप मांग लेता है। संसार को जिसको प्यास है वह चीज उसे पिलादो तो रोटियां तो क्या अमृत भी तुम्हारे पैरों में लोटता फिरेगा

पंडितजी—महात्मा जी ! आपका कहना ठीक है किन्तु हम लोगों को रोटियों का प्रश्न इतना कठिन मालूम होता है जिसके आगे बड़ी बड़ी फक्किकाओं की कठिनाई कोई वस्तु नहीं है। इसके आगे हम प्रश्नों को भूल जाते हैं। भूल क्या जाते हैं हमलोगों की शिक्षा संगति ही ऐसी हुई है जिससे दूसरी बातों पर ध्यान ही नहीं जाने पाता। परन्तु आज आपके द्वारा एक सच्चा रास्ता पाकर मैं बहुत प्रसन्न हूं अब आप की जैसी आज्ञा हो वैसा ही करने को मैं तैयार हूं लेकिन (अपने पेटकी ओर इशारा करते हुए) इसका ध्यान रखियेगा

महात्मा—आप इसकी चिन्ता न करो। बस, आप तो संसार को ऐसा उपदेश दो

* जो नहीं है उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, जो है उसका नाश नहीं हो सकता।

जिससे वह रूढ़ियों के जाल से निकल आवे। बेईमानी, बदमाशी, छलप्रपंच, चापलूसी आदि को छोड़कर सचाई पर कायम रहे—संसार के सब मनुष्य भारतीय धर्म का रहस्य जानें।

पंडितजी—परन्तु यवन ईसाई आदि नास्तिकों को धर्म का रहस्य कैसे बताया जा सकता है? शूद्रों को तो सुनने का भी अधिकार नहीं है।

महात्मा—नहीं! नास्तिकों को ही सुधारने की जरूरत है आप देखेंगे कि सारा संसार नास्तिक है। क्या आप समझते हो कि सब मनुष्य पुण्य, पाप और परलोक को मानते हैं? यदि ऐसा होता तो संसार में ऐसा हा हा कार क्यों मचा रहता। मनुष्य, मनुष्य को खाने के लिये क्यों दौड़ता फिरता? पंडित जी! हर एक आदमी मुँह से जो चाहे बक सकता है। लेकिन जब आत्मा में वैसा विश्वास नहीं है और न वैसा कार्य है तब मुंह से कहना और अपने को आस्तिक मतानुयायी मानना मायाचार के अतिरिक्त कुछ नहीं है

पंडितजी—लेकिन जो अपात्र हैं?

महात्मा—नहीं, अपात्र मनुष्य कोई नहीं है, हृदय से अब इस क्षुद्रता को निकाल दो वह हम से नीच है इस गुमान को दूर करो सबमें प्रेम का संचार करो देश का भला इसी में है:—

> जब तक हिन्दू मुसलमान जैनी ईसाई।
> नहीं मिलेंगे यथा परस्पर भाई भाई॥
> तब तक जग में कहीं हिन्द सन्मान न होगा।
> गिरे हुए इस भारत का उत्थान न होगा॥

पंडितजी—जो आपकी आज्ञा

महात्मा—(रमादेवी से) देवी! आज संसार में वीराङ्गनाओं की आवश्यकता वीरों से अधिक है। वीरपत्नी और वीर माताओं के बिना वीर पुरुषों का मिलना असम्भव है। इसलिये आओ संसार के उपवन में प्रेम का अमृत सींचो!

रमादेवी—गुरुवर! मेरे लिये क्या आज्ञा है

महात्मा—देवि! तुम संसार के दीन, हीन दुखी मनुष्यों की माता के समान सेवा करो, संसार वेश्याओं के जाल में फंस कर दुखी हो गया है। अब वह सच्ची माता, सच्ची पत्नी देखना चाहता है। आओ, सच्ची माता और सच्ची पत्नी बनाने का प्रयत्न करो। संसार को सेवा धर्म की मूर्तियों के दर्शन करादो। मनमें सदा इस बात का ध्यान रक्खो:—

> छोड़दें दुर्भावनायें सत्य पर तत्पर रहें।
> प्राण छोवें नष्ट पर दुखसे सदा बच ही रहें॥
> मान में फूलें नहीं मनमें सदा करुणा धरें।
> यदि मरें तो सत्य पथ में दूसरों के हित मरें॥

दोनों—जो आज्ञा

(सब का प्रस्थान)

द्वितीयांक

तीसरा दृश्य

(स्थान—विमला-लेटी हुई है इतने में दासी आती है)

दासी—बाई साहब! नीचे जमींदार साहिब अपने दोस्तों के साथ खड़े हैं

विमला—(खेद से) हायरे! वेश्या जीवन! क्षण भर की चैन नहीं, अच्छा तो उन्हें आने दो (विमला दर्पण में मुख देखने लगती है मोहन सिंह दोस्तों के साथ आता है)

विमला—(स्वागत करती हुई) आइये! आप की दया से मेरा दिल आनन्द से भर गया

मोहन—वाह वाह ! क्या कहना ? हम वापी का मीठा जल पीने आये हैं इस में कृपा हमारी या वापी की

विमला—प्यारे ! सच्चा प्रेम ऐसा ही होता है, अच्छा बैठिये तो ! (बैठते हैं)

मोहन - प्यारी ! कसम खाकर कहता हूं तुम्हारे पर तो यह आन कुर्बान है (विमला मुसकराती है)

विमला—(दासी से) मनका ! जा ! पान तो ला ! बहुत बढ़िया लाना

मोहन—(रुपया फेंकता है दासी लेकर चली जाती है) हां, पान की तो बात ही भूल गया। क्या करूं ! प्यारी की मुहब्बत इतनी जबर्दस्त है कि होश ठिकाने ही नहीं रहते

विमला—सचमुच आप की मुहब्बत आले दर्जे की है

(दासी पान लाती है, विमला मोहन को, दासी दोस्तों को खिलाती है)

विमला—कहिये तो शराब मँगाऊँ

झक्की—(चौंककर) क्या शराब ? अहहहहह। क्या पूछना ? मैं तो नाम सुनते ही नशे में आगया

मोहन—हां ? शराब जरूर मँगाओ लेकिन (झक्की की ओर इशारा करके) इन्हें नहीं पिलाना क्योंकि इनका तो नाम से ही काम चलगया

झक्की—अजी ! मैं तो पहिले ही पिऊंगा न पिलाने का नाम सुनते ही सारा नशा उतर गया (स्तब्ध सा हो जाता है) (मोहन खिंह हँसता है)

मोहन—अच्छा इन्हें भी पिलाना

(झक्की आंखें खोलकर चमकने लगता है)

विमला—(मनका से) जा ! देखतो क्या है ? लेकिन जा वही शराब लाना।

मनका—उसमें तो आधा प्याला भी नहीं है

मोहन—नहीं है तो नीचे की दुकान से खरीद लाओ ये लो (पचीस रुपये का नोट फेंकता है)

विमला—हैं ! हैं ! यह आप क्या करते हैं। आप मेरे मिहमान हैं, आप की खातिरदारी करना मेरा काम है न कि आपका।

मोहन—प्यारी ! क्या हम और तुम दो हैं ?

विमला—यह आपकी मिहरबानी है नहीं तो बांदी किस लायक है ?

मोहन—वाह ! मेरे मन मन्दिर की देवी क्या बांदी हो सकती है ?

विमला—देवता ! मेरे पास है क्या ? जो था वह तो लुट गया

मोहन—क्या था ? और कैसे लुट गया

विमला—दिल था और वह लुट गया। कैसे लुट गया ? सो क्या बताऊँ जब मैं आप के घर गई और लौटकर आई तो मालूम हुआ कि दिल लापता है

मोहन—(खूब हँसकर) अच्छा ! तो सीधे कहो न ! कि मैं ही लुटेरा हूं। अब मुजरिम को क्या दंड मिलेगा

विमला—(हँसकर) बहुत बड़ा (मनका शराब लेकर आती है । विमला प्याला लेकर मोहन को और दासी, दोस्तों को पिलाती है।)

मोहन—वाह ! शराब तो सचमुच मजेदार चीज है जिसमें यह शराब तो कुछ पूछो मत।

झक्की—अजी ! ऐसी शराब तो मैं ने आज तक देखी भी नहीं

मेरे बाप ने मुझे पशु के समान एक बूढ़े कसाई के हाथ में बेंच दिया—मैं कुछ न बोल सकी। विधवा होने पर मेरे घर वालों ने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया उसको सहकर सती रहने वाली देवियाँ संसार में कितनी हैं? ऐसी हालत में अगर मैं बिगड़ गई तो क्या अनहोनी हो गई? खैर! जो हुआ सो हुआ अब मेरे हृदय में प्रतिहिंसा है। पुरुषों ने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया है उसका बदला उन्हें मिलेगा। मेरा जीवन तो बरबाद हुआ ही लेकिन मैं सैकड़ों को बिगाड़ दूंगी दर दर का भिखारी बनादूंगी। आह! जब पुरानी बातों का ख्याल आता है तब आंखों से खून बरसने लगता है। (गहरी सांस लेकर) एक दिन यह विमला भले घर की कन्या थी, फिर भले घर की बहू बनी लेकिन जब होश सम्हाला तब उसके लिलार का सिंदूर पुंछ चुका था हाथों की चूड़ियाँ फूट चुकी थी।

इस के बाद क्या हुआ क्या कहूं परमात्मा! तूही देखने वाला है मैं पतित हूं लेकिन मेरा दोष नहीं है। अगर है तो इतनाही कि मैं औरत क्यों बनी? परमात्मा! तुम औरतों को पैदा करना बन्द करदो नहीं तो लड़की की मां को ऐसी बुद्धि दो जिससे वह पैदा होते ही उसकी गर्दन मसलदे जिससे समाज के अत्याचारों से सताई हुई वेश्याएँ तो न बनें।

भगवान! मालूम पड़ता है तुम सो गये हो, नहीं तो ऐसा क्यों होता? आह! आह!! अब नहीं सहा जाता। जब किसी पर वश नहीं चलता तब जी चाहता है कि अपनी ही गर्दन मसल दूं (गर्दन मसलने की चेष्टा करती है)

(महात्मा का प्रवेश)

महात्मा—शान्त! शान्त!! विमला!!!

विमला—(चौंककर) एँ! कौन? तुम कौन हो? क्या, तुम्हीं महात्मा हो? यदि हो तो मुझे शान्त कर सकते हो लेकिन आगी बिना बुझे शान्त नहीं हो सकती।

महात्मा—विमला! आगी, आगी से नहीं बुझती, पाप से पाप दूर नहीं होता। आत्म-घात से जीवन नहीं सुधरता।

विमला—तो क्या अब भी मेरे सुधरने का उपाय है?

महात्मा—अवश्य।

विमला—(उत्सुकता से) तो बताइये मैं क्या करूं? जिससे मुझे शान्ति मिले

महात्मा—विमला! तुम्हारा जीवन, एक अद्भुत कहानी है उसे सुनकर तुम, लोगों की आंखें खोल सकती हो, संसार के नर नारियों को तुम रूढ़ियों के दुष्फलों की शिक्षा दे सकती हो और (लक्ष्मी का प्रवेश और लक्ष्मी की ओर इशारा करके) इस सती देवी की सेवा करके अपने जीवन को पवित्र और शान्त बना सकती हो।

विमला—कौन? लक्ष्मी देवी! अहा! पवित्रता की मूर्ति भगवती! क्षमा करो, इस पापिनी को क्षमा करो। मैं ने तुम्हारे प्राणेश्वर को भुलाकर तुम्हारे दिल को जख्मी बनाया। अब सब भूल जाओ (पैरों पर गिर कर) इस कलंकिनी की रक्षा करो। इसे सच्चा रास्ता बतलाओ मुझे यही भीख चाहिये!

लक्ष्मी—(विमला को उठाकर) विमला मैं तो आज तुम्हीं से भीख मांगने आई हूं।

विमला—एँ! क्या मुझ से भीख माँगने, स्वर्ग की देवी एकचाण्डालिन से भीख माँगने? देवि! मेरे जख्मी हृदय को दिल्लगी से और जख्मी न बनाओ।

लक्ष्मी—दिल्लगी नहीं, विमला, मैं सचमुच तुम से भिक्षा मांगने आई थी और अब मुझे विश्वास है कि वह मिल जायगी।

विमला—कैसी भिक्षा? मेरे पास तुम्हारे लायक क्या है?

लक्ष्मी—मेरा प्राणेश्वर, मैं उसी की भिक्षा मांगती हूं।

विमला—अहो! देवी! मुझे माफ़ करो! मैं अपने पापों को बहुत जल्द भूल गई। सच मुच मैंने तुम्हारा भारी अपराध किया है एक सती को सताकर नरक का रास्ता साफ़ किया है। देवी! मैं किस मुँह से उत्तर दूं किस मुंह से इन चरणों में (लक्ष्मी के पैर पकड़ कर) स्थान मांगू?

लक्ष्मी—(उठाकर) बहिन। उठो! तुम निरपराध हो तुम्हें मुझ से क्षमा मांगने की जरूरत नहीं है

विमला—बहिन! इस पापिनी के लिये इतना पवित्र शब्द! क्षमा करो देवी! क्षमा करो! मैं ने बड़े पाप किये हैं ऐसी पापिनी को इतने पवित्र शब्द से न पुकारो।

महात्मा—विमला! अपने को इतना पतित न समझो। जो पतित होकर भी क्षण भर में अपने को इतना ऊँचा उठा सकती है उसे बहिन कहने में हम लोग अपना सौभाग्य समझते हैं।

विमला—गुरुवर्य! आपकी दया अनन्त है।

(महात्मा के पैरों पर गिरना चाहती है वे उसे बीच ही में हाथों से रोक लेते हैं इसी समय परदा गिरता है)

❀ जीवन-ध्येय ❀

जीवन-ध्येय प्राप्त कर लेना सब लोगों का काम नहीं।
संकट सहस सीस पर धरना कायर जन का काम नहीं;
लोभ-प्रलय जब चलता है तब बड़ों बड़ों का नाम नहीं,
रहता है, शव पड़ा हुआ ही उसका भी निष्काम कहीं! (१)
मायो-दावानल का झोंका सहना टेढ़ी खीर हुआ।
इसमें पड़कर कौन वीरवर पृथ्वी पर बे पीर हुआ॥
क्रोध-जलधि का तर जाना भी बच्चों का है खेल नहीं;
मान-महागिरि से नीचे पग रखना भी आसान नहीं॥ (२)
करते पर उपकार सदा जो अपकृति का कुछ ध्यान नहीं,
सहन-शीलता के मन्दिर के बाहर जिनका ध्यान नहीं॥
हृदय अगाध ज्ञान-सागर में गोते बड़े लगाते हैं;
वे ही जीवन-ध्येय प्राप्त कर इस जग में यश पाते हैं॥ (३)

—भुवनेन्द्र।

बाल-रक्षा

बालकों की रक्षा का जितना ख्याल संयुक्त राज्य अमेरिका करता है उतना भारत क्या संसार का कोई भी प्रदेश नहीं करता। अमेरिका वाले वैज्ञानिक रीति से इस बात का अनुसंधान लगा रहे हैं कि बच्चों को बचपन में क्यों अधिक मृत्यु देखी जाती है? उन्होंने इस विषय में आशातीत उन्नति करली है।

बाल-रक्षा

बाल-रक्षा के ऊपर वहां पर बहुत जोर दिया जारहा है। वहां पर जिस समय बालक उत्पन्न होता है उसी समय से उसको पूरी देख रेख की जाती है। अमेरिका के बहुत से नगरों में तो यहां तक होता है कि जिस समय बच्चा गर्भ में आता है, उसी समय से उस गर्भवती स्त्री को बच्चे के स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी बातों का ज्ञान करा-दिया जाता है। इस काम के लिए धाएं (Nurses) होती हैं जो प्रत्येक घर में जा जाकर उन गर्भवती स्त्रियों को उपदेश दिया करती हैं। इसके अतिरिक्त बाल-रक्षा के अन्य उपाय भी प्रयोग में लाए जाते हैं। कुछ २ शहर तो बाल-रक्षा सम्बन्धी ट्रेक्ट भी बांटते हैं। यद्यपि बाल-रक्षा के लिए दूध एक अति उपयोगी वस्तु है, परन्तु वह स्वच्छ तथा ताजा हो। संयुक्त राज्य अमेरिका में तो अच्छे ताज़े दूध की जगह व जगह दुकानें हैं। जहां पर स्वच्छ, तथा तरो ताजा दूध हर समय सबको मिल सकता है। यूरोप और अमेरिका में जो उपाय बाल-रक्षा का है वही उपाय न्यूयार्क ने भी इख्तियार किया है। वहां पर एक बाल-रक्षा संघ है जिसमें ३१० सौसे ऊपर धाएँ हैं, दूसरा दांत के डाक्टर, १८७ मेडीकल इन्स्पेक्टर, दो सर्जन, ५८ धायों के सहायक तथा सौ छोटे छोटे कर्मचारी हैं। यह संघ ५८ बाल-रक्षा स्टेशनों का प्रबन्ध करता है। इसमें बच्चों की पूरी २ देख रेख, उनके परवरिश का ख्याल, स्वास्थ्य का ख्याल तथा बच्चों की माताओं का ख्याल किया जाता है। इस संघ से बहुत लाभ हुआ है और बच्चों की मृत्यु संख्या पहिले की अपेक्षा बहुत ही कम होगई है और आशा की जाती है कि धीरे २ यह बिलकुल ही कम होजायगी।

वहां पर जिस प्रकार बालकों की रक्षा घर पर की जाती है। उसी भांति स्कूल में भी की जाती है, परन्तु भारत में जब बच्चों की रक्षा का घर पर ही प्रबंध नहीं तो स्कूलों में कहां से हो सकता है। यहां पर तो सैकड़ों बच्चे जन्मते ही मरते चले जाते हैं और कुछ बाद को मर जाते हैं। बहुत ही कम बच्चे जिन्दा रहते हैं, जो जिन्दा रहते हैं उनका स्वास्थ्य खराब रहता है। घर न बाहर कहीं भी उनके स्वास्थ्य का ख्याल नहीं किया जाता है। यही कारण है कि भारतीय बच्चों के स्वास्थ्य खराब होने से वे मानसिक विकाश में बहुत पीछे रह जाते हैं। वहां पर भारत जैसा ढंग नहीं। कई स्कूलों का यही उद्देश्य है कि पहिले शिक्षा पीछे। जिस समय बालक वहां पर स्कूल में जाता है तो पहले पहल उसके अंगो पांग की ओर ध्यान दिया जाता है। यदि किसी बालक का कोई अंग जैसे आंख, कान, नाक, मुंह, हाथ पैर इत्यादि खराब हुए तो पहले उनके ठीक करने की ओर ध्यान दिया

जाता है पीछे शिक्षा दी जाती है। वहां के स्कूलों में बच्चों को स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी पाठ भी पढ़ाया जाता है। उसमें वार्षिक परीक्षा भी ली जाती है। जब डाक्टर किसी बालक में कोई खराबी देखते हैं तो वे फौरन ही उसकी रिपोर्ट उसके वालदेन के पास भेज देते हैं जिससे बच्चे के मां बाप उस खराबी को दूर करने की पूरी २ कोशिश करते हैं।

अमेरिका में दांतों का रोग अधिकता से पाया जाता है। इसलिए वहां पर दांत के डाक्टर अधिक हैं कारण कि दांतों के खराब होने से स्वास्थ का खराब होना बहुत संभव है। अतः दांतों की ओर बहुत ध्यान दिया जाता है। स्कूलों में बच्चों के दांतों का इलाज करने के लिए दांत के डाक्टर बिना फीस मिलते हैं। वे हर समय बच्चों के दांतों की देख रेख किया करते हैं। दांतों से केवल स्वास्थ्य ही खराब नहीं होता किन्तु गले में दर्द हो जाता है। और साथ ही साथ कान, आंख, नाक, हृदय आदि में भी पीड़ा पैदा हो जाती है, इससे दांतों का साफ रखना अति आवश्यक है।

स्कूल में बच्चों की रक्षा के लिए धाएं रहती हैं। वे उनको स्वास्थ्य सम्बधी परीक्षा में उत्तीर्ण होने में बहुत सहायता देती हैं। बच्चों के स्वास्थ्य में किञ्चिन्मात्र की गड़बड़ी होने पर वे उसे फौरन ही दूर करने का उपाय करती हैं। बड़े २ डाक्टरों की आज्ञानुसार कार्य करती हैं। जब धाएँ घर पर आती हैं तो वे बच्चों के स्वास्थ्य की ही शिक्षा नहीं देती किन्तु सारे घर भर को शिक्षा देती हैं। जिस प्रकार बच्चे भारत में भूखे और अधपेट रहकर अपना पठन पाठन समाप्त करते हैं उस प्रकार अमेरिका में नहीं होता। वहां का तो यह पक्का सिद्धान्त है कि बच्चों को भूखों मारना ईश्वर को भूखों मारना है। वहां पर स्कूल में बच्चों को छुट्टी के समय दोपहर का भोजन मिलता है। कोई भी बच्चा किसी समय भी भूखा नहीं देखा जाता। यही कारण है कि अमेरिका के पुरुष मानसिक विकाश में अन्य देशों के पुरुषों से बहुत बढ़े बढ़े हैं। भारत की जो दशा है वह सब को भली प्रकार विदित है। यहां पर जब भरपेट भोजन ही नहीं मिलता तो फिर भला विचार शक्ति कहां बढ़ सकती है! यही कारण है कि भारतीय पुरुष मानसिक उन्नति में अन्य देशों के पुरुषों से बहुत पीछे हैं। अस्तु

अमेरिका में पढ़ने लिखने के अलावा बच्चों को खेलने कूदने का भी प्रबंध रहता है। जिस स्कूल में खेलने कूदने को भी मैदान नहीं होगा वह शिक्षा सम्बधी कमी में पीछे समझा जाता है। लोग ऐसा ख्याल करते हैं कि उस स्कूल में बच्चों के साथ घोर अन्याय हो रहा है। वहां पर तो ऐसा शायद ही कोई स्कूल हो जिसमें बच्चों के खेलने कूदने के लिए मैदान न हो। परन्तु इस भारतवर्ष में एक नहीं अनेकों स्कूल ऐसे हैं जिनमें खेलने कूदने का कुछ भी प्रबंध नहीं। रात दिन समझाना तो क्या रटाने की ओर ध्यान दिया जाता है। यही कारण है कि भारतीय पुरुषों की तन्दुरुस्ती और मानसिक शक्ति दोनों खराब देखी जाती हैं। यदि यहां पर अमेरिका की भांति बालरक्षा तथा उनकी शिक्षा का प्रबंध हो जाए तो फिर भारत की उन्नति होने में कुछ भी समय न लगे।

आशा है हमारे माननीय कौंसिल के मेम्बर इस ओर ध्यान देंगे और इसमें बहुत जल्दी सुधार की योजना भी करेंगे।

—नाथूराम सिंघई।

दीपावली ।

आज फिर दीपावलि आई ।
विमल प्रणत आग्रहसे, सबने दीपक पंक्ति जलाई।
मानों इस मृत प्राय दशामें, पूर्व झलक दिखलाई ॥
अंग निष्ठुर है, क्या समझेगा, सजनी, पीर पराई ।
मैंने अपनी खोई निधि हो, क्यों कर हाय न पाई ॥
मुक्ति दिवस पर सुरगणने भी दिव्यप्रभा विकसाई ।
जिसकी करुण, सरस आर्तध्वनि, सबजगमेंथीछाई ॥
उस अतीत की दुखद स्मृति ने, जैसे हूक लगाई ।
कैसे पाऊँगी खोया धन ? हे अलि, कह समझाई ॥

—भगवन्त गणपति गोइलीय ।

अन्याय ।

अहि को पय पान कराने से,
क्या विष अमृत हो जाता है ?
उलटा ही जहर बढ़ा, अब तो,
लख कुटिलनीति दुःख होता है ॥
दूध पिलाने का फल ये—
उलटा ही विषधर काट रहा ।
वह ध्येय हज़ारों कोस गया,
आशा का अङ्कुर है सूख रहा ॥ १
हे भगवन् ! अब तो यह नैया,
मझधार भँवर में आन पड़ी ।
मारुत सहसा प्रतिकूल हुई,
यह दशा भयंकर हुई बड़ी ॥
टूट गया पतवार हमारा,
अब कर्णधार उद्धार करो ।
अपनी रक्षा का आश्रय दो,
या उलटा ही संहार करो ॥ २

—परमानन्द चाँन्देलीय ।

दो बातें ।

आजकल समाज सुधार का शोर सब जगह सुनाई देने लगा है । ऐसा मालूम होता है कि समाज की वर्तमान अवस्था से सब लोग घबड़ा गये है । यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि शोर मचाने वालों में ऐसे लोग बहुत हैं जो दूसरों को शोर मचाते देखकर शोर मचा रहे हैं फिर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो समाज की वर्तमान अवस्था से सचमुच चिन्तित और दुखी हैं ।

समाज सुधार के कार्य में लोग अभी तक प्रस्ताव ही कर रहे हैं जिन कुकार्यों के विरुद्ध वे प्रस्ताव रखते हैं। उनकी जड़ क्या है ? इस पर दृष्टि बहुत कम डाली जाती है । समाज सुधार की कोई नीति भी निश्चित नहीं हुई है । लोगों के आगे कोई विधायक कार्य क्रम भी नहीं रक्खा गया है ! और सबसे बुरी बात तो यह है कि अभी तक लोगों ने सुधार की अवस्था तक का निश्चय नहीं किया । बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्या विक्रय के विरुद्ध प्रस्ताव पास करना तो सुधार का उपाय है, और इनका बन्द हो जाना सुधार की सीमा । लेकिन ये तो सुधार के बहुत ही तुच्छ अंग हैं । हम थोड़े बिगड़े हैं या बहुत यह बात दूसरी है । किन्तु जितने बिगड़े हैं जड़ से ही बिगड़े हैं । इसलिये हमारी दवाई जड़ से ही होना चाहिये । आजतक पत्तों पर कुल्हाड़ी मारी गई हैं । यही कारण है कि हम इस विष वृक्ष का अभी तक नाश न कर सके । अस्तु हम पाठकों को अपनी दो बातें सुना देना चाहते हैं ।

१—विवाह ।

यद्यपि विवाह के विषय में कुछ सुधार हुआ है । दस बीस वर्ष पहिले जितने बोल

विवाह होते थे उतने अब नहीं होते हैं। आज कल साधारणतः कन्याओं का विवाह ग्यारह वर्ष में होता है। इसी प्रकार लड़केकी उमर भी चौदह पंद्रह वर्ष की रहती है। बीस बाईस वर्ष की उमर में यदि लड़के का विवाह हो तो बुरा नहीं समझा जाता। इस सुधारका श्रेय सभाओं के प्रस्तावों को, और व्याख्याता लोगों के व्याख्यानों को बहुत कुछ दिया जा सकता है। इतने पर भी हम इस बात को नहीं भूल सकते कि अभी इस काम में ही सुधार की बड़ी ज़रूरत है। जड़ में जो रोग लगा है उससे वृद्ध और अनमेल विवाह होते जाते हैं यद्यपि इनकी संख्या पहिले से कुछ कम है।

प्राचीन समय में स्वयम्बर की प्रथा थी। लेकिन वह राजा लोगों को ही लागू होती थी। सर्व साधारण में इस प्रथा का प्रचार नहीं था वास्तव में इस प्रथा से भी यथोचित लाभ होना कठिन ही था। भला, स्वयम्बर मंडप के भीतर बैठे हुए लोगों की दस पांच मिनिट में परीक्षा कैसे की जा सकती थी? यही कारण है कि धीरे धीरे यह प्रथा भारतवर्ष से उठ गई और वर कन्या का सम्बन्ध माता पिता की इच्छा के ऊपर ही निर्भर रह गया। प्राणियों में स्वभावसे ही सन्तान प्रेम होता है। इसलिये कोई नहीं चाहता कि हमारी सन्तान दुखी हो। पिता इस बात की पूरी चेष्टा करता है कि कन्याको अच्छा वर और अच्छा घर मिले फिर भी इस सम्बन्ध में गड़बड़ी हो ही जाती है। इसके कारण तो बहुत हैं लेकिन दो चार का उल्लेख यहां किया जाता है।

विवाह के विषय में लोग पहिले अभी तक वर के घर देखने की चेष्टा करते हैं। अमुक महाशय बहुत अच्छे हैं, उनका स्वभाव बहुत अच्छा है। इसलिये उनके लड़के को कन्या देना चाहिये। इस प्रकार न जाने कितनी योग्य कन्याओं का जीवन बरबाद हो जाता है। लड़की कैसी है? यह बात तो पीछे देखी जायगी या नहीं देखी जायगी किन्तु यह बात पहिले ही देखी जायगी, कि 'लड़की के घर में कौन है? अगर सास, ससुर, साले, सराज, साली आदि से घर भरपूर है, कुछ अधिक दहेज मिलने की आशा है तब लड़की भी अच्छी समझ ली जाती है' इस तरह अज्ञान के सम्बन्ध में बहुत गड़बड़ी होती है। ऐसी हालत में सन्तोष की मात्रा भी बढ़ जाती है। कन्या कुरूपा है? और रहने दो। झकें मुर्दे अच्छी मालूम होने लगेगी। मूर्ख है? पढ़ जायगी। कुछ काम नहीं जानती? सीख जायगी। यह सन्तोष भी बहुत हानि करने वाला होता है। एक बड़ी भारी ना समझी वर्ण व्यवस्था के विषयमें फैली हुई है। यद्यपि हम कहते तो हैं कि "जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते" जन्म से मनुष्य शूद्र होता है किन्तु सत्कर्मों से द्विज बन जाता है—फिर भी हरएक कार्य में जन्मसिद्ध वर्ण का ही ख़याल रक्खा जाता है यही कारण है कि हमारी समाज में

दिनरात असवर्ण विवाह होते रहते हैं

और कोई चूंभी नहीं करता। स्ववर्णमें विवाह सम्बन्ध करने का प्रयोजन यह है कि, पति पत्नी का कार्यक्षेत्र एकसा हो। यद्यपि पत्नीका कार्यक्षेत्र गृह ही है। फिरभी दोनोंका एक दूसरेके काममें सहायक होना या हो सकना आवश्यक है। यदि पति ब्राह्मण (विद्वान) है और पत्नी वैश्य, तो एक दूसरे के काम में सहायता कैसे दे सकते हैं? इतना जानने पर भी हमारी समाज में इस प्रकार के अनुलोम और प्रतिलोम विवाह होते रहते हैं। ब्राह्मण (पंडित) को वैश्य कन्या मिलती है। कहीं कहीं ब्राह्मणी (विदुषी) को वैश्य (व्यापारी) और शूद्र (सेवावृत्ति करनेवाला)

पति तक मिलता है। इस प्रकार अनुलोम प्रति लोम विवाह होने पर भी असवर्ण विवाह का विरोध किया जाता है "सौ सौ मूसे खाय बिलैया सत्त पै बैठी"

हम समझते हैं कि उसका पिता वैश्य था इसलिये वह भी वैश्य है। किन्तु यह बात नहीं है, वैश्य पिताके भी ब्राम्हण, क्षत्रिय और शूद्र सन्तान पैदा हो सकती है। हां, यह नियम तब ही पक्का रह सकता है जब कि जन्म से ही वर्णानुकूल शिक्षा दी जावे। लेकिन ऐसा कहां होता है? हमारी समाज में सैकड़ों हजारों ऐसे लोग हैं जो सेवा वृत्ति से और ब्राम्हण वृत्ति से (पंडिताई) से पेट भरते हैं।

अब बतलाइये हमारी वर्ण व्यवस्था कहां रही?

अस्तु हम समाज की मनोनीत वर्ण व्यवस्था के ऊपर कुछ नहीं कहना चाहते हैं। समाज भले ही वर्ण व्यवस्थाकी रक्षा करे! दिन रात पंखा झलती रहे जिससे मक्खी न बैठने पावे। लेकिन इस प्रकार के अनमेल विवाह न करें जो कि असवर्ण विवाह की हानियों से भरे हैं। और वास्तव में असवर्ण विवाह हैं। विवाह सरीखा उच्च, अनुपम, और प्रधान कार्य हमारी समाज में एक खिलवाड़ सा समझा जाता है। दूसरे देशों में विवाह बन्धन ढीला होने पर भी उसमें बहुत ही जांच पड़ताल की जाती है। हमारा यह मतलब नहीं है कि यूरोपीय विवाह पद्धति भारतवर्ष के लिये आदर्श या ग्राह्य हो सकती है। प्रयोजन इतना ही है कि वहां यह कितनी महत्व पूर्ण घटना समझी जाती है। विवाह तो वर और कन्या में ही होता है। समधी समधी में नहीं होता। इस लिये इनकी रजामन्दी की अपेक्षा वर कन्या की रजामन्दी की कीमत बहुत ही अधिक है। यूरोपीय विवाह पद्धति में जिसको हम बुरी समझते हैं यह बात पाई जाती है। वहां पर वर कन्या आपस में समझ लेते हैं पीछे माता पिता की अनुमति और सहायता से विवाह हो जाता है। जब वर कन्या और माता-पिता की इच्छाओं में विरोध पैदा होता है तब वर कन्या की ही चलती है।

यद्यपि आर्य सभ्यता इस नारी स्वातंत्र्य की पूरी तौर से रक्षा करती है। लेकिन अर्थ शून्य आर्य नामधारी हम सुपूतों की विचित्र सभ्यता इस स्वातन्त्र्य को बेशरमी समझती है! यही अज्ञान हमारे विवाह सम्बन्ध को विषैला बना रहा है।

हमारा यह मतलब नहीं है कि हमारी कन्याएँ योरोप की तरह स्वच्छन्दता से विचरण करें। और जवानी के जोश में आकर मिथ्या और क्षणिक प्रेम को सत्य और स्थायी प्रेम समझकर अपना जीवन बर्बाद कर दें। फिर भी इतना तो होना चाहिये कि जिससे अधिकार और लज्जा की वेदी पर न्याय और स्वतन्त्रता की बलि न होने पावे।

यदि विवाह कन्याओं की अनुमति से हो तो बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय आदि कुप्रथाएँ फटकने भी न पावें लेकिन लोगों का अज्ञान इस विष वृक्ष की जड़ पर कुल्हाड़ी नहीं मारने देता।

कुछ वर्ष हुए कि एक महाशय * अपनी कन्या की शादी किसी वयो वृद्ध महाशय के साथ करना चाहते थे। कन्या ने पिता से कहा कि मैं विवाह न कराऊंगी। पिता तो कन्या को अपनी सम्पत्ति समझता था। भला, वह क्यों उसकी बात सुन सकता। गांव वाले भी

* इस घटना के ग्राम नामादि बतलाना हम उचित नहीं समझते।

कन्या का ऐसा निर्लज्जता पूर्ण व्यवहार कैसे सह सकते थे ! यद्यपि कुछ लोग वृद्ध विवाह के विरोधी हर एक गांव में होते हैं। फिर भी वे कन्या की यह धृष्टता नहीं देख सकते। इसलिये उन लोगों ने कुछ कहना उचित न समझा। असहाया कन्या क्या कर सकती थी ? उसने अपनी फुआ को चिट्ठी लिखी और किसी तरह वहां से भग गई। बाप ने क्रोध से कहा कि मेरी लड़की मर गई। लड़की ने उत्तर दिया तुम्हारी दृष्टि में मेरा मरना ही सौभाग्य है। उस बाला ने सम्बन्धियों की सहायता से उसी वर के साथ शादी कर ली जिसके साथ पहिले बात चीत लगी थी। ललितपुर के रथोत्सव में वह आई थी, बातचीत करने से मालूम हुआ कि वह अच्छी तरह है॥ जब तक कन्याओं को ऐसी शिक्षा न दी जावेगी या समाज क्षेत्र में ऐसी हवा न बहने लगेगी जिससे कन्याओं में इतना आत्म बल आ सके। तब तक इन विष विवाहों का कभी नाश न होगा। लेकिन समाज को इस प्रथा की उपयोगिता का कुछ ज्ञान नहीं है। इस कारण यहां का विवाह सम्बन्ध आर्योचित कहने लायक नहीं रहा है।

विवाह सम्बन्ध को भ्रष्ट करने में इस प्रबल कारण अज्ञानके बाद दूसरा प्रबल कारण स्वार्थ है। स्वार्थी तो एक समस्त संसार है लेकिन जो स्वार्थ मनुष्य को मनुष्योचित कर्तव्य से विमुख कर देता है वही निन्दनीय है। इस स्वार्थ के चक्कर में पड़कर मनुष्य, मनुष्य को भूल जाता है। अन्यथा प्राणों से प्यारी सन्तान को ऐसा कौन मूर्ख होगा जो गढ़े में पटक दे ! यह स्वार्थ की माया है-थैली का लोभ कन्या की बोकाम पर चढ़वा देता है।

तीसरा कारण आलस्य है। जिसके साथ पूरा जीवन बिताना है उस पात्र की तलाश में जितना परिश्रम करना चाहिये उतना नहीं किया जाता। घर बैठे जैसा सम्बन्ध आ गया कर लिया। बहुत हुआ तो पड़ोसी से चर्चा चला दी। उस गांव में जाकर तलाश करने, इधर उधर पूछ तांछ करने, दो चार दिन रहकर स्वभाव परिचय प्राप्त करने आदि का ख्याल ही नहीं किया जाता। विवाह में तो स्त्रियों की सेना सज धज कर पहुंच जाती है। लेकिन सगाई में कन्या देखने आदि के लिये पुरुष ही पहुंचते हैं। अच्छा तो यह था कि वर पक्ष से दो तीन स्त्रियां जातीं और कन्या के घर रहकर उससे पूर्ण परिचित होने की चेष्टा करतीं। और कन्या पक्ष की ओर से दो तीन पुरुष आकर वर के घर रहते और उसके स्वभाव आदि का परिचय प्राप्त करते लेकिन इतनी करे कौन ?

चौथा कारण दुरभिमान है इस के द्वारा भी कभी कभी योग्य सम्बन्ध छूट जाता है। अमुक आदमी हमारी जोड़ का नहीं है, इस लिये हमारा उसका सम्बन्ध नहीं हो सकता। असली सम्बन्ध जिनका है उनकी योग्यता और समानता का कुछ ख्याल ही नहीं किया जाता। लेकिन चार पैसे के अभिमान में चूर होकर—दूसरे को तुच्छ समझकर सन्तान के साथ शत्रु कैसा आचरण किया जाता है। और भी कारण बताये जा सकते हैं इन सबकी जड़ एक ही है, वह यह कि माता पिता के सिर पर अनुचित जिम्मेदारी डालदी जाती है। जिनका विवाह हो, वे तो अपनी जिम्मेदारी का ख्याल ही नहीं रखते। क्योंकि विवाह के समय उनकी उमर बहुत कम रहती है। इस लिये वे कुछ समझते ही नहीं। यदि समझें भी तो अधिकार के मद में चूर माता पिता उनकी एक भी नहीं चलने देते। बात तक तो पूछते नहीं और तो कहना ही क्या है। अब तक यह अन्धेर चलेगा

तब तक विवाह सम्बन्ध निर्दोषित हो ही नहीं सकता है।

२-संगठन ।

जिस प्रकार बाल विवाह वृद्ध विवाह आदि के विषय में लेख, व्याख्यान सुनकर लोग नाक सिकोड़ने लगते हैं, उसी प्रकार अब संगठन शब्द को सुनकर भी यही दशा होने लगी है। क्योंकि जातीय संगठन शेखचिल्ली की कहानी का विषय होगया है। परवार सभा में वर्षों से यही बात आरही है लेकिन सब व्यर्थ ! उसका कोई रूप ही देखने में नहीं आता।

यद्यपि संगठन की आवश्यकता को सभी स्वीकार करते हैं लेकिन उसका प्रयोजन, स्वरूप, और उपाय क्या है ? इसका सन्तोषप्रद उत्तर देते समय लेखनी और मुँह बारबार रुक जाते हैं। हमें अभी यह भी तो नहीं मालूम कि समाज में खराबी क्या है ? एकबार हम से एक प्रतिष्ठिततम श्रीमान् ने कहा था कि "यह तो बताइये कि हममें खराबी क्या है ? उसे हटाकर आप समाज को कैसा बनाना चाहते हैं ?" हमें याद है कि उन्हें हमारे लम्बे चौड़े उत्तर से यथेष्ट सन्तोष नहीं हुआ था। हम समाज की दुर्दशा जानना चाहते हैं। लेकिन दुःख है कि वे बातें पुस्तकों में नहीं लिखी हैं और ज्ञान के लिये दूसरी जगह नजर डालना हमने सीखा ही नहीं।

जब हमें अपनी दुर्दशा का भी सम्यग्ज्ञान न होगा तब हम सुधार करना चाहें तो क्या कर सकते हैं ! समाज की दुर्दशा का सम्यग्ज्ञान अगर हम करना चाहते हैं तो हमें सैकड़ों साधारण व्यक्तियों से मिलना पड़ेगा और बड़ी दिलचस्पी के साथ उनके सुख दुःख की कहानी सुनना पड़ेगी।

जब हम किसी वृद्ध से सुख दुःख की कहानी सुनते हैं तो वह कहता है कि "भैया ! आज कल के लड़के बिलकुल बिगड़गये हैं, मां बाप को तो कुछ समझते नहीं, नई बातों पर इतने रीझ गये हैं कि बाप के हजार मना करने पर भी अपने मनकी ही करते हैं, वे तो यह चाहते हैं कि यह बुड्ढा कब मरे, मुफ्त में बैठा बैठा खाता है। सो भैया ! हमने तो इन्हीं दिनों के लिये उसे पाला पोसा था, लेकिन अब जैसा बदा है सो भोग रहे हैं"

आप किसी वृद्धा से पूछिये तो वह भी गहरी सांस लेकर अपनी कहानी यों आरम्भ करेगीः- "भैया कर्मों की गति क्या कहें ? जिस दिन वह पैदा हुआ था, उस दिन हमें जितनी खुशी हुई थी सो भगवान ही जानता है, बड़े साके से विवाह किया था, लेकिन जिस दिन से बहू ने घर में पैर रक्खा उसी दिन से हमारा सब कुछ लुटगया, वह तो चार ही दिन में भवा (सब की सेठी) बन गई, लड़का बाजार से आता है, वही परोसती है—पानी देती है और दोनों हँसते रहते हैं, हमें भी कभी बहू बनना पड़ा था? लेकिन हमने ऐसा ढीठपन और बेशरमी कभी नहीं दिखायी ! अगर मैं कभी एकाध बात कह देती हूं तो बदले में चार सुनना पड़ती हैं। अभी से काम से जी चुराती है, भला तुम्हीं कहो इस तरह गृहस्थी चलती है ? लेकिन अब हमें क्या करना है चार दिन की जिन्दगी है मर जांयगे तो कौन बांध ले जांयगे, पर क्या करें जब देखते देखते जी भर जाता है तब कुछ कहे बिना नहीं रहा जाता, बहू तो बहू, लड़का भी लड़नी को तैयार सा बैठा रहता है, उस दिन मुँह पर कह दिया कि तुम बैठी बैठी दिन भर बक बक मत किया करो, जितना काम बनता है उतना करती रहती है तुम्हारे लिये कुछ

कोई मरजाय ? बस अपना सा मुँह लिये रह जाती हूं। पहिले ऐसा कौन जानता था कि जिन लल्ला को हम पाल पोस कर आदमी बना रहे हैं वे ही लल्ला एक दिन बिच्छू के डंक सरीखी बातें सुनाएँगे ! सो भैया तुम से क्या कहूँ हमारी तो हम ही जानते हैं कि भगवान, किसी से कहने से क्या फायदा ?" यदि आप में सुनने की ताकत हो तो बिचारी सवेरे से शाम तक अपनी कहानी सुना सकती है।

अगर आप इसी वृद्धा के लड़के से पूछेंगे तो वह भी कहेगा "महाशय, हमारा गार्हस्थ्य जीवन बड़ा खराब होगया है। जिसदिन से वह घर में आई उसी दिन से माता पिता ने हमें जुदा सा समझ लिया—उन्हें मन ही मन यह विश्वास हो गया कि लड़का हाथ से गया। इसलिये वे हमारी निगरानी करते रहते हैं, ज्याद: तो नहीं बोलता है, ज्याद: तो नहीं मिलता है इत्यादि। उसके साथ भी उनका कठोर व्यवहार रहता है। पुत्र बधू के साथ पुत्री के समान व्यवहार करना वे लोग जानते ही नहीं। काम बिगड़ने पर कोमलता से समझाना सीखा ही नहीं। खैर, वे घरमें जो चाहे कहें लेकिन अपनी बधू का सबसे दुखरोना तो उनका आवश्यक कर्तव्य हो गया है, उनके हृदय में यही इच्छा रहती है कि मेरा दुख सुन कर सब लोग सहानुभूति दिखावें। और बधूकी निन्दा करें। "अपनी जांघ उघारिये आपहि मरिये लाज" का उन्हें कुछ ख्याल नहीं है। झूठी निन्दा से उसका भी हृदय दुखी रहता है उसमें भी कुछ कमी है। लेकिन इनकी ज्यादती के आगे उसकी कमी भी पूरी नहीं हो पाती। हमारा तो गार्हस्थ्य जीवन विषमय हो रहा है।"

अगर आप बधू से पूछेंगे तो वह भी ये ही बातें सुना देगी साथ में इतना और कहेगी कि "वे हमारी बात कुछ सुनते ही नहीं, जब देखो तब हमें डांटते रहते हैं, यहां आके हमें कुछ भी सुख नहीं हुआ। गहने के लिये कब से लगी हूं लेकिन एकभी न ला दिया। पचास बार कहा कि जब अपनी नहीं बनती तो अलग हो आओ फिर रूखी सूखी खांयगे सुखसे तो रहेंगे, लेकिन सुनते ही नहीं, क्या करें।" बस ! ज्याद: सुनने की जरूरत नहीं है। इतने में ही हमारे गार्हस्थ्य जीवन का स्पष्ट चित्र खिचजाता है।

अब सामाजिक बातों का भी

रंगीन चित्र नहीं रेखा चित्र ही देख लीजिये—

आप गांव के किसी पंचसे सामाजिक बातों पर विचार कीजिये वह गहरी सांस लेकर कहेगा "भैया ! गांव के पंच ऐसे हैं कि सब बड़ों की हां में हां मिलाते हैं। बड़ा आदमी जो चाहे सो करे उसका कोई विरोध करने वाला नहीं। उस दिन की पंचायत को ही देख लीजिये न, बात कुछ भी नहीं थी, केवल आपसी विरोध वालों ने मिलकर मुखिया जी के कान भर दिये। उनको उसके समझने की स्वयं अक्ल तो है ही नहीं—पुराने आदमी ठहरे, फिर भी सुन समझ सकते थे। लेकिन यह सब न करके किसी का छप्पर किसी के शिर पर रखकर आखिर अनाप शनाप बक ही डाला था—यदि कोई बाहिर का लिखा पढ़ा आदमी मुखिया जी के अनधिकार—ऊँटपटांग फैसले को सुने तो कितना बेवकूफ-बुद्धू बनावे और सारी समाज की भी हँसी उड़ावे। परन्तु वहां के बैठे हुए आदमियों ने उनको ऐसी अनुचित बात न करने के लिये रोका तक तो नहीं, इससे हमारा विचार है कि—

मिल जुलकर पंचों में रहिये।
प्राण जाँय सांची नहि कहिये॥

बहुत सुनकर क्या करेंगे। स्वयं पंच होकर और पंचों के सारे दुर्गुणों के बड़े भारी खजाने बनकर, अपने ही मुखसे पंचों को बुरा बताने वालों की बातें सुनने से, मुँह में कपड़ा भरकर भी आप हँसी रोक सकेंगे यह बात विश्वास योग्य नहीं है, कमसे कम मैं तो विश्वास नहीं करता। सामाजिक दुर्दशा का ज्ञान करने के लिये बहुत समय और अनुभव की जरूरत है। और यहां पर स्थानाभाव है। अस्तु इस पोल पट्टी को फिर कभी विस्तार पूर्वक लिखूंगा।

बड़े बड़े आदमियों के इजहार तो होगये। लेकिन हमने बिचारी विधवाओं को तो छोड़ ही दिया। पंच और गृहस्थाश्रम के इजहारों से हँसते हँसते आपका पेट भर गया होगा। अब इनके रोने की चटनी भी चख लीजिये—हां, पहिले हाथों में कलेजा थामलीजिये, उसकी कहानी शुरु होती है। "पिताने मेरा अच्छे घर में विवाह किया था, भाग्य फूटने के पहिले पतिगृह और पितृगृह दोनों जगह योग्य आदर आदर था, लेकिन बाँह टूटने पर मेरी जो दुर्दशा हुई उससे मरना अच्छा मालूम होता है। पहिले मैं जितना चाहती उतना काम करती थी और जैसा चाहती, खाती थी। लेकिन अब दिनरात काम में जुती रहती हूं और रूखा सूखा भोजन करती हूं। पहिले सबलोग मुझसे धीरे और प्रेमपूर्ण शब्दों में बात करते थे अब बिना डांट फटकार के शब्द ही नहीं निकलता। सबसे ज्यादः काम करती हूं फिर भी लोग कहते हैं कि मुफ्त का खाती है। जितने मिहनत के और ओछे काम हैं वे सब मेरे जिम्मे हैं—सरल और इज्जत के काम सौभाग्य वतियों के। धोती के जबतक चिथड़े न हो जाँय तब तक दूसरी नहीं मिलती, इतने पर भी सुनना पड़ता है कि खसम क्या कमा के रखगया था जो जल्दी जल्दी कपड़े मांगती है। एक दिन तो ऐसी बात सुनने में आई कि दिन रात डर के मारे काँपती रहती हूं और मौत का स्मरण करती रहती हूं। मेरी सास ने कहा कि 'रांड़ अगर ज्यादा करेगी तो झूंठा हल्ला उड़ाकर घरसे निकाल दूंगी'। सोचा था मां के घर रहूंगी, वहां गई भी लेकिन भौजाइयों की आंख का कांटा बनगई, वहां पहिले के समान ननद और बेटी बनकर रहना तो दूर की बात है एक मजदूरिन की भांति रहना भी मुश्किल हुआ।"

दूसरा इजहार भी सुन लीजिये—

"विवाह के बाद मेरे पतिगृह में झगड़ा मचा। जिससे तीनों भाई अलग अलग हो गये। ससुर का घर तीन हिस्सों में बँट गया, दुर्भाग्य से मेरे कोई लड़का न हो पाया और मैं विधवा हो गई। जो कुछ धन पैसा था उनमें से कुछ पंचों ने जीम लिया, कुछ देवरों ने प्रबन्ध करने में हथया लिया, मेरेपास घर के सिवाय और कुछ न बचा। घर तो खाया ही नहीं जाता। दूसरा कोई रोटी का उपाय न था, घर से बाहर कभी निकली नहीं भला बाहर क्या कर सकती थी? पिसाई-कुटाई में आधे पेट भी न मिलता था, देवर तो सदा हँसी उड़ाया करते थे फिर सहायता की बात क्या! एक दिन मैंने अपने देवरों से कहा कि अब हमारा खाने पीने का नहीं चलता इसलिये या तो हमारा घर बिकवा दो या तुम्हीं खरीद लो मुझे रुपये मिल जाँयगे, कुछ उनके ब्याज से कुछ कुटाई-पिसाई से काम चल जायगा। वे जानते थे कि हमारे दस्तखत बिना घर तो यह बेंच ही नहीं सकती और मरने के बाद घर हमारा ही है फिर हमारी बात क्यों सुनते, अब सुबह से शाम तक पसीना बहाती हूं फिर भी भर पेट भोजन नहीं मिलता"

अब एक ही इजहार और शेष रह गया है:—

"जिस दिनसे मेरे स्वामी परलोक सिधारे उसी दिन से मैं सास ससुर की आंखों में कँकड़ी सी गड़ने लगी। उनका कहना है कि मेरे लड़के को तूने खा लिया है अब हम लोगों को खाने बैठी है। कहते हैं कि स्त्रियों का हृदय कोमल होता है लेकिन मेरी समझमें विधाताओं का हृदय विधवाओं को पीसने के लिये चक्की पाटसा होता है। और विधावाओं का हृदय भली बुरी बातों को पानी के समान सहने के लिये तेलिया पत्थर सा। इसलिये मैं सब सहती गई! खैर, कुछ लोगों ने मुझे सलाह दी कि किसी श्राविकाश्रम में भरती हो जा तो सब झगड़ा टूट जायगा निदान ऐसा ही किया। अब मेरे ससुर एक पैसा भी नहीं देते। मुझे ज्यादः जरूरत तो है नहीं सिर्फ रेल टिकिट के दाम या एकाध धोती जोड़ा की जरूरत रहती है सो गांव के पंचों से मांग लेती हूं, शरम तो लगती है लेकिन उपाय क्या है? मुझे अपने ससुर का विचार भी मालूम है जिससे कि वे मुझे खर्च नहीं देते। उनके मन में है कि यदि आज इसे खर्च दिया जायगा तो जन्म भर इसे खर्च देना पड़ेगा? अभी न देनेसे यह कह सकते हैं कि हम कुछ नहीं जानते यह तो हमारे घर से निकल गई है। कुछ लोग नालिश करने के लिये कह रहे हैं लेकिन मुझे इसकी अपेक्षा पंचों के आगे भीख मांगना मंजूर है। जबतक निभती है निभाती हूं, नहीं तो विष की पुड़िया तो मिल ही जायगी। अगर उसके लिये पैसा न होगा तो कुवां तालाब तो बने हैं।"

यह है हमारी समाज का हुबहु चित्र। अगर मैं यह कहूं कि सब जगह ये सभी बातें होती हैं तो ऐसा कहना अतिशयोक्ति होगी। हां, इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी ऐसी दो दो, चार चार बातें सब जगह पायी जाती हैं। यदि ऐसे घर ढूंढ़े जाँय जहां इनमें से एक भी बात न हो तो वे उँगलियों पर गिने जा सकते हैं!

इस रोग की दवाई है संगठन। शरीर के अवयवों में जैसे परस्पर संगठन रहता है उसी प्रकार समाजके व्यक्तियों में भी होना चाहिये। पैर में चोट लगते ही आंख तुरंत देखती है और हाथ उसकी परिचर्या करने लगता है, उसी प्रकार समाज के किसी अंग में चोट आते ही दूसरे अंगों को पूरी सेवा बजाना चाहिये।

अगर घर में यही भाव जगता रहे तो कलहका नाम भी न रहे। माता पिता, और पुत्र, पुत्रवधू, आदि में बहुत ही सहूलियत का बर्ताव होना चाहिये। पुत्र को चाहिये कि वह माता पिता का, और उनकी बातों का सम्मान करे। और माता पिता को चाहिये कि वे अपनी अपनी न हांकते जावें। "प्राप्ते तु षोड़शे वर्षे पुत्रे मित्रमिवा चरेत्" पुत्र जब सोलह वर्ष का हो जाय तब उसके साथ मित्र कैसा व्यवहार करना चाहिये। माताओं को चाहिये कि वधू के साथ पुत्री कैसा व्यवहार करें। यदि एक बार पुत्री से बड़ाभारी काम भी बिगड़ जाय तो उससे कुछ नहीं कहा जाता है। और वधू से जरासा भी काम बिगड़ा कि सारा घर उसके ऊपर टूट पड़ता है। यह व्यवहार अनुचित है और यही कलह की जड़ है। विधवाओं को सिर का बोझ न समझकर पवित्रता की मूर्ति समझना चाहिये। उनके भोजन वस्त्र का पूरा प्रबन्ध करना चाहिये और उनके साथ इतना आदर पूर्ण व्यवहार हो कि वे अपने जीवन को बुरा न समझें। उस बिचारी को तुम्हारी सम्पत्ति का करना ही क्या है? उसे तो पेट भर भोजन और पहिरने को मामूली कपड़े चाहिये। क्या हम इतना नहीं

कर सकते ? यदि स्वार्थ की मर्यादा है तो हम इस कार्य से मुँह नहीं मोड़ सकते ।

सामाजिक बातों में अपनी व्यक्तिगत बातों को जगह न देना चाहिये । कहते हैं पंच-परमेश्वर एकही हैं, इस बात में सत्यता का बड़ा अंश है । दूध का दूध, पानी का पानी कर देने वाली पंचायतों से जाति शीघ्र ही संगठित हो सकती है । मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसे खाने पीने के सिवाय और अनेक बातों की आवश्यकता है । इसलिये वह पशुओं से उच्च है हमें भी उस मनुष्यता की रक्षा करना चाहिये । पश्चिमीय विलास प्रिय देशों में भी लोग शान्ति से, देश जाति और धर्म सम्बन्धी बातों पर विचार करते हैं । सुनते हैं । फिर इस अध्यात्म प्रधान भारत के लोग यदि इस बात में सब से पीछे रहें तो बड़े शर्म की बात होगी ।

इन्हीं दो बातों में संगठन का उपाय, और रूप, दोनों हैं । सिर्फ आवश्यकता है उनको अमल में लाने की ।

जवानो !

किश्ति-ए-क़ौम को ग़रक़ाब[1] न होने देना ।
बेल अनमेल की मत ग़ैर को बोने देना ॥

बुग़्ज़[2] को तर्क करो, मेल करो 'गाढ़ा' से ।
फ़क्त इक चोरे--बदन है न यह खोने देना ॥

रो के बदबख़्त[3] में पथरा गईं इसकी आँखें ।
मादरे-हिन्द को अब और न रोने देना ॥

क़ुव्वते-बाज़ू की इफ़रात[4] करो, मर्द बनो ।
लाज माताओं की बरबाद न होने देना ॥

—भारतीय ।

१ डूबी हुई २ कीना ३ दुर्भाग्य ४ वृद्धि

दीपमालिका

यद्यपि साढ़े चौबीस सौ वर्ष निकल गये फिर भी वह पुण्य दिवस आंखों में झूलता है । भगवान महावीर अपनी दिव्य वाणी से विश्व को पवित्र कर चुके थे । समवशरण विघटित हो चुका था, भगवान ने उपदेश देना बन्द कर दिया था—सभी समझ गये थे कि भगवान का निर्वाण समय समीप आगया है । देव, दानव, नर, तिर्यंच सभी दर्शन के लिये एकत्रित हो रहे थे । आनन्द मनाने की तैयारियां हो रही थीं फिर भी सबके हृदय में एक धुक धुक लगी हुई थी । "जिस सूर्य ने असंख्य प्राणियों को सत्पथ दिखाया वही अब अस्ताचल पर पहुंच चुका है फिर यह प्रकाश कहां मिलेगा" ?

इसी चिन्ता से लोग मन ही मन रोरहे थे । भगवान के प्रधान गौतम को यह चिन्ता पहिले से ही थी इसलिये वे उत्सव में भाग न लेकर आत्म शुद्धि के कार्य में लगे हुए थे । क्यों कि भगवान के बाद उनके कार्यों की सारी जिम्मेदारी उन्हीं के ऊपर थी ।

आखिर वह समय आही गया । भगवान ने मुक्तिधाम में प्रवेश किया । लोग आनन्द मनाने की तैयारियाँ करने लगे । इसी समय खबर मिली कि गौतम को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है । सब लोग क्षण भर के लिये चकित होगये । फिर हर्ष के मारे रोपड़े । पीछे आनन्द से जय जय पुकारने लगे । पश्चात कहा कि "सच्ची आराधना इसे कहते हैं" अगर हम होते तो क्या करते ? शायद सभा जोड़ते, व्याख्यान देते, लच्छेदार शब्दों का प्रस्ताव पास करते, तालियां पीटते और घर चले जाते, बस । इससे ज्यादः और क्या हो सकता था !

लेकिन गौतम को यह पसन्द न आया । उनके विचार ही कुछ दूसरे ढंग के थे । वे

समझते थे कि किसी की पूजा करने और उसके भक्त बनने का मतलब यह है कि मनुष्य उसके बनाये सुपथ पर चले, और पश्चात उसके स्थान की पूर्ति करे। गौतम ने यही कर दिखाया। बस, इसी दृश्य की पवित्र स्मृति हम साढ़े चौबीस सौ वर्ष से करते आरहे हैं।

हम स्मृति करते हैं सही, लेकिन निष्फल, ढोंग से भरी हुई। सच बात तो यह है कि हम स्मृति करना भी भूल गये। फिर उसके अनुसार कार्य करें यह बात तो दूर ही है।

अब यह पवित्र दिन जुआ सरीखे दुर्व्यसन के लिये रिजर्व हो गया है। आज जिस केवलज्ञान और मुक्त लक्ष्मी की पूजा की गई थी उसकी जगह मिट्टी की पूजा होती है। यह हैं हमारे स्मृति करने के ढंग!

हमें चाहिए कि हम वीर की पूजा करें-वीर लक्ष्मी की पूजा करें। लेकिन इसके पहिले हमें कुछ वीर बनना होगा-वीर पूजा करने की योग्यता प्राप्त करनी होगी। कायरों के द्वारा किसी वीर की पूजा होना उसका अपमानित होना है।

आओ! देखें! किसे? भगवान महावीर को नहीं, अपने को, अगर हम अपने को देख सके तो हम वीर बनने की पूरी चेष्टा करेंगे या लज्जा से डूब मरेंगे। लेकिन यह बेशरम मुँह दुनियाँ को न दिखायेंगे।

भगवान महावीर, विश्व पिता थे। परम पिता थे। वे जितनी सम्पत्ति छोड़कर मोक्ष गये थे उसका बढ़ाना तो दूर, क्या हम उसकी रक्षा भी कर सके हैं? और सब जाने दो हमने उनका नाम भी डुबा दिया! वे विश्व पिता थे, यह बात कहते अब हम स्वयं लज्जित होते हैं। महात्मा ईसा के जीवन कालमें उनके अनुयायी इने गिने थे। लेकिन आज सारे संसार में उनके नाम की तूती बोल रही है। महात्मा बुद्ध भगवान महावीर के समकालीन थे। भगवान महावीर की महत्ता की छाप महात्मा बुद्ध के हृदय पर लग चुकी थी। लेकिन आज भगवान महावीर का नाम लेने वाले अँगुलियों पर गिने जा सकते हैं। जब कि महात्मा बुद्ध के नाम पर सिर झुकाने वाले लगभग पचास करोड़ हैं।

आखिर हम ठहरे बेशरमों के पिटारे, यह सुनते ही तुरन्त दांत निकालकर कहने लगते हैं कि "रत्न परीक्षा करने वाले थोड़े ही होते हैं" लेकिन जौहरी बनने की शेखी मारने वाले हम, ग्राहकों से बदतर और मूर्ख साबित होते हैं। जब कि बाजार में असली हीरे को कांच से अच्छा साबित नहीं कर पाते। फिर भी हम जौहरी बनने का दावा करते हैं। हायरे दुरभिमान! इतना ही नहीं जो बचे खुचे हैं उनके भी तीन टूक हो गये। मैं दिगम्बर, तू श्वेताम्बर, ढूंढ़िया, बस! ढूंढ़ डालो एकता का रसातल तक पता नहीं है। एक दूसरे को पीस डालेंगे, ईर्षा करेंगे, हर तरह लड़ेंगे—क्योंकि हम वीर के अनुयायी हैं। आपस में लड़कर वीरता दिखायेंगे। इसके लिये हम रेहाथ चलते हैं-मुँह कुल बुलाना के। तिजोड़ी उछलती हैं। तुम भाई होतो क्या हुआ? हो तो दिगम्बर (नग्न) तुम्हें धर्म स्थानों की कौड़ी भी रखने का अधिकार नहीं है। हाई कोर्ट और प्रिवि कौंसिल में जैन धर्म का डंका बजानेवाले हमीं हैं।

भगवान महावीर! यह अच्छा हुआ कि आप वीतराग और अशरीरी होगये। अन्यथा अपने सपूतों? की करतूतें देख कर आप की आंखों से विपदगंगा का प्रवाह छूट पड़ता। और इस प्रवाह में हम सरीखे सपूत (?) यों ही बह जाते। देव! हम बाहते हैं

कि तुम्हारा स्मरण करें और दिवाली मनावें। लेकिन हम अपात्र हैं—हमारे द्वारा दिवाली मनाने से आपकी हँसी ही होती है। हमने आप की सब पूंजी लुटादी। अब दरदर भीख मांगते हैं। आपका नाम विश्व की विभूति था। लेकिन हमने उसे एक बटुआ में बन्द कर दिया। हाय! इस तरह हम आपके नाम को भी ले डूबे।

न हम में वह उदारता है, न वह त्याग, और न अब हमारे मुख से विश्व संगीत निकलता है। हमारे बाप दादों ने जो पानी भर कर रख दिया था। अब वह सड़गया है। लेकिन हम वही पीते हैं। न पियें तो क्या करें? हममें इतनी ताकत कहां कि नया पानी भर लावें। इसलिये हम इसी तरह आत्म-हत्या करते हैं, हम आत्म-हत्या न करें तो क्या करें! जीना तो जानते ही नहीं। क्यों कि जीना वही जानता है जो मरना जानता है। हम मरने से बहुत डरते है। यद्यपि मरते सबसे जल्दी हैं।

भगवन्! जब कि संसार के मतमत ान्तर एक ईश्वर के आगे भी अनन्त जीवात्माओं की सत्ता नहीं के बराबर कर रहे थे। और आत्मा को मजहबी गुलामी का पाठ पढ़ा रहे थे उसी समय आपने आत्म-स्वातन्त्र का शंख फूंका था और

"युक्तिमद्वचनम् यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।"

का पाठ पढ़ाया था किन्तु हम सब भूल गये। रूढ़ियों के जाल में ऐसे फँसे कि निकलना असम्भव होगया। इतनाही नहीं हमने उन्हें आपका उपदेश समझाया और छाती से लगाया। अन्तर्यामिन्! आपसे अपनी दुर्दशा का हाल कहना आपका अपमान करना है। क्योंकि आप सब जानते हैं। इसलिये कहने की जरूरत नहीं है। फिर भी अपने दिल की तसल्ली के लिये कहना ही पड़ा है।

प्रभो! जिस घर के इने गिने आदमी छोड़ कर और सब मृत्युमुख में चले गये हों। बचे हुए आपस में लड़ने लगे हों, धर्म के नामपर सत्य का खून करते हों-रूढ़ियों की गुलामी करने में अपना महत्व समझते हों, उस घर में दीपोत्सव मनाना क्या जले पर नमक छिड़कना नहीं है? जिस शरीर के अंग आपस में बैर करने लगे हों-मुंह हाथों को काटने लगा हो। हाथ, पेट और पैरों की मुक्कों से खबर लेता हो उस शरीर का श्रृंगार कैसा?

भगवन्! हम दीपावली का उत्सव करना चाहते हैं। लेकिन उसके लिये हमें बल चाहिये, सबुद्धि चाहिये सच्चरित्रता चाहिये, हम अपनी कायरता को क्षमा के भीतर न छिपा कर दूर हटा दें, विचारशीलता को फूट की जड़ न समझें, धर्म के मर्म पर ध्यान दें, धीर, वीर, उदार और सहिष्णु बनें, जिस छुरी से सत्य का खून करते हैं वह छुरी फेंकदें। कीड़े की रक्षा करने के साथ ही साथ मनुष्य और अबलाओं की रक्षा करना सीखें, मन्दिरों का द्रव्य न हड़पकर बाहुबल से धन उपार्जित करें। जिससे हमारी आत्मा शुद्ध हो और और उसी शुद्ध हृदय से आपका स्मरण करके दीपमालिका के प्रकाश में तम और तामसिक वृत्ति का नाम शेष करदें।

विषमता।

देता एक प्राण औरों पर,
एक प्राण हर लेता है।
हँसता एक दुखित जीवों पर,
एक देख रो देता है॥
डरता एक दुराचारों से,
एक उसी में डूबा है।
भूला एक विश्व माया में,
एक उसी से ऊबा है॥ १॥

खोज रहा है एक सुखों को,
  एक उन्हीं से डरता है।
एक नहीं है तुष्ट भवन में,
  वन में एक विचरता है॥
मरता एक प्रगट होने को,
  एक जगत् से छिपता है।
एक अलङ्कारों से पूरित,
  एक दिगम्बर फिरता है॥२॥
एक अखण्ड ब्रह्मचारी है,
  एक काम में मतवाला।
एक सुखी अज्ञान-तिमिर में,
  एक दिव्य ज्ञानोंवाला॥
एक सदा संयम से रहता,
  एक नशे में निशिदिन चूर।
कायर है डरपोक एक तो,
  एक सिंहवत निर्भय शूर॥३॥
देख एक को हृदय सभी का,
  नवल कमल सा खिलता है॥
खिला हृदय भी कुम्हला जाता,
  एक कभी जब मिलता है॥
एक सरल गम्भीर हृदय है,
  एक बक ओछे दिल का।
रहता एक प्रफुल्ल वदन है,
  और एक रोते दिल का॥४॥
एक दया का सागर है तो,
  एक छुरी निर्दयता की।
एक भयङ्कर रौद्र-रूप है,
  एक मूर्ति निर्भयता की॥
कहें कहाँ तक विश्व मात्र में,
  भारी भरी विषमता है।
हे समदर्शी! हे विश्वम्भर!
  कहाँ छिपायी समता है!॥५॥

—सूर्यभानु त्रिपाठी 'विशारद'।

जैन जाति की संख्या का ह्रास

(लेखक—श्रीयुत राजकुमार जी—[illegible])

असूयकत्वं शठताऽविचारो
  दुराग्रहस्तत्व विमानना च।
पुंसां ममी पंच भवन्ति दोषा
  स्तत्त्वावबोध प्रतिबंधनाय॥

ईर्षा करना, मूर्खता, विचार का न करना; बुरा हट धारण करना और तत्व को न मानना ये पांच दोष पुरुषों को तत्वों का ज्ञान होने में बाधा देते है। अर्थात् वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं होने देते हैं।

सन् १९२० की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट देखने से पता लगता है कि हमारी संख्या फिर घट गई है परन्तु फिर भी न तो हमारे समाज के कर्णधारों ने इस पर लक्ष्य दिया है, न हमारी सभा सोसायटी ने कोई आन्दोलन या प्रयत्न किया है। यदि इसी तरह हम आलस्य में पड़े रहें और ईर्षामें उलझे रहें तो मेरी समझ में नहीं आता कि जैन समाज का भविष्य क्या होगा? पाठक गण स्वयं ही सोचने का कष्ट करें—बिना किसी कारण के कार्य नहीं होता है। अतः इस समाज का जो शीघ्रता से ह्रास हो रहा है उसका कारण स्वास्थ्य रक्षा की अभाव मानता है। स्वास्थ्य रक्षा के न होने से ही हमारी समाज में जन्म की अपेक्षा मृत्यु संख्या अधिकता से बढ़ रही है—हमारे समाज में घोर अंधकार फैला हुआ है। आप गावों पर या शहरों पर दृष्टि डालिये तो आप को पता लगेगा कि हमारे सर्वज्ञ वीर प्रभू के उपासक श्रावक् लोग किस हीन दीन दशा में हैं कि, उनको पेट की चिन्ता से इतना भी समय नहीं मिलता कि वह अपने प्यारे बच्चों की शिक्षा पर ध्यान दें! वह बिचारे स्वयं पढ़े हुए नहीं, इसी से उन्हीं के अनुरूप उनकी संतानें बनती हुई चली आरही

हैं, कुसंगति में पड़कर कितने ही तो दुराचार के कीचड़ में फँसकर असमय में ही सदा के लिये काल के गाल में चले जाते हैं। और कितने ही असंयम से रहकर बीमारियों को अपने शरीर में स्थान दे देते हैं-कि जिससे फिर संतान की संपदा से वंचित रहते हैं-धनिकों के लड़के लाड़ले होते हैं और यह अंध लाड़ले धनमद से इतने अनर्थ करते हैं कि अल्पावस्था में ही संसार से कूच कर जाते हैं। और माता पिता हाय २ करके प्राणों को छोड़ देते हैं। इसीलिये धनिक सेठों के सामने गोद का सवाल खड़ा रहता है। गांवकी अपेक्षा शहरों की अवस्था और भी जादा शोचनीय हैं। क्योंकि गावों की अपेक्षा शहरों में पाप करने के साधन बहुत रहते हैं। गरीबों पर समाज की उपेक्षा रहने से वे नवयुवक कुसंगति में पड़कर नष्ट होते हैं और धनिकों के लड़के छैल बनकर नष्ट होते हैं। यदि भाग्य से किसी धनिक ने हम; मर, जर, से जादा पढ़ाया तो सूत्र या भक्तामर, पूजन या पाठ बस हो चुकी शिक्षा! यदि स्कूल कॉलेज में दाखिल हुए तो वहां से आकर विरले ही सदाचारी धार्मिक निकलते हैं। इस प्रकार नैतिक-धार्मिक शिक्षा के अभाव से हमारी क्षति हो रही है। हमारे समाज के मुखियाओं को इसका विचार भी नहीं है कि हमारा क्षय क्यों हो रहा है!

क्षय का कारण हमारे समाज में अनेक नवयुवक आजन्म अविवाहित ही रहते हैं उनकी इच्छा रहते हुए भी अर्थाभाव से विवाह नहीं होता है—और समाज के नाम धारी धनिक समाज को अनुचित दवाव खुशामदादि से विवाह करके दो २ स्त्री रखते हैं। ५० । ५५ वर्ष की अवस्था में भी दो दो हजार चार २ हजार में कन्याओं को खरीद लाते हैं। ऐसे घोर नाटकी विवाह में समाज वाले वांह चढ़ाकर अभक्ष भक्षण करने में अपने को धन्य समझते हैं!

जैन जाति के क्षय का कारण जैन समाज में पृथक २ जातियां भी हैं। कई जातियों में अल्प संख्यक घर रह गये हैं जिनमें गोत्र टालकर वर का मिलना असम्भव सा हो रहा है। ऐसी अवस्था में अनेक पुरुष अविवाहित ही अपना जीवन समाप्त करते हैं-और जाति के मुखिया भाई बिलकुल बे खबर हो रहे हैं!

जैन जाति के क्षय का कारण बालविवाह भी है। क्योंकि बालविवाह के होने से कच्ची उमर में कच्चा वीर्य नष्ट होता है। इसी कारण हमारी समाज में संतानों का अभाव हो रहा है। यदि संतान होती भी है तो अल्प समय में काल के गाल चली जाती है। यदि जीवित भी रहती है तो निर्बल निर्बुद्धि-निस्तेज-आलसी-रोगी-दुर्व्यसनी दृष्टिगोचर हो रही है। यह अनर्थ तेजी के साथ हमारे समाज में फैला हुआ है!

जैन जाति के क्षय का कारण वृद्ध विवाह भी है। धन के दास हमारी जातिके कर्णधारोंके फुसलाने से-भरपूर रुपयेका लोभ दिखलाने से वे धन लोलुप अन्धे मनुष्य अपनी प्यारी कन्याओं को उन पुरुषार्थ हीन नपुंसक वृद्धों के गले बांध कर चैन की वंशी बजाते हैं। और उस निर्बोध कन्या को सदा के लिये घोर नर्क में डाल देते हैं-वृद्ध महाशय तो अल्प समयमें ही नर्क सिधार जाते हैं। पीछे वही दुखनी बाला समाज के ही दुष्टों द्वारा दोनों कुलों को कलंकित कर डालती हैं।

सज्जनों यदि संसार में अपना अस्तित्व बनाये रखना है। तो अब इस बेहोशीको-निद्राको विदा करो और आखें खोलकर देखो कि संसार में क्या हो रहा है और आप कहां हो—इसलिये आप से जितनी जल्दी हो सके अपनी संख्या वृद्धि का उपाय करो। बालविवाह, वृद्धविवाह,

अविद्या का शीघ्र से शीघ्र नाश करने में जुट पड़ो—और जिस तरह बन सके समाज में संघ-आदि गुणों सद्भावों सद्गुणों का प्रचार करो। और स्वास्थ्य रक्षा पर पूर्णलक्ष्य रखो, विवाह सम्बन्ध की संकीर्णता को दूर करके शीघ्रता से इन प्रश्नों पर विचार करके अपने उदार हृदयका परिचय दो। ताकि जैन समाज का भविष्य आशा प्रद हो। यदि निद्रा में ही समय निकाल दिया तो फिर पश्चात्ताप के सिवाय और क्या होगा।

जरा, अमेरिका, इङ्गलेंड, फ्रांस, जापान, जर्मनी पर दृष्टि डालो। इनकी सामाजिक उन्नति कैसे हुई! इनकी सामाजिक उन्नति के कारण क्या हैं? यह सामाजिक उन्नति करनेमें कितना द्रव्य व्यय कर रहे हैं?

यदि वहां दृष्टि न पहुचें तो अपने भारतवर्ष की ही जातियों परही दृष्टि डालो। और विचारो कि अल्प संख्यक पारसी, गुजराती, बंगाली कैसे अपने समाज की उन्नति में जुटे हुए है! सिक्ख जाति किस तरह अपने सामाजिक संगठन द्वारा अपने प्राण प्रिय धर्म की रक्षा कर रहे हैं—मुसल्मान भाई किस तरह अपनी सामाजिक उन्नति में जुटे हुए है और आप क्या कर रहे हैं? गाढ़ निद्रामें मग्न होरहे हैं! बस अब सोचने विचारने का वक्त नहीं है—वक्त है काम करने का। शीघ्रता करो-और अपनी स्थिति को सम्हालने लग जाओ। आप का तेज और बल सब नष्ट हो चुका है। सोनागिर जी में आप की पूज्य मूर्तियां तक तोड़ डाली गईं और आप कुछ न कर सके। यदि आप में तेज और बल होता तो कोई भी आप की मूर्तियों से हाथ न लगाता। बस, सावधान होकर अपनी संख्या वृद्धि पर दृष्टि डालो। अन्यथा अस्तित्व लोप होने में कुछ बकाया नहीं है।

परवार समज के कुछ दृश्य

ग्राम अर्न पुरा, रहली से ११ मील पूर्व दक्षिण दिशा में स्थित है। वहांपर परवार बहू सेठानी नाम की एक परवार-विधवा थी, मई सन् १९२३ की बात है। एकदिन संध्या को एक अनजान दुबली पतली सी स्त्री आई और रात्रि के लिये उनके निकट विश्राम चाहा। कुछ ऐसी पहिचान निकाली व प्रतीति फैलाई कि उक्त सेठानी जी ने उसे अपने पास रात्रि को सुलाया, तथा बिछाने के लिये कपड़े दिये. यद्यपि सेठानी जी शरीर से हृष्ट पुष्ट तथा सबल थीं। फिर भी उनके बदन के जेवर ने उस आगंतुका पर अपना जादू डाला और उसने सेठानी जी के सो जाने पर सदैव के लिये उन्हें सुलादेने का प्रयत्न शुरू किया। उसके हाथ पैर उन्हीं की घर की रस्सी से मजबूत बांध दिये। चिल्ला न सकें इसका भी प्रबन्ध करदिया। व उनकी छाती पर सवार होकर उनके बहुत कुछ हाथा पाई करते हुए भी काम तमाम करके व बदन का जेवर लेकर चलती हुई।

सच है जो होनहार थी सो होकर रही। लेकिन जालिम की जिन्दगी थोड़ी हुआ करती है। बहुत सबेरे सेठानी जी की कोई सम्बन्धिनी उनसे मिलने को आई। एक किवाड़ खुला था जब पुकारने में किसी ने आवाज न दी तो अंदर पैर रखा कि वहां का दृश्य देख कर होश गुम हुए। उसी वक्त सारी बस्ती में खबर फैली व जहां तहां तलाश होने लगी। आगंतुका को ठहरते हुए और भी लोगों ने देखा था। पता लगाया गया वह पास के अन्य ग्राम में मय समान के पकड़ ली गई। हाल में उस को फांसी दी गई है। इस तरह पर थोड़े से जेवर के पीछे दो अभागिनियों को जान खोना पड़ी। क्या हमारी बहिनें ऊपर की

सभी वार्ता से तनिक भी शिक्षा ग्रहण करेंगी! आशा तो नहीं है। किंतु फिर भी हम अपने सावधान करदेने के कर्तव्य को पूरा करते हैं। विशेष परिचय सेठानी जी का यों बतलाते हैं कि आप सवाई सिंगई नारायणदास जी जबलपुर तथा स० सिं० लालचंद जी गौरझामर वालों की सरहज होती थी। तथा आपको एक और मन्द् जी दमोह के सेठ हजारीलाल जी को ब्याहीं थीं। किंवदंती है कि एक समय आप बहुत ज्यादा बीमार होगईं थीं। उस वक्त आप किसी गुनिया को अच्छा करदेने के उपलक्ष्य में ५०) देना चाहती थीं। तब किसी मास्टर ने आपको स्थानीय मंदिर जी को, सिर्फ २५) ही देनेपर अच्छा करने को कहा। मास्टर ने अच्छा तो किया, लेकिन सेठानी जी द्रव्य के लोभ को दूर न कर सकीं और शायद रुप्या मंदिर जी का पूरा न पट सका। आखिर को अब उस द्रव्य के भोगने वाले दूसरे ही हुए। इस से क्या हमारे श्रीमान भाई कुछ भी शिक्षा ग्रहण करेंगे। कारण जहां पर दान व भोग का अभाव होगा वहां द्रव्य की सिवाय नाश के, कम से कम जहां तक उस का संबंध इस जीव से है दूसरी गति हो ही क्या सकी है।

× × × ×

चंद महिनों के भीतर ही रहली तहसील में दो परवार विधवाओं ने जिनके पूर्व पतियों की संतान थी पुन: जाति के दो कुंआरों से संबंध करके दृढ़ता का परिचय दिया है—दृढ़ता इसलिये कहना पड़ता है कि लेखक को एक से बातचीत करने का मौका आया था। और लेखक के यह पूंछने पर कि उसने अपने वैधव्य को क्यों नहीं निभाया? उत्तर मिला कि यदि आश्रय लेती तो अवश्य ही चमार आदि उसको बलात्कार छेड़ते। हुआ भी ऐसा ही है याने अन्य दो वैवाओं के साथ एक कुरमी एक गोंड़ ने बलात्कार का उद्योग किया जिससे उन्हें वे परवा भागकर अपने शील की रक्षा करनी पड़ी थी। क्या समाज सोचने का या बतलाने का कष्ट उठावेगी कि आगामी इन वारदातों के रोकने का वह क्या उपाय विचारती है?

दोनों ही अभागनियें जीविका के निमित्त बाहर निकली थी। आश्चर्य नहोगा यदि उल्टे इन्हीं को समाज दंडित करें! कारण अपवाद तो उनका अवश्य ही हुआ। चाहे वे पूर्णतः निर्दोष भलेही होवें? विधवाओं का प्रश्न बहुत ही ज्यादा जटिल हो रहा है! समझदार की हर हालतमें आफत है। अन्य दो वेवाओं के घर ही में संतान हुई एक के पूर्व पतिसे संताने थीं दोनों देवर जेठोंकी कृपा भाजन सुनी जाती हैं। शायद कोई स्थान हो जहां पर इनका उत्पात न हो। जिस पर बीतती है। वेचारा सिर नीचा करके सब कुछ सह लेता है। दूसरा उपाय ही नहीं। इसी से भी लोग जी तोड़ प्रयत्न करते हैं कि ऊपर उतराने भर न पावे। और दवा लेने पर कानां फूंसी करने वालों पर खासा ताव दिखाते हैं। बाल विधवाओं का होना अभाग्य-वश बंद ही नहीं होता। हो कहां से? पुरुष मात्र इतने विषयांध होगये। विशेषकर नई उमर में। तभी तो उसे गधा पचीसी की उपाधि है; होते हैं कि जल्दी २ उनका दिवाला निकल कर वे नवीन विधवाओं के जन्म देनेका भगीरथ श्रेय प्राप्त करते हैं। वर्षों दिनों आदि में करते हैं वह तो थैली में रखी हुई रकम के मानिंद है। चतुराई से चलोगे पूंजी ज्यादा दिन चुरेगी। नहीं, जल्दी पूर्ण हो जावेगी। इसीलिये संयम पूर्वक जीवन व्यतीत करने की नितांत आवश्यका है क्या समाज इस कठिन समस्या को हाथ में न लेवेगी! व कब तक?

—समाज सेवी।

सागर-निवासी ज्योतिषी मिश्र-बन्धु
और
उनके द्वारा महात्मा गांधी का फलादेश।

मध्यप्रान्त का सागर जिला ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा प्रख्यात शहर है। यहां पर प्राचीन काल के गोंड़ राजाओं के बनवाये तालाब और किले हैं। प्राचीन राजधानी होने के कारण और मेन रेल्वे लाइन से एक तरफ होने के कारण यहां पर अब भी प्राचीन धार्मिक

साम्हने बैठाकर लिये गये चित्र।

[पं० गनपतप्रसाद् मिश्र।] [पं० गयाप्रसाद मिश्र।]

रीति रिवाज़ प्रचलित हैं। श्रद्धालु भक्तों द्वारा बनाये गये मंदिरों की यहां बाहुल्यता है।

शहर में और उसकी तहसीलों में शिक्षा का प्रचार विशेष है। कुछ समय पहिले पेशवाओं के ज़माने में यहां अनेकानेक संस्कृत भाषा के दिग्गज विद्वान् पंडित हो गये हैं। कुछ अभी भी हैं जो शहर की प्रतिष्ठा बढ़ा रहे हैं। आधुनिक शिक्षा का प्रचार भी यहां ज्यादा है। परन्तु बहुधा अच्छे २ प्रतिष्ठित सज्जन व्यवसाय के कारण बाहर ही हैं। हमारे चरित्र-नायक ज्योतिषी मिश्र-बंधु इसी शहर के रहवासी हैं।

सागर में मिश्रों का घराना बड़ा प्रख्यात रहा है। मिश्र बंधुओं के पिता और प्रपितामह बड़े धुरंधर पंडित और अनुष्ठानी शाक्त हो गये हैं। प्रपितमह स्वर्गवासी पं० शिव प्रसाद् मिश्र तो उस ज़माने के सूबेदार घरानों के अच्छे प्रतिष्ठा प्राप्त अनुष्ठानी पंडित थे। इनके सुपुत्रों के नाम थे:—देवीप्रसाद और हरिप्रसाद। पं० देवीप्रसाद ही हमारे चरित्र

नायकों के पिता थे। ज्योतिषी मिश्र-बंधु सब मिल कर छै भाई थे। जिनके नाम क्रमानुसार ये हैं:—पं० बालमुकुन्द, पं० केदार नाथ, पं० अयोध्याप्रसाद, पं० गनपतप्रसाद, पं०गयाप्रसाद और पं० जमनाप्रसाद ज्योतिषी। मिश्र-बंधु गनपतप्रसाद और गयाप्रसाद को छोड़कर शेष सब भाई स्वर्गवासी हो गये हैं। अपने छोटे भाइयों के सदृश्य बड़े भाई पं० बालमुकुन्द मिश्र और केदारनाथ भी पूरे कर्मकाण्डी पंडित और ज्योतिषी थे। अयोध्या-प्रसाद अध्यापक थे और छोटे जमनाप्रसादजी कृष्ण-भक्त, साधु और बाल ब्रह्मचारी थे।

इन्हीं ज्योतिषी मिश्र बंधु पं० गनपत प्रसाद और पं० गयाप्रसाद ने दो वर्ष हुए बड़े परिश्रम से प्रातः स्मरणीय महात्मा गांधीजी की जन्म-कुंडली प्राप्त कर उसको अनेका-नेक दृष्टियों से मनन किया था। और भविष्य फल निकाल कर बाम्बे क्रानिकल में महात्मा जी के कारागार से मुक्त होने का समचार छपवाया था।

ठीक उसी समय के १०, १२ रोज बाद महात्माजी कारागार से बाहर पधारे थे। इस अंतर के लिये आप का कथन है कि जिस दशा और अंतर दशा में उनका मुक्त होना बताया गया था ठीक उसी दशा में उनके संबन्ध की कारवाई हो चुकी होगी। दूसरे दिन-मान के कारण भी थोड़ा अंतर पड़ जाना संभव है।

जो हो यह बात सच है कि आप के भविष्य फल से आप दोनों बंधुओं की ख्याति बहुत हो गई है। आप लोगों के पास बहुत दूर २ के बड़े २ विद्वानों के पत्र महात्माजी के संबन्ध की अन्य बातें जानने के लिये आते रहते हैं। साथ ही ग्रह फल जानने के लिये कोई कोई कुंडली भी भेजा करते हैं। एक बार भूल से लेखक के पास भी काश्मीर के कोई एडवोकेट जज साहिब का जवाबी पत्र महात्मा जी की जन्म-कुंडली के बाबत आ गया था। परंतु खेद है, कि वृद्धापकाल की शिथिलता के कारण अनेकों पत्र बिना उत्तर दिये ही पड़े रहते हैं। और इस प्रकार जिज्ञासुओं को निराश होना पड़ता है!

ज्येष्ठ भ्राता पं० गनपतप्रसाद के हाथ कांपते हैं, इस से वे तो काम कर ही नहीं सके। पर लघु भ्राता भी वृद्ध होने के कारण पूरे २ पत्रोत्तर नहीं भेज सके। ऐसी स्थिति भी नहीं है, कि क्लर्क रखकर काम करा सकें। गुण की कदर करते सब हैं पर शाब्दिक। ऐसे सहानुभूति बताने वाले नहीं देखे जाते जो विद्वानों को बुढ़ापे में उनके अनुकूल सुविधा देकर उनके द्वारा लोक कल्याण करावें।

पत्रों को वैसे पड़े देख कर और जिज्ञासुओं की निराशा की कल्पना कर लेखक ने ज्योतिष द्वारा महात्माजी के संबन्ध के सब चक्र और फल तथा आगामी भविष्य फल की नकलें प्राप्त की हैं। और वे सर्व साधारण के अवलोक-नार्थ छापी जाती हैं। लेखक स्वयं ज्योतिष का क ख भी नहीं जानता। इससे इस संबन्ध में जो कोई कुछ विशेष बातें पूछना चाहें तो वह ज्योतिषी मिश्र बंधुओं से खुशीपुरा, सागर के पते पर पत्र भेजकर पूंछ सकते हैं। पर शीघ्र उत्तर न आने पर निराश न हो जावें। कार्य बाहुलयता के कारण और वयोवृद्धता के कारण प्रश्नोत्तर शीघ्र प्राप्त न हो सकेगा।

॥ श्री ॥

महात्मा गांधी जी का जन्म-कुंडली चक्र।

संवत् १६२६ आश्विन कृष्ण १२ रविवार। ४५।२६ पूर्वा फाल्गुनी ५५।१० प्रथमचरणे ३।१५ ४० कन्यार्क गतांशः १६।

(सन् १८६९ अक्टूबर ता० २ का जन्म है)

जन्म लग्नम्।

ग्रह फल

१२ वें सूर्य—२८ वर्ष में धन नाश हो जावे। शरीर में तेज़ न हो। कमजोर हो। कैद भोग करें।

११ वें चंद्र—२० वर्ष में राजा या अधिकारी प्रतिष्ठा करें। नाम-प्रताप और यश बढ़े। गुण वान हो। सदा खुश रहें। लड़के हों। नेक काम करें।

१० वें राहु—२६वर्ष में नीच आदमियों का साथ रहे। अपवित्र रहें। पतित हो जावें। दूसरे के दीन से मेल करें। मुसलमान से काम हो। धन हीन हो जावें।

७ वें बृहस्पति—२४ वर्ष में शास्त्र पढ़ने का अभ्यास करें। श्लोक कविता आदि बनावें। पंडित हो। अच्छी राह चले। राजा का मित्र हो। स्त्री सुन्दर, पढ़ी, ज्ञानी और धर्मवान हो। उससे सुख मिले। दयालु और बुद्धिमान हो। शत्रु का भय रहे। सब पर नेक नज़र रक्खे। बड़ी उमर हो।

४ थे केतु—ऐसी बात कहें जिससे चिन्ता में रहें। हलकी जात के लोगों का संग पसंद हो। माता को सुख न हो। बाप का धन खर्च करे। घर में न रहें।

२ रे शनी—धन नाश हो। दूसरों के घर रहें। परदेश में बढ़ती हो। जो काम करने योग्य न हो वह भी कर डालें। उत्तम भोजन करें।

१ ले मंगल—५० वर्ष में हानि हो। दिल में चिन्ता रहे। अधिकारियों का भय हो। शस्त्र का भय हो। अच्छे काम बहुत करें।

१ ले बुध—१० वर्ष शुभ हों छोटा डील हो। लिखने पढ़ने में अति चतुर हो। विद्यावान और मिष्ठ भाषी हो। सरल स्वभाव। दाता, सुकर्मी और भाग्यवान। कोई उसका शत्रु न हो। लोक प्रिय हो। हरी वस्तु से प्रेम हो।

१ ले शुक्र १७ वर्ष में धन और स्त्री प्राप्त हो। रती की इच्छा हो। सब कामों में होशयार हो। राज सन्मान करें। हर काम में मुस्तैद (तत्पर)। पुण्यात्मा। गेंहुवा रंग। काले बाल। उमदा नेत्र हों।

योग फल।

१ राज योग—जो केन्द्र में बृहस्पति या चंद्र को शुक्र देखता हो तो राजा हो।

२ राज योग—जो सूर्य से दूसरे बुध और शुक्र हों और शत्रु गृह न देखते हों तो अकंटक राजा हो।

३ राज योग—जो बुध को बृहस्पति पूर्ण दृष्टि से देखते हों तो शत्रु जित राजा हो। और यदि राहु उपचय का मूल त्रिकोण का हो तो चक्रवर्ती राजा या तपस्वी हो।

४ तपस्वी योग—लग्नेश शनि को न देखता हो और शनि लग्नेश को न देखता हो तो तपस्वी हो और सैकड़ों चेला हों।

५ प्रलय योग—लग्न सातवें और दसवें घर में गृह हों तो धनी, बलवान हो। सर्व सिद्ध हो। राजा के समान रहे।

६ रज्जावल योग—नवें घर का स्वामी अपने या मित्र के घर में हो तो उसके साथ बहुत लोग रहें। राजा के समान हो।

७ मुका बल योग—चौथे और ग्यारहवें घर में गृह हो तो कानून जानें। मुंसिफ जज या वकील हो। या अन्य न्याय कर्ता हो। धर्मवान हो। ब्राह्मण और गुरु को मानें।

८ योगी योग—लग्न का स्वामी और ९ घर का स्वामी लग्न में पड़े और शुभ गृह देखते हों तो परदेश जावें। विजय पावें। संतोषी हो।

९ वज्र योग—लग्न में और ७ वें शुभ गृह हों और ४ थे १० वें पाप गृह हों तो सुखी, शूर तथा आदि अंत में सुखी हो।

१० कमल योग—चन्द्र से ग्यारहवें घरका स्वामी शुक्र के साथ हो तो धर्मात्मा सुखी, सुयशी, अप्रसोची, विचारी, आनन्दित तथा राजा का सलाहगीर हो।

११ पद्म योग—पाप और शुभ गृह केन्द्र में पड़े तो बहुत दिन जीवे। नाम करे (नामांकित हो) राजा के साथ रहे।

१२ उभयचारी योग—सूर्य के आगे पीछे गृह हों तो स्थिर स्वाभाव हो। समाज का स्वामी (नेता) तथा विद्वान् हो। सब के काम को मन से करें।

१३ कारागार योग—दूसरे और बारहवें पाप गृह हों तो कारागार भोग करें।

१४ स्त्री वियोग योग—आठवें घर का स्वामी पाप गृह के साथ नवें घर को देखें तो स्त्री वियोग हो।

दृष्टि फल।

—सिंह राशि के चन्द्र को बृहस्पति देखते हों तो वेद पाठी, जितेन्द्रिय, ब्रह्म ज्ञानी हो।

—तुलाराशि के मंगल को गुरु देखते हों तो अपने कुल में श्रेष्ठ तथा जितेन्द्रिय हो।

—११ वें सिंह लग्न हो तो बंधन तथा अन्य देश के आश्रय से लाभ हो।

—सिंह राशि के चन्द्र को शनि देखता हो तो स्त्री का वियोग, निडर, खेती के काम का शौकीन हो।

—तुला राशि के मंगल पर गुरु की दृष्टि हो तो अपने कुल में श्रेष्ठ भाग्यवान तथा जितेन्द्रिय हो।

आशा है पाठक—खास कर ज्योतिषी गण—इन चक्रों पर से तथा फलाफलों के योग आदि से जन्म कुंडली देख देख कर मिलान कर सकेंगे तथा ज्योतिषी मिश्र बंधुओं की योग्यता का पता लगा सकेंगे। आगे महात्मा के सम्बन्ध का नूतन भविष्य फल लिखा जाता है। आशा है कि पाठक उसे चाव से पढ़ कर यथा समय उसका मिलान करने का प्रयत्न करेंगे। और सर्व साधारण के मनोरंजनार्थ अन्य पत्र पत्रिकायें भी इसे प्रकाशित करने की उदारता दिखावेंगे।

संक्षिप्त नूतन भविष्य

(वर्तमान वर्ष के अनुसार अष्टम में मुंथा होने के कारण शारीरिक व्यथा हुई) आगामी वर्ष ४ अक्टूबर १९२४ से लगेगा। स्वास्थ्य कभी २ बिगड़ेगा। देश संबन्धी और राज्य संबन्धी कार्यों में सफलता होगी।

संवत ८६ तक राहू की दशा रहेगी। इसी की दशा भर तक महात्माजी देशका कार्य करेंगे। ८६ के बाद गुरू की दशा में संसारिक कर्मों का त्याग कर तपस्या करेंगे। क्योंकि बृहस्पति चन्द्र को और शुक्र को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है इसलिये वे संसारिक बातों के त्यागी बन ब्रह्म ज्ञान में मग्न हो जावेंगे।

यद्यपि एकही महात्मा पुरुष की गृह दशा आदि पर से समस्त देश का भविष्य नहीं बताया जा सका क्योंकि ऐसे ही गृह दशायें राज्य कर्त्ताओं आदि की भी कार्य कर रहीं हैं परन्तु तोभी उन की खास दशाओं पर से जो कहा जा सका है वही मिश्र बंधुओं ने कथन किया है। देखना चाहिये भारत की परिस्थिति बदल देने वाला यह भविष्य कहांतक सच निकलता है।

—गणेशराम मिश्र।

भा० व० परवार सभा-अधिवेशन सागर में क्या होगा?

इस वर्ष सागर में परवार सभा का सातवां वार्षिक सम्मेलन होने वाला है। इस सुअवसर पर यहां विपुल संख्या में परवार समाज के एकत्र होने की संभावना है। सभा का स्थान भी सागर में प्रसिद्ध मोराजी भवन का चौक होगा। यहीं एक वर्ष से श्री सत्तर्क सुधा तरंगिणी दिग० जैन पाठशाला अपनी अनुपम अमृत की तरंगों में विद्यार्थी रूप मरालों सहित कल्लोलें कर रही है। तब ऐसे सुअवसर को देखकर पाठशाला के कार्यवाहक महाशयों ने भी पाठशाला का वार्षिक अधिवेशन करने का निश्चय कर लिया है। यह सोने में सुगन्ध हुई। एक ओर जाति सुधार के विचार और दूसरी ओर आर्ष विद्या का चमत्कार दृष्टिगत होगा। अतः सभी भाइयों को सादर आमंत्रण है आप सपरिवार आइये और साथ में पाठशाला में प्रवेश कराने को छात्र भी लाइये जो परीक्षोत्तीर्ण होने पर प्रवेश किये जावेंगे।

बाह्य सामग्री व साज बाज तो ठीक ही होगा। परन्तु देखना यह है, कि अंतरंग साज सामग्री क्या होती है? क्योंकि सागर में जहां रत्न होते हैं, वहां संख, सीप, कंकर पत्थर आदिभी होते हैं। विष्णु ने जब इसे मंथन किया था, अमृत के साथ २ काल कूट भी निकाला था। संसार में शुभाशुभ सभी तरह के पदार्थ है. परंतु ग्राहक जिसे ग्रहण करे या उसके उदय के अनुसार उसे जो प्राप्त हो जावे सो ही ठीक। जहां तहां समाज में बड़ी २ बातें फैल रही हैं, कोई कहते हैं अब की बार अनावश्यक व्यय, देखा देखी (कुकरिया पुरापसे बढ़त) अनेकों नेग दस्तूर आदि कुरीतियां,

बाल, वृद्ध, अनमेल और सपत्नी (एक स्त्री रहते दूसरी ब्याह) सम्बन्ध, और बहुत दिन बरात का ठहराना आदि सब मिटा दिया जायगा ।

कोई कहता है, अब तो लाखों को कमकर ब्याह सम्बन्ध का सुभीता कर दिया जायगा और अपने चिरकाल से बिछुड़े हुए चौसके भाइयों को सम्मिलित कर लिया जायगा। कोई कहता है अपनी पंचायत का न्याय होकर फूट पिशाचनी का काला मुंह अवश्य करावेंगे। कोई कहता है कि जैसे कुछ अंश में इस प्रांत के बालकों के पढ़ने का प्रबन्ध हुआ है। उसी प्रकार उसको उन्नति देते, और उसकी त्रुटियों को दूर करते हुए, अब कन्याओं तथा प्रौढ़ महिला और विधावाओं के पठनार्थ भी कन्या शालाएं, विद्यालय व वनिताश्रम अवश्य ही खुलवाने का निश्चय हो जावेगा। तथा अनाथ बालक, बालिकाओं, महिलाओं, वृद्धों, अपाहिजों के रक्षणार्थ अनाथाश्रम का भी प्रबन्ध करा दिया जायगा । कोई कहता है, धर्म प्रचारार्थ प्रचारक, प्रचारिकाओं के भ्रमण की आवश्यकता बहुत है, क्योंकि धर्मज्ञान शून्य होने ही से तो कुवासनाएं और कषाएं बढ़कर अनर्थ होते हैं । इसलिये इसका प्रबन्ध सर्व प्रथम कराया जायगा । कोई कहता है उपदेश तो त्यागी व्रतियों का लगता है और वे बहुत थोड़े (नहीं के तुल्य) हैं। तथा जो हैं भी तो उनमें पढ़े लिखे आगम और आम्नाय के सच्चे ज्ञाता कम हैं, तथा स्वेच्छाचारी निरक्षर बहुत हैं, इसलिये इनके बढ़ाने तथा जो हैं उनके पढ़ने लिखने तथा भ्रमण कराने की योजना कराना परमावश्यक है।

यहां समैया भाई भी बड़ी बड़ी आशाओं के पुल बांध रहे हैं, मानों कि वे इस पुल पर चढ़कर शीघ्रही तारण गंगा को पार कर परवार उदधि में आ मिलेंगे । इनमें ऐसे कुछ युवक उत्साही और वर्तमान स्थिति से दुखित जन अब परवार समाज में मिलने को तैयार हैं तब दूसरी चैत्यालयों की द्रव्य के अधीश पूंजीपति इसका विरोध तरणतारण की ओट में यह कहकर कर रहे हैं कि "स्वामी का अज्ञानी थे जिनने समय को देखकर कार्य किया था, मर जाना भला परन्तु धर्म छोड़ना अच्छा नहीं है-धर्म की श्रद्धा राखो, जल्दी न करो सब मिलकर कार्य करो, अपनी समैया समाज जैसी है वैसीही कायम रखते हुए, यदि परवारों में बेटी व्यवहार हो जावे तो करो" इत्यादि इधर पांडों को डर लगा है कि समैयों का चैत्यालय छूटा कि हमारी आजीविका गई!

इसलिये ये चैत्यालयाधीश और पांडे इस विचारी समैया समाज के दुःख मोचन होने में घाति अघाति कर्मों के समान प्रबल तथा साक्षात विघ्न मूर्ति बन रहे हैं। परवार विचारते हैं, कि यदि समैयों को हम में मिलना इष्ट है तो चैत्यालयों में चैत्य अर्थात् प्रतिमा विराजमान करके ही मिलें। और यह बात उनको इष्ट नहीं है। वे चाहे सत्यनारायण की कथा करावें, हूंठा महावीर, भैरों शीतलादि की, सराग मूर्तियों की पूजोपासना करें, परन्तु वीतराग प्रतिमा के दर्शन-पूजन करने से सम्यक्त्व की विराधना हो जायगी! इत्यादि। देखें ये समैया जाति के खेवटिया अपनी समाज रूपी नौका कहां ले जाते हैं? तारण गंगा में अथवा परवार उदधि में ऐसी भी चर्चा खूब जोरों पर हो रही है।

आशावादी तो स्वप्न की सम्पदा का भोग कर मारे आनन्द के फूले अंग नहीं समाते, मानो कि परवार, चौसके और समैया, ये तीनों भाई जो अभी एक २ थे, सो मानो मिल कर १११ होगये हैं। यहाँ परवार बन्धु अवसर

की तरंगावली की उत्तंग लहरों के उठने और शान्त होनेको देख चकित होरहा है। तात्पर्य हजार मुंह हजारों बातें होरही हैं, सो ठीक है होना ही चाहिये। क्योंकि वे अगत अन भविष्य ज्ञानी तो हैं ही नहीं, जो प्रत्यक्ष (क्या होगा यह) जानकर मौन रहें। सभी अपनी २ बुद्धि के अनुसार अपनी इच्छाओं, चिंताओं, आवश्यकताओं का अनुभव करते हुए उसके मोचन करने का उपाय जो समझते हैं, कहते हैं। बात यह है जो नाले हैं वे थोड़े ही पानी से भर जाते हैं, परन्तु समुद्र में मूसलधार पड़ने पर भी बाढ़ नहीं आती। ये बातें सर्व साधारण जनता सोच रही, न कि समुद्रोपम नेतागण !

यदि मैं भूलता नहीं हूं तो कहना पड़ेगा कि जब तक समाज के नेता श्रीमान (मुखिया) या बड़े बूढ़े न विचारेंगे, तब तक चाहे नदी तैरो, चाहे सागर परंतु रत्न हाथ नहीं आसकते हैं। किसी ने ठीक कहा है "जाके पांव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई"।

ग्लैडस्टोन इंग्लैंड का किसी समय मंत्री था, वह तीसरे दर्जेकी गाड़ीमें यात्रा करता था, एक बार उसके मित्र ने उससे पूछा, क्यों साहब आप इतने बड़े मंत्री होकर तीसरे दर्जे में यात्रा करते हैं ! इस पर उसने उत्तर दिया कि "मैं जब मंत्री हूं तो मेरा कर्त्तव्य है कि सर्व साधारण के सुख दुःखों को जानूं और उनके दुख दूर करने का प्रयत्न करूं इसलिये यदि मैं तीसरे दर्जे में यात्रा न करूं, तो मुझे उन तीसरे दर्जे के यात्रियों के सुख दुखों का ज्ञान कैसे होगा ?" इत्यादि। वास्तव में बात ऐसी ही है। यदि हमारी समाज के नेता, श्रीमान, चौधरी, ठड़कुर, बड़े बूढ़े भी उक्त 'ग्लेडस्टोन' की सुवर्णमयी नीति का अवलम्बन करके, ग्रामों में जाकर अपने साधर्मी भाइयों की व्यवस्था देखें, सुनें उसपर विचार करें और प्रत्येक अपने आप को उनकी परिस्थिति में रखकर विचारें तो उनको भी सहज में सब बातों का अनुभव हो जावे। पश्चात् वे 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के अनुसार विचार करें और अपने सन्मुख श्री आदिनाथ पुराण, उत्तरपुराण, हरिवंश, पांडव पुराण, श्रावकाचार आदि ग्रन्थों को, तथा नीतिवाक्यामृत, भद्रबाहु संहिता आदि नीति ग्रन्थों को सन्मुख रखकर अपनी बुद्धि और रूढ़ियों का पक्षपात छोड़ कर सोचें कि आगम से अविरुद्ध कैसे हमारी जाति की उन्नति तथा रक्षा हो सकी है ? उन उपायों को निशंक होकर कार्य में परिणति करें, लोक क्या कहेगा ? इस झूठे भय को भग्न कर आगम क्या कहता है ? इसपर दृढ़ हो जावें।

हम यह नहीं कहते कि भूख में अभक्ष्य खाकर प्राण बचाओ, परंतु यह कहते हैं, जो भक्ष्य है—आगम जिसका विरोधी नहीं है और वह वस्तु प्रस्तुत भी है, भले ही चाहे आवश्यकता न होने से कितने समय से उसका उपयोग न किया गया हो, तो उपयुक्त जानकर उसका भोगकर प्राण रक्षा करना आवश्यक है। देखो रुई भरे या ऊनी कपड़े पूस, माह, प्रायः दो महीनों में काम आते हैं, शेष महीनों में पेटी में रखे रहते हैं, इसलिये अनावश्यक समय में न पहिरे जाने से वे शीतकाल में भी अनुपसेव्य नहीं हो सकते हैं !

जैन धर्म यह कभी नहीं कहता है कि घर में आग लगने पर खुला मार्ग होते हुए भी मत निकलो ! और उसी में बैठे २ मरजाओ। यदि ऐसा ही मानते हो और केवल एकान्त कर्म आदि वादी हो, तो भोजन करना, हवा खाना, व्यापारादि कार्यों को छोड़कर कुछ समय एकांत बैठकर देखो क्या होता है ? इसलिये

जब एक धंधे-दवा व वैद्य से आराम नहीं होता है तब, दूसरा तीसरा आदि धंधा, दवाएं व वैद्य बुलाये जाते हैं। इसी प्रकार समाज को जो रोग लगा है उसके निमित्त अनेक (उपर्युक्त) बातादि कारण हैं। तब क्यों नहीं उनसे विरुद्ध औषधोपचार करके रोग नाशकर रोगी की रक्षा की जाय ! हम समझते और आशा करते हैं कि इस समय जैन मग्न समाज नौका को लेकर जब सागर में प्रवेश कर रहे हैं तो अवश्य ही उसका अवगाहन करके, सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र आदि महा रत्नों के साथ, सुख शांति, दया, क्षमा, ऐक्य, उन्नति वात्सल्य, विवेक, परोपकारादि रत्नों को निकाल कर समाज में वितीर्ण करके सबके साथ (न कि मोरो पेट हाऊ, मैं न देहौं काऊ) उनका भोगकर स्व पर हित साधन करगे।

कहावत है Tit for Tat अर्थात जैसा बर्ताव तुम अपने साथ कराना चाहते हो वैसा तुम स्वयं दूसरोंके साथ करो। जग सुधारने की यदि भावना है तो पहिले आप को सुधारो, विश्वास पात्र बनो। जगत स्वयं तुम्हारा अनुयायी हो जावेगा। मुनिराज कब सिंह और शावक को एकता का उपदेश देने गये, परंतु वे विरोध छोड़ उनके समक्ष कैसे मैत्री भाव रखते हैं ? इसी प्रकार। देखें यह आशा का अवसर पास है, सागर में नौका जाने वाली है, सो किस प्रकार बिछुड़े मिलते हैं और सब लोग रत्नाकर से रत्न ले लेकर मनोरथ पूर्ण करते हैं ! —दीपचन्द्र वर्णी।

सच्चा भाई।

(१)

"बेटा केवलचंद, तुम्हारा बड़ा भाई कहां है ?" सिंघई रामचंद्रने मृत्यु शय्या पर पड़े२ कराहती हुई आवाज में उक्त वाक्य कहा। केवलचंद ने उसी प्रकार पिता के पैर दाबते हुए दुःख पूर्ण आवाज़ में कहा "दद्दा बड़े भैया यहीं तो बैठे हैं।" उसी समय सिंघई रामचंद को बड़े ज़ोर की खांसी आई, परंतु खांसी का वेग कम होने पर उन्होंने अपने लड़कों से कहा कि हम को तकिये के सहारे बैठा दो। लड़कों ने ऐसा ही कर दिया। पश्चात् अपने छोटे लड़के का हाथ अपने हाथ में लेकर सिंघई रामचंद बोले :—

"बेटा देखो मैंने ये सम्पत्ति बड़े कष्टों से कमाई है। मांने चक्की पीस कर मुझे हिंदी की चार क्लास तक पढ़ाया था। पास में बाप दादों की कुछ संपत्ति तो थी ही नहीं। इसलिये जब मैं बारा वर्ष का हुआ, तभी से पैसा भंजाने का काम करने लगा था। रोज़ चार छै आने मिल जाते थे। उसी से मां बेटा आराम से रहते थे। उस समय सुकाल था। गेहूं २५ सेर और घी १॥ सेर का था। गाढ़े की मिर्ज़ाई और रंगी छहा की धोती पहनता था, अब जैसे खर्च नहीं थे। तभी तो हमने २५ वर्ष की अवस्था में २०००) जमा कर लिये थे। ५००) खर्च कर विवाह किया। फिर भी ३५ वर्ष की अवस्था में ४०००) की पूंजी पहले हो गई थी। इससे मेरी प्रतिष्ठा दिन दिन बढ़ने लगी। कोई २ तो मुझे उत्तेजना देने लगे कि-

"भैया, तुम्हारे दादा, परदादा रथ चला गये थे, इससे तुम सिंघई कहलाते हो: अब भगवान ने रुपया भी खूब दिया है, सवाई

सिंघई तो बन जाव।" और कोई कहता कि "भैया, अब मंदिर तो आवश्यकता से ज्यादा हो गये हैं। बहुतों की तो जीर्णोद्धार न होने के कारण अविनय होरही है। इससे पाठशाला, बोर्डिंग, औषधालय, अनाथालय आदि में रुपया लगाकर धर्म की सच्ची प्रभावना करो।" हजार मुंह हजार बातें कहीं जाती थीं। परंतु मुझे तो रुपया प्राणों से प्यारा था, इसलिये मैं सब को यों ही टाल दिया करता था; और किसी की हां में हां भी मिला दिया करता था। इससे लोग मेरी बातों में आकर मुझे बड़ा धर्मात्मा समझने लगे।

उसी समय गांव के अमान सिंघई का जिनके पास हलके मंदिर का रुपया व हिसाब था मुखिया जानकीप्रसाद से आपस में द्वेष होगया। फिर क्या था जानकीप्रसाद ने अमान सिंघई के सिर पर मंदिर का द्रव्य अपने उपयोग में लगाने का अभियोग लगाया। पंचायत हुई, और पंचों ने अमान को समझा बुझा कर सब बचाखुचा हलके मंदिर का भंडार मेरे जिम्मे करा दिया था। मैं वह रुपया ब्याज पर रखने लगा जिससे मौके २ पर व्यापार में अच्छी सहायता मिलने लगी। मैंने कभी किसी चंदे में एक भी पैसा न देकर कई लाख की स्टेट जमा कर ली है। परंतु अब डर है कि मेरी यह गाढ़ी कमाई तुम दोनों भाइयों के विरोध में स्वाहा न होजावे।" इतना कहते २ सिंघई रामचन्द्र का कफ खूब घर्राने लगा। जोर २ से स्वास चलने लगी। लड़कों ने उन्हें तुरंत पलंग पर लिटा दिया। गांव में इनके अधिक बीमार होने की खबर शीघ्र लगगई। कुछ लोग इकट्ठे भी होगये। उनमें से कुछ ऐसे भी लोग थे जो शिक्षा प्रचार में विशेष प्रेम रखते थे। उन्होंने सिंघई से मरते समय शिक्षा प्रचार में २५०००) कबूल करवा लिया। पश्चात् थोड़े ही समय में एक हिचकी आई और उसी के साथ उनके प्राण पखेरू उड़गये।

(२)

"बड़े भैया मेरा तो इसमें कुछ अपराध नहीं है। मालूम पड़ता है कि भौजी ने तुम्हें उल्टा सीधा सुझादिया है इसीलिये तुम मुझे नाराज होकर अलग कर रहे हो। मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूं यदि मुझसे कोई कुसूर अनजाने में होभी गया हो तो क्षमा करो। मेरी अलग होने की बिलकुल ही इच्छा नहीं है।"

बड़े भाई नन्हेंलाल ने जब केवलचंद को एक लात लगाई थी। तब केवलचंद ने बड़ी नम्रता से उक्त वचन कहे थे। परन्तु उसका कुछ परिणाम नहीं हुआ और पिता की तेरई के पश्चात् ही दोनों भाई अलग २ हो गये। नन्हेंलाल ने अपनी क्रूर प्रकृति के कारण हिस्सा करने में भी कम बेईमानी नहीं की। मंदिर का सब द्रव्य तथा पिता की २५०००) दान की हुई रकम भी अपने हिस्से में रख ली थी। बड़े भाई के ऐसा करने पर भी कोमल हृदय केवलचंद ने जरा भी आनाकानी न की और प्राप्त हुई रकम को न्याय पूर्वक व्यापार में लगा कर अपनी साख बढ़ाने लगा। लोगों का उस पर अच्छा विश्वास होने लगा। जिससे वह एक लाखतक की हुंडियां लिख कर बाजार को अपने काबू में कर लेता था। परंतु छोटे भाई की इस बढ़ती को देखकर नन्हेंलाल से न रहा गया। और उसने बाजार के लोगों को उल्टा सीधा समझा कर केवलचन्द के दिवाला पटकने की बातसुझा दी। इससे लोग घबड़ाए हुए आकर केवलचन्द से अपने २ रुपये का तकाजा करने लगे। केवलचन्द बड़े सोच में पड़ा, यद्यपि उसके पास सब रुपया देने के

लिये काफी संपत्ति थी। और बहुत सा रुपया व्यापार में फँसा था, इसलिये उसने सोचा कि बड़े भाई से चलकर सहायता लेवें। परन्तु बड़े भाई ने अपने स्वभाव के अनुसार उसे रूखा जबाब दे दिया। अंत में केवलचन्द ने यह हाल अपनी स्त्री से कहा। स्त्री ने तुरंत अपना सब जेवर देकर पूज्य पतिकी इस विपत्ति में सहायता की। कुछ रुपया अन्य जायदाद को भी गिरवी रखकर साहूकारों को दिया गया। साहूकारों ने इसकी ईमानदारी समझकर अपना रुपये लेना बंद कर दिया और केवलचन्द का रोजगार फिर से ज्यों का त्यों चलने लगा।

(३)

आज नन्हेंलाल की दूकान बंद है। उनके घर पर बहुत से लोगों की भीड़ दिखाई दे रही है। कोई कहता है कि सट्टे का वायदा पूरा होगया है उसमें १७०००) का घाटा है। कोई अपने धरोहर का रुपया मांग रहा है। यद्यपि नन्हेंलाल ने करुण स्वर से यह सब रुपया कुछ समय बाद देने के लिये लोगों से प्रार्थना की, परंतु वह सब व्यर्थ हुई। लोग १) में चार आने लेने को उसी समय तैयार थे। जब नन्हेंलाल ने देखा कि यह विपत्ति नहीं टल सकी है तो उन्होंने अपनी स्त्री से सब हाल कह कर जेवरों को मांगा। परन्तु वह तो पहिले से ही समझ गई थी और अपना सब जेवर भाई के यहां भिजवा दिया था। इसलिये उसने साफ कह दिया कि "मेरा सब जेवर चोरी चला गया है। तुम अपने छोटे भाई से क्यों नहीं सहायता लेते हो?" यह सुनकर नन्हेंलाल 'किं कर्तव्य विमूढ़' होकर सिर नीचा करके बैठ गया। इसने अपने पूर्व कृत्यों को सोचकर छोटे भाई के पास सहायतार्थ जाने में अपमान समझा। अब उसके पास कोई सहारा नहीं था। क्योंकि उसने दुर्व्यसनों में पड़कर अपनी सारी संपत्ति यहां तक कि मंदिर का सामान-चंवर, छत्रादि-भी बेच डाला था। अतएव इसने चाहा कि अंगूठी का हीरा खाकर अपने प्राण त्याग दूं। कि इतने में एक भिखारी ने आकर उसके हाथ में एक लिफाफा दिया। उसने उसे अपने ऊपर एक और आफत आई जानकर घबड़ाते हुए लिफाफा खोला। खोलते ही उसमें से ४००००) के नोट नीचे गिर पड़े। अंधे को आंखें मिलीं। वह कूदता हुआ तुरंत अपनी स्त्री के पास गया और वे सब नोट दिखाये। अंत में निश्चय हुआ कि साहूकारों को रुपया में ।) देकर यह विपत्ति दूर की जावे। ऐसा ही उसने किया, और शेष रुपया उसने अपने पास रख लिये। लोगों ने भी चार आना पाकर संतोष किया। यदि नन्हेंलाल दुर्व्यसनी और दुराचारी लोगों की संगति में पड़कर नीति पूर्वक अपना व्यापार करता जाता तो आज उसके पास कई लाख की जायदाद हो जाती। ऐसा न करके उसने अपनी मान मर्यादा और सारी संपत्ति खोई।

(४)

आज रात को पंडित क्षमाधर ने एक जातीय पंचायत इकट्ठी की है। उसमें नन्हेंलाल जी भी बुलवाए गये। केवलचंद शुरू से मौजूद थे। पंडित जी ने मंदिर का हिसाब तथा पिताके पुण्य किये हुए रुपयेके बावत् नन्हेंलाल से कहा। नन्हेंलाल जी बोले कि "आप पूछने वाले कौन होते हो? तुम्हारी हैसियत ही क्या है?" तब पंचों ने कड़ी आवाज में कहा, "भाई जरा सीधे जवाब दो।" अब तो पंचायत का रंग बदला हुआ देखकर नन्हेंलाल जी सचेत हुए और विनयपूर्वक अपनी सारी सम्पत्ति खोजाने की प्रार्थना की। इसे सुन

कर पंडित क्षमाधर जी ने पंचों को लक्ष्य कर कहा कि "आप लोगों को नन्हेंलाल की आर्थिक परिस्थिति का पता बहुत पहले से था फिर भी आप लोगों ने मंदिर का हिसाब व भंडार नहीं लिया। यदि हरसाल हिसाब लेते जाते तो ऐसी दशा न होती। क्या इससे हम लोग पाप के भागी नहीं हैं?" कई लोगों ने कहा कि आप भी तो यहीं थे। आप ने क्यों नहीं मांगा? अस्तु! जो कुछ होना था सो हो गया, अब आगे से मंदिरों के भंडार का अच्छा प्रबंध होना चाहिये। निर्माल्य द्रव्य इसी असावधानी के कारण लोगों के यहां रह जाता है, जिससे उन्हें पाप बँध होता है तथा खाने वालों का भी नाश हो जाता है। एक के पास अधिक दिन रहने से उससे उसका ममत्व भी बढ़ जाता है।" इतने ही में केवलचंद ने खड़े होकर कहा, कि "पंचो हम २५०००) पिता की दान की रकम तथा मंदिर का सब रुपया देते हैं। बड़े भाई के पास जब होगा तब हम उनसे ले लेवेंगे।" उसी समय सब पंचों ने केवलचंद की प्रशंसा की और कहाकि "अब हम लोगों को पूरा विश्वास होगया कि उस समय भी अपने भाईके विपत्ति कालमें तुमने सहायता की होगी। भाई हो तो तुम सा।"

बाद में पंडित क्षमाधर जी बोले "भाई, अब मन्दिर का प्रबन्ध बहुत दिनों तक किसी एक के पास नहीं रखना चाहिये और परवार सभा ने भी यही सोच कर एक प्रस्ताव मन्दिरों का हिसाब प्रगट करने के बाबत पास किया था। उसके फार्म भी सब जगह भेजे गये थे परंतु सुना है कि कुछ जगहों को छोड़ कर बाकी लोगों ने मन्दिरों का हिसाब न देने के लिये सैकड़ों बहाने बताए हैं। और भैया, अपने यहां से भी अभी तक हिसाब नहीं भेजा गया है, उसे शीघ्र भेजना चाहिये। और जिस मन्दिर के लोग हिसाब न भेजें उन पर जातीय कार्रवाई करने के लिये परवार सभा को अबकी बार अमली प्रस्ताव करना चाहिये।"

इसके बाद सब ने "महावीर स्वामी की जय" बोल कर पंचायत समाप्त की। नन्हेंलाल अपने छोटे भाई केवलचन्द को विपत्ति काल में अदृश्य और इस समय दृश्य रूप से सहायता देने की, प्रशंसा करता हुआ आनन्द पूर्वक घर गया।

—कस्तूरचन्द वकील।

उद्धार।

प्रभो! अब करो शीघ्र उद्धार।
सदियों से बहु पतित हुए हम,
धन वैभव सब क्षीण हुए मम,
दुक्खों से भर आई है दम,
नहीं अन्य आधार॥ प्रभो०
पतितोद्धारक आप कहाते,
पतितों को सन्मार्ग बताते,
निराधार आधार बनाते,
हमें लगाओ पार॥ प्रभो०
अनाचार हमने अपनाया,
सदाचार को दूर भगाया
सत्य, अहिंसा पथ बिसराया,
अतः हुआ अविचार॥ प्रभो०
पद पद पर ठोकर खाते हैं,
पावक में झोंके जाते हैं
तब भी स्वत्व नहीं पाते हैं,
कैसा यह व्यवहार? प्रभो०
हे करुणेश! सर्व हितकारी,
बने सभी हम दृढ़ व्रतधारी।
मोक्ष मार्ग में होंय विहारी,
देहु कृपा विस्तार॥ प्रभो०

—हजारीलाल न्यायतीर्थ।

रोगी भारत—

रोगी भारत—प्रथम रोग मुक्त होगा या मैं ?

डाक्टर चोटीलाल भक्त—डाढ़ी की पूंछ की बाढ़ दिमाग को खराब कर भेजे की सारी शक्ति नीचे को खिसका रही है। बिना इसे छोर छुट्टी दिये या खत्म किये न तो जीवन प्राण चोटी ही बढ़ेगी न शांति ही मिलेगी।

डाक्टर डाढ़ी मियाँ—(बिना बुलाये) महज झूठ है। सिर की पूंछ का ही सब फ़िसाद है। इसे जड़ से उखाड़े बिना और धोती का गरारा बनाये बिना अल्लाहताला न तो दुआ ही देगा, न तनदुरुस्ती बख्शेगा।

डाक्टर सफ़ाचट्ट पेट्टू साहिब—नोनसेन्स। दोनों झगड़े की जड़ हैं। दोनों को सफ़ाचट्ट किये बिना न तो रोग मुक्त होगा और न रोगी ही।

रोगी भारत—क्या खूब ! दूबरे और दो असाढ़ ।

विविध-विषय।

१—सी. पी. सरकार के प्रति

सी. पी. गजट के गत दो तीन अंकों में एक प्रेस नोट निकला है। उसका आशय है कि "ई. ए. सी की दो या तीन जगह खाली हैं, जिनकी नियुक्ति एक "सिलेक्शन बोर्ड" जो विशेषकर इसी के लिये बनाया जावेगा, उसके द्वारा होगी। पहिली नवम्बर तक सी पी. बरार के उम्मेदवारों से अर्जियां मंगाई गई हैं। यह वास्तव में एक बड़ी अच्छी बात है। इसके पहिले किसी खास आला अफसर की सिफारिश से नियुक्ति हो जाती थी जिसका परिणाम यह होता था कि नई जगहें प्रायः अफसरों के लड़के, रिश्तेदारों या मुलाकात वालों को मिल जाती थीं। और जगह मिलने वाले व्यक्तियों के हक का सर्वथा खून होजाता था।

इस अवसर पर "सिलेक्शन बोर्ड" का ध्यान हम इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि समस्त भारतवर्ष में १२॥ लाख जैनी हैं-सी.पी में भी इनकी बहुत संख्या है जो समय२ पर गवर्मेन्ट के लिये तन, मन और विशेषकर धन से सहायता करते रहते हैं। जैसे वारलोन में एक करोड़ दस लाख की अनन्य सहायता करने वाले, "दानवीर, रायबहादुर, सर, सेठ हुकमचंदजी राज्यभूषण" रायबहादुर श्रीमन्त सेठ पूरनशाह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट, 'रायबहादुर श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी' आदि।

जब कभी चन्दे या पैसे का काम पड़ता है तो बहु भाग जैनियों ही का रहता है परन्तु उनके हक की रक्षा का ध्यान बहुत कम रक्खा गया है यहां तक कि जैनियों के एक भी त्यौहार की छुट्टी नहीं दी जाती और न आज तक सी. पी. में एक भी जैनी ई. ए. सी. हुआ है। यहां तक कि अहीरों और अन्य शूद्र जातियों तक का ख्याल रक्खा गया है। और उन में से बी. ए. पास वाले तक को व मुकाबले एम. ए. एल. एल. बी. तक के नियुक्त कर दिये गये हैं। अस्तु, अब तक जो हुआ सो हुआ-किन्तु इस बार हम जैनियों का बहुत जोरों के साथ आग्रह है कि चुनाव के वक्त हमारी जाति-रक्षा के हक का अवश्य ध्यान रक्खा जावेगा।

जैनियों का साहित्य अत्यंत विस्तृत है किंतु घोर अंधकार में पड़ा है-कारण यही है कि कोई भी जैन सज्जन ऐसे उच्च पद पर नहीं है। तथा जैनी, अजैनों को जैन मंदिर तथा शास्त्र भंडार में प्रवेश नहीं करने देते। अतः जैन शिक्षितों का बिना उच्च पद पर स्थित हुए साधारण जैनियों पर प्रभाव नहीं पड़ता। और बिना प्रभाव के जैन साहित्य की वह खोज जिससे भारत के इतिहास को जो सहायता मिली है-यदि उपयुक्त साधन मिले तो उससे कई गुनी सहायता मिलने की आशा है।

सरकारी उच्च पदों की प्राप्ति के लिये जैनियों को दूसरी बाधा यह है कि उनको समुद्र यात्रा करने से जाति च्युत का भय रहता है। इसलिये आई. सी. एस. (I. C. S.) में जाने से मजबूर रहते हैं।

इसी विषय पर एक नोट हमने गत जून मास के अंकमें भी निकाला था कि "जैन जाति के सौभाग्य से बाबू जमनाप्रसादजी एम. ए. एल. एल. बी. जो गतवर्ष प्रथम नम्बर से उत्तीर्ण हुए हैं तथा एम. ए में पुरातत्व विभाग द्वारा आपको १००) रिसर्च स्कालर्शिप भी मिली थी। अतः इस पद पर आपकी नियुक्ति के लिये गवर्मेन्ट ध्यान रक्खेगी।"

२—सागर के कमरया-कुटुम्ब का ९४०००) हजार का दान । नवीन जैन बोर्डिंग का उद्घाटन ।

थोड़े समय की वाहवाही के लिये समाज ब्याह शादियों में मनमाना खर्च कर डालती है। रथ, प्रतिष्ठा, आदि में भी हजारों रुपया पानी की तरह बहा दिया जाता है, जो कि धार्मिक दृष्टि से उत्तम है। और होना चाहिये। किन्तु यदि यही धर्म प्रभावना की ओट में मानकषाय की पूर्ति, सिंघई, सवाईसिंघई, सेठ बनने की लालसा से खर्च किया जाता है तो कहना न होगा कि समाज अभी अपने आपको एक गहरे अंधकार में से निकलने के लिये बिलकुल असमर्थ है। आवश्यकता को पहिचानने की उसमें क्षमता उत्पन्न नहीं हुई।

धर्म, धार्मिकों के बिना स्थिर नहीं रह सका, और जब धार्मिकों का धर्म मानने वालों का दिन २ पतन हो, धार्मिकों के जीवन मरण का प्रश्न हो—उस धर्म के सच्चे मर्म को समझने तक की भी शक्ति न हो तब ऊपरी दिखावे से कैसे उसका तथा उसके धर्म का विकास व प्रचार हो सका है!

इस समय सच्ची प्रभावना इसी में है कि वीर भगवान् की दिव्य, लोकोपकारी वाणी को स्वयं समझ कर-ऐसे विद्वान् तैयार करें कि जो इस संसार समरस्थली में विजयी हों-यह तभी हो सका है कि आप अपनी सारी आर्थिक शक्ति को कुछ समय के लिये इसी ओर एकत्र करके सरस्वती-मन्दिरों की जगह २ स्थापना कर दें।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सागर के कमरया कुटुम्ब ने जो ९४००० हजार का दान सत्तर्क सुधा तरङ्गिणी।श्रीदिगम्बरजैन पाठशाला को दिया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसमें से ३५०००) स्वर्गीय श्रीमान् लक्ष्मणदासजी कमरया का, ३५०००) की नवीन बोर्डिंग तथा २००००) नकद श्रीमान रज्जीलालजी कमरया का, ५०००) श्रीमान मुन्नालाल जी कमरया का इस प्रकार ९४ हजार का नवीन दान तथा २००००) रुपया सागर पाठशाला का स्थाई कोष मिलाकर १ लाख १४ हजार की सम्पत्ति सागर पाठशाला की होती है। इमारत की ३५०००) कीमत निकाल देने पर स्थाई कोष ७९०००) का रह जाता है। अच्छा हो कि समाज इसमें २१०००) और मिलाकर सदैव के लिये इस शाला को आर्थिक संकट से बचाने का अवसर दे देवे।

नवीन छात्र भवन का उद्घाटन श्रीमान् पूज्यवर पंडित गणेशप्रसादजी के कर कमलों द्वारा विजयादशमी के शुभ मुहूर्त में धूमधाम के साथ हो गया है-यह सब आप ही की अनन्य लगन और पुण्य के प्रभाव का फल है कि सागर पाठशाला आज इस रूप में दिखाई दे रही है। वैसे तो आपकी छाप बुंदेलखण्ड प्रान्त भर में है किन्तु श्रीमान् रज्जीलालजी कमरया की असीम भक्ति का यह स्मारक अनेक जीवों के कल्याण का मार्ग होगा।

६२ छात्र अभी इसमें शिक्षा पा रहे हैं-२० विद्यार्थी और प्रवेश किये जावेंगे। तथा अधिकारी वर्ग की इच्छा महाजनी, हिन्दी तथा शीघ्र ही संस्कृत कालेज के साथ २ हाई स्कूल तक की शिक्षा देने की है। हम आप लोगों की इस कामना की पूर्ति के लिये हृदय से अभिनन्दन करते हैं। तथा परवार-सभा का ध्यान भी इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि वह कमरया कुटुम्ब को "सेठ" की पदवी देकर-उनके द्वारा किये हुए शिक्षा विभाग के इस समयानुकूल, दान की स्वीकृति—महत्व और आदर देगी। ताकि भविष्य में इस प्रकार के दान का प्रचार हो।

वैज्ञानिक नोट।

केल्शियम धातु।

१. लोहा एक ऐसी धातु है जो कि सब से अधिक उपयोग में लाई जाती है। तो भी जो धातु पृथ्वी के अंदर सब से अधिक मात्रा में मिलती है वह लोहा नहीं है किन्तु वह है केल्शियम (Calcium)। चूने में ४० प्रति सैकड़ा calcium रहता है।

केल्शियम बहुत ही हल्की धातु है और बहुत घनवर्धनीय है। उसके तार भी बनाये जा सकते हैं। उसका रंग उतना ही भड़कीला है जितना कि सोनेका। अब प्रश्न यह उठता है कि इसको लोहे की अपेक्षा अधिक उपयोग में क्यों नहीं लाते हैं?

इसके दो कारण हैं— एक तो उसको उसकी धाऊ में से निकालना बहुत ही मुश्किल बात है। और दूसरा जब उसको उसकी धाऊ में से अलग करते हैं तो उस पर पानी का छोटे से छोटा कण लगने से वह तेज गर्मी देते हुए चूने में बदल जाता है। अभी हाल में Calcium की कीमत सोने से २० गुनी है।

मुख देखकर चरित्र जानना।

२—जिसका निकला हुआ चहरा होता है वह दूरदर्शी तथा शीघ्र विचारक होता है। २—धसे हुए चहरे वाला सुस्त तथा आलसी किन्तु दार्शनिक होता है ३—सीधे चहरेवाला मनुष्यों के स्वभाव जल्दी पहिचानता है। लम्बे मुंह वाले अपनी खोज में दूर तक की सोचते हैं। ४ "S" के आकार के चहरे वाले सबसे अच्छे रहते हैं। परन्तु जिनका चहरा उल्टे "S" जैसा होता है वे सोचने के पहिले काम करते हैं और बड़ी २ कठिनाइयां उठाते हैं।

—प्रेमचन्द्र सिंघई बी. एस. सी.।

विनोद लीला

१—जब मंदिर में हमारे श्री जी विराजमान हैं और उसका द्रव्य भंडार भी हमारे पास है। तब पंचों को उसका हिसाब समझाने और रुपया देने की हमको जरूरत ही क्या है? भला बाबा के माल पर कौन नहीं इतराता! कहिये हजमचन्द्र जी ठीक है न?

२ भैया, आजकल के लिखे पढ़े लोगों ने मंदिरों का हिसाब प्रकाशित करने का कोलाहल मचा दिया है, भला क्या मन्दिरों का हिसाब व रुपया रखनेवाले बेईमान होते हैं? अच्छा तो फिर हमने भी यदि इन्कमटेक्स आदि का बहाना बताकर लोगों को धोखा में डाल दिया तो क्या बुरा किया? मनमाना खर्च करने को हमारे पासतो रहेगा!

३—एक दिन भिन्न २ मत के तीन महाशयों में तीन तीन पर खूब बात छिड़ी—

पहिले हिन्दू पण्डित जी ने कहा कि गंगा, जमना, और सरस्वती त्रिवेणी कहलाती है, उसमें स्नान करने से सत, रज, तम, तीनों पाप नाश हो जाते हैं?। २—वैद्यराज जी तुरन्त बोले, हर्र, बहेड़ा, आंवला को त्रिकुटी कहते हैं और वह वात, पित्त, कफ तीनों का शमन करती है। वे पूरा ही नहीं कहने पाये कि पंचों के पोल बाज ने बीच ही में पंचपेटी के त्रिगुण पर एक दोहा बना डाला:—

> पापकृत दी युगल हो, हो प्रपंच परवीन।
> पंच नहीं परमेश्वर वह, जामें यह गुण तीन॥

धन्य है ऐसी पंचपेटी को!

४—शतरंज खेलने वाले कहते हैं कि बादशाह और प्यादे बहुत थोड़े चलते हैं। भाई ऐसा तो सभी जगह का हाल है। ठीक तुम्हारी सभाओं के सरदार और सभासद कितना चलते हैं? आखिर को इनसे वे निर्बल प्यादे तो अच्छे हैं जो मुखा खोलते या चल तो देते हैं।

—[illegible] ([illegible])।

साहित्य परिचय।

नीति विज्ञान अथवा आचार शास्त्र—लेखक बाबू [illegible]लाल एम. ए. बी. एल। प्रकाशक-हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, गिरगांव-बम्बई। मूल्य २)

यह मानव आचार पर किया गया एक वैज्ञानिक विवेचन है। जो १८ अध्यायों में पूर्ण हुआ है। सदाचार का विकास कैसे हुआ? भिन्न २ समयों में मजहबों की कैसी परिस्थिति रही? आदि बातों पर परिश्रम पूर्वक अच्छा विवेचन किया गया है। ईसाई मजहब के नाम पर हुई हत्याओं को पढ़ने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम एक बार इसे अवश्य अवलोकन करना चाहिये।

अहिंसा धर्मप्रकाश—लेखक व प्रकाशक पं० [illegible]लाल जैन संस्कृत ट्रेन्ड शास्त्री प्रधानाध्यापक जैन हाईस्कूल, पानीपत। कीमत ।=)

यह पुस्तक ४ अध्यायों में समाप्त की गई है। धर्म का रूप, अहिंसा, गृहस्थाश्रम का कर्तव्य आदि विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक विषय के प्रमाण हिन्दू, जैन आदि शास्त्रों से भी फुटनोट में उद्धृत किये गये हैं। पुस्तक पठनीय है।

स्वास्थ्य—लेखक-पं० बालमुकुन्द त्रिपाठी प्रकाशक [illegible]लाल शर्मा हिन्दी प्रेस प्रयाग। कीमत ।-)

यह पुस्तक बालकोपयोगी दृष्टि से लिखी गई है, परन्तु स्वास्थ्य रक्षा के विषय से युवकों और वृद्धों के लिये भी अत्यंत लाभ दायक है। स्वास्थ्य सम्बन्धी भिन्न २ विषयों का अच्छा विवेचन किया गया है। छपाई, सफाई भी अच्छी है।

समाचार-संग्रह

जबलपुर में बकरईद को हिन्दू, मुसलमानों में झगड़ा हो गया था। दो [illegible] [illegible] हो गई। प्रायः ४०, ५० आदमी घायल हुए। एक [illegible] अब भी रुकी है। इसी प्रकार सागर, प्रयाग में भी झगड़ा हो गया था परन्तु अब शान्ति है।

—सिंघई नाथूरामजी सूचित करते हैं कि [illegible] ग्राम की प्रतिमाएं चोरी चली गई हैं। वहां की जैन पंचायत ने पुलिस को उनकी कीमत तीन आने, चार आने बतलाई है। मूर्तियों की कीमत अमूल्य होती है।

—श्री मगनबाई संचालिका, श्राविकाश्रम तारदेव बंबई, सूचित करती हैं कि जो बाइयां नार्मल स्कूल जबलपुर में शिक्षा प्राप्त करना चाहती हों उनको १२) मासिक छात्र वृत्ति दी जावेगी। किन्तु उन्हें ५ वीं कक्षा का उत्तीर्णपन प्रमाण पत्र सहित प्रार्थना पत्र शीघ्र भेज देना चाहिये।

—[illegible]लालजी मुनीम श्री क्षेत्र कुंडलपुर सूचित करते हैं कि बाबा जिनेश्वरदासजी के स्वर्गवास हो जाने पर ब्रह्मचारी पं. भगवानदासजी के अधिष्ठातत्व में उदासीन आश्रम फिर से ठीक रूप में चलने लगा है। ब्रह्मचारियों की आवश्यकता है। जिन २ भाइयों पर क्षेत्र का रुपया बकाया हो वे शीघ्र भेज देने की कृपा करें।

—श्री दौलतरामजी चौधरी [illegible] सभा [illegible] सूचित करते हैं कि [illegible] के वितरण फार्म जहां कहीं न पहुंचे हों वे उनसे मंगा लेवें।

—भारतवर्षीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का [illegible] वां अधिवेशन [illegible] में ता: ७-८-९ [illegible] को होगा। हिन्दी समाचार पत्र, [illegible] की [illegible] भी [illegible] [illegible]।

विवाह सम्बन्ध होजाने की सूचना "परवार-बन्धु" कार्यालय जबलपुर को अवश्य दीजिये।

वर के अठसका।

(१)

१—वालामूरी, वासल्ल गोत्र।

२—सर्वछोला
३—वैशाखिया
४—भारू
५—सोलामूरी
६—बड़ेमारग
७—बहुरिया
८—देवदा

जन्म सम्वत १९५१

पताः—
से० भगवानदास भूरेलाल
बालाघाट (म० प्र०)

नोट—वर कुटुम्ब रहित, व्यापार कुशल है।

(२)

१—छोवर, फागुल्ल

२—बहुरिया
३—रामडिम
४—घाटे
५—डेरिया
६—ममला
७—सर्वछोला
८—; मरग

जन्म सम्वत १९८५

पताः—
भैयालाल बमो॑लाल मोदी
अकलतरा
(बिलासपुर)

(३)

१—पंचरतन-वाछल्ल।

२—लोटा
३—धना
४—रकिया
५—बीबीकुट्टम
६—वमोरहा
७—वाला
८—गोदू

जन्म सम्वत १९५६

पताः—
मोहनलाल लक्ष्मीचंद
बुड़हार (रींवा)

वर के अठसका।

(४)

१—डुही, वासल्ल गोत्र।

२—गांगरे
३—उजया
४—देदा
५—रकया
६—बड़ेमारग
७—गोदू
८—डेरिया

जन्म सम्वत १९६०

पताः—
सत्यंधर जैन वैद्य
जैन कुमार बिल्डिंग
कुली बाजार। कानपुर

नोट—बालक, सुशील सदाचारी है।

(५)

१—सर्व छोला, कोछल्ल।

२—बड़ेमारग
३—दिवाकर
— १हें
५—नगाडिम
८—छोवर
७—इन्द्री
८—मसो

उमर १८ साल

पताः—
गुलाबचंद मोतीवाले
लार्डगंज-जबलपूर

(६)

१—बहुरिया, कोछल्ल।

२—वैशाखिया
३—बाला
४—रकिया
५—छीपल
६—लाल्ह
७—ममला
८—मंगली

जन्म सम्वत १९६३

पताः—
स० सि० लक्ष्मीचंद
सीधपुर
रिया० नागोद (पन्ना)

१-कन्या का अठसका।

नोट-कन्याका नं० ६ के अनुसार अठसका और पता है। जन्म सं० १९६३, रास का नाम चतुरीबाई।

Reg. No. N 315

Reg. No. .N 315

मार्गशीर्ष, वीर निर्वाण सं० २४५१, नवम्बर, सन् १९२४.

[वर्ष २] श्री भा. दि. जैन परवार सभा का मुख्य पत्र- [अंक ११]

वार्षिक मूल्य ३)]

परवार-बन्धु

[एक प्रति का ।-)

परवार सभा सप्तम वार्षिक अधिवेशन सागर के सभापति
श्रीमान राय बहादुर श्रीमन्त सेठ पूरनशाह जी आनरेरी फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट सिवनी।

सम्पादक—
पं० दरबारीलाल साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ।

प्रकाशक—
मास्टर छोटेलाल जैन।

संरक्षक

१—श्रीमान श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी सिवनी·
२—श्रीमान सिंगई पन्नालाल जी अमरावती.
३—श्रीमान बाबू कन्हैयालाल जी अमरावती.
४—श्रीमान ठाकुरदास दालचंद जी अमरावती.
५—श्रीमान स.सिं.नत्थूमल जी साव जबलपुर.
६- श्रीमान बाबू कस्तूरचंदजी वकील जबलपुर·
७- श्रीमान सिंगई कुंवरसेन जी सिवनी.
८—श्रीमान स सिं. चौधरी दीपचंदजी सिवनी.
९—श्रीमान फतेचंद द्वीपचंद जी नागपुर.
१०—श्रीमान सिंगई कोमलचंद जी कामटी.
११—श्रीमान गोपाललाल जी आर्वी
१२—श्रीमान पं० रामचन्द्रजी आर्वी.
१३—श्रीमान खेमचंद जी आर्वी.
१४—श्रीमान सरउलाल झब्बूलाल जी. निवरा
१५—श्रीमान कन्हैयालाल जी डोंगरगढ़.
१६—श्रीमान सोनेलाल जी नवापारा
१७—श्रीमान दुलीचंद जी चौरई छिंद्वाड़ा
१८—श्रीमान मिट्ठनलाल जी छपारा.

सहायक

१—श्रीमान रामलाल जी साव सिवनी २५)
२—स० सिं० लक्ष्मीचंद जी गढ़याना २५)

ग्राहकों को सूचना।

'परवार-बन्धु' दो बार अच्छी तरह जांच कर यहां से भेजा जाता है। जिन ग्राहकों को किसी मास का अंक आगामी मास की १५ ता: तक न मिले उन्हें पहिले अपने डाकघर से पूछना चाहिये। यदि पता न लगे, तो डाकघर का उत्तर हमारे पास भेज कर हमें सूचित करना चाहिये। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जावेगा। ग्राहकों को, पत्र व्यवहार के समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिये जो कि पते की चिट पर लिखा रहता है।

परवार-बन्धु का प्रथम और द्वितीय अंक स्टाकमें बिलकुल नहीं है। अत. पाठक गण मँगानेका कष्ट न करें। फाइल न बनाने वाले यदि पहला और दूसरा अंक हमें भेज सकें तो बड़ी कृपा होगी उनकी इच्छानुसार उसका मूल्य उन्हें दे दिया जावेगा।

विज्ञापन दाताओंके पत्रोंका उत्तर।

हमारे पास कई विज्ञापन दाताओंके पत्र आये हैं--उनमें उन्होंने ग्राहक संख्या और रेट के सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर मांगा है। अतएव हमारा उनसे केवल इतना निवेदन है कि यह पत्र किसी एकका नहीं किन्तु समाज का है-इसकी कोई भी बात गुप्त और संशयात्मक नही रक्खी जाती है। इसके ग्राहकों की संख्या थोड़ेही समय में सभी जैन पत्रों से अधिक होगई है। वह भी छिपा के नहीं रक्खी जाती--किंतु शुरू से ही प्रत्येक अंक में नाम सहित प्रकाशित की जा रही है। और पृथक् भी रिपोर्ट में छपाई जावेगी। जिससे हमारी बातों का पता लग सकता है। सभा, विद्वानों, तीर्थस्थानों, व्यापारियों, पंचायतों, आदि की सेवा में भेजा जाता है। उदारदाताओं और संरक्षकों की सहायता से असमर्थों को मुफ्त में भी भेजा जाता है। जिससे एक २ अंक सैकड़ों लोगों की दृष्टि में पहुंच जाता है।

छपाई का रेट लागत मात्र नीचे दिया गया है उसमें कुछ भी कमी नहीं हो सकेगी--केवल एक वर्ष के विज्ञापन की छपाई पेशगी देने वालो को ≶) रुपया कम कर दिया जावेगा। पीछे आये हुए विज्ञापन आगामी अंक में छापे जावेंगे।

इस समय विज्ञापन की दर.—

१ पृष्ठ वा २ कालम की छपाई	८) प्रति	मास
आधा पृष्ठ या १ "	" ५)	"
चौथाई,, वा आधा कालम	" ३)	"
अष्टमांश पृष्ठ वा चौथाई,	" २)	"
कवर के चौथे पृष्ठ की	" १२)	"
" तीसरे "	" १०)	"
पाठ्य विषय के पहले और पीछे की छपाई	९)	"

नोट:--(१ पूरी छपाई पेशगी ली जावेगी।
(२) एक कालम से कम विज्ञापन छपाने वाले को "बन्धु" बिना मूल्य नहीं भेजा जावेगा।
(३) नमूने की प्रति का मूल्य पांच आने।

पता:--
मास्टर छोटेलाल जैन,
परवार-बन्धु कार्यालय, जबलपुर (सी. पी.)

लेख-सूची ।

सूचना ।

भा० व० परवार सभा-सागर के सातवें प्रस्ताव के अनुसार मन्दिर, धर्मादा, शिक्षा व अन्य संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं के प्रति नम्र निवेदन है; कि अभीतक जिन महाशयों ने हिसाब नहीं भेजा है वे उसे कृपया शीघ्र ही भेजकर प्रस्ताव की अमली कार्यवाही करेंगे।

नम्रनिवेदक—

कस्तूरचंद वकील,

मंत्री--परवार-सभा-दफ्तर, जबलपुर ।

—जबलपुर में प्रति वर्ष की तरह नवम्बर मास से प्लेग का प्रकोप शुरू हो गया है। इसलिये यह अंक देर से निकला। किन्तु दिसम्बर का अंक ठीक समय पर पाठकों के पास पहुँचाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

—प्रकाशक।

परवार-बन्धु।

वर्ष २ | नवम्बर, सन् १९२४ ई० कार्तिक श्री वीर निर्वाण सम्वत् २४५० | संख्या ११

प्रार्थना।

तनिक तो सुध लो कृपानिधान।
जब जब पतन हुआ भारत का नष्ट हुआ सब ज्ञान।
तब तब आ उपदेश दिया है किया जगत कल्याण॥
कराया मुक्ति मार्ग का भान, तनिक तो सुध लो कृपानिधान॥ १॥
डूबा वह अगाध अवनति जल, जैन-जाति जल-यान।
हा, कुरीतियाँ काठ, कीटवत्, करती हैं अवसान॥
व्यर्थ ही होता है बलिदान—तनिक तो सुध लो कृपानिधान॥ २॥
आओ आओ शीघ्र बचाओ, निकल न पावें प्रान।
डूब गई झँझरी नौका तब क्या कर लोगे त्रान॥
विनय पर अब तो दो कुछ ध्यान, तनिक तो सुध लो कृपानिधान॥ ३॥
धर्म नहीं रहता बिन धार्मिक, बिना प्रजा ईशान।
नष्ट हुए हम, कहाँ रहोगे, भक्त बिना भगवान॥
सोच लो तुम ही दयानिधान, तनिक तो सुध लो कृपानिधान॥ ४॥
हम हैं निर्बल, दया करोगे, कब तक दयानिधान।
ऐसी युक्ति बताओ जिससे रहे तुम्हारा मान॥
न हों फिर हम अवनत अज्ञान, तनिक तो सुध लो कृपानिधान॥ ५॥

तुम्हारे होश कहाँ हैं ?

संसार समर ने तमाम दुनियाँ में चहल पहल उत्पन्न करदी है।

भारतवासियो, तुम क्या कर रहे हो ?

क्या केवल अखबारों में समाचार पढ़ कर रह जाते हो ?

क्या धर्म-स्थानों में सुदूरवर्ती मोक्ष की ही बातें सुना करते हो ?

क्या व्याख्यानों में केवल क़ौमी तारीफ़ें ही हाँका करते हो ?

तुम कहाँ हो ?

तुम्हारे सिर पर राजकीय कठिनाईयों की तलवार कैसी लटक रही है ?

तुम्हारी व्यापारिक स्थिति कैसे भय में है ?

तुम्हारी जातीय संघ-शक्ति कैसी निर्बल है ?

तुम्हारी ऊपरी ताकत कैसी मुर्दार है !

तुम्हारी सामाजिक-स्थिति कैसी सड़ी हुई है !

तुम्हारा ज्ञान कितना कमज़ोर है !

तुम्हारी आत्मा कैसी मरी हुई सी है !

तुम्हारे हमेशा के उद्धार का प्रसंग कितने जोखिम में है !

कुछ देखते हो ?—विचारते हो ?

संसार के चारों कोनों में प्रत्येक देश के निवासी अपनी बाह्य तथा आन्तरिक स्थिति की उन्नति करने में लग गये हैं। समाज, आरोग्यता, शिक्षा तथा व्यापार सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने के लिये सब जातियाँ जाग उठी हैं।

बिलकुल बर्बाद होने के बाद होश में आने की अपेक्षा पहिले ही से चेत जाने के रास्ते की योजना करने में प्रत्येक देश जुट गया है।

हमारे हिन्दुस्थानी !!

सैकड़ों वर्षों से कष्ट सहन करते हुए भी, समाज, आरोग्यता तथा व्यापार क्या किसी भी अंग की योजना करने अथवा उसकी उन्नति के लिये उचित आन्दोलन करने में तत्पर नहीं हुए हैं !!

सदा के लिये जीने या मरने का प्रश्न आकर उपस्थित हुआ है।

ऐसे समय में भी गम्भीरता पूर्वक विचार करने तथा इकट्ठे मिल कर, काम करने की हमें नहीं सूझती है !

धिक्कार है ! शरम है हम लोगों को !

एक सुन्दर आबाद शहर में प्रवेश करने की इच्छा से एक अन्धा उसके परकोटे के आस-पास फिरता, जब किसी न किसी दरवाज़े के पास आता, तब ही उसको खुजली उत्पन्न होती और दरवाजा निकल जाने पर खुजली दूर हो जाती थी ! वह कोल्हू के बैल के समान शहर के आसपास घूमा करता था और अपनी 'सहनशीलता' तथा 'समता' के लिये डींग हाँकता था ! हम लोग भी कोल्हू के आसपास घूमने वाले अन्धे हैं ! जब हमारी जान पर आ बनेगी तब हम खुजली के आधीन होंगे या नहीं यह भी नहीं कह सकते !

प्रजा के जीवन में अलौकिक प्रसंग केवल एक ही बार आता है।

यदि वह प्रसंग गया तो प्रजा का सदा के लिये भाग्य फूट गया !

जो भयंकर युद्ध के समय भी नहीं जाग सकता, युद्ध तो क्या, जो आन्तरिक व्यवस्था

का भी युद्ध नहीं कर सकता, जो दूसरे देशों की दौड़-धूप देख कर भी जागृत होने के बराबर भी चैतन्यता प्रदर्शित नहीं करता, वह समाज मरने ही योग्य है, मरने ही योग्य है।

ऐ सभा, संस्था, पक्ष और पार्टियो !

चतुरता पूर्वक सब विरोध को दबादो। भीतरी अभेद छोड़ कर ऐक्य की रचना करो। भारत माता का मुख मंगलमय होने से भले ही उसके गुण गान से आकाश गूँज उठे, पर हिन्द सुन्दरी के शोणित में, प्रकृति से ही फूट का रोग भरा हुआ दृष्टि पड़ता है। पहिले मरहटे और राजपूतों ने तथा बाद में मुसलमानों ने अपनी आत्म प्रशंसा तथा फूट से सब कुछ गँवाया।

आज 'पार्टी' वाले तथा क़ौमी हक़ के स्वार्थी अपने स्वार्थों से हाथ न खींच कर, देश को छिन्न-भिन्न करने बैठे हैं। देशी राजे और 'हाँ हुजूर' लोग मान तथा पदवियों के गुलाम अपनी 'पाँचों घी में रखने वाले' कौमी 'फार्स' के अगुआ तथा 'पढ़े बहुत पर गुने न कभी' ऐसे ग्रेजुएट देखो! विपत्ति के समय देश को धोका न देना!

इस समय केवल धर्म ही भारतवर्ष को बचा सकता है।

एकता का धर्म,
अहम्पन के त्याग का धर्म,
स्वार्थ-त्याग का धर्म,
स्याद्वाद का धर्म,
वीरता-निर्भयता का धर्म,

क्रिया-शीलता (कर्म-योग) का धर्म,

वही धर्म-फिर उसका नाम चाहे जो कुछ रख लो—

वही धर्म मनुष्यत्व और देश को बचा सकेगा।

भारतवासियो—

अभिमान छोड़ कर, व्यावहारिक ऐक्य का आदर करो।

पार्टी छोड़ कर परम अर्थ को ग्रहण करो।
एक ही आवाज से बोलो।
एक ही मार्ग पर चलो।
एक ही टेक को पूजो।

भिन्नता, केवल कार्य-क्षेत्र की जिम्मेदारी लेने में रक्खो।

कुछ लोग विद्या-वृद्धि की योजना में लग जाओ। कुछ लोग समाज-सुधार के युद्ध में जुट जाओ। कुछ लोग व्यापार व्यवस्था की लड़ाई लड़ो। कुछ लोग भीतरी ऐक्यता के चौकीदार बनो।

थोड़े और केवल थोड़े ही जो परीक्षा की कसौटी पर कसे जाकर, लोकमान्य हो चुके हैं, केवल उनको ही राजनैतिक युद्ध में लड़ने दो। उन्हें तुम श्रद्धापूर्वक केवल अपनी सम्मति देते रहो।

प्रत्येक भारतवासियो !

तुममें से अधिकांश ने अन्न का कुछ भी बदला नहीं दिया, तुमको वे रोटियाँ अवश्य फूटकर निकलेंगी।

देशभर की श्राप तुम्हारे ऊपर पड़ेगी।
अभी भी प्रायश्चित का समय है।
अभी भी बाजी हाथ में है।

उठो जागो! कमर कसो;
प्रान्त प्रान्त तथा गाँव गाँव में ऐक्य, विद्या, समाज-सुधार तथा उत्साह का मंत्र फूँक दो।
लोगों को ज्ञान-चक्षु दो।
लोगों में एकता की बिजली भरो।
लोगों को उत्साह की शक्ति दो।

लोगों के लिये अन्तर्व्यवस्था का कार्य-क्षेत्र तैयार करो। नाच, रंग, आतिशबाज़ी, विवाह, उत्सव इत्यादि बातों में खर्च करने से लोगों को रोको। केवल विद्या और देशोन्नति के कार्यों में ही खर्च कराओ। गाँव गाँव, घरों घर घूम कर फंड एकत्रित करो। लक्ष्मी के छूने से यदि पाप लग जाय तो पीछे प्रायश्चित लेकर धो डालना। पाप वहीं चिपटता है जहाँ स्वार्थ का कचरा रहता है।

शुद्ध हृदय को तो पाप लगता ही नहीं है।

यदि लग भी जाय तो एकाध तप से निकाल बाहर कर देना।

समस्त भारतवासियों का आन्तरिक मैल धो डालो।

स्त्री पुरुष तथा बालकों के हृदय में नई **शक्ति फूँक दो।**

सन्देह, स्वार्थ, लोभ अभिमान तथा सुस्ती के पीछे शत्रु होकर पड़ जाओ।

साधुओ, पत्र-सम्पादको और जातीय नेताओ!

देश के अन्दर का कचरा साफ करने और उसमें शक्ति उत्पन्न करने का काम तुम्हारा ही है। **इसलिये इस कार्य को इसी समय हाथ में ले लो।**

आज तुम्हारे अन्दर हुनर या बल कुछ भी नहीं है, एक मात्र 'पाप' है। अरे, निकाल दो, निकाल दो, 'पाप' के इस कल्पित 'डर' को, क्योंकि पाप 'ऊँघते हुए' तथा 'प्रमादी' का ही खोपड़ी पर चढ़ता है! 'जागते हुए' तथा 'शक्ति-शाली' से तो पाप दूर भागता है। राजनैतिक प्रवृत्तियाँ, युद्ध समाज व्यवस्था, इन सबमें यदि पाप ही था तो चौबीस तीर्थङ्करों ने क्या करने के लिये, क्षत्रिय कुल में ही जन्म लिया था।

तुम शताब्दियों तक विचार कर करते मुर्दार हो गये हो;

अब तो प्रवृत्ति मार्ग के क्षत्री बनो!

इसमें ही जीवन की सफलता है।

आखें हों तो देखो कि—

प्रत्येक समाज को समयानुकूल अपने अपने सामाजिक नियमों का स्वरूप बदलना पड़ा है।

युग ने पल्टा खाया है!

आज ही से कमर कस लो। अपनी सन्तानों को तैयार करो। शङ्का, भय और पाप के डर को तिलांजलि दे दो।

अपनी सन्तानों को बड़ी उमर तक अविवाहित रखकर बलवान, उत्साही, बुद्धिमान् और साहसी बनाने में पृथ्वी आकाश एक कर दो।

शक्ति दायक ज्ञान का खूब प्रचार करो,
युवाओंको कुश्तीबाज पहलवान बनाओ,
ऐक्यता के बन्धन को खूब दृढ़ करो,
उत्साह और 'स्वदेशी' की आग में जलो;

तभी

तुम बदले हुए युग के साथ आने वाले असह्य संकट सहन कर सकोगे और जीवित रह सकोगे।

एक बार फिर से सुनलो!
दूसरी बार फिर से सुनलो!
तीसरी बार फिर से सुनलो!

अब नहीं जागोगे तो अवश्य मरोगे।

देश-काल अब बिलकुल बदल गया है;
भयंकर से भयंकर तलवार सिर पर घूम रही है।

मैयालाल जैन।

* श्रीयुत वी० एन० शाह की 'मृत्यु ना भय नथी' नामक पुस्तक से अनुवादित। —अनुवादक।

परवार जाति की आर्थिक परिस्थिति कैसे सुधरेगी ?

(लेखक—श्रीयुत गुलाबचन्द्रजी बैद्य, अमरावती)

प्रिय बन्धुओ ! यदि आप अपनी जाति की आर्थिक परिस्थिति पर मोटी निगाह भी दौड़ावें तो आपको संतोष के बदले महान् अशान्ति का ही सामना करना होगा । परन्तु अब अंदाजिया निशान लगाने की जरूरत नहीं है । जाति के सौभाग्य से हमारे स्थानीय श्रीमान् सिं० पन्नालालजी महोदय ने अपना तन मन धन कई अंशों में लगा कर परवार-जाति की डिरेक्टरी तैयार कराई है। इस डिरेक्टरी से जाति की असली दशा समझने के अभाव की बहुत कुछ पूर्ति हो चुकी है। लेकिन हमारे जातीय बन्धुओं का कर्तव्य है, कि जो चीज़ हम सबके निमित्त हार्दिक प्रेम से निर्मित हुई है, उससे अपनी परिस्थिति की यथार्थता का अनुभव करते हुए उसके सुधारने की कोशिश में भिड़ पड़ें। जब तक हम लोग ऐसा नहीं करते तब तक मानना पड़ेगा कि परवार-जाति को अपनी हीन दशा पर अभी तरस नहीं आया है। डिरेक्टरी के तैयार होने से लेखकों को जातीय परिस्थिति पर अपने विचार प्रदर्शित करने की अच्छी सुविधा हो गयी है।

यों तो पहले ही अनुमान था, कि परवार-जाति की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। तथापि उक्त डिरेक्टरी से यह बात स्पष्टतया विदित हो जाती है कि परवार-जाति के पुरुषों की संख्या कुल २५४८४ है। जिनमें ८७० मनुष्य ऐसे हैं जो उत्तम श्रेणी में गर्भित हैं। अर्थात् जिनकी आर्थिक स्थिति एक लाख या इससे अधिक है। यदि कल्पना गलत नहीं है तो यह संख्या जो उत्तम श्रेणी में गर्भित है वह इस रूप में कि प्रति पुरुष की औसत में एक लाख या इससे अधिक सम्पत्ति उसके हिस्सों में विभक्त की जा सके। मेरी समझ में घर पीछे संपत्ति का अनुमान लगाकर उन घरों में जितने पुरुष हैं वे उत्तम श्रेणी में गिने गये हैं। एक लाख से ऊपर हैसियत वाले कई गृह ऐसे भी हैं जिनकी कुल सम्पत्ति एक लाख से कुछ ही ऊपर है और उन घरों में कहीं कहीं इतने अधिक पुरुष हैं कि उनके हिस्सों में जो सम्पत्ति असली है उसके अनुसार वे मध्यम श्रेणी में ही गर्भित हो जाते हैं। ऐसे गृह परवार-जाति में बहुत कम हैं जिनकी जायदाद एक लाख से इतनी अधिक हो कि वे अपने जायदाद में हक रखनेवालों को सम्पत्ति बाँट देने पर भी उत्तम श्रेणी में ही गर्भित हो सकें। ऐसी परिस्थिति में ८७० पुरुषों का जितनी जायदादों से सम्बध है यदि उक्त जायदाद इन ८७० पुरुषों में बराबर बाँट दी जाय तो शायद ही है, कि उनके पल्ले में एक एक लाख की स्टेट विभक्त हो सके। और उनकी गणना उत्तम श्रेणी में की जा सके। सारांश यह कि उत्तम श्रेणी वाले ८७० पुरुषों की कुल सम्पत्ति का अंदाजा है ८ करोड़ ७० लाख। सम्भव है सिवनी और खुरई के श्रीमानों की सम्पत्ति से किसी को मेरा कथन भ्रमोत्पादक प्रतीत हो। परन्तु उन्हीं स्थानों में एक लाख से ऊपर की जायदाद वाले घरों में कितने पुरुष हैं ! इस पर भी विचार करें। मेरी कल्पना गलत मान लेने पर भी लगभग फी ३० पुरुषों में १ पुरुष की औसत उत्तम श्रेणी की पड़ती है।

परवार-जाति व्यवसाय प्रधान जाति है। अगर इसके उत्तम श्रेणी के श्रीमानों की सम्पत्ति और व्यवसाय की तुलना अन्य

व्यापार प्रधान जाति के उत्तम श्रेणियों के पुरुषों के साथ की जाय तो परवार अपनी उत्तम श्रेणी भी उनके सामने जघन्य प्रतीत होने लगे। जितनी सम्पत्ति हमारी जाति के उत्तम श्रेणियों के पुरुषों में विभक्त है, उतनी कुल सम्पत्ति अन्य व्यापार प्रधान जाति की उत्तम श्रेणीमें गिने जाने वाले एक एक श्रीमानों के पास है। इतने पर भी हमारी जाति के उत्तम श्रेणी में गिने जानेवाले श्रीमान् अपनी स्थिति पर गर्व करते हुए व्यावसायिक उन्नति में पड कर झंझट उठाना नहीं चाहते। वे तो सिर्फ अपने पूर्वजों के द्वारा उपार्जित सम्पत्ति की रखवाली करना जानते हैं। रकम के सूद, मालगुजारी की आमदनी तथा थोड़ा सा और भी आमदनी का जरिया निकाल कर अपने बड़प्पन-लायक गुजर-बसर करके जायदाद को ज्यों की त्यों जिसने कायम रख ली तो बस उसके पुरुषार्थ की इतिश्री समझिए। जिस जाति के श्रीमान् जिनके पास पूँजी की कमी नहीं, चाहे जिस व्यापार को करना चाहें, या चाहे जिस स्थानों में दुकानें, या कोई कारखाना खोलना चाहें, तो बात की बात में खोलने की शक्ति रखते हुए भी ऐसी बातों में पड़ना मानों ज्यादह हाव-हाव करना है, ऐसा समझ कर वे सदैव बचने की कोशिश करते रहते हैं, तब उस जाति के हम सरीखे पूँजी के लिये तरसने वालों की तो बात ही क्या कहना है? पूँजी हो जाय तो शायद आकाश-पाताल एक कर दें! पर यह बात नहीं; पूँजी न होने तक ही बड़ी २ आशाओं के घोड़े दौड़ाये जाते हैं। पूँजी होते तक ही जाति के पुराने श्रीमानों के अनुकरण में ही नये श्रीमान् अपना बड़प्पन समझने लगें, फिर तो उन्हें भी ज्यादह काम काज करना हाव हाव जान पड़ेगा। असल में समयानुकूल व्यापार करना हम जानते ही नहीं हैं। जो कुछ करते हैं वह परम्परा से हमारे घरों में होता आया है या अपनी जाति के अन्य लोगों की देखा-देखी। इसका फल यही होता है, जैसा कि प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहा है।

यहाँ पर कोई आक्षेप करने लगेंगे, कि अगर उत्तम श्रेणी वाले ज्यादह धन-वृद्धि के हाव-हाव में नहीं पड़ना चाहते, यह तो बहुत उत्तम बात है। अपनी स्थिति में संतोष कर लेना ही सुख है। यह तो धर्मानुकूल वृत्ति है। और प्रचुर धन की लालसा रखना तथा उसके लिये निरंतर आकुल होना धर्म के प्रतिकूल है। परन्तु श्रीमानों की ऐसी स्थिति वास्तव में नहीं है कि उन्हें हृदय से सचमुच ही मोह कम हो गया हो और वे अपने धर्म के अनुसार भोगोपभोग की सामग्री या सम्पत्ति का परिमाण अपने परिवार की आवश्यकता पूर्ति होने योग्य सीमा में मर्यादित करके, सरल जीवन व्यतीत करते हुए शेष सम्पत्ति और उससे होने वाली आय को जातीय समझ उसे धर्म, देश समाज हित में लगाते हों। श्रीमानों में तो और भी अधिक लालसा और आकुलता पाई जाती है। वे अगर बड़े २ उद्योग धंधों में नहीं पड़ते हैं तो इसका कारण योग्यता का अभाव है न कि संतोष? वरना बतलाइए, कि आपकी जाति में ऐसे कितने श्रीमान् हैं जो अपनी प्रचुर सम्पत्ति से मोह हटाकर सादा जीवन व्यतीत करते हुए शेष आय का किसी भी जातीय उत्थान में सदुपयोग कर रहे हैं? जाति के पचीस हजार पुरुषों में २०३७ के लगभग पुरुष बिलकुल बेकार हों, ३१५८ पुरुषों के पास कम से कम दो सौ रुपयों की भी सम्पत्ति न हो और १३६२४ पुरुषों में इने-गिने व्यक्तियों को

छोड़कर अधिकांश की सम्पत्ति दो सौ रुपयों से कुछ ही ज्यादह हो, उस जाति में श्रीमानों का अस्तित्व ही न माना जाय तो अनुचित नहीं। अपनी सम्पत्ति का अधिकांश हिस्सा जातीय उत्थान में लगाने वाले बहु संख्यक श्रीमान् आज तक पैदा हो गये होते तो जाति की ऐसी शोचनीय आर्थिक दुर्दशा न होती।

हम में जातीय-प्रेम नाम को और केवल ढकोसले में ही रह गया है। जातीय व्यक्तियों की दुर्दशा पर श्रीमानों का असल में ध्यान ही नहीं जाता। उन्हें क्या जरूरत है कि फालतू बातों में ध्यान देवें, अगर ध्यान भी पहुँचा तो उन्हें दूसरों की दुरवस्था पर हँसी आती है, एक विनोद का साधन होजाता है। अगर किसी जातीय उत्थान प्रेमी शिक्षितों के सामने ऐसा कोई मौका आया तो शाब्दिक पश्चात्ताप और बाहरी सहानुभूति बतला दी तो प्रेम की इतिश्री ही समझिए। जातीय कर्तव्य बिरादरी के लोगों के साथ सिर्फ न्योता या जेवनार देकर ही पूरा कर लिया जाता है। इससे अधिक कोई जातीय कर्तव्य अपने लिये है, वे ऐसा नहीं समझते। अपने मन की भावना और उसके अनुसार मामूली व्यवहार तो हमारा परस्पर में नाम मात्र का है। पर असल में देखा जाय तो हम अपनी जाति के गिरे हुए व्यक्तियों का उठना ही पसंद नहीं करते। क्योंकि वे गिरी हुई हालत में भी श्रीमानों से दबना नहीं चाहते, बल्कि जैसे माला के सब दाने एक समान हैं वैसे ही बिरादरी के छोटे बड़े श्रीमान् गरीब सब एक सरीखे हैं, ऐसी धारणा किये रहते हैं। तब अगर वे गिरी हालत से सँभल जाँय तो कौन जाने हमारे साथ में कोई गुस्ताखी न कर बैठें।

"क्या कहा ? जाति के गरीबों को और कर्ज़ !! नाँ, हाँ, यह बात फिर न कहना !!! चाहे तो एक के बदले और दो मर्तबे घर पर जीम जाँय, पर रुपये माँगने की बात अब जबान पर मत लाना।" "अरे भैया, तुम्हारे रुपैया कहुँ भगत हैं, पर का करो जाय ई बखत ऐसी अड़चन है, कि सिलक में दस पाँच रुपैया भी रहन नहीं पाऊत। नोट !!! उसे तो अभी रजिस्ट्री से भेजना है।" "भाई हमने तो अब लैन-दैन सब बंद कर दिया है और न अभी सिलक में रकम है फिर देखा जायगा।" "फलाने की तरफ इतना पावना है, उसके तरफ इतने हैं, उसने तो देने का अभी तक नाव ही नहीं लिओ। आपस में देकर बुराई नहीं करना है हम किस किससे बुराई करें।" "जात वारों को नौकर कभी रखे न उससे कुछ कहते बने न सुनते।" "आये थे सारे दाना माँगत अब देखो तो कितनो गुमान ? लखपती के दादा बन गये हैं हम ही ने सहारा दओ और अब चले बराबरी करवे।" "अरे मनुआँ ? कै बार कही के आपस वारों की दुकान से कोई चीज़ न लाये करे। सरमा-सरमी में न भाव करत बने न कछु। मनमाने दाम लेत हैं। आपस को जरा भी ख्याल नहीं राखत।"

"अरे, का धरो सभा में; चार दिन चाँदनी और फिर अँधेरी रात। फालतू हैं, सो लोगन को गरयाउत फिरत हैं।" "अरे जे सब पैसा ऐंठबे के ढंग आयँ, लोग बातन में आके कछु दे डालें।" "सभा भई जबसे तो और नाकन दम होगई। जो देखो सो बड़ों को खरी-खोटी सुनाऊत। जे तो जा चाहत हैं कि हम अपनो सब धन इने दे डालें।" "काय के पंडत फंडत लगाये। कछु करतन धरतन नहीं बनत सो अपनी नौकरी के लाने सब तजबीज जमावे की कोसिस करत, और है का ?"

इस प्रकार भावनायें और उनके अनुसार व्यवहार हमारी जाति के अधिकांश उत्तम और मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों में पाये जाते हैं। अब रहे जघन्य और कनिष्ठ श्रेणी के व्यक्ति, सो वे अधिकतर आजीविका की चिंता और प्रयत्नों में ही तल्लीन रहते हैं। उनमें भी प्रायः परस्पर सहयोग और प्रेम का अभाव है और वे श्रीमानों को खरी खोटी कहा करते हैं। इन श्रीमानों के अनुकरण पर चलने वाले ही बहुत हैं। उन्हें अपनी स्थिति सुधारने की फ़िक्र अवश्य है पर प्रयत्न वैसे नहीं करते। आर्थिक परिस्थिति दिन पर दिन उनकी ख़राब होते जाने के कारण धार्मिक नैतिक सामाजिक आदि सभी बातों में वे पतित होते जारहे हैं। "घर में चार कन्यायें हैं, व्यवसाय में केवल गुज़र ही बड़ी मुश्किल से होती है। विवाह के लिये रुपया नहीं है, कोई क़र्ज़ नहीं देता है। थोड़े में विवाह होने की जाति में प्रथा नहीं है। अच्छे वरों की साँके कुंडली नहीं सुरझतीं।" "धर्म सेवन को बुद्धि है, पर पेट के लिये सबेरे खोंमचा लेकर घूमना है या किसी ग्राम में बंजी के लिये जाना है।" "लड़के नौजवान होगये हैं, पर गरीबी के सबब उनको कोई अपनी लड़की नहीं ब्याहते"। "स्थिति मध्यम है। जो व्यवसाय करते हैं उसमें तन्त नहीं रहा है। थोड़ा क़र्ज़ भी भार होगया है। लड़कों को मुफ्त शिक्षा दिलाने के लिये शरम के मारे भेजने का संकोच हो रहा है। शायद नाम सुनकर भरती करते हैं या नहीं।" "कपड़े, किराने और गल्ले के स्थान पर बहुत सी दुकानें बड़ी लागत से खुलती जा रहीं हैं। टुटपुँजिया आहें भरने लगे। दूसरा कोई रोज़गार नज़र आता नहीं। अधिक पूँजी पास में नहीं है। घर में चार जने खाने वाले हैं। क़र्ज़ के रूप में भी पूँजी मिलने की सुविधा नहीं है। मज़दूरी बाप-दादों ने भी नहीं की। नौकरी कहीं लगती नहीं।"

इस प्रकार की और इससे भी अधिक गई बीती दुर्दशा में मध्यम और कनिष्ठ श्रेणी के व्यक्ति फँसे हुए हैं। ऐसी स्थिति में जाति के कानों पर कितनी ही चिल्लाहट क्यों न की जाय वह निष्फल इसी लिये होती है, कि जाति की आर्थिक परिस्थिति बहुत शोचनीय हो रही है। यही सब अनर्थों और दुराचारों की जड़ है। आर्थिक परिस्थिति को जिन २ जातियों ने सुधार लिया है, वे ही जातियाँ आज सब बातों में उन्नत दिखलाई दे रहीं हैं। भारतवर्ष की ऐसी समुन्नत जातियों में पारसी जाति इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है। उस जाति के कर्तव्य परायण श्रीमानों ने समयानुकूल व्यवसाय तथा उद्योगों में पड़कर जातीय उन्नति में सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है। उसके नीचे कच्छी, बोहरा, गुजरात तथा मारवाड़ में रहने वाली कई जातियाँ हैं जिनमें जाति की आर्थिक परिस्थिति सुधारने का श्रीमान् लोग बहुत कुछ कर्तव्य पूरा करते रहते हैं।

हमारी परवार जाति के जघन्य और कनिष्ठ श्रेणी के व्यक्ति अपने आपही अपनी जाति के श्रीमानों की सहायता के सुधार भी लें तब भी वे वास्तव में जातीय उन्नति में भाग नहीं ले सकेंगे। जब तक कि हमारी जाति के वर्तमान उत्तम और मध्यम श्रेणी के श्रीमान् उनकी आर्थिक परिस्थिति और अन्य जातीय सुधारों में अग्रसर नहीं होते। क्योंकि जाति का वास्तविक और मूर्तिमान आदर्श श्रीमानों के आचार विचार ही हैं। बच्चों के लिये आदर्श उनके पालक होते हैं और जाति के मामूली व्यक्तियों के आदर्श जाति के श्रीमान् ही होते

हैं । पुराने श्रीमान् आदर्श रूप में जाति के साथ में जिस प्रकार की भावना और व्यवहार को पसंद करते हैं, उसी का अनुकरण अपनी स्थिति सुधारने पर नये श्रीमान् भी करने लगते हैं । अर्थात् जाति के उद्धार की या पतन की सब बागडोर कम से कम वर्तमान काल में तो श्रीमानों के ही हाथों में है और उनकी स्थिति का दिग्दर्शन आप देख ही चुके हैं। अब भी सब मौका हाथ से नहीं चला गया है। अभी कुछ समय तक आप अपनी स्वेच्छा से ऐसे कार्यों में प्रवृत्त होकर नाम और यश उपार्जन करते हुए जाति को दीर्घ काल तक जीवित रखने योग्य बना सकते हैं। वरना भविष्यत् में लाचारी की सूरत में ये सब बातें करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा । इसे केवल चिलमी गप्पें ही न समझिये । जरा आँख खोल कर संसार के परिवर्तनों पर सूक्ष्म दृष्टि से देखिये, तो मेरा कथन आप लोगों को असत्य प्रतीत न होगा। चाहे 'अभी दिल्ली दूर है', कहकर आप संतोष भले ही कर लीजिए लेकिन एक दिन अवश्य ही आनेवाला है, कि जैन समाज तो क्या सारा संसार जैन धर्म के परिग्रह परिमाण व्रत को मानने के लिये बाध्य होगा।

मेरे कथन से किसी की यह धारणा हो, कि मैं अपनी जाति के श्रीमानों का द्वेषी हूँ, सो बात नहीं; और न द्वेष--बुद्धि से किसी के प्रति लिख रहा हूँ। जाति में जैसी परिस्थिति देखी जाती है उसी का संक्षेप विवेचन अपनी बुद्धि के अनुसार किया गया है । सबसे पहले जाति के श्रीमानों को अपनी जाति के बेकार दो हजार पुरुषों को रोजगार—धिंधले से लगाने का कोई सामुदायिक प्रयत्न करना चाहिए । बेकारों की वृद्धि ही श्रीमानों को भविष्यत् में चौपट कर बैठेगी। इस बात से हमें सदैव शंकित रहना चाहिए। अगर जाति के द्वारा ऐसा कोई कार्य का सिलसिला जारी हो गया तो जाति के निर्धन व्यक्तियों की आशा हरी--भरी होकर उनके दिलों में अपने श्रीमानों के प्रति पूज्य और आदर भाव का श्रोत उमड़ता रहेगा । वरना ऐसे लोग अपनी जाति और धर्म का बहिष्कार करके आपको श्राप देते हुए पेट भरने के लिये ही विधर्मी होजायँ तो कोई असंभव बात नहीं। तब इसका सारा दोष जाति के श्रीमानों के ही प्रति रहेगा जब कि वे उनके लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं करते ।

बेरोजगारियों को और जिन्हें पूँजी की जरूरत है ऐसे व्यक्तियों को श्रीमान् लोग अगर स्वयं ऐसे कार्य में सम्पत्ति का यथाशक्ति उपयोग करने में असमर्थ हों तो जरा रूढ़ियों को कम करके मंदिरों का रुपया चाँदी-सोने के मुलम्मे के सामान बनवाने में, या मंदिरों को राजभवन के तुल्य सजावट में खर्च करना बंद करके उन्हीं रुपयों को बेकारी की वृद्धि रोकने तथा पूँजी वालों को पूँजी देने का मार्ग साफ कर देने की उदारता करें। प्रत्येक स्थान के श्रीमान् मंदिरों की नकद सम्पत्ति अपने यहाँ न रखकर उसको एकत्रित करके एक स्थान पर एक जातीय बैंक प्रस्थापित करें। इससे दो लाभ होंगे; (१) मंदिरों का रुपया जो बड़े आदमियों के यहाँ जमा रहता है वह कुछ पीढ़ियों के बाद उन्हीं का होजाता है । कई श्रीमान् बिना सूद दिये ही बर्तते हैं और कई सूद देकर वर्तते हैं। कोई श्रीमान् हिसाब प्रगट नहीं करते और कोई हिसाब पेश करते हैं तो मनमाना। अर्थात् पर्यूषण पर्व में मंदिरों की सम्पत्ति के बाबत ही बिरादरी में

प्रति वर्ष हरएक स्थानों में अनेक झगड़े खड़े हुआ करते हैं वे न हुआ करेंगे।

(२) दूसरे सब स्थानों का रुपया एकत्रित होकर बैंक प्रस्थापित होने से मंदिरों की रकम भी सुरक्षित रहेगी । किन्तु जाति के बेकार और पूँजी वालों को उनकी साख के अनुसार पूँजी मिलने का बड़ा भारी सुभीता हो जायगा।

बैंकों के क़ायदों के अनुसार उक्त सब कार्यवाही होना चाहिए। प्रत्येक स्थान के मंदिरों के रुपयों पर बैंक से सूद मिलना चाहिए। श्रीमान् लोग भी अपनी रकमें उसमें सूद के लिये रखना चाहें तो रखें । इस तरीके से मंदिरों का रुपया सुरक्षित रह सकता है और श्रीमानों को भी आपस में क़र्ज़ देकर बुराई उठाने की जरूरत न पड़कर उनकी रकमों से जातीय बैंक की मारफत जाति के बेकार और पूँजी चाहनेवाले लाभ उठा सकते हैं।

बेकार और पूँजी चाहने वाले व्यक्तियों को केवल पूँजी का बंदोबस्त कर देने से ही काम न चलेगा। इस विषय में मुझे अमेरिका के सबसे बड़े धन कुबेर की एक बात याद आरही है। आजकल अपने देश में सबसे ज्यादह मोटरें जिस कंपनी की अमेरिका से आई हैं और बहुत सस्ते भाव में मिलने लगी हैं उस "फोर्ड मोटर के कारखाने के मालिक फोर्ड साहब पहले बिलकुल निर्धन थे, पर अब उनके पास अरबों की सम्पत्ति होगई है। उन्होंने किसी समाचार पत्र में याचकों को जो उत्तर दिया था वह मनन करने योग्य है। सारांश इस प्रकार है—"मेरे पास प्रति दिन सैकड़ों नहीं हजारों की संख्या में ऐसे पत्र आते रहते हैं जिनमें अमेरिका, योरपवासियों तथा अन्य देशों के लोगों के भी पत्र रहते हैं। उन सब पत्रों में लोग आर्थिक सहायता की या कोई काम-धंधे से लगाने की याचना कोई अपनी पारिवारिक कठिनाइयाँ बतला कर द्रव्य की सहायता चाहते हैं, तो कोई मज़दूरी इत्यादि आजीविका के साधन चाहते हैं। अतएव इन सबका अर्थ याचक और बेकारों के पत्र का अलग २ उत्तर देना मेरी शक्ति के बाहर है। इन सबके पत्रों के उत्तर में मैं उन लोगों को सूचित करना चाहता हूँ, कि वे मुझसे आर्थिक सहायता की आशा न रखें । मैं अपनी सम्पत्ति को आप लोगों की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा दूँ तो आप में से कुछ व्यक्तियों की तात्कालिक कठिनाइयाँ दूर हो जायँ परन्तु फिर भी आप लोगों की परिस्थिति ठीक न होसकेगी । आप अपने पुरुषार्थ से विमुख होकर आलसी हो जावेंगे। जो नवयुवक व्यापार उद्योग के लिये पूँजी चाहते हैं, वे पूँजी प्राप्त करके अनुभव के बिना पूँजी भी खो सकते हैं । अतएव मैं आप लोगों के लिये ऐसे ही कामों में सम्पत्ति लगाने के प्रयत्न में हूँ, जिनमें आप सम्मिलित होकर अपनी आर्थिक कठिनाइयों को सदा के लिये दूर कर सकते हैं। तात्काकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति चाहने वाले भी उन कामों में सहयोग करके दूसरों के पास बिना हाथ पसारे अपने आपको अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।" इस कथन के बाद फोर्ड साहब ने अलग २ स्थानों में बड़े २ कारखाने खोलने का उल्लेख किया है। हमें भी पूँजी की व्यवस्था के साथ में किस स्थान में कौनसा उद्योग करना लाभदायक है या कौन व्यक्ति किस व्यवसाय को कितने अंश में पूरा कर सकता है इन सब बातों का खयाल रखना होगा तथा जिनको पूँजी सौंपना उचित नहीं उनको किस काम में लगाया जाय इसका भी प्रबन्ध करना पड़ेगा। हम अपनी जाति की आर्थिक परिस्थिति को सुधारने में तभी समर्थ होंगे जब कि ये सब बातें कार्य-रूप में परिणत हों।

क्या चाहिये ?

विश्व के स्वामी प्रभो,
मैं क्या कहूँ क्या चाहिये ?
पर मुझे सबसे प्रथम अब,
भक्त होना चाहिये ॥
जगत में रह कर मुझे यह,
ज्ञान होना चाहिये ।
सब टले पर नित्य तेरा,
नाम होना चाहिये ॥१॥

विश्व-माँ के चरण में अति,
प्रेम होना चाहिये ।
गुरु जनों का मान मुझमें,
पूर्ण होना चाहिये ॥
सुख मनाना दूसरों के,
सुख में आना चाहिये ।
और दुख में आँसुओं के,
बूँद आना चाहिये ॥२॥

सब बराबर बन्धु अपने,
ध्यान होना चाहिये ।
बन्धु के नाते सभी का
मान होना चाहिये ॥
विपति में साहाय्य सबको,
स्वयं देना चाहिये ।
ध्यान इसमें उचित अनुचित,
का, न करना चाहिये ॥३॥

सीखना सतज्ञान मुझको,
इष्ट होना चाहिये ।
बुरे कर्मों में कभी यह,
मन न होना चाहिये ॥
बोलने को सरस मीठे,
वचन होना चाहिये ।
क्रोध में भी कटु वचन,
मुख, में न आना चाहिये ॥४॥

बली हो व्यायाम करके,
पुष्ट होना चाहिये ।
स्वप्न में भी पर किसी को,
दुख न देना चाहिये ॥
अन्य की सम्पत्ति मुझको,
तुच्छ होनी चाहिये ।
दूसरों के यश विभव में,
हर्ष होना चाहिये ॥५॥

साइकिल, मोटर तथा,
टमटम, न मुझ को चाहिये ।
पैदल चलूँ; मजबूत मेरे,
पैर होना चाहिये ॥
जो मिलें चीजें बनी मुझ
को, नहीं वे चाहिये ।
पर कलाई की कला का,
ज्ञान होना चाहिये ॥६॥

घृणा से न्यारा रहूँ मैं,
प्रेम धारो चाहिये ।
प्राण से बढ़ कर मुझे,
निज देश प्यारा चाहिये ॥
देश में परदेश में भी,
वेश देशी चाहिये ।
मातृ-भाषा, धर्म देशी,
कर्म देशी चाहिये ॥७॥

सुख तथा दुख में प्रभो बस
धैर्य होना चाहिये ।
जग मिले, जाये सभी पर,
न्याय होना चाहिये ॥
मित्र पर क्या शत्रु पर भी,
दया होनी चाहिये ।
पर कभी अन्याय सहकर,
चुप न रहना चाहिये ॥८॥

धन तथा अधिकार औरों
का, न लेना चाहिये।
स्वत्व रक्षा के लिये पर,
काल होना चाहिये॥
क्षुद्र कीड़ा भी न मुझसे,
दुखित होना चाहिये।
सिंह से भी युद्ध की पर,
शक्ति होनी चाहिये॥९॥
नित्य यह जीवन जगत् में,
स्ववश होना चाहिये।
पूर्व ही दासत्व के वह,
नष्ट होना चाहिये॥
जीव के उपकार में ये,
हाथ बढ़ना चाहिये।
कर्म के मैदान में,
युग पाँव अड़ना चाहिये॥१०॥
हाथ से जावे जगत,
पर, तू न जाना चाहिये।
दीनता, सुख-दुख, विभव में
याद आना चाहिये॥
अंत के पहिले प्रभो तव,
दरश होना चाहिये।
विरस जीवन दास का प्रभु,
सरस होना चाहिये॥११॥
—सूर्य्यभानु त्रिपाठी, 'विशारद।'

परवार-बन्धु का भविष्य।

(लेखक- श्रीयुत बाबू लक्ष्मीचन्दजी जैन, बी. ए.)

हर्ष का विषय है कि हमारी परवार समाज में कुछ समय से समाज-सुधार की चहल-पहल हो रही है। प्रतिवर्ष परवार-सभा का अधिवेशन कराया जाता है और समाज के उत्सुक और सेवा-प्रेमी पुरुष एकत्रित होकर समाज की उन्नति के हेतु अनेक उपयोगी प्रस्ताव बहु सम्मति से स्वीकृत कराते हैं। यदि विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि गत तीन चार वर्षों ही में परवार-सभा ने कम से कम समाज को सोती हुई अवस्था से जाग्रत तो कर दिया।

परवार-सभा के अन्य उचित कार्यों में से सबसे प्रशंसनीय और महत्त्व का कार्य "परवार-बन्धु" मासिक पत्र का प्रकाशित कराना है। यद्यपि आज कई वर्षों से "परवार-बन्धु" निकलता है परन्तु अनेक कारणों से यह समाज की कुछ भी सेवा नहीं कर सका। अब हमारे सुयोग्य समाज प्रेमियों ने पिछली त्रुटियों का अनुभव करके परवार-बन्धु को ठीक रास्ते से लगा दिया है।

सामाजिक पत्र और खास करके जब कि वह समाज की सर्वश्रेष्ठ संस्था की ओर से निकाला जाय— तो उसे समाज का सच्चा ग्रामोफोन होना चाहिये। पत्र तभी समाज की सच्ची सेवा कर सकता है जबकि उसमें समाज की आवश्यकता के अनुसार अनुभवी और शिक्षाप्रद बातों का दिग्दर्शन हो। इस ध्येय की पूर्ति के लिये पत्र के सम्पादक व अन्य कार्य-कर्त्तागण समाज की पलटती हुई काया के सम्मुख हों तभी वे समाज का सच्चा चित्रपट अंकित कर सकते हैं अन्यथा नहीं।

यही कारण है कि थोड़े ही मास में हमारा "परवार-बन्धु" आज इस प्रकार सुन्दर और चित्ताकर्षक हो गया है कि जिसे देखकर हमें गर्व और आशा होती है कि अब इसका भविष्य अवश्य ही होनहार और सच्चा पथ-प्रदर्शक होगा।

यह तो प्रायः आज कल सभी जानते हैं कि पत्रों और गजटों से बड़ी दूर दूर की और नई नई बातें मालूम होती हैं; परन्तु बहुत थोड़े पुरुष ऐसे होंगे जिन्होंने पूर्ण रूप से इस विषय का अध्ययन किया हो कि समाज का शीघ्र उत्थान करने के लिये पत्र कितना जबरदस्त काम कर सकते हैं। और यह कार्य किस प्रकार पूर्ण रूप से सफलता के साथ किया जा सकता है। लेखक का उद्देश इस लेख से यही है कि हमारा 'परवार बन्धु' सारी समाज का रक्षक-बन्धु किस तरह हो सकता है। और केवल इस एक बन्धु से ही समाज कितनी जबरदस्त और प्रतिभाशालिनी हो सकती है। आशा है, इस लेख में यदि यथार्थ स्थिति का दिग्दर्शन और मनोभावों की स्पष्टता के लिये व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक आक्षेप आजावें तो हमारे समाज प्रेमी सज्जन क्षमा प्रदान करेंगे।

सबसे प्रथम हमें यह देखना है कि आज-कल जिस रूप में "परवार-बन्धु" निकल रहा है उससे समाज को कितना और किस प्रकार लाभ होता है। यदि गत दो तीन मासों में से किसी एक मास की "परवार-बन्धु" की प्रति उठाकर उसका अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि बन्धु के प्रायः सभी लेखादि साधारण, समयोपयोगी और समाजो-न्नति-पथ-प्रदर्शक प्रकाशित किये गये हैं। वर्तमान स्थिति में उपस्थित बाधाओं और अनुपस्थित साधनों के रहते हुए 'परवार-बन्धु' जिस सुचारु और आशातीत रूप से निकल रहा है वह अवश्य सराहनीय है। इसके लिये हमारे उत्साही और योग्य प्रकाशक मास्टर छोटेलालजी तथा सम्पादक महोदय की जितनी सराहना की जाय उतनी थोड़ी है।

कारण कि परवार-बन्धु थोड़े ही समय में नवीन, उत्साही लेखकों को उत्पन्न करके ही नहीं रह गया है। परन्तु समय २ पर उसने समाज के सच्चे शुभचिन्तक, कलम की करामात दिखाने वाले अनुभवी लेखकों के लेखों की भी अपूर्व आभा दिखलाई है।

यदि हमारी समाज हमारे सुयोग्य युगल गुलाब हितैषी, काव्यतीर्थ, वर्णीजी और उज्जितीषु आदि लेखकों के स्पष्ट और सत्य भावों का मधुपान पहले से ही करती आ रही है तो अब उसे हमारे नवीन उत्साही और समाज-हितेच्छु भाई कस्तूरचंदजी वकील, हीरालालजी वकील, अमृतलालजी तथा और भी कई नवीन भाइयों द्वारा सच्ची भावनाओं के चित्र-पट अवलोकन करने को मिलने लगे। कौन जानता है कि अभी कितने कमल अध-खिले ही नहीं परन्तु निरी बौंड़िया ही हैं।

यह बात निश्चय रूप से कही जा सकती है कि यदि "परवार-बन्धु" हमारे सच्चे, उत्साही और योग्य बन्धुओं से संचालित होता रहा और समाज ने इसे अपनाया तो शीघ्र ही वह समय आवेगा कि जब बन्धु की एक एक प्रति के लिये हमारी समाज की बात तो दूर रहे अन्य समाजों के बुद्धिमान् पुरुष भी लालायित होंगे!

दूसरी बात यह है कि बन्धु के लेख व कविताएँ ऐसी रस पूर्ण होती हैं कि कभी कभी तो यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि अमुक प्रति में सबसे उपयोगी और नवीन भाव किन महाशय के हैं।

यदि कहीं धर्म सुधा की वृष्टि होती है तो कहीं समाज का भविष्य पट अंकित होता है। यदि एक तरफ पुरुषों की उन्नति का मार्ग बताया जाता है तो दूसरी ओर स्त्रियों के सुधार की कहानी कही जाती है। कहीं प्रेम तो कहीं कर्तव्य, कहीं दान तो कहीं व्यापार,

कहीं ब्रह्मचर्य तो कहीं गृहस्थ-जीवन, कहीं बादी तो कहीं आजादी और कहीं पुक्ताछ तो कहीं विनोद, इत्यादि उपयोगी और महत्वपूर्ण विषय नवीन नवीन लेखकों द्वारा नवीन नवीन भावों की मनमोहनी मालायें बना बनाकर समाज देवी को भक्ति और भाव सहित आर्पित करते हैं। यह कैसे हो सकता है कि समाज देवी इन विविध वर्ण मय पुष्पों की गुथी मालाओं को धूल ही में पड़ी रहने दे। अवश्य ही वह इन्हें अपने गले में ग्रहण करेगी।

सबसे अनोखी बात तो यह है कि हमारा बन्धु इस समय समाज में सनसनी उत्पन्न कर रहा है। सुयोग्य लेखकों की लेखनी अब हमारी समाज के स्त्री पुरुषों के कानों में गुंजार करती है तब वे कमसे कम कुछ समय के लिये चैतन्य होकर लिखी हुई बातों पर तो विश्वास करने लगते हैं। अपनी स्थिति का सत्य ज्ञान होना ही उन्नति का मूल है। जब हमारे भाई बहिन अपनी बिगड़ी हुई स्थिति का दिग्दर्शन करते हैं तो उन्हें बुराइयों को दूर करने की भी सूझने लगती है। "परवार-बन्धु" हमारे समाज-मंदिर का दीपक है। वह प्रकाश हमारी स्थिति का ज्ञान कराता हुआ हमें ठीक मार्ग भी दिखलाता है। यह असंभव है कि अंधकार नाशक दीपक के होते हुए भी हमारा समाज-मंदिर दीप्तिमान न हो।

इतना सब कुछ होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि "परवार-बन्धु" उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। अभी बहुत कुछ करना बाकी है। पत्र को उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचाना केवल संपादक या प्रकाशक के हाथ में नहीं है। यदि समाज वास्तव में यह चाहती है कि हमारी उन्नति शीघ्रता से हो तो उसे बन्धु को तन, मन, धन तीनों से पूर्ण सहायता कर अपनाना होगा तब कहीं हमारे ध्येय की पूर्ति हो सकेगी।

सबसे प्रथम हमारे पास कम से कम एक छोटासा प्रेस होना चाहिये जिससे कि बन्धु ठीक समय पर और सुगमता के साथ प्रकाशित हो सके। यदि समाज चाहे तो पृथक् रूप से एक प्रेस-विभाग भी स्थापित कर सकती है। ऐसा करने से विशेष लाभ होगा। सबसे प्रथम तो जैसा कि ऊपर कह आये हैं "परवार-बन्धु" सुगमता से प्रकाशित हो सकेगा। दूसरे समयोपयोगी धर्म-ग्रन्थ तथा सामाजिक पुस्तकें प्रकाशित की जा सकेंगी जिससे कि समाज में ज्ञान की वृद्धि होगी। साथ ही साथ यदि प्रेस सुचारु रूप से चलाया जाय तो काफ़ी आय भी होगी और हमारे कई एक जाति भाइयों को आजीविका के नये साधन भी प्राप्त हो सकेंगे। यदि औद्योगिक शिक्षा के इच्छुक छात्र चाहें तो थोड़ा थोड़ा समय खर्च करके छापने की कला भी सीख सकते हैं और धन तथा व्यापार का एक नया साधन उपार्जन करने के लिये ग्रहण कर सकते हैं। साथ ही साथ "परवार-बन्धु" व सामाजिक पुस्तकों के प्रकाशन में भी बहुत सहायता दे सकते हैं। प्रेस की उपयोगिता के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है; कारण कि आजकल प्रायः बहुत से भाई यह अच्छी तरह जानते हैं कि प्रेस सामाजिक उन्नति के साथ साथ धनोपार्जन में कितना जबरदस्त कार्य कर सकते हैं।

"परवार-बन्धु" की उन्नति के विषय में दूसरी बात यह है कि हमारी समाज को इसे पूर्णरूप से अपनाना चाहिये अभी कुछ विशेष कार्य हो सकता है। देखा जाता है कि अभी हमारी समाज में बहुत से श्रीमान्, पंच और

साधारण पुरुष ऐसे हैं जो पत्र को एक हौआ-बाबा से कम नहीं समझते। परवार-सभा का कर्तव्य है कि पत्र से होने वाले लाभों को समाज के सब लोगों के हृदयों में भलीभाँति भर दे ताकि वे उससे भयभीत न होकर उसे उन्नति का सबसे परम प्रिय साधन समझें। जिस प्रकार ब्रिटिश सर्कार टाइम्स पत्रों आदि का आदर करती हुई उनकी बतलाई नीति और पथ का अनुकरण करती है उसी प्रकार हमारी समाज का बच्चा २ "परवार-बन्धु" को अपना पथ-प्रदर्शक समझे। यह कार्य तभी हो सकता है जब हमारी समाज पत्र को अपनाले और साथ ही साथ बन्धु भी इस योग्यता से संपादित हो कि उसमें लिखा हुआ एक एक अक्षर अनुभव-युक्त और विचार-पूर्वक हो।

परवार-बन्धु को आदरणीय और आदर्श बनाने का भार केवल सुयोग्य संपादक और कार्य-कर्ताओं पर ही निर्भर नहीं है। परन्तु सफलता का अधिक भार हमारे सुयोग्य और अनुभवी समाज के नेताओं, पंचों, नवयुवकों और बहिन, माताओं इत्यादि पर निर्भर है।

प्रत्येक भाई बहिनों को जो कुछ उन्हें समाज-सुधार-संबंधी बातोंका ज्ञान हो उसे लिखकर बन्धु छपने में के लिये भेज दें। बुद्धि का ठेका किसी एक व्यक्ति के हाथ में नहीं है। सब मनुष्य कुछ नवीन नवीन बातें अनुभव करते हैं और प्रत्येक पुरुष की जीवनी दूसरों के लिए उपयोगी हो सकती है। परन्तु हमारी भूल यह है कि हम में से बहुत से भाई यह जबरदस्ती समझ बैठते हैं कि सुयोग्य लेखकों के सामने हम क्या नवीन बात लिख सकते हैं। प्रत्येक पुरुष व स्त्री की आत्मा में अनंत शक्ति विद्यमान है, परन्तु उस के प्रकाशन के लिये आवश्यकता है विश्वास और विकास की। हमारे जाति भाइयों का कर्तव्य है कि यदि वे पंच हैं तो अपने जीवन को पंचायतों, सामाजिक रीतियों तथा रीत-व्यवहार इत्यादि के अनुभव लिखें। यदि वे सुयोग्य नेता हैं तो समाज को ठीक राह दिखावें। यदि नवयुवक हैं तो नवीन संसार का दिग्दर्शन समाज को करावें; यदि पंडित हैं तो धर्म के सच्चे स्वरूप का ज्ञान करावें और यदि मूर्ख हैं तो अपनी मूर्खता से होने वाली हानियों से सभा को सावधान करें। इसी प्रकार हमारी माताओं और बहिनों को भी अपनी बुद्धि और अनुभव के अनुसार समाज-सुधार और खासकर स्त्री-समाज के सुधार के हेतु अच्छी २ बातें लिख कर बन्धु द्वारा समाज का कल्याण करना चाहिये। यहाँ पर यह लिखना अनुचित न होगा कि हमारी जाति में बहुत सी माँ बहनें पढ़ी लिखी हैं और बहुत सी अपनी २ बीती कहानियों से समाज को यथेष्ट लाभ पहुँचा सकती हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि हमारे उन्नति चाहने वाले भाई गण अपनी इन बहिन माताओं में प्रेम और उत्साह भरकर उनसे भी समाज के उत्थान के इस पवित्र यज्ञ में जप-जाप करावें।

पंच की सफलता के लिये एक यह भी आवश्यक बात है कि हमारे पत्र में लेख, कविता इत्यादि के साथ ही साथ काफी चित्र भी होना चाहिये। यदि रंगीन चित्र न भी हों तो कोई हानि नहीं परन्तु ऐसे सादे चित्रों की परमावश्यकता है जो समाज की दशा बतलाने वाले व्यङ्गचित्र हों। ये चित्र हमारे कम पढ़े लिखे भाइयों के दिलों में तीर का काम करते हैं। उन्हें केवल चित्रों के देखने ही से समाज की सच्ची अवस्था तथा अपने सुधार का ज्ञान तुरंत हो सकता है। साधारण पढ़े-लिखे पुरुषों के लिये भी ये चित्र बड़े प्रभावशाली होते हैं।

जितना लाभ इस पत्र लिखने से नहीं हो सकता उतना लाभ सिर्फ एक दो भावपूर्ण व्यंग चित्रों से हो सकता है। उदाहरण के लिये यदि एक व्यंगचित्र ऐसा हो कि जिसमें एक तरफ स्त्रियाँ रो रही हैं और दूसरी तरफ पुरुष दिन-पानी के लड्डू उड़ाते हैं—तो यह निश्चय समझिये कि अच्छी से अच्छी लेखनी की अपेक्षा यह चित्र अधिक प्रभाव-शाली और सुधारक होगा। परन्तु कठिनाई इस बात की है कि हमारी समाज में ऐसे चित्रकार नहीं। यह कहना अनुचित न होगा कि पैसा पैदा करने वाले दूसरी समाज के चित्रकारों से यह कार्य कदापि उपयुक्त नहीं हो सकता। कारण कि जिसे जिस कार्य में स्वतः की जिम्मेदारी तथा लगन नहीं है वह उस कार्य को पैसा मिलते हुए भी बेगार की तरह करेगा। इसलिये इस प्रकार सामाजिक व्यंग चित्र व अन्य सादे व रंगीन चित्रों के बनाने वालों का होना भी एक परमावश्यक बात है।

आप ज्यों २ विचार कीजिये त्यों २ आपको यही भलीभाँति ज्ञात होगा कि चित्रों से समाज को कितना अधिक और कितनी शीघ्रता से लाभ हो सकता है। इसलिये यह लिखना अनुचित न होगा कि परवार-सभा हमारी समाज के होनहार नवयुवकों में से दो तीन विद्यार्थियों को शीघ्र ही चित्र-कला सीखने के लिये योग्य स्थानों में भेज दे।

प्राचीन मूर्तियों, मंदिरों तथा अन्य रोचक दृश्यों के दिग्दर्शन के लिये यह भी आवश्यक है कि पत्र-विभाग में एक फ़ोटोग्राफी-विभाग भी होना चाहिये जिससे कि समय समय पर पत्र में अच्छे २ सादे चित्र निकलते रहें। साथ ही साथ हमारी समाज में, कई ऐसे उत्साही पुरुष भी हों जो कि नवीन नवीन मनोरंजक चित्र पत्र में छपने के लिये भेजा करें ताकि समाज को उनसे लाभ हो।

पत्र की उन्नति में पुस्तकालय और वाचनालय भी बड़ी सहायता दे सकते हैं। कारण कि किसी भी विषय का लेख लिखने के लिये जबतक उत्तम विचारों का संग्रह न हो तब तक कोई नवीन लेखक कुछ भी नहीं लिख सकता। पुस्तकों द्वारा बुद्धिमान् पुरुषों के विचार मालुम होते हैं और पत्रों द्वारा अन्य सभाओं की स्थिति ज्ञात होती है। अतएव पुस्तकालय और वाचनालय होना भी आवश्यक है।

अन्त में सारी समाज से और खासकर हमारे सामर्थ्यवान पंचों, उत्साही नेताओं और होनहार नवयुवकों से हमारा यही नम्र निवेदन है कि समय की गति देखते हुए समाज के इस पुनः उत्थान में अपनी २ शक्ति के अनुसार इस समाज रूपी देवी के "परवार-बन्धु" रूपी रथ के सुदृढ़ बनाने में और चलाने में पूर्ण रूप से योग दें। स्मरण रहे कि प्रत्येक कार्य करने का एक सुअवसर प्राप्त हुआ करता है। आज हमारे भाग्योदय से हमें यह सुअवसर मिल गया है कि समाज का एक छोटे से छोटा बच्चा भी इस समाज के पवित्र रथ के संचालन में कम से कम पहियों के चलाने में अपने तुच्छ बल का सहारा लगा सकता है। हमारा समाज में पृथक रूप से सब शक्तियाँ विद्यमान हैं। हमारे पास धन है, हमारे पास तन है और हमारे पास मन है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि न तो हमारे यहाँ इन सब शक्तियों के केन्द्रीभूत करने का कोई उत्तम साधन है और न उन्हें संचालित करने का कोई मार्ग है। दैवयोग से आज हमारी समाज को एक ऐसा सुलभ और दृढ़ उपाय मिल गया

है कि जिसके द्वारा वह शीघ्र से शीघ्र उन्नति कर सकती है। हमारा "परवार-बन्धु" वास्तव में सच्चा कल्प-वृक्ष और परवार--सभा का जोवन प्राण है। वह हमारी सब याचनाओं को पूर्ण कर सकता है। परन्तु अभी वह कल्प-तरु पूर्ण यौवन को प्राप्त नहीं हुआ बल्कि अभी छोटा सा पौधा है। आओ बन्धुओ, हम सब मिलकर इसका सिंचन करें ताकि शीघ्र ही यह अविनाशी यौवनावस्था को प्राप्त होकर सारी समाज, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी रत्नों की वृष्टि करे।

श्राविकाश्रम की आवश्यकता।

(लेखिका—श्रीमती तेजाबाई, पाठिका)

सभी समाज तथा देश के नेता लोग जाति सुधार की ओर अपना तन, मन और धन अर्पण कर रहे हैं—सभी शक्तियाँ लगा रहे हैं। उस सुधार का सर्व श्रेष्ठ अंग विद्या-प्रचार है अर्थात् देश और जाति के सभी व्यक्ति शिक्षित हों, और उसी ध्येय के अनुसार हमारी जाति के अगुआ भी अपने गाढ़ परिश्रम से पैदा किया हुआ द्रव्य खर्च कर शिक्षा-मन्दिर, विद्यालय, पाठशाला खोल रहे हैं। जैसे स्याद्वाद विद्यालय बनारस, शिक्षा-मन्दिर जबलपुर; मोरेना, इन्दौर, सागर, बीना, इटावा, रोहतक, दिल्ली, बड़नगर और सोनागिरजी आदि कई स्थानों में बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध है।

परन्तु बेचारी अबलाएँ, अर्धाङ्गिनी स्त्रियाँ तथा प्यारी पुत्रियोंको शिक्षा देनेका कोई योग्य शिक्षालय बुंदेलखंडमें आजतक नहीं खोला गया। जहाँ पर वे अबलाएँ विद्याध्ययन करके योग्य गृहिणी बनें। इसके सिवाय और भी अनाथ विधवाएँ कार्य सीख कर अपने उदर पोषण के लिये द्रव्य पैदा करके धर्म-कर्म के अनुसार अपना जीवन बिता सकें। मैं अपने प्रांत की कई ऐसी भोली-भाली सैकड़ों स्त्रियों को गिना सकती हूँ जो अपने उदर पोषण के निमित्त घर घर मजदूरी करने के लिए फिरती हैं और जिन्हें हमारे भाई ठुकराकर हटा देते हैं। इससे वे बेचारी गाँव २ में बज़ी तथा बाज़ारों में मारी २ फिरतीं हैं। इस पर भी वे शाम तक भर-पेट भोजन नहीं पातीं। हाय!

पूज्य पाठको? इनकी दशा पर ध्यान देकर हमारे बुंदेलखंड जैनियों के केन्द्र-स्थान सागर में एक ऐसा श्राविकाश्रम स्थापित कीजिये कि जिससे बेचारी अबलाएँ विश्राम पाकर लौकिक तथा पारलौकिक शिक्षा प्राप्त करके अपना उदर पोषण भलीभाँति कर सकें और सतीत्व की रक्षा कर अंध कूप में गिरी हुई हम स्त्रियाँ अपने पुरातन गौरव को जान सकें।

संसार में गृहस्थी-रूपी रथ चलाने के लिये जब तक दोनों पहिये एक सरीखे नहीं होंगे तब तक रथ योग्य रूप से नहीं चल सकता और आपका समाज-सुधार केवल स्वप्न के समान होगा।

कारण पत्नी—अर्धाङ्गिनी अर्थात् आधा वामाङ्ग और पुरुष आधा दाहिना अङ्ग है। तब विचारिये कि यदि बाएँ अंग को वायु (लकवा) मार जावे तो क्या पुरुष सांसारिक, लौकिक, तथा परलौकिक कार्य भी भले प्रकार कर सकता है? कभी नहीं।

मुझे पहिले ऐसा ज्ञात हुआ था कि बुंदेलखंड प्रान्तीय शिक्षा-मंदिर के साथ साथ हम अबलाओं की ओर भी ध्यान दिया जावेगा, परन्तु हमारे दयालु भ्राताओं ने अभी तक कोई विचार तक नहीं किया। आशा है अब हमारे भाई-बन्धु इन बिलखती हुई अबलाओं की आवाज़ को व्यर्थ न जाने देंगे। शीघ्र ही एक आश्रम खोलकर हम सबकी आशाओं को पूर्ण करते हुए अपने कर्तव्य का भी पालन करेंगे।

समझ का फेर ।

कविराज पंडितः—मीनाक्षी ललित मंजुल क्षीण कटि नयनाभिरामा ।
धारे सुवस्त्र································ ।

सपत्नीक मित्रः—नान सेन्स !

कविराजः—क्यों ? यही तो बात है। आप लोग इन रसमई बातों को समझते ही नहीं।

सपत्नीक मित्रः—चुप रहो। पर स्त्री मित्र स्त्री को देखकर··············· ।

कविराजः—राम ! राम !! हमारे विषय में आपकी इतनी गन्दी कल्पना ! मैं तो हृदयस्थ कलित कामिनी के भाव पर एक कविता बनाने के लिये विचार रहा था ।

सपत्नीक मित्रः—चुप रहो, कलित कामिनी वाले। मेरे साम्हने ही मेरी स्वरूपा स्त्री पर········ ।

कविराजः—यह अच्छा है कि आप श्रीमतीं को मीनाक्षी इत्यादि समझते हैं पर··········· ।

सपत्नीक मित्रः—ए यू. चुप रहो वरना सिर तोड़ दूंगा । बड़ा कवि बना है। घूर घूर कर देखता है············· ·················· ··· ।

मीनाक्षीः—बस बस, रहने दो, वैसे ही कुछ का कुछ बकते हो। मीनाक्षी कहने भी तो दो। मुझे कुछ नजर थोड़े ही लगी जाती है।

{ बेचारे कविराज, उनकी बुद्धि पर आश्चर्यचकित होजाते हैं। छड़ी गिर पड़ती है। मिस्टर क्रोध के मारे दांत पीसते हैं और मीनाक्षी पति को आगे बढ़ने से रोकती है। }

"समझ का फेर" यही तो है। जो जैसा होता है उसे सारा संसार वैसा ही दिखाई देता है। संभावित लोगों को चाहिये कि देखने देखने में अन्तर होता है।

भारतोद्धार।

(क्रमागत)

द्वितीयांक

चतुर्थ दृश्य ।

(स्थान उपवन के पास की सड़क—चम्पा, चपला और चंचला के साथ गाती आती है)

गाना ।

सखीरी ! चलो चलें फुलवारी !
कोयल बोले कुहू कुहू सखि ! फूलन की छवि न्यारी ।
मत्त मधुप गुंजार रहे हैं फिरते क्यारी क्यारी ॥
रंग बिरंगे कुसुमन की छवि लगत नयन को प्यारी ।
मन्द सुगंधित शीतल मारुत हरत थकावट सारी ॥

चपला—अहा ! वसन्त ऋतु में हर एक जगह कितनी अच्छी मालूम होती है ! जिस रास्ते से निकल जाओ उसी में फूलों की सुगंध से मन प्रसन्न हो जाता है ।

चंचला—और यह मन्द सुगंधित वायु तो सारी थकावट मिटा देती है ।

चम्पा—यह सब ठीक है लेकिन वसन्त तो उन लोगों के लिये है जो शहर के बाहर रहते हैं या निकलते हैं ।

चपला—हां ! सखी बात तो ठीक है वे लोग इसका मजा क्या जाने, जो दिनरात शहरों में ही घुसे रहते हैं और गटर की दुर्गंध से अपना दिमाग़ सड़ाया करते हैं ।

चञ्चला—और वे बेचारी भी क्या जानें जो पींजड़े के समान एक मकान में दिन रात बैठी रहती हैं । उनको तो जैसा शिशिर वैसा ही वसन्त ।

चपला—बात यह है कि पुरुष समझते हैं कि स्त्री तो पैरों की जूती है । उसे सुख-दुख का अनुभव नहीं होता !

चञ्चला—वाह ! जब पुरुष लोग घूमने जाते हैं तब उनकी जूती क्या घर पर पड़ी रहती है ? मेरी समझ में तो स्त्रियाँ जूतियों से भी नीचे दर्जे की समझी जाती हैं ।

चपला—यही तो पुरुषों का अन्याय है ।

चम्पा—हाँ ! है तो ! लेकिन किया क्या जाय ? जब तक स्त्रियों का सुधार नहीं होता, तब तक तो सब सहना पड़ेगा ।

चञ्चला—क्यों ? क्यों सहना पड़ेगा ? पुरुषों के साथ स्त्रियाँ विवाह ही न करें तो ?

चम्पा—(हँसकर) तो क्या स्त्रियों के साथ स्त्रियाँ विवाह करें ।

चंचला—विवाह करने की जरूरत ही क्या है ?

चंपा—हिस्ट ! तू तो पागल सरीखी बातें करती है । विवाह के बिना क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी का सत्यानाश हो जायगा । स्त्रियाँ रूप का जाल फैलाती फिरेंगी और पुरुष, भूखे पक्षी की तरह उसमें फँसते फिरेंगे । एक पुरुष एक जगह से छूटकर दूसरी जगह फँसता फिरेगा और एक स्त्री एक को भगाकर दूसरे को फँसाती फिरेगी । मनुष्य पशु, महापशु हो जायगा ।

चपला—तो पुरुषों को चाहिये कि वे स्त्रियों को योग्य अधिकार दें ।

चम्पा—यही तो बेसमझी की बात है । अधिकार दिये नहीं जाते, लिये जाते हैं । स्त्रियाँ खुद अपने को इस योग्य नहीं बनाती जिससे उन्हें अधिकार मिलें । उन्हें खुद शिक्षा से प्रेम नहीं है । वे खुद घर में बैठकर

आलस्य मय जीवन बिताना चाहती हैं। इसमें पुरुषों का क्या अपराध

चपला—नहीं! मुझे तो यहाँ भी पुरुषों का ही अपराध मालूम होता है। उनने छोटी अवस्था से ही स्त्रियों को ऐसा बना दिया है कि वे रोटी बनाने और बच्चे पैदा करने के सिवाय कुछ न कर सकें।

चंपा—हाँ! इस अंश में पुरुष वास्तव में अपराधी हैं। लेकिन स्त्रियाँ भी सर्वथा निर्दोष नहीं कही जा सकतीं। जहाँ पुरुषों के अत्याचार के हज़ारों दृष्टान्त हैं, वहाँ नारियों की कर्तव्य शून्यता के भी सैंकड़ों दृष्टान्त मिल सकेंगे। जब स्त्रियों के मन में सदा ऐसा ही विचार रहे कि "अपन को क्या करना है पुरुष ही बैल के भाँति जुतकर, और पसीना बहाकर हमारी फ़र्माइश पूरी किया करें और हम मौज से घर में पड़ी रहें" तब कोई क्या कर सकता है? क्या बूढ़ी पुरानी स्त्रियाँ ही नारियों की उन्नति में रोड़े नहीं अटकाती हैं? सच बात तो यह है कि स्त्रियों को जितना पुरुषों ने पीसा है, उससे ज्याद: स्त्रियों ने स्त्रियों को पीसा है। मेरा तो विचार है कि किसी मनुष्य, समाज, या राष्ट्र को संसार की बड़ी बड़ी शक्ति, तब तक नहीं गिरा सकती जब तक वह अपने आप न गिर जावे।

चंचला—सखी! आज तो तुम पुरुषों का बड़ा पक्ष ले रही हो। मालूम पड़ता है कि इस (छाती की ओर उँगली करके) हृदय-मन्दिर में किसी देवता की स्थापना हो चुकी है।

चंपा—हो तो नहीं चुकी है, किन्तु जब मन्दिर है तो देवता की स्थापना हुए बिना कैसे रहेगी! देवता के बिना मन्दिर की शोभा ही क्या?

चंचला—हाँ! तो यह बात कहो न! कि देवता जाति की निन्दा कैसे की जा सकती है?

चपला—सखी! यह देवता देवता क्या लगा रक्खा है? क्या कोई देवता आने वाला है? तो क्यों न मैं फुलवाड़ी में से कुछ फूल तोड़ लाऊँ!

चंपा—(मुसकराती हुई चपला के गाल पर हलकी चपत जमाकर) चुप।

चपला—(मुँह बनाँकर) उः हूँ, (प्लुत) (हँसती हुई चली जाती है)।

चंपा—सखी! जो सत्य है वह सुन्दर, हो या असुन्दर कहना ही पड़ता है। यहाँ देवता जाति की निन्दा-स्तुति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

चंचला—(सिर मटका कर हँसती हुई) हाँ! हाँ! अब बातें बनाने से काम न चलेगा, मैं तो सब समझ ही गई हूँ।

चंपा—चल! चल! बड़ी समझने वाली आई (बनावटी मारने को हाथ उठाती है)।

चंचला—(हँसती हुई) अच्छा नहीं समझी! नहीं समझी माफ करो (नेपथ्य की ओर भागती है)

चंपा—तो भागती कहाँ है?

चंचला—नहीं सखी! अब भीतर चलो! इस समय सड़क पर खड़ा रहना अच्छा नहीं। देखो, वह कोई आदमी चला आरहा है। (अंगुली से बताती है)।

चंपा—आने दे, डर क्या है? अपना क्या कर लेगा।

चंचला—नहीं सखी! करने को तो कोई क्या करेगा, लेकिन...(हँसती है)।

चंपा—बोल! बोल! मुँह में क्यों दबाती है?

चंचला—(चम्पा के मुँह पर हाथ फेर कर) तुम्हारे मुँह की यह छटा देखकर कुछ न करने वाले भी सब करने को तैयार होजाते हैं। (हँसती है)।

चंपा—जो कोई करने को तैयार होगा वह मजा भी पूरा पा जावेगा।

चंचला—भला क्या करोगी?

चंपा—(कमर से कटारी निकाल कर) यह जो करायगी सो करूँगी।

चंचला—अरे! बापरे बाप! तुम पृथ्वीराज की रानी तो नहीं हो जो मर के चम्पा बन बैठी हो। लेकिन यह तो बताओ यदि बहुत आदमी आजावें तो तुम किस किस पर वार करती फिरोगी?

चम्पा—जब तक पापियों का नाश कर सकूँगी, करूँगी। यदि उसमें हार होगी तो यह कटारी मेरी ही छाती के पार होगी। किसी तरह अत्याचार और पाप का नाश होना चाहिये चाहे उसमें अत्याचारी मिटे या जिस पर अत्याचार होता हो वह। (इतने में चपला लबादा ओढ़े हुए पुरुष के वेश में आती है। चंचला मुसकराती है चंपा चकित होकर देखती है)।

पुरुष—अहा! क्या मनोहर रूप है मानों कोई स्वर्ग की अप्सरा है। प्यारी! प्यारी!

चम्पा—(क्रोधित होकर) अरे, तू कौन है, व्यर्थ पागलपन की बातें क्यों करता है?

पुरुष—प्यारी! तुम्हारा ही हूँ, तुम्हारा ही शिकार हूँ!

चम्पा—चल! चुप रह! भला चाहता है तो भाग यहाँ से।

पुरुष—भागकर कहाँ जाऊँ। अब अपने जाल में फँसा कर कहाँ फेंकती हो?

चंपा—जहन्नुम में, पापी! यहाँ से हटता है या नहीं?

पुरुष—हटता हूँ।

चंपा—तो हट (पुरुष और पास आता है) दूर हट दूर।

पुरुष—जब तक जीता हूँ तब तक दूर कैसे हट सकता हूँ!

चंपा—हाँ?

पुरुष—(हँसता है) हाँ,

चंपा—तो देख पीछे पछतायेगा।

पुरुष—पछता लूंगा।

चंपा—तो ले (कटारी निकालकर झपटती है चंचला हाथ पकड़ अपनी ओर खींचती है। पुरुष लबादा फेंककर चपला के रूप में प्रगट हो जाता है)।

चपला—लो सखी! यह फूल (फूल बताती है)।

चंपा—(फूल लेकर) अरी! तू तो बड़ी चपल है इसीलिये तेरा नाम चपला है। अच्छा! चल! घर पर चल! वहीं सब कसर निकाल लूंगी (बनावटी मारने को दौड़ती है। चपला नेपथ्य की ओर भागती है, उसके पीछे चंपा और चंचला भी भागती है। दूसरी ओर से मोहनसिंह आकर उनको भागते हुए देख लेता है)।

मोहनसिंह—हाय! बिजली चमक गई, आँखों के सामने अँधेरा छागया। अब कहाँ जाऊँ? कैसे जिऊँ आशिक़ से माशूक़ बहुत कठोर दिल की होती है। पहिले दिल छीन लेती है फिर मनमानी तौर से कुचलती है।

कटारी नैन के मारे, जिगर घायल बनाती है।
बनाकर रूप का बाहू, न फिर आँखें दिखाती है॥

(मोहन के दोस्तों का प्रवेश)

झक्की—अजी! कौन? कौन? कौन नहीं आँखें दिखाती है।

मोहन०—अहा! तुम लोग तो अच्छे मौके पर आये। एक बहुतही बढ़िया कमसिन लड़की अपनी दो सखियों के साथ इसी रास्ते से इस बाग में चली गई है और साथ में (छाती पर हाथ रखकर) मेरा दिल छीनती गई है अब तो जब तक उसे छाती से न लगाऊँ तब तक चैन कहाँ?

बकी—अजी, तो यह क्या बड़ी बात है जिसके लिये आप इतना रंजोगम कर रहे हैं। कहो तो उसे आपके बंगले पर पहुंचा दूँ और किसी को पता भी न लगे।

मोहन०—वाह! नेकी और पूँछ पूँछ। अगर यह काम बन जावे तो इससे बढ़कर और काम दुनियाँ में क्या हो सकता है?

बकी—अच्छा! तो अब आप चिन्ता न करें, हम इसका सब इन्तज़ाम कर लेते हैं। आप घर चलिये! हम तो आप के घर आते थे क्योंकि आज बढ़िया शराब नहीं मिली इससे दिल बेचैन है। लेकिन अब काम बनाकर ही शराब पियेंगे। जब आप बेचैन हैं तो हम चैन कैसे ले सकते हैं। कहो न यार झक्की?

झक्की—हाँ यार बकी!

मोहन०—अच्छा तो मैं जाता हूं। काम जल्दी होना चाहिये।

बकी—हाँ! आप! निश्चिन्त रहिये (मोहन का प्रस्थान)!

बकी—यार अब तो उल्टे छुरे से मूड़ेंगे।

झक्की—इसमें क्या शक?

बकी—इन्हीं बेअक्कों की दम पर तो बन्दों का राज्य है।

(प्रस्थान)

आठसांकों और चारसांकों पर विचार।

(लेखक-श्रीयुत सिं० कुँवरसेन जी)

परवार-जाति में सगाई संबंध के प्रथम, वर-कन्या की परस्पर आठ सांकें मिलाने का नियम है। पर यह नियम बहुधा लोगों को मालूम भी नहीं है। आठ सांकों का पूरा २ बचाव केवल नाम मात्र है, विचार-योग्य केवल चार ही सांकें है जिसका नियम इस प्रकार है:-

लड़का-लड़की की पहली सांक ही आठ सांकों में अड़ती है। अर्थात् लड़के की पहली सांक दिवाकर है तो लड़की के आठों सांकों में कोई दिवाकर हो तो संबंध नहीं होगा। इसी तरह लड़की की पहली सांक दिवाकर हो तो लड़के की किसी भी सांक में होने से संबंध नहीं हो सकता। शेष सांकों में, पूरे २ और ऊने पूरे मिल जाने परभी संबंध हो सकता है। जैसे, वरकी-दूसरी-चौथी-छठवीं सांकमें कोई दिवाकर हो और लड़की की भी इन्हीं सांकों में कोई दिवाकर हो तो संबंध हो सकता है। इसी तरह वर की, दूसरी चौथी, छठवी आठवीं सांक में दिवाकर हो और कन्या की तीसरी, पाँचवीं, सातवी सांक में कोई दिवाकर हो तो भी संबंध हो सकता है। सिर्फ ऊने २ में वही सांक दोनों तरफ हो तो संबंध नहीं हो सकता। इस तरह सांकों का मिलान किया जाता है।

इन आठ सांकों के मिलान का प्रचार कब से किया जाता है इसके आदि का कोई पता नहीं। क्योंकि हज़ारों वर्षों की प्रतिष्ठित प्रतिमाओं में प्रतिष्ठा कराने वाले दानी के नाम पर अष्टसाके लिखा है जो परवार-जाति का

द्योतक है। इससे अधिक सोना सांकों का या चार सांकों का प्रमाण कहीं नहीं मिलता। इसी नियम के अनुसार आज भी परवार-जाति सगाई के प्रथम आठसाकों का मिलान करती है। आठसांकों के ही परवार कहते हैं—चौसके या दोसके परवार नहीं कहलाते और न उनके साथ परवारों का विवाह संबंध है।

समैया जाति में भी आठ सके परवार ही हैं जो परवारों में मिलने के लिये लालायित हो हैं। सुना है कि कुछ काल से परवार-जाति में कुछ लोगों ने प्रकट तथा अप्रकट रूप में चार सांकों में विवाह कर लिया है। तथा किसी २ पंचायत ने भी चार सांकों में विवाह संबन्ध कर लेने का नियम पास कर लिया है तथा विवाह के प्रथम यह छल ज्ञात हो गया है तो संबन्ध होना बन्द कर लिया। इस तरह जाति में गोलमाल हो रहे हैं।

चार सांक के पक्षकारों से यह उत्तर मिलता है कि "आज कल लड़का लड़की के विवाह संबंध होने में आठसांकों के मिलने में बड़ी अड़चन होती है और वर योग्य नहीं मिलता। अमुक सिंघईजी की लड़की कितनी बड़ी हो गई कि अभी तक वर नहीं मिला। बेचारे कई ग्रामों में चक्कर लगा आये, कहीं ठीक नहीं पड़ता, इत्यादि।"

प्रिय पाठको! यह विचारणीय विषय है, क्योंकि आज हज़ारों व्यक्ति इन चार सांको में विवाह-संबंध होने की ढींग मार रहे है। परवार-सभा में भी कई प्रस्ताव इन चार सांकों में विवाह होने के लिए आये, परंतु सभा ने भी इसके पक्ष या विपक्ष में कुछ विचार नहीं किया। परंतु ऐसी ढील डालि देने से समाज में परस्पर विरोध बढ़ जाने का भय है। इस-लिये सभा तथा पंचायतों को इस विषय पर पूरा २ विचार कर निश्चय करना चाहिये। यदि चार सांकों के प्रचार से लाभ है तो इसके की चोट से चारसांकों में विवाह प्रथा चला देना चाहिये। और यदि हानि है तो जैसे जाति विरुद्ध कार्य करने वाले के साथ जाति पतित करने तथा दंड आदि का व्यवहार होता है तद्वत् करना चाहिये। जिससे यह चार सांक का प्रचार सर्वथा नष्ट होजावे। आज मैं इस विषय पर अपने कुछ विचार आपके समक्ष रखता हूँ, आशा है कि उन पर आप अवश्य लक्ष्य देंगे:—

परवार-जाति में इन आठ सांकों के कारण किसी की भी लड़की १५, २० वर्ष तक की चाहे अंधी लूली भी क्यों न हो कुँवारी नहीं रही है और न किसी श्रीमान् का लड़का १५-२० वर्ष तक कुँवारा रहा है। श्रीमानों के तो मूर्ख, कुरूप, दुर्गुणी, निर्बल तक तथा दुजवरया, तिजवरया, तीस चालीस वर्ष तक के विवाहित होजाते हैं। परंतु बेचारे गरीबों के पढ़े-लिखे, विद्वान्, रूपवान, हृष्टपुष्ट, १५-२०-२५ वर्ष के नवयुवक वरयोग्य लड़के आठ सांकों के मिलने पर कुँवारे बने रहते हैं। समाज का प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपनी लड़की के लिये श्रीमान वर ही को ढूढता है। वर चाहे अन्य गुणों में हीन ही किंतु हो श्रीमान। जिससे लड़की को कीमती आभूषण, पैसा आदि मिले।

इस अधिक सोने चांदीके ज़ेवरोंका समाज में इतना अधिक प्रचार हो गया है कि प्रत्येक व्यक्ति (धनवान-गरीब) श्रीमान वरको ही चाहता है। यहाँ तक कि पंच लोग भी वर के अन्य गुणों को न देख केवल ज़ेवर को ही देखते हैं। और कहते हैं कि "देखो इतने मन सोने के हैं और इतने वजनदार हैं।" इस अधिक आभूषणों

की प्रथा से समाज में क्या २ हानियाँ हो रही हैं, आप स्वयं जानते हैं। फिर भी इसी विषय पर मैं भी कभी आपका चित्त आकर्षित कराऊँगा। कभी २ इन आठसांकों के न मिलने से किसी श्रीमान् (अधिक उमर, मूर्ख तथा कुरूप) को कन्या न मिलने पर वह कन्या बेचारे गरीब वर योग्य लड़के को मिल जाती (विवाहित) है। परंतु यदि चार सांक की प्रथा चल गई तब तो श्रीमानों के पौबारह होंगे। और जो कुछ गरीब लड़के विवाहित हो जाते हैं कोरे ब्रह्मचारी रह जावेंगे। आठ सांकें मिलाने की प्रथा आदर्श है। इससे परवार-जाति का गौरव है। यद्यपि मुख्य विचार चार सांक पर ही किया जाता है परंतु पहली सांक के कारण, आठ का मिलान करना कहा जाता है। जिस दिन आठ से चार में पतित हुए उस दिन सब बातों में पतित होना पड़ेगा।

इसलिये इस आदर्श प्रथा को बंद न करके इस अधिक जेवर, वस्त्र आदि की कुप्रथा को बंद करदीजिये। इससे सैकड़ों तरह की हानियाँ हो रही हैं। इस अधिक जेवर प्रथा के कारण हजारों वर योग्य गरीब बालक कुँवारे बैठे हैं और श्रीमान्, वरयोग्य न होकर भी विवाह कर लेते हैं। इस लिये यदि आप जाति के सच्चे शुभचिंतक हैं तो इक आठ सांकों की प्रथा को कभी बंद न करें। किंतु अधिक जेवर की प्रथा को बंद कर देवें जिससे कि समाज के गरीब नवयुवक विवाहित होकर अपने धर्म-कर्म की रक्षा करते हुए जाति-वृद्धि करें। चार सांक में संबंध करने वाले सज्जनों से पूछता हूँ कि, वे इस पर विचार करेंगे कि आठ सांकों के मिलान से श्रीमानों के संबंध में बाधा होती है या धनहीन से?

आप गुणवान, रूपवान, हृष्टपुष्ट, वर-योग्य, वर की दृष्टि रक्खेंगे तो ये आठ सांकें कभी बाधा नहीं देंगी। अतः निवेदन है कि परवार सभा तथा स्थानीय पंचायतें इस पर अवश्य लक्ष्य देंगीं।

———:०:———

आँसू।

कपोलों पर तुम प्रियतमा के
 दिख रहे हो इस तरह।
जल कणों से हो सुशोभित,
 'पुष्प' पुष्कर जिस तरह॥
या मोतियों की माल होवे,
 लहलहाती जिस तरह।
या पुष्प-माला के सुमन हों,
 टूट गिरते जिस तरह॥ १॥

क्यों छोड़कर तुम साथ नयनों
 का, भटकते हो कहो।
क्या विरह के दुःख को तुम,
 इस तरह धोते अहो?
या प्रिय पिया के आगमन की,
 सुन कथा को हर्ष से।
क्या आ रहे हो दर्शनों को,
 चाव से, उत्कर्ष से? ॥ २॥

—गुलाबशंकर पंड्या, "पुष्प।"

———

हम अठसँके हैं या सठसँके ?

हम लोग परवार हैं। हमारी विवाह-विधि सब देशों, सब जातियों और सब धर्म वालों से निराली * है। यह रीति आज की नहीं बहुत पुरानी है और इतनी पुरानी है कि किसी इतिहासज्ञ को भी ज्ञात नहीं है कि यह कब से चालू है। आज कल के मनचले लोग उसके परिवर्तन की वाञ्छा कर रहे हैं। और सांकों से तो ऐसे रूठे हैं कि उन्हें आधा किये डालते हैं। परन्तु डर है कि चौसके बनना पड़ेगा और चौसखे परवारों की एक प्रथक् जाति है उनसे रोटी व्यवहार तो है ही अब बेटी व्यवहार भी करना पड़ेगा।

लोग समझते हैं कि चार सांके मिटाने से सर्व बंधन टूट जावेंगे। सांकों रूपी सांकरों (जंजीरों) की लपेटन बहुत ही अधिक ढकल जावेगी। देखना चाहिए कि यह कहाँ तक ठीक है। हम लोगों में मूर होता है और गोत्र होता है। जब हम सांके मिलान करते हैं तो पहिले देखते हैं कि वह सहगोत्री तो नहीं है। अगर वह सहगोत्री है तो सहाव लग जाता है। जैसे हम बिघमूरी हैं तो इंगमूरी कुआमूरी आदि से हमारा सहाव है, चाहे जितनी पीढ़ी गुजर जावें कल्पान्त काल में भी इनसे हमारी नातेदारी नहीं होवेगी। कुआमूरी के पास इंगमूरी का परचा गया कि वह तुरन्त वापस कर देगा क्योंकि दोनों भिन्न मूरों के हैं। ऐसे ये बारह सहाव हमें टालना पड़ते हैं।

अब मूरों का मिलान कीजिये। प्रथममूर आठों को खेदता है इसलिये आठ सांकरों से और भी सुलझना पड़ेगा सो पहिले १२ और दूसरे ये आठ सब मिलाकर २० उलझनें हुईं।

अब तीसरे नम्बर को लीजिये। वह स्वयम् अपने को मारता है और पहिले, तीसरे, पाँचवें और सातवें को भी मारता है। दृष्टान्त यह कि यदि तीसरे बाप के मामा रकिया हैं तो सामने वाले परचे में वे रकिया तीसरे, पहिले, पाँचवें और सातवें में नहीं होना चाहिये अगर होवें तो सांक लग जायगी। इसलिये चार ये भी टालना होगी अब गिनिए १२+८+४ कितने हुए ?

इतने में अठसँका सुलझ गया ऐसा नहीं समझिए। पाँचवें नम्बर पर दृष्टिपात कीजिए। वह तो दुलत्तियां फेंकता है। अर्थात् खुद पाँचवें में वह सांक नहीं चाहिये और तीसरे, पहिले और सातवें में भी नहीं चाहिये अगर हो तो सांक लग जावेगी। ऐसे ये चार और बचाना पड़ेंगीं। पर गिनती में दो ही गिनिए क्योंकि पहिली और तीसरी को पहिले गिन चुके हैं सो २४ में २ मिलाने से २६ पर गिनती आई।

इतने में भी अभी मामला तय नहीं होगया। सातवें को लीजिए। यह भी चहुंओर लाठी घुमाता है। इसका भी तीसरे पाँचवें कैसा स्वभाव है। पर उलझनों की गिनती में ४ नहीं १ ही गिनिए क्योंकि १-३-५ में इसे गिना चुके हैं। अब तक नम्बर २७ हुआ। इसके बाद नवमीं सांक देखना पड़ती है। नवमीं सांक वह होती है कि यदि पिता के दो विवाह हुए हों तो संतान के दोनों ममेरे के मूर बचाना पड़ेंगे। जैसे, हमारी पहिली शादी गांगरा मूरी के यहां हुई थी। अब दूसरी शादी बुगायत मूरी के यहाँ हुई है तो हमारी दूसरी शादी के लड़के के विवाह में गांगरा मूरी आड़े पड़ेंगे। किसीकी गांगरा मूरी के यहाँ हमारे लड़के की नातेदारी

* बचाना बचाकिन फेरे पाड़ते हैं। कन्या की माता आदि सब छिप जाती हैं। झूठा-रचा का कुछ काम नहीं है ?

नहीं हो सकती। गांगरा मूरी हमारे साले हैं। वे अपने भनेज की शादी में दोगर गांगरा मूरी के यहाँ कैसे पहिरावन पहिनेंगे ?

पाठक! परवारों में दो तीन विवाह पुरुषों के होना तो एक मामूली बात है। पर चार पाँच तक नंबर सुना गया है। सो तुम्हारे दया न आवे तो हमारे कहने से २७ में नवमें, दसवें, ग्यारहवें के तीन नम्बर तो भी मिला कर पूरे ३० कर लीजिए और देख लीजिए तीस तीस सांकें सुलझ गई हैं अथवा एक आध कुछ बीधी हुई है। इनमें एक ज़रा बीधो कि जाति वाले आपकी जान ले लेंगे। सगी बहिन ब्याह ली है ? अरे राम! राम! बहुत बुरा किया-जाति बन्द, मन्दिर बन्द।

श्रीबीनाजी केपार्श्ववर्ती एक परवार ने एक सांक की उपेक्षा करके सही की थी उसका वहां की पंचायत ने १६५) रु० दंड किया था।

लोग चार सांकों को चिल्ला रहे हैं, सो चार हट जाने से ३० में से ४ घटीं, २६ रहीं दोनों तरफ़ की २६-२६-५२ साकरों से तो कसे ही रहेंगे ?

लोगों का ख्याल है कि चौसके बन जाने से कन्या-विक्रय, वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, व्यभिचार, गर्भपात दूर हो जावेंगे और गरीबोंके लड़के कुआँरे न रहने पावेंगे। पर, उनकी यह कल्पना हास्यास्पद है। हाँ, अनमेल विवाह कुछ रुक सकेगा। सांकों की कृपा से २१ वर्ष का लड़का और ६ वर्ष की लड़की तथा १५ वर्ष का लड़का का १३ वर्ष की लड़की का विवाह करना पड़ता है सो सांकों का बन्धन कम हो जाने से १३ वर्ष वाली लड़की के हिस्से में २१ वर्ष का लड़का और ६ वर्ष वाली लड़की के हिस्से में १५ वर्ष का लड़का कदाचित् पड़ सकेगा।

पाठक! सांकों का विकट वन विस्तृत है जिसमें हमारे पुरखे भी भूल जाया करते थे। उन्होंने इसकी ठीक सम्हाल के लिये एक जुदा मुहकमा स्थापित किया था और इसके परिचालकों को पटियाजी की पदवी से विभूषित किया था तथा उनकी आजीविका के लिये भेंट स्थिर की थी। अब भी गढ़ोगढ़ और चंदेरी के चहुँ ओर पटियों का घर है। उनके पास हमारी कई पीढ़ी की सांकें और बड़ी बड़ी बहियाँ हैं, परन्तु, शिक्षा का प्रचार कुछ बढ़ने से पटियों का यह मुहकमा शुष्क प्राय होगया है। अब शिक्षा और बढ़ती जाती है और इस परिवर्तन शीलसंसार में चाहे वह भला हो या बुरा हो सांकों की पद्धति का भी परिवर्तन होना संभव है। आगे श्री जी मालिक हैं।

—एक हितैषी।

पहिले के लोग बड़े जबरदस्त थे। वे मामा की ही बेटी पर दावा रखते थे। आज कल यह चलन मुसलमान भाइयों में है। परवार लोग मामा की बेटी लेकर मुसलमान बनेंगे क्या ?

यह २५ वर्ष पहिले के की बात है कि उस समय के १६५) रु० आजकल के ६२५) रु० के बराबर है। इसका कारण चाँदी यहीं अन्य है और कुछ निबन्ध के विषय नहीं है।

आज हमें अपने विचार प्रकट करना चाहिये और आने वाले दूसरे दिन उन पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ने पर यदि उनमें भ्रम मालूम हो तो उन्हें बदल देना चाहिये। अथवा उन्हीं को परिमार्जित करके रखना चाहिये।

—'राल्फ वाल्डो ट्राइन।'

ॐ

भारतवर्षीय परवार सभा-सप्तम अधिवेशन सागर की संक्षिप्त रिपोर्ट।

संसार की समस्त उन्नत जातियों के समक्ष जब प्रतिद्वन्दिता या उसके जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित होता है। तब इसके निराकरण करने को सामाजिक, समुदायशक्ति या सभा-पंचायतों की आवश्यकता हुआ करती है।

इसी उद्देश्य को लेकर परवार-सभा ६ वर्षों से कार्य कर रही है। इसने अब तक जो कुछ कार्य किया वह समाज से छिपा नहीं है। परन्तु यह कह देना अनावश्यक न होगा कि सभा या पंचायतों में प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने वाले अधिकार की रक्षा जितने अंशों में सागर के इस अधिवेशन में हुई है वह कहीं पिछले अधिवेशनों में पास हुए प्रस्तावों से अधिक महत्वपूर्ण और भावी उन्नति के आशा का अंकुर है।

कोई भी व्यक्ति अपनी सत्ता का दुरुपयोग करके अपने विचारों के अनुकूल, कुछ लोगों को, कुछ समय के लिये कर सकता है; परन्तु सम्पूर्ण जनता को हमेशा के लिये अपने अनुकूल करना अशक्य है। क्योंकि, कुछ समय के बाद विचारों का वेग उसे अवसर पाकर उभार ही देगा। और फिर उसका रोकना कठिन ही नहीं किन्तु भयंकर होगा। इस कारण सभाओं और पंचायतों में बिना किसी भेद-भाव के प्रत्येक व्यक्ति को बोलने देना उदारता नहीं किन्तु अधिकार को रक्षित करना है। जिस समय हमारी समाज में यह गुण पूर्ण रूप से व्याप्त हो जावेगा उसी समय से हमारी उन्नति का मूल मंत्र सिद्ध ही समझिये।

परवार-सभा का सप्तम अधिवेशन सागर में जिन आशाओं को लेकर किया गया था, उस में जो कुछ हुआ सभी उपयोगी और परिस्थिति को देखते हुए अच्छा ही हुआ। उदासीन और समाजों से सर्वथा विरक्त हो जाने वालों की आशा का उदय और गरीबों को सहारा हुआ, देव-द्रव्य या सार्वजनिक द्रव्य को अव्यवस्थित रखने या हिसाब प्रकट न करने वालों को अदालती कार्यवाही से व्यवस्थित करने का प्रस्ताव पास हुआ। अड़ंगा डालने वालों के प्रति समाज भी सचेत हो गई।

चार सांकों के प्रस्ताव पर खूब विवेचन हुआ। यद्यपि यह जनरल सभा में लाया जाकर भी सभा मंच के विस्तृत उदर ही में विलीन हो गया। किन्तु उससे इतना लाभ अवश्य हुआ कि वह अक्षरों में पास न होकर लोगों के हृदय में स्थान कर गया, और लोगों को यह बात स्पष्टतया समझ में आगई कि नियम हमारे बनाये हुए हैं-हम नियमों के गुलाम नहीं हैं। इस कारण आवश्यकता पड़ने पर हम उनके परिवर्तन की शक्ति भी रखते हैं। सभा की संक्षिप्त कार्यवाही का विवरण इस प्रकार है—

ता: १४, १५, १६ नवम्बर सन् १९२५ को होनेवाले इस अधिवेशन की सफलता के लिये सागर की स्वागत कारिणी समिति ने भरसक प्रयत्न किया था। जगह २ निमंत्रण पत्र भेजकर तथा परवार-बन्धु के द्वारा सूचनाएँ देकर जनता को इस अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये उत्साहित भी किया। इस कारण जनता का जमाव होना पहिले से ही प्रारम्भ हो गया था। भूतपूर्व सभापति श्रीमान् सेठ पन्नालालजी टड़ैया, पं० नाथूरामजी प्रेमी, सिंघई पन्नालालजी अमरावती, सेठ मूलचंद्रजी बड़ागसागर, सेठ चन्द्रभानजी बमराना पं० देवकी-

चंदनजी सिद्धांत-शास्त्री, सिंघई गोकलचन्दजी वकील दमोह, सेठ लालचन्दजी दमोह, सिंघई कन्हैयालालजी वकील, रा० ब० श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी खुरई, बाबू जमनाप्रसादजी कलरैया वकील, पं० जीवन्धरजी इंदौर, पं० दरबारीलालजी, स० सिं० गणेशदासजी जबलपुर, सिंघई कुन्दीचंदजी कलकत्ता, सिंघई रतनचंद्रजी कटनी, पं० बाबूलालजी, वंशीधरजी डेवड़िया जबलपुर, सेठ स्वरूपचंदजी बारा सिवनी, स० सिं० रतनचंदजी, सिं० श्रीनन्दनलालजी बीना, बाबू सुखलालजी टडैया ललतपुर, पं० पीताम्बरदासजी, सेठ वृद्धिचंद्रजी सिवनी पं० बंशीधरजी, बाबू पंचमलालजी तहसीलदार, जैन धर्म भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी वर्णी आदि सज्जनों ने अधिवेशन में आने की कृपा की थी।

मंत्री महोदय बाबू कस्तूरचंदजी वकील ता: ११ की दोपहर को आगये थे। पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी, बाबा भागीरथजी वर्णी तथा पं० दीपचन्द्रजी वर्णी, का चौमासा वहीं हुआ था इस कारण उनके दर्शनों और धर्मोपदेश का लाभ भी उपस्थित जनता को मिल गया। परवार-बन्धु के प्रकाशक मास्टर छोटेलालजी भी अधिवेशन के २ सप्ताह पहिले ही वहां जा पहुंचे थे। श्रीमान् पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार तथा अन्य विद्वानों को भी स्वागत समिति ने निमंत्रित किया था। परन्तु कई कारणों से वे उपस्थित न हो सके। फिर भी जन-संख्या प्राय: ५००० के इकट्ठी हो गई थी। जिनमें १६६ ग्रामों के १५४३ प्रतिनिधि और शेष दर्शक थे।

मनोनीत सभापति रा० ब० श्रीमान् श्रीमन्त सेठ पूरनशाहजी का शुभागमन ता: १३ की रात्रिको २॥ बजे हुआ। इसलिये। १४-११-२४ के ११ बजे दिन को आप के स्वागत् का जुलूस कटरा बाज़ार से शुरू होकर प्राय: १२ बजे सभा-मण्डप में पहुंचा। बैंड बाजे के साथ स्वागत् के लिये शहर के गण्यमान्य प्रतिष्ठित सज्जन भी शामिल हुए थे। फूल मालाओं से सजी हुई सभापति महोदय की मोटर जिस रास्ते से गई थी उसके आसपास की सभी दूकानें तोरण, पताकाओं से सुसज्जित एक राष्ट्रीय कार्य की सूचना देती थीं। रास्ते में कई जगह सभापति महोदय का स्वागत् इत्र, फूल-माला और पान आदि से हुआ।

आपके ठहरने को स्वागतकारिणी समिति ने सभा-मण्डप के समीप ही एक शामियाना तथा डेरा खड़ा करवाया था। उसी से लगी हुई श्रीजी के विमान की चाँदनी तनी हुई थी। इससे १०० फुट उत्तर की ओर तोरण, पताकाओं और सुन्दर दरवाज़ों से सुसज्जित सभा-मण्डप था। सभा-मंडप की रचना सभाओं के नियमानुसार की गई थी। स्टेज के लिये ८०० वर्गफुट का एक पक्का चबूतरा सभापति महोदय, पूर्व सभापति, त्यागी मंडल और प्रबन्धकारिणी के सदस्यों के लिए बना हुआ था। उसके पीछे की ओर चबूतरा से लगा हुआ माताओं और बहिनों के लिए स्थान था। चबूतरे के बाईं ओर स्वागतकारिणी के सदस्य और उसीकी लम्बाई में दर्शक और विशेष दर्शकों को बैठने का प्रबन्ध था। बाईं ओर जैन दर्शकों के लिये और चबूतरा के साम्हने वाला विस्तृत स्थान प्रतिनिधियों के लिए रक्खा गया था। इसी प्रकार सभा-मण्डप के दरवाज़े भी पृथक् २ रक्खे गये थे।

प्रतिनिधि, प्रबन्धकारिणी के सभासद और स्वागतकारिणी के सदस्यों के लिए खादी के गुलाबी, पीले और हरे फूल तैयार कराये गये

थे । फूलों के साथ बिना फीस के प्रत्येक को प्रवेश टिकट भी दिये जाते थे। टिकट और फूल देते समय दफ्तर में बहुत भीड़ लगी रहती थी। अनेक लोग तो नकद रुपये देकर प्रतिनिधि का फूल तथा टिकट मांगते थे। कई उसी समय प्रतिनिधि फार्म भरने को तैयार थे। परन्तु सभापति महोदय की आज्ञानुसार बिना पंचों की सही के प्रतिनिधि बनना अस्वीकार कर दिया गया था। लापरवाही से प्रतिनिधि फार्म भरकर न भेजने वालों को चाहिए कि वे आगामी अधिवेशन के अवसर पर अपना फार्म पहिले से ही पंचों की सही करा कर भेज दें ताकि उनके वोट देने तथा प्रस्तावों पर विचार करने का हक़ सुरक्षित रहे।

स्वागतकारिणी के प्रायः सभी सदस्य आगत सज्जनों के स्वागत करने के लिए उत्सुक दिखाई देते थे। कई स्वयंसेवक तो दरअसल में दिलचस्पी से काम करते थे। इस सेवा-कार्य में खुरई के स्वयंसेवकों ने भी अपना हाथ बटाया था। स्वागत-समिति के सदस्यों में से मुन्शी भैयालालजी, श्री पन्नालाल पूरनचन्दजी बजाज, सिंघई कुन्नीलालजी, श्री० हजारीलालजी टोपी वाले अधिक व्यस्त दिखाई देते थे।

ठहरने का प्रबन्ध शहर के बड़े बड़े मकानों में किया गया था। धर्मशाला तथा श्री कमरया कुटुम्ब की नवीन जैन बोर्डिङ्ग भी काम में लाई गई थी। कुआ से पानी भरकर देने वालों की प्रत्येक स्थानों में व्यवस्था थी।

भोजन के लिये स्वागतकारिणी समिति ने ठहरने वाले मकानों के नीचे ही जैनियों की दुकानें खुलवा दी थीं। और एक बड़ी दुकान सभा-मंडप के उत्तर की ओर लगाई गई थी। इसी के सामने स्वयंसेवकों का केम्प था। सड़क के बाजू में खादी, पुस्तकें आदि की भी दूकानें थीं।

इस प्रकार स्वागत-समिति-सागर ने अन्य अधिवेशनों की अपेक्षा कई नवीन योजनाओं के साथ अधिवेशन की तैयारियाँ की थीं।

पहिला दिन

प्रबन्धकारिणी सभा की बैठक।

संक्षिप्त कार्यवाही।

ता: १४-११-२४ शुक्रवार के १२ बजे दिन से नवीन छात्रभवन में प्र० का० सभा की बैठक शुरू हुई। प्र० का० के मेम्बरों को पीला फूल और प्रवेश टिकट दिया गया था। अतः उनके अतिरिक्त अन्य महाशय सभापति की आज्ञा से प्रविष्ट हो सकते थे।

उपस्थिति निम्न प्रकार थीः—

श्रीमान् सेठ पन्नालालजी टड़ैया-सभापति
,, स० सिं० गरीबदासजी जबलपुर
,, सिं० रतनचन्दजी जबलपुर
,, सिं० प्रेमचन्दजी जबलपुर
,, सिं० मत्थूलालजी जबलपुर
,, सिं० कंछेदीलालजी वकील जबलपुर
,, बाबू कस्तूरचंदजी वकील जबलपुर मंत्री
,, सिं० पन्नालालजी अमरावती
,, सेठ बिरधीचन्दजी सिवनी
,, सेठ मूलचन्द्रजी बरवासागर
,, सिं० गिरधारीलालजी टड़ैया
,, सेठ चन्द्रभानजी, बमराना
,, सेठ लालचन्द्र जी दमोह
,, पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी
,, पंडित दीपचन्दजी वर्णी

श्रीमान् सिं० रतनचन्द्रजी कटनी
,, पं० जगमोहनलालजी ,,
,, पं० जीवन्धरजी इंदौर
,, पं० दरबारीलालजी न्या० ती०
,, मिश्रीलालजी भेलसा
, मास्टर छोटेलालजी
,, सिं० गोकलचन्द्रजी वकील, दमोह
,, पं० लोकमनजी शाहपुर
,, सिं० दुलीचन्द्रजी, कलकत्ता
,, सिं० हुकमचन्द्रजी, पढ़ा

सभासदों के अतिरिक्त श्रीमान् पं० नाथूरामजी प्रेमी, पं० बाबूलालजी पं० देवकीनन्दन जी सिद्धान्त शास्त्री आदि श्रीमान् तथा धीमान् महानुभाव भी उपस्थित थे।

समय हो चुकने पर भी कोरम न हुआ। इस कारण बैठक १॥ बजे तक के लिये स्थगित कर दी गई। पश्चात् भूतपूर्व सभापति सेठ पन्नालालजी टड़ैया के सभापतित्व में कार्य प्रारम्भ किया गया।

१—दिगम्बर जैन मन्दिरों की ओर से अब तक आये हुए फार्मों के हिसाब मास्टर छोटेलालजी द्वारा पढ़कर सुनाये गये। कुछ वे चिट्ठियां भी पढ़कर सुनाई गई जो मन्दिरों के द्रव्य व आयदाद की दुर्व्यवस्था की द्योतक थीं।

इस पर कुछ देर तक विवाद होता रहा किन्तु निष्कर्ष कुछ न निकला। इसलिये मंत्री महोदय ने:—

२—अपनी वार्षिक रिपोर्ट, बजट और आय-व्यय का चिट्ठा पेश किया और साथ ही यह भी कहा कि आडीटर सा० के बीमार होजाने के कारण इसकी जाँच न हो सकी। परन्तु सभा ने उसे स्वीकार किया।

३—वार्षिक रिपोर्ट के आय-व्यय में जो रकम मंत्री की आज्ञा के बिना कोषाध्यक्ष के द्वारा व्यय हुई थी उस पर बहुत देर तक आपत्ति की गई। और आगामी इस प्रकार अनधिकार कार्य न होने के लिये अधिकारियों को सूचना दी गई।

उसी समय परवार-बन्धु विषयक चर्चा ने समाज में एक नवीन बिजली उत्पन्न करने का काम किया—सनसनी फैली और उसके लिये जनरल सभा का निश्चित समय भी बीत चुका। अन्त में उसकी कार्यवाही ठीक सूर्यास्त होने के पहिले २ प्रारम्भ हो ही गई।

प्रथम दिन—जनरल सभा।

ता: १४-११-२४ सक ४ बजे शाम।

प्रथम मधुर ध्वनि में क्रमशः छात्रों ने मंगलाचरण में महावीराष्टक स्तोत्र और हारमोनियम के साथ स्वयंसेवकों ने सुरीली आवाज़ में स्वागत गायन गाया। पश्चात् श्रीमान् सिंघई कुन्दनलालजी सभापति स्वागतकारिणी समिति ने अपना भाषण पढ़ा—(जो अन्यत्र प्रकाशित है।)

सभापति के चुनाव का प्रस्ताव।

श्रीमान् सेठ पन्नालालजी टड़ैया ने रा० ब० श्रीमान् श्रीमन्त सेठ पूरनशाहजी सिवनी के सभापति-पद को ग्रहण करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। जिसका समर्थन श्रीमान् पं० देवकीनन्दनजी, श्रीमान् पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी और रा० ब० श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी ने किया। तत्पश्चात् रा० ब० श्रीमान् श्रीमन्त सेठ पूरनशाहजी ने करतल ध्वनि के साथ सभापति का आसन ग्रहण करते हुए अपना भाषण प्रारम्भ

किया। जिसे मंत्री महोदय बाबू कस्तूरचंदजी वकील ने पूर्ण किया। (भाषण अन्यत्र प्रकाशित है) समय अधिक हो जाने के कारण सभा विसर्जन की गई। तथा विषय निर्वाचिनी समिति का चुनाव रात्रि को ८ बजे शास्त्र-सभा हो जाने के बाद किया गया। जिसमें भिन्न २ स्थानों के १२७ सदस्य चुने गये।

विषय-निर्वाचनी समिति की पहिली बैठक।

ता: १५-११-२४ की रात्रि को ६॥ बजे से प्रारम्भ होकर रात्रि के २॥ बजे तक होती रही। इसमें सबसे पहिले श्रीमान् बाबू गोकुलचन्दजी वकील ने इस आशय का प्रस्ताव रक्खा कि:—

"बहुमत से जो प्रस्ताव पास हों वह सर्वमान्य समझे जावें और उनकी अमली कार्यवाही की जावे।" वाद-विवाद होने के पश्चात् लोगों ने इसे स्वीकार तो किया, परन्तु परवार-सभा की नियमावली में एक नियम इसी आशय का होने के कारण प्रस्तावक महोदय ने अपना प्रस्ताव वापिस ले लिया। अन्य ३ प्रस्ताव और रक्खे गये जो बहु सम्मति से पास किये गये। यह परवार-सभा के लिये शुभ संकेत है कि जिसमें अब उपस्थित सभासदों की सम्मति भी सम्मति में शुमार होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

ओली-मुदरी के प्रस्ताव में अनुकूल ८४ और प्रतिकूल १६ रायें, इसी प्रकार बखेनी बंद करने के प्रस्ताव में ८१ अनुकूल और १७ विरुद्ध रायें थीं। बारसांकों का प्रस्ताव श्रीयुत पन्नालालजी बड़कुर ने उपस्थित किया जिसका समर्थन पं॰ नाथूरामजी प्रेमी, सिंघई गोकलचंदजी वकील आदि सज्जनों ने ज़ोरदार शब्दों में किया। रा॰ बा॰ श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी, दमरूलालजी के विरोध में गरमागरम बहस होने के बाद वोट लेने का मौका आया। अतः ५८ अनुकूल और २५ विरुद्ध वोट आने से यह प्रस्ताव जनरल सभा में विवाद होने के लिये बहुमत से पास किया गया। और यह भी निश्चित किया गया कि अगामी इसी बैठक में फिर इस पर विचार किया जावे। अधिक रात्रि हो जाने के कारण समिति का कार्य समाप्त किया गया।

दूसरा दिन—जनरल सभा।

ता: १५—११—२४ वक्त २ बजे दिन।

हारमोनियम के साथ गायन हो चुकने के पश्चात् मंगलाचरण पूज्य पं॰ गणेशप्रसादजी ने किया। बाद विषय निर्वाचिनी समिति में पास हुए निम्न लिखित प्रस्ताव उपस्थित किये गयेः—

प्रस्ताव नम्बर १

यह परवार-सभा प्रस्ताव करती है कि ओलीमुदरी या सगाई का दस्तूर बन्द किया जावे।

प्रस्तावक-सिं॰ कन्छेदीलालजी वकील जबलपुर
समर्थक-सेठ पन्नालालजी टड़ैया, ललतपुर
„ पं॰ जीवंधरजी, इंदौर
„ बाबा भागीरथजी वर्णी
„ घनश्यामजी, दमोह
„ पं॰ नाथूरामजी, प्रेमी

सर्व सम्मति से पास।

प्रस्तावक के प्रस्ताव उपस्थित करने और उस पर समर्थन आदि के द्वारा प्रकाश पड़ चुकने के पश्चात् श्रीयुत पं॰ देवकीनन्दनजी

ने अपना संशोधन पेश किया। कि "यदि धनवान अधिक खर्च करना चाहें तो पंचायत की इजाज़त से कर सकते हैं।" रा. ब. श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी खुरई ने समाज में बड़े और छोटे सभी स्थिति वालों के निर्वाह की ज़रूरत बतलाते हुए इस संशोधन का समर्थन किया।

परंतु श्रीमान् बाबा भागीरथजी वर्णी ने बम्बई के एक करोड़पति भाटिया का उदाहरण देकर सिद्ध किया कि जातीय नियमों में बड़े और छोटे का भेद-भाव नहीं है। अमीर और ग़रीब बराबर हैं। घनश्यामजी दमोह ने कहा कि यदि बड़े आदमी अधिक खर्च करना चाहें तो उन्हें इस दस्तूर को छोड़ और भी तो कई धार्मिक उपयोगी कार्य करने के लिए पड़े हुए हैं। उसमें दान कर सकते हैं।

इस पर स० सिं० नत्थूलालजी जबलपुर उठे और आपने अपनी भाषा में माननीय श्रीमन्त सा० की बात को दुहराते हुए कहा कि "यदि कोई बड़ा आदमी ज़्यादा खर्च करना चाहे तो पंचों से पूछ कर करने में कौन सी हानि है। संशोधन पास किया जावे।" परन्तु पं० नाथूरामजी प्रेमी ने अपनी कारुणिक किंतु हृदय को हिला देनेवाली आवाज़ में इस भेद-भाव के पृथक्करण पर सारगर्भित अच्छा प्रकाश डाला। आपने कहा—

"यह समय हमारे लिये बहुत क्रान्ति का आगया है। हमारे ऊपर आक्षेप हो चुका है कि हम लोग विपक्षी हैं। परन्तु मैं यहाँ पर यह बतला देना चाहता हूँ कि विलायत में भी दो श्रेणी के मनुष्य हैं, एक गरीब दूसरे अमीर। वहाँ भी एक समय ऐसा था जब कि गरीब कुचल दिये गये थे। परन्तु अब गरीबों और अमीरों के बीच में अधिकारों का युद्ध चल रहा है। आजकल हमारी सरकार धनवानों के साथ है। किन्तु गरीब लोग यह तय कर चुके हैं कि या तो हम कुचले जावेंगे या अमीर और गरीब बराबरी से रहेंगे। मुसलमानों की मस्जिद में ही देख लीजिये कि मस्जिद में नमाज़ शुरू हो चुकने के पश्चात् यदि अमीर काबुल भी पहुँचते हैं तो उन्हें गरीबों के पीछे खड़ा होना पड़ता है। इसलिये हम परवार-समाज से भी निवेदन करते हैं कि आप लोग सामाजिक नियमों में अमीर और गरीब का अन्तर न रक्खें (चारों तरफ से "ठीक है ठीक है" की आवाज़ें)।

"अमीर लोग जो मोटर आदि अपने शौक़ का सामान बाहिर से मँगाते हैं। वह क्या आप को मालूम है कि कितने गरीबों का खून चूस कर बुलाई जाती है। (समय पूरा होने की घंटी बजने पर—सभा के लोगों ने आपको बोलने के लिये और समय माँगा इसलिये २ मिनट और दिये गये।) ३० करोड़ भारतीयों में से बिचारे १० करोड़ दिनरात परिश्रम करनेवाले गरीबों को एक बार भी भर-पेट भोजन तथा सोना नसीब नहीं होता। महात्मा गांधीजी का कहना है कि फ़िजूल खर्ची पाप है—जब कि हमारे पड़ोसी भूखों मर रहे हों तब हम मौज उड़ावें। फिर भी सामाजिक नियमों में हमें ग़रीब और अमीर का अन्तर दिखाया जाता है। अमीर यदि अधिक खर्च करना चाहते हैं तो कोई उनका हाथ नहीं पकड़ता। परन्तु हम सामाजिक नियमों में अड़ंगा तो न लगावें। और हम तो अन्त में अमीरों से यही निवेदन करते हैं कि वे इस भेद-भाव वाले संशोधन को पृथक् करते हुए दया करके गरीबों में मिल जावें।"

प्रेमीजी का भाषण समाप्त होने पर सभापति महोदय की आज्ञा से मंत्रीजी ने सूचना दी कि

इस विषय पर पूरा वाद विवाद हो चुका है—फिर भी यदि और कोई बोलना चाहे तो ५ मिनट का समय और दिया जाता है।

दो मिनट के पश्चात् प्रस्तावक महोदय बाबू कन्छेदीलालजी वकील ने खड़े होकर कहा कि "हम लोग सामाजिक नियम बनाने को इस सभा में उपस्थित हुए हैं। परन्तु आप लोग जानते होंगे कि नियमों (कानूनों) में अमीर गरीब का भेद-भाव नहीं रहता—ताजीरात हिंद की कोई दफा ऐसी नहीं है जो गरीब और अमीर के लिये पृथक् करती हो। आपने प्रस्ताव का असली उद्देश्य समझाते हुए उसी रूप में पास करने को जोर दिया।

अन्त में नियमानुसार पं० देवकीनन्दनजी के संशोधन की वोट ली गई—जिसका कि समर्थन श्रीमन्त सा० खुरई ने किया था। परन्तु संशोधन के पक्ष में एक भी वोट न मिलने पर मूल प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास किया गया।

प्रस्ताव नम्बर २

यह परवार-सभा प्रस्ताव करती है कि विवाह में लड़के की चवेनी या ज्योनार बन्द कर दी जावे।

प्रस्तावक—बाबू कन्छेदीलालजी वकील
समर्थक—सेठ पन्नालालजी टड़ैया
सर्व सम्मति से पास।

समर्थन हो चुकने के पश्चात् जवाहरलालजी जलतपुर वालों ने लड़की वाले पर अधिक बोझ हो जाने का प्रश्न उठाया। जिसका खुलासा करने के लिये पं० देवकीनंदनजी ने भी कहा। तब बाबू कन्छेदीलालजी ने विस्तारपूर्वक समझाते हुए कहा कि अभी आगे आनेवाले तीसरे प्रस्ताव से यह भ्रम दूर हो जावेगा। जब कि बरात भाँवर से एक दिन पहिले आवेगी तो लड़कीवाला १ही दिन भोजन करावेगा जो कि अभी कराता था परन्तु इससे बहुत लाभ होगा। वोट लेने पर यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास किया गया।

प्रस्ताव नम्बर ३

यह परवार-सभा प्रस्ताव करती है कि बरात भाँवर से सिर्फ एक दिन पहिले आवे।

प्रस्तावक—बाबू कन्छेदीलालजी वकील
समर्थक—पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी
" सेठ पन्नालालजी टड़ैया
" सेठ लालचन्दजी दमोह
सर्वसम्मति से पास।

चारसांक का प्रस्ताव।

"वर्तमान में विवाह सम्बन्ध के लिये आठ सांके मिलाई जाती हैं। परन्तु अब इन सांकों के सबब से अनमेल विवाह होते हैं-तिस पर भी सम्बन्ध नहीं मिलते। इससे आठसांकों की एवज़ में चार ही सांकें मिलाई जावें जो कि धर्मशास्त्रानुसार अनुचित नहीं है। अभी जो प्रथमसूर आठों सांकों में बाधक होता था वह चार में ही लागू हो।"

उपर्युक्त प्रस्ताव श्रीयुत पन्नालालजी बड़कुर-सागर ने पेश किया। पहिले दिन की सब्जेक्ट कमेटी में बहुमत से पास हो जाने पर भी यह निश्चय किया गया था कि इसे जनरल सभा में वाद-विवाद के लिये रखकर लोगों की सम्मति समझी जावे। यदि जनरल सभा के लोगों की इच्छा इसके अनुकूल दिखे तो फिर सब्जेक्ट

कमेटी में रखकर जनरल सभा से पास कराया जावे । अतः आज के दिन केवल पक्ष और विपक्ष में भाषण हुए ।

श्रीयुत पं० देवकीनन्दनजी सिद्धांत-शास्त्री ने जो कुछ कहा उसका भाव इस प्रकार है । "उच्च वर्ण की अन्य जातियों में इस तरह आठ सांके मिलाने का रिवाज़ नहीं है । जैनशास्त्रों में यह लौकिक धर्म है । शास्त्रों में सांकों का पता नहीं है । पहिले मामा की लड़की से विवाह होते थे । श्रीमहावीर स्वामी के समय में प्रसिद्ध जीवन्धरकुमार ने अपने मामा से उनकी लड़की विवाहने की इच्छा प्रकट की थी । यदि बारसांकों में हो तो धर्मानुसार कोई बाधा नहीं है । अब भी दक्षिण में जैनियों में मामा की लड़की लेने का रिवाज़ है । स्वयं पंडित आशाधरजी ने आचार-शास्त्र में लिखा है कि यदि अजैन मिथ्या दृष्टि से सम्यक्दृष्टी हो जावे और उसमें कोई कुल कलंक न हो तो वह मुनि-दीक्षा ले सकता है । बरार में जो बदनेरा कठनेरा, बघेलवाल आदि जातियाँ हैं उनमें एक ही गोत्र बचाया जाता है ऐसा ही अग्रवालों में है । आठ सांकें ढूँढ़ने से छोटी उमर में ही सगाई ढूँढ़ी जाती है । इससे बाल-विवाह बढ़ता है ।"

पं० नाथूरामजी प्रेमी ने भी विस्तार से इसका समर्थन किया । आपने कहा कि:—

धर्म-शास्त्र वैश्य वर्ण की भिन्न २ जातियों में व्यवहार करने के लिये बाधा नहीं देता । पुराणों की कथाओं में ९ वीं शताब्दी से पहिले परवार आदि जातियों का अस्तित्व नहीं मिलता है । शास्त्रानुसार द्विजातियों में परस्पर भी सम्बन्ध हो सकता है । ऐसी धर्मशास्त्र की आज्ञा होते हुए आठसांके मिलाने की कठिनता को दूरकर बारसांकें रखने में कोई बाधा नहीं है ।" इसके पश्चात् विषय निर्वाचनी समिति की बैठक होने की सूचना दी जाने पर सभा विसर्जन की गई ।

विषय निर्वाचिनी समिति की दूसरी बैठक ।

ता: १५—११—२४ रात्रि के ६॥ बजे ।

"गूजर जाति जिन्हें कहीं पल्लीवाल भी कहते हैं अब संख्या कम हो जाने के कारण गोलालारे भाइयों ने दयालु हो कर बेटी-व्यवहार करने की इच्छा प्रकट की है । उस हालत में आजतक चला आया हमारी जाति के साथ रोटी व पंचायती व्यवहार आगामी काल में भी रहे ।" इस आशय का प्रार्थना-पत्र रक्खा गया जो सर्व सम्मति से पास किया गया ।

दूसरा प्रार्थना पत्र हुकमचंदजी (समैया) होशंगाबाद वालों का था जिसमें लिखा था कि "सिरोंज से लड़की को लेकर ४ परवार महाशय आये और शादी कर गये । १॥ माह बाद मुझे मालूम हुआ कि वह लड़की बिनैका-वार की है । इस कारण मुझे जाति से बन्द कर रक्खा है इ लिये जाति में मिलाने के लिये प्रार्थी हूँ-।"

समिति ने निर्णय दिया कि मामला हमारी जाति का न होने के कारण आपके जाति भाई ही फैसला करेंगे, किन्तु जिन लोगों ने यह कर्म किया है वहाँ के लोगों को चाहिये कि शीघ्र उनका निर्णय और दंड निश्चित करके परवार-सभा को रिपोर्ट करें ।

एक प्रस्ताव सरकारी नौकरियों से सम्बन्ध रखनेवाला पं० चट्टूरामजी ने भी रक्खा था परन्तु वह केवल १ वोट कम मिलने से गिर गया ।

बीसके भाइयों से विवाह-सम्बन्ध करने का प्रस्ताव श्रीयुत पूरनचन्दजी का उपस्थित किया गया । परन्तु कुछ असन्तोषजनक

विवाद हो जाने के कारण यह प्रस्ताव, प्रस्तावक महोदय ने स्वयं वापिस ले लिया।

धार्मिक उत्सव, धार्मिक छुट्टियों और स्वदेशी वस्त्र वाले तीनों प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास किये गये।

मंदिर, संस्थाओं के हिसाब न देने वालों की अदालत से उचित कार्रवाई वाला तथा खारसांक वाला प्रस्ताव भी उपस्थित किया गया। और दोनों बहु सम्मति से पास हुए।

जनरल सभा—तीसरा दिन।

ता: १६-११-२४ दिन के २ बजे।

प्रस्ताव नम्बर ४

यह सभा प्रस्ताव करती है कि प्रत्येक ग्राम के भाइयों का कर्तव्य है कि वे कम से कम वर्ष में एक बार धार्मिक उत्सव अवश्य किया करें।

प्रस्तावक— पं० जगमोहनलालजी
समर्थक—पं० पीताम्बरदासजी
सर्वसम्मति से पास।

प्रस्ताव नम्बर ५

यह सभा प्रस्ताव करती है कि सरकार से अनुरोध किया जावे कि वह हमारी धार्मिक दो दिनों (भादों सुदी १४, कार्तिक बदी १४) की आम तातील कचहरी आदि की रक्खे।

प्रस्तावक—सभापति
सर्वसम्मति से पास।

प्रस्ताव नम्बर ६

अहिंसा तथा परोपकार की दृष्टि से यह परवार-सभा प्रस्ताव करती है कि सब भाई-बहिन धार्मिक तथा लौकिक कामों में स्वदेशी हाथ का बना वस्त्र व्यवहार करें। रेशम के वस्त्र में घोरहिंसा होती है अतः वह भी काम में न लावें।

प्रस्तावक—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी
समर्थक—दयालचन्द्रजी जैन
" बाबा भागीरथजी वर्णी
" पं० दीपचन्द्रजी वर्णी
सर्व सम्मति से पास।

प्रस्ताव नम्बर ७

"परवार-सभा यह जानकर खेद प्रकाशित करती है कि बहुत से मंदिर, धर्मादा, शिक्षा व अन्य संस्थाओं के रुपया व आमदनी का हिसाब और प्रबन्ध ठीक तौर पर नहीं रहता है। इस कारण से जाति में फूट व झगड़े पैदा होते हैं। कई जगह इन संस्थाओं के रुपयों का भी नुकसान होता है। इसलिये परवार-सभा की भौगोलिक सीमा के अंदर इस धार्मिक द्रव्य का हिसाब परवार-सभा हरएक मंदिर, तीर्थ, स्कूल व धर्मादावाले से सालाना लेवे। और जो संस्था या व्यक्ति हिसाब देने से इंकार करे या न देवे तो परवार-सभा से बनाई हुई कमेटी को उस संस्था के प्रबन्ध-कर्त्ता से हिसाब लेने वा उचित प्रबन्ध कराने का पूर्ण अधिकार होगा। और उस कमेटी को हिसाब लेने, कार्यकर्त्ता तब्दील करने या प्रबन्ध करने का अधिकार पंचायत व अदालत दीवानी के जरिये से करने का होगा।"

कमेटी के मेम्बर दूसरे चुनाव तक के लिये ये तजवीज किये जाते हैं:—

श्रीमान् स० सिं० गरीबदासजी, जबलपुर
,, सिं० पन्नालालजी, अमरावती
,, सेठ विरधीचन्द्रजी, सिवनी
,, मोदी धरमचन्द्रजी, सागर
,, सेठ पन्नालालजी, टड़ैया ललतपुर
,, सेठ मूलचन्द्रजी, बरुवासागर
,, पं० देवकीनंदनजी, सिद्धांत शास्त्री
,, बाबू कस्तूरचन्दजी, वकील जबलपुर
,, सिं० कन्छेदीलालजी, वकील ,,
,, सिं० गोकुलचन्द्रजी, वकील दमोह
,, सेठ चन्द्रभानजी, बमराना

रा० ब० श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी ने कमेटी में मेम्बर होने से इन्कार किया ।

प्रस्तावक-सिंघई गोकुलचन्दजी वकील
समर्थक—सेठ पन्नालालजी टड़ैया
,, सिं० कन्छेदीलालजी वकील
,, सिं० पन्नालालजी अमरावती

नीचे लिखी शर्तें सभापति महोदय ने प्रस्तावक महाशय को सुझाईं जिसे प्रस्तावक ने मंजूर की ।

१—एक रजिस्टर सभा के दफ़्तर में इस प्रकार रहना चाहिये जिसमें हर जगह के हिसाब दर्ज़ हों ताकि उससे हिसाब और रकम रखने वालों का पता लग सके ।

२—दूसरे वर्ष आसामी रद्दोबदल किये जावें ।

३—पंचों को छह माह की परवार-बन्धु के द्वारा मुहमिल इत्तला दी जावे कि जिनके पास हिसाब हो जाहिर करें ।

४—बाद मुद्दत के कार्यवाही अमल में लाना चाहिये ।

५—यदि हिसाब व रकम रखने वाले के पास कोई अंदेसा नहीं होगा तो हमेशा के माफ़िक कार्यवाही रहेगी ।

६—क्योंकि बहुतधन यश के कारण वसूल न होकर दूसरी हैसियत में होकर डूब जाता है ।

इस प्रस्ताव पर समर्थन और अनुमोदन हो चुकने के पश्चात् रा० ब० श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी खुरई ने विरोध किया । आपका कहना था कि "अभी इस प्रस्ताव के पास करने का मौका नहीं है कारण कि इसमें बहुत से झगड़े पैदा होंगे । आदि ।" विरोध के विपक्ष में केवल एक सज्जन ने कहा । श्रीयुत सिं० पन्नालालजी अमरावती ने बड़ी गम्भीरता से और ज़ोरदार शब्दों में आपका खण्डन करते हुए मूल प्रस्ताव के पास करने का समर्थन किया । आपका कहना था "कि हम कई वर्षों से आपके द्वारा इस प्रकार की टालमटूल सुन रहे हैं अब हमारी समझ में नहीं आता कि वह समय कब आवेगा जब ये सुधार की बातें काम में आवेंगी ।"

इसी समय श्रीमान् पूज्य पं० गणेश-प्रसादजी वर्णी ने समर्थन करते हुए प्रतिज्ञा की "कि यदि यह प्रस्ताव पास न होगा तो मैं यहाँ पर ४ दिन तक निराहार बैठा रहूँगा"। सभापति महोदय ने उसमें नवीन विषय और जोड़ देने की सूचना दी । जो ऊपर मूल प्रस्ताव के नीचे ६ नियम लिखे हुए हैं ।

वोट लेने पर यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास किया गया । सागर के श्रीयुत जवाहिर-लालजी समैया ने अपने चैत्यालय का हिसाब समझाने के लिये उसी समय उठकर सभा में सूचना दी । और भी बहुत से सज्जनों ने हिसाब शीघ्र भेजने की स्वीकारता दी थी ।

वारसांक का प्रस्ताव ।

कल इस प्रस्ताव पर जनरल सभा तथा विषयनिर्वाचिनी समिति में पूर्ण वाद विवाद

के पश्चात् बहु सम्मति से पास होने के कारण आज फिर उपस्थित किया गया। इसमें विरोधी वही थे जो कल की सभा में थे। फिर भी अनेक महाशयों के जोरदार भाषण हुए। जगह जगह इसकी चर्चा हो रही थी। कि अचानक व्यर्थ ही यह खबर फैली कि "अमुक महाशय के घर में आग लग गई।" स्वयंसेवक उस ओर दौड़े। उनके साथ कुछ २ लोग भी उठने लगे। परन्तु शीघ्र ही शांति होगई। फिर कई सज्जनों के भाषण के पश्चात् प्रस्तावक महोदय ने यह कहते हुए कि "पूज्य वर्णीजी तथा कुछ श्रीमानों के आग्रह से हमारी हार्दिक इच्छा रहने पर भी गुरु की आज्ञा पालन कर हम अपना प्रस्ताव वापिस लेते हैं।" श्रीमन्त सा० खुरई ने सागर की समाज को धन्यवाद दिया और कहा कि अभी इसका ग्राम २ में आंदोलन करके सम्मतियाँ एकत्र की जावें। तथा यह आगामी वर्ष पेश किया जावे। तब तक यह स्थगित रहे। पश्चात् सि० कन्छेदी-लालजी वकील, पन्नालालजी बड़कुर तथा मंत्री महोदय ने इस आशय का वक्तव्य कहाः—

"बारसांक का प्रश्न नया उपस्थित नहीं। बारसांकों की शादियाँ कई प्रान्तों में हुई हैं। पन्ना, अजयगढ़, झांसी, बंडा तहसील आदि स्थानों में भी होती हैं--वहाँ ज़रा भी रोक-टोक नहीं है—पूर्ण स्वतंत्रता है। परन्तु दमोह, सागर, ललतपुर, जबलपुर, मालवा में इसका प्रचार नहीं है। इसमें संशय होता है कि जनता इसके लिये तयार नहीं। फिर भी हमको उसका उदाहरण दिखा देना चाहिये। जिससे फिर कोई अड़चन ही बाकी न रहेगी। और अभी यह प्रस्ताव स्थगित रखने से श्रीमान् लोग संतुष्ट होते हैं तो इस साल पास न करके आगामी साल पास किया जा सकता है। अच्छा हो कि अगुओं को साथ लेकर अपन आगे बढ़ें। अतः फूट न पड़ने पावे इसके लिये इस प्रस्ताव का स्थगित रखना ही उचित है।"

यद्यपि अभी और भी कार्य बकाया था परन्तु संध्या का समय हो जाने के कारण सभा विसर्जन की गई। तथा जनरल सभा का अन्तिम कार्य पूर्ण करने की सूचना ७ बजे शाम की दी गई।

जनरल सभा—अन्तिम समय।

ता: १६-११-२४ रात्रि के आठ बजे।

गूजर वा पद्मीवाल जाति की दरख्वास्त।

प्रथम वह दरख्वास्त सभा में पढ़कर सुनाई गई। परन्तु किन्हीं २ भाइयोंने यह कह कर विरोध किया कि जब तक गोलालारे भाई स्वयं दरख्वास्त न दें तब तक इस पर विचार न किया जावे। जहाँ-तहाँ इसकी चर्चा होने पर यह विषय यों ही छोड़ दिया गया।

प्रस्ताव नम्बर ८

यह सभा प्रस्ताव करती है कि सभा की नियमावली में कई त्रुटियाँ हैं। उनके संशोधन करने की आवश्यकता है। इसलिये निम्नलिखित महाशयों की एक कमेटी बनाई जाती है। वह ३ माह के अन्दर नियमों का सुधार कर प्रबन्धकारिणी कमेटी में पेश करे तथा प्रबन्ध-कारिणी कमेटी उस पर विचार करके पास करे।

कमेटी के मेम्बर :—

श्रीमान् रा० ब० श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी
,, ब्र० सि० गरीबदासजी
,, सि० कन्छेदीलालजी वकील
,, बाबू कस्तूरचन्दजी वकील

श्रीमान् सेठ पन्नालालजी टड़ैया
„ सिं० गोकलचन्दजी वकील
„ पं० बाबूलालजी कटनी
„ चौधरी दमरूलालजी
„ सिं० प्रेमचन्द्रजी

प्रस्तावक—सेठ बिरधीचन्दजी सिवनी
समर्थक—सिं० प्रेमचन्दजी जबलपुर
सर्व सम्मति से पास।

प्रस्ताव नम्बर ६

परवार-सभा की प्रबन्धकारिणी कमेटी के निम्नलिखित कार्यकर्त्ता तथा सभासद चुने जाते हैं।

प्रस्तावक—सिं० गोकुलचन्दजी व० दमोह
समर्थक—पं० जीवन्धरजी इन्दौर
सर्व सम्मति से पास।

नीचे लिखी सूची दो बार पढ़कर सुनाई गई। और उनमें कई नाम जनता के बतलाने पर प्रस्तावक महोदय ने पीछे से जोड़े जो सर्व सम्मति से पास हुए।

संरक्षक।

श्रीमान् न्यायाचार्य पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी

सभापति।

श्रीमान् रा० ब० श्रीमान् श्रीमन्त सेठ पूरनशाहजी—सिवनी।

उपसभापति।

श्रीमान् स० सिं० गरीबदासजी—जबलपुर।
„ रा. ब. श्रीमंत सेठ मोहनलालजी—खुरई।
„ सिंघई पन्नालालजी—अमरावती।
„ सेठ पन्नालालजी टड़ैया—ललतपुर।

मंत्री।

श्रीमान् बाबू कस्तूरचन्दजी, वकील—जबलपुर।

सहायक मंत्री।

श्रीमान् सिं० कन्छेदीलालजी, वकील—जबलपुर
„ सेठ बिरधीचन्दजी—सिवनी।

कोषाध्यक्ष।

श्रीमान् सेठ लालचन्दजी—दमोह।

आडीटर (हिसाब निरीक्षक)।

श्रीमान् चौधरी बालचन्दजी—दमोह।

सभासद।

१२ श्रीमान सिं० गोकुलचन्दजी, वकील, दमोह
१३ „ मूलचन्दजी, मऊ वाले „
१४ „ सेठ राजधर जी, „
१५ „ पं० अभयचन्दजी, काव्यतीर्थ „
१६ „ सेठ चन्द्रभानजी, बमराना
१७ „ सिं० कुंवरसेनजी, सिवनी
१८ „ स० सिं० दीपचन्दजी, „
१९ „ „ देवचन्दजी, „
२० „ बाबू दशरथलालजी, „
२१ „ पं० पल्टूरामजी, न्यायतीर्थ „
२२ „ सेठ मूलचन्दजी, स० बरुवासागर
२३ „ सेठ सुखलालजी टड़ैया, ललतपुर
२४ „ श्रीमन्त सेठ बच्चूलालजी, „
२५ „ सिं० भगवानदासजी सराफ़ „
२६ „ सेठ गोरेलालजी, टड़ैया „
२७ „ सिं० खेमचन्दजी, मार्वी
२८ „ पं० नाथूरामजी प्रेमी, बम्बई
२९ „ सेठ गुलाबरायजी बड़कुर, छतरपुर
३० „ पूरनचन्दजी बजाज, सागर
३१ „ मुन्शी भैयालालजी, „
३२ „ चौधरी पूरनचन्दजी मानकचौक
३३ „ खूबचन्दजी सोधिया, बी. ए. सागर
३४ „ सिं० कुञ्जीलालजी बजाज, सागर

३५ श्रीमान् बड़कुर पन्नालालजी, सागर
३६ ,, पं० दयाचन्द्जी, बांदरी
३७ ,, पं० हजारीलालजी, न्याय० परसोन
३८ ,, ज्योड़िया बन्शीधरजी, जबलपुर
३९ ,, स० सिं० मुन्नीलालजी ,,
४० ,, सिं० प्रेमचन्द्जी ,,
४१ ,, स० सिं० रतनचन्द्जी, ,,
४२ ,, स० सिं० रतनचन्द्जी, कटनी
४३ ,, पं० बाबूलालजी, बजाज ,,
४४ ,, पं० जगन्मोहनलालजी, ,,
४५ ,, चौधरी चुन्नीलालजी, खुरई
४६ ,, गुरहा गनपतलालजी. ,,
४७ ,, मास्टर छोटेलालजी (जबलपुर)
४८ ,, बाबू अमनाप्रसादजी वकील, खुरई
४९ ,, सिं० श्रीनन्दनलालजी, बीना
५० ,, हजारीलालजी कठरया बामोरा
५१ ,, चौ. बसोरेलालजी,जखोरा (झांसी)
५२ ,, स०सिं० लक्ष्मीचन्द्जी, गढ़याना,,
५३ ,, सिं० गुन्दीलालजी वैशाखिया, ,,
५४ ,, सिं० हजारीलालजी, ,,
५५ ,, चौ० श्यामलालजी, मुडरा, बसई
५६ ,, हजारीलालजी औलिया, रानीपुर
५७ ,, सिं० माणिकचन्द्जी, ,,
५८ ,, स० सिं० नाथूरामजी, नरसिंहपुर
५९ ,, बाबू बन्शीधरजी वैशाखिया, ,,
६० ,, सेठ स्वरूपचंदजी, बारासिवनी
६१ ,, सिं० हजारीलालजी, महाराजपुर
६२ ,, पंचमलालजी तहसील दार रहली
६३ ,, दयाचंदजी बजाज, ,,
६४ ,, चौधरी दयाचन्द्जी, चन्देरी
६५ ,, सिं० लालचन्द्जी बजाज, पठार
६६ ,, सेठ हीरालालजी, राघोगढ़
६७ ,, सेठ शिखरचन्द्जी, पन्ना स्टेट
६८ ,, पण्डित फूलचन्द्जी, रीवा स्टेट

६९ श्रीमान् असकरनलालजी, पिंडरई (मंडला)
७० ,, स० सिं० रतनलालजी, छिन्दवाड़ा
७१ ,, पण्डित कुंजीलालजी, कामठी
७२ ,, मूलचन्द्जी दीवान, मकड़ाई
७३ ,, पण्डित देवकीनन्दनजी—कारंजा
७४ ,, सिं० कन्हैयालालजी, डोंगरगढ़
७५ ,, चौधरी कपूरचन्द्जी, कटक
७६ ,, पं० दरबारीलालजी, सा. र. इन्दौर
७७ ,, पं० जीवन्धरजी न्या० ती०, ,,
७८ ,, पं० मुन्नालालजी काव्यतीर्थ, ,,
७९ ,, पं० तुलसीरामजी काव्यतीर्थ बड़ौत
८० ,, पं० पन्नालालजी का०-डेह (मारवाड़)
८१ ,, पं० पीताम्बरदासजी पथरियादमोह
८२ ,, चौ० रामचन्द्जी टीकमगढ़
८३ ,, पं० बख्तावरसिंहजी ,,
८४ ,, मथुरालालजी मदोनावारे ,,
८५ ,, पं० लोकमणिजी गोटेगांव (नर०)
८६ ,, सिं. सोनीलालजी नवापारा रायपुर
८७ ,, सिं० पूरनचन्द्जी जुझार (दमोह)
८८ ,, पं० लोकमणिजी शाहपुर (सागर)
८९ ,, सेठ धरमदासजी अमरावती
९० ,, सोमतराय गोपालजी भेलसा
९१ ,, गिरधारीलालजी टड़ैया मुंगावली
९२ ,, रतनचन्द्जी मोदी ,,
९३ ,, अनन्दीलालजी मलैया महरोनी
९४ ,, सिं० गिन्देलालजी सोरया मड़ावरा
९५ ,, लछमनलालजी नायक ,,
९६ ,, सिं० दमरूलालजी देदामूरी बनि०
९७ ,, तेजसिंहजी बड़धरिया लागोन
९८ ,, सिं० रामरतनजी अबेरा, (दमोह)
९९ ,, कन्छेदीलालजी मलैया, गढ़ाकोटा
१०० ,, पन्नालालजी मलैया, ,,
१०१ ,, राय सेठ कुन्दनलालजी रोंडा सा०
१०२ ,, पं० दीपचन्द्जी, वर्णी

१०३	श्रीमान्	सिं० बुलीचन्द्जी, ६७४८	कलकत्ता
१०४	,,	मुन्नालालजी ठेकेदार	बरेठ
१०५	,,	गणपतलालजी टड़ा	(सागर)
१०६	,,	हीरालालजी c/o ही+म०	भोपाल
१०७	,,	कन्छेदीलालजी बजाज,	बिलहरी
१०८	,,	भवानीप्रसादजी बड़कुर,	देवरीकलां
१०९	,,	चौ० दौलतरामजी,	बंडा
११०	,,	सिं० जवाहरलालजी,	दलपतपुर
१११	,,	दीपचन्द्जी,	नागपुर
११२	,,	हुकमचन्द्जी हलवाई,	ईसागढ़
११३	,,	छुट्टीलालजी,	गुना
११४	,,	मुन्नालालजी जैन,	जगदलपुर
११५	,,	सेठ जवाहरलालजी,	मामदा
११६	,,	गुलाबचन्द्रजी बजाज,	बासोदा

प्रस्ताव नम्बर १०

आगामी वर्ष के लिये निम्न लिखित बजट तथा गत वर्ष का आय-व्यय जो अभी पढ़कर सुनाया गया है। पास किया जावे।

प्रस्तावक—बाबू कस्तूरचन्दजी वकील मंत्री

समर्थक—सेठ लालचन्दजी दमोह

सर्व सम्मति से पास।

आगामी वर्ष का बजट

स्कालर्शिप	...	२०००)
अनाथ सहायता	...	५००)
उपदेशक फंड	...	१०००)
छपाई वगैरह	...	५००)
दफ्तर खर्च	...	५००)
डेपुटेशन खर्च	...	५००)
सहायता परवार-बन्धु	...	१०००)
		६०००)

प्रस्ताव नम्बर ११

आगामी अधिवेशन स्थान पपौरा में रक्खा जावे।

प्रस्तावक—पं० मोतीलालजी

समर्थक— पं० गणेशप्रसादजी वर्णी

इस प्रस्तावके उपस्थित होने पर श्री सिंगई गोकुलचन्दजी वकीलने सभाके ८ वें अधिवेशन का निमंत्रण दमोह का दिया। दोनों ओर से वाद-विवाद होजाने पर वोट ली गई तो दमोह ५६ वोट से हार गया। और अधिवेशन का स्थान पपौरा निश्चित किया गया। इस अवसर पर सभापति महोदय रा० ब० श्रीमान श्रीमन्त सेठ पूरनशाहजी ने परवार-सभा को ६०१) का दान दिया।

पश्चात् मंत्री महोदय बाबू कस्तूरचन्दजी वकील ने स्वागत-कारिणी समिति के सदस्यों, स्वयंसेवकों, आगत सज्जनों तथा सभापति महोदय आदि का आभार मानते हुए सभा विसर्जन की।

परवार–सभा–सागर के सम्बन्ध में पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी की सम्मति ।

परवार-सभा का सप्तम वार्षिक अधिवेशन सागर में प्रायः जाति के श्रीमान्, धीमान् व सामान्य मनुष्यों के समुदाय से निर्विघ्न समाप्त हो गया। उसमें जो कुछ होना था वही हुआ। केवल एक बात नवीन देखने में आई। वह यह कि समय का प्रवाह जो धारावाहिक रूप से आ रहा था, उसने अब अपना रूप पलटा। यद्यपि अभी उसे मन्दतम गति ही मिली है, किन्तु अल्प ही समय में वह तीव्रतम रूप धारण कर लेगा। जिसे हमारे श्रीमानों ने भी अङ्गीकार की है कि "अब प्राचीन पद्धति का संशोधन करना परमावश्यक है।" केवल नवीन लोगों के मन्तव्य से कुछ काल का विलम्ब चाहते हैं।

अस्तु, समय सर्व कार्य करा लेता है। देव-द्रव्य का प्रस्ताव निर्विघ्न पास हो गया। चार-सांकों का प्रस्ताव एक वर्ष के लिये स्थगित कर दिया गया। किन्तु जो इस रीति का अनुसरण करेंगे वह उच्च कोटि के ही समझे जावेंगे।

शिक्षा–विभाग की ओर विशेष लक्ष्य नहीं दिया गया। सागर पाठशाला को प्रायः मध्यम स्थिति के पात्रों ने यथायोग्य सहायता दी। श्रीमान् बाबू कस्तूरचन्दजी वकील, सिंघई कन्छेदीलालजी वकील, बाबू गोकलचन्दजी वकील तथा प्रेमीजी के समयानुकूल भाषण हुए। श्रीमन्त सा० खुरई तथा स० सिंघई गरीबदासजी के भाषण भी समय २ पर हुए किन्तु उसमें प्राचीन शैली का संघर्ष था जिसमें श्रीमान् लोगों ने भी कुछ काल बाद पृथक्करण किया जाना स्वीकार किया।

श्रीयुत बड़कुर पन्नालालजी का चार-सांक वाला प्रस्ताव बहुत उत्तम था जिसे जाति के श्रीमान् पण्डितवर्य देवनन्दनजी बरुवा सागर, श्रीमान् पं० जीवधरजी, श्रीमान् पं० दरबारीलालजी ने धर्मशास्त्र के अनुकूल बताया। तथा उसे उपस्थित जनता ने सहर्ष स्वीकार किया। जिन्होंने इस प्रस्ताव को एक वर्ष के लिये स्थगित करने की चेष्टा की उन्होंने भी इसे धर्मशास्त्र से सम्मत माना।

सर्व लोगों में प्रायः शान्ति रही। श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी के शुभागमन से इस प्रान्तवासियों को बहुत कुछ लाभ पहुँचा। श्रीमान् बाबा भागीरथजी की निर्भीकता ने तो इस उत्सव की शोभा में विशेष जीवन डाल दिया था। रात्रि के जल्से में तो हमारे पं० दीपचन्दजी वर्णी दीपवत् कार्य करते थे। "परवार-बन्धु" और उसके संचालक मास्टर छोटेलालजी के सम्बन्ध का पहिला दिन क्रान्तिकारक और स्फूर्तिप्रद था। यदि इस अवसर पर "बन्धु" की आर्थिक सहायता के लिये उद्योग किया जाता तो अच्छी सफलता मिलने की पूर्ण सम्भावना थी। परन्तु उसके जीवन में बाधा न आवे यही हमारा परम कर्तव्य है।

—गणेशप्रसाद वर्णी।

परवार महासभा—सागर का दृश्य।

(ले० श्रीमान् जैन-धर्म-भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी सम्पादक "जैन-मित्र।")

××यह देखकर प्रसन्नता हुई कि पहिले जो लोग बड़े आदमी की हां में हां मिलाते थे यह बात अब कुछ घट गई है। परवार-जाति में विद्या का प्रचार होने से लोगों को तर्क उठाकर अपनी बात कहने की व समझने की शक्ति अब आ चली है।

× × ×

सागर में परवार महासभा का जलसा बड़ा ही शानदार हुआ। परवार समाज के धनवान व विद्वान् सब ही लोग उपस्थित थे। एक बात जो बहुत बड़ी खटकनेवाली थी वह यह थी कि जिनके हाथ में समाज की डोर है वे मुखिया भाई, उन्नति के मार्ग से बहुत हिचकते थे। तथा यह बात भी देखी गई कि कुछ पंडितगण उनके मन को रुष्ट न कर देने के भय से किसी विषय पर अपने विचार बहुत ही संकोच भाव से प्रगट करते थे। तथा जिस बात को मुखियागण नहीं होने देना चाहते थे, उस बात की तरफ अधिकांश जनता का मन होने पर भी वे इस तरह त्यागी व पंडित जन आदि को दबाते थे—व उनको भ्रम दिखाते थे कि, उन विचारों को मजबूर होकर उनके अनुकूल बोलना पड़ता था। यह बात मुख्यता से उस प्रश्न के सम्बन्ध में अच्छी तरह झलकी थी जिसमें यह बात थी कि "परवार-जति में आठसांकों के स्थान में चारसांकें ही मिलाई जावें।" लोगों के बयान से यह बातें जाहिर हुई कि परवार लोग ऐसा करने भी लगे हैं। तथा उनको कोई रोकता भी नहीं है। तथापि प्रस्ताव पास करने में मुखिया लोगों ने जो विघ्न बाधाएँ उपस्थित कीं, उनको सब विचारशील सज्जन अनुभव कर रहे थे। इस रुकावट से योग्य सम्बन्ध मिलने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं—यही कारण प्रस्ताव करने वालों ने दिखाया था जो सबको मान्य था। इसकी चर्चा दो दफे विषय निर्धारिणी सभा में व दो दफे आम सभा में हुई। परंतु अन्त में यह प्रस्ताव आगामी वर्षके लिये स्वयं प्रस्तावक द्वारा स्थगित रखवाया गया। यदि वोट लिये जाते तो अवश्य यह बहुत कम विरोध होने पर पास हो जाता। सभा समाप्त होने पर नीचे लिखा नोटिस वितरण किया गया था जिससे परवार भाइयों को यह सूचना दी गई है कि वे चार सांकों के मिलने की रिवाज जारी कर दें और १ वर्ष में अधिक संख्या के नमूने पेश करदें।

चार सांकों की सूचना—परवार-सभा के अधिवेशन में २ दिन तक इस बात का आंदोलन चलता रहा कि चार सांकों की शादी प्रचलित हो चुकी है। और परवार-सभा से इस बात की मंजूरी दी जावे कि ऐसे संबंध अनुचित नहीं हैं। पर कुछ श्रीमानों के आग्रह से यह प्रस्ताव वापिस ले लिया गया है कि १ साल इस बात का और भी आंदोलन वा मत संग्रह किया जावे। इस वास्ते सब परवार भाइयों को विदित किया जाता है कि अगले १२ माह में जहां आठ सांक, की शादी में; अड़चन हो वहां चारसांक की शादी की जावे। वा परवार-सभा के मंत्री के पास इसकी इत्तला भेज दें जिसमें परवार-सभा के अगले अधिवेशन में यह बतलाया जावे कि इस बात का अब आगे टालना असम्भव है। यह ख्याल रहे कि चारसांक के ब्याह करने वाले जाति से दंडित न किये जावेंगें।

नोट—यह प्रस्ताव सबजेक्ट कमेटी में बहु सम्मति से पास हो चुका था।

निवेदक—
१६ ११-२४ } मंत्री, स्वा० कारिणी, स० सागर।

(जैन-मित्र से उद्धृत।)

ॐ

भा० व० दि० जैन समस्त परवार-सभा सागर के—

स्वागत-कारिणी समिति के अध्यक्ष श्रीमान् सिंघई कुन्दनलालजी का

व्याख्यान ।

आदि पुरुष आदीश जिन आदि सुविधि करतार ।
धर्मधुरंधर परम गुरु नमों आदि अवतार ॥

इसे मैं अपना बड़ा भारी सौभाग्य समझता हूँ, जो आज आप सर्व सज्जनों और महानुभावों के दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ। जैन धर्म और जैन-जाति की उन्नति की इच्छा से इतनी दूर आये हुए आप लोगों के स्वागत करने का सम्मान प्राप्त करना मेरे लिये बहुत बड़ी बात है। जीवन में ऐसे अवसर बहुत ही कम किसी बड़े भारी पूर्व पुण्य के उदय से प्राप्त होते हैं। मेरी समझ में अपने भाइयों की, अपने सहधर्मियों की सेवा करने से बढ़कर सम्मान और प्रतिष्ठा की बात दूसरी नहीं हो सकती। अतएव सब तरह से अयोग्य और असमर्थ होते हुए भी मैं यह सेवा-कार्य करने से इन्कार नहीं कर सका। प्रयत्न करते हुए भी यदि इस अयोग्यता और असमर्थता के कारण आपकी सेवा में त्रुटियाँ रह जावें, या आपको कुछ कष्ट पहुँचे तो इसके लिए मुझे आशा है कि आप सज्जन अपनी स्वाभाविक उदारता वश क्षमा प्रदान कर देंगे।

मुझे बहुत बड़ा भरोसा है कि परवार-सभा का यह सातवाँ अधिवेशन एक स्मरणीय अधिवेशन होगा। लोग इसकी याद बहुत समय तक न भूलेंगे। यह एक ऐसे स्थान में हो रहा है जो परवार-समाज का केन्द्र कहा जा सकता है। जहाँ विशाल जिन-मन्दिरों का समूह है जैन धर्म के अनुयायियों की एक बहुत अच्छी संख्या है। जहाँ एक बहुत बड़ी जैन-पाठशाला और जैन औषधालय है जिसके कारण जैन धर्म के जानकारों का अच्छा जमाव रहता है। और विद्वद्वर श्रीमान पूज्य पंडित न्यायाचार्य गणेशप्रसादजी वर्णी का हमेशा धर्मोपदेश होता रहता है। और ज़िले में सारी परवार जाति का एक तिहाई भाग निवास करता है। दूसरे गोलापूरब आदि जैन जातियों के भी चार पाँच हज़ार भाई रहते हैं। तथा जहाँ किसी समय जैन-जाति की उन्नति का डंका पिट चुका है। उसी सागर और उसके आस-पास का प्रदेश किसी समय जैन धर्म के प्रभाव से व्याप्त रह चुका है। जिसकी साक्षी देवगढ़, बीना (अतिशयक्षेत्र) चँदेरी, थूबौन रेशंदीगिरि, कुंडलपुर आदि प्राचीन देवालय और खंडहर अपनी विशालता और उच्चता के द्वारा संसार को दे रहे हैं। इस प्रान्त में ब्राह्मण धर्म पर जैन धर्म की सबसे स्पष्ट छाप नज़र आती है। और वह इतनी गहरी है कि यहाँ की प्रायः सभी उच्च जातियां मांस-भक्षण और हिंसा आदि से परहेज करती हैं। यदि ऐसे महत्वशाली प्रान्त और स्थान में परवार सभा से यह आशा की जाय कि वह अपनी प्राचीन कीर्ति की रक्षा करने के लिये प्रयत्न करने में कोई कसर न उठा रक्खेगी तो कुछ असंगत नहीं कहा जा सकता।

स्वागत्कारिणी सभा के इस अल्पज्ञ सेवक के द्वारा आपको यह आशा नहीं करनी चाहिये कि मैं सभा को सफल बनाने के लिए बड़ी मद कर लीजिए कि उक्त शहरों के आसपास

कीमती सलाह दे सकूंगा। परन्तु मोटे और स्पष्ट शब्दों में यह ज़रूर कहूँगा कि व्याख्यान और प्रस्ताव बहुत हो चुके। लोग इनसे तंग भी आगये हैं और सभा सुसाइटियों से दिन पर दिन ये ऊबते ही जारहे हैं। अब तो कुछ ठोस और अमली कार्य करके दिखलाइये जिससे जैन जाति का सच्चा सुधार हो और वह वर्तमान कष्टों से छुटकारा पा सके।

यहाँ यह कह देना भी मैं आवश्यक समझता हूँ कि जैनियों में जो जातीय सभाओं की स्थापना हुई है वह इसलिये नहीं है कि समग्र जैन समाज के हितों के भीतर ही हमारी जाति के हित शामिल नहीं हैं। किंतु, इसलिये हुई है कि अपनी जुदी २ जातियों के दृढ़ संगठन और पंचायती बल द्वारा हम अपने विचारों या प्रस्तावों को अमल में भी लासकें। अर्थात् ज़बानी बकवाद न करके कुछ ठोस काम करना भी न भूलना चाहिये यहां जो कुछ हो अमल में लाने के लिये ही हो-काग़ज़ों पर लिख रखने के लिये नहीं। जैन महासभा से अलग जुदी २ जातियों की सभायें इस अमली कार्रवाई के लिहाज़ से ही बनाई गई हैं। परंतु यह करते हुए भी आपको यह न भूल जाना चाहिए कि हमारी सारी जातियाँ एक महान् समाज-शरीर के ही जुदे २ सजीव अंग हैं। शायद इसी ख्याल से सागर के मेरे परवार बन्धुओं ने यह स्वागत्—सेवा का कार्य अपने इस गोलापूर्व भाई के सुपुर्द किया है। सागर के परवार-समाज की यह उदारता ही घोषित करती है कि हम सब परवार, चौसके, गोलापूर्व गोलालारे, खंडेलवाल, अगरवाल आदि भाई भाई हैं। और जैन-धर्म के नाते वास्तव में हम में कोई भेद नहीं है—न हम में कोई छोटा है और न कोई बड़ा। मैं अपनी छोटीसी समझ के अनुसार यह भी प्रार्थना कर देना उचित समझता हूँ कि इन जातीय सभाओं में प्रधानतः सामाजिक विषयों की चर्चा की जाय और समाज सुधार के ही उपाय सोचे जावें। धार्मिक विषयों को मुख्यता न दी जाय। केवल धर्मोन्नति की चर्चा के लिये महासभा आदि दूसरी बड़ी संस्थाएँ मौजूद हैं। जातीय सभाओं को तो जातीय समाज के कल्याण के ही उपायों में दत्तचित्त रहना चाहिए। इस समय मेरी समझ में नीचे लिखी बातें ऐसी हैं जिन पर परवार-सभा को सबसे अधिक विचार करना चाहिए।

१—इस बुन्देलखण्ड के जैनी भाई दरिद्रता या निर्धनता में सबसे बढ़े चढ़े हैं। न बेचारों के पास धन है और न धन कमाने के कोई साधन हैं। उद्योग-धंधों की कमी के कारण अच्छे से अच्छा मुस्तैद और परिश्रमी आदमी भूखों मरने के लिए लाचार होता है। बड़े बड़े शहरों में सोने-चाँदी के जेवरों और विलायती ठाट-बाट की चीज़ों से लदे हुए धनी भाई नहीं जानते कि ये बेचारे कितनी मुसीबत में हैं। और सारे पापों की खान इस गरीबी ने उन्हें कितना पतित और छोटा कर दिया है। आप टीकमगढ़, दतिया, चरखारी, पन्ना आदि रियासतों में चले जाइये और कुछ दिनों देहातों में घूमकर अपनी आँखों देखिए कि आपके भाइयों की अवस्था कितनी बिगड़ी हुई है। उन्हें देखकर वज्र हृदय भी पसीज जाता है। ये लोग धन से ही हीन नहीं हैं पढ़ने-लिखने के भी इनके यहाँ साधन नहीं हैं और इस कारण से अपनी उन्नति के उपाय सोचने में भी असमर्थ हैं। ललितपुर और जबलपुर आदि के रथ-प्रतिष्ठाओं की धूम-धाम और चकाचौंधी करने वाले जुलूस देखकर आप यह कल्पना

रहने वाले भाइयों के यहां भी इसी तरह लक्ष्मी के नाज़-नखरे और दुलार होते होंगे । नहीं नहीं तो उस समय भी हज़ारों भाई नोन, तेल, लकड़ी जुटाने की चिंता में सारे धर्म-कर्मों को भूलकर पसीना बहाते रहते हैं । जब आप अपने घर पर लाखों रुपया पानी की तरह बहाते हैं तो क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम लोग अपने इन भाइयों को निर्धनता और निरक्षरता के खड्डे से निकाल कर बाहर लाने का कुछ उद्योग करें ? हम में जातीय प्रेम, धर्म-प्रेम, वात्सल्य भाव हो तो सागर, जबलपुर, दमोह, कटनी, सिवनी, नागपुर, भेलसा, भोपाल आदि व्यापार के स्थानों में लाकर बसाने और उन्हें उद्योग धन्धों से लाभ देने का काम हम बहुत आसानी से कर सकते हैं । परवार-सभा इसके लिए कोई तजवीज़ अवश्य करे ।

२—इस निर्धनता के कारण जिसमें कि रोटियों का भी ठिकाना नहीं है, यदि गरीबोंके लड़के बिना विवाहे रह जाते हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । यदि हमारे यहाँ लड़कियोंकी संख्या अधिक होती तो अवश्य ये निर्धन भी ब्याहे जाते और सन्तानोत्पत्ति के द्वारा हमारी संख्या को कम न होने देते । परन्तु कन्याओं की कमी होने से, धनियों के दो २ तीन २ ब्याह होने से और धनियों को लड़की देने की प्रवृत्ति अधिक होने से अविवाहितों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है और जैनियों की संख्या के ह्रास का यह एक बहुत बड़ा कारण है । धनियों में अविवाहितों की संख्या प्रायः नहीं के बराबर होती है । फिर भी उनके द्वारा प्रजा-वृद्धि बहुत ही थोड़े परिमाण में होती है क्योंकि ये लोग विलासी और आलसी होने के कारण निर्जीव और निःसत्व हो जाते हैं । परवार-सभा को इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करना चाहिए ।

३—विवाहों के बढ़े हुए खर्च को गरीब लोग बरदाश्त नहीं कर सकते । इसके मारे गरीब लड़के अविवाहित रहते हैं और गरीब लड़कियों के मा-बाप उनको बेचने के लिए लाचार होते हैं । अतएव इन खर्चों को घटाने या मर्यादित करने का भी प्रयत्न अवश्य ही हल होना चाहिए ।

४-आठसांके मिलाने की जो पद्धति परवार-भाइयों में है वह इस समय योग्य वर-वधू का सम्बन्ध जोड़ने में बहुत ही रुकावट डालती है और इसके कारण बेजोड़ विवाह बहुत अधिक होते हैं । यदि इस पद्धति में कुछ संशोधन हो जाय तो बहुत लाभ हो ।

५-यह बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि हमारे परवार सज्जन अपने बिछुड़े हुए समैया भाइयों और चौसकों को फिर से अपने में सम्मिलित कर लेने के लिये तैयार हो रहे हैं । और यह योग्य भी है । क्योंकि यदि अपने धर्म-बन्धुओं को ऐसे आपत्ति काल में भी जबकि वे संख्या की कमी से बिलकुल गिरने के समीप आ रहे हैं— यदि हमने उन्हें अपने गले न लगाया और उन्हें न बचाया तो हमारे धर्म से गोवत्स प्रीति ही क्या हुई ! हमें आशा करनी चाहिए कि वह दिन शीघ्र आवे जब हम परवार, गोलापूरब, गोलालारे आदि एक दूसरे के समीप

रहनेवाली जातियाँ धर्म तथा प्रीति के कारण और भी समीप होते २ एक हो जावें। और हम में कोई भेद-भाव न रहे। वास्तव में ये सब जातियाँ एक वैश्य वर्ण के ही देश-भेद आदि के कारण पड़े हुए भेद हैं। इसलिए इनको मिटा-कर एक हो जाने में कोई पाप नहीं हो सकता। हमारे प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में इस प्रकार के सम्बन्ध को सर्वथा उचित बतलाया गया है।

६—हमारे यहाँ अज्ञानता का दौरदौरा है। ऊँची बातों को सोच-समझ सकने वालों की संख्या बहुत ही थोड़ी है। अतएव जैसे बने वैसे हमें ज्ञान का प्रचार करना चाहिए। और जगह जगह ज्ञान के साधन खड़े करना चाहिए। विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देकर जुदे २ विद्या-मंदिरों में पढ़ाने का प्रयत्न करना बहुत ही आवश्यक है। धर्मादा व संस्थाओं व जिन मंदिरों के द्रव्य का सदुपयोग होना चाहिए।

मैं अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार जो कुछ सोच सका, वह आपके सामने उपस्थित किया। इससे अधिक सोचने का मुझमें शक्ति नहीं है। इनमें से जो बातें आप सज्जनों को उचित मालूम हों उन पर विचार करें और उपाय सोचें। शेष बातों को मेरी मूर्खता समझ कर छोड़ दें और उनके कहने के लिए मुझे क्षमा कर देवें।

अन्त में श्री जिनेन्द्रदेव के निकट इस शुभ सम्मेलन को सफल बनाने की प्रार्थना करके अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ। और आप सबने हम लोगों की प्रार्थना पर ध्यान देकर जो यहाँ तक आने का कष्ट उठाया है उसके लिये हार्दिक आभार मानता हूँ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

व्याख्यान

"श्रीमान् श्रीमंत सेठ" रायबहादुर पूरनशाह आनरेरी मजिस्ट्रेट, सिवनी।

सभापति—

सप्तम-वार्षिक-अधिवेशन-"श्री भारतवर्षीय दिगम्बर-जैन-परवार-महासभा" सागर, (सी. पी.)

मंगलाचरण।

करम भरम जग, तिमिर हरन खग,
उरग लखन पग, शिव मग दरसि।
निरखत नयन, भविक जल बरसत,
हरखत अमित, भविक जन सरसि॥
मदन कदन जित, परम धरम हित,
सुमरत भगत, भगत सब डरसि।
सजल जलद तन, मुकुट सपत फन,
कमठ दलन जिन, नमत बनरसि॥
—कविवर बनारसीदास।

पूज्य ब्रह्मचारीगण, स्वागतकारिणी समिति के माननीय सभापति महोदय, प्रतिनिधि सज्जन तथा माननीय बन्धुओ! जीवनदात्री माताओ और बहिनो!

आज मेरे हर्ष का पारावार नहीं है जबकि मैं अपनी इस वृद्धावस्था में अपने आपको अपने इस सजातीय मंडल में पाता हूँ। और आप भव्य मूर्तियों के दर्शन कर रहा हूँ—विशेषकर श्रीमान् न्यायाचार्य पूज्य पं० गणेश-प्रसादजी वर्णी के पवित्र दर्शन करके तो मैं अपना आज अहोभाग्य मानता हूँ।

हमारी जाति में एक से एक विद्वान श्रीमान् व सुशिक्षित महानुभाव विद्यमान हैं। अतएव अच्छा होता कि उन्हें यह सभापतित्व पद प्रदान किया जाता। किन्तु आप सज्जनोंने मुझ जैसे अकिंचित्कर व्यक्ति को चुनकर मेरा गौरव बढ़ाया है, जिसका मैं अत्यन्त आभारी हूँ। जब कि मैं अपनी शक्ति की ओर दृष्टि डालता हूँ, तो मैं अपने को इस महान् भार के धारण करने और उसके पूर्ण निर्वाह करने में बिलकुल असमर्थ पाता हूँ। क्योंकि न तो मैं बुद्धिमान हूँ. न विशेषज्ञ हो। और यह कार्य बड़े उत्तरदायित्व का है। अतएव मुझे सन्देह है कि मैं इस पद-योग्य कर्तव्यों का पालन कर सकूँगा या नहीं। तथापि "अलङ्घ्यं हि सतां वचः" इस नीति के अनुसार आपकी आज्ञा पालन करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मुझे महती आशा है कि जब आप सज्जनों ने मुझे इस जातीय सेवा के उच्चासन पर उन्नत किया है तो तद्योग्य अमोघ उपायों का बल भी प्रदान करेंगे। मुझे भरोसा है कि पूज्य त्यागी ब्रह्मचारी अपने आशीर्वाद से—समवयस्क व विद्वान् अपने हस्तावलम्बन और शुभ सम्मतियों से—व नवयुवक अपने धर्मोत्साह, उद्योग व परिश्रम से योग्य सहायता प्रदान कर मुझे कृतार्थ करेंगे। आप सज्जनों ने जिस प्रकार मुझे इस वृद्धावस्था में यह धर्म भार सौंपा है, उसके सानन्द और निर्विघ्न निभा लेने में आप सभी भाई मेरे पूर्ण सहायक होंगे, इसी आशा से मैं अपनी समर्थता-असमर्थता का ध्यान छोड़कर स्थान को ग्रहण करता हूँ।

इस परवार-सभा का सप्तम-वार्षिक अधिवेशन सागर जैसे सुप्रतिष्ठित प्राचीन एवं ऐतिहासिक नगर में होना बड़े महत्त्व की बात है। साथ २ यह नगर जैन-संसार के ख्यातनामा स्वनामधन्य न्यायाचार्य पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी का निवास-स्थान भी है, जिनके प्रसाद से यहाँ के इस मोराजी महल जैसे दर्शनीय स्थान पर यह विद्या-मंदिर स्थापित है; जो कि बुन्देलखंड प्रान्त में अद्वितीय है। इस नगर में हमारे दिगम्बरजैन भाइयों की गृह-संख्या अनुमानतः २११ है और जन-संख्या तो १००० से भी ऊपर है। इनमें से हमारे परवार भाइयों के गृह करीब १११ हैं, तथा जन-संख्या अनुमानतः ६०० के ऊपर है। अतएव यहाँ की संघ-शक्ति प्रशंसनीय है। यह अधिवेशन अपने आज तक के इतिहास में युग परिवर्तन का काम कर गुज़रेगा, ऐसी मुझे आशा है। यहाँ एक से एक बढ़ कर कार्य-कुशल, समाज के कर्णधार और बड़े २ महारथी विराजमान हैं। उनके समक्ष अपने तुच्छ विचार प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ है, इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

प्रिय बन्धुओ! आप सज्जनों के समक्ष भाषण प्रारम्भ करने के पूर्व—अच्छा होगा, कि मैं पहले अपने सकम्प हृदय को थाम लूँ। क्योंकि मुझे इस उत्सव के समय सभा के जन्मदाता सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी बमराना, और जाति के गण्यमान्य परम उत्साही सेठ मथुरादासजी व धर्म-ज्ञाता पं० घनश्यामदासजी तथा पं० मोहनलालजी आदि अपने स्वर्गीय भाइयों की स्मृतियाँ मेरे हृदय को बहुत व्यथित कर रही हैं। हमें उन स्वर्गीय आत्माओं से धर्म व जात्युत्थान की पूर्ण आशा ही नहीं वरन महान् गौरव था।

धर्मः—मैं सबसे प्रथम कुछ धर्मके विषयपर कहकर अन्य विषयों की ओर आप महानुभावों का ध्यान आकर्षित करूँगा। प्रातःस्मरणीय पूज्य श्री स्वामी, समंतभद्राचार्य्यजी ने धर्म का

निश्चयार्थ लक्षण निम्न लिखित शब्दों द्वारा बतलाया है :—

"संसार दुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे"

—अर्थात् जो प्राणीमात्र को संसार के दुःखों से निकाल कर उत्तम सुख में पहुंचावे वह धर्म है। जब कि जैन-धर्म एक आत्म-धर्म है और आत्मा की अनादि-निधनता सर्व प्रसिद्ध है। तब हमें यह बतलाने की ज़रूरत नहीं रहती कि जैन-धर्म का अस्तित्व संसार में कब से है और कब तक रहेगा। क्योंकि ऐसा नियम है कि "न धर्मो धर्मिभिर्बिना" अर्थात् धर्म अपने धर्मी (आत्मा) के सिवा पृथक् नहीं पाया जाता। अतएव बाधक प्रमाणों का अभाव होने से जैन-धर्म ही सनातन धर्म सिद्ध होता है।

जैन-धर्म का सम्बन्ध किसी खास वर्ण या जाति विशेष से नहीं है। किन्तु आत्मा या जीव मात्र से है। इसीलिये भी तीर्थङ्कर भगवान् की सभा में पशु-पक्षी तक धर्म श्रवण करने के लिये आते थे। जिन्होंने वर्तमान में दक्षिण प्रान्त में स्थित श्री १००८ दिगम्बर-जैन-मुनि शान्तिसागरजी महाराज के पवित्र दर्शन किये हैं। उन्हें मालूम होगा कि अब भी एक महान् भोगी सर्पराज चन्दन वृक्षवत् दिगम्बर जैन तपस्वी के शरीर में लिपटा हुआ है, उनके मस्तक पर फण उठाकर मानो मेघ, धूप से उनकी रक्षा करके अपनी धार्मिक भक्ति प्रदर्शित कर रहा है। और जिन-धर्म-वत्सलता का परिचय दे रहा है। जैन धर्मके सिद्धांत सर्वज्ञ, वीतराग हितोपदेशी परमात्मा द्वारा प्रतिपादित हैं, अतएव अकाट्य और निर्दोष हैं। यही अनुमान जैन-धर्म के सार्व धर्म (सर्व हितकारी) सर्व-ग्राह्य और सर्वोच्च होने में परम साधक हैं।

विचारशील धर्मज्ञो! जब कि यह जैन-धर्म अनादि,स्वतंत्र,सर्व हितकारी एवं आत्म धर्म है। तो ऐसे धर्म को प्राप्त कर उसके पवित्र आदेशों से अपना आत्म-हित करना हमारा परम कर्तव्य है। धार्मिक उन्नति में मुख्य उद्देश्य चरित्र-सुधार और आत्मा का उत्कर्ष है। जैन-धर्म इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये किसी प्रकार भी कम नहीं है। इस धर्म की नींव शुद्ध तत्व-श्रद्धान पर अव-स्थित है। और चारित्रसुधार इसका प्रधान अंग है, पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि आजकल जैन-धर्म का असली स्वरूप एक प्रकार से लुप्त ही हुआ जाता है। जैन लोग ऊपरी दिखाव को ही असली धर्म मान बैठे हैं। किंतु बात ऐसी नहीं है। आचार्यों ने धर्म के मार्ग को प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणा-नुयोग और द्रव्यानुयोग इस प्रकार चार कक्षाओं में बांट दिया है, अतः प्रत्येक कक्षा को समझते हुए आगे बढ़ने का लक्ष्य रखना चाहिये, हम तभी इष्ट लाभ कर सकते हैं—किंतु हमें तो अभी जैन-धर्म के तत्वज्ञान का भी पता नहीं है, हम लोग पूजापाठ को ही शुद्धाशुद्ध याद कर व कुछ प्रथमानुयोग की कथाओं को केवल श्रवण कर धार्मिक ज्ञान की इति श्री कर देते हैं। अतः धर्म के स्वरूप से बहुसंख्यक समाज अनभिज्ञ ही रहता है। जैन-धर्म में गृहस्थों के लिये अष्ट मूलगुण का धारण करना, सप्त व्यसन का त्याग करना, पानी छानकर पीना, रात्रि भोजन न करना, हृदय में सच्चे अहिंसा भाव रखना, शुद्ध खान् पान, आचार-विचार आदि का उपदेश दिया है, किन्तु उप-र्युक्त नियमों का हम कहाँ तक पालन करते हैं यह बात प्रत्येक सज्जन अपने हृदय पर हाथ रख कर स्वयं विचार सकता है। पानी छान कर पीना और रात्रि भोजन करना, जो जैनियों का मुख्य चिन्ह है और जिसे देख कर दूर से

ही " जैनी " पहचाना जाता है, उसकी भी हमने अवहेलना कर दी है। रात्रि को अन्न की बजाय बढ़िया तरह २ के माल छनते हैं। कहाँ तक कहा जाय, बहुतेरे भाई आजकल जैन-धर्म के विपरीत ही पालन कर रहे हैं। सज्जनो! उपर्युक्त बातों का मूल कारण हमारी अज्ञान दशा ही है। इस अज्ञान से समाज सन्मार्ग से च्युत हो रही है अतएव अज्ञान को हटा कर समाज को प्रकाश में लाने की अत्यंत आवश्यकता है और इसका सहज और सीधा उपाय एक मात्र शिक्षा है।

शिक्षा—यह शिक्षा धार्मिक और लौकिक इन दो विभागों में विभक्त है। यद्यपि धार्मिक शिक्षणार्थ हमारी समाज में दो चार शिक्षा संस्थाएँ टिमटिमाती हुई दृष्टि गत हो रही हैं और वे अपनी परिस्थिति के अनुकूल कुछ कार्य भी कर रहीं हैं, किंतु कब तक के लिये और किस आधार पर ? यह बात समझ में बहुत कम आती है। जब तक कि कोई ऐसा आदर्श विद्यालय स्थापित न होजाय जो कि समाज के होनहार बालकों को सर्वाङ्गीण एवं आदर्श शिक्षा देकर समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करावे, जिसमें परवार-समाज के प्रत्येक बालक की ज्ञान-लिप्सा शान्त करने के पर्याप्त साधन हों। जहां कि शिक्षा-प्राप्त विद्वान् जन-संसार में क्या वरन अखिल संसार में आदर्श हों और धर्म, जाति व देश के कार्य में पूरी २ सहायता दे सकें। भारत की शिक्षा-संस्थाओं में कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बोलपुर शांति-निकेतन में स्थित " विश्वभारती " एक आदर्श संस्था है जिसका कि गौरव सारे भारत को है। इसी प्रकार हिंदुओं को "बनारस हिंदू-युनिवर्सिटी" का, आर्य-समाज को " प्रेम-महाविद्यालय " और " गुरुकुल कांगड़ी " का और मुस्लिमों को अलीगढ़ की " मुस्लिम युनिवर्सिटी" का गौरव है, पर हमारे यहाँ कोई ऐसी आदर्श संस्था नहीं है, जिसका जैन-संसार तो क्या, वरन परवार-जाति ही गौरव कर सके।

शिक्षा के विषय में मुझे इतना और कहे बिना नहीं रहा जाता कि वर्तमान में संस्थाओं से जो शिक्षित विद्यार्थी निकल रहे हैं, वे किसी एक विषय के उद्भट विद्वान् नहीं हैं। इस पल्लवग्राही-पांडित्य से हमारे समाज की आशाएँ जैसी चाहिये थीं वैसी सफल नहीं हो रहीं हैं। हमें यह देख कर अत्यंत खेद होता है कि अब भी हमें जैन-संस्थाओं को व्याकरण-साहित्या-ध्यापक के लिये एक अजैन विद्वान् की आवश्यकता ही चली जारही है।

लेखन-शैली और वक्तृत्व-कला में तो शायद ही कुछ इने गिने लेखक और वक्ता विद्वान् मिलेंगे कि जिनकी भाषा परिष्कृत और ओजस्विनी हो और व्याख्यान-सभा व शास्त्र-सभाओं में सभा रोचक व सामयिक कथन कर सकें। वर्तमान शिक्षा-संस्थाओं से विद्वानों के योग्य तैयार न होने में कुछ पठन-क्रम की भी अव्यवस्था मालूम होती है। पठन-क्रम में पाठ्य-ग्रन्थों की इतनी अधिक भरमार हो गई है कि बेचारे विद्यार्थियों को उन्हीं ग्रन्थों के अभ्यास करने के सिवा दूसरी बात करने की भी फुरसत नहीं रहती। इसके अतिरिक्त संस्थाओं में लेखन शैली व वक्तृत्व-कला विषयक कोई शिक्षा ही नहीं दी जाती, जिसका पठन-क्रम में होना उतना ही जरूरी है जितने कि अन्य विषय। मान लीजिए विद्यार्थीगण ग्रन्थों का अध्ययन कर शास्त्र-पारगामी भी बन गये, किन्तु जब व्याख्यान और लेखन-शैली से अनभिज्ञ हैं तो अपने विचार समाज के आगे रख ही कैसे

सकते हैं ? संस्थाओं के कार्य-कर्त्ता महाशयों को इस विषय की पृथक् कक्षाओं का प्रबन्ध करना आवश्यकीय है।

लौकिक-शिक्षा—इसमें व्यापार, महाजनी, शिल्प, उद्योग, अँग्रेज़ी इत्यादि विषय सम्मिलित हैं। समाजमें ऐसी कोई संस्था नहीं जो इस विषयक ज्ञानकी पूर्ति कर सके। इसी कारण शिक्षित वर्ग को शिक्षा संस्थाओं से निकलते ही आजीविकार्थ नौकरी ही तलाश करना पड़ती है। शिक्षा के पूर्ण विकास में हमारी जाति न रहने से हम समझते ही नहीं कि हमारा व्यापार कैसा होना चाहिए। मुख्य २ शहरों के अतिरिक्त जहाँ कुछ लोगों ने अपनी आजीविका स्वतंत्र व्यापार द्वारा कर रखी है, पर, देहात जाकर देखिए तो मालूम होगा कि हम वणिक पुत्रों की वंजीभौरी करते हुए बमुश्किल गुज़र होती है। कोई चाहे कि व्यापारिक शिक्षा के बिना हमारा काम चल जायगा—तोभी असंभव है क्योंकि कहा है "व्यापारे वसते लक्ष्मीः" अर्थात् लक्ष्मी का निवास व्यापार में ही होता है। ऐसे अवसर पर मुझे कच्छी और बोहरे लोगों का ध्यान आता है। ये लोग जहाँ दुकान खोलते हैं फौरन उनकी पूँजियों में पत्तियां लग जाती हैं और उन्हीं में से कोई नौकर, कोई तकाज़ेवाला और कोई कारोबारी बनकर अपना स्वतंत्र व्यापार जमा लेते हैं। हमको इनसे तथा मारवाड़ी भाइयों से अवश्य पाठ सीखना चाहिए। जिनके पास पूँजी न हो, उन्हें यदि परवार-बैंक की आयोजना हो जावे, तो कुछ खास शर्तों पर रकम मिल सकेगी, ताकि वे कोई छोटा-मोटा धंधा शुरू कर अपने को स्वावलंबी बना सकें।

गृहस्थोंके लिये पेटका सवाल बड़ा ही विकट है जिसके हल न होने पर धर्म, कर्म, दान पुण्य भी नहीं कर सकते। अतएव यह बात हमें प्रथम ध्यान देने की है क्योंकिः—

कला बहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका एक जीव उद्धार॥

नीतिकारों ने ६ सांसारिक सुखों में प्रथम सुख, धन, धान्य से परिपूर्ण होना ही बतलाया है, और दुःखों में प्रथम दुःख धनक्षय, जैसा कि कहा है. "धनक्षये दीव्यति जाठराग्निः" अर्थात् धन के न होने पर पेट की अग्नि भी धधक उठती है। हमारे भाई व्यापार-निमित्त घर से बाहर पैर रखने में बहुत ही हिचकते हैं और उन्होंने एक मसल बना भी रखी है—"सन कातो और के दों खाओ, काहे को पूत दखिने जाओ।" इस मसल को कहने वाले हमारे पुराने भाई अपने मूर और गोत्र वाले व्यापार कुशल राजा मंजू चौधरी और बलवार बहादुर बुन्देदाऊ आदि राजकारिणी बुजुर्गों को भूल जाते हैं, जो कि प्राचीन समय में स्वयं पैदल चलकर बम्बई, कलकत्ता, हुगली आदि को एक किये हुए थे। और जिनके ४३ जहाज़ चलते थे—अतएव "किं दूरं व्यवसायिनाम्" इस नीति को ध्यान में रखते हुए अच्छे व्यापार कुशल बनिए और संसार में अपने वैश्यत्व का परिचय दीजिए।

स्त्री शिक्षा—इसके पश्चात् मुझे स्त्री-शिक्षा का ध्यान आता है। देखिए, संसार में स्त्रियाँ ऐसी चीज हैं जो भगवान् तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, सार्वभौम सम्राट्, बड़े २ राजा महाराजा और धर्मात्मा विद्वानों को जन्म देती हैं। सच पूछो तो इन्हीं के सुधार और शिक्षित होने पर हमारी भावी संतान का सुधार होना अवलंबित है।

ऐसे परमावश्यक विषय पर भी हमारी जाति में लक्ष्य नहीं दिया जाता। ऐसे विषय पर समाज की उपेक्षा होना उसके लिये अत्यंत हानिकारक है। इसलिये हर एक जगह बाल-शालाओं के साथ २ ही कन्या-शालाओं को खोलने का समाज को अवश्य ध्यान रखना चाहिये। मेरा ध्यान एक और तरफ भी जाता है, वह है विधवा बहिनों की स्थिति सँभालना। मेरे मित्रों को ध्यान होना चाहिये कि सारे संसार में शायद भारतवर्ष ही ऐसा देश है जो शील और सतीत्वधर्म को आदर्श बनाये रखने में समर्थ रहा है। इसमें खासकर जैन समाज और जैन समाज में भी परवार ही संभवतः ऐसी जातियों में से एक है जिसमें ऐसे सुधारकों का जन्म प्रायः नहीं सा है, जो विधवा विवाह को पसंद करते हों। यद्यपि जैन समाज में कतिपय व्यक्ति इस दुष्कृत्य की आवाज़ "सुधार" कहकर उठाते हैं किन्तु यह उनका मार्ग धार्मिक और लौकिक दृष्टि से किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता। हमने बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह में "कृत कारित अनुमोदना" तो खूब की पर हम से यह न हो सका कि बिचारी विधवा बहिनों को उन पर होने वाली विपत्तियों का ख्याल कर उनके लिये ऐसे विधवाश्रमों को जन्म दें, उनके आसपास ऐसी परिस्थिति पैदा कर दें, ताकि वे पढ़ लिख कर स्वयं शिक्षिता होकर हमारी स्त्री-समाज को विदुषी बना सकें, और गृह-कलह की जन्मदात्री कहलाने वाली स्त्रियों को कुल देवियाँ बना सकें। सच पूछो तो जिस घर में एक भी विधवा बहिन है, तुम्हें मानना चहिये कि तुम्हारे घर एक पूज्य देवी है। इनकी व्यवस्था बड़ी बुद्धिमानी और जोखम-दारी के साथ हमें करना पड़ेगी। इसके लिये हमारी तरफ़ से अभी कोई भी प्रयास या प्रबन्ध नहीं है, जिसकी कि बड़ी भारी आवश्यकता है। मनुष्य चाहे अपना सर्वस्व छोड़ दे लेकिन विधवा बहिनों की पहले व्यवस्था कर दे—इसीमें बुद्धिमत्ता है। इन देवियों के शील-रक्षण में प्रथम धार्मिक शिक्षण प्रधान कारण है। इनकी शिक्षा इस प्रकार होनी चाहिए जिससे कि वे पुण्य-पाप को सुख दुख का कारण समझ जावें और उनके हृदय पर वैराग्य-भाव अंकित हो जाय तथा धर्म शास्त्रों को स्वाध्याय करने की विशेष रुचि हो जाय। दूसरे, भारत के हृदय सम्राट् महात्मा गाँधी का बताया हुआ चरखा ही अमोघ अस्त्र है जिसके द्वारा कि वे अपना फुरसत का समय सदुपयोग में व्यतीत कर देश का कल्याण करने में हाथ बटा सकती हैं। ऐसा करने से उनका जो समय अभी व्यर्थ की बातों और कलह में व्यतीत होता है, वह अच्छे कार्य में व्यय होगा और उनकी आत्मा को आजीविका के साथ २ शान्ति भी मिल सकेगी।

समाचार-पत्र और पुस्तकालयः—

उक्त शिक्षा संस्थाओं के पश्चात् मुझे दो बातों की आवश्यकता और प्रतीत होती है, जोकि सार्वजनिक रूप से समाज को सदैव शिक्षा देते रहते हैं। वे हैं समाज के समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ और पुस्तकालय। मुझे यह देखते हुए हर्ष होता है कि हमारे समाज में "परवार-बन्धु" नामक आदर्श मासिक पत्र निकल रहा है। जिसको दिल्ली में उसके सुयोग्य संपादक और प्रकाशक-महाशयों ने निस्वार्थ-बुद्धि से जन्म दिया था। किन्तु अब कई कठिनाइयों से वहाँ प्रकाशन कार्य बंद होकर जबलपुर से होने लगा है।

वर्तमान में यह पत्र (परवार-बन्धु) बड़ी योग्यता पूर्वक जातीय लगन से प्रेरित होकर समाज की सच्ची सेवा कर रहा है। इसकी आशातीत उन्नति देखकर सुयोग्य विद्वान् संपादक पंडित दरबारीलालजी न्यायतीर्थ और प्रकाशक मास्टर छोटेलाल-जी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे धार्मिक-भावों का विशेष लक्ष्य रख कर इसी प्रकार " बन्धु " की उन्नति करते रहेंगे। मेरा समाज से अनुरोध है कि वह अपने ऐसे अच्छे सजातीय पत्र को उसकी ग्राहक—संख्या बढ़ा कर सहायता पहुँचावे। ताकि वह संसार के सामाजिक पत्रों में आदर्श पत्र बन सके।

पुस्तकालयों के बारे में अधिक न कह कर मैं इतना ही कहूँगा कि ये बड़ी ही उपयोगी संस्थाएँ हैं और सार्व-जनिक शिक्षालय हैं। जो शिक्षा विद्यार्थियों को प्रायः पुस्तकालयों से मिल सकती है वह उन्हें स्कूलों से प्राप्त नहीं होती। विद्यार्थियों के ज्ञान को बढ़ाने के लिये पुस्तकालय अच्छे साधन हैं।

सामाजिक सुधार :—संसार के सब सम्प्रदाय समाज और राष्ट्र की यही इच्छा बलवती दीखती है कि उसका किस प्रकार सुधार हो, उन्नति हो, उसे सुख प्राप्त हो। इस उद्देश्य को सामहने रखकर हम भी सुधार व उन्नति के प्रयत्न किया करते हैं। जैन जाति में अब भी "सुधार" शब्द की आवाज़ आती है और कितने ही सज्जन सुधार के प्रयत्न में संलग्न देखे जाते हैं। यद्यपि इसी उद्देश्य से स्थापित अनेक बड़ी २ महासभा, जातीय सभा तथा सोसाइटियाँ भी कई वर्ष गुज़ार चुकीं किंतु जैनियों में कोई विशेष उल्लेखनीय उन्नति के कार्य मेरे देखने में नहीं आये। ऐसा मैं इस-लिये कहता हूँ क्योंकि मैं एक दर्शक की हैसियत से जो कुछ देखता रहा इसके लिये मुझे एक कविकी यह कहावत याद आये बिना नहीं रहती "हमें घेरे हुए हैं हर तरफ इस्लाह की मौजें, मगर यह हिस नहीं की डूबते हैं या उछरते हैं।" सुधार अथवा उन्नति तो दूर रही उलटी दशा दिन-ब-दिन बिगड़ती जाती है। उसकी जड़ कमज़ोर होती चली जाती है। तरह तरह की त्रुटियाँ, हानिकारक-नवीन बातें और बुराइयाँ प्रवेश करती जा रही हैं। इससे मालूम होता है कि अब तक के किये गये प्रयत्नों में आश्चर्य नहीं कि उचित प्रयास, समयानुकूलता की उपेक्षा आदि के कारण कमज़ोरी रह गई हो। अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इन कठिन समस्याओं को हल करे। इसीलिये हम इन सभाओं के उत्सव में उपस्थित होते हैं और हुए हैं।

हमारी सामाजिक दशा इतनी खराब हो रही है और उसमें अव्यवस्था तथा कुरीतियों ने इतना घर कर लिया है कि उसके वर्णन करने में मैं सर्वदा असमर्थ हूँ। वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, कन्याविक्रय, अनमेलविवाह, फि-ज़ूलखर्च आदि अनेक कुरीतियों की निन्दा शायद ही कोई जातीय सभा और उसके सभापति बचे हों जिन्होंने न की हो। पर मैं देखता हूँ कि इनकी पुनरुक्ति बराबर होती ही रहती है, अतः इस तरह के प्रस्ताव पास होने में शायद ही कोई बात सिवाय एक रस्मअदाई

के होती हो। ये ही कुरीतियाँ हमारी इतनी जड़ खोद रहीं हैं कि प्रतिवर्ष की होने वाली मर्दुमशुमारी में हमारी जैन जाति जो कि सन् १६०१ में १३ लाख थी, सन् १६२१ में ११ लाख ही रह गई। इस अंधाधुन्ध घटती से तो हमारा इस शताब्दि के अन्त तक अस्तित्व नज़र आता है। अतः हमें, यह समय आ गया है कि जब हम अपने को सँभालें और देखें कि प्रस्तावों की कार्यवाही के सफलीभूत न होने के कौन २ कारण हैं। यदि विचार करेंगे तो पता लगेगा कि समाज के इस पंगुपने का अवश्य कोई कारण है, जो एक से एक बढ़कर पौष्टिक और बलिष्ठ पदार्थों के रहते, हमारा समाज रूपी शरीर नहीं पनपने पाता। इसके डाक्टरों की घुड़दौड़ बराबर जारी है, लेकिन यहाँ तो-"मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों २ दवा की" का किस्सा हो रहा है। कारण स्पष्ट है, और वह है हमारी समाज में संगठन का अभाव। इसमें शक नहीं कि मुझसे पूर्व सभापति महोदयों ने इस संगठन की आवश्यकता को अवश्य अनुभव किया है, और बिना संगठन के होने वाली हानियों को भी समाज के सामने दिखाने में कमी नहीं की। पर संगठन कैसे हो, इसमें कामयाबी कैसे हासिल हो, इस पर विचार करना फिर भी बाकी रह ही जाता है। किन्हीं २ ने संगठन का मार्ग भी प्रदर्शित किया किन्तु वह इतना उपयुक्त और समयानुकूल नहीं हुआ कि उसका कुछ फल दृष्टिगत पड़ता। हाँ, इसका कुछ सिलमिला भेलसा, ललितपुर आदि की पंचायतों के संगठन से प्रारम्भ हुआ है, परन्तु इस संबंधमें मेरे जो विचार हैं वह मैं आप सज्जनों के सामहने पेश करता हूँ। उनपर आप सब जाति हितैषी श्रीमान्, बुद्धिमान्, और विद्वान् विचार करें, और वास्तविक कार्य करने का कोई ठीक मार्ग निश्चित करें। मैं संगठन की जड़ में लगा हुआ एक कीड़ा देखता हूँ, और वह है स्थान स्थान की पंचायतों में फूट और फूट का कारण वहाँ के धर्मादे व मंदिरों की रकमों की अव्यवस्था और धर्मार्थ प्रदत्त द्रव्य का वचन-भंग। जहाँ भी इन धर्मादे की रकमों की अव्यवस्था-सुधार व मंदिरों के देवद्रव्य के हिसाब का प्रश्न उठा वहाँ तुरंत तड़ें या पटी बन गईं और वे अपने पक्षकारों को लेकर उन विचारों पर टूट पड़ते हैं और "मत-भेद" का नाम ज़ाहिर कर वैमनस्य की घोषणा कर बैठते हैं, और फिर अपनी मनमानी-दिलजानी करते हैं जिससे दोषी और निर्दोषी की कोई पहचान नहीं रह जाती। वे वातावरण की इतनी खींचातानी कर देते हैं जिससे प्रश्नकर्ता और सारी सभा क्षुब्ध हो जाती है और लोगों को असली बात का पता लगना बड़ी टेढ़ी खीर हो जाती है। दूसरे, यदि एक जगह की पंचायत किसी को जातिच्युत करती है तो दूसरे स्थान की पंचायत उससे अपनी बराबरी के व्यवहार जारी रखती है। बस, यही बिगाड़ और फूट की मुख्य जड़ है। जब तक इस प्रश्न की समस्या हल नहीं होगी और इस कार्य की सफलता का ढंग सिलसिले से नहीं किया जायगा तब तक मैं नहीं समझता कि इन प्रस्तावों का क्या मूल्य होगा! ऐसी हालत में सभाओं का उत्सव और सभापति बनना-बनाना एक तीन दिन का तमाशा है। मेरी समझ में इसमें इस प्रकार प्रयत्न किया जाय कि परवार-सभा इस वर्ष न्यायाचार्य पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी की अध्यक्षता में एक "डेप्यूटेशन" (कमेटी) तैयार करे, जिसमें समाज के गण्यमान्य मुखिया सवाई सिंघई गरीबदासजी, रा० ब० श्रीमंत सेठ मोहनलालजी, सेठ मूलचन्द्रजी सराफ़, सेठ चन्द्रभानजी,

सेठ पन्नालालजी टड़ैया व विद्वानों में पं० देवकीनन्दनजी सिद्धान्त-शास्त्री, पं० तुलसीरामजी काव्यतीर्थ, रा० सा० बाबू गोकुलचन्द्रजी वकील आदि मुख्य २ पाँच-सात सज्जनों में से जिन्हें समाज चुने, नियुक्त किये जांय। इस कमेटी का काम हो कि वह इस वर्ष जगह २ एक तरफ़ से दौरा करना शुरू करे और जहाँ २ फूट हो उनके कारणों को लिखित या जैसा योग्य समझे, मालूम करे और लोगों का दिल रखते हुए जिस प्रकार संगठन करे, जिससे पंचायतियों को भी अपने खोये हुए स्वत्व पुनः प्राप्त हो जावें। इसके लिये हर स्थान में चार प्रकार की कमेटियाँ नियत की जांय:—

(१) स्थानीय-कमेटी जिसका काम होगा कि वह सभा के मंत्री से हर प्रस्तावों के सम्बन्ध में उचित परामर्श लेती देती रहे और पंचायतों से असली कार्यवाही कराती रहे।

(२) किसी स्थान विशेष के झगड़े निपटाने के लिये प्रति-वर्ष तीन या पाँच न्यायाधीशों की नियुक्ति हुआ करे, जो कि पंचों में बैठ कर झगड़े को निपटाने की युक्तियों से काम लें और दर्ज रजिस्टर रखें। इस तरह चुने हुए न्यायाधीश बराबर एक वर्ष तक कार्य करते रहेंगे। यदि किसी का अनुचित फ़ैसला जँचे तो वह परवार-महासभा में अपील किया करे और अधिवेशन में उनका निपटारा किया जाय।

(३) प्रत्येक स्थान में ट्रस्ट-कमेटियाँ नियत की जाँय, जिनके सुपुर्द में अपने २ स्थान के धर्मादे और मंदिरों का हिसाब रहे। उनका कर्तव्य होगा कि वे सभा के मंत्री के पास प्रति वर्ष हिसाब भेजती रहें और प्रकाशित करती रहें।

(४) किसी एक अनुभवी बुद्धिमान् मुखिया के साथ नवयुवकों का एक संगठित दल रहे जो वैध उपायों या युक्तियों से किसी स्थान पर बलपूर्वक किये जाने वाले बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय, अनमेल व वर्णसंकर विवाह तथा विधवाविवाह आदि प्रस्ताव विरुद्ध व धर्म विरुद्ध कार्यवाहियों को रोकने में अहिंसात्मक-सत्याग्रह से काम ले। इस स्कीम का भार जाति के किसी विद्वान् धार्मिक नेता के सुपुर्द किया जाय, जिसे जनता अपनी २ सम्मति प्रदान कर चुन ले। और परवार-सभा के नियमों में ऐसा परिवर्तन या संशोधन किया जाय जिससे परवार महासभा बतौर एक पार्लमेन्ट के (एकज़ीक्युटिव-कमेटी) व्यवस्थापक सभा रहे। इसके बाद मध्यप्रान्त व बुंदेलखंड इसके दो मुख्यप्रान्त समझे जांय, जिनके समान २ संख्या में प्रतिनिधि रहें। व्यवस्था की आवश्यकतानुसार कमेटी अपनी बैठक कर लिया करें—और सरकारी नीति के अनुसार हर प्रान्त के हाथ के नीचे जितने ज़िले हों, उतनी ज़िला-परवार कमेटियाँ हों; और हर ज़िला-परवार-कमेटी के नीचे ज़िले में बिखरी हुई ग्राम वार छोटी छोटी कमेटियां रहें। ये कमेटियाँ अपने से बड़ी कमेटियों के मातहत रहेंगी। इस प्रकार परवार-सभा के जनरल-सेक्रेटरी के हाथ के नीचे प्रान्त वार सहायक मंत्री समझे जाय, और प्रान्तीय मंत्री के नीचे ज़िला-परवार कमेटी के मंत्री और ज़िला परवार-कमेटी के मंत्री के नीचे कुल देहाती ग्राम्य कमेटियाँ रहें। इस तरह कार्य बट जाने पर शायद धाराप्रवाह और सिलसिले से कार्य करने का ढंग बैठ जायगा। और दो वर्ष के बाद समुचित प्रबन्ध होने पर कोई दंड आदि की व्यवस्था होवे जो कि सभा के प्रस्ताव विरुद्ध कार्य करने वालों पर लागू हुआ करे। इसमें एक बात का ध्यान रखना बहुत

आवश्यक है । वह है कार्य-कर्त्ताओं का चुनाव । जिन्होंने जर्मन साम्राज्य की उन्नति का इतिहास पढ़ा है उन्हें पता होगा कि उसकी उन्नति का एक यह भी कारण था कि वे संस्थाओं के कार्य संचालनार्थ योग्य पुरुषों के चुनने में बड़ी ही चतुराई से काम लिया करते थे । इससे विश्वव्यापी युद्ध के समय सबकी दृढ़ धारणा थी कि उनकी संगठन शक्ति सब राष्ट्रों से अच्छी है । इसलिये यदि अपने यहां मुंह देखी तारीफ़ और योग्यता अयोग्यता का बिना ख़याल किये कार्यकर्त्ता बना दिये तो वे "येनकेनप्रकारेण" कार्य को ढकेलते ही हैं । लेकिन वे कोई उन्नति करके नहीं बता सकते । इसमें धनिक, पंडित या बाबू का कोई पक्षपात न किया जाना चाहिए । जब तक तीनों मिल कर काम नहीं करेंगे तब तक कदापि सफलता नहीं प्राप्त हो सकती । मैं चाहता हूँ कि गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों मिलकर यहाँ भी त्रिवेणी का पुण्य स्थान बनावें । इस प्रकार एक या दो वर्ष में यदि संगठन का कार्य बन जाय तो सभा "सभा" कहलाने के योग्य ही नहीं वरन अन्य जातियों की दौड़ में सबसे आगे और सबके लिये आदर्श हो जायगी, बशर्ते कि आप लोग सब काम करने को तैयार हों, नहीं तो ऊपर की कल्पना कल्पनामात्र ही रहकर स्मृति में विलीन हो जायगी । फिर सभा में बड़े बड़े व्याख्यान देने से क्या लाभ होगा ? मैं तो कहूंगा कि यदि सभाओं में पास हुए प्रस्तावों पर आप अपनी कार्यवाही करने को तैयार नहीं हैं तो क्यों सभाओं के जलसों का भयंकर रोग समाज में पैदा करते हैं और क्यों रेलवे का कर्ज़ा चुका कर, और कष्टों को उठाकर सभाओं के व्यसन को बढ़ाते हैं ? भाइयो ! मैं कई वर्ष से सभाओं का जैन समाज में प्रायः व्यसन मात्र देख कर आपके समक्ष कुछ रोष में कहता हूँ, किन्तु महानुभाव भारवि कवि की यह उक्त "हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः" को ध्यान में रख कर मेरे अभिप्राय को ही देखेंगे, न कि किसी खास शब्द को ।

मेरे ख्याल से मैं आप लोगों का काफ़ी समय अपने तुच्छ विचारों के सुनाने में लगा चुका हूँ और आवश्यक विषयों के अतिरिक्त जिन्हें मैंने आपके सामने पेश किये हैं, शेष सभी बातों में मुझसे पूर्व बड़े २ श्रीमन्त और विद्वान् सभापति महानुभाव अपने विचार रख चुके हैं, इससे उन्हें दुहराना केवल पिष्टपेषण होगा । आज आप लोगों के प्रसाद से मुझे भी अपनी जाति के विषय में दो शब्द कहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है इसके लिये मैं आप लोगों का अत्यन्त आभारी हूँ । यहाँ आपने बड़े कष्टों को झेलकर जो मुझ जैसे व्यक्ति के तुच्छ भाषण को अपने अमूल्य समय का व्यय कर सुना है, इसके लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ । जब कि भूल करना मनुष्य जाति को लगा हुआ है, तो यह अस्वाभाविक बात नहीं है, कि मैं इससे बाल २ बचा रह सकूँ । अतः मैं आप सज्जनों से सविनय प्रार्थना करूंगा कि अज्ञान व प्रमादवश यदि किसी बन्धु के हृदय के लिये अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द निकल गये हों, तो कृपया मुझे क्षमा करें । अंत में मैं पूज्य श्री महावीर भगवान के निर्वाण-गमन के इस नवीन वर्ष में सबकी मंगल-कामना करता हुआ अपने स्थान को ग्रहण करता हूँ ।

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावें,
बैर, पाप, अभिमान, छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावें ।
घर २ चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ॥

बोलो श्रीमहावीर स्वामी की जय !

ओं शान्तिः !   शान्तिः !!   शान्तिः !!!

इति शुभम् ।

विविध विषय।

१ कटक की चिट्ठी।

श्रीयुत बाबू ईश्वरलाल कपूरचंदजी कटक वालों ने एक पत्र हमें भेजा था-वह उपयोगी होने के कारण केवल भाषा परिमार्जित करके पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ प्रकाशित किया जाता है। आशा है कि विद्वान् सज्जन उस पर अच्छी तरह विचार करके अपनी अपनी सम्मति प्रकट करने की कृपा करेंगे—

× × × ×

परवार-बन्धु के पांचवें अंक के विविध विषय में रोटी-बेटी के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित हुआ है। वह गोत्रावली और चरित्र के आधार पर लिखा गया है। उसी प्रकार उड़ीसा प्रान्त में भी सराक और रंगणी जाति वालों में चार गोत्र सदाचार सहित पाये जाते हैं। इस जाति के लोग रात को नहीं खाते, अनछना पानी नहीं पीते, अभक्ष भक्षण नहीं करते और मांस-मदिरा का तो सर्वथा त्याग ही है। यहाँ तक परहेज करते हैं कि यदि किसी वस्तु के तराशते समय या हँसिया, चाकू से शाक बनाते समय कोई उनसे यह कह देवे कि "तुम क्या काटते हो" तो वे इसको अंतराय समझ कर उन पदार्थों को मांस तुल्य जानकर फेंक देते हैं। और फिर उनको भोजन के काम में नहीं लाते। यथार्थ में यही लोग दया धर्म के पालने वाले हैं।

ये सराक और रंगणी जाति वाले सदाचारी और अच्छी चाल चलन के पाये जाते हैं। इनकी रहन-सहन भी ठीक है। ये क्षमा और दया के समुद्र हैं। सहनशील, परोपकारी और सच्ची क्रिया वाले हैं। आजीविका के लिये केवल कपड़े का व्यापार करते हैं। इन लोगों के पास द्रव्य भी अच्छी है।

श्रीमान् जैन धर्म-भूषण ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी वर्णी तथा बाबू जगूलाल वा कन्हैयालालजी ने कटक और उड़ीसाप्रान्त के कगड़ो, तुआयाटणा, मणियाबंध, जरियाटणां, बालुबीसी आदि बहुत से ग्रामों में जाकर जैन-धर्म का उपदेश दिया था। तभी से वे लोग जब कटक आते हैं तो जैन मंदिर में आकर दर्शन करते और शास्त्र सुनते हैं।

गढ़ाकोटा निवासी ब्रह्मचारी आत्मानन्द जी आसोज सुदी ८ को यहाँ पर उपस्थित थे। अतः उपरोक्त ग्रामों के सराक और रंगणी भाई मिलकर महाराज के दर्शनों को आये थे। उस समय ब्रह्मचारीजी ने परीक्षा लेकर उनसे जो कुछ कहा था उसका भी यथेष्ट पालन करते हैं। और भविष्य में शिक्षा दीक्षा लेने की भी सलाह दे गये हैं। इसलिये वे प्रायः माघ के महीने में उपदेश के लिए विहार करेंगे।

जिस प्रकार गहोई वैश्य जिन-प्रत प्रतिमा नहीं पूजते, छानकर पानी नहीं पीते और रात्रि को भोजन करते हैं। परन्तु उनके साथ व्यवहार करना निश्चित किया है। तब सराक और रंगणी जाति के भाइयों से विवाह-संबंध करने में क्या दोष है?

निम्नवार सराक और रंगणी भाइयों की गोत्रावली नीचे प्रकट करता हूं। यह परवार-गोत्रावली से बहुत कुछ मिलती है:—

उड़िया अहाता।

सराक और रंगणीगोत्र	धंधा	परवार-गोत्र
१ अनंतदेव	बजाजी	ओछलमूर
२ क्षेमदेव	,,	सोनामूर
३ काश्यपदेव	,,	कासल्यमूर
४ कृष्णदेव	,,	कोछलमूर

बंगाल अहाता ।

१ आदिदेव —
२ अनंतदेव — ,, ओछलपूर
३ धर्मदेव — ,, घनापूर
४ काश्यपदेव— ,, कासलपूर

इनका विशेष परिचय जानने के लिये ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी कृत "प्राचीन जैन सराक इतिहास" उड़िया और बंगला भाषा में प्रचिलित है जिसकी हिन्दी किसी परोपकारी धर्मात्मा महाशय की कृपा से हो सकेगी। विवाह करण तथा शुद्धि किया इन दोनों पुस्तकों का उल्था ब्रह्मचारीजी के पास हो रहा है ।

× × ×

२ चंदेरी और अतिशय क्षेत्र थूबोनजी का मेला।

प्रसंगवश मुझे दो दिन के लिये चंदेरी जाना पड़ा था । वहां की मनोज्ञ चौबीसी, पहाड़ों में खुदी हुई विशाल प्रतिमाओं, तथा अब भी अपना मस्तक ऊँचा किये हुए प्राचीन खंडहरों को देखकर हृदय में एक अनिर्बचनीय उमंग पैदा होती थी। अनेक स्थानों पर इस समय भी जैनियों की असंख्य प्रतिमाओं का पता यहां लगता है जिनकी खोज करने से जैन इतिहास में बड़ी भारी मदद मिलने की पूर्ण सम्भावना है । यद्यपि वहाँ की स्थानीय पंचायत ने मेरे लौटने के समय एक आदमी की नियुक्ति प्रतिमाओं की खोज के लिये कर दी थी । परन्तु वहाँ पर विद्वानों को कुछ दिन रहकर विशेष अन्वेषण करने की आवश्यकता है । अतः स्थानीय पंचायत ने थूबोनजी पर मेला भरवाने का प्रबन्ध भी इसी वर्ष से किया है जो माह सुदी १० से फागुन बदी १० तक भरेगा। उसमें जानेवाले विद्वानों को चंदेरी की इस प्राचीनता पर प्रकाश डालने के लिये वहाँ कुछ दिन अवश्य निवास करना चाहिए । इसका विस्तृत वर्णन हम किसी आगामी अङ्क में प्रकट करेंगे ।

३ सत्तर्क-सुधा-तरङ्गिणी-जैन-पाठशाला सागर का पंचम वार्षिकोत्सव ।

ता: १५-११-२४ को रात को परवार-सभा के सप्तम अधिवेशन के अवसर पर सानन्द समाप्त हुआ । मंत्री महोदय तथा श्रीमान् पूज्यवर पं० गणेशप्रशादजी वर्णी ने पाठशाला की रिपोर्ट तथा उसका आय-व्यय पढ़कर सुनाया । श्रीमान्-जैन-धर्म-भूषण-ब्रह्मचारी शीतलप्रशादजी ने विद्योन्नति पर एक अच्छा और सारगर्भित भाषण दिया । और उसी समय पाठशाला के लिये आर्थिक सहायता की भी अपील की। उसमें प्रायः २५००) एक मुश्त तथा १००) मासिक से अधिक की मासिक सहायता के वचन मिले ।

४ म० प्रा० दि० जैन लहुरीसेन सभा का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन ।

श्रीयुत चौधरी हीरालालजी रहली के सभापतित्व में लुहरीसेन सभा का अधिवेशन सागर में परवारसभा के अवसर पर सानन्द समाप्त हुआ। उसमें अनेक श्रीमान् परवार-भाई भी आमंत्रित किये गये थे। उन में श्रीमान् पं० नाथूरामजी प्रेमी का भाषण बड़ा ही मार्मिक हृदय-स्पर्शी हुआ । जिसके कारण सभा को प्रायः २०००) की सहायता प्राप्त हो गई। कई प्रस्ताव हुए तथा प्रबन्ध कारिणी कमेटी का चुनाव भी हुआ । मंत्री-बाबू गुलझारीलालजी मलैया खुरई वाले चुने गये। अतः उन्होंने सूचित किया है कि सभा-सम्बन्धी पत्र व्यवहार उक्त पते पर करना चाहिए।

समाचार-संग्रह ।

—२५००) की थैली लेकर महरोनी में एक १८ वर्षीय सुकुमार कन्या स्वार्थी पिता ने बेच डाली ! खरीददार ने कन्या को चांदी-सोने के आपघातक जेवर पहिनाकर चारों ओर चकाचौंध उत्पन्न कर दी है । पंचायत के धर्मवीरो ! जबतक आप मंदिर की जायदाद पर हुक्क करने के लिये तालों पर ताला लगाकर-तड़बन्दी से आपस में लड़ते रहोगे तभी तक ये नाशकारी प्रथाएँ इस जाति का पिण्ड न छोड़ सकेंगी । अब भी चेतो !

—श्रीरतनचन्द्रजी पजार से सूचित करते हैं कि यहाँ पर एक पाठशाला खोली गई है जिसमें प्रथमश्रेणी के छात्र अध्ययन कर रहे हैं । यहाँ के अध्यापक पंडित राजकुमारजी विशारद हैं ।

—गतांक में झाँसी के पंचों की दान-सूची में निम्न लिखित संस्थाओं को भी दान दिया गया था । १०) स्या० म० काशी, १०) अना-थालय देहली, । सिं० गबडूलाल रामचंद-लाल, झांसी ।

—ता: २३, २४, २५ दिसम्बर को भा० दि० जैन महासभा का २६ वाँ अधिवेशन लोहरदगा में श्रीमान् वर्णी नेमिसागरजी की अध्यक्षता में होगा । सबको पधारने की प्रार्थना है ।—चैनसुख छावड़ा महामंत्री ।

—सुना है कि शि० मं० के एक अबोध बालक की छोटी उमर में उसके पिता बलात्कार शादी करना चाहते हैं । यदि यह सच है तो हम इस पर आगामी अंक में प्रकाश डालेंगे ।

—परवार-बन्धु के गत अगस्त के अंक में भोपाल के मंदिर के बाबत जो अव्यवस्था के प्रश्न निकले थे उनमें से कुछ के उत्तर श्रीमान् मन्नूलाल चन्नूलालजी ने भेजे हैं । जो यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं । शेष प्रश्नों का उत्तर जिनकी ओर पड़ता हो कृपया वे भी भेज कर इससे होने वाले वैमनस्य को दूर करेंगे । उत्तर।—

१—हमारी गैर मौजूदगी में बाबू दीन-दयाल का माल लोगों ने खुर्दबुर्द किया । तब पुलिस ने इसकी जाँच की और ऐसी हालत में सरकार ने सनद मांगी सो दी गई । पश्चात् देहली से रामदेव बाई आई । उन्होंने पंचों से माल मांगा—उस समय जो कुछ मौजूद था उन्हें दिया गया । परंतु सनद जप्त होने का कारण उपर्युक्त ही है ।

२—रजियाबाई के मुकद्मा बाबत तफ़सील वार पीछे लिखूंगा ।

३—घाटीवाले जैसवाल का माल मंदिरजी में आया । उसका हिसाब मंदिर की बहियों में है । हमारे पास न हिसाब है और न माल ।

४—लाला मन्नूलाल जहांनाबाद वालों का माल लावारिसी में नहीं आया । किन्तु उनकी बहिन ने धर्मादा में दिया था । उसका भी हिसाब मंदिरजी की बहियों में जमा-खर्च है । हमारे पास कुछ नहीं ।

५ शोक-सभा ।

सिवनी के श्रीमान् सेठ पन्नालालजी वल्लभ को अगहन सुदी १२ को आकस्मिक मृत्यु हो गई । आप उत्साही, धर्मात्मा और सुधारकदल के अच्छे वक्ता थे । अतः सिवनीवासियों ने स्वर्गीय आत्मा को शान्ति लाभार्थ तथा उसके कुटुम्बियों से समवेदना प्रकट करने के लिए एक शोक-सभा की थी । हम भी ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे कुटुम्बी जनों को इस शोक के सहने का साहस देवें तथा स्वर्गीय आत्मा को शान्ति ।

वर के अठसका।

(१)

१ डेरिया, वासल्लगोत्र, २ बांसे, ३ सहारिमडिम, ४ घिग, ५ बैशाखिया, ६ बहुरिया, ७ डुही, ८ उजरा। वर-जन्म सं० १९६१। पताः— उपदेशक पीताम्बरदास, पो० पथरिया, (दमोह)।

(२)

१ वैशाखिया, गोइल्लगोत्र, २ विग, ३ वौलाडम, ४ लाल्ह, ५ भारी, ६ रकिया, ७ नारद, ८ बीबीकुट्टम, ९ पंचरतन, १० सकेसुर। वर १८ वर्ष का। पताः— चौ० गिरधारीलाल नत्थूलाल, चन्देरी, (ग्वालियर)।

(३)

१ गंगवार, कोछल्लगोत्र, २ रकिया, ३ एडिम, ४ सोला, ५ वैशाखिया, ६ सकेसुर, ७ रामडिम, ८ धना। वर-जन्म सम्वत् १९६३ पताः- पं० रतनलाल कपूरचन्द, कपड़े की दूकान, मुसारीगेट अमरावती।

(४)

१ उजया, कासल्लगोत्र, २ महारिमडिम, ३ विघ, ४ बहुरिया, ५ खोना, ६ ममला, ७ कठा, ८ पंचरतन। वर जन्म सं० १९५५. पताः मुन्नालाल सराफ, बीना इटावा, (सागर)।

(५)

१ छिंगा, वासल्लगोत्र, २ वार, ३ बहुरिया, ४ पंचरतन, ५ देदा, ६ सर्वछोला, ७ रकिया, ८ सहारिमडिम। दो भाई हैं--१ जन्म सं०१९५९ और दुसरे का जन्म सं० १९६१ है पताः सिं० छोटेलाल मुनीम मन्दारगिर क्षेत्र, पो० बोनी (भागलपुर)।

(६)

१ गाहे, गोहल्लगोत्र, २ ईंडरी, ३ रकिया, ४ बहलाडिम, ५ सकसुर, ६ बहुरिया, ७ नगाडिम, ८ डेरिया। वर-जन्म सं १९५९ पताः— अन्तूलाल बुद्धूलाल, लखनादोन, (सिवनी)।

(७)

१ बहुरिया कोछल्लगोत्र, २ ममला, ३ वैशाखिया, ४ भारू, ५ सोला, ६ छोवर, ७ अंडेला, ८ डेरिया। वरजन्म १९५९. पताः-बेनीप्रसाद जैन, सिं. घासीराम नाथूरामजी करेली, (नरसिंहपुर)।

कन्या के अठसका।

(१)

१ डोंगर, कासल्लगोत्र, २ खोना, ३ छोवर, ४ डेरिया, ५ बीबीकुट्टम, ६ भारू, ७ बहुरिया, ८ गोदू। कन्या का जन्म सम्वत्............ । पताः— मुनीम बदामीलाल सिद्धवरकूट, पो० मान्धाता ओंकारजी।

(२)

१ धना, कासल्लगोत्र, २ भारी, ३ गंगवारे, ४ रकिया, ५ विघ, ६ छोवर, ७ बहुरिया, ८ पंचरतन, ९ बहुरिया, १० विघ, कन्या का जन्म सम्वत् १९६८ का है। पताः— सिं० नाथूराम परमानन्द, खुरई (सागर)।

(३)

१ लाल्ह, बाझल्लगोत्र, २ मिडला, ३ गाहे, ४ वारू, ५ ईंडरी, ६ डुही, ७ देदा, ८ छोवर। कन्या का जन्म सम्वत् १९६९. पताः— पन्नालाल जैन, (अलमस्त), सिवनी (म० प्र०)।

(४)

१ डेरिया, वासल्लगोत्र, २ बांसे, ३ सहारिमडिम, ४ विग, ५ छिंगा, ६ देदा, ७ बहुरिया, ८ किरकिच। कन्या १३ वर्ष। पताः— उपदेशक पीताम्बरदास, पो० पथरिया दमोह।

(५)

१ वार, गोइल्लगोत्र, २ डेरिया, ३ बहुरिया, ४ बड़ेमारग, ५ वाली, ६ इंग, ७ भारू, ८ ममला। कन्या जन्म सम्वत् १९६७. पताः— मन्नूलाल तामिया, मा० सिं० मानकलाल कन्हैयालाल सतना।

(६)

१ बहुरिया, कोछल्लगोत्र, २ एंडरी, ३ वैशाखिया, ४ बहलाडिम, ५ नगाडिम, ६ छोवर, ७ ममला, ८ इंदरी। कन्या का जन्म सम्वत् १९६८. पताः— कस्तूरचन्द, वकील जबलपुर।

(७)

१ बहुरिया, कोछल्लगोत्र, २ वैशाखिया, ३ यहडिम, ४ दिवाकर, ५ विघ, ६ बड़ेमारग, ७ रकिया, ८ गाहे। कन्या का जन्म सम्वत् १९७१. पताः— कस्तूरचन्द वकील, जबलपुर।

Hitkarini Press, Jubbulpore.

Reg. No. N. 315

पौष श्री वीर निर्वाण सं० २४५१,

[वर्ष २] दिसम्बर, सन् १९२४ [अंक १२]

श्री भा. दि. जैन परवार सभा का सचित्र मुखपत्र—

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रति का ।-)

परवार-बन्धु

आधुनिक शिक्षा की विडम्बना।

सम्पादक—
पं० दरबारीलाल साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ।

प्रकाशक—
मास्टर छोटेलाल जैन।

आगामी वर्ष की सूचना।

गत वर्ष जनवरी से ग्राहक होने वालों का इस अंक से वर्ष समाप्त होता है। अब आगामी अंक पाठकों की सेवा में ३) की वी. पी. से भेजा जावेगा। हमें पूर्ण आशा है कि 'परवार-बन्धु' के प्रेमी-पाठक उसे अवश्य स्वीकार करेंगे। परन्तु जिन महाशयों को ग्राहक होना अस्वीकार हो वे कृपाकर इस पत्र के पहुँचते साथ ही सूचना दे देंगे। ताकि व्यर्थ कष्ट और खर्च कराने वालों की श्रेणी में हमें उनका नाम न प्रकाशित करना पड़े। वी. पी. करने से जबतक हमें उसका रुपया प्राप्त नहीं होगा तब तक आगामी अंक नहीं भेजा जायगा। इसलिये मनियार्डर से रुपया भेज देने वालों को पैसे की बचत तथा लगातार अंक प्राप्त होते जावेंगे।

यह बात पाठकों से छिपी नहीं है कि परवार बन्धु की पृष्ठ संख्या पहिले अंक की अपेक्षा क्रमशः बढ़ते २ वर्ष के अन्त में ६२५ तक हो गई है। प्रत्येक अंक के मुख पृष्ठ पर सुन्दर चित्र तथा अन्य चित्र मिलाकर १८ की संख्या में प्रकाशित कर चुके हैं। समयोपयोगी लेखों और कविताओं के प्रकाशित करने में भी पूर्ण प्रयत्न किया गया है। पाठकों की जिज्ञासा बढ़ाने और आवश्यक प्रश्नों का उत्तर देने के लिये गोरखधंधा पुरस्कार व पूछताछ विभाग भी रक्खा है। वर्तमान संसार की प्रगति का ज्ञान प्राप्त कराने के लिये वैज्ञानिक नोट तथा मनोरंजन की सामग्री से विनोद लीला ने तीर का काम किया है। वर-कन्या के विवाह सम्बन्ध को सुगम करने के लिये निःशुल्क अठसका भी प्रकाशित किये गये हैं।

घाटा पूर्ति के लिये संरक्षक

घाटा केवल इसलिये सहन किया जा रहा है कि परवार-बन्धु का प्रचार समाज में अच्छी तरह हो जावे। यह प्रसन्नता की बात है कि इस वर्ष के घाटे की रकम पूर्ति करना नागपुर अधिवेशन में उदारता पूर्वक १८ श्रीमान संरक्षकों ने स्वीकार कर ली थी। आशा है कि वे श्रीमान अपने जिम्मे के घाटे की रकम शीघ्र भेज कर अनुगृहीत करेंगे। तथा आगामी वर्ष के लिये संरक्षक रहने की आज्ञा देकर इस उत्तम कार्य में परम सहायक होंगे। अन्य सज्जनों से भी संरक्षक बनने की प्रार्थना है।

उन श्रीमानों का भी यह बन्धु अत्यन्त आभारी है कि जिन्होंने समय २ पर द्रव्य, लेख, कविता, शुभ सम्मतियां आदि देकर सहायता की है। यदि इसी प्रकार आप महानुभावों की 'बन्धु' पर कृपा रही तो यह पत्र विशेष परिवर्तनों के साथ सदा आपकी सेवा में प्रस्तुत रहेगा।

आगामी सचित्र अंक अवश्य देखिये।

नोट—नये और पुराने सभी ग्राहकों को नीचे लिखे पते पर ३) मनिआर्डर से भेजना चाहिये।

संरक्षक

लेख-सूची।

" परिवार। "

(लेखक-श्रीयुत पं० हजारीलाल जैन न्यायतीर्थ, न्या. का.)

परिवार शब्द का अर्थ कुटुम्ब होता है, परन्तु वर्तमान समय में इस शब्द की रूढ़ि परवार जाति (जैन-धर्म पालनेवाली ८४ जातियों में एक जाति विशेष) में पड़ गई है। और यहां तक कि उस परवार-जाति के जो तीन संघ काल-दोष से हो गये हैं (१) आठसांके (शाख) बचाकर लग्न सम्बन्ध करनेवाला, (२) चारसांकें बचाकर सम्बन्ध करनेवाला (इन दोनों संघों की शेष सामाजिक व धार्मिक रीतियां समान हैं), (३) तीसरा मूर्ति पूजा न मानने वाला अर्थात् तारनस्वामी के बनाये हुए १४ ग्रन्थों का उपासक और चार-सांकें बचा करके सम्बन्ध करनेवाला इन तीनों में से केवल प्रथम संघ जो कि आठ-सांके बचाता है उसीमें परवार शब्द की रूढ़ि है। अर्थात् परवार कहने से केवल अठसका संघ का ही बोध होता है, और शेष दो संघ चौसके तथा समैया नाम से जाने जाते हैं।

यद्यपि इन तीनों संघोंके गोत्र, मूर (मूल) एक ही हैं तथा रीतियां भी प्रायः सभी समान ही हैं तथापि आजकल इन तीनों संघों में इतना ही अन्तर है जितना कि गोलापूरब, गोलालारे, अग्रवाल, खण्डेलवाल आदि जातियों में परस्पर अन्तर है, किन्तु, इनसे भी अधिक कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि कहीं कहीं के परवार भाई तो समैया भाइयों से किसी भी धार्मिक कार्य में द्रव्य लेना भी अनुचित समझते हैं। और समैया भाई भी चाहे वे अन्यान्य देवी-देवताओं के स्थानों पर जाकर उनकी विनय, सत्कारादि-मानतो भले ही मानलें (करलें) परन्तु वे श्रीजिनेन्द्र देव के मंदिर में नहीं आते, वे वीतराग मुद्रायुक्त प्रतिमा के दर्शन से अरुचि रखते हैं, उसे जड़ आदि शब्दों से सम्मानित करते हैं, मूर्ति-पूजन का तत्व बिना ही समझे मूर्तिपूजकों को अविद्वान् मानते हैं इत्यादि। यही इन तीनों संघों में परस्पर अन्तर होने का विशेष कारण है। जो कुछ हो, हमें तो इस समय परिवार शब्द और इस शब्द की रूढ़ि पर केवल परवार-जाति में अथवा अठसके परवार-जातिमात्र में ही क्यों पड़ी?—इसबात पर विचार करना है। अस्तु।

पाठको! इस समय परवार जाति का कोई विशेष इतिहास तो उपलब्ध है ही नहीं, जैसा कि अग्रवालों व खण्डेलवालों का कुछ इतिहास पाया जाता है। जो इतिहास उनका प्रसिद्ध है वह ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही अमान्य हो यह हम नहीं कह सकते। परन्तु तो भी उनके पास कुछ सामग्री अपनी पूर्व अवस्था बताने को अवश्य है कि जिसके आधार पर वे अपनी कथा कह सकते व कहते हैं। जैसे कि अग्रोहा (आगरे के पास) ग्राम के रहनेवाले क्षत्री लोग जिन लोहाचार्य के द्वारा प्रतिबुद्ध होकर अग्रवाल जैनी हुए। इसी प्रकार खण्डेला ग्राम के रहनेवाले क्षत्री लोग जिनसेनाचार्य के उपदेश से प्रतिबुद्ध हो कर जैनी (श्रावगी) कहाये इत्यादि। परन्तु परवार, गोलापूरब, गोलालारे आदि अनेकों जैन जातियाँ ऐसी हैं जिनके पास अमोलक अपनी उत्पत्ति अथवा जैन-दीक्षा लेने की कुछ भी सामग्री नहीं है। ऐसी स्थिति में जिसके मन में जो आता है वह वैसे ही कल्पनायें कर बैठता है। यहां तक कि इन परवार, गोला-पूरब, गोलालारे आदि जातियों के सम्बन्ध में भी कई लोग मनघड़न्त बातें कहा करते हैं जो कि केवल ईर्ष्या वा ग्लानि उत्पन्न कराने

वाली हैं। जो कुछभी हो, तोभी यह तो निश्चय ही है कि प्रत्येक प्राणी अपनी उन्नति करता है। छोटे से ही बड़ा होता है, निगोद से निकल कर नरपर्याय धारण करके मोक्ष जाता है। समल-जल, कतक, फलादि का सम्बन्ध या कालविशेष पाकर निर्मल हो जाता है। हम यदि इन लोगों की मनघड़न्त बातों को ही सत्य मान लें तो हमारी कुछ हानि नहीं किन्तु लाभ ही है। अर्थात् हमारे पूर्वज जैन-दीक्षा लेने के पूर्व में कोई भी हों परन्तु जैन-दीक्षा लेने के पश्चात् तो वे शुद्ध हो गये। वे जिस धर्म को कई पीढ़ियों से पालते आ रहे हैं और जिस वर्ण में अपना व्यवहार कर रहे हैं अब वे उसी वर्ण के ही हैं, उनमें कोई विपरीत भाव बनाना केवल अज्ञान ही है। परन्तु, इतना तो हमको अवश्य ही मानना पड़ेगा कि हमारे पूर्वज अजैन थे, वे किस वर्ण के थे चाहे यह हम भले ही न कह सकें, पर अजैन थे यह तो निश्चय है। मैंने श्रीमान् पूज्य पं० दीपचन्द्रजी वर्णी (जिन्होंने कि श्री दिग० जैन प्रा० सभा बम्बई की ओर से उपदेशकी में प्रवास करते हुए देखा था) के द्वारा सुना है कि महुवा (जि० सूरत) में विघ्नहरण पार्श्वनाथ का अतिशय क्षेत्र है। वहां सूरत की गादी के भट्टारक के शिष्य मोहनलाल रहते थे। मैंने (उक्त वर्णीजी ने) उनसे शास्त्र-भाण्डार के दर्शन कराने को कहा तदनुसार उन्होंने अलमारी खोली और एक बिण्डल बहियों का निकाला उसमें से एक कागज़ निकला जिसमें लिखा था कि श्रीजिनसेनाचार्य ने सम्बोधन करके ८४ जातियों को जैनी बनाया। नीचे ८४ जातियों के नाम लिखे थे उनमें परवार, गोलापूरब, गोलालारे, धाकड़, जैसवाल, बघेरवाल आदि जातियों के नाम भी दिये थे। परन्तु, उसमें कोई समय नहीं लिखा था कि कब ऐसा हुआ और वे कौन जिनसेनाचार्य थे इत्यादि। इससे यह तो निश्चित है कि हम (वर्तमान जैन जातियाँ) लोग सम्बोधित जैन हैं। और है भी वास्तव में यही, क्योंकि सदैव से महान् पुरुषों का यह कर्तव्य रहा है कि वे संसार के दीन-दुखी प्राणियों को कल्याण मार्ग से विमुख देखकर अपनी दयाद्रता का परिचय देते हैं। अर्थात् येनकेनप्रकारेण उनको सन्मार्ग में लगा देते हैं। देखिए अठारह कोड़ा कोड़ी सागरों के पश्चात् भगवान् ऋषभदेव स्वामी ने पुनः जीवों को मोक्ष-मार्ग का उपदेश देकर उन्हें कल्याण के मार्ग में लगाया। इसी प्रकार अन्य २ तीर्थंकरों तथा आचार्यों ने भी अपने २ समय में उपदेशामृत देकर जीवों को मोक्ष-मार्ग में लगाया था। क्योंकि धर्म कोई कुल परम्परा की सम्पत्ति नहीं है, वह तो आत्महितेच्छु जनों के द्वारा पूर्व संस्कारों के वश से अथवा किसी के उपदेश से भव (पर्याय) विशेष में धारण किया जाता है। उसका यह नियम नहीं है कि जैन माता पिता से जैन ही अथवा वैष्णव माता-पिता से वैष्णव ही सन्तान होवे तथा जैन व वैष्णव ही बनी रहे। अपनी २ रुचि व भवितव्यानुसार जैन से जैनेतर तथा जैनेतरों से जैन-धर्म स्वीकार किया जाता है। परम्परा का नियम धर्म में लागू नहीं होता है, किन्तु वह नियम तो एकेन्द्री, दोइन्द्री आदि जातियों में ही लागू होता है। अर्थात् मनुष्य की सन्तान मनुष्य और पशु की पशु ही होगी। पंचेंद्रिय प्राणियों की संतान पंचेन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की संतान चतुरिन्द्रिय इत्यादि। इन बातों से यह विदित होता है कि समय समय पर सुधारक लोग अपना कार्य करते हैं और काल भी अपना चक्र चलाया करता है। परन्तु पुरुषार्थी पुरुष इस काल-चक्र की अपेक्षा न

करते हुए अपना पुरुषार्थ करते ही जाते हैं और विजय भी पाते हैं।

यद्यपि वे यह भी जानते हैं कि "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" तथापि वे उनसे डरते नहीं। किन्तु, उन विघ्नों को वे अपने साध्य की सिद्धि के विशेष साधन ही समझते हैं। और यह सिद्धान्त भी है कि बिना तपश्चरण के कभी भी स्वर्ग व मोक्ष की सिद्धि नहीं होती है। अतएव विघ्न व आपत्तियों के आते हुए भी उन्हें मार्ग दर्शक मानकर पुरुषार्थ करते जाना चाहिए। अस्तु।

अब मैं पुनः प्रकृत विषय पर आपका चित्त आकर्षित करता हूँ। वह यह है कि उक्त नियमानुसार सदा संसार की रीति-नीति व मानव प्रकृतियों में निमित्त नैमित्तिक कारणों के वश से फेरफार होता रहता है। नये से पुराना और पुराने से नया होना निश्चित ही है। जब २ जैसे २ निमित्त नैमित्तिक कारण बने और जब जिसका बल बढ़ा-जिसको सहारा मिला बस वही बाजी मार ले गया। इसके सिवाय एक बात और भी है कि कोई भी प्राणी अपनी (व्यक्तिगत) व अपनी सामाजिक (सामुदायिक) उन्नति प्रतिद्वन्द्विता में ही विशेषरूपेण कर सकता है। क्योंकि उन्नति करने के भाव कषायों के उदय में ही होते हैं न कि वीतरागता में। व्यक्तिगत उन्नति (यदि वह विषय कषायवृद्ध नार्थ है तो) तीव्र कषाय वश और (यदि अपने विषय कषाय घटाने रूप है तो) मन्द कषायवश तथा सामुदायिक उन्नति (सर्व प्राणियों को दुःख से छुड़ाने के हेतु) मन्द कषाय वश ही होती है। (इसलिये जब २ मिथ्यावादियों के मतों का प्राबल्य होता है और जब वे मतान्ध होकर अपने से इतर धर्मों को कुचल डालने के लिये तत्पर हो जाते हैं तब २ कुछ ऐसे पुरुषार्थी और निस्वार्थी पुरुष प्रगट होजाते हैं। जो कि प्रतिद्वन्द्वता में खड़े होकर अपने व अपने सामाजिक स्वत्वों तथा अपने धर्म और धर्मायतनों की रक्षा व वृद्धि के लिये प्राणों तककी आहुति देकर युद्ध करते हैं। और अपनी सन्नीति व निस्स्वार्थता के कारण विजय प्राप्त कर लेते हैं। देखिये, जिस समय कुछ ऐसे ही मतान्धजनों ने राज्याधिकार या राज्याश्रय पाकर जब मन्दिरों को तोड़ना, मूर्तियों को फोड़ना और मनुष्यों को उनके धर्म से च्युत करके अपने २ सम्प्रदाय बढ़ाने की चेष्टा की थी और धर्मायतनों को नष्ट भ्रष्ट करके मनुष्यों को दण्ड, भेदादि नीतियों के द्वारा धर्म-भ्रष्ट किया था, उस समय निर्बल पुरुष तो कायरता वश भ्रष्ट होगये, परन्तु जिनको अपने धर्म व कुल का गौरव था। जो जानते थे "कि परिवर्तिनि संसारे मृतः कोवा न जायते। सजातो येन जातेन याति वंशःसमुन्नतिम्॥" उन्होंने प्रतिद्वन्द्वितामें "साम व दाम" नीति द्वारा कार्य किया। यहां एक ओर मंदिर व मूर्तियां तोड़ीं जारहीं थीं, उनके स्थानों में मस्जिदें या शिवलिंग स्थापित होरहे थे। तब वहाँ दूसरी ओर नवीन २ मंदिरों व अपरिमित मूर्तियों की सृष्टि निर्माण होती जाती थी—प्रतिष्ठाएं होती जाती थीं। एक ओर मतान्ध हमारे सहधर्मियों को धर्मच्युत करके अपना संप्रदाय खड़ा करते जाते थे, अर्थात् द्रव्य के बल से, उपदेश के बल से मंत्र अर्थात् चमत्कार के बल से।

मेला प्रतिष्ठाओं के द्वारा दान करके, संघ निकालकर अर्थात् अनेकों प्रकार से नवीन जैन बनाकर उनकी कुछ संज्ञा रखकर धर्म की नींव पक्की करते जाते थे। यही कारण है कि श्री परमभट्टारक भगवान महावीर के पश्चात्

बौद्ध शंकराचार्य तथा यवनादि लोगों के कठिन से कठिन प्रहारों को सहकर भी यह जैन धर्म आज निरवछिन्न रीत्या (जब कि बौद्धादि धर्म भारत से सर्वथा गारत होचुके थे) अपना अस्तित्व बनाये रह सका। यदि वह ऐसा न करते तो क्या जाने इस पवित्र (सर्वहितकारी) धर्म का नाम इतिहास के पृष्ठों पर भी रहता या नहीं। आज जो आपको पहाड़ों में नदियों में पृथ्वीतल में यत्र तत्र अनेकों दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ देखने सुनने में आरही हैं वे सब इन आततायी और उनके प्रतिद्वन्द्वी जनों (धर्म-संरक्षकों) की निग्रहानुग्रह बुद्धियों के ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। यही कारण है कि आप लोगों को आज इसी प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप जैनबद्री मूलबद्री, जयपुर, सवाई, माधोपुर, ईडर आदि मंदिरों तथा भारत के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक के समस्त नगरों व ग्रामों के मंदिरों में भी अँगुल प्रमाण अवगाहना की प्रतिमाओं से लेकर मनुष्याकार तक की तथा इससे भी अधिक अवगाहना की धातुपाषाणमयी अनेकों दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ सम्वत् १५४५ तथा १५४८ की एकही मिती की प्रतिष्ठित, एकही आचार्य विद्वानों द्वारा प्रतिष्ठित कराई हुई देखनेमें आती हैं (जिनके विषय में स्वयं लेखक ने गुजरात, महाराष्ट्र, करनाटक, पंजाब, राजपूताना, बुन्देलखंड, बघेलखंड, बरहाड़, खानदेश, मारवाड़ मेवाड़, मालवा, मध्यप्रांत, काठियावाड़, ढूंढार युक्तप्रांतादि के बहुत स्थानों नगरों व ग्रामों में भ्रमण करनेवाले) श्रीमान् पं० दीपचंद्रजी वर्णी ने सुना है। इत्यादि।

इन बातों को देखकर और उन महान् पुरुष के पुरुषार्थ पर विचार करके दांतों तले अँगुली दबानी पड़ती है और हृदय से ये उद्गार निकल ही पड़ते हैं कि "धन्य है उन धर्म स्तम्भों को, धन्य है, उनकी जननी व जनकों को कि जिनने उस कराल काल में अपने तन, मन, धन तीनों की आहुति देकर सर्वजीवों के इस हितकारी धर्म की रक्षा की। प्रभो! इनकी आत्माओं को शीघ्र ही इस भवसागर से पार उतारिए। और वर्तमान काल के नेताओं व सुधारकों, धीमानों व श्रीमानों मेंभी वही आत्म-बल दीजिए जिससे वे भी अपने पूर्व पुरुषों का अनुकरण करके इस समय इस डगमगाती हुई जैन जाति की नैया को स्थिर कर पार लेजा सकें"। अस्तु।

जैसे आपने मूर्ति व मंदिर की बात देखी व सुनी। बस उसी प्रकार उसी भयङ्कर प्रतिद्वन्द्विता के काल में श्रीमद्पूज्यपाद भट्टाकलङ्क देव ने समन्तभद्राचार्य विद्यानन्दि, पूज्यपाद वादिरज, कुमुदचन्द्रादि आचार्यों ने ग्रन्थ व टीकायें रचकर वादानुवाद करके धर्म की ध्वजायें फहराईं। वादियों के मद चूर कर दूर कर दिये और लोहाचार्य, जिनसेनाचार्य आदि आचार्यों ने यत्रतत्र भ्रमण कर उपदेशामृत पिला कर लाखों करोड़ों की संख्यामें इतर लोगों को जैन-दीक्षादेकर उद्धार किया। यदि इन्होंने ऐसा न किया होता तो आज हम किस मुँह से अपने को पवित्र धर्म के उपासक कह सकते। हमारा मस्तक आज कैसे ऊँचा उठा रहता? और किस तरह यह पवित्र जैन-धर्म भी जीवित और जाग्रत बना रहता! क्योंकि धर्म तो धर्मी के आधीन ही रहता है। यथा "नधर्मो-धार्मिकैर्विना"। अहा, एक ओर तो हमारे ऋषियों की यह कृति हमारे हृदय को आनन्द सागर में डुबो देती है और उनके उपकार के आगे नम्रीभूत होकर हृदय से धन्य धन्य तथा जय जय की ध्वनि निकल पड़ती है। गौरव और पुरुषार्थ की तरङ्गें, हृदय को तरल कर

आशा भँवर में गर्तकर देती हैं। और दूसरी ओर जब हम वर्तमानकालिक अपने समाज के नेताओं (श्रीमानों, धीमानों, चौधरी, बड़कुरों, मुखियाओं, सेठों, पंडितों, बाबुओं आदि) की ओर दृष्टिपात् करते हैं, उनके विचारों और व्यवहारों पर विचार करते हैं तो दुख का मरुस्थल सम्मुख आ जाता है। इसमें परस्पर की खेंचातानी क्रोध वा मानादि कषायों तथा विषय वासनाजनित स्वार्थ की आँधियों से प्रेरित उस संतप्त रेत का प्रहार हमारे शरीर को जला भुना डालता है। और आँखों में प्रवेश कर अन्धा (कर्त्तव्यविमूढ़) बना देता है। दुख से आह निकल जाती है, 'खेद है' इत्यादि शब्द बलात् निकल पड़ते हैं। साहस और पुरुषार्थ के पौधे सूखकर नैराश्य की ठूंठ में परिणत होजाते हैं। यदि जैन-धर्म का ज्ञान न होता तो इस समय की भीषण दुर्व्यवस्था देखकर प्राणरक्षण ही कठिन हो जाता। तात्पर्य, जब कुछ उपाय नहीं सूझता तब लाचार हो "भवितव्य ही ऐसी होगी, क्या किया जाय" इस उक्ति की शरण-लेना पड़ती है। और जब भीतर से राग का उद्रेक उठता है तब उससे प्रेरित होकर बार २ लाञ्छना होने पर भी या तो कहीं व्याख्यानों द्वारा हृदगत् विचारों को जनता के सन्मुख रख दिया करते हैं। कोई भला कहे या बुरा इसका खेद नहीं। परन्तु यदि कुछ भी ग्रहण कर लें तो हर्ष होता है।

जैसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों मिल कर ही मोक्ष के कारण होते हैं उसी प्रकार सम्यक्त्व का कारण ज्ञानार्जन करने, ज्ञान के कारण शास्त्र रखने, प्रचार करने, वादानुवाद करके संशयादि अज्ञान को दूर करने और चारित्र के कारण अजैनों को जैनी बनाने का जबतक प्रयत्न नहीं किया जायगा तबतक जैन-धर्म व समाज की रक्षा होना कठिन है, जैसा कि ऊपर बताया गया है। अस्तु। प्रायः जितनी भी जैन जातियां हैं, उन सभी में गोत्र पाये जाते हैं, वे कैसे बने? सो कुछ नहीं मालूम। हमने "जैन-संप्रदाय शिक्षा" नामक पुस्तक देखी उसमें ओसवालों की उत्पत्ति का हाल लिखा है कि वे क्षत्री थे और........ के उपदेश से जैनी हुए, इनमें लिखा है कि........ जाति के क्षत्री जो धाड़ा (डाका) मारा करते थे, सो स्वामी के उपदेश से जैनी हुए और धाड़ीवाल कहलाये, इत्यादि और भी वर्णन है।

इसलिये जब हम व्यापक दृष्टि से विचार करते हैं तो हमको यही सत्य प्रतीत होता है, कि ये गोत्रादि कितने तो ग्राम के नामानुसार हुए, जैसे खंडेलवालों में अजमेरा हैं। कई धंधे के अनुसार हुए, जैसे लोहिया आदि। और कई व्यक्तिविशेषों के नाम से हुए, जैसे मंत्रेश्वर आदि इसी प्रकार इनकी रचना करके और उनका सामुदायिक कोई नाम विशेष रख कर जातियां स्थापित करदीं, इनमें कई जातियां (जो हाल में सभी वैश्य कहाती हैं,) क्षत्री वर्ण से बदलकर हुई हैं और उनकी पहिचान इससे होती है कि व्याह के समय वर (दूलहा) अपने पास १०-१५ दिन तक नियम से तलवार या कटार रखता है। सोते-बैठते चलते-फिरते यहाँ तक कि वह भोजनालय में भी कटार साथ रखता है। यह भी चाल बदलते २ शेष रह गई है। और जो कितने ही ब्राह्मणों से जैन हुए वे अब भी दक्षिण में पूजन-पाठादि कराते हैं और उपाध्याय कहाते हैं। जो अन्य जातियों से हुए वे अपना वही पूर्वजों का धंधा करते हैं, और वैश्य कहाते हैं, जैसे छीपा, कासार, सिपी इत्यादि। इससे विदित होता है कि आचार्य महाराज ने बड़ी उदारता पूर्वक

इस धर्म का प्रचार किया और धर्म सबका हित करने वाला है यह साक्षात् करके दिखा दिया। आज प्राय: सभी जैन भाई व्यापारादि वैश्योचित आजीविका करते हैं और इसीलिये वे सब अपने को वैश्य ही मानते हैं और संस्कार भी वैश्यों के जैसे पड़ गये हैं। अतएव अब वे वैश्य ही हो गये हैं। संस्कार विशेष से जैसे गोत्र व जाति बदल जाती हैं, वर्ण भी बदल जाता है, विवाह में मंत्रेश्वर गोत्रीय कन्या, उत्तेश्वर गोत्रीय वर का पाणिग्रहण करके उत्तेश्वर हो जाती है। इसी प्रकार एक वैश्या, या क्षत्री कन्या या शूद्र कन्या, ब्राह्मण वरको पाकर ब्राह्मणी। क्षत्रीको पाकर क्षत्राणी, तथा वैश्य को पाकर वैश्या हो जाती है। कारण कि कन्याओं का वास्तविक कोई गोत्र व वर्ण नहीं होता है, उनका तो वही गोत्र व वर्ण हो जाता है जो उनके पति का होता है।

अब हम यहां 'परवार' शब्द पर विचार करते हैं। परिवार (कुटुंब) शब्द का अपभ्रंश ही परवार शब्द है। परिवार शब्द बड़ा ही उदार व विस्तिीर्ण है, अर्थात् यह शब्द बताता है कि:—

" अयंनिजः परोवेति गणनालघुचेतसाम्।
उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ "

अहा, कैसा प्रिय और सर्व हितकारी परिवार शब्द है आज वह भले ही केवल आठसके परवार जाति मात्र में रूढ़ि से व्यवहृत हो रहा हो, परंतु ऐसा होकरके भी शब्द का उदार नीतियुक्त अर्थ लुप्त नहीं हो सकता है।

हम ऊपर बता आये हैं कि समस्त जैन जातियों में गोत्रमात्रही हैं। परन्तु परवार जाति में १२ गोत्र और प्रत्येक गोत्र के साथ बारह बारह मूर (मूल) भी लग रहे हैं। इनसे भी इस जाति व शब्द की विस्तीर्णता प्रगट होती है। मालूम होता है कि स्वामी ने वात्सल्य भाव से प्रेरित हो करके ही अनेक जातियों व वर्णों को सम्बोधन करके उनको जैन-धर्म ग्रहण कराया था। उनको हिंसा मार्ग से छुटाकर सन्मार्ग में लगाया था और उनके वर्ण व जाति व धंधे व ग्रामादि के अनुसार संस्कार बदलने के लिये बिलकुल नवीन ही नाम दिया था। प्रायः जैन सप्रदाय में भी ऐसा ही नियम था कि गृहस्थी के नाम को बदलकर व्रत ग्रहण करने पर नवीन नाम दिया जाता था। अब भी दक्षिण देश में ऐसा ही होता है, जैसे नन्दलाल जी ने जब व्रत ग्रहण किया तब उनका नाम पार्श्वसागर रक्खा था इत्यादि। ऐसे ही नाम यदि रक्खे गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। अस्तु, जो कुछ भी हो पर परवार शब्द बहुत ही उदार और विस्तृत है। और इसलिये मैं जोरदार शब्दों में कहता हूं कि अब हमारी परवार जाति को चाहिये कि वह अपनी उस उदार नीति का परित्याग न करके कम से कम अपने बिछुड़े हुए चौसके और समैया भाइयों को तो बहुत ही शीघ्र हस्तावलम्बन देकर अपने साथ करले। और अपने असली इतिहास को खोज करके प्रगट करे।

इसी प्रकार अन्यान्य जातियों का भी यही कर्तव्य है कि वे अपना २ इतिहास प्रसिद्ध करें और जिनका जिन जैन जातियों से विशेष मेल हो उनमें मिल जावें व उन जैन जातियों का भी कर्तव्य है कि वे अपने में मिला लेवें। ऐसा करने से सामुदायिक शक्ति बढ़ेगी। जिससे यह जैन समाज शीघ्र ही अपना पूर्व समय का दर्शन कर सकेगा।

अन्त में मेरा यही निवेदन है कि सर्व भाइयों को चाहिये कि वे वर्तमान संसार की

अन्य सभ्य जातियों की तरह अपनी हीन संख्या को अधिक रूप में परिणत करने के लिये नवीन जैनी बनावें। और जैन धर्म का अनेक भाषाओं से सर्वत्र प्रचार करते हुए वर्तमान जैनी जैन-मार्ग से जिस प्रकार विचलित न होकर स्थिर रहें ऐसे आगमोक्त उपायों का अवलम्बन करें। कारण कि समस्त जीवों को अपने समान समझकर सब को सद्धर्म के मार्ग में लगाना, सबको दुखों से छुटाकर सुखकी ओर उन्मुख कर देना यही सच्चे परवार का लक्षण है।

मिलो और मिलाओ ।

(लेखक—श्रीयुत पं० बाबूलाल गुलजारीलाल जैन)

मिलो !

किनसे ?

परवारों से (अठसकों से)।

मिलाओ !

किनको ?

अपने सगों को, बिछुड़े हुए भाइयों को (समैया और चौसके भाइयों को।)

अहा, हा ! यह सरस और सुहावनी उत्तर रूप में ध्वनित हुई मधुर ध्वनि कहाँ से आई ? उत्तर मिला, विश्व-प्रेम-पुजारी के विमल कण्ठ से। मानलो ! मिल गये और मिला लिया, तो इस व्यापार के लाभ ही क्या हुआ ?

क्यों न हुआ। जिस तरह १, १, और १, को दूर २ लिखने से इन तीनों का मान केवल तीन होता है। और तीनों एक समीप लिखने से उनके पहिले मान में ३७ गुणी वृद्धि हो जाती है। अर्थात् १११ हो जाते हैं, उसी तरह इस सम्मेलन से भी परवार जाति में तीनों के मिल जाने से गुण वृद्धि हो गई समझिए।

क्या, मिलना ही होगा ? मिलाना ही होगा ?

प्रेमपुजारी—हाँ।

क्यों ?

प्रेमपुजारी—समय कह रहा है, जगत मिल रहा है। भारत के सर्वोच्च पथ-प्रदर्शक महात्मा गाँधी उस की संतानों को परस्पर मिला रहे हैं।

क्या महात्माजी भारत के शासक से शासित (प्रजा) को अलग नहीं कर रहे हैं ?

प्रेमपुजारी—नहीं। वे शासक-मंडल की स्वेच्छाचारिता को दूर करके उसे उसकी भोली-भाली निर्धन प्रजा से मिलाने की चेष्टा कर रहे हैं। न कि उसे अलग कर रहे हैं।

हम सैकड़ों वर्षों से बिछुड़े हुए भाइयों से कैसे मिलें ? इन्हें कैसे मिलावें ? इनमें और हममें अंतर भी तो बहुत पड़ गया है।

प्रेमपुजारी—कितना अन्तर पड़ा है ? बताओ तो सही ?

परवार—समैयों के यहाँ चार ही साँकें मिलाई जाती हैं। विवाह के नेगों में भी अंतर है। भाँवरें नहीं पड़तीं, वे मन्दिर में नहीं आते, उनके चैत्यालयों में प्रतिमा विराजमान नहीं है, 'हम भाव-पूजा करते हैं'-ऐसा कह कर भी वे चैत्यालयों में विनो (प्रसादरूप से) बाँटते हैं। आदि बातें (रिवाज) उनमें प्रचलित हैं।

इसी प्रकार चौसके भाइयों में जिनकी संख्या दमोह, सागर के दक्षिणी भाग में अधिक है। चारसाँकें मिलाकर विवाह होता है। विवाह में पलकाचार नहीं होता। और भी नेगों में अंतर है। अब मेल कैसे होवे ?

समैया—वह समय बीत गया, जब हम आपसे अलग हुए थे। वह परिस्थिति अब नहीं रहीं रही-जिसके कारण हमारे आराध्यदेव श्री तारन स्वामी को आप से बिछुड़ कर नया पंथ स्थापित करना पड़ा था। उस परिस्थिति का परिचय इतिहास-प्रेमी, जाति-हितैषी पंडित नाथूरामजी प्रेमी अपने जैन हितैषी मासिक पत्र में कई वर्ष पहिले करा चुके हैं। हमारे पूर्वज अलग हुए थे, परम दिगम्बर बीतरागी मुनिराज के स्थानापन्न अपने को बतलाकर, परिग्रह में पगे नाम मात्र के भट्टारकों के शिथिलाचार प्रवर्त्तक उपदेशसे बचनेके उद्देश से, न कि किसी प्रकार के अनाचार से। उनका अभिप्राय पवित्र था-उनका आचरण शुद्ध था। जिस शुभ कामना ने शिथिलाचार को शिथिल कराने के लिये सदाचारी, साहसी वीरों को तेरह पंथ की नींव डालने के लिये विवश किया था। उसीने स्वामीजी को प्रेरित किया था। जैन-धर्म पर उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। उनके आचरण में जैनत्व था, वे परवार-जाति के, एक कुलीनघर के दीपक थे। उनके चलाये हुए इस पंथ का अनुसरण करने के कारण हमारे पूर्वज आपसे अलग हुए थे। समय को देखकर चलाये पंथ के अनुयायी होने से हम सब समैया परवार कहलाये हैं। हमारा यह बिनो समर्पित की (चढ़ाई हुई) द्रव्य नहीं है। इसीसे हम इसे निर्माल्य नहीं समझते। यदि यह वास्तव में निर्माल्य है तो इसे छोड़ने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। अब रहे विवाह कार्य के नेग। सो आप भी इनका संशोधन कर रहे हैं-हम भी करने को तैयार हैं।

चौसके—समैया भाइयों के समान हममें आप में धार्मिक विचार व आचरण सम्बंधी कुछ भी अन्तर नहीं है। रहा विवाह के समय मिलाई जाने वाली साँकों का मिलान। सो बुंदेलखंड में आपके यहाँ इनका मिलान आठ में होता है और चार में भी होता है। केवल "ही" को मानकर काम करने वाले अपने इन भाइयों को (हमें) था तो अपना "भी" का पाठ पढ़ा दीजिये। अब रहा नेगों का अन्तर। सो कितना बड़ा है? नेगों का संशोधन आप कर ही रहे हैं, आपके साथ हो कर हम भी इन संशोधित नियमों का पालन करने लगेंगे।

प्रेमपुजारी—जब इतना सा अन्तर है तो फिर तुम्हारे सम्मेलन में विलम्ब क्यों? शीघ्र प्रस्ताव करना चाहिये।

समैया—ललितपुर में हुए परवार-सभा के अधिवेशन के सुअवसर पर हम अपनी अभिलाषायें पत्र द्वारा प्रगट कर चुके हैं।

परवार—आपके प्रस्ताव को भेज कर हमारे मंत्री महाशय ने अनेक जगह से जो सम्मतियाँ मँगाई थी उनपर विचार करके हमारी ओर से आपको उत्तर दे दिया गया है। जिसमें यह स्पष्ट लिख दिया गया है कि इन विभिन्नताओं को आप विदा कर दें तो आप से भेद-भाव मिटाने को हम सदैव तैयार हैं।

समैया—आपने जो उत्तर भेजा है उसमें हमें पालन करने के लिये लिखी बातों में कुछ रिवाज ऐसे हैं जो हम में प्रचलित ही नहीं हैं। जैसे मृतक को विमान में बैठाकर ले जाना आदि। कुछ बातें ऐसी हैं जो हमें हमारी आज तक की भावनाओं को निकाल देने के लिये विवश कर रही हैं। प्रियवर! हमें अपनाओ! हम पर प्यार करो! हमारी भूलों को सुधारो! जैसे आप अपने छोटे भाई को " जो मंदिर न जाता हो " मंदिर जाने के लाभ समझाते हो वैसे ही हमें भी समझाओ! हमें मंदिरों में आना, और जिनेंद्रदेवकी पूजा करना सिखाओ! चैत्यालयों की सम्हाल अपने हाथ में लेओ!

स्वामीजी की कृति (ग्रंथ) "जिसमें पवित्र जैन-धर्म का ही वर्णन है" उसकी रक्षा करो। यह हमारी पूज्य संपत्ति है उसे हम आपको सौंपते हैं। आप उसे अपनाओ! हम देखना चाहते हैं कि भविष्य में चैत्यालय आपके सरस्वती-भवन कहलावें और आप उनके प्रबंधक होवें। हमें अवसर देओ, कि हम आपके साथ मिल कर अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकें। हम संख्या में पहिले भी थोड़े थे और अब भी थोड़े हैं। केवल अपनी जाति में वर कन्याओं की कमी से ही हम आपमें नहीं मिलना चाहते हैं। किंतु आप में मिल कर आपके समान ज्ञानादि गुण प्राप्त करना चाहते हैं। आपके साथ जाति व देश की सेवा में भाग लेना चाहते हैं। हम यह भी जानते हैं कि हम में रुढ़ि के उपासक भी हैं। परन्तु हमें विश्वास है कि हम आपकी उदार नीति का आश्रय पाकर अपने इन रूढ़ि-उपासक भोले भाइयों का रूढ़ि प्रेम शीघ्र दूर कर सकेंगे। हम लालायित हो रहे हैं आपके इन सरस और सरल शब्दों को सुनने के लिये कि प्यारे भाइयो आओ और गले से लगाकर मिलो!

परवार—यह सम्मेलन का प्रस्ताव अनेक बार छिड़ा और इस पर विवाद हुआ। अनेक स्थानों में पास भी हुआ और अंत को थोड़े दिन बाद वही पुरानी फूटफाट हो गई। समैया अलग परवार अलग। मंदिर तुम्हारे हैं, चैत्यालय हमारे हैं, आदि बातें कही जाने लगीं। हम तुम से पहिले भी मिल चुके हैं अब भी मिलने को तैयार हैं। परंतु अब वैसा मेल न होना चाहिये जो थोड़े ही दिनों बाद मैल का रूप धारण कर लेवे। जैसा पहिले कई जगह हो चुका है। अगर तुम्हें मिलना है तो मिलो—दिल खोलकर मिलो। हमारे लिखे ठहरावों को मानने में कोई आपत्ति है तो उसे स्पष्ट रूप से हमें बताओ। ठहरावों के पालने में कुछ कठिनता दिखती है तो कहो और पूछो। जब तक साफ़ २ बातें न होगीं तब तक मेल ना होगा। यदि हो भी गया तो वह क्षणिक होगा। आप अपनी सभा कीजिये और हमारे पत्र पर विचार कीजिये। सर्व सम्मति से उत्तर लिखिये और सभा के सभापति महाशय या मंत्री महाशय के पास भेजिये। वे उसे पाकर कार्यवाही करेंगे।

चौसके—और हम क्या करें? सागर के अधिवेशन में हमें अवसर ही नहीं मिला। हमारे एक भाई ने अपने मनोगत भावों को समझाने में भूल की जिसके उत्तरदाता वे ही हैं और उन्होंने तत्क्षण ही अपनी भूल को स्वीकार करके क्षमा-प्रार्थना भी कर ली है। हम उत्सुक हैं आपमें मिलने को। आप हमारे निश्चयात्मक नियम को (चौसकों के मिलानको) या तो अपनाइये या फिर अपने में प्रचलित (विकल्प) रूप में रखिये। हमारी कोई सभा अभी तक स्थापित नहीं हुई है और अब हमें उसकी आवश्यकता ही नहीं दीखती। क्योंकि हम तो आपकी परवार-सभा को अपनी सभा समझ रहे हैं। उसकी आज्ञा पालन करने को तैयार हैं। उसकी उदार नीति को देख कर हमें प्रसन्नता हो रही है। प्यारे बंधुओ! हमें अपनाओ—गले लगाओ और बिछुड़े हुओं को मिला लेने का पाठ दूसरों भी को सिखाओ। इससे दोनों का भला होगा।

परवार—आओ, मिलो हमें कुछ आपत्ति नहीं है। हम अनेक अवसरों में तुम से मिलना स्वीकार कर चुके हैं। सागर जिले में देवरी-कलां के पास भरनेवाले बीनाक्षेत्र के मेले पर, कोनी (जबलपुर) के विमानोत्सव आदि अवसरों पर हम तुम्हारे साथ सम्बंध करना

स्वीकार कर चुके हैं। हां! यह बात अवश्य है कि हमारी यह स्वीकृति प्रांतीय स्वीकृति के रूप में नहीं हुई है। उसके लिये आप परवार-सभा के सभापति महाशय या मंत्री महाशय से पत्र-व्यवहार कीजियेगा।

प्रेमपुजारी-आहा, तुम तीनों का, यह क्या ही सुखद सम्भाषण हुआ है। यदि यह स्पष्ट है, शुद्धान्तःकरण की ध्वनि है, तो मेरे लिये परम संतोष का कारण है। तुम्हारी दूरदर्शिता प्रशंसनीय है। उदारता आदरणीय है। अब आवश्यकता है इसे कार्य रूप में परिणत करने की। यह मानी हुई बात है कि बिछुड़ों को मिलाने में मध्यस्थ की आवश्यकता होती है। मध्यस्थ की गुरुता से होने वाला कार्य भी गौरवशील होता है। हमारे भाग्योदय से हमारे निवास क्षेत्र में (मध्यभारत में) कृपालु पंडित प्रवर गणेशप्रसादजी महाराज जैन जातियों को उन्नत पथारूढ़ करने के प्रयत्न में लगे हैं। आप परवार-सभा के संरक्षक हैं। आपके संरक्षण में ही यह दिनोंदिन वृद्धि को प्राप्त हो रही है। समैया और चौसके भाइयों का कर्तव्य है कि आपके समक्ष अपनी सब बातों को प्रगट करें, अपनी मनोगत शंकाओं को बतावें। और इनके हितकारी उपदेश को मानकर कार्य करें। ऐसा करने से पंडितजी को सम्पूर्ण भेद-भावों का पता लगेगा और वे उन पर विचार करके कोई ऐसा मार्ग निकाल सकेंगे, जिस पर चलने से सरलता पूर्वक तीनों जातियों के मनोरथ की सिद्धि हो जायगी। परवार-सभा के सभापति और मंत्री महाशयों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिये। यह कार्य अपेक्षणीय है, उपेक्षणीय नहीं। अलम्

"कली।"

[१]

नव पल्लव की सुखद गोद में,
मद में मृदु मुसकाती हो।
मोहित अलिवृन्दों के मन में,
नये भाव उपजाती हो॥
पवन-देव से झूम झूमकर,
इठलाती तुम जाती हो।
सौरभ अपना फैला कर तुम,
प्रेम-गीत क्यों गाती हो॥

[२]

सोचो मन में अभी "कली" हो,
कल विकसित हो आओगी।
क्रूर काल के कंठ लगोगी,
और धूल मिल जाओगी॥
तब मधु-मोहित मधुप देख कर,
तुम पर हँसी उड़ावेंगे।
गिरी दशा को देख तुम्हारी,
तनिक नहीं सकुचावेंगे॥

[३]

'प्रेम' धर्म्म है, 'प्रेम' कर्म्म है,
प्रेम रत्न है ईशाकार।
पर देखो इस जगमें है क्या,
शुद्ध 'प्रेम' का कुछ विस्तार॥
उन्मत्त सभी हैं अपने मद में,
सभी सुनाते अपना राग।
सब माया का खेल बना है,
दुर्लभ है सच्चा अनुराग॥

\+ + + +

सबसे सच्चा "कली!" ईश है,
करो सदा उसका विश्वास।
व्यर्थ झूठ माया में फँसकर,
नहीं कराओ निज उपहास॥

—गुलाबशंकर पंड्या-"पुष्प।"

भारतोद्धार ।

(क्रमागत)

द्वितीयांक

पाँचवाँ दृश्य ।

(स्थान-मोहनसिंह का विलास-भवन, चम्पा अकेली बैठी है)

चम्पा—(खड़े होकर) आह ! सचमुच संसार पाप का घर हो गया है । जो शक्ति निर्बलों की रक्षा करने के लिये है उसीसे यह मदोन्मत्त मनुष्य अपने भाई-बहिनों की और धर्म की हत्या करता है । परन्तु कुछ डर नहीं, स्यार ने सिंहनी को फँसाया है । इसका मजा उसे चखना ही पड़ेगा । विष-वृक्ष में अमरफल नहीं लग सकता ।

(मोहनसिंह आता है, चम्पा घूरकर देखती है)

मोहन०—प्यारी ? जब से उस सड़क पर तुम्हारा दर्शन किया है तभीसे यह दिल काबू में नहीं है । अब सेवक पर दया करो और ऐसा करो जिससे दिल को चैन पड़े ।

चंपा—(उठकर जोर से) दुष्ट ! सम्हल कर बात कर ! पिता के समान होकर पुत्री पर आँख उठाता है । तुझे शरम भी नहीं आती !

मोहन—प्यारी ! शरम किस बात की ? यदि किसी फुलवाड़ी में फूल खिला है तो उसके सूँघने में क्या हर्ज़ है ?

चंपा—परन्तु याद रख ! जो फूल किसी देवता के लिये है, उसे सूँघने की इच्छा करना महा पाप है ।

मोहन०—लेकिन भौंरे को तो इस बात की परवाह नहीं है ।

चम्पा—मगर याद रख भौंरा चम्पा * को नहीं पा सकता ।

मोहन०—(मुसकराकर) तुम्हारी बुद्धिमानी से भरी हुई ये कठोर बातें भी दिल लुभाती हैं । प्यारी ! परीक्षा हो चुकी अब तो रहम करो ।

चम्पा—चल, चल पापी ! यहां से काला मुँह कर । दुनिया में व्यर्थ ही अपनी बेइज़्ज़ती न करा ।

मोहन०—(जोर से हँसकर) ओ हो हो हो ! प्यारी ! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि इश्कबाज़ों की इज़्ज़त तो सैकड़ों जूते खाने पर भी नहीं जाती ।

चम्पा—बेशरम ! तुझे अपनी पुत्री के साम्हने ऐसी बात करने की अपेक्षा चुल्लू भर पानी में डूब के मर जाना चाहिये ।

मोहन०—प्यारी ! जो कहो वही करूँगा । जैसे कहोगी वैसे ही मर जाऊँगा । परन्तु पहिले इस दिल की बेचैनी तो मिटादो ।

चम्पा—अरे नीच ! गीदड़ होकर सिंहनी की चाह करता है । अबला सदा के लिये अबला भले हो लेकिन धर्म-संकट के समय, बड़ी से बड़ी शक्ति उसका बाल बाँका नहीं कर सकती ।

मोहन०—प्यारी ! मान जाओ, मैं जन्म भर तुम्हारा दास बनकर रहूँगा । तुम्हें मालूम है कि मैं कितना बड़ा आदमी हूँ ? मुझसे अच्छा तो तुम्हें वर भी न मिलेगा ।

चम्पा—चुप रह बदज़ात ! जो मेरे शुद्ध प्रेम का प्यासा होगा जो अपने चरित्रबल, बुद्धिबल और वीरता की छाप मेरे हृदय पर

---

* भौंरा चम्पा के फूल पर नहीं बैठता ।

लगा देगा, उसके चरणों में यह चम्पा अपना सिर झुका देगी। लेकिन, तुझ सरीखे नीच छोट्टों को पैरों से ठुकरा देगी। (ज़ोर से ज़मीन पर पैर पटकती है)।

मोहन०—चम्पा! मेरा अपमान न कर। समझले तेरी ज़िंदगी मेरी मुट्ठी में है। यहाँ तुझे सहायता देने वाला कोई नहीं है।

चम्पा—रावण के घर में सीताजी को जिसने सहायता दी थी वह यहाँ भी है।

मोहन०—(हँसकर) बात करने में तो कितनी चतुर हो। लेकिन सोच लो, अगर मुझे गुस्सा आ जायगा तो मुश्किल होगी।

चम्पा—रावण भी ऐसा कहता था लेकिन सीता जी ने यही कहा था कि—

कभी जो दीन अबला के दुखी आँसू बहाता है।
वही नर पशु जगत में दुष्ट हत्यारा कहाता है॥
दुराचे नारियों को जो, नहीं है मर्द वह बच्चा।
हुआ नर रूप में पैदा नपुंसक, स्यार का बच्चा॥

मोहन०—बस! बस! चम्पा बस! अब सम्हल जा! मुझे अपमानित कर मौत को न बुला। तेरा भला इसीमें है कि मेरे मन को सन्तुष्ट कर नहीं तो मरने को तैयार रह।

चम्पा—अरे जा, सतीत्व की अग्नि में बड़े बड़े सम्राट् भी भस्म हो गये हैं। फिर तुम सरीखे छोट्टों की क्या गिनती?

मोहन०—(दाँत पीस कर) लेकिन यह कलि-काल है, कलिकाल!

चम्पा—हां! समाज के अत्याचारों का ज़माना है। उसने स्त्री जाति को एक कटघरे में बन्द कर इतना निर्बल बना दिया है कि तुझ सरीखे छोट्टे भी उसे धमकाने का साहस करते हैं। लेकिन यह चम्पा उनमें से नहीं है। इसने तुम सरीखों की अक्ल ठिकाने लाने के लिए जन्म से ही तैयार की है।

मोहन०—ज्यादा बातें न बनाकर सीधे रास्ते चल। मैं एकबार फिर समझाता हूँ।

चम्पा—मुझे नहीं, अपने दिल को समझा।

वीर बालाएँ नहीं बँधती किसी के प्यार में।
मौत मुट्ठी में लिये हैं नारियाँ संसार में॥

मोहन०—तो क्या मरना ही मंजूर है?

चम्पा—हाँ, मैं मरने से नहीं डरती। लेकिन मुझे मारना हलुआ, पुड़ी नहीं है कि धीरे से गप कर लो। तुम सरीखे छोट्टों के लिये, मेरी ये कोमल भुजाएँ कड़कती हुई बिजलियाँ हैं—लपलपाती तलवारें हैं।

मोहन०—हाँ! अच्छा तो देख—

(मोहन झपटता है, चंपा शीघ्रता से किनारा काटकर पीछे से धक्का देकर मोहन को गिराती है और छाती पर बैठकर छुरी-कटारी तानती है)।

चंपा—पापी अब इसी कटारी से छाती ठंडी कर—

(इतने में मोहनसिंह का नौकर आता है। चंपा एक हाथ से मोहन का गला दबाती है—दूसरी ओर से नौकर पर कटारी तानती है। नौकर घबड़ाकर गिर पड़ता है। इतने में दो नौकर और आते हैं। इसी समय महेशचन्द्र आकर पिस्तौल तानता है।

महेश०—खबरदार, बदमाशो, महात्मा के सेवक के सामने यह गुस्ताखी!

(सब घबराकर रह जाते हैं।)

पटाक्षेप।

द्वितीयांक

छठवाँ दृश्य।

(स्थान—सड़क—मोहन के दोस्तों का प्रवेश)

छक्की—यार, कल तो अच्छा हाथ मारा। इसी प्रकार मोहनसिंह सरीखे दो चार आँख

के अन्धे गांठ के पूरे अपने हाथ में रहें तो जिन्दगी बड़े चैन से गुजरेगी ।

बकी—अजी ! बन्दे ने तो इसी प्रकार सैकड़ों उल्लुओं को फँसाया है । और जितना बना उतना चूसकर दर २ का भिखारी बनाया है ।

झकी—क्यों जी ! ये लोग इतने अन्धे क्यों होते हैं ?

बकी—अरे यार !—जब लक्ष्मी आती है तब पीछे से एक लात जमाती है । जिससे यों (अकड़ता है) अकड़ जाता है, इसीलिये ऊपर ही ऊपर दिखता है ।

झकी—लेकिन ये लोग बिगड़कर भी तो नहीं सुधरते ?

बकी—अरे सुधरें कैसे ! जब लक्ष्मी जाती है तो छाती में एक लात मारती जाती है जिससे कमर टूट जाती है इसीलिये यों झुक कर चलना पड़ता है ।

झक्की—अरे हां, हां, इसीलिये तो सामहने की दुनियाँ कभी नहीं दिखती । हम तो परमेश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि वह दुनियां में बहुत से अक्ल के अंधे धनिक बनावें । जिससे हम लोग मौज से जिंदगी गुजारें ।

बक्की—अजी, क्या परमेश्वर से प्रार्थना करते हो । धनवानों को बिगाड़ डालना तो अपने बायें हाथ का खेल है । मनुष्य पैदा होते समय तो सीधा ही रहता है । यह तो हम लोगों की ही बहादुरी है जो उन्हें रास्ते पर ले आते हैं ।

झक्की—अरे, रास्ते पर न लावें तो अपनी गुजर भी कैसे हो ! कल उस लड़की को पहुँचा कर बच्चू से एक हजार रुपया तो ठग ही लिया । अब चल कर कुछ इनाम हथया लेंगे । चलो यार चलो, अच्छा उल्लू फँसा है ।

बक्की—(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे चुप-चुप-चुप !

झक्की—(कुछ घबड़ाकर) क्यों, क्यों, क्या बात है ?

बक्की—देखो वह कौन आरहा है ! शायद मोहनसिंह ही तो मालूम पड़ता है ?

झक्की—हाँ, हाँ वही तो है । सूरत तो साफ़ साफ़ नहीं दिखती है । मगर पोशाक और चाल तो वैसी ही है ।

(दोनों उसी ओर देखते हैं। मोहनसिंह का प्रवेश)

बक्की—कहिये, कहिये काम तो बन गया ।

मोहन०—(रंज से) अजी बन क्या गया, सब गुड़ मिट्टी में मिल गया । अब तो कभी ऐसे झगड़ों में नहीं फँसूगा । एक तो ऐसे कामों में जोखिम बहुत है दूसरे हाथ में आना-जाना कुछ नहीं है ।

बक्की—तो क्या वह भाग गई !

मोहनसिंह—नहीं जी, भाग ही जाती तो भी गनीमत थी । लेकिन धोखा देकर मेरी छाती पर चढ़कर उसने गले पर कटारी धरदी । मेरे नौकर दौड़े, मगर उसी महात्मा के चेले ने आकर उनकी ओर पिस्तौल तान दी ।

बक्की—एँ ! आपका उस छोकरी ने इतना अपमान किया । फिर आप बचे कैसे ?

मोहन०—क्या कहूँ ? उससे मैंने बहुत प्रार्थना की और हाथ जोड़ कर माफी माँगी । और कहा कि ऐसा कभी न करूँगा ।

बक्की—आपने बहुत अच्छा किया "जान बची लाखों पाये ।" लेकिन ऐसी चालाक लड़की से बदला अवश्य लेना चाहिये ।

मोहन०—नहीं जी ! अब उससे क्या बदला लेना ! मैं उसे अपनी पुत्री के समान मान चुका हूं ।

बक्की—तो क्या आप मर्द होकर इतना अपमान सह लेंगे? अजी इतना अपमान तो एक नीच और अदना आदमी भी नहीं सह सकता। फिर आप तो एक राजा आदमी हैं। अगर आप इस तरह खामोशी धारण करेंगे तब तो सभी के हौसले बढ़ जावेंगे। कमसे कम इस मूछ की लाज तो रक्खो। (अपनी मूछ पकड़ता है)।

मोहन०—लेकिन अब पाप करने को जी नहीं चाहता।

बक्की—तो कौन कहता है कि पाप करो। आप उसके साथ किसी तरह शादी करलो फिर देखें वह क्या करती है। अभी ऐसी घटनाओं से आप ही बुरे बनते हैं। लेकिन विवाह हो जाने पर भी अगर ऐसी गड़बड़ी मची तो दुनियाँ उसीके ऊपर थूँकेगी। कहो न यार झक्की?

झक्की—हाँ यार बक्की, बात तो ठीक है। आप तो जब कहेंगे अच्छी बात ही कहेंगे। फिर इनकी खुशी। लेकिन इतना अपमान सहके मर्द के वेष में रहना तो अच्छा नहीं। कहा भी तो है:-

मरें जो औरतों से भी वनिक में डोकरें खावें।
नहीं मालूम कैसे वे नहीं में मर्द कहलावें॥

बक्की—यही तो मेरा कहना है (मोहनसिंह से) कहिये तो क्या कहते हैं। यदि आपकी आज्ञा हो, तो उसके बाप को ऐसी पट्टी पढ़ाऊँ जिससे वह चम्पा का विवाह आपके साथ कर देने पर राजी हो ही जावे। कहो यार झक्की?

झक्की—हाँ! यार बक्की! मजा तो खूब आवेगा। जिसने छाती पर लात रक्खी वही अब पैर पूजती फिरेगी। तब उससे कहने को तो होगा कि अब वह शेखी कहाँ गई? तब इन मूछों पर हाथ फेर सकेंगे।

मोहन०—अच्छा, एक बार फिर अपने भाग्य को आजमाता हूँ। तुम लोग जाओ और शीघ्र काम करो। यदि इस काम में अच्छी तरह सफल हुए तो तुम्हें मनमानी इनाम दूँगा।

बक्की—यदि हम इस काम को न कर सके तो समझना कोई दोगला थे।

(दोनों का प्रस्थान)

मोहन०—न मालूम क्या होगा, क्या न होगा? इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि उसने मेरा बड़ा भारी अपमान किया है। लेकिन करूँ क्या? बदला लेने का कोई उपाय भी तो नहीं है। देखूँ, ये लोग क्या करते हैं?

(प्रस्थान)

——:०:——

द्वितीयांक।

सातवाँ दृश्य।

(विद्यावती का प्रवेश)

विद्यावती—हाय! हाय! जिसको मैंने छोटे से पाला-पोसा पढ़ा लिखा कर होशियार किया, । वही मेरी प्यारी चम्पा आज एक दुराचारी के गले में बाँध दी जाती है। हे प्रभो! मेरे स्वामी को सुबुद्धि दो विवाह की पवित्र वेदी पर इस प्रकार बालिकाओं का खून न होने दो। (घुटने टेककर ऊपर देख अंचल पसार कर) भगवन्! अबलाओं को बल दो, यह अन्यायों का समुद्र उमड़ता आता है। इसे रोको! रोको! (लोभीलाल का प्रवेश)

लोभीलाल—विद्यावती! आ! भीतर आ! ऐसे शुभ समय में रो-रोकर अपशकुन न कर।

विद्यावती—(लोभीलाल के पैरों में गिरकर) प्राणेश्वर। मेरी चम्पा को इस प्रकार कुए में मत डालो! मेरे हृदय के टुकड़े टुकड़े न करो! दुनियाँ में धर्म भी कोई चीज़ है। मेरे पहिरने

का सब गहना लेलो। लेकिन उस दुराचारी के धन के लोभ में मत फँसो। मैं बिना गहनों के चम्पा को सुखी देखकर सुखी रहूँगी।

लोभीलाल—विद्यावती! भीतर आओ। तुम समझती हो कि पति की आज्ञा न मानना अपने धर्म में बट्टा लगाना है।

विद्यावती—स्वामीजी! सब समझती हूँ। किन्तु अपने प्राणेश्वर से (पैरों पर गिर कर) विनय करना पाप नहीं है। मेरा जीवन बचाओ। मेरी चम्पा का इस प्रकार खून न करो।

लोभीलाल—चल! बड़ी धर्मात्मा बनी है। मैं तेरी एक भी नहीं सुनना चाहता। (धक्का देकर नेपथ्य में धकेल देता है)।

(मोहनसिंह वर के वेश में आता है, लोभीलाल सत्कार करता है)

मोहन०—अभी तक ब्राह्मण क्यों नहीं आया?

लोभीलाल—क्या करें, कोई आने को तैयार ही नहीं होता। बड़ी हैरानी है!

मोहन०—अच्छा! समझ गया। मैं इन सब को देख लूँगा। अब आपही सब रिवाज़ पूरे कर दीजिये।

लोभीलाल—हाँ, ऐसा ही करता हूँ। पहिले कन्या को ले आऊँ (प्रस्थान)।

मोहन०—काम तो बन गया। फिर भी न मालूम मेरा हृदय क्यों काँपता रहा है! सोचता हूँ जो हो रहा है सो अच्छा है। लेकिन भीतर एक अज्ञात ध्वनि उठ रही है कि, सफलता असम्भव है। पीछे हाथ मलकर पछताना ही पड़ेगा। अब न आगे बढ़ने को जी चाहता है और न पीछे ही हटा जाता है। देखें भाग्य में क्या क्या बदा है?

(चंपा के साथ लोभीलाल का प्रवेश, चंपा क्रोध पूर्वक मोहन की ओर देखती है मोहन नीची नज़र कर लेता है)

चम्पा—पिताजी यह क्या?

लोभीलाल—बेटा! आज तेरा विवाह होता है। आज से तू मेरे घर की न रहकर दूसरे घर की रानी बनती है।

चम्पा—दूसरे की किसकी?

लोभीलाल—इन्हींकी (मोहनसिंह की ओर इशारा करता है)

चम्पा—(मोहन से) कहिये पिताजी! आपने तो उस दिन मुझे से पुत्री कहा था फिर आज उसी पुत्री के साथ विवाह करने की सूझी है। (मोहन लज्जा से सिर झुका लेता है)।

लोभीलाल—चम्पा! ये क्या पागलपन की बातें करती है?

चम्पा—क्या ये पागलपन की बातें हैं? और पुत्री के साथ पिता की शादी करा देना पागलपन नहीं है?

लोभीलाल—चुप रह! तुझे इस बारे में बोलने का कुछ भी अधिकार नहीं है।

चम्पा—मेरा ही विवाह और मुझे ही बोलने का अधिकार नहीं! इस अन्धेर का भी कुछ ठिकाना है!!

लोभीलाल—पिता के आगे पुत्री का न बोलना अन्धेर कहलाता है?

चम्पा—पिता है कहाँ।

लोभीलाल—मैं कौन हूँ?

चम्पा—जिसको तुम मांसपिंड के समान बेचना चाहते हो, क्या उसी के पिता बनते हो? कोई भी पिता रुपयों के लोभ में फँसकर अपनी कन्या को किसी दुराचारी के साथ विवाह कर सकता है?

लोभीलाल—अपने देश की यही रीति है।

चम्पा—अत्याचार का समर्थन करने वाली कोई भी रीति अपने देश की नहीं हो सकती। अगर तुम सरीखे लोभियों ने उसे रीति बना डाला है तो मैं उस रीति को पैरों से ठुकराती हूं।

लोभीलाल—क्यों धर्म का नाश कर रही है?

चम्पा—वाह! "उल्टा चोर कोतवाल को डांटे।" क्या धर्म यही सिखाता है कि अत्याचार के आगे सिर झुकाकर उसका समर्थन करो! और पापी पेटके लिये सन्तान का खून कर दो?

लोभीलाल—चम्पा, तेरे वचन कटार से भी पैने हैं!

चम्पा—अगर सत्याग्रह कोई चीज़ है तो वे इतने पैने हो जायगें कि तुम्हारे इस दुःसाहस का नाश कर देंगे।

लोभीलाल—तो क्या मुझे तेरा विवाह ज़बर्दस्ती करना पड़ेगा।

चम्पा—मेरा नहीं-किन्तु मेरे इस मुर्दे शरीर का।

(कटारी मारना चाहती है-कि पीछे से लक्ष्मी आकर हाथ पकड़ लेती है। दूसरी ओर से महात्माजी आते हैं। चंपा लक्ष्मी की तरफ आश्चर्य से देखती है)

महात्मा—मोहनसिंह! पाप, अन्याय और अत्याचार की भी कोई हद्द हुआ करती है। तुम इस पाप के समुद्र से निकल करके भी फिर डूबे। दीन-गरीबों को सताना, अपने धन के बल पर अबलाओं को इस प्रकार सताना तुमने अभी तक न छोड़ा। संसार में जबर्दस्ती किसी का धन छीना जा सकता है-किसी की हत्या की जा सकती है। परन्तु याद रक्खो, किसी से जबर्दस्ती प्रेम नहीं कराया जा सकता। ख़ैर! अब भी समय है, तुम रास्ते पर आ सकते हो। किन्तु तुम्हारे कार्यों से मालूम होता है कि तुमको रास्ते पर लाना पत्थर पर बीज बोना है। इसलिये अब मैं जाता हूँ मेरी यही अन्तिम चेतावनी है। (लौटना चाहते हैं)

मोहन०—(दौड़कर महात्मा के चरणों पर गिर कर) गुरुवर्य्य! डूबते हुए इस पापी को एकबार और बचाओ! मुझे क्षमा करो!

महात्मा—मोहनसिंह मैं क्षमा कर सकता हूँ किन्तु मेरी क्षमा किस काम की? क्योंकि तुम्हारे पाप तुम्हें क्षमा नहीं कर सकते। तुम्हारा विश्वासघात तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता। अब संसार की कोई शक्ति तुम्हें क्षमा नहीं कर सकती। जाओ, तुम स्वयं अपने को क्षमा करो।

मोहन०—सचमुच, मैं बड़ा पापी हूँ। पृथ्वी भी नहीं फटती कि मैं समाजाऊँ। सूर्यदेव अपनी किरणें तेज नहीं करते कि मैं जल जाऊँ अब इस पापी संसार को मुँह भी नहीं दिखा सकता। (हाथों से मुँह छिपाके बैठ जाता है)

लक्ष्मी—(रूँधे गले से) प्राणनाथ! (पास आती है)।

मोहन०—लक्ष्मी! इस पापी को न छुओ, इस अपवित्र के सम्बन्ध से तुम अपवित्र न बनो।

लक्ष्मी—(गद्गद स्वर से) प्राणेश्वर! आप यह क्या कहते हो! मैं तो तुम्हारी दासी हूँ।

मोहन०—लक्ष्मी, तुम साधारण स्त्री नहीं देवी हो। तुमने स्वयम् दासी बनकर मुझे स्वामी बनाने की चेष्टा की। लेकिन मैं स्वामी क्या-तुम्हारे पैरों की धूल भी न बन सका। (लक्ष्मी के पैरों पर गिरता है)।

लक्ष्मी—(मोहनसिंह का सिर सादर उठाकर) नाथ! आप यह क्या करते हैं। मुझे क्यों पापिनी बनाते हैं?

मोहन०—देवी! सचमुच मैं इतना पापी हूँ कि मेरे स्पर्श से तुम पापिनी हो जाओगी। (लक्ष्मी से अलग गिर पड़ता है) ।

लक्ष्मी—प्राणेश्वर! आप यह क्या कहते हैं। महात्माजी! बचाइये, बचाइये। (हाथ जोड़ती है) ।

महात्मा—मोहनसिंह! उठो! उठो! पाप का सच्चा प्रायश्चित्त करो।

मोहन०—प्रायश्चित्त? दीजिये गुरुवर्य्य! अगर, मेरे पापों का प्रायश्चित्त हो सकता है तो दीजिये! अगर प्राण देने पर भी मेरा प्रायश्चित्त हो सके तो मैं करने को तैयार हूँ।

महात्मा—नहीं! इसकी कोई आवश्यकता नहीं! जिन दीन गरीबों को, अबलाओं को तुम ने सताया है। उनसे सच्चे दिल से माफी माँगो। और अपने देश, जाति, धर्म, के उद्धार के लिये तन, मन, धन सब लगादो।

मोहन०—गुरुवर्य्य! पैरों की धूल दो (महात्मा के पैर छूता है)। लक्ष्मी! मुझ पापी को क्षमा करो (लक्ष्मी के साम्हने झुकना चाहता है लेकिन लक्ष्मी बीच में ही सम्हाल लेती है)। बेटी चंपा! इस अत्याचारी के अत्याचार को भूल जाओ। (चंपा के पैरों पर गिरता है लेकिन चंपा उठाती है) तुम सब मुझे आशीर्वाद दो कि मैं देश, जाति और धर्म के लिये मर सकूँ (पृथ्वी की ओर देखकर) मातेश्वरि! भारत जननि! मुझ पापी को क्षमा कर! मैंने तेरा ही पुत्र होकर तेरे ही पुत्र-पुत्रियों को सताया है।

महात्मा—मोहनसिंह अपने प्रण पर दृढ़ रहो। भारत-माता तुम्हें क्षमा करती है। माता के दुख को दूर करने के लिये तैयार रहो!

मोहन—(गद्गद् स्वर से) गुरुवर्य्य! इस पापी को इतने जल्दी क्षमा नहीं मिल सकती। मेरे पापों का स्मरण करके भारत-जननी का क्षमा सूचक हाथ नहीं उठ सकता!

महात्मा—मोहनसिंह—

जिसके मन में रहे सत्य, वंचकता का कुछ काम नहीं।
भारत-सेवा छोड़ और कामों का बिलकुल नाम नहीं॥
उसका प्रायश्चित्त शीघ्र होता है, माता आती है।
भारत-माता उसे क्षमा करती है, हाथ उठाती है॥

(परदा फटता है भारत माता क्षमा-सूचक हाथ उठाये दिखती है। मोहनसिंह पैरों में गिरता है। सब घुटने टेककर सिर झुकाते हैं।)

(पटाक्षेप)

द्वितीयाङ्क समाप्त।

हमारा व्यापार।

(लेखक-श्रीयुत बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, बी० ए०)

संसार में आजीविका के जितने साधन हैं उनमें व्यापार सबसे उत्तम है। यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो मालूम होगा कि पूर्वकाल से लेकर वर्तमान समय तक संसार की विभूति उन्हीं लोगों के हाथ में रहती है जो व्यापारी हैं। कारण कि केवल व्यापार ही एक ऐसा मार्ग है जिसे ग्रहण करने से लक्ष्मी मनुष्य की चेरी होजाती है। यह बात नहीं कि केवल धनवान् लोग ही सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु यह ठीक है कि धन की सहायता से सभी काम सुगम और शीघ्र हो जाते हैं। जहाँ देखिये वहीं लक्ष्मी की महिमा गाई जाती है, और जहाँ सुनिये वहीं लक्ष्मी का बोलबाला होता है। खासकर आजकल के नवीन संसार और सभ्यता में तो इसकी परमावश्यकता है। यदि आप धनवान् हैं तो आप कठिन से कठिन कार्य बड़ी सुगमता

से कर सकते हैं। यदि आपके पास पैसा है तो बड़े २ राजे-महाराजे आपको सिर झुकावेंगे, और यदि आप दरिद्री हैं तो कोई भी रास्तागीर आपको एक ठोकर लगा सकता है।

अब लक्ष्मी की इतनी महिमा है तो फिर इस पर कुछ विचार करना अनुचित न होगा। वास्तव में देखा जावे तो इस नवीन युग में प्रत्येक समाज के उत्थान का यह सबसे बड़ा और सुगम साधन है। यदि आप समाज-सुधार करना चाहते हैं तो पैसे की जरूरत होती है। यदि आप शिक्षा-प्रचार करना चाहते हैं तो लक्ष्मी-पुत्रों से याचना करनी पड़ती है। परंतु इसके विपरीत यदि आप भिखमंगे हैं तो आप की अच्छी से अच्छी बात पागलपन कह कर कान से उड़ा दी जायगी। सारांश यह कि आजकल " टका माता, टका, पिता, टका बिना टकटकायते " का जमाना हो रहा है।

अच्छा, तो अब देखना यह है कि इन लक्ष्मी देवी को प्रसन्न करने के लिये सबसे उत्तम और सुगम साधन कौनसा है? हम देखते हैं कि मनुष्यों को संसार में सबसे आवश्यक साधन आजीविका हुआ करती है। इसी पापी पेट के लिये मनुष्य नाना प्रकार के बुरे और भले कार्य करता है। और इसी आजीविका के चलाने के लिए मनुष्य को संसार के सब झंझटों में फँसना पड़ता है। जो इससे मुक्त हैं वे ही सुखी हैं। और जो इससे पिस रहे हैं उनके अंदर रातदिन भट्टी जला करती है। यह अवस्था सब गृहस्थों की है। हाँ, साधु पुरुषों की बात दूसरी है; उन्हें संसार के झगड़ों, रगड़ों से संबंध नहीं। परन्तु हम लोग तो गृहस्थ हैं, इसलिये आजीविका के साधन बिना हमारा कल्याण नहीं।

अस्तु, अब देखना यह है कि आजीविका के सब साधनों में से व्यापार ही सबसे सुगम और उत्तम क्यों है? हम देखते हैं कि एक व्यापारी अपने व्यापार करने में पूर्ण स्वतंत्र हुआ करता है। न तो उसे किसी को सत्ता सहने की ज़रूरत है और न वह किसी का ताबेदार ही है। अपनी इच्छा और समय के अनुसार जब चाहे तब वह अपनी दुकान खोल या बंद कर सकता है। यह शारीरिक स्वतंत्रता दूसरे व्यवसायों में प्राप्त नहीं। क्या कलर्कगिरी, क्या मास्टरी और क्या हाकिमी। नौकरी के जितने पेशे हैं उन सबमें समय की पाबंदी और साथ ही साथ दूसरों की सत्ता कायम रहती है। इसके अतिरिक्त व्यापार में सबसे महत्व की बात यह है कि धन के उपार्जन की सीमा नहीं रहती। यदि व्यापारी सुयोग्य और बुद्धिमान है तो थोड़े ही समय में अटूट द्रव्य कमा सकता है। परन्तु अन्य पेशों में आय की सीमा रहती है। एक उच्च से उच्च कर्मचारी अपने जीवन भर में उतना नहीं कमा सकता जितना कि एक चतुर व्यापारी एक दिन में कमा लेता है। साथ ही साथ व्यापार में उसे जीवन के आनन्द के लिए भी काफ़ी समय मिलता है। यदि व्यापारी चाहे तो जीव की जीविका के साथ २ अपना जीवन-उद्धार भी पूर्ण रूप से कर सकता है। कारण कि न तो वह किसीके बंधन में रहता है और न वह रात दिन व्यापार ही कर सकता है। सुबह व रात्रि को अवकाश मिलने पर वह भगवत् भजन कर सकता है। और लक्ष्मी के उपार्जन के साथ ही साथ वह अपनी आत्मा के विकास के लिए समय और साधन दोनों प्राप्त कर सकता है। और भी बहुत से कारण व्यापार की उत्तमता की पुष्टि के लिए दिये जा सकते हैं। परन्तु, हम लोग तो परंपरा से व्यापार ही करते चले

आरहे हैं, हमें अधिक प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। हम प्रत्येक क्षण यह अनुभव करते हैं कि संसार में व्यापार से बढ़कर उत्तम और सुगम दूसरा धनोपार्जन का साधन नहीं।

इन्हीं सब विचारों को सोच समझकर हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए व्यापार ही आजीविका का एकमात्र साधन बना दिया। यदि हमारी जैन-जाति व्यापारिक न होती तो न तो हम जीव-दया-सिद्धान्त के उपासक ही रहते, और न हमारा धर्म ही कायम रहता। संसार की अन्य नष्ट हुई जातियों के समान आज दिन भूमंडल से हमारा अस्तित्व ही सदा के लिये मिट गया होता। यह हमारी वाणिज्यप्रियता ही है जो हमें संसार की बड़ी २ उथल-पुथल से बचाकर आज दिन भी किसी भी रूप में हमारा धर्म और जाति कायम रक्खे हुए है। और यह वाणिज्यरूपी अहिंसात्मक तलवार ही होगी जो फिर एक दिन हमारी सत्ता-हमारे धर्म और जाति की सत्ता संसार में कायम करेगी। यदि समाज चाहती है कि हमारा शीघ्र उत्थान हो तो हमारे लिये सबसे जबर्दस्त साधन यही है कि हम अपने व्यापार की पूर्णरूप से उन्नति करें। बिना धनोपार्जन के शक्ति और प्रभुता के प्राप्त करने की इच्छा करना निरी मूर्खता है।

यदि ऊपर कही हुई बातों के प्रमाणों की आवश्यकता हो तो भारत के वर्तमान इतिहास में पारसी जाति और संसार के वर्तमान इतिहास में अंग्रेज कौम के उत्थान पर विचार कीजिये-तो पता चलेगा कि व्यापारके बल पर संसार की सब शक्तियां प्राप्त की जा सकती हैं। यह व्यापार की महिमा है कि आज दिन एक मुट्ठी भर अंग्रेज़ तथा करीब एक लाख पारसी भारत के शिरोमणि और कर्णधार बन गये हैं। और यह केवल व्यापार की उन्नति ही है कि जिसने सात समुद्र पार अंग्रेज कौम को भी भारतवर्ष सरीखी सोने की चिड़िया दे रक्खी है। आज दिन यदि संसार की शक्तिशालिनी से भी शक्तिशालिनी जाति का व्यापार नष्ट होजाय तो यह निश्चय समझिए कि क्षणमात्र ही में उसकी शक्ति और संपत्ति कपूर की तरह उड़ जायगी।

अतएव हमारा समाज-प्रेमियों से नम्र निवेदन है कि वे इस विषय पर शीघ्र ही गहन विचार करें, जिससे कि हमारा उत्थान शीघ्रता के साथ होसके। लेखक भी अपनी बुद्धि और अनुभव के अनुसार समाज की वर्तमान व्यापारिक अवस्था, उसके गुण और दोष तथा उसके उत्थान के उपायों का किंचित्मात्र दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न करेगा। आशा है, कि गुणीजन त्रुटियों को छोड़कर सार सार बातों को ग्रहण करेंगे।

वर्तमान समय में एक तरफ तो गृहस्थी का खर्च दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है और दूसरी तरफ हमारी आय दिन पर दिन कम होती जारही है। यद्यपि सारी समाज की यह अवस्था नहीं है, परन्तु यदि आप ध्यानपूर्वक देखेंगे तो मध्यम श्रेणी के प्रायः जितने गृहस्थ हमारी समाज में हैं उनका यही हाल है। हाँ, हमारे श्रीमानों को जाने दीजिए। उनका तो ब्याज चौबीसों घंटे चल कर हज़ारों और लाखों रुपयों पर हाथ मार रहा है। परन्तु शोचनीय अवस्था उन लोगों की है जो बिचारे एक तरफ तो गृहस्थी के बोझसे लदे हुए हैं और दूसरी तरफ अपना रोजगार थोड़ी पूँजी या बिना पूँजी के दूसरों से रुपया काढ़कर कर रहे हैं। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो इन मध्यम श्रेणी के गृहस्थों की आर्थिक अवस्था

इतनी शोचनीय है कि ये लोग दो चक्कियों के बीच में पिसते हुए गेहूं के समान हो रहे हैं। एक तरफ तो व्यापार में लखारस नहीं; और दूसरी तरफ न तो ये लोकलाज छोड़कर नौकरी वगैरह कर सकते हैं और न ये अपना रहन-सहन इस प्रकार बना सकते हैं कि घी की जगह तेल खाने लगें। एक तरह से गरीब आराम में रहता है कि चाहे जहाँ शर्म लिहाज़ छोड़कर बनी-मजूरी करके पेट भर खाने के लिये कमा लिया। परन्तु ये मध्यम श्रेणी के गृहस्थ "कै हंसा मोती चुने, कै लंघन कर जाय" के अनुसार अपनी प्रतिष्ठा और मानके विरुद्ध न नौकरी-पेशा कर सकते हैं और न करना चाहते हैं। आज दिन जमाना ऐसा हो रहा है कि घर घर में त्राहि त्राहि मची हुई है। हजारों घर प्लेग और हैजा ने साफ कर दिये और कर रहे हैं। मृत्यु बहुत सस्ती होगई है। परन्तु आश्चर्य यह है कि जो घरमें कमाऊपूत होता है वह तो मर जाता है। और उसपर आश्रित रहनेवाले वृद्ध, बालो, स्त्रियाँ व विधवायें जीवित बची रहती हैं। यदि एक तरफ़ कर्मों की लीला हो रही है तो दूसरी तरफ़ धन-लीला सातवें नर्क का दृश्य दिखा रही है।

इन सब दुःखों की जड़ हमारे व्यापार की अवनति है। दरिद्रता ही मृत्यु के साथ मिलकर रणचंडी का नाच दिखाती है। और लक्ष्मी सामर्थ्य के साथ मिलकर स्वर्ग के आनंद प्राप्त कराती है। अतएव हमारा कर्तव्य है कि यदि हम संसार में भले पुरुषों की भांति जीवित रहना चाहते हैं तो हमें व्यापार का आश्रय लेना चाहिए। कहना न होगा कि वास्तव में जैन जाति के उत्थान के इतिहास में उन्हीं पुरुषों का नाम चिरस्मरणीय रहेगा जो इसके नष्ट हुए व्यापार को फिर से उन्नति के शिखर पर पहुँचा देंगे। जाति का बच्चा बच्चा भी उनके पूज्य नामों का अपनी मधुर वाणी से श्रद्धा और भाव सहित उच्चारण करेगा। अस्तु।

अब देखना यह है कि हमारे व्यापार की यह वर्तमान शोचनीय अवस्था क्यों हुई? सबसे कमी हमारी समाज में इस बात की है कि हम रहते तो हैं बीसवीं शताब्दी में और चाल चल रहे हैं दसवीं सदी की। कहने का अर्थ यह कि यदि हम व्यापार में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें नवीन ढंग से ही व्यापार करना होगा। आजकल संसार में जीवन एक घुड़दौड़ के समान हो रहा है। जिसका घोड़ा आगे निकलेगा वही बाजी मार सकता है दूसरा नहीं। पहले व्यापार बहुत कम लोग करते थे। परन्तु अब कोई भी व्यक्ति इसमें कूद पड़ता है। यही कारण है कि प्रायः हर जगह जितनी माल की खपत नहीं उससे अधिक व्यापारी मौजूद हैं। आपका किसी खास व्यापार का ठेका तो है नहीं; फिर भला जबतक आप अपने को दूसरे दुकानदार से अधिक योग्य न बनावें तबतक आप यथेष्ट द्रव्य नहीं कमा सकते। ऐसा करने के लिये हमें दूकान में ईमानदारी व एक भाव से माल बेचना होगा, और ऐसी वस्तुओं की दूकान लगाना होगी जिसकी ज्यादा खपत और मुनाफा अधिक हो। आपने देखा होगा कि एक नवीन ढंग की दूकान में पुराने ढर्रे की दूकान से कई गुनी ज्यादा बिक्री होती है। क्या कपड़ा, क्या अन्य सामान सबका यही हाल है। सारांश यह कि आपको आज कल की व्यापार-नीति के अनुसार चलना होगा। हमारी पुरानी व्यापार-नीति आजकल के नवीन युग में बेकाम हो गई है। अब ग्राहक की इच्छा के अनुसार दुकानदार को अपनी दूकान में वस्तुएँ रखना पड़ेंगी। ग्राहक तभी कोई वस्तु खरीद करेगा जब वह उसके चित्त को लुभा देगी अन्यथा नहीं।

परन्तु, प्रश्न यह है कि एक दूकानदार ग्राहकों की इच्छायें कैसे जान सकता है ? इसकेलिये यदि दुकानदार बुद्धिमान है तो अपनी दुकान में या तो वे वस्तुयें रक्खेगा जो सदैव आवश्यक होती रहती हैं जैसे खाने-पीने की चीजें। इत्यादि या, वह जो वस्तुयें रक्खेगा उन्हें इस ढंग पर, एक नवीन रूप में, नवीन सजधज के साथ अपनी दूकान में इस प्रकार सजा सकता है कि उन्हें देखते ही तुरंत ग्राहक का मन लुभा जाय। अथवा एक चतुर दूकानदार विज्ञापन द्वारा अपनी दूकान इतनी मशहूर कर सकता है कि कोई भी पुरुष कम से कम दूकान का नाम सुनकर एक बार देखने के लिये अवश्य आवे। सारांश यह कि नवीन युग में जबतक नवीन रूप से व्यापार न किया जायगा तबतक न तो काफी आय हो सकती है और न व्यापार की उन्नति हो।

दूसरा कारण हमारी अवनति का यह है कि हमारी समाज में प्रायः पुरुष एक ही व्यापार (जैसे कपड़े का) करते हैं। हम लोग लकीर के फकीर बन गये हैं। एक ही व्यापार में सब पुरुष कैसे सफलीभूत हो सकते हैं ? अतएव आवश्यकता इस बात की है कि हम नित्य ही नवीन व्यापार करें। यदि एक भाई बजाज है तो दूसरा सराफ हो, और यदि तीसरा लोहा-लंगड़ बेचता हो तो चौथा मनहारी करता हो। प्रत्येक व्यापारी को अभिमान होना चाहिए कि उसने एक नवीन ही व्यापार करके सफलता प्राप्त की और अपनी समाज को व्यापार का एक नवीन मार्ग बतला दिया।

सबसे भारी त्रुटि हमारी समाज में यह है कि हमारे यहां सिवाय व्यवसाय के नवीन नवीन वस्तुओं के बनाने के उद्योग तो बिलकुल हैं भी नहीं। आजकल जितना मुनाफा वस्तुओं को बना कर खपाने में है उतना व्यवसाय में नहीं रह गया। व्यवसाय करने वाले तो दलाल हैं। जो थोड़ासा अपना मुनाफा लेकर एक जगह की चीज किसी जगह बेंच देते हैं। परन्तु कच्चे माल से चीजें बनाना इतना सरल नहीं। इसके लिये नवीन आविष्कार, विज्ञान और विलक्षण बुद्धि की आवश्कता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमें यह कार्य न करना चाहिए। जिस व्यापार में जितनी अधिक मिहनत और जोखिम होगी उतना ही अधिक उसमें लाभ होगा। हमें भी औद्योगिक धंधों जैसे मोजे, बनियान बनाना, कागज बनाना इत्यादि में अवश्य घुसना चाहिए नहीं तो आगे चलकर व्यापार की और भी अवनति होगी।

सब से बड़ी बात यह है कि हमारे यहाँ हम लोगों में नवीन सूझ (Enterprising Spirit) ही नहीं है। जबतक कि हमारी समाज में व्यापार करने की मारवाड़ी-हिम्मत नहीं आती तब तक हमारी उन्नति नहीं। आपने देखा होगा कि एक मारवाड़ी पहले थाली-लोटा लेकर अपने देश से निकलता है परन्तु थोड़े समय में वही अपनी विचित्र सूझ, उद्योग और परिश्रम से लाखों, करोड़ों कमा लेता है। परन्तु हमारे यहाँ तो कहावत मशहूर है कि "बेटा घर की आधी भली, बाहर की सेंगी बुरी"। अस्तु, हमें ये पुराने मेंडकी-भाव छोड़ कर नवीन मारवाड़ी-भाव ग्रहण करना चाहिए। एक व्यापारी को घर और विदेश बराबर है। जहाँ दो पैसा पैदा होने की उम्मेद हो वहीं पर घर बना लेना पड़ता है। आशा है कि हमारे भाई ऊपर के कथन के ऊपर गहन विचार करेंगे।

अन्तिम बात यह है कि हमारी समाज में लक्ष्मी और सरस्वती का सम्बन्ध टूट गया है। जो धनवान् हैं उन्हें व्यापार करने को न तो फुरसत है, और सबसे बड़ी बात यह है कि न

उन्हें यह अक्ल ही है। व्याज ही उनका खरा रोज़गार है। उन्हें यह समझ में भी नहीं आता कि एक रुपया सैकड़े से भी कई गुनी अधिक आय उन्हें व्यापार से हो सकती है। यदि कहा जाय कि अमेरिका, विलायत वगैरह में लोग सौ सौ दो दो सौ गुना मुनाफा उठाते हैं तो वे इसे चंडूखाने की गप्प समझेंगे। इन श्रीमानों के लिए आवश्यकता इस बात की है कि हमारे योग्य नेतागण व्यापार में अग्रसर होकर अपने सफली-भूत कार्यों से इन महा-पुरुषों की तन्द्रारूपी निद्रा को दूर करें। व्यापार का मार्ग छोड़कर केवल व्याज की आय पर ही निर्भर रहना इन सामर्थवान् श्रीमानों को शोभा नहीं देता। व्याज की कमाई तो अबलाओं, विधवाओं के लिए रूर्च करना चाहिए जो बेचारी घर से बाहर नहीं निकल सकतीं।

यह तो लीला लक्ष्मीपुत्रों की हुई, अब सरस्वती-सेवकों की कथा सुनिये। सबसे प्रथम तो इनके पास पूंजी-पसारा नहीं इस-लिए ये अपंग बने जाते हैं। यदि वे अच्छी से अच्छी व्यापार संबंधी बात बतावें तो श्रीमानों को इनकी शाख नहीं। जबतक इनके घर में दस हज़ार की जायदाद नहीं तबतक हज़ार रुपया भी श्रीजी के भंडार से कर्ज़ मिलना उचित नहीं; चाहे हुंडी-तवा वाले कच्छी लाखों की हुंडिया घसीटते रहें। इस संबंध में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि हमारे यहाँ गरीबों का गुज़ारा नहीं। यदि वे मरते हों तो उन्हें खड्डे में गिराने के लिए एक धक्का और लगा दिया जाता है। परन्तु दूसरी जाति वाले चाहे हमारी समाज की पूंजी से मालामाल हो जायँ तो कोई चिन्ता नहीं। लक्ष्मीपुत्र अपने राग में मस्त हैं और अकल रखने वालों का कोई सहायक नहीं।

अभी समय है जब कि लक्ष्मी और सरस्वती सगी बहनें बन सकती हैं। परन्तु यदि शीघ्र ही ऐसा न हुआ तो लक्ष्मी को सरस्वती की चेरी होकर रहना पड़ेगा। क्योंकि अब ज़माना ज्ञान और विज्ञान का है। मूर्खता का नहीं।

अन्त में सबसे प्रथम हमारे समाज के सुयोग्य नेताओं से प्रार्थना है कि समाज में आर्थिक कष्टों के दूर करने के एकमात्र अमोघ साधन व्यापार की उन्नति करें। अपने ज्ञान से समाज को नवीन मार्ग दिखलावें, और अपने अनुभव और सफलता से समाज में व्यापारिक-जीवन का संचालन करें। साथ ही साथ हमारी सामाजिक शिक्षा-प्रणाली में व्यापार (व्यवसाय और औद्योगिक) को सबसे प्रथम स्थान देकर अपने नवीन बालकों के हृदयों में व्यापार के नवीन रूप और साधन का चित्र पट अंकित कर दें।

इसके उपरान्त हमारी परवार-सभा का धर्म है कि परीक्षा के रूप में नवीन २ व्यवसायों और उद्योगों की नींव डाले जैसे छापाखाना माचिस बनाना इत्यादि। साथ ही साथ हमारे सुयोग्य और पढ़े लिखे नवयुवकों को नाना प्रकार के व्यापार, जैसे विज्ञान की सहायता से तेल, साबुन, स्याही, रबर इत्यादि नवीन २ चीजें बनाना, कपड़े की मिलें चलाना इत्यादि-पढ़ने के लिए सुयोग्य स्थानों में भेजे। इस तरह सामाजिक द्रव्य का उचित उपयोग करें। मेरी नवयुवकों से भी यही प्रार्थना है कि यदि वे नये युग में समाज व धर्म की उन्नति करना चाहते हों तो कड़ा दिल करके वन्हें कर्म क्षेत्र में उतरें और जाति-उन्नति के लिए आकाश-पाताल एक कर डालें। तब अपने पूर्वजों को बतला सकेंगे कि हम उनकी संतान कपूत नहीं बल्कि सोलह आना सपूत हैं।

जीवन-संग्राम।

यह धरणी रण भूमि, यहां लड़ना ही होगा। यदि न लड़े ? पददलित पड़े सड़ना ही होगा॥
जय चाहो यदि, लगातार बढ़ना ही होगा। वह देखो उद्देश्य-शिखर-चढ़ना ही होगा॥
बनो वीर संसार में, कायर का क्या काम है ? क्षण भर भी भूलो नहीं यह जीवन-संग्राम है॥ १

बाहर, भीतर, प्रकट, गुप्त, रिपु घेर रहे हैं। जटिल जाल सब जगह जघन्य बखेर रहे हैं॥
बांधो कसकर कमर धैर्य को कवच बनाओ। शुद्ध बुद्धि का प्रखर, खड्ग ले हाथ दिखाओ॥
मत देखो मुख फेर कर अभी सुबह या शाम है। क्षण भर भी भूलो नहीं यह जीवन-संग्राम है॥ २

कुटिल काल विकराल-खेल खुल खेल रहा है। मृत्यु—यन्त्र में जीव—तिलों को पेल रहा है॥
अड़ सकता है कौन, सभी को ठेल रहा है। अन्ध—कूप में अन्धा धुंध धकेल रहा है॥
आंख खोल कर देख लो यहां नहीं आराम है। क्षण भर भी भूलो नहीं यह जीवन—संग्राम है॥ ३

रोगराज की कहीं छावनी पड़ी हुई है। अनावृष्टि है, कहीं वृष्टि ही अड़ी हुई है॥
कहीं ध्वजा दुर्भिक्ष—देव की गड़ी हुई है। कहीं दृष्टि ही किसी क्रूर की कड़ी हुई है॥
कहीं कर्म बलवान है कहीं दैव ही वाम है। क्षण भर भी भूलो नहीं यह जीवन-संग्राम है॥ ४

बलवाले बल-हीन जनों को सता रहे हैं। "जिसकी लाठी भैंस उसीकी" बता रहे हैं॥
मत्स्य-न्याय की धूम विश्व में मची हुई है। सबको इसकी अटल सचाई जँची हुई है॥
'जो सोता खोता वही' आलस यहां हराम है। क्षण भर भी भूलो नहीं यह जीवन-संग्राम है॥ ५

कई मन चले चले कुचलने तुहिनाचल को। कितने, चला जहाज चीरते जलनिधि-जल को॥
कोई उड़ा विमान व्योम को फाड़ रहे हैं। कोई खाली हाथ मृगेन्द्र पछाड़ रहे हैं॥
कर्म-भूमि में कर्म ही करो कर्म से नाम है। क्षण भर भी भूलो नहीं यह जीवन संग्राम है॥ ६

बूंद बूंद कर नित्य आयु जल टपक रहा है। मुँह बाये यम-सिंह सामने लपक रहा है॥
बुद्बुद तुल्य विनश्यमान क्षण भंगुर तन है। कुछ करलो परमार्थ सफल तब ही जीवन है॥
जाना सबको एक दिन उसी पुराने धाम है। क्षण भर भी भूलो नहीं यह जीवन-संग्राम है॥ ७

तुम बैठे बेकार मक्खियां यों मत मारो। चिऊँटी दल की ओर देख कर तनिक विचारो॥
हवा चल रही, नदी बह रही दिन जाते हैं। पल भर भी बिन चले न रवि, शशि कल पाते हैं॥
नहीं मनस्वी देखते छाया है या घाम है। क्षण भर भी भूलो नहीं यह जीवन-संग्राम है॥ ८

बहती गङ्गा हाथ शीघ्र ही इसमें धोलो। मातृ-भूमि है बँधी पाश अब इसके खोलो॥
जाती हो यदि जान भले ही जावे, जावे। किन्तु अमर हो नाम, कीर्ति भूतल में छावे॥
धन्य धन्य हैं वीर वर, उनको सदा प्रणाम है। क्षण भर भी भूलो नहीं यह जीवन-संग्राम है॥ ९*

—वागीश्वर विद्यालङ्कार।

* नोट—इस कविता पर बाबू बेनीमाधव खन्ना की ओर से ५१) का पुरस्कार दिया गया।

मिस्टर जानबुल और भारत-भेड़ ।

मिस्टर जानबुल—आजतक ठीक था। चैन से भारत-भेड़ की ऊन काटी और सोलह आना नफा खाया। परन्तु अब कठिन दिखता है क्योंकि वह कान-पूंछ हिलाने लगी है। यदि कहीं हाथ से निकल भागी तो इससे हाथ धोना पड़ेगा। जी में आता है कि इसीको क्यों न हजम कर जाऊँ! "न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।"

[मि० जानबुल चाहते हैं कि, गुलामगिरी का चक्र ऐसा घुमाया जाय, जिससे आपस की फूट द्वारा भारत इतना शक्ति हीन हो जाय कि उसके हाथ, पैर, कान, पूंछ फिर फटफटाने योग्य न रहें। देश के नेता जूझ मरें-मर मिटें और साधारण जनता भेड़ की तरह ऐसे नवीन शिकंजे में कसी जाय ताकि इस बार सोकर कई सदियों न उठ सके-और मिस्टर जानबुल काश्मीर और हिमगिरि पर कालोनी बनाकर बहारें लिया करें। एवरिस्ट की नाप-जोख और तिब्बत का प्यार इसीलिये तो नहीं है ?]

भारत सावधान !!

बाल विवाह के दुष्परिणाम ।

(लेखक—श्रीयुत सिंघई बाबूरामजी परवार)

सामाजिक दृष्टि से विवाह सबके लिए एक अति आवश्यक कार्य है। बहुत से कार्य तो अल्प समय के लिए किए जाते हैं। परन्तु विवाह जैसा गुरुतर कार्य यावज्जीवन के लिए किया जाता है। स्त्री पुरुष का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यदि हम, दोनों को एक जान दो शरीर, कहें तो कुछ भी अत्युक्ति नहीं।

स्त्री पुरुष की सहायता के लिए ही पैदा की गई है। यद्यपि स्त्री पुरुष में किन्हीं बातों में कुछ अन्तर है परन्तु योग्य विवाह के होने पर वह अन्तर बिलकुल ही विलीन हो जाता है। और परस्पर में प्रेम की मात्रा बढ़ जाती है। पुरुष में शारीरिक शक्ति स्त्रियों की बनिस्बत इस लिए अधिक होती है कि जिससे वे स्त्रियों की रक्षा करें। कारण कि स्त्रियां स्वभावतः निर्बल होती हैं। इसीलिए उन्हें 'अबला' नाम से पुकारा जाता है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा चित्ताकर्षण गुण अधिक होता है जिसके द्वारा वे अपने पति देवता को सदैव प्रसन्न किये रहती हैं।

विवाह से पुरुषों को सब प्रकार का आराम मिलता है। और साथ ही इसके बाल बच्चों की रक्षा भी होती है। यदि योग्य माता हुई तो फिर बच्चों के योग्य बनने में तनिक भी सन्देह नहीं।

स्त्री पुरुष, पिता पुत्र, भाई बहिन, आदि के नाते से विवाह करना ठीक है। विवाह से जीवन सुखमय और शांतिपूर्वक व्यतीत होता है। धार्मिक दृष्टि से भी विवाह होना ज़रूरी है। विवाह के लिए जितना मान हम भारत ने दिया है उतना किसी दूसरे देश ने नहीं। इसका मुख्य कारण यह है कि हिंदुओं में से यदि कोई हिंदू पिता मर जाय तो जबतक उसकी अन्तेष्टि क्रिया करने के लिए उसका पुत्र नहीं हो तबतक उसे दूसरी दुनियां में सुख नहीं मिल सकता। परन्तु उनका ऐसा ख्याल करना किसी प्रकार ठीक नहीं। कारण कि प्रत्येक प्राणी अपने ही कर्मों के अनुसार सुख-दुख को भोगता है। पुत्र उसको कुछ भी सहायता नहीं पहुँचा सकता। हाँ, यदि किसी पुरुष की स्त्री योग्य और शिक्षित हो तो वह अपने पति का अन्त समय में कुछ हित कर सकती है। स्त्री, पुरुष की सच्ची हितू है। स्त्री से पुरुष को सब प्रकार का आराम तथा सुख मिलता है; परन्तु पहिले के विवाह और अबके विवाह में बड़ा अन्तर पाया जाता है। यदि उसमें सुधार हो जाय तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि विवाह एक आनंद की वस्तु बन जायगा।

बहुत से देशों में तो विवाह उस समय किया जाता है जब कि पुरुष अपनी स्त्री के भरण पोषण योग्य हो जाता है। परन्तु इस भारतवर्ष में बाल विवाह ही कर दिया जाता है। जिससे यह गारत हो रहा है। कलकत्ते में ब्राह्मणों की एक ऐसी खास जाति है जिसमें बच्चा उत्पन्न होते ही सगाई कर दी जाती है। सादियों की भी यही प्रथा जारी है। मनु महराज का कहना है कि जबतक लड़की १२ वर्ष की न होजाय तबतक उसका विवाह न करना चाहिए।

बहुत से आदमियों का ऐसा मत है कि उष्ण प्रदेश में लड़कियों की शादी शीत प्रदेश की बनिस्बत जल्दी होनी चाहिए। कारण कि बाल विवाह से जवानी जल्दी आजाती है; समझ खराब हो जाती है, सदाचार बिगड़ जाता है और जाति पतित हो जाती है। और

सबसे बड़ा बुरा असर जो इससे पड़ता है वह यह है कि इससे आगे की सन्तान बिगड़ जाती है। यदि बाल विवाह बन्द कर दिया जाय तो लड़के लड़कियों के सदाचार सुधर जायँ। मानसिक साम्राज्य में वृद्धि हो जाय, शरीर-संगठन बन जाय, और बच्चे जनने के दुःख दूर हो जाँय। बाल विवाह जातीय जीवन को जड़ से खो देने वाली वस्तु है। इसीके कारण स्त्रियां अधिकतर बांझ होती देखी गई हैं। दैवयोग से यदि किसी के सन्तान भी हुई तो पुत्र की बनिस्वत पुत्री अधिक पैदा होती हैं। जो शरीर में छोटी कमजोर और जुगमगाते दीपकके समान कान्ति वाली देखी गई हैं। इसी बाल विवाह के कारण इस भारतवर्ष में अनेकों गंदी बीमारियां दिन प्रतिदिन पैदा होती देखी जाती हैं।

बाल विवाह से सबसे बड़ी हानि जो सब काल में देखी गई है वह शिक्षा में रुकावट है। ज्यों ही बालक बालिका का विवाह हुआ त्यों ही उनका ध्यान पढ़ने की ओर से हटा और वे गृहस्थी के जंजाल में फँस गए। यदि मार-कूट कर उन्हें पढ़ने की ओर लगाया तो इससे क्या होता है। जबतक बालक बालिका की अन्तरंग रुचि उसकी ओर पूर्णरीति से न हो तबतक जबर्दस्ती पढ़ाने से कुछ भी लाभ नहीं। इससे जबतक सन्तान अच्छी तरह पढ़ लिखकर योग्य न होगी तबतक उसकी शादी कदापि नहीं करनी चाहिये।

अन्त में मैं यह कहे बिना न रहूँगा कि इस कमसिन की शादी ने भारत की प्रत्येक जाति को कमज़ोर तथा खोखला कर दिया है। यही कारण है कि हम लोग अपनी कमज़ोरी के कारण दूसरों का मुकाबिला नहीं कर सकते और दूसरों से सब प्रकार रौंदे जाते हैं। यह मैं दावे के साथ कहता हूँ कि यदि इस देश में कमसिन की शादी की प्रथा एकदम उठ जाय तो यह देश पूर्ववत् बलिष्ठ तथा दुनियां के दूसरे देशों के साथ मुकाबिला करने वाला हो जाए।

रायबहदुर-श्रीमान्-श्रीमन्तसेठ पूरनशाहजी ।

आपका जन्म संवत् १९१८ में नागपूर नगर में हुआ था। आपके पिता श्रीमान् नत्थूशाहजी साधारण गृहस्थ थे। हमारे चरित्र नायक थोड़ी ही अवस्था में साधारण मराठी शिक्षा-प्राप्त करके व्यवसाय में उद्योग शील होगये थे। आपकी १० वर्ष की आयु में ही आपके पिताजी का स्वर्गवास होगया। इससे सब गृह-भार आप पर ही पड़ जाने से आपकी परिस्थिति शोचनीय हो रही थी। पूर्वयोग से से सिवनी निवासी श्रीमान् सेठ गोपाल शाहजी (जो नत्थूसाह जी के भ्राता थे) सन्तान न होने के कारण सं० १९३६ में आपको सिवनी ले आये और आपको दत्तक पुत्र बनाया। आपने उनके जीवन-काल में व्यवसाय और अन्य व्यवहारिक कार्य बहुत योग्यता से सम्पादन किया जिसके कारण सेठ सा० ने सब कार्य भार अपने जीवन-काल में ही आपके ऊपर छोड़ दिया। श्रीमान् गोपालसाहजी जैन समाज में एक प्रसिद्ध बुद्धिमान् और धर्मात्मा व्यक्ति थे। आपने अनेक धर्म कार्यों के साथ दो श्री जैन-मंदिर-निर्माण कराके गजरथ प्रतिष्ठा कराई। परवार जाति में आपका फर्म श्रीमानों में प्रख्यात है। सं०

१६५६ कुंवार वदी १ को श्रीमान पूरनशाह जी ने पिताजी के स्वर्गवास के पश्चात् अपना कार्य बहुत योग्यता पूर्वक चलाया और व्यवसाय आदि में पहलेसे भी अधिक वृद्धि की। धर्म कार्यों में जिस प्रकार आपके पिताजीका उत्साह था उससे अधिक आपका उत्साह रहा। सं० १६५६ में आपने दुष्काल के समय अनाथों को भोजन देकर सहायता दी। सं० १६५८ में सिवनी में नवीन मंदिर निर्माण करा गजरथ प्रतिष्ठा कराई। उसी वर्ष में आपने स्वर्गवासी चि० कुंअर नेमीचंद के नाम से धर्मशाला बनवाई जो रेलवे स्टेशन के पास है। उसी वर्ष आप श्रीसम्मेद शिखर यात्रार्थ पधारे और धर्म प्रभावना के लिए एक नवीन मंदिर निर्माण कराने का मुहूर्त किया। और श्री जिन मंदिर तैयार होने पर सं० १६६६ में बड़ी धूमधाम से प्रतिष्ठा कराई। इस समय से समाज में आपकी विशेष प्रसिद्धि होगई। यह प्रतिष्ठा कितनी सफलता-पूर्वक हुई यह समाज में प्रसिद्ध हैं और सदा चिरस्मरणीय रहेगा। इसमें अनुमान ४० हजार जैन-यात्री सबही प्रान्तों के एकत्रित हो गये थे। इसमें आपने उदारता पूर्वक द्रव्य खर्च किया कई बार आपने तीर्थ-यात्रा की और असमर्थ यात्रियों को सहायता देकर अपने साथ लेगये। उन्हें तीर्थयात्रा कराई औरसहस्त्रावधि द्रव्य खर्च किया। आपमें सदैव धर्म कार्य में द्रव्य खर्च करने का उत्साह रहा करता है। किसी भी धार्मिक संस्था के चंदा आदि के कार्य में आप अग्रसर रहते हैं और उत्साह पूर्वक सहायता दिया करते हैं। आपने सिवनी में जैन बालकों के लिये एक पाठशाला स्वर्गीय कुंअर शिखरचंदजी के नाम से खोलकर उसके सदैव निर्वाह के लिए चिरस्थाई प्रबंध कर दिया और उसके लिए एक विशाल स्थान दे दिया जो कि अब चल रही है। आपकी इच्छा है-कि इस पाठशाला में बोर्डिंग कायम करके धार्मिक उच्च शिक्षा दी जाय— इसी लिये हाल में १५ छात्र अनपेड जो हिन्दी मिडिल पास हों भरती करने के लिये स्वीकारता दी है—और भरती करने की सूचना भी समाचार पत्रों में निकल[illegible] है।

इसी प्रकार आपने एक औषधालय भी अपने स्वर्गीय पिताजी के स्मरणार्थ "गोपाल जैन औषधालय" खोल दिया है, और उसके लिए भी ध्रौव्य द्रव्य निकाल कर सदैव चलाने का प्रबंध कर दिया है जो अभी चल रहा है।

पश्चात आपने जनता के लाभार्थ हिंदी के विद्यार्थियों के पढ़ने के लिए स्कूल बनवा कर म्युनिसपालटी को अर्पण किया और भी पबलिक कार्यों में आप सदैव उदारता पूर्वक द्रव्य से सहायता किया करते हैं। आपके दो विवाह हुए पहली स्त्री के स्वर्गवास होने पर दूसरा विवाह छिंदवाड़ा में हुआ और सन्तानोत्पत्ति भी हुई। किंतु दैव के प्रकोप से किसी का अस्तित्व नहीं रहा जिनमें दो पुत्र रत्न और एक पुत्री के वियोग ने आपके हृदय पर बज्राघात कर दिया।

बड़े पुत्र कुंअर नेमीचंद अनुमान १२ वर्ष की अवस्था पाकर स्वर्गवासी होगये, ये एक होनहार बालक थे, किंतु दैव से वस नहीं।

दूसरे पुत्र कुंअर शिखरचन्द अनुमान १३-१४ वर्ष की अवस्था पाकर इनका भी

स्वर्गवास होगया । यह घटना विशेष हृदय द्रावक हुई क्योंकि इनका विवाह १ वर्ष पूर्व ही श्रीमान मथुरादासजी टड़ैया ललितपुर निवासी की सपुत्री से होगया था । जो पुत्र-बधू अभी मौजूद हैं । आप लिखी पढ़ी हुई हैं, हिंदी का अच्छा ज्ञान है और धर्म में विशेष प्रेम है, इसीमें आप अपना समय व्यतीत करती हैं ।

इसके पश्चात् ही कुछ समय के बाद सपुत्री राधाबाई का थोड़ी ही अवस्था में स्वर्गवास होगया-उपर्युक्त तीनों घटनाएँ कितनी विपत्ति जनक हैं यह पाठक स्वयं समझ लेंगे । इन कारणों से हमारे चरित्र नायक दम्पति सहित शोकातुर रहा करते हैं । तथापि संसार की ऐसी अवस्था है कि कितनी भी आपत्तिएँ आने पर गृहस्थको गृहस्थ-कार्योंकी व्यवस्था करना ही पड़ती है । उसीके अनुसार आपको भी गार्हस्थ कार्यों की व्यवस्था करनी ही पड़ी और कर रहे हैं । इतनी आपत्ति आने पर भी आपके धार्मिक कार्यों में किसी प्रकार का फेरफार नहीं हुआ । और धर्म कार्यों में आपका उत्साह बढ़ा हुआ है । आगामी गृह कार्य चलाने के लिए आपने अपनी पुत्र बधू अर्थात् स्वर्गीय शिखरचन्दजी के नाम पर कुंअर बिरधी चन्दजी को जो आपके गोत्र में से हैं, दत्तक लेकर योग्य व्यवस्था कर दी है । आप भी योग्य और होनहार व्यक्ति हैं । आशा है कि आप भी अपने पूर्वजों की परिपाटी के अनुसार उदार और धार्मिक होंगे । आप जिस प्रकार समाज में प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार अन्य जनता और सरकार में भी आपका गौरव है आप म्यूनिसपल और डि० कौंसिल के मेम्बर हैं कुछ समय तक म्यूनिसपल के वाइस प्रेसीडेन्ट भी रहे । आप दरबारी भी हैं और गवर्नमेंट ने प्रसन्न होकर आपको कुरसीनसीन बना दिया आप बेंच मजिस्ट्रेटी में बहुत दिनों से कार्य कर रहे हैं । आपके कार्य से संतुष्ट होकर गवर्नमेंट ने गत वर्ष आनरेरी (प्रथक) फ़र्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट बना दिया । इन्हीं सब कारणों को पाकर भारतवर्षीय परवार महासभा ने भी आपको सातवें अधिवेशन सागर के सभापति पद से सम्मानित किया—जो अगहन बदी ३, ४, ५ को सानन्द समाप्त होगया है । आशा है कि अब उसकी असली कार्यवाही आपके सभापतित्व में विशेषरूप से होगी । और परवार-सभा भी आपकी छत्रच्छाया में हरीभरी रहेगी ।

परवार-बन्धु या विश्व-प्रेम ।

(लेखक—श्रीयुत पं० पीताम्बरदासजी उपदेशक ।)

सर्वव्यापी संसार के साम्हने परवार बन्धु मानव समाज के बन्धु का ही बोधक है। परवार शब्द से कुटुम्ब का स्मरण होता है। अतएव मनुष्यमात्र से बन्धुता रखनेवाला व्यक्ति परवार श्रेणी में शामिल रहा होगा। वर्तमान परवार-जाति का क्षेत्र संकीर्ण हो चुका है, पर जिस जैन धर्म को परवार जाति ने अपनाया है—उस धर्म के उद्देशों से उनके अन्दर मानव समाज की सर्वोत्कृष्ट भलाई करना है। अपने ध्येय की सिद्धि करने में संकीर्णता और अनुदारता का नाम भी परवारों में न आना चाहिये । सम्भव है कि ऐसे ही समय में परवार जाति ने अपना जातीय संगठन करालिया हो ।

सीमा बद्ध संसार में प्रान्त विशेष की मुख्यता रख वर्णन किया जाता है। यह वर्णन

उस समय का प्रतीत होता है। जब कि संसार में भिन्न २ राज्यों व महर्षियों द्वारा मत मतान्तरों का साम्राज्य जीता जा रहा था।* पौराणिक इतिहास इस बात के साक्षी हैं। वर्ण, कर्म की व्यवस्था और वर्णशंकरता के भय से भारतीय राष्ट्र को एकता के सूत्र से बाँध देना ही पौराणिक काल के राजा व ऋषियों का काम था। राजा लोग शाम, दाम दण्ड, भेद आदि के भय रूप शासन से मूर्ख व मनचले लोगों को वर्णाश्रम धर्म के कर्मों में स्थिर रखने के प्रयत्न करते थे। ऋषि समूह वर्ण कर्म में स्थिर रखने को स्वकर्तव्य पालन कराने वाले मानवीय व स्वात्मावलम्बन के पाठ पढ़ा रहे थे। कारण कि भय रूप शासन से साधारण मानव जाति मानवीय कर्तव्यों का पालन नहीं करता किन्तु भय व दण्ड को ही अपना स्वामी समझ दण्ड निर्माता की गुलामी करने लगता है। परन्तु धर्म शिक्षण के प्रसाद से मानव परवार अपने आत्मीय कर्तव्यों को भले प्रकार समझता हुआ राष्ट्र में सुख शान्ति की स्थापना अपने आप निर्भय हो करने लगता है। राजा व ऋषि समूह जिस तरह अधिकाधिक अपने ध्येय की सिद्धि में सफलता प्राप्त कर लेते थे, उसी तरह अनुकूल मानव वर्ग भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा व उन व्यक्तियों की सम्मिलित टोलियों के साथ कभी कभी राजा को प्रभु और कभी कभी ऋषियों को परमेश्वर *मानने लगता था। व ऐसा मानव वर्ग सामुदायिक रूप से अपने परवार को बढ़ाने के लिये सहभोज और बेटी-व्यवहार से सुसंङ्गठित होता आया है। सहभोज और बेटी-व्यवहार ऐसे परवार-समाज का जीवित रहना मानो जगत में हमेशा के लिये सुख, शान्ति की जीतीजागती मूर्तियों का स्थापित करते चले जाना है।

कर्म के अनुसार वर्ण में स्थान देना यह ही उस समय के ऋषि समूह का ध्येय था ताकि मानव संसार के प्रचलित सुख-साधन के कामों में एक दूसरे द्वारा अन्तर न पड़ सके। तथा उनका आपसी भ्रातृभाव ज्यों का त्यों बना रहे।

जैन परवारों ने कभी किसी कर्म वाले को अपने भ्रातृ भाव से वंचित नहीं रक्खा है। किन्तु इन परवारों ने अपने उदार हृदय से प्रत्येक वर्ण व कर्मवालों को अहिंसा सत्य, अचौर्य और सुशीलता के पाठ पढ़ाने में अपने पूर्ण बल का प्रयोग किया है। अहिंसा सेवियों को तो इस परवार जाति ने अपना परवार (कुटुम्ब) ही बना लिया है। तथा अहिंसा के जहाज में उस समय जितने लोग बैठे हैं वे पथ-दर्शक रूपसे अपना कुछ परिचय मूरों व गोत्रों द्वारा वर्तमान परवारों को करा रहे हैं।

अहिंसा धर्म के प्रचारक ही जगत में सुख, शांति के संस्थापक हैं और किसी भी धर्म में अहिंसा परमेश्वर के अविनय करने की शक्ति नहीं है। तब भी अमानुषीय और स्वार्थी सृष्टि इसके उपदेशों को पालने में असमर्थ रही है। इसी असमर्थता के कारण मानव जाति के

*कर्नाटकी जैन, गुजराती जैन, बुन्देलखंडी जैन, मारवाड़ी जैन, आदि अन्य सम्प्रदाय भी भिन्न २ प्रकार की आजीविका को समान आजीविका वाले खड़े किये गये हैं। नहीं तो प्रत्येक भारत के जैनों व जैनेतरों की एकही जाति आज धार्मिक सम्प्रदाय के नाम से दिखाई देती।

*राजा शिवकोटि व स्वामी समन्तभद्र, भगवान् अकलङ्क देव, व महात्मा मनु या कुलकरादि का आदर्श प्रमाण है।

भ्रातृभाव व पारिवारिक भावना में बड़ा भेद, भाव हो रहा है। सुसंङ्गठित समाज के नये प्रारम्भ में उस समाज या परवार कोवलिष्ट बनाने के लिये हिंसक व विचारों के प्रतिकूल मानवीय सृष्टि से असहयोग करना भी कुछ काल के लिये जरूरी है ताकि इस नये समाज व परवार के बुरे संस्कार अविच्छिन्नरूप से दूर होते चले जावें।

वर्तमान मानव परवार ने अहिंसा परमेश्वर के निर्माता जैन संसार में अपना घर बना लिया है। किन्तु जैन धर्म व अहिंसा धर्म के प्रचार में जैन परवारों का फाटक पूर्ण रूप से खुला हुआ है। उन्हें चाहिये कि हिंसा राक्षसी पर वे एक बार फिर से अपने अहिंसा शस्त्र का वार करें ताकि इने गिने हजार ही नहीं किन्तु करोड़ों मानव परवार पर फलदायी प्रसन्न हों इस राक्षसी के चक्कर से मुक्त हों।

अहिंसा प्रचारक भगवान् महावीर ने वह युग उपस्थित कर दिया था जब कि, सिंह और मृग, मार्जार और चूहे आदि जाति-विरोधी जीव भी एक साथ प्रेमालाप करते थे।

मानव संसार में प्रचलित वेदों की हिंसा लोहू की नदियाँ बहा रही थी तब ही भगवान् महावीर ने अहिंसा का साम्राज स्थापित किया था। एक बार लोकमान्य तिलक ने कहा था कि "जैन धर्म ने वैदिक धर्म पर अहिंसा की गहरी छाप लगा दी है"। पाठक सरलता से समझ सकते हैं कि भगवान महावीर ने साम्य वाद से मनुष्य परवार को अहिंसा का अनुयायी बनाया था।

आजीविका कर्म ही वर्ण-व्यवस्था का निर्माता है। भूत काल के राजा व ऋषि सम्प्रदाय ने मानव जाति को हिंसा रहित आजीविका की परिमित श्रेणियों में बाँधा है। एक से एक का उत्तरोत्तर आदर्श ऊँचा है। ब्राह्मण की कक्षा को लक्ष्य में रख क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र की अन्तिम कक्षा भी अहिंसा कर्म द्वारा कुछ दीर्घ काल को लेकर ऊँची श्रेणियों में प्रवेश करने की आकांक्षी है। पर भगवान् महावीर जैसे अवतारों के बिना इनका उत्थान नहीं हो सकता।

अहिंसक परवारों का कर्तव्य है कि वे विशाल हृदय के साथ मानव परवार में भगवान् महावीर के पथ का प्रचार करें। सीमाबद्ध बुन्देलखंड में अधिक रूप से जैन परवारों का ही निवास है। गोला पूर्व, गोला-लारे और गोलसिंगारे जनों के साथ रोटी व्यवहार है पर बेटी व्यवहार नहीं होता। सम्भव है कि इन गोलों (समूहों) की पात्रता में कुछ मतभेद रह गया हो। पर ये सब अहिंसक गोल परवार शरीर में ही समावेश हो सकते हैं।

अहिंसक परवारों को अहिंसा प्रचार का गौरव होना चाहिये। उन्हें चाहिये कि प्रत्येक प्रान्त के मानव परवार में हिंसा प्रचार की गोलें स्थापित करें। व उन्हें परवार बन्धु के नाम से अपनावें। और यह भी परवार-बन्धु का सर्वव्यापी उद्देश हो।

परवार-बन्धु अंक ५ वर्ष २ में प्रियवर मा० पूरणचन्द्र जी सागर का पत्र प्रकट हुआ है। उसमें उन्होंने "परवार-बन्धु" को "जैन बन्धु" व "दिगम्बर जैन-बन्धु" नाम से विभूषित करने की सम्मति उपस्थित की है। वर्तमान जैन संसार की अपेक्षा उनकी यह सम्मति आदरणीय है। पर सर्वव्यापी जैनेतर संसार के साम्हने गुण विशेष को ध्यान में रख "परवार-बन्धु" नामही सर्वमान्य होसकता है।

जेवर से प्रीत लगाई है।

भारत की महिलाओं में अब प्रबल अविद्या छाई है।
विद्या से तो शून्य मगर जेवर से प्रीति लगाई है॥ टेक

साठ वर्ष की बनी ठनी है नख शिख से कह काला है।
बाला ने भी देख देखकर अपना रूप सम्हाला है॥
पढ़ने को तो समय नहीं है जब देखो तब रोती हैं।
पड़ी अविद्या में सब बहिने समय व्यर्थ यों खोती हैं॥
प्यारी बहिनो, विद्या सीखो इसमें आत्म-भलाई है॥ १ टेक

फरमायश होती है सबकी जेवर के मंगवाने में।
चांदी सोने की कीमत औ, वजन अधिक बढ़ जाने में॥
बिछिया, बोरा बन जाते हैं, तीस रुपय दस आने में।
सत्तर अस्सी लग जाते हैं, पाँयजेब गढ़वाने में॥
पैरों के जेवर से तब भी इन्हें न नाहीं आई है॥ २ टेक

बीस और सौ रुपया भर के तोड़र अबही ढलवा दो।
तथा पैजना सत्तर भर के, गुच्छा उसमें लगवा दो॥
बोंठा आठ भरे हों अच्छे साथ बखौरा भी आवें।
गजरा, नौगरी चंदोली सब, डेढ सेर के हो जावें॥
कम्मर को चपरास चाहिये, चार इंच चौड़ाई है॥ ३ टेक

बेंदा में फकरा जड़वाकर शीस फूल दमकाई है।
नथ में लटकन लटक रहा बिन कारण मूड़ हिलाई है॥
कीमखाब का लहँगा जिसमें सौ की करी सफाई है।
उस पर सुन्दर साड़ी देखो, पचहत्तर में आई है॥
जेवर की हम कथा कहें क्या, फैशन आफत लाई है॥ ४ टेक

— जमुनाप्रसाद जैन, सतना।

जीवन ।

(लेखक—श्रीयुत गणेशप्रसादजी भट्ट, बी. ए., एल. एल. बी)

परिमल और कली छुटपन ही से एक साथ खेले हैं । उनकी जीवन-यात्रा इसी खेल से आरम्भ हुई थी । जब वे अपने जीवन के उषःकाल की ओर दृष्टिपात करते थे, तो उन्हें केवल अपने हृदय-मन्दिर के कलशों पर बालसूर्य की रश्मि-प्रभा का थिरकना दिखाई देता था और सुनाई पड़ता था । उसके कोटरों में मन विहंगों का निस्पृह कलरव । परिमल ने कली के शान्त, विस्तृत अलस हृदय को रसिक प्रभातियों की कोमल-संगीत मय थप-कियों से आँखें खोलना सिखाया है । और सुदूरवर्ती नील पर्वत मालाओं से आई हुई वायु की पवित्रता ने प्रस्फुटित किया है । इसलिये जब से कली ने होश सम्हाला है तब से उसने अपने हृदय में परिमल ही को पाया है । औरों की ओर वह केवल कौतूहल से देखा करती थी । एक दिन जब परिमल ने कली से कहा था कि- 'कली जब तुम्हारा विवाह हो जावेगा तब क्या तुम अपने छुटपन के साथी का स्मरण कर लिया करोगी'-तब कली ने केवल यही कहा था कि- 'मैं तुम्हारे सिवाय किसी को पहिचानती भी नहीं' और दौड़कर परिमल के गले से लिपट गई थी ।

इसलिये जब परिमल का कली के साथ विवाह हो गया तो कली की स्वतन्त्रता में बाधा नहीं पहुँची । उसे इसका ख्याल ही न था कि अपनी सास-ससुर इत्यादि कुटुम्ब के वृद्ध पुरुषों को मान देना चाहिए । ऐहिक बन्धनों से मुक्त उसकी आत्मा अनन्त में वायु से अठखेलियाँ करती । कुछ दिनों तक उसकी यह स्वतन्त्रता लड़कपन के कारण निभ गई । पर जब वह बड़ी हुई तब उसका निठल्लापन उसकी सास की आँखों में खटकने लगा । औरों की बहू-बेटियाँ "कैसे घर में रह कर सब घर का काम काज करती हैं-यह न मालूम कैसी निर्लज्ज है, न किसी का मान, वा सन्मान, न काम काज केवल एक अनन्त हँसी, जल की एक उत्ताल तरंग" । धीरे २ उसकी सास का बर्ताव असह्य होने लगा । प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक उसे कई व्यंग, उपहास सहने पड़ते, घर की कोई अनहोनी घटना उसीके कारण होती, कोई बीमार पड़ता तो उसी के अभाग्य से । बड़ी लाड़ प्यार से पाली हुई कली दिन भर घर का काम-काज करती, अपनी सास, ससुर इत्यादि की अभ्य-र्थना और सेवा करती पर उसकी चेष्टा सब व्यर्थ जाती । केवल रात्रि की निस्तब्धता में जब तारागण सुषुप्त संसार की चौकसी करने लगते थे तब वह पति देव के हृदय में मुँह छिपाकर संसार की वेदना से मुक्ति पाती थी ।

एक दिन परिमल का मामूली सिर दर्द करने लगा । पिछली रात्रि कली को वही बहुत देर तक सान्त्वना देता रहा था । पर सास कली के ऊपर टूट पड़ी । 'मालूम नहीं

रांड़ ने मेरे लाल को क्या कर दिया है' ? कली को यह दोषारोपण असह्य हो उठा। जिसको वह अपने जीवन का आधार समझती थी, जो उसके आशा-दीपक की ज्योति थी। जिसके चरणों पर उसका हृदय अपने प्रेम और भक्ति की पुष्पांजलि चढ़ाता था, उसके कष्ट का कारण वह कही जाती है। जिसके स्पर्श से उसके हृदय का एक २ रक्त बिन्दु उन्मत्त हो जाता है, जिसकी नासिका के रंध्रों से निकली हुई वायु उसके कपोलों पर की गुदगुदी का स्मरण कर उसे अभी भी रोमाञ्च हो आता है, जिसके हाथों ने कई बार उसकी मांग में सौभाग्य चिह्न सिंदूर और आँखों में काजल लगाया है, उसके लिये भी क्या वह कष्ट का कारण हो रही है? उसकी आँखें छलछला आई। रात भर जहाँ परिमल शान्त चित्त होकर सोता रहा वहाँ कली ईश्वर से उसकी मंगल कामना मनाती रही। जब सवेरा हुआ तब कली अपने पति की आज्ञा ले अपने सास-ससुर की चरण रज माथे पर लगाकर अपने मायके चली गई।

कली बड़े घर की लड़की थी। घर पहुँचते ही कली की माँ ने उसे बड़े लाड़-प्यार से रक्खा। माँ का ममता पूर्ण हृदय अपनी कली की व्यथा का अनुमान कर अधीर हो उठता था। इसलिये कली की सब आवश्यकताओं का पूर्ण विचार रक्खा जाने लगा। उसके कहने के पहिले ही उसका मन परख लिया जाता था। उसके माता, पिता उसके कल्पना-जनित प्रत्येक दुख का विचार रखते थे। इसलिये उसका कोमल शरीर फिर विकसित होने लगा। काम करने से छुट्टी पाकर कली अपने को सौभाग्यवान समझने लगी।

परन्तु धीरे २ उसे अपने निठल्लेपन से मोह छूट चला तथा इस आलस्य का प्रभाव भी उसके मन पर पड़ने लगा। संसार के प्रति उसके उदासीन विचार—ईश्वर के उसके प्रति उसके भक्तिमय उद्गार, विलासिता के कुहरे में विलीन से होने लगे।

सायंकाल की रेणुमय वायु को हटाती हुई सुदूरवर्ती मंदिर के घंटों की झनकार, जो पहिले उसके हृदय में एक उत्कण्ठा पूर्ण गुदगुदी पैदा करती थी अब वह उसकी सखियों के अट्टहास्य में विलीन होने लगी। कली को धीरे धीरे अपनी आत्मा के इस पतन पर शोक होने लगा। उसे अब अपना वह पुराना जीवन याद आने लगा। जब वह दिन भर काम करके रात्रि को परिमल के हृदय में मुख छिपाकर अपने कष्टों को भूल जाती थी। जब उसकी सास कभी कोमलता से उसकी पीठ पर हाथ फेर देती थी तब उसका हृदय उमड़-कर आँसुओं की वर्षा करने आता था। दुख की अग्नि में तपकर उसका हृदय पवित्र हो गया था। उस पूर्व प्रेम की स्मृति से उसे प्रतीत होने लगा कि दुख के बिना उस का जीवन निर्मल नहीं। जब कभी वह अपनी

सखियों के साथ खेलती तब उसे खेलते २ अपनी सास की प्रतिमा दिखाई देने लगती थी। कभी २ तो वह उनके कठोर किंतु स्नेहपूर्ण वचन सुनने को लालायित हो उठती थी। उसे उन वचनों में अब संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी। उसका शरीर परिश्रम करने को उत्सुक हो उठता था। अब उसे निश्चय होने लगा कि सुख का जन्म-स्थान दुख ही है। उससे जीवन संयत होता, मन पवित्र और आत्मा में अनिर्वचनीय आनंद पैदा होता है।

एक दिन उसे मालूम पड़ा कि उसकी सास बीमार हो गई है, अतः उसका हृदय भी उस दुख का अनुभव करके द्रवीभूत हो गया। उसका मन बारबार इस बात की प्रेरणा करने लगा कि जिसने अपना पुत्र जन्म भर के लिये समर्पण कर दिया है उस के दुख में दुखी होना चाहिए। वह अधीर हो उठी—परिमल की माँ उसे निज जननी के समान प्रतीत होने लगी। उससे न रहा गया और उसी रात्रि को वह ससुराल को रवाना हो गई।

प्रातःकाल की रेखा प्राची दिशा में खिंच गई थी। परिमल की माँ के कमरे में दीपक टिमटिमा रहा था। पलंग पर कली की सास शान्त चित्त से सो रही थी। उस समय सूर्य की सुनहली किरणें खिड़की के द्वार से आकर कुछ संदेशा दे रही थी, परिमल माँ के सिरहाने सो रहा था और कली अपनी सास के चरणों में सिर झुकाए आँसू बहा रही थी।

सरस्वती और लक्ष्मी।

१

उत्तेजित हो कहा देवि ! मैं सच कहता हूँ।
तव सेवा-फल यही ठोकरें ही सहता हूँ ?
छोड़ा सेवा धर्म बना मैं सेवा कर्मी।
गौरव छोड़ा रखी चापलूसी की नर्मी॥
जो थोड़ा सा गौरव बचा—
वह कपूर सा उड़ गया।
शीश धनिक चरणों झुका—
या लज्जा से मुड़ गया॥

२

हाँ, देखा सर्वत्र मान धन का होता है।
धनवानों के पैर चूमकर जग धोता है॥
स्वाभिमान-सन्मान सभी कुछ वहीं बसा है।
विद्वानों की हुई आज क्या गिरी दशा है॥
सहके इतना अपमान भी-
क्यों न चली जाती कहीं।
या हम मूढ़ों के हृदय में-
सचमुच ही आती नहीं॥

३

सरस्वती ने कहा, वत्स ! तुम हो सच कहते।
जिसने पाया मुझे कभी क्या वे दुख सहते ?
झूठा सेवक कभी नहीं सच्चा फल पाता।
मृगतृष्णा से कभी न कोई प्यास बुझाता॥
जो मुझको ठगना चाहता-
स्वयं ठगा जाता वही।
जब मुझको तो पाया न तब-
फल की आशा क्यों रही॥

४

ज्ञानी का आनन्द सदा पाता है ज्ञानी ।
इससे तनिक न लाभ, बनो कोरे अभिमानी ॥
सरस्वती के पुत्र न धन के लिये तरसते ।
जब कि तुम्हारे प्राण सदा धन ही में बसते ॥
तब वत्स भला कैसे कहूँ—
सेवक तुम मेरे बने ।
तुम स्वयं सोचलो किस तरह—
धन की कीचड़ में सनें ॥

५

कहते हो तुम सदा जमाना है यह धन का ।
इसीलिये कुछ कार्य नहीं कर सकते मन का ॥
पर सच कहना तुम्हें कार्य कितना करना है ।
स्वार्थ-त्याग कर किस मनुष्य का दुख हरना है ।
तुम धनिक नहीं हो धन—
नहीं दे सकते हो, दो नहीं ।
पर श्रम करने में क्या कभी—
तत्पर दिखलाते कहीं ॥

६

बने स्वयंभू आप लगे कल्दार लेखने ।
मन ही मन फिर भोग-भूमि के स्वप्न देखने ॥
ले गन्ने की गांठ मजा लेते हो रसका ।
बड़े दुःख की बात उसी में लगता ठसका ॥
तुम चौबे थे, थे क्या बुरे,
क्यों छब्बे बनने गये ।
बस उधर हाथ मलते रहे,
इधर दुबे ही रह गये ॥

७

जीवन का उद्देश नष्ट हो गया तुम्हारा ।
धन से धोये हाथ सुयश पर चला न चारा ॥
आधी छोड़ी और एक पर दृष्टि जमाई ।
ऐसे डूबे कहीं जगत में थाह न पाई ॥
जो मिला उसी से तुष्ट हो,
कर जाते कुछ कार्य तुम ।
सत्साहस और विवेक से,
बन सकते थे आर्य तुम ॥

८

शकट चक्र के लिये चाहिये जितना ओंगन ।
उतना लेलो मगर व्यर्थ होगा गन दो मन ॥
उसके पीछे लाद लाद कर क्या कर लोगे ।
जबकि लदोगे स्वयं सहारा कैसे दोगे ॥
जो कूक सुनाते जगत को—
क्यों न स्वयं सुनते वही ।
क्यों व्यर्थ भायजी के भटों—
में आशा बँध सी रही ॥

९

कर सकते हो द्रव्य के लिये तुम जितना श्रम ।
उतने ही में सदा निकलती रहती है दम ॥
स्वाभिमान—सन्नीति—सत्य को बेंच बेंच कर ।
पा जाते हो सुबह शाम रोटियाँ पेट भर ॥
क्या इस कुराह को छोड़कर—
और न पथ दिखता कहीं ।
क्या तुम्हें डूबने के लिये—
चुल्लू भर पानी नहीं ? ॥

१०

सरस्वती के तीक्ष्ण वचन सुनकर मेरा मन।
शोक तप्त हो गया शुष्क सा होगया वदन ॥
आँसू बहने लगे कहा यों रोते रोते।
तुम्हें भूलकर रहे जननि ! हम जीवन खोते ॥
हे देवि ! तुम्हारे चरण की-
धूलि भी न हम पा सके।
भ्रम बीच पड़े नचते रहे-
कुछ न कार्य दिखला सके ॥

११

हम मोटे बेशरम न चुल्लू भर पानी में—
डूब सकेंगे पिरा करेंगे इन घानी में।
छाया तक भी देख तुम्हारी छी न सकेंगे।
उल्टी बातें किन्तु तुम्हारे लिये बकेंगे ॥
हम व्यर्थ तुम्हारे नाम पर-
झगड़ झगड़ मर जायँगे।
फिर इसमें विस्मय क्या कि-
हम तुमको सदा लजायँगे ॥

सांकों पर विचार।

गतांक में श्रीयुत सिं० कुँवरसेनजी का आठसांकों और चारसांकों पर विचार शीर्षक लेख पाठकों ने पढ़ा ही होगा। आपने छै साल परवार सभा के मंत्री रहकर कुरीतियों के हटाने की पूरी चेष्टा की है। किन्तु आप चारसांकों के विरोधी हैं, सो इसलिये नहीं कि आपको कुछ पक्षपात है। बल्कि इसलिये कि आपको चारसांकों से कुछ लाभ नहीं किन्तु हानि मालूम होती है। आपने इस विषय में जो जो बातें कहीं हैं; पहिले हम उसकी सूची बना लेते हैं। फिर उनपर विचार किया जायगा:—

१. आठसांकों का पूरा बचाव नाममात्र है।
२. आठसांकों को ही परवार कहते हैं, चौ-सके या दो सके परवार नहीं कहलाते। और न उनके साथ परवारों का विवाह सम्बन्ध है।
३. परवार जाति में इन आठसांकों के कारण किसीकी भी लड़की १५, २०, वर्ष तक की चाहे अंधी लूली भी क्यों न हो कुँवारी नहीं रही है। और न किसी श्रीमान का लड़का १५, २० तक कुँवारा रहा है।
४. कभी कभी इन आठसांकों के न मिलने से किसी श्रीमान को कन्या न मिलने पर वह कन्या बिचारे गरीब वर योग्य लड़के को मिल जाती है।
५. जिस दिन आठ से चार में पतित हुए उस दिन सब बातों में पतित होना पड़ेगा।

आपकी ये पांचों युक्तियाँ आपके ही लेख से उद्धृत किये हुए वाक्य हैं। अब हम एक एक पर विचार करते हैं।

(१) यदि आठसांको का बचाव नाम मात्र है, तब तो चारसांक वाले ठीक ही कह रहे हैं जो वस्तु नाम मात्र है उसके होने से क्या लाभ ! अपने पास तो असली

चीज रहना चाहिए। यदि पहिला मूर आठों में अटकता है, इसलिये आठसांके वास्तविक हैं तब उन्हें नाममात्र कहना उचित नहीं मालूम होता। इसलिये उनके घटाने की भी चेष्टा व्यर्थ नहीं है।

(२) चौसके भी परवारों के भीतर हैं, बाहर नहीं। यह बात दूसरी है कि उनके साथ बेटी-व्यवहार नहीं होता सो होना भी न चाहिए यह युक्तियुक्त बात नहीं है। समाजोन्नति के लिये ऐसी बहुतसी बातें हैं जो चलती हुई मिटाना पड़ेंगी। नहीं होता इसलिये होना भी न चाहिये यह युक्ति हास्यास्पद है।

(३) सचमुच लड़कियाँ कुँवारी नहीं रहतीं और न श्रीमानों के लड़के ही कुँवारे रहते हैं। पर आपके शब्दों से ही यह अर्थ निकलता है कि, गरीबों के लड़के कुँवारे रहते हैं। अस्तु, हम इस अर्थ से फायदा नहीं उठाना चाहते, किन्तु चारसांक वालों का यह कहना नहीं है कि आठसांकों से कुँवारों की संख्या बढ़ रही है। किन्तु उनका कहना है कि योग्य सम्बन्ध नहीं होने पाते। आपने अपने लेख में भी जहां चारसांक के पक्षकारों का उत्तर उद्धृत किया है वहां यही बात लिखी है।

अगर समाज में यह नियम चालू होता कि अयोग्य वर कन्या का सम्बन्ध न किया जाय, तब मालूम होता कि कितनी कन्याएँ कुँवारी पड़ी हैं! कन्याओं को अविवाहित रखने का रिवाज नहीं है। इस लिये जिस किसी तरह से हो उनका विवाह करना ही पड़ता है। कन्याओं के अविवाहित न रहने का दूसरा कारण यह भी है कि कन्याओं की संख्या बहुत थोड़ी है।

इन आठसांकों के कारण कितने अनमेल विवाह हुए हैं! यह कोई जानना चाहे तो उसे प्रतिशत दस, पाँच सम्बन्ध ऐसे अवश्य मिल जायँगे। कुछ दिनों से समाज में चारसांकों का विवाह चालू भी होगया है। इसलिये कुछ अयोग्य सम्बन्ध टूटते टूटते बच गये हैं। फिर भी जहाँ कहीं पंचायती दबाव से, अपनी असमर्थता से, या अन्य किसी कारण से चारसांक का विवाह नहीं हो पाया है वहाँ अनमेल विवाहों की संख्या काफी है। अगर विवाह में आठसांकों से अड़चन न होती तो सैकड़ों विवाह चारसांक में न होते। पंचायतियों को चारसांक का प्रस्ताव पास न करना पड़ता। आठसांकों से लड़कियाँ या श्रीमानों के पुत्र भले ही अविवाहित न न रहते हों। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि अच्छे अच्छे सम्बन्ध इससे टूट जाते हैं।

(४) आठसांकों से विवश होकर कभी२ श्रीमानों को भी कन्या नहीं मिलती। यह बात

सत्य नहीं है और आपके इस कथन के विरुद्ध भी हैं कि "श्रीमानों के तो मूर्ख, कुरूप, दुर्गुणी, निर्बल, तक तथा दुजवरया, तिजवरया, तीस चालीस वर्ष तक के विवाहित हो जाते हैं" दूसरी बात यह है, आठसांकों के बन्धन की कठोरता श्रीमानों के लिये उतनी नहीं है जितनी कि गरीबों के लिये। "समरथ को नहिं दोष गुसाँई"। अगर मान भी लें कि दो चार शताब्दियों के भीतर कोई ऐसी घटना हो भी गई तो यह लाभ इतना बड़ा नहीं है जिसके पीछे बड़ी से बड़ी हानि उठाई जाय।

(५) आठसांकों से चारसांकों में विवाह करने से हम पतित होंगे, या विवेकी और जीवित कहलायेंगे! यह बात विचारणीय है। और यह बात भी विचारणीय है कि हर तरह की बरबादी सहते हुए आठसांकों का नियम पाल कर हम गौरवशाली कहलायेंगे या लकीर के फकीर। सच बात तो यह है कि श्रेष्ठ और जीवित समाज वही कहला सकती है जो निरुपयोगी और हानिप्रद नियमों को शीघ्र ही तोड़ सकती है और उपयोगी तथा लाभप्रद नियमों को शीघ्र ही चला सकती है। जो समाज लकीर के फकीर बनने में अपना गौरव समझती है उसका पतन उस सीमा पर पहुँच गया है जिसके बाद मिटने का ही नम्बर आता है।

अन्त में हम समाज से निवेदन करना चाहते हैं कि यदि आप श्रीमान सिं० कुँवरसेनजी के कथनानुसार "गुणवान, रूपवान, हृष्टपुष्ट वर योग्य वर की दृष्टि" रखना चाहते हैं तो आठसांकों का मुलाहजा न कीजिये। आठसांकों का धर्म से सम्बंध नहीं है। हम नहीं कह सकते कि आठसांकों का रिवाज कब और कैसे चला। सम्भव है किसी समय आवश्यकता वश इनका रखना जरूरी समझा गया हो। लेकिन आज इनकी जरूरत तो है ही नहीं। उल्टा नुकसान उठाना पड़ता है। इसीलिये जितना जल्दी हो सके इस बन्धन को दूर कीजिये।

विदा ।

आज वर्ष की विदाई का अवसर उपस्थित हुआ है। इस वर्ष के समान ऐसे कितने ही वर्ष, मुझसे एक एक कर विदा ले चुके हैं। इस विदाई के अवसर पर कितनी स्मृतियाँ अनायास ही अन्तरतल में जाग उठी हैं। शैशव के कितने मधुर प्रभात स्नेहमयी जननी की गोद में, धूल से भरे हुए शरीर को लेकर खेलते खेलते बीत चुके हैं। गरमी के दिनों में दोपहर के समय में माता ने इस निर्बल शिशु को 'सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन' लोरी गाकर और थपकियाँ देकर, पालने में झुलाकर प्रेम से सुला दिया था। गोधूली बेला में चारागाह से लौटती हुई, गायों के खुरों से उड़ती हुई धूल को देखकर मैंने माँ से 'मेली किसना' के आने का संकेत किया था। उसके पश्चात् यौवन के वसन्त में कितने विलास कक्ष, सहज ही, आलिङ्गन और चुम्बन की ध्वनि से ध्वनित हो उठे। उसके पश्चात् कितने अव्यर्थ प्रयास गूढ़ उत्तेजना के साथ सफलता से समाप्त हो गये। कितने उत्सव-सङ्गीत मुखरित होकर मिट गये। कितनी विह्वल प्रतीक्षायें इस उन्मत्त और उद्भ्रान्त चित्त को व्यर्थ कर गईं। कितने मिलन महोत्सव अवसान हो गये। परन्तु अब माता का सुख नहीं रहा — उसका स्नेह जैसे देखते देखते कपूर के समान उड़ गया। उस मधुर कुहुकपाश की रश्मियाँ जैसे एक एक कर टूट गईं। अब रह गया है-सूर्योदय पर कर्मण्य जीवन की व्यथा का प्रबल आघात, और रात्रि में छिटकी हुई चाँदनी में—नैश जागरण के साथ बीती हुई घटनाओं की याद। परंतु एक आकांक्षा नहीं मिट सकी। एक चिर पिपासा बिना बुझे ही रह गई। अबतक वह सत् तृष्णा जैसे नित्य प्रति बढ़ती ही गई। कितने दिनों से विश्वमात्र के घ्याघात और प्रत्याघात के भीतर, शोक और सन्ताप के भीतर, सौन्दर्य और तृष्णा के भीतर अन्तस्तल से एक दिव्य स्फूर्ति उठता हुआ देखता हूँ; जैसे कोई विहाग के करुण स्वर में अपनी अव्यर्थ कथा को सुना रहा है। किसकी मौन विह्वलता, किसका असीम करुण क्रन्दन, किसकी सचेष्ट वेदना जैसे बाँसुरी के एक एक छेदों से फूट रही है। आज चिन्ताग्रस्त होकर किसकी बाँसुरी का स्वर मुझे व्याकुल कर रहा है? मैं क्यों इससे अभिभूत हो रहा हूँ? कौन कहेगा? इसे कौन समझावेगा कि आज इस क्षुद्र जीवन की यह अपूर्णता, मेरे हृदय के अन्तस्तल में जाकर, क्योंकर एक मौन व्यथा की हूक मार रही है।

—मंगलप्रसाद विश्वकर्मा।

विविध विषय ।

१ परवार-सभा में चुनौती ।

परवार-सभा सागर का सप्तमाधिवेशन जिस शान के साथ समाप्त हुआ उसी प्रकार उसमें पास हुए प्रस्ताव समय के परिवर्तन का संकेत करते हैं । वह संकेत समाज का हृदय और गरीबों की आह है । भले ही पूँजीपतियों को उनकी आवश्यक्ता प्रतीत न होती हो । इसलिये वे समाज की सच्ची परिस्थिति पहिचानने वालों के द्वारा बताये हुए उचित मार्गों को भी नई रोशनी के सुधार कह कर उपेक्षा करते रहे । समाज की जर्जरित अवस्था को देख करके अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने में दत्तचित्त रहे । परन्तु, अब सर्व साधारण जनता उनके जाल में अधिक समय तक न रह सकेगी । वह बाह्य आडम्बर और धर्म के नाम पर होने वाले अन्यायों को छिन्न-भिन्न करके अपना रास्ता साफ़ करने में जी जान से प्रयत्न करेगी ।

बाधाएँ उपस्थित की जावें-रोड़े अटकाये जावें-अड़ंगा डाले जावें । इनकी जरा भी परवाह न करके सच्चे जाति हितैषी आवश्यकता की पूर्ति में धर्म आविरुद्ध आगे बढ़ेंगे और अड़ंगा डालने वालों से मोरचा लेंगे ।

अभी तक उस दल ने अड़ंगा डालने वालों की इज्जत बनाये रखने को अपना सर्वनाश किया, मान मर्यादा को तिलाञ्जली दी-और बिल्ली की तरह दुबे रहे । केवल इस आशा पर कि हमारे प्रभु हमारी आवश्यकताओं को अब पहिचानेंगे-हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान देंगे । परन्तु यह सब लीला मृगतृष्णावत् सिद्ध हुई । आशाओं पर तुषार पड़ गया । "जाके पांव फटी न बिवाई वह क्या जाने पीर पराई" इस कहावत की सत्यता का परिचय मिला । यह सब कुछ हुआ, फिर भी हिम्मत नहीं हारे । यद्यपि उन्होंने तो चुनौती दी परन्तु समाज सेवकों ने उसको विजय का डंका समझकर स्वीकार किया ।

२ सुधारक ।

समाज में भले और बुरे सभी प्रकार के संस्कारों का सम्मिश्रण है । उसमें कुछ दोष तो प्रारम्भ से ही अपनी जड़ जमा लेते हैं । और कुछ धर्म की आड़ में विकृत होते होते विकराल रूप धारण करके एकमेक हो जाते हैं । ऐसा होते हुए भी समाज की बहुलता और प्रतिष्ठा बनी रहने के कारण वे सब दोष ढके रहते हैं । किन्तु जब तपेदिक के रोगी की नाईं समाज का शरीर जर्जरित और मरणासन्न हो जाता है-तब उसमें से कुछ लोगों को इस भयंकर रोग का पता लगने पर वह चिल्लाचिल्ला कर रोगियों को सचेत करता, और उनका निदान देखकर औषधि भी बतलाता है । परन्तु सभी पुरानी रूढ़ियों पर मर मिटने वाले श्रद्धा भाजन रोगी उन चिल्लाने वालों पर बे तरह टूटते और उन्हें सुधारक नाम से पुकारने लगते हैं ।

सुधारकों को बदनाम करने की चेष्टा बहुधा ऐसे लोग अधिक किया करते हैं-जिनका

समाज पर अनुचित प्रभाव पड़ा करता है। और उस प्रभाव का कारण समाज को खोंखला करने वाली कुछ पुरानी रूढ़ियाँ भी रहा करती हैं। इसलिये सुधारक उन्हें हटाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु दूसरी ओर समाज से सत्ता हटजाने का भय उन्हें बदनाम करने को बाधित करता है।

३ पागल बनो।

सत्य पथ पर चलने वालों को बड़े बड़े कंटक गिरि, गह्वर और विघ्न बाधाओं का साम्हना करना पड़ता है। कुछ लोग प्रशंसा पात्र बनने के लिये तथा कुछ सांसारिक प्रलोभनों में पड़कर उस पथ पर चलने को अग्रसर तो हो जाते हैं-किन्तु साम्हने कठिनाइयों का पहाड़ देखकर उल्टे पांव पीछे को मुड़ जाते हैं। यथार्थ में यह मार्ग बड़ा दुस्तर है। किन्तु उनको सरल है जो अपनी धुन के पक्के हैं। इतिहास के पृष्ठों पर ऐसे कई उदाहरण अंकित हैं कि जिन्होंने संसार में अपना आदर्श छोड़ जाने का प्रयत्न किया है। उन्हें ही शुरू में लोग पागल कहने लगे थे। किन्तु अन्त में संसार को उनके पागलपन की क़ीमत मालूम हुई।

श्री० महात्मा गांधी जी के असहयोग कार्यक्रम को देख कर लार्ड रीडिंग ने पागलपन कह कर एक हँसी में उड़ा देना चाहा था। परन्तु सत्य पर प्राण देने वाले, अपनी धुन के पक्के सिर्फ एक ही महान आत्मा ने सारे संसार में हलचल उत्पन्न करदी। इसीलिये तो कहा जाता है कि यदि सच्चे हृदय से कोई कार्य करना है, तो उसी रंग में रंग जाओ-दूसरे शब्दों में पागल बनो। दुनियां यदि तुम्हें पागल कहती है तो कहने दो।

४ सागर में लोहरी सेन सभा की नियम विरुद्ध बैठक।

उक्त शीर्षक का एक लेख हमको सिंघई कपूरचंदजी मंत्री लोहरीसेन सभा-केवलारी का मिला था। उसके दो ही दिन पश्चात उसी सभा की प्रबन्धकारिणी सभा के २५ सदस्यों का एक छपा हुआ विज्ञापन मिला। स्थानाभाव के कारण उसका सारांश इस प्रकार है "सागर में जो लुहरीसेन सभा का द्वितियाधिवेशन हुआ है। वह नाजायज तौर पर गुलझारीलालजी मलैया खुरई ने सभा की सत्ता हथयाने को एक स्वांग रचा था। यथार्थ में मंत्री और अन्य पदाधिकारी वही हैं, जो हरदुआ के रथोत्सव में चुने गये थे। परन्तु अब उसके द्वि० अ० के स्थान निर्णय को प्र० कां० की बैठक पिडरई में की जाने वाली है। उसमें इस अनुचित कार्यवाही का भी निर्णय किया जावेगा। अतः समाज से निवेदन है कि वे लुहरी सेन सभा-सम्बन्धी पत्र व्यवहार केवलारी के पूर्व पते पर ही करें"।

यदि कोई भी व्यक्ति केवल अपनी सत्ता बढ़ाने के लिये-मान कषाय के वशीभूत होकर अनधिकार कार्य करता है तो वह स्वयं अपनी सत्ता को बैठता है। मे हम समझते हैं

कि "उन्नति की जड़ विरोध के दांतों में है"। परन्तु इसका यह मतलब नहीं, कि अपनी कीर्ति कौमुदी के लोभ में अधिकारों का दुरुपयोग करने लगें।

व्यक्ति विशेष के वैमनस्य से समाज को रसातल में पहुंचाना बुद्धिमानों और समाज के शुभचिन्तकों का कर्तव्य नहीं है। इसी प्रकार सभा-समाज के विचार शील सज्जनों को भी चाहिये कि यदि कोई सज्जन उत्साह पूर्वक कार्य करना चाहते हैं, तो उनके मार्ग में रोड़ा न अटका कर विशेष अवसर देवें।

साहित्य-परिचय।

शीलकथा—प्रकाशक-जैन ग्रंथ प्रकाशक कार्यालय देवरी (सागर)।

शील महात्म्य प्रकट करने वाली इस पुस्तक से प्रायः सम्पूर्ण जैन जनता परिचित होगी। यह संस्करण सचित्र और बड़े टाइप में अच्छा प्रकाशित किया गया है।

नीचे लिखी पुस्तकें भी प्राप्त हो चुकी हैं। प्रेषक महाशयों को धन्यवाद।

[illegible] फार्म—प्रकाशक-[illegible] प्रान्तिक सभा [illegible] के कार्य कर्त्ता। यह मन्दिरों की व्यवस्था का [illegible] है जो सभा की ओर से सब जगह भेजा गया है। इस की रचना पूरी करके सभा को अवश्य भेजना चाहिये।

ओंकार अपार्थबोधि—मूल्य।) लेखक-मुकारामात्मज शिवदत्त शर्मा-मिलने का पता 'कल्पवृक्ष' कार्यालय, उज्जैन।

तारदर्पण—लेखक व प्रकाशक-रामस्वरूप, बीलाड़ (जयपुर)। मूल्य।) व्यापारियों के काम की चीज है।

वसन्तकुमारी—लेखक, धन्य कुमार जैन सिंह उत्तरपाड़ा। मूल्य ~)॥

सेवामंत्र और महात्मा गांधी जी के आदेश—

लेखक-भैयालाल जैन, मंत्री कांग्रेस कमेटी कटनी। प्रकाशक—बाबू हनुमन्तराव तालेवार बैंकट भवन कटनी। मूल्य ~)

विनोद लीला।

१—भारत के वाइसराय लार्ड कर्जन ने स्वार्थलिप्सा और हुकूमत के आवेश में आकर चाहा तो ये था कि बंगविच्छेद की आड़ में बंगाल के गरीब किसानों पर प्रहार करें। परन्तु उसका परिणाम उल्टा हुआ। सोते हुए शेर ने सारे भारत को जगा दिया। प्रजा भड़क उठी। और उससे स्वदेश प्रेम अंकुरित हो गया। बेचारे वाइसराय को मन मसोस कर रहना पड़ा। भाई, यही दुःख तो भा० व० परवार-सभा सागर में हुआ। परन्तु क्या करें 'मेरे मन कछु और है करता के कछु और'।

२—आठसांक और चारसांक का प्रस्ताव उपस्थित किया जाने पर खबर फैली कि 'अमुक के घर में आग लग गई'। लोग बुझाने को दौड़े, परन्तु पीछे मालूम हुआ कि वह आग किसी के घर में नहीं किन्तु दिल में लगी थी।

३—बंगाल के भाग्य विधाता लार्ड कर्जन की पोल, लार्ड रीडिंग के न्याय का नमूना और नौकरशाही के कारनामे बतलाने वाले भारत के राष्ट्रीय पत्र जिस प्रकार नौकरशाही की आंखों के कांटे हो रहे हैं। उसी प्रकार समाज की वास्तविक अवस्था और सच्ची आवाज प्रकट करने वाले पत्रों पर, सत्ताशालि व्यक्ति या हमारी जातीय-सरकार उनके नष्टभ्रष्ट करने को तुल पड़े तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि "न रहेगा बाँस न बजेगी बांसुरी"।

४—देव द्रव्य का स्मरण करके परवार-सभा के मुंह में पानी भर आया है। तभी तो उसने जहाँ तहाँ से हिसाब मँगवाया है। और उसके अटर्नी परवार-बन्धु ने पंचायतियों का पोल खाता तलब कराया है। इतना भारी अपराध! फिरभी माफी के लिये एक शब्द नहीं! गजब रे गजब, चोरी और शिरजोरी।

समाचार संग्रह।

—ता० १-१२-२४ को नरसिंहपुर जिले के छोटा छिंदवाड़ा नामक ग्राम में रामबाई अपने प्राणनाथ पतिदेव के वियोग में सती हो गई। यथार्थ में भारत अब भी पतिव्रता देवियों से शून्य नहीं है। (पीताम्बरप्रसाद शर्मा)

—माघ शुक्ला दशमी से फाल्गुन शुक्ला दशमी तक श्री थूवोन जी का मेला भरेगा। झांसी से आने वाले सज्जन ललितपुर उतरें परन्तु कटनी, भोपाल और गुना वालों को मुगावली स्टेशन पर उतरने से प्रतिदिन मोटर तैयार मिलेगी। वहां सब प्रकार सवारी का प्रबंध है।

—सतना की दि० महावीर जैन पाठशाला और औषधालय का वार्षिकोत्सव श्रीमान् शेसन्स जज सा० रावांके सभापतित्व में सानन्द समाप्त हुआ। पाठशालाके अध्यापक पं० जमुनाप्रसाद जी और औषधालय के श्री जिनेश्वरदास राजवैद्य उत्साही कार्यकर्ता हैं। (स० सि० गोरेलाल फूलचंद्र)

—अभी हंगरी की प्रदर्शिनी में एक सैबीरियन मनुष्य आया था। उसकी ऊँचाई ९ फुट, वजन ४५८ पौंड, छाती ५६ इंच, सिरका घेरा २५ इंच, पहुँचा १३ इंच और पैर २१ इंच लंबा है वह चार आदमियों के बराबर भोजन करता है। परन्तु महा आलसी और अकर्मण्य है। उमर ३४ वर्ष की है।

—वर्त्तमान काश्मीर नरेश के भतीजे और उत्तराधिकारी राजा सर हरिसिंह विलायत यात्रा को गये थे। इस यात्रा में आपको श्रीमती राबिनसन् नामक एक यूरोपियन महिला के जाल में फँस जाने के कारण उसके स्वामी को साढ़े पैंतीस लाख रुपये का चैक मिडलेंड बेंक के नाम देकर समझौता करना पड़ा। परन्तु षटयंत्रकारियों ने कुछ रुपया बीच ही में मार लिया। इसलिये अदालत में यह सनसनीदार मुकद्दमा चल रहा है। भारतीय नरेशों को विलायत यात्रा के समय इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

ॐ

श्री भारतवर्षीय परवार सभा का

सस्ता–सर्वोपयोगी

सचित्र–मासिक–मुखपत्र

परवार–बन्धु

द्वितीय भाग

सम्पादक।

पं. दरबारीलाल साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ

प्रकाशक।

मास्टर छोटेलाल जैन

परवार-बन्धु, कार्यालय-जबलपुर (म. प्र.)

जनवरी से दिसम्बर १९२४ तक } पौष श्री वीर नि० २४५१ विक्रम सम्वत् १९८१ { वार्षिक मूल्य तीन रुपया

परवार-बन्धु के द्वितीय भाग की लेख सूची।

गद्य लेख।

पावार-बन्धु के द्वितीय भाग की लेख-सूची।

पद्य लेख।

परवार–बन्धु के द्वितीय भाग की लेख–सूची।

पूछताछ।

१—एक महाशय पूछते हैं कि, परवार सभा ने जो मंदिरों की व्यवस्था सूचक नक्शा प्रत्येक स्थानों को भेजा है यदि वहां के मुन्तजिम भरकर न भेजें तो परवार सभा क्या कर सकती है ?

प्रिय महाशय, आपके प्रश्न का उत्तर स्वयं परवार सभा सप्तम अधिवेशन-सागर में स्वीकृत सातवां प्रस्ताव दे रहा है। ऐसे व्यक्तियों से हिसाब लेने, उचित व्यवस्था करने को एक उप समिति बनाई गई है जो हिसाब न देने वालों पर अदालत दीवानी में मुकदमा दायर करके दुरुस्त करेगी। तथा हिसाब लेने का हक कानूनन प्रत्येक व्यक्ति को है।

२—प्रश्न-सांकों के मिलान में कभी २ बड़ा विरोध हो जाता है, इसलिये कृपया इसके मिलान की रीति लिखिये ताकि लोगों का भ्रम दूर हो जावे।

परवार-बन्धु के अंक ११ में इसी विषय के दो लेख निकल चुके हैं। यदि आप उन्हें ध्यान पूर्वक देखेंगे तो सांकों के मिलान का भ्रम दूर हो जावेगा।

३—प्रश्न-क्या यह सही है कि जिस "जवाऊ कमांकल" के लेख की अन्य स्थान वालों ने इतनी अधिक प्रशंसा लिखी उसी का जबलपुर ने घोर विरोध किया था ? यदि हां, तो क्या जबलपुर वालों की युक्ति परवार बन्धु के पाठक अनुराठक सुन सके हैं ?

महाशय! यह प्रश्न सागर की परवार सभा के समय भी उठाया गया था, जिसका समाधान समाज के प्रसिद्ध श्रीमानों, और धीमानों ने सन्तोष जनक कर दिया था। अब उसका दुहराना पुनरुक्ति है। और युक्तियां भी ऐसी नहीं हैं जिनसे पाठक लाभ उठा सकें।

गोरखधन्धा-पुरस्कार।

गतांक १० में प्रकाशित सूचना के अनुसार ५ का पुरस्कार श्रीयुत "लाल" को देना निर्णीत हुआ है। वह गल्प तथा आई हुई गल्पों में से कुछ चुनी हुई कहानियां आगामी अंकों में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जावेगा।

आगामी के लिये पुरस्कार की सूचना।

का न में की चो ड़ी नि दा र-१

उपर्युक्त शब्दों को क्रम बद्ध करके उत्तम वाक्य, कहावत आदि बनाकर ता: १५ जनवरी तक भेजने वालों को १९ पुस्तकें आठ आठ आना मूल्य की पुरस्कार में दी जावेंगी।

वर के अठसका।

(१)

१ उजया-वाफल्लगोत्र। २ छोवर। ३ डडिया। ४ वीवीकुदम। ५ वैशाखिया। ६ देदा। ७ मारू। ८ सेतगागर। वर जन्म १९८१। पताः—सि० तोड़लमल कंधीलाल-कटनी मुड़वारा।

(२)

१ छोवर-फागुलन गोत्र। २ वहुरिया। ३ डामडिम। ४ घाटे। ५ डेरिया। ६ ममला। ७ सवे छोला। ८ बड़े मारग। वर जन्म १९५९, पता:— भैयालाल बसोरेलाल पनागर (जबलपुर)

(३)

१ वहुरिया-कोछल्ल गोत्र। २ उजरा। ३ कुआ। ४ ओछल। ५ गोदू। ६ देदा। ७ छोवर। ८ धना। वर जन्म १९५० पताः—हजारीलाल सि०-पाटन (जबलपुर)

(४)

१ भारू-भारल्ल गोत्र। २ वार। ३ डुहीं। ४ सुहला। ५ डेरिया। ६ नगाडिम। ७ वैशाखिया। ८ छोवर। वर जन्म १९५६ पताः— बाबूलाल लखगरी-पनागर (जबलपुर)

कन्या के अठसका।

(१)

१ नारद-वाछल्ल गोत्र। २ डुहीं। ३ गाहे। ४ वार। ५ रकिया। ६ बहुलाडिम। ७ छोवर। ८ दिवाकर। कन्या जन्म १९६७ पताः—गनपतलाल दुर्लीचन्द जैन-लखनादौन (सिवनी)

(२)

१ वहुरिया-कोछल्ल गोत्र। २ ममला। ३ वैशाखिया। ४ भारू। ५ सोला। ६ छोवर। ७ अंडल। ८ डेरिया। कन्या जन्म १९६८। पताः—वेनीप्रसाद जैन-मार्फत स० सि० घासीराम नाथूराम-करेली (नरसिंहपुर)